

# भोजपुरी लोक-संस्कृति

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय  
एम० ए० पी-एच० डी० ।



वर्ष १९९३ । सन् १९९१ ।  
हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग  
[१२] सम्मेलन-घर, इलाहाबाद ]









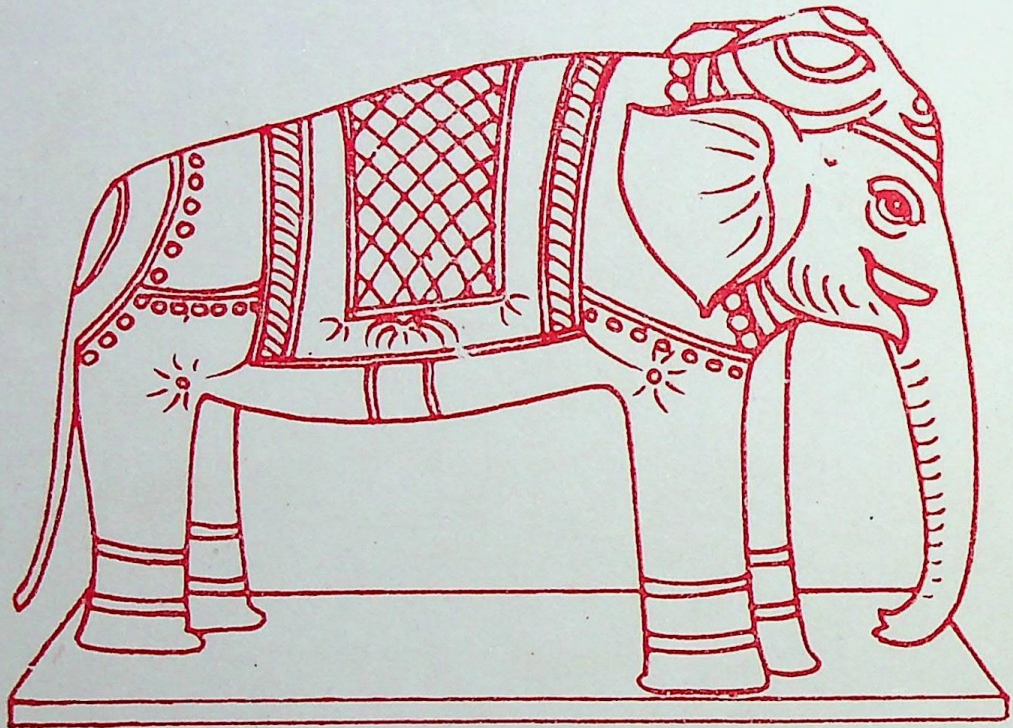




भोजपुरी लोक - संस्कृति

० ०







# भोजपुरी लोक - संस्कृति

०

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय

एम० ए०, पी-एच० डी०

निदेशक

लोक-संस्कृत शोध-संस्थान, वाराणसी

०

शुभाशंसा

पद्म-भूषण आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय

०

भूमिका-लेखक

डॉ० विद्यानिवास मिश्र

कुलपति, काशी विद्यापीठ, वाराणसी

०



शक १९१३ : सन् १९९१

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

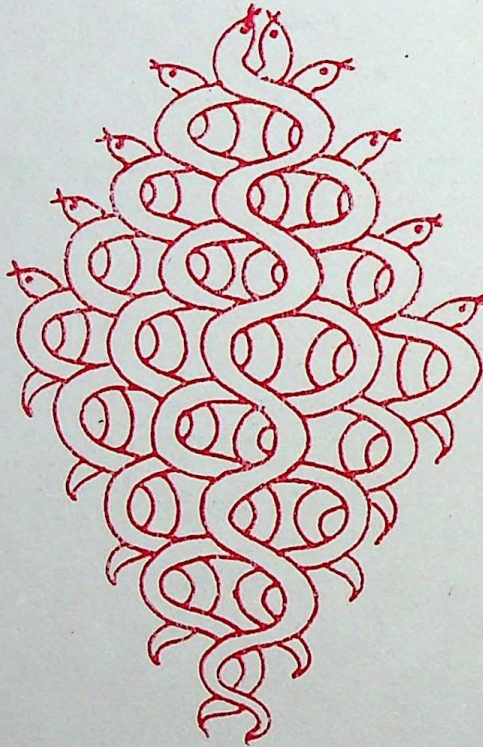
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद



प्रकाशक  
डॉ० प्रभात मिश्र शास्त्री  
प्रधानमंत्री : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग  
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

⊙

प्रकाशन वर्ष : सन् १९८९ ई०  
प्रतियाँ : ग्यारह सौ  
संस्करण : प्रथम  
मूल्य : दो सौ रुपये



रेखांकन-सज्जा  
डॉ० रामशब्द सिंह  
आवरण-सज्जा  
श्री टी० के० मजूमदार

⊙

मुद्रक  
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग



## समर्पण-पत्र

० ०

जिनकी प्रेरणा तथा प्रोत्साहन ही मेरे जीवन का बल और  
सम्बल है, जिनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान - राशि के बल पर ही मैं  
अपने साहित्यिक जीवन के पथ पर अग्रसर होने में समर्थ  
हो सका हूँ।

उन्हीं

परम श्रद्धेय, पितृकल्प, ज्येष्ठ भ्राता,  
पद्मभूषण, आचार्य, पण्डित

बलदेव उपाध्याय

के चरण - कमलों में यह विनम्र कृति  
सादर, सप्रेम, समर्पित।

“त्वदीयं वस्तु गोविन्द !

तुभ्यमेव समर्पये” ॥

—कृष्णदेव

• •







## प्रकाशकीय

० ०

विविधता भारतीय धर्म, साधना और संस्कृति का मूल वैशिष्ट्य है। किन्तु इस विविधता में भी सांस्कृतिक समन्वय, उदात्त मूल्य एवं वैदिक सन्देश 'एकं सद्ब्रिषाः बहुधा वदन्ति' की अभिप्रेरणाएँ रही हैं। इस प्रकार भारतीय लोक-जीवन के सांस्कृतिक अधिष्ठान बाह्यरूपेण तो प्राकृतिक एवं भौगोलिक कारणों से विविधता के द्योतक हैं; किन्तु भारत माता के प्रति समान श्रद्धा, भारतीय पूर्वजों के प्रति सहज आस्था और आर्य परम्परा के प्रति उत्कट संसक्ति के कारण हमारे सांस्कृतिक रिक्त में सूक्ष्म एकता-तन्तुओं का आभास मिलता है।

भारतीय संस्कृति का जो बहुरंगी स्वरूप है, उसके निर्माण में भारत की प्रकृति का विशेष योग है। उत्तुंग पर्वतमालाएँ, गह्वर और उपत्यकाएँ, नद-नदी, सरोवरों से सिंचित मैदानी प्रदेशों, सैकड़ अंचलों, सघन अरण्यों और उपवनों के कारण ही कहा गया है—

‘गायन्ति देवाः किलगीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।  
स्वर्गापि वर्गास्पदहेतुभू ते, भवन्ति भूयः पुरुषः सुरत्वात्॥’

ऐसे नैसर्गिक वैविध्य से सम्पन्न भारत में अनेक भाषाओं और बोलियों का जन्म हुआ। गंगा के तटीय इलाकों से सिंचित भोजपुरी क्षेत्र की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। इसकी बोली में कुछ ऐसी मिठास और करुणार्द्र झंझुट है कि यहाँ के जन-जीवन के उल्लास-विषाद, शौर्य और पराक्रम का आकर्षण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक बना हुआ है।

यह प्रसन्नता का विषय है कि भोजपुरी लोक-साहित्य के प्रख्यात विद्वान् और लोकगीतों के संग्राहक डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने 'भोजपुरी लोक-संस्कृति' के सम्बन्ध में एक प्रामाणिक ग्रन्थ का प्रणयन किया है। भोजपुरी लोक-संस्कृति विराट् भारतीय संस्कृति के सामासिक स्वरूप का ही अंग है। इस दृष्टि से 'भोजपुरी लोक-संस्कृति' पुस्तक का अध्ययन उपयोगी होगा।

आज जब कि क्षेत्रीयता और भाषिक अभिनिवेश के कारण राष्ट्रीय एकता के सामने चुनौतियाँ आती जा रही हैं, उस स्थिति में भोजपुरी अंचल के सांस्कृतिक वृत्त का समेकित स्वरूप ग्रन्थ में प्रस्तुत करना अपने में एक चुनौती है। किन्तु इस अंचल के लोक-विश्वास, रहन-सहन, खान-पान, पर्व-व्रत, उत्सव, परिवार, संस्कार, प्रथाएँ, लोक-कला, मनोरंजन, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक स्वरूप के सम्बन्ध में व्यापक जिज्ञासा-भाव रहा है।

भोजपुरी फिल्मों की सफलता और भोजपुरी लोकधुनों की मादकता ने भारतीय जन-समाज को प्रभावित किया है। जब से मारिशस आदि में वैसे भोजपुरी भाषा-भाषियों में जागृति आयी है और भोजपुरी लोक-जीवन के माध्यम से भारतीय संस्कृति की पहचान विश्व में बनती जा रही है, उससे भोजपुरी लोक-संस्कृति के विविध आयामों के प्रति व्यापक जिज्ञासा बढ़ती जा रही है।

विश्वास है, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय जैसे मनीषी और समर्थ भोजपुरी भाषा-साहित्य के नदीष्ण विद्वान् की इस कृति को सम्यक् परिप्रेक्ष्य में देखा और परखा जायेगा। ग्रन्थ में आए हुये सन्दर्भ कठोर वास्तविकताओं और नग्न यथार्थों से प्रभावित हैं। कहीं-कहीं लेखक ने समाजशास्त्रीय अध्ययन-सरणि का अनुगमन किया है। कहीं भी लेखक का भाव ऊँच-नीच, साधु-असाधु, श्लील-अश्लील के भावों से बोझिल नहीं है। जो कुछ भोजपुरी जीवन-प्रवाह में व्यंजित और चित्रित है, उसका सांगोपांग विवरण ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है। आशा है, 'भोजपुरी लोक-संस्कृति' ग्रन्थ का उपयोग जिज्ञासुजन भली-भाँति करेंगे।

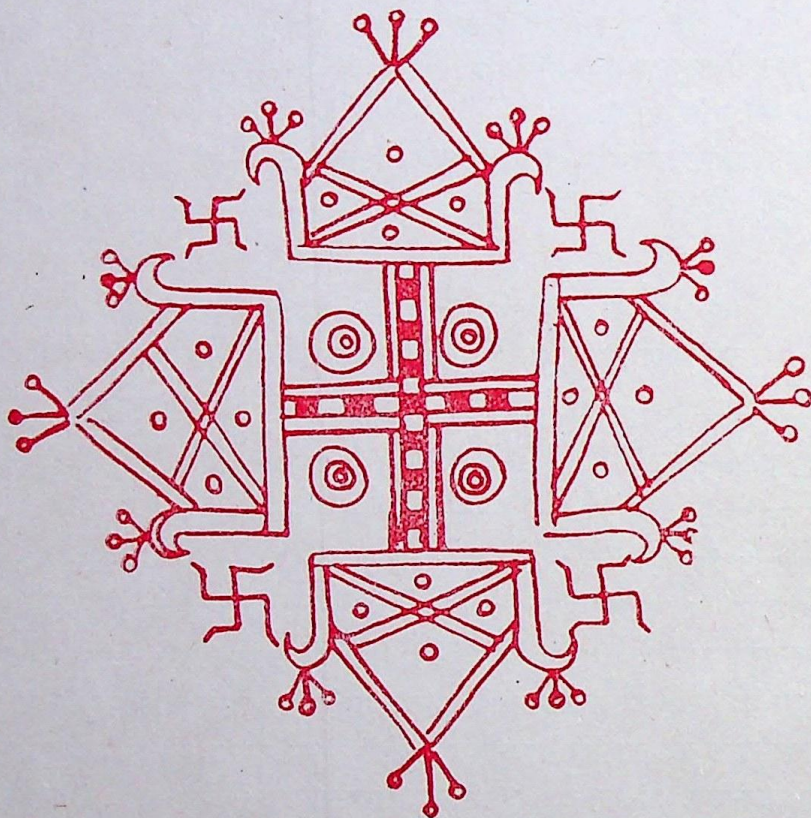
भोजपुरी लोक-संस्कृति ग्रंथ में दिये गये अधिकांश रेखाचित्र प्रोफेसर रामचन्द्र शुक्ल की प्रेरणा और विद्वान् कलाकार डॉ० रामशब्द सिंह के उदार सहयोग से प्राप्त हुए हैं। इन रेखाचित्रों एवं छायाचित्रों के कारण ग्रंथ की सज्जा में वृद्धि हुई है। मैं उनके सहयोग के लिए आभार ज्ञापित करता हूँ।

पौष पूर्णिमा, संवत् २०४७



डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल  
साहित्य-मंत्री







## शुभाशंसा

० ०

भोजपुरी भाषा के मर्मज्ञ विद्वान् डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय की “भोजपुरी लोक-संस्कृति” नामक नूतन रचना को पढ़कर आनन्दित होने का मुझे शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। यह पुस्तक अपनी ज्ञानगरिमा तथा निर्माण-कौशल से विज्ञ पुरुषों के ध्यान को बलात् अपनी ओर आकृष्ट करेगी। ऐसा मेरा पूरा विश्वास है।

भोजपुरी मण्डल अपने भीतर अत्यन्त प्राचीन काल की गौरवमयी संस्कृति के लिए पर्याप्तरूपेण प्रख्यात रहा है। मगध के प्रधान नगर पाटलिपुत्र, कोशल के मुख्य नगर श्रावस्ती और काशी के मुख्य नगर वाराणसी को मिलाने से जो त्रिकोणीय भूमि-खण्ड प्रस्तुत होता है, उसका अधिकांश भाग भोजपुर मण्डल का निर्माण करता है। भगवान् बुद्ध के समय के जातक तथा सम्राट् पुष्यमित्र के समय का पातंजल महाभाष्य भोजपुरी लोक-संस्कृति की अनेक अनमोल सामाजिक तथा आर्थिक-धरो-हर को अपने पृष्ठों में सँजोये हुए है। जिनके अध्ययन से ईसवी सन् के आरम्भ से कई शताब्दी पूर्व का लोकवृत्त अध्येतागण के सामने उपस्थित हो जाता है।

आज से लगभग सौ साल पहिले अंग्रेज शासकों ने इस भोजपुर प्रदेश के अनेक खण्डों का, बहुमूल्य सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक विवरण अपने अंग्रेजी ग्रन्थों में प्रस्तुत कर “लोक-संस्कृति” के अध्ययन एवं मनन का श्री गणेश किया था। इसके लिए वे हमारे आदर और सम्मान के भाजन हैं। सरकारी शासन में महत्त्वपूर्ण अधिकारी होने के कारण उन्हें इस कार्य में स्थानीय विद्वानों से विशेष सहायता प्राप्त होती रही। उस युग में मिर्जापुर जनपद के प्रशासक श्री विलियम क्रुक ने अपने सहयोगी विद्वान् पं० रामगरीब चौबे की सहायता से तत्कालीन लोक-संस्कृति के तथ्यों के प्रकाशन का अपूर्व अवसर अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ “पापुलर रिलिजन एण्ड फोकलोर आफ नार्दर्न इण्डिया” में प्राप्त किया था। इस कारण यह ग्रन्थ आज भी तथ्यपूर्ण होने से नितान्त उपादेय है। दूसरे अंग्रेज शासक डॉ० सर जार्ज एब्राहिम ग्रियर्सन मिथिला तथा काशी मण्डल के विद्वानों के सम्पर्क में आये और इसलिए मैथिली और भोजपुरी के व्याकरण तथा साहित्य पर इनकी रचनाएँ आज भी सन्दर्भ ग्रन्थ का कार्य करती हैं। काशी के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद एवं हिन्दी भाषा के मर्मज्ञ विद्वान् महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी का बहुमूल्य सहयोग मिलने से डॉ० ग्रियर्सन की प्रतिभा इस कार्य में चमक उठी थी।

William  
C. Cruk

Grierson

परन्तु इधर बहुत दिनों से यह कार्य समाप्तप्राय था। इसे जाग्रत करने तथा लोक-संस्कृति के तथ्यों को उजागर करने के लिए इस ग्रन्थ के लेखक डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने अपने जीवन को ही समर्पित कर दिया है। वे इस समय अस्सी (८०) वर्ष के हो रहे हैं और विगत पचास (५०) वर्षों से भोजपुरी की सेवा एकनिष्ठ होकर नाना प्रकार से कर रहे हैं। “भोजपुरी लोक-संस्कृति” नामक प्रस्तुत पुस्तक इस विषय का उनका सबसे महत्त्वपूर्ण, प्रमेय-बहुल एवं प्रमाण-पेशल नूतन ग्रन्थ-रत्न है जो लोक-संस्कृति के विद्वानों के समक्ष अपनी आभा बिखेर रहा है।

यह ग्रन्थ एक सामान्य रचना न होकर ‘भोजपुरी लोक-संस्कृति’ का बहुमूल्य ‘विश्वकोश’ है। लेखक ने अनेक वर्षों के धोर परिश्रम, प्रगाढ़ अनुशीलन एवं गम्भीर मनन के फलस्वरूप ऐसे ग्रन्थ का प्रणयन किया है जिसका प्रतिद्वन्द्वी खोजना कठिन है।

लोक-संस्कृति का क्षेत्र खड़ा विशाल है। उसमें नाना विषयों के विवरण का विन्यास प्रचुरता के साथ पाया जाता है। कृष्णदेवजी ने अपने दीर्घकालीन अनुभव के आधार पर इस ग्रन्थ में ऐसे तथ्यों का संकलन किया है जो भोजपुरी विद्वानों की दृष्टि से भी ओझल होते जा रहे हैं। इन्होंने अंग्रेजी में लिखे गये संस्कृति विषयक ग्रन्थों का भी यथेष्ट मनन किया है। लोक-संस्कृति के सुप्रसिद्ध तथा माननीय विद्वान् डॉ० जेम्स फ्रेजर के द्वादश खण्डात्मक ग्रन्थ “गोल्डेन बांड” का इन्होंने जमकर अध्ययन किया है और उसका उपयोग इस ग्रन्थ के निर्माण में बड़े विवेक तथा मनन के साथ किया है। फलतः यह ग्रन्थ सर्वांगीणता के गुण से पूर्णतया मण्डित, समादृत तथा अलंकृत किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ के कुछ अध्याय बड़े महत्त्वशाली

James  
Frazier  
"Golden  
Bond"



है जो संस्कृति विषयक नवीन तथ्यों का विवरण पहिली बार किसी हिन्दी ग्रन्थ में प्रस्तुत करते हैं। विद्वान् लेखक ने भोजपुर मण्डल के आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज खान-पान, खेल-कूद, शादी-विवाह व्रत-त्यौहार चीनी-चाशनी और लड्डुआ-पेड़ा आदि के रूप-रंग तथा इनके बनने-बनाने का इतनी कुशलता से वर्णन किया है कि इनकी जितनी भी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी ही है। लेखक की निरीक्षण शक्ति इस विषय में बड़ी अपूर्व है। पक्वान्नों तथा मिष्ठान्नों का वर्णन इतना सटीक तथा सूक्ष्म है कि इसे पढ़कर कोई भी समझदार व्यक्ति उन पदार्थों को विधिवत् तैयार कर सकता है।

विद्वान् ग्रन्थकार ने पूरे इस ग्रन्थ को अठारह (१८) अध्यायों में विभक्त किया है और प्रत्येक अध्याय को परिच्छेद तथा अनुच्छेद में विभाजित कर विषय-विस्तार को यथार्थ परिज्ञान के लिए समेट रखा है। यह समग्र ग्रन्थ प्रौढ़ शैली में लिखा गया है तथा अपने कथन की पुष्टि में संस्कृत एवं भोजपुरी भाषा से समुचित उद्धरण दिये गये हैं। प्रत्येक अध्याय अपनी गरिमा तथा महिमा रखता है परन्तु कुछ अध्यायों का वैशिष्ट्य नितान्त आकर्षक, आवर्जक तथा मर्मस्पर्शी है। ऐसे विषयों की केवल सूचना देना ही पर्याप्त होगा।

भोजपुर के निवासी व्यक्तियों के स्वतंत्रता-प्रेमी तथा उल्लासमय जीवन का बड़ा ही सुन्दर वर्णन लेखक ने किया है। बहुत पहिले डॉ० ग्रियर्सन ने लिखा था कि जिस प्रकार बंगाली अपनी कलम में अपनी जीवनी शक्ति का निवास मानता है, उसी प्रकार भोजपुरिया अपने मोटे डण्डे में तथा मजबूत लाठी में अपने लठैत जीवन का रहस्य छिपा मानता है। गिरिधर कविराय की लाठी वाली कुंडलिया भोजपुर के लठैत निवासियों पर पूर्णरूप से चरितार्थ है।

“लाठी में गुन बहुत है,  
सदा राखिए संग।”

प्रस्तुत ग्रन्थ में धार्मिक संस्कारों का विवरण बड़े विस्तार तथा वैविध्य के साथ दिया गया है। विशेषतः ग्रामीण जनता द्वारा उपास्य ग्रामीण देवी और देवताओं का वर्णन नितान्त उपादेय है जिनका अन्यत्र उपलब्ध होना दुष्कर है। खान-पान वाला अध्याय भी इसी प्रकार नितान्त विस्तृत है जिसमें ऐसे मिष्ठान्नों का वर्णन है जिनकी प्राप्ति भी आज अतीत की कहानी बन गई है।

प्रस्तुत पुस्तक में अनेक विषयों की समीक्षा तथा उनका प्रतिपादन हिन्दी में पहिली बार किया गया है। इसमें ज्ञान की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। लोक-संस्कृति (फोकलोर) मानव विज्ञान शास्त्र (एन्थ्रोपोलॉजी) तथा समाज शास्त्र (सोशिओलाजी)—इन तीनों महनीय शास्त्रों के गम्भीर तथ्यों का गहन अनुशीलन एवं विशद प्रतिपादन के कारण यह “भोजपुरी लोक-संस्कृति” एक साधारण रचना न होकर भारतीय लोक-संस्कृति का निःसन्देह एक विश्वकोश है। जिसमें समस्त विषय-विस्तार तथा वैशद्य के साथ एक सुन्दर श्रृंखला में अनुस्यूत किये गये हैं।

विद्वान् लेखक ने अंग्रेजी में प्रणीत लोक-संस्कृति विषयक प्रधान ग्रन्थों का अध्ययन, मनन तथा समीक्षण बड़ी गम्भीरता के साथ किया है। उदाहरणार्थ डॉ० फ्रेजर का ग्रन्थ पर्याप्त है। कृष्णदेव जी ने इस ग्रन्थ-रत्न का अनुशीलन तथा मनन अनेक वर्षों तक किया है और इसमें निर्दिष्ट सिद्धान्तों का प्रयोगात्मक दृष्टान्त भोजपुरी प्रदेश में व्यापक रूप में प्रचलित आचार-विचारों से खोज निकाला है। नमूने के रूप में ‘टैबू’ को ही लीजिए। इसके अर्थ, स्वरूप तथा प्रकार को खोजकर, इस विषय का वर्णन हिन्दी में सबसे पहिली बार इतनी प्रामाणिकता के साथ यहाँ उपन्यस्त किया गया है।

खान-पान वाले अध्याय में भोजपुर मण्डल की विचित्र मिठाइयों का वर्णन इतना सजीव तथा सटीक है कि इस वर्णन के आधार पर कोई भी चतुर व्यक्ति इन मिष्ठान्नों को सफलता से तैयार कर सकता है। एक ही दृष्टान्त यहाँ पर्याप्त होगा।

ऐसा सुना जाता है कि कलकत्ता से एक बंगाली सज्जन काशी घूमने-फिरने के लिए आये थे। लौटने पर उनके किसी मित्र ने पूछा कि कहिए, काशी की कौन-सी विचित्र मिठाई आपको सबसे अधिक पसन्द आई। उसके नाम-रूप का परिचय तो दीजिए। तब उस सैलानी बंगाली ने जलेबी का जो वर्णन किया वह नितान्त हास्योत्पादक है, तथ्य-प्रदर्शक बिल्कुल भी नहीं है। उसने बंगला में कहा—

“घूम                      घुमानीघूरा  
तार                    मध्ये            रस।  
तार शाला का नाम बोले;  
जलेबा, जलेबी, जलेबा॥”



कलकतिया बंगाली यह सुनकर हँसते-हँसते लोटपोट हो गया। परन्तु इस वर्णन के ठीक विपरीत लेखक ने जलेबी बनाने की विधि का जो वर्णन किया है वह इतना सजीव है कि उसकी सहायता से निःसन्देह जलेबी बनाई जा सकती है और उसका आस्वादन भी किया जा सकता है।<sup>१</sup>

सत्त (सातू) को लेखक ने भोजपुरियों का जातीय भोज्य पदार्थ बतलाया है। इस सम्बन्ध में हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि सत्तू पान-सातू पीना—की परम्परा अत्यंत प्राचीन काल से चली आ रही है। चलनी से चाले गये सत्तू का उल्लेख ऋग्वेद के इस प्रसिद्ध मंत्र में मिलता है।

“सक्तुमिव तितउना पुनन्तो;  
यत्र धीराः वाचमक्रत।  
अत्रा सखायः सख्यानि जानते,  
भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥”

(ऋग्वेद, दशम मण्डल, सूक्त ७१।२)

‘चलनी’ का सूचक वैदिक शब्द ‘तितउ’ इस मंत्र में प्रयुक्त है। इस मंत्र का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार चलनी से चालकर सातू को स्वच्छ तथा पवित्र किया जाता है उसी प्रकार विद्वान् लोग अपनी प्रज्ञा से प्रकृति तथा प्रत्यय के द्वारा शब्दों को चालकर अलग कर देते हैं। सत्तू मेध्य है। यह यज्ञ-कर्म में प्रयुक्त होता था। फलस्वरूप ऐसे पवित्र पदार्थ पर अपनी जीविका चलाने वाला भोजपुर-निवासी नितान्त श्लाघ्य है। वह पवित्र चरित्र वाला है।

संस्कारों भी वर्णन विस्तृत तथा आवर्जक है। जिसे विवाह कहते हैं वह अनेक विधि-विधानों का हृदयग्राही पुंज है। इन संस्कारों के अनेक अंगों तथा उपांगों का विधिवत्, प्रामाणिक एवं सुन्दर वर्णन कर लेखक भूले-भटके संस्कारों को विद्वानों के सामने बड़े कौशल से प्रस्तुत करता है।

इस ग्रन्थ में लोकविश्वासों का प्रामाणिक तथा सजीव वर्णन विद्वानों के ध्यान को बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। इतने विविध तथा विचित्र लोक-विश्वासों का एकत्र प्रतिपादन मनोरम तथा ज्ञानवर्धक होने के साथ ही बड़ा रोचक एवं आकर्षक है। लेखक ने ‘टैबू’ का वर्णन इसी प्रसंग में किया है।

टैबू (Taboo) शब्द अंग्रेजी भाषा का नहीं है। प्रत्युत एशिया के पूर्वी समुद्र में फैले हुए टापुओं में से अन्यतम ‘टोगो’ टापू की भाषा का शब्द है। इस शब्द का अर्थ है—वर्जना। पवित्र तथा अपवित्र दोनों प्रकार की वस्तुओं को वर्जित करना, निषिद्ध मानना इस शब्द का अभिप्राय है। अनेक टैबूओं में से पत्नी के लिए अपने पति का नाम लेना अन्यतम टैबू है।

यहाँ इस विषय के सम्बन्ध में एक रोचक दृष्टांत प्रस्तुत किया जाता है। पुत्र की कामना करने वाली किसी स्त्री को उसके गुरु जी ने जप करने के लिए एक मंत्र बतलाया तथा कहा कि इसका विधिवत् जप करने से तुम्हारे मनोरथ की सिद्धि अवश्य होगी। एक वर्ष के अनन्तर जब से गुरुजी लौटकर आये और उस स्त्री से उस मंत्र के फल के विषय में पूछा। पत्नी ने उदास होकर उस मंत्र की निष्फलता की बात कही जिसे सुनकर गुरुजी ने आश्चर्य प्रकट करते हुए उस मंत्र के स्वरूप को जानना चाहा। उस स्त्री ने धड़ल्ले से मंत्र कहा “चम्पो के चाचा तव शरणम्।” स पर गुरु जी ने कहा कि मैंने तो तुम्हें “देवकीनन्दन तव शरणम्” यह मंत्र दिया था। यह नया मंत्र कहाँ से आ गया? तब उस स्त्री ने कहा महाराज! यह मेरे पति का नाम है। इसका उच्चारण मैं कैसे करती? इसलिए मैंने अपनी भतीजी का नाम इसमें डाल दिया। क्योंकि इसी नाम से मैं उन्हें पुकारती हूँ। यह सुनकर गुरुजी जोरों से हँसने लगे। इसी प्रकार से दूसरे अनेक रोचक टैबू प्राप्त होते हैं जिनका उल्लेख मनोरंजक सिद्ध हो सकता है।

प्रातःकाल, मांगलिक वस्तुओं के दर्शन का विधान, समस्त दिवस को मंगलमय बनाने का एकमात्र साधन माना जाता है। प्रस्तुत पुस्तक के विद्वान् लेखक ने इस विषय की अनेक वस्तुओं का विशिष्ट उल्लेख किया है। इस प्रसंग में ‘नैष-धीय चरितम्’ का वह भव्य श्लोक उद्धृत किया गया है; जिसमें राजा नल ने अपनी प्रियतमा के मंगलमय मुख का प्रातःकाल दर्शन कर सुप्रभात का प्रारम्भ किया है।

प्रिय के लिए अपनी प्रियतमा के मुखारविन्द के दर्शन के समान ही, प्राचीन काल में प्रजा के लिए राजा के मुख का दर्शन, भव्य, दिव्य तथा कल्याणकारी माना जाता था। यहाँ प्रासंगिक होने के कारण निम्नांकित तथ्य का उल्लेख करना नितान्त आवश्यक तथा समीचीन है।

## १. देखिए—भोजपुरी लोक-संस्कृति में जलेबी का वर्णन।



इस मुख-दर्शन के प्रसंग में महाकवि कालिदास ने रघुवंश में एक लम्पट तथा विलासी राजा अग्निवर्ण के विचित्र चरित्र का चित्रण किया है। वह राजा इतना विलासी था, रास-रंग में, नाच-गान में वह इतना डूबा रहता था कि इन्द्रियों के विषयों से रहित, किसी भी क्षण को, सहन करने में नितान्त असमर्थ था। दिन-रात महल में बिहार तथा भोगविलास करने के कारण उसके दर्शन के लिए विशेष रूप से उत्सुक तथा लालायित अपनी प्रजा की वह कभी चिन्ता नहीं करता था। परन्तु मंत्रियों के दूढ़ आग्रह को वह टाल भी नहीं सकता था। तब वह खिड़की के छिद्रों के मार्ग से अपने एक पैर को लटका कर प्रजा को दर्शन देता था। अर्थात् वह अपना मुँह न दिखला कर केवल अपने 'पैर का दर्शन देकर प्रजा के मांगलिक कार्य को सम्पन्न करता था।

“गौरवात् यदपि जातु मंत्रिणां;  
दर्शनं प्रकृति-काक्षितं ददौ।  
तद् गवाक्षविवरावलम्बिता,  
केवलेन चरणेन कल्पितम्॥”  
रघुवंश १९।७

नाना प्रकार की व्यावहारिक वस्तुओं के रूप-रंग, आकार-प्रकार आदि का विस्तृत वर्णन होने के साथ ही यह पुस्तक साहित्यिक सौन्दर्य से मण्डित है। विवरण की सरसता के कारण यह नितान्त रोचक, आकर्षक तथा आवर्जक है। इसकी भाषा सहज, सुन्दर तथा स्निग्ध है। भोजपुरी लोक-गीतों के प्रभूत उद्धरणों से विभूषित होने के कारण, यह प्रामाणिक तथा कम्पनीय है। स्थान स्थान पर संस्कृत कविता के उद्धरण के कारण इसकी रोचकता में असाधारण वृद्धि हो गई है। यहाँ एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा।

कोई नव विवाहिता बधू अपनी सास तथा ननद के व्यवहार की कटुता का वर्णन इस श्लोक में बड़े ही व्यंग्यपूर्ण परन्तु सुन्दर शब्दों में कर रही है।

“श्वश्रूः पश्यति नैव, पश्यति यदि भ्रूभंगवक्रक्षणा;  
मर्मच्छेदपटुः प्रतिक्षणमसौ; ब्रूते ननान्दावचः।  
अन्यासामपि किं ब्रवीमि चरितं, स्मृत्वा मनो वेपते;  
कान्तःस्निग्धदृशा विलोकयति मामेतावदागः सखि॥”

संक्षेप में मेरी यह मान्यता है कि कृष्णदेव जी ने इस ग्रन्थ में अपनी संग्राहक वृत्ति के साथ ही साथ, अपने मौलिक चिन्तन का भी स्वरूप इस ग्रन्थ में भलीभाँति दर्शाया है। इस पुस्तक के सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक विषयों के विवेचन में अपने गंभीर अध्ययन का प्रदर्शन पदे-पदे किया है। फलस्वरूप “भोजपुरी लोक-संस्कृति” के इस भव्य महाभारत के प्रस्तुतकर्ता के रूप में लोक-साहित्य तथा संस्कृति के विवेचक तथा मान्य विद्वान्, इनका सदा स्मरण करते रहेंगे तथा ‘भोजपुरी लोक-संस्कृति’, ऐसे विद्वत्तापूर्ण विश्वकोश के निर्माण के निमित्त इनका आभार हृदय से स्वीकार करेंगे। अन्त में मेरी यही कामना है कि यह ग्रन्थ लेखक की कीर्ति को अमर बनाने में सहायक सिद्ध हो एवमस्तु। तथास्तु।

“ग्रन्थस्यैषा शुभाशंसा,  
न्यूनता पूर्तिकारिणी।  
नूतनतथैः समाकीर्णा;  
विद्वन्मोदाय जायताम्॥”

मौनी अमावस्या सं० २०४५ वि०

६।२।१९८९ ई०, वाराणसी

—बलदेव उपाध्याय  
(पद्मभूषण, आचार्य)



## भूमिका

००

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय लोक-वार्ता के क्षेत्र में आजीवन निष्ठापूर्वक सेवा करते रहे हैं और उनके जैसे तपोवृद्ध, ज्ञान-वृद्ध व्यक्ति मुझसे कहें कि भूमिका लिख दें, यह मेरे लिए बहुत ही संकोच की बात है। परन्तु वे बड़े हैं, उनकी बात टाल भी नहीं सकता। इससे कुछ पंक्तियाँ उनकी नयी पुस्तक “भोजपुरी लोक-संस्कृति” के विषय में लिख रहा हूँ।

Bihar  
Peasant  
Life

स्व० सर जार्ज ग्रियर्सन ने ‘विहार पीजेण्ट लाइफ’ में भोजपुरी, मगही, मैथिली जीवन और उसमें प्रयुक्त समृद्ध शब्दावली का सर्वेक्षणात्मक अध्ययन करके बड़ा उपकार किया है कि भारतीय लोक-जीवन और विशेषतः पूर्वी क्षेत्र के लोक-जीवन के विविध पक्षों की ओर विद्वानों का ध्यान गया और इसमें निहित सांस्कृतिक-भाषिक तत्त्वों की खोज को शोध के क्षेत्र में प्रतिष्ठा मिली।

लोक-गीतों के संकलन के मार्ग-दर्शन का कार्य स्व० पं० रामनरेश त्रिपाठी ने किया था। लोक-गीतों में निहित सहज माधुर्य और सूक्ष्म मानवीय संवेदना की ओर उन्होंने ध्यान आकृष्ट किया। इनके बाद तो लोकवार्ता के संकलन की लम्बी, अनवच्छिन्न परम्परा हिन्दी में चली, साथ ही लोक-भाषाओं में वैज्ञानिक अध्ययन की भी। भोजपुरी क्षेत्र में स्व० उदयनारायण तिवारी, स्व० महाराजकुमार दुर्गाशंकर सिंह, स्व० हंस कुमार तिवारी, स्व० महापण्डित राहुल सांकृत्यायन और स्व० स्वामी नाथ सिंह ने अलग-अलग ढंग से इस काम को गरिमामय स्तर तक पहुँचाया। इसी शृंखला में आज श्री गणेश चौबे और डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय जैसे अध्येता इस लोक संजीवनी धारा को प्रगति प्रदान कर रहे हैं। भोजपुरी समाज इनका चिर ऋणी रहेगा।

“भोजपुरी लोक-संस्कृति” ग्रन्थ में एक प्रकार से विश्वकोशात्मक विवरण है जिसमें जीवन के सभी पक्षों का—आस्थाओं, विश्वासों, रीति-रिवाजों, पर्वो-उत्सवों, दैनन्दिन और नैमित्तिक अनुष्ठानों; खान-पान, रहन-सहन, हास-परिहास, मनोरंजन के साधनों, शृंगार-प्रसाधन, रिश्तों के तानों-बानों, सामाजिक व्यवस्था की बुराइयों और अच्छाइयों—सब बात पर इतने संक्षेप में और इतनी स्पष्टता के साथ विवरण रोचक ढंग से दिया गया है। यहाँ तक कि निषिद्ध या वर्जित वस्तुओं का विवरण और आसपास की प्रकृति के प्रति मानवीय प्रतिक्रिया का विवरण भी बड़े सटीक ढंग से दिया गया है।

यह अवश्य है कि विवरण में कुछ छूट गया हो। क्योंकि यह एक व्यक्ति का किया गया काम है और सर्वोत्तम ही लक्ष्य हो सकता है। परन्तु सर्वोत्तम के पीछे उत्तम कार्य को टालना ठीक नहीं होता।

आदरणीय उपाध्याय जी ने उत्तम कार्य किया है। इन्होंने तथ्यों को इस तरह से वर्गीकृत और सुसंबद्ध रूप में रखा है कि भोजपुरी लोक-संस्कृति का समग्र चित्र सामने उपस्थित हो जाता है। इस प्रकार यह बहुत बड़ा अवदान है लोकवार्ता के अध्ययन-क्षेत्र में।

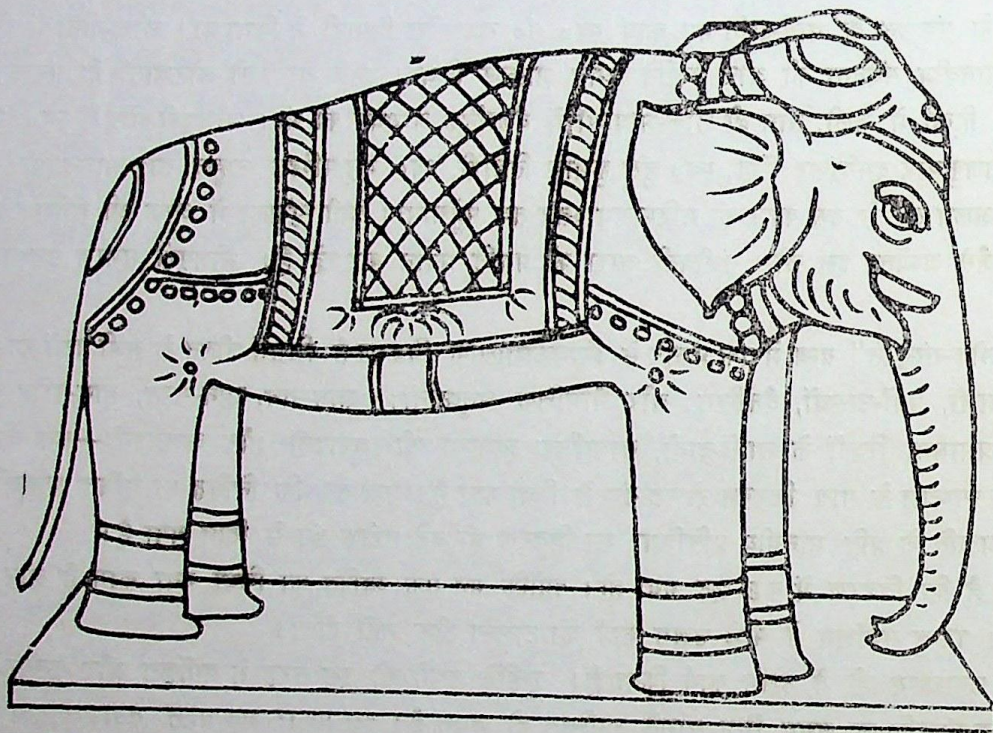
संस्कृति की पहिचान समग्रता में ही होती है। वह समग्रता खण्डों में नहीं पहिचानी जाती। प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्ययन से समग्र दृष्टि से लोक-संस्कृति को पहिचानने के लिए प्रामाणिक आधार मिलेगा। उपाध्याय जी ने देश की सांस्कृतिक परम्परा से, बीच-बीच में, अपने विवरणात्मक तथ्यों को जोड़ने का प्रयास भी किया है। परन्तु उनका अधिक ध्यान विवरण देने पर है। विवरण की प्रयोजन-मीमांसा पर नहीं है। परन्तु एक ग्रन्थ में यह संभव भी नहीं है।

मैंने इस ग्रन्थ को आद्यन्त पढ़ कर बहुत-सी नयी बातें सीखी हैं। यह भी लगा है कि मेरे निजी अनुभव-संसार की बहुत सारी चीजें छूट गयी हैं। पर लोक बड़ा विस्तृत है और भोजपुरी-लोक बड़ा विविध भी है। इसमें इतने सामाजिक और प्रतिष्ठित स्तरों की संसृष्टि है कि पूरा विवरण तैयार करने के लिए और विवरणों की साभिप्रायता का विवेचन करने के लिए, कम से कम बीसेक लोगों की टोली लगे और तब दस पन्द्रह वर्षों में यह विश्वकोश तैयार होगा। अकेले एक आदमी ने, एक ऐसे कोश का प्रारूप, अपने अकेले बल पर तैयार किया है, यह आश्चर्य है और इस कारण इस ग्रन्थ की जितनी भी प्रशंसा की जाय, कम होगी। ●

—विद्यानिवास मिश्र

वाराणसी जेष्ठ सुदी ३, २०४६ वि०, ६/६/१९८९ ई०







## लेखक का वक्तव्य

० ०

### (१) प्रस्तावना

आज से पचास वर्ष पहिले जब मैंने अपने साहित्यिक जीवन को भोजपुरी लोक-साहित्य की में सेवा में अर्पित कर देने का निश्चय किया था, तब मैंने अपने मन में यह योजना बनायी थी कि इस साहित्य की विविध विधाओं का संकलन, सम्पादन तथा प्रकाशन करूँगा। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी दिशा में एक विनम्र प्रयास है। भोजपुरी लोक-साहित्य की विभिन्न विधाओं में लोक-गीत, लोक-गाथा, लोक-कथा, लोक-नाट्य, लोक-संगीत और लोक-सुभाषित का समावेश होता है। इनमें से भोजपुरी लोक-गीतों के हजारों गीतों का संग्रह तथा सम्पादन दो बृहत् भागों में आज से अनेक वर्ष पूर्व, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है। इसका तीसरा भाग भोजपुरी अकादमी, पटना (बिहार) से अभी कुछ वर्ष हुए प्रकाशित हुआ है। इसी तीसरे भाग के साथ भोजपुरी की प्रधान लोक-गाथायें भी प्रकाश में आ चुकी हैं।

लोक-संगीत, लोक-गीतों का प्राण-तत्त्व है। बिना इसके, गीतों के गाने की पद्धति का कुछ पता नहीं चलता। इसलिए 'भोजपुरी लोक-संगीत' के नाम से एक पुस्तक का मैंने सम्पादन किया है जिसमें पचास प्रकार (टाइप) के लोक-गीतों की स्वरलिपि (नोटेशन) प्रस्तुत की गई है।

लोक-कथाओं का विशाल संकलन मैंने किया है जिनका एक भाग सुसम्पादित होकर प्रकाशन की प्रतीक्षा कर रहा है। लोक-सुभाषितों के अन्तर्गत लोकोक्तियों तथा पहेलियों का भी सम्पादन हो चुका है जिसमें वैदिक साहित्य से लेकर आज तक इन दोनों ही विधाओं की उत्पत्ति तथा विकास पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है।

“भोजपुरी साहित्य का इतिहास” नामक पुस्तक—जिसका प्रकाशन १९७० ई० में लोक-संस्कृति शोध-संस्थान, वाराणसी से हुआ था—में भोजपुरी के सन्तों तथा कवियों का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इन कवियों के जन्म संवत्, जन्म स्थान तथा उनकी पुस्तकों को प्राप्त करने में विशेष प्रयास करना पड़ा है। भोजपुरी के आधुनिक-नवीन कवियों का वर्णन करके इस ग्रन्थ को यथासंभव पूर्णता प्रदान की गई है। भोजपुरी लोकनाट्य विदेसिया का विशेष वर्णन “भोजपुरी और उसका साहित्य” नामक एक लघु पुस्तिका में किया गया है। इस प्रकार भोजपुरी लोक-साहित्य-संबंधी विविध विधाओं पर प्रामाणिक पुस्तकों का निर्माण करके इस साहित्य को समृद्ध बनाने का प्रयास प्रस्तुत किया जा चुका है।

### (२) इस ग्रन्थ की आवश्यकता

भोजपुरी लोक-साहित्य की प्रायः प्रत्येक विधा पर ग्रन्थ लिखने के पश्चात्, भोजपुरी प्रदेश की विशाल तथा विराट् लोक-संस्कृति के सम्बन्ध में किसी पुस्तक का अभाव खटक रहा था। हिन्दी अथवा अंग्रेजी में आज भी ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिसमें जन-जीवन तथा लोक-संस्कृति का वर्णन किया गया हो। भोजपुरी लोगों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, प्रथा, संस्कार, खान-पान, वेशभूषा, अलंकार-प्रसाधन आदि बड़े ही समृद्ध हैं। इसके साथ ही इनकी आर्थिक दशा में बड़ा परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इनका धार्मिक जीवन बड़ा ही सरल है जिसके अन्तर्गत अनेक देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। इन लोगों का दार्शनिक जीवन भी रोचक है जिसमें कर्मवाद और भाग्यवाद का अद्भुत सामंजस्य उपलब्ध होता है। ऐसी दशा में, एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता का नितान्त अनुभव हो रहा था जिसमें उपर्युक्त विषयों का विशिष्ट तथा प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत किया गया हो। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए इस ग्रन्थ का निर्माण किया गया है।

भोजपुरी लोक-संस्कृति का क्षेत्र बड़ा ही व्यापक तथा विशाल है। उत्तरप्रदेश तथा बिहार में फैले हुए भोजपुरी भाइयों की रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, खेल-कूद में विविधता होते हुए भी एकता पायी जाती है। पुत्र-जन्म, जेऊ, विवाह और मृत्यु सम्बन्धी संस्कारों के अवसर पर विविध प्रकार के अनेक विधि-विधानों का सम्पादन किया जाता है। परन्तु अद्यावधि इन विविध विधानों को लिपिबद्ध नहीं किया जा सका है। इनके संबंध में ऐसा कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिससे इनके विषय में समुचित जानकारी प्राप्त की जा सके।



इसी प्रकार भोजपुरी समाज में स्त्रियों की क्या दशा है, उनके अधिकार और कर्तव्य क्या हैं, संयुक्त भोजपुरी परिवार के सदस्यों का आपस में कैसा संबंध है आदि विषयों—जिनका संबंध समाजशास्त्रीय अध्ययन से है—के बारे में यदि कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहें तो वहाँ भी केवल निराशा ही हाथ लगेगी। किम्बहुना, यदि भोजपुरी लोगों के खान-पान तथा वेशभूषा के विषय में जानना, चाहे कुछ अध्ययन की आवश्यकता या इच्छा हो, तो इस विषय में भी निराशा ही होना पड़ेगा।

ऐसी परिस्थिति में इन सभी अभावों की पूर्ति के लिए विद्वानों तथा सर्वसाधारण जनता को भोजपुरी लोक-संस्कृति से परिचित कराने के लिए ही इस ग्रन्थ को लिखने की आवश्यकता का अनुभव हुआ और इसके फलस्वरूप यह पुस्तक पाठकों के सन्मुख उपस्थित है।

इस विशालकाय ग्रन्थ के प्रणयन के सम्बन्ध में यही कहना चाहता हूँ जिस प्रकार मधुमक्षिका अनेक सुन्दर फूलों का रस लेकर 'छाता' या मधु कोश (Bee hive) तैयार करती है और जिसका आस्वाद लेकर लोग आनन्द का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार हिन्दी-अंग्रेजी और संस्कृत के ग्रन्थों का मन्थन करके, उनके अध्ययन तथा मनन करने से जो ज्ञानरूपी अमृत-विन्दु प्राप्त हुए हैं उन्हीं का इस ग्रन्थ में 'संकलन' किया गया है। अतः आशा है कि विद्वानों को, विशेष कर समाजशास्त्रियों को इस ग्रन्थ को पढ़कर ज्ञान की प्राप्ति होगी तथा साधारण जनता को भी आनन्द प्राप्त होगा।

बाणभट्ट के सुयोग्य पुत्र के समान मैं भी यह कह सकता हूँ कि एक महती आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही इस ग्रन्थ का निर्माण किया गया है। केवल अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करने के लिए बिल्कुल नहीं।

“प्रारब्ध एव हि भया, न कवित्व-दर्यात्।”

### (३) प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखन की योजना

प्रस्तुत ग्रन्थ में दो खण्ड तथा २० अध्याय हैं। प्रथम खण्ड में १४ अध्याय हैं जो भोजपुरी प्रदेश के सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। द्वितीय खण्ड—जो समाज से इतर विषयों से सम्बन्धित हैं—प्रथम खण्ड में छः अध्याय हैं जिनमें भोजपुरी प्रदेश के आर्थिक, धार्मिक, तथा दार्शनिक जीवन की मीमांसा की गई है। प्रत्येक अध्याय अनेक परिच्छेदों में विभक्त किया गया तथा प्रत्येक परिच्छेद को भी अनेक अनुच्छेदों में विभाजित कर उस विषय का सांगोपांग विवेचन किया गया है। उदाहरण के लिए अध्याय ५ को लिया जा सकता है जिसमें छः परिच्छेद हैं। इनमें विभिन्न संस्कारों का विवेचन प्रस्तुत है। इस अध्याय के चौथे परिच्छेद—विवाह को ५ अनुच्छेदों में विभक्त कर विवाह के सम्बन्ध में होने वाले विविध कार्य-कलापों—जैसे तिलक के चौथे परिच्छेद—विवाह को ५ अनुच्छेदों में विभक्त कर विवाह के सम्बन्ध में होने वाले विविध कार्य-कलापों—जैसे तिलक, देहज, विवाह की तैयारी, बारात का आना, सुमंगली—आदि का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार २ खण्डों, २० अध्यायों, अनेक परिच्छेदों तथा अनुच्छेदों में विभक्त इस ग्रन्थ को भोजपुरी लोक-संस्कृति का विश्वकोष ही समझना चाहिए। महाभारत की भाँति इस ग्रन्थ में १८ प्रधान अध्याय हैं जिनमें भोजपुरी-संस्कृति का प्रचुर वर्णन प्रस्तुत है।

### (४) ग्रन्थ का वर्ण्य विषय

इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में संस्कृति के स्वरूप पर विचार किया गया है। संस्कृति शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए शिष्ट-संस्कृति तथा लोक-संस्कृति के पार्थक्य को स्पष्ट किया गया है।

प्रथम अध्याय का वर्ण्य विषय वर्ण और आश्रम हैं। भोजपुरी प्रदेश में प्राप्त विभिन्न प्रकार के ब्राह्मणों का वर्णन करने के पश्चात्, ब्राह्मणों की विशेषताओं तथा उनके चरित्र का भी परिचय दिया गया है। क्षत्रिय तथा वैश्यों की चर्चा के बाद इस क्षेत्र को छः हरिजन जातियों के भेद तथा उनके पृथक्-पृथक् कार्यों का उल्लेख किया गया है।

आश्रम के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, बाणप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों का विवेचन कर अन्तिम दो आश्रमों के ह्रास की ओर प्रवृत्ति दिखलाई गई है।

अध्याय दो में भोजपुरी लोक-साहित्य में स्त्रियों की दशा का चित्रण प्रस्तुत है। पुत्री, पत्नी तथा माता के रूप में स्त्री का चित्रण करने के पश्चात् वन्ध्या विधवा तथा कुलटा स्त्रियों के चरित्र पर भी प्रकाश डाला गया है। लुबुकी, लबर-लच्छनी तथा फूहड़ स्त्रियाँ भोजपुरी समाज की विशेषता हैं। अतः इनके चरित्र की भी चर्चा की गई है। भोजपुरी क्षेत्र की पति-परायणा साध्वी स्त्री, “सीजर की स्त्री” की भाँति सन्देह से परे होती है तथा अपने आदर्श सतीत्व और पति-सेवा के लिए संसार में अपना सानी नहीं रखती। अतः उसके पावन तथा आदर्श चरित्र को विशेष रूप से उजागर करने का प्रयत्न किया गया है।



तृतीय अध्याय में “भोजपुरी परिवार का संगठन” विषय पर प्रकाश डाला गया है। भोजपुरी संयुक्त परिवार में ४० (चालीस) सदस्य होते हैं और रिश्तेदार या सम्बन्धियों की संख्या ३६ (छत्तीस) होती है जिनका नामना उल्लेख किया गया है। संयुक्त परिवार के गुण-दोषों का विवेचन भी इस अध्याय में उपलब्ध होता है।

चतुर्थ अध्याय का वर्ण्य विषय “संयुक्त परिवार के सदस्यों में पारस्परिक सम्बन्ध” है जिसमें इस परिवार के सदस्यों के सम्बन्ध को मधुर तथा कटु इन दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है। मधुर सम्बन्धों में भाई-बहिन का स्वाभाविक तथा अकृत्रिम प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ दिखाई पड़ता है। यह आश्चर्य का विषय है कि भाई और बहिन का ऐसा दिव्य तथा स्वर्गीय प्रेम संस्कृत-साहित्य में भी नहीं दिखाई पड़ता। कटु सम्बन्धों में सास-पतोह, ननद-भावज और सौत-सौत का पारस्परिक सम्बन्ध कटुता की उच्चता पर दृष्टिगोचर होता है। इन सम्बन्धों के प्रतिपादन में भोजपुरी लोकगीतों का उदाहरण देकर इनकी पुष्टि की गई है।

पंचम अध्याय में संस्कारों का प्रतिपादन किया गया है। यों तो संस्कारों की संख्या १६ मानी जाती है परन्तु भोजपुरी समाज के केवल छः संस्कारों का वर्णन लोकगीतों में उपलब्ध होता है। इन संस्कारों में पुत्र-जन्म तथा विवाह और मृत्यु अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। पुत्र-जन्म तथा विवाह के अवसर पर अनेक विधि-विधान किये जाते हैं जिनका प्रामाणिक वर्णन यहाँ किया गया है। विवाह के अन्तर्गत किये जाने वाले अनेक विधानों का विस्तृत वर्णन यहाँ सबसे प्रथम बार उपलब्ध होता है।

षष्ठ अध्याय का विषय प्रथाएँ हैं जिनमें पर्दे की प्रथा, तिलक-दहेज, छूआ-छूत तथा अनमेल विवाह का वर्णन किया गया है। इन प्रथाओं में पर्दा की प्रथा भोजपुरी समाज में विशेष रूप से प्रचलित है। संभवतः इस सम्पूर्ण देश में भोजपुरी प्रदेश अर्थात् पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा पश्चिमी बिहार को छोड़कर—पर्दा की प्रथा भारत में किम्वा संसार में इस रूप में कहीं नहीं पायी जाती है। यहाँ स्त्रियाँ पुरुषों की तो बात दूर रही, अपने घर की स्त्रियों से भी पर्दा करती हैं। यहाँ छुआछूत की प्रथा भी अपने उत्कर्ष पर दिखाई पड़ती है। “तीन कनौजिया तेरह चूल्हा” की लोकोक्ति यहाँ ही पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। गायढार की प्रथा को इस प्रदेश की विशेषता समझनी चाहिए। यह प्रथा संभवतः अन्यत्र नहीं है। वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह तथा विधवा-विवाह पर प्रकाश डालकर इस अध्याय को समाप्त किया गया है।

सप्तम अध्याय में इस प्रदेश में प्रचलित खान-पान का वर्णन किया गया है। पहिले खाद्य-पदार्थों को पाँच श्रेणियों में विभक्त कर प्रत्येक के अन्तर्गत आने वाले विविध भोज्य, चर्व्य, तथा पेय पदार्थों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है। भोज्य पदार्थों के अन्तर्गत चावल के प्रकार, भात बनाने, भात परोसने तथा भात खाने की विधि का रोचक वर्णन है। अचार तथा चटनी के प्रसंग में अचार के विविध प्रकारों तथा चटनियों का उल्लेख पाया जाता है। गेहूँ से बनने वाले विशिष्ट भोजपुरी भोजनों में मकुनी, फूटेहरी, बाटी और लिट्टी का विवरण दिया गया है। मिष्ठानों में टिकरी, जलेबी, गाटा और कुटकी का उल्लेख हुआ है जो ठेठ भोजपुरी हैं।

आठवें और नवें अध्याय का वर्ण्य-विषय क्रमशः वेशभूषा तथा आभूषण है। वेशभूषा के प्रसंग में स्त्री तथा पुरुषों के पहिनावे का वर्णन करने के अतिरिक्त, विवाह आदि विशेष अवसरों पर पहिने जाने वाले कपड़ों का भी विवरण दिया गया है। आभूषण वाले अध्याय में स्त्रियों द्वारा सिर से पाँव तक पहिने के विविध गहनों का विवरण देने के पश्चात् आजकल के नये फैशन में गहनों पर भी प्रकाश डाला गया है। पुराने फैशन के आभूषण आजकल प्रयोग में नहीं लाये जाते। उनका स्थान अब नये ढंग (फैशन) के गहनों ने ले लिया है। इन दोनों ही प्रकार के आभूषणों का तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है।

दशम अध्याय में “अलंकरण तथा प्रसाधन के साधनों” पर प्रकाश डालने का नम्र प्रयास किया गया है। भोजपुरी क्षेत्र की स्त्रियों का जीवन बड़ा सरल तथा चाकचिक्य से रहित है। अतः यहाँ जो अलंकरण तथा प्रसाधन की वस्तुएँ प्रयोग में लाई जाती हैं वे सस्ती तथा सुलभ होती हैं। वे बड़ी आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं।

एकादश अध्याय में भोजपुरी लोककला की प्रस्तुति हुई है। इस अध्याय में वास्तुकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला का विशेष रूप से वर्णन है। भोजपुरी जीवन लोक-कला से विहीन नहीं है। विवाह के अवसर पर अल्पना बनाना तथा कोहबर-घर में भित्तिचित्रों का निर्माण, इस विषय का प्रचुर प्रमाण है। किम्बहुता, महावर तथा मेंहदी लगाने एवं गोदना गोदवाने में भी लोक-कला का दर्शन होता है। वास्तुकला के अन्तर्गत कच्चे, पक्के घरों की बनावट का वर्णन है। कच्चे घरों के बनाने में धरनि, खम्भा, लरही, फरठा आदि वस्तुओं का प्रयोग होता है। इस विषय का वर्णन इस पुस्तक में पहिली बार ही किया गया है। यद्यपि डॉ० ग्रियर्सन ने अपने ‘बिहार पीजेण्ट लाइफ’ ग्रन्थ में इन वस्तुओं का उल्लेख अवश्य किया है परन्तु इनका क्या उपयोग होता है तथा इनका आकार-प्रकार कैसा होता है इस विषय का उल्लेख वहाँ नहीं पाया जाता। अतः जिज्ञासुओं के लिए इस अध्याय में अनेक उपयोगी बातें प्राप्त हो सकती हैं।



इस ग्रन्थ का द्वादश अध्याय लोक-विश्वास से सम्बन्धित है। इस अध्याय को जम कर लिखा गया है। प्रथमतः लोक-विश्वास को छः श्रेणियों में विभाजित किया गया है। लोक-विश्वास का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि मानव जीवन का कोई भी अंग इससे अछूता नहीं है। मनुष्य के जीवन में विभिन्न ग्रहों, राशियों का भी विशेष स्थान है। शनि, मंगल तथा राहु आदि ग्रहों के विपरीत होने पर मनुष्य को कष्ट भोगना पड़ता है यह एक सामान्य विश्वास है। शनिग्रह की साढ़ेसाती तो प्रसिद्ध ही है।

पशु और पक्षियों की गतिविधि से भी शकुन या अपशकुन का ज्ञान प्राप्त होता है। विभिन्न अवस्था में पशुओं का दिखाई पड़ना शुभ तथा अशुभ का कारण होता है। जैसे दूध पिलाती गाय का दर्शन शुभ तथा गदहे का दिखाई पड़ना अशुभ है।

इसी प्रकार से शरीर के विभिन्न अंगों—जैसे हाथ और आँख के संचालन तथा स्फुरण से भी शुभाशुभ का अनुमान होता है। यात्रा और स्वप्न सम्बन्धी लोक-विश्वासों पर भी प्रकाश डाला गया है। यात्रा में दिन, ग्रह, नक्षत्र तथा दिशा-शूल आदि का विचार किस प्रकार किया जाता है इसका भी उल्लेख हुआ है। कहने का आशय यह है कि लोक-विश्वास का जितना सांगोपांग तथा विस्तृत वर्णन यहाँ जिस प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत है उतना अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

लोक-विश्वास वाले अध्याय के आठवें परिच्छेद में, निषेध (टैबू, Taboo) का जो वर्णन किया गया है वह सर्वथा नवीन तथा मौलिक है।

त्रयोदश अध्याय में मनोरंजन के साधनों का विवेचन किया गया है। इस क्षेत्र में, घर में तथा बाहर मैदान में खेले जाने वाले अनेक खेल, प्रचलित हैं। उन्हीं का वर्णन कुछ विस्तार के साथ यहाँ प्राप्त है। भोजपुरी प्रदेश में प्रचलित खेल सस्ते तथा सुलभ हैं तथा इन्हें निर्धन मनुष्य भी आसानी से खेल सकता है। परन्तु दुःख है कि पाश्चात्य देशों के खेल-फुटबाल, क्रिकेट और हाकी के सामने इन खेलों का प्रचलन कम होता जा रहा है। ग्रामीण भजनमण्डली के द्वारा रामायण का गायन तथा दूरदर्शन के आगे अब रामलीला का प्रचार कम हो गया है।

चतुर्दश अध्याय का वर्ण्य-विषय लोक-औषधि है। ग्रामीण लोग डाक्टर की सहायता के बिना गाँवों में उपलब्ध औषधियों के द्वारा किस प्रकार आरोग्य लाभ करते हैं इसका वर्णन इस अध्याय में उपलब्ध है। गाँवों में होने वाले प्रधान रोगों की संख्या प्रायः ३६ है जिनमें कुछ तो केवल विश्वास के बल से (Faith cure) ठीक हो जाते हैं परन्तु कुछ रोगों के लिए औषधि भी दी जाती है। यह दवा गाँवों में मिलने वाली जड़ी-बूटी होती है। इस तरह यह लोक औषधि सस्ती तथा सर्वत्र सुलभ है।

पंचदश अध्याय में भोजपुरी जनता के आर्थिक जीवन का वर्णन उपलब्ध होता है। भोजपुरी क्षेत्र में (चालीस) प्रकार की पेशेवाली जातियाँ पायी जाती हैं जो विभिन्न प्रकार का व्यवसाय करके अपने उदर की पूर्ति करती हैं। इन जातियों के व्यवसाय पर प्रकाश डालकर इनके स्वभाव, चरित्र तथा जीवन के सम्बन्ध में प्रचलित लोकोक्तियों का भी उल्लेख किया गया है। अहीरों के स्वभाव और चरित्र के सम्बन्ध में ऐसी अनेक लोकोक्तियाँ उपलब्ध होती हैं; जिनसे उनके आचरण पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त भूमि के प्रकार, गाँवों में प्रचलित विभिन्न प्रकार के बाँट और मापों का उल्लेख है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् दसमलव प्रणाली के मापों, बाटों तथा सिक्कों का अब प्रचलन हो गया है। ऐसी स्थिति में इन पुराने बाटों और सिक्कों का वर्णन अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। कुछ दिनों के पश्चात् गाँवों में कभी प्रचुर रूप में प्रचलित सेर और छटाँक अतीत की वस्तु बन जायेगा।

षोडश अध्याय में धार्मिक जीवन का विवेचन किया गया है। गाँवों में अनेक लोक-देवी और लोक-देवता प्रचलित हैं जिनकी पूजा सर्वसाधारण जनता बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ किया करती है। जैसे हनुमान्, गणेश, काली मइया आदि। इनके अतिरिक्त हिन्दू देवता-मण्डल (Pantheon) में अनेक नवीन देवियों की उत्पत्ति हो गई है जिनकी पूजा का प्रचार आज सर्वाधिक है जैसे संतोषी माता, खोखी मइया तथा पिलेग मइया।

भोजपुरी प्रदेश में अनेक प्रेत-योनियाँ भी उपलब्ध होती हैं जिनकी सत्ता तथा प्रभुता के संबंध में लोगों का अटूट विश्वास है। जैसे भूत, प्रेत, पिशाच तथा राक्षस आदि। इन नीच योनियों (evil spirits) की कुल संख्या १६ है। ये क्रुद्ध होने पर मनुष्यों को कष्ट देने में समर्थ हैं।

इस अध्याय में इन योनियों का बड़ा ही विस्तृत, सांगोपांग तथा प्रामाणिक वर्णन उपस्थित करने का सफल प्रयास किया गया है। जैसे भूतों का वर्णन करते समय भूतों के लक्षण, भूतों का भोजन तथा निवास, इनके भगाने के उपाय, इनके विभिन्न प्रकार आदि का वर्णन सबसे पहिली बार हिन्दी में उपलब्ध है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है संस्कृत में भी इन प्रेत-योनियों



का विस्तृत वर्णन कहीं उपलब्ध नहीं है। ऐसी दशा में हिन्दी में इनके विषय में कुछ सामग्री प्राप्त करना केवल मृग-मरीचिका ही नहीं, असंभव सा प्रतीत होता है। इस परिस्थिति में वर्तमान लेखक का यह दावा है कि इन प्रेत योनियों का यह प्रामाणिक वर्णन नितान्त मौलिक है। यह वर्णन हिन्दी में सर्वप्रथम ही उपलब्ध होता है। अतः इस दिशा में यह विस्तृत तथा प्रामाणिक विवेचन नवीन उपलब्धि ही समझनी चाहिए।

सप्तदश अध्याय में दार्शनिक जीवन का वर्णन हुआ है। भोजपुरी जनता कर्मवाद, भाग्यवाद और जन्मान्तरवाद में विश्वास रखती है। भोजपुरिया व्यक्ति अत्यन्त कर्मठ होते हुए भी भाग्यवाद में अटूट आस्था रखता है। उसके जीवन का महामंत्र यह सूक्ति है:—

“होइहें जो राम रचि राखा।  
को करि तर्क बढ़ावे साखा॥”

इसी मंत्र के आधार पर वह अपने दैनिक जीवन का परिचालन करता है।

अष्टादश अध्याय का विषय “भोजपुरी लोक-संस्कृति का बदलता स्वरूप” है। पाश्चात्य शिक्षा तथा सभ्यता के प्रभाव के कारण, भोजपुरी प्रदेश के जीवन में महान् परिवर्तन आ गया है। यह परिवर्तन सामाजिक जीवन के अतिरिक्त धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक किम्बहुना दार्शनिक जीवन में भी प्रवेश कर गया है। सामाजिक जीवन के अन्तर्गत वेशभूषा, भोजन-छाजन, रीतिरिवाज, अलकरण-प्रसाधन, खेलकूद, संस्कार आदि का समावेश होता है। इन सभी क्षेत्रों में परिवर्तन हो गया है। उदाहरण के लिए खेलों को लिया जा सकता है। अब कबड्डी और गुल्ली डण्डा का स्थान क्रिकेट, फुटबाल और हाकी ने ले लिया है। धार्मिक जीवन में विशेष परिवर्तन परिलक्षित होता है। नवयुवकों की अब देवी-देवताओं में न तो आस्था है और न भक्ति। दार्शनिक क्षेत्र में भी इसका चंचु-प्रवेश हो गया है। यह नितान्त परिताप का विषय है।

उनविंशति (उन्नीसवें) अध्याय में भोजपुरी लोगों के स्वभाव और चरित्र का विवेचन प्रस्तुत है। भोजपुरिया स्वभाव से ही स्पष्टवादी होता है। वह लाग-लपेट वाली बातें करना नहीं जानता। वह केवल स्पष्ट बात करना जानता है। उसे बात बनाने नहीं आता। इसी स्पष्ट स्वभाव के कारण वह वन्चक नहीं है। वह किसी को धोखा नहीं दे सकता और न किसी से धोखा खाना वह जानता है। वह बल, पौरुष में विश्वास करता है। इसीलिए लाठी में उसकी अटूट आस्था विद्यमान है। डॉ० प्रियर्सन ने अपनी पुस्तक ‘भारत का भाषा सर्वे’ में इन भोजपुरियों के स्वभाव तथा चरित्र का बड़ा विशद तथा यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया है। भोजपुरी लोगों की इसी चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन करना इस अध्याय का विषय है। लोकोक्तियों तथा कथाओं का दृष्टांत देकर इन लोगों के इस स्वभाव तथा चरित्र की विशेषता यहाँ वर्णित है जिससे पता चलता है कि भोजपुरिया कितना कर्मठ चरित्रवान् तथा साहसिक होता है।

बीसवें अध्याय में उपसंहार किया गया है। इस पुस्तक के अन्त में तीन परिशिष्ट भी दिये गये हैं जो निम्न है—

- (१) संशोधन तथा परिवर्धन।
- (२) सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची।
- (३) अनुक्रमणिका।

इस प्रकार दो खण्डों तथा बीस (२०) अध्यायों में भी भोजपुरी लोक-संस्कृति का यह विश्वकोश अपनी परिपूर्णता को प्राप्त करता है।

#### (५) विशिष्ट निवेदन

इस ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में “भोजपुरी लोक-साहित्य में स्त्रियों का चित्रण” किया गया है। इस सम्बन्ध में भोजपुरी समाज में पाये जाने वाली सती तथा कुलटा दोनों ही प्रकार की स्त्रियों का उल्लेख हुआ है। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि भोजपुरी स्त्रियाँ गंगा के जल के समान पावन तथा पवित्र एवं हिम-राशि के समान निष्कलंक तथा शुभ्र हैं।

इस अध्याय में भोजपुरी लोक-साहित्य में भोजपुरी स्त्रियों का जैसा स्वरूप उपलब्ध होता है उसी का चित्रण ह-ब-हू उसी रूप में किया गया है। अपने प्रत्येक कथन को लोक-गीतों की पंक्तियों को उद्धृत कर उसे प्रामाणिकता प्रदान करने का सफल प्रयास किया गया है। फिर भी किसी आलोचक को इसमें वर्णन की अतिरंजना या अतिशयोक्ति की गंध मिल सकती है। उन आलोचकों की आलोचना के उत्तर में मेरा यही नम्र निवेदन है कि मेरा जन्म भोजपुरी प्रदेश के ठेठ (अटट) गाँव में हुआ है। भोजपुरी समाज में मैं पैदा हुआ हूँ और उसी में मेरा पालन-पोषण हुआ है। भोजपुरी जन-जीवन में मैं रमा हूँ और इसी जीवन को जिया भी हूँ। अतः मैंने अपने पचासों वर्षों के अनुभव के बल पर स्त्रियों की दशा का जो चित्रण



किया है वह बिल्कुल सत्य है, ठीक है। उसमें अतिरंजना की मात्रा बिल्कुल भी नहीं है। लोक-गीतों का प्रामाण्य उद्धृत कर देने के पश्चात् मेरे अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन के लिए अवकाश ही कहाँ रह जाता है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भारतीय स्त्री समाज की दशा का वर्णन करते हुए जो लिखा है वह ठीक ही है कि :—

“अबला जीवन हाथ तुम्हारी यही कहानी।  
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥”

परन्तु भोजपुरी समाज की स्त्रियों के विषय में बिना किसी सन्देह तथा खण्डन के, निश्चित रूप से मैं कह सकता हूँ कि—

“भोजपुरी अबला की है यह दुःखद कहानी,  
सिर पर है अपमान; और आँखों में पानी॥”

लोकगीतों से प्रमाणित कर स्त्रियों का जो यह चित्रण किया है वह कुछ प्राचीन समाज की झाँकी प्रस्तुत करता है। इस कथन में सन्देह नहीं। परन्तु यह सर्वथा सत्य है। आधुनिक शिक्षा के प्रचार के कारण अब भोजपुरी प्रदेश के स्त्री समाज में भी महान् परिवर्तन पाया जाता है। अब गाँवों में स्त्री-शिक्षा का प्रचार होने लगा है। अनेक स्त्रियाँ शिक्षाविभाग के उच्च पदों पर आती हैं। पुरुषों का दृष्टिकोण भी अब स्त्रियों के प्रति बदला है। अतः ऐसी परिस्थिति में, स्त्रियों की दशा में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है और वे अब पुरुषों के समान ही सम्मान पद की अधिकारिणी मानी जाने लगी हैं।

#### (६) प्रस्तुत ग्रन्थ की विशेषताएँ

(१) इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह सर्वथा मौलिक ग्रन्थ है। इस पुस्तक में जिन वस्तुओं का प्रतिपादन हुआ है उसका वर्णन हिन्दी अथवा अंग्रेजी की किसी भी पुस्तक में उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार यहाँ जो कुछ लिखा है वह लेखक के पचासों वर्षों के दीर्घकालीन पठन और मनन के आधार पर अंकित है। वर्तमान लेखक ने भोजपुरी समाज को जिस प्रकार देखा तथा परखा है, जिस प्रकार इसको जिया है तथा इस समाज में रहकर इसका अनुभव प्राप्त किया है उसी को यहाँ लिपिबद्ध करने का प्रयास किया गया है। अतः इस पुस्तक में सुनी-सुनाई बातों पर ध्यान न देकर, अपने निरीक्षण एवं परीक्षण में जिन वस्तुओं को पाया गया है उन्हीं का यथावत वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है। अनुभूति के निकष ग्रीवा पर कस कर जिन तथ्यों, प्रथाओं तथा विधि-विधानों को प्रचलित पाया गया है उन्हीं का प्रतिपादन यहाँ प्रस्तुत है। अतः पठन, मनन तथा अनुभव के आधार पर लिखा गया यह ग्रन्थ सर्वथा मौलिक तथा नवीन है।

#### (२) संस्कार सम्बन्धी विधि-विधानों का सर्वप्रथम वर्णन—

भोजपुरी प्रदेश में प्रधानतया छः संस्कार प्रचलित हैं। इनमें पुत्र-जन्म, विवाह और मृत्यु ही प्रधान हैं। भोजपुरी प्रदेश में पुत्र जन्म के अवसर पर अनेक विधि-निषेध प्रचलित हैं जिनका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। जैसे सौर-गृह (सूतिका गृह) में किसी पुरुष का प्रवेश न करना। जूता पहिन कर नहीं जाना। इसके साथ ही अनेक विधि-विधानों को भी किया जाता है—जैसे सूतिकागृह के द्वार पर सदा अग्नि प्रज्वलित रखना। धात को छोड़कर किसी भी व्यक्ति का प्रवेश निषिद्ध तथा ज्योतिषी के द्वारा शुभ मुहूर्त के बतलाने पर भी सूतिका-गृह से प्रसूता स्त्री का बाहर निकलकर स्नान आदि करना।

विवाह के अवसर पर भी अनेक विधि-निषेधों का विधान पाया जाता है, भावी वर का गाँव की सीमा को नहीं लाँघना, कुँआँ नहीं झाँकना तथा तालाब में स्नान के लिए नहीं जाना आदि। इसी प्रकार के विवाह से लिए विधि-विधानों की एक लम्बी सूची है जिसका पालन करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य माना जाता है। इन विधानों में निम्नांकित प्रधान हैं—जैसे—वर रक्षा, तिलक चढ़ाना, बारात की तैयारी, बारात का प्रस्थान, माटी कोढ़ाई, हल्दी चढ़ाई, मटकोर, परिछावन, मण्डप-निर्माण, लावा मेराई, कन्या निरीक्षण, सप्तपदी और सुमंगली आदि। गृह्यसूत्रों में इन विधि-विधानों की एक लम्बी तालिका दी गई है।

इसी प्रकार मृत्यु संस्कार के अवसर पर भी अनेक विधि-विधान किये जाते हैं। दाही व्यक्ति के लिए विहित अनेक विधि-निषेधों का पालन करना पड़ता है। जैसे प्रतिदिन मृतात्मा की शान्ति के लिए घण्ट में जल देना, पत्तल या मिट्टी के पात्र में भोजन करना, दशाह के दिन पिण्डदान देना तथा ब्रह्मभोज आदि।

उपर्युक्त संस्कारों के अवसर पर किये जाने वाले इन विधि-विधानों का प्रचुर रूप में प्रचार पाया जाता है। परन्तु



जहाँ तक मुझे ज्ञात है इन विधि-निषेधों का वर्णन हिन्दी में कहीं नहीं किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ में इन विविध विधि-विधानों का वर्णन पहिली बार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

३. निषेध (टैबू)—लोक-संस्कृति (फोकलोर) में निषेध (टैबू) का अपना विशिष्ट स्थान है। अंग्रेजी में इस विषय का प्रतिपादन करने वाली अनेक पुस्तकें उपलब्ध होती हैं। इन ग्रन्थों में डॉ० सर जेम्स फ्रेजर का बारह भागों में लिखा गया 'गोल्डेनबाऊ' नामक ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। भोजपुरी समाज में अनेक प्रकार के 'टैबू' (निषेध) प्रचलित हैं जिन्हें हम अपने जीवन में प्रतिदिन व्यवहृत करते हैं। परन्तु इस विषय में भी कोई पुस्तक हिन्दी में उपलब्ध नहीं है। अतः डॉ० फ्रेजर की उपर्युक्त पुस्तक का मनन तथा मन्थन करके इस अध्याय को लिखा गया है। इसके साथ ही भोजपुरी समाज में उन निषेधों (टैबूओं) का पता लगाकर उनका विस्तृत विवेचन यहाँ प्रस्तुत है।

४. भोजपुरी क्षेत्र में अनेक नीच योनियों (Evil spirits) की स्थिति पायी जाती है। सच तो यह है कि सर्वसाधारण जनता का इन योनियों में अटूट विश्वास है। इनकी दिनचर्या अधिकांश रूप में इनके द्वारा ही परिचालित होती है। भूत, दूत, राक्षस, पिशाच, दैत्य, दानव ऐसी ही योनियाँ हैं। यदि किसी व्यक्ति का रोग दवा के द्वारा अच्छा नहीं होता तो ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसे किसी भूत, जिन या पिशाच ने ग्रस लिया है।

इन प्रेतयोनियों का प्रामाणिक किम्बा साधारण वर्णन भी हिन्दी में उपलब्ध नहीं है। बहुत प्रयास करने पर संस्कृत में कुछ सामग्री भले ही मिल जाय परन्तु हिन्दी में इस विषय का अत्यन्ताभाव है। ऐसी परिस्थिति में विलियम क्रुका का प्रसिद्ध (दो भागों में) ग्रन्थ "पापुलर रिलिजन एण्ड फोकलोर आफ नार्दर्न इण्डिया" ही एकमात्र सहायक सिद्ध हुआ है। इसी ग्रन्थ का मनन तथा अनुशीलन करके इस अध्याय में इस विषय का प्रामाणिक विवरण दिया गया है।

#### (५) लोक-विश्वासों का प्रामाणिक वर्णन

भोजपुरी प्रदेश में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। सच तो यह है कि भोजपुरी लोगों का जीवन लोक-विश्वासों के द्वारा ही परिचालित होता है। पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, पुष्प आदि के सम्बन्ध में सैकड़ों विश्वास प्रचलित हैं। यही बात मानव शरीर के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए। परन्तु यात्रा के सम्बन्ध जो विश्वास प्रचलित हैं उनका विशेष महत्त्व माना जाता है क्योंकि इनका हमारे दैनिक जीवन से सम्बन्ध है।

किसी यात्रा पर प्रस्थान करने के पूर्व; दिन, ग्रह नक्षत्र तथा दिशाशूल आदि का विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। जायसी ने 'पदमावत' में इनका वर्णन करके लोक-जीवन में इनके महत्त्व का प्रतिपादन किया है।

इस अध्याय को लिखते समय हिन्दी में किसी पुस्तक के अत्यन्त अभाव का अनुभव हुआ। हाँ, संस्कृत में डॉ० शर्मा की विद्वत्पूर्ण पुस्तक 'संस्कृत काव्य में शकुन' के अतिरिक्त बृहत्-संहिता तथा महाभारत एवं रामायण से अवश्य सहायता ली गयी है। अतः हिन्दी में लोक-विश्वासों का इतना सांगोपांग तथा प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत करने का यह पहिला ही अवसर समझना चाहिए।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् दशमलव प्रणाली लागू करने के लिए इस देश के मापों, बाटों तथा सिक्कों में भी परिवर्तन हो गया है। भोजपुरी प्रदेश में बाटों में छटाँक, सेर, पसेरी और मन प्रचलित थे परन्तु अब इनके स्थान पर ग्राम और किलो का प्रयोग होने लगा है। इसी प्रकार मापों में गज और गिरह का स्थान मीटर ने और दूध नापने के पैमाना को लीटर ने ले लिया है। रुपया, आना और पैसा में 'आना' का स्थान अब नहीं रहा और अब 'पैसा-रुपया' से ही काम चलाना पड़ता है। धरती के माप के सम्बन्ध में भी यही बात समझनी चाहिए। इस पुस्तक में दशमलव प्रणाली के अनुसार आजकल जो माप, बाट और सिक्के प्रचलित हैं उनका विवरण दिया गया है।

अब गाँवों में भी कच्चे मकान बहुत कम बन रहे हैं। इनका स्थान धीरे-धीरे पक्के मकान ले रहे हैं। कच्चे मकानों की दीवाल मिट्टी की होती थी और वे खपड़ा तथा नरिया से छाये जाते थे। इन मकानों के बनाने में लरही, वाँस, फरठा, धरनि, घोड़मुहा और खम्मा आदि का प्रयोग या उपयोग किया जाता था। परन्तु पक्के मकानों के बनने के कारण इस शब्दावली के प्रयोग का अब अभाव पाया जाता है। डॉ० सर जार्ज ग्रियर्सन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "बिहार पीजेण्ट लाइफ" में इस विषय का वर्णन किया है। अतः उस ग्रन्थ के आधार पर इस विषय का विवेचन यहाँ प्रामाणिक रूप में किया गया है।

#### (७) नामूल लिखते किंचित्

इस ग्रन्थ में इस मल्लीनाथी प्रतिज्ञा को निभाने का पूर्ण प्रयास किया गया है कि—



“नामूलं लिख्यते किञ्चित्,  
नानपेक्षितमुच्यते ।”

अतः इस पुस्तक में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं लिखी गई है जो निर्मूल हो और जिसकी पुष्टि किसी प्रमाण से न की गई हो। इसीलिए ग्रन्थ में जो भी वस्तु लिपिबद्ध है उसकी पुष्टि लोक-गीतों तथा लोकोक्तियों को उद्धृत कर की गयी है। स्थान-स्थान पर अनेक विद्वानों के ग्रन्थों का भी उद्धरण दिया गया है। जिन अध्यायों में किसी विशिष्ट ग्रन्थ से सहायता ली गई है उसका उल्लेख इस वक्तव्य में किया गया है। इस प्रकार प्रत्येक कथन के लिए किसी विद्वान् के ग्रन्थ का उल्लेख तथा लोक-गीतों का उद्धरण प्रस्तुत है।

परन्तु जहाँ इन दोनों का अभाव है वहाँ निजी मनन, अध्ययन, पर्यवेक्षण एवं अनुभव के आधार पर ही किसी वस्तु का वर्णन किया गया है। बहुत-सी बातें समाज में प्रचलित प्रथाओं के निरीक्षण के बल पर कही गयी हैं। अतः इस पुस्तक में उपलब्ध सभी कथन प्रबल प्रमाणों के आधार पर आश्रित हैं। अतएव किसी भी वस्तु का कथन अमूल या निर्मूल नहीं समझना चाहिए।

#### (८) भोजपुरी लोक-संस्कृति का विश्वकोश

यह विशालकाय ग्रन्थ भोजपुरी लोक-संस्कृति का विश्वकोश है। इसमें भोजपुरी प्रदेश में निवास करने वाली जनता के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, वेशभूषा, अलंकार-प्रसाधन, संस्कार और प्रथाओं के वर्णन के अतिरिक्त उनकी आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा दार्शनिक अवस्था का भी सांगोपांग विवेचन किया गया है।

जहाँ तक इन पंक्तियों के लेखक को ज्ञात है आज तक (वसन्त पंचमी सं० २०४५ तदनुसार १०-२-८९ ई०) हिन्दी तथा अंग्रेजी में भी ऐसे किसी ग्रन्थ का अत्यन्त अभाव है जिसमें भोजपुरी जनता के जीवन के विभिन्न पक्षों का इतना सांगोपांग तथा प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत किया गया हो। अतः लेखक की विनम्र सम्मति में प्रस्तुत पुस्तक का महत्त्व सांस्कृतिक होने के अतिरिक्त ऐतिहासिक भी है। आज से पचास वर्षों के पश्चात् भोजपुरी समाज में इतना परिवर्तन हो जायेगा कि पुरानी परम्पराओं को जानने वाला तथा प्राचीन प्रथाओं का पालन करने वाला कोई पुरुष कदाचित् ही मिले। ऐसी दशा में यह पुस्तक भोजपुरी समाज के इतिहास को प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध होगी।

शत-साहस्री संहिता के रचयिता महर्षि व्यास ने अपने ग्रन्थ के विषय में बड़े ही गर्व तथा अभिमान के साथ कहा है कि—

“अर्थे धर्मो च कामे च,  
मोक्षे च भरतर्षभ।  
यदि हास्ति, तदन्यत्र  
यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥”

भगवान् व्यास के शब्दों में थोड़ा परिवर्तन करके इस विनम्र लेखक का भी इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में यही निवेदन है कि—

“यदि हास्ति न तदन्यत्र  
यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥”

#### कृतज्ञता ज्ञापन—

मैं उन विद्वानों तथा सहायकों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहता हूँ जिनसे इस ग्रन्थ के निर्माण में दिशा-निर्देशन तथा सहायता प्राप्त हुई है। सर्वप्रथम मैं अपने पितृ-कल्प, ज्येष्ठ भ्राता, पद्मभूषण, आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय के श्रीचरणों में अपना कोटिशः प्रणाम अर्पित करता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के प्रति ‘शुभाशंसा’ लिखकर मुझे तथा इस ग्रन्थ को गौरव प्रदान किया है। पूज्य ज्येष्ठ भ्राता की प्रेरणा और प्रोत्साहन ही मेरे साहित्यिक जीवन का बल और सम्वल है। आज मैं जो कुछ भी हूँ उन्हीं का निर्माण किया हुआ हूँ। उनके वरद हस्त तथा अजस्र आशीर्वाद के अभाव में मेरे लिए कुछ कर पाना संभव नहीं है। अतः ऋषिकल्प, पूज्य भ्राता को मैं पुनः नतमस्तक हो अभिवादन करता हूँ।

संस्कृत साहित्य तथा भाषा शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् डॉ० विद्यानिवास मिश्र, कुलपति, काशी विद्यापीठ वाराणसी ने इस पुस्तक की विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखकर इस ग्रन्थ के महत्त्व को बढ़ा दिया है। अनेक कार्यों में सतत व्यस्त रहते हुए भी उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर इस भूमिका को लिखने की कृपा की इसके लिए मैं उनका हृदय से अत्यन्त आभारी हूँ।



हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के प्रधानमंत्री डॉ० प्रभातशास्त्री का मैं आजीवन ऋणी हूँ जिनकी कृपा ने ही यह वृहत् ग्रन्थ प्रकाश में आकर हिन्दी-साहित्य की वृद्धि करने में समर्थ हो सका है। साहित्य-विभाग के अध्यक्ष पं० हरिमोहन मालवीय का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिनकी सहायता तथा कृपा के कारण ही यह विशालकाय ग्रन्थ प्रकाशित हो सका है। मालवीय जी ने इस पुस्तक को सुन्दर तथा सचित्र बनाने में अथक प्रयास किया है। इनके सतत सहयोग तथा तत्परता के अभाव में इस ग्रन्थ का प्रकाशन संभव नहीं था। इन्होंने इस पुस्तक के शीघ्र प्रकाशन के लिए भी प्रयत्न किया है। अतएव मैं उनका हृदय से आभार स्वीकार करता हूँ।

मेरे कनिष्ठ पुत्र डॉ० रविशंकर उपाध्याय एम० ए०, पी० एच० डी०, डि०लिट् ने इस पुस्तक के निर्माण में मुझे अनेक प्रकार की सहायता पहुँचाई है। अतः वे मेरे आशीर्वाद के भाजन हैं।

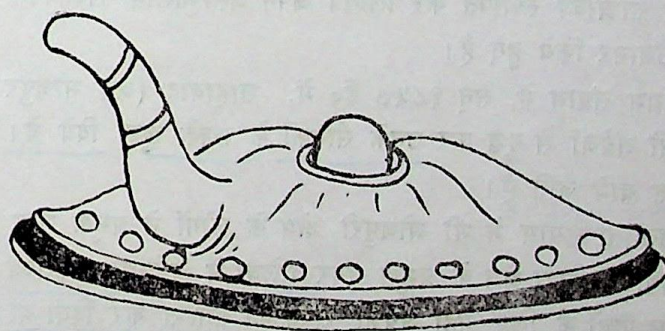
अन्त में बाबा विश्वनाथ और भगवती अन्नपूर्णा से मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि वे सुन्दर स्वास्थ्य तथा लोक-साहित्य सम्बन्धी पुस्तक-रचना की मुझे शक्ति दें जिससे मैं आजीवन इसकी सेवा में संलग्न रह सकूँ।

“देहि सौभाग्यमारोग्यं,  
देहि मे परमं सुखम्।  
वयो देहि, बलं देहि,  
यशो देहि, मदं जहि।”

एवमस्तु। तथास्तु।

वसन्त पंचमी, सं० २०४५ वि०  
तदनुसार १०।२।८९

कृष्णदेव उपाध्याय  
लोक संस्कृति शोध संस्थान,  
वाराणसी





## भोजपुरी क्षेत्र का महत्व

भोजपुरी प्रदेश कोई राजनैतिक ईकाई नहीं है। बल्कि यह वह सांस्कृतिक भूखण्ड है जिसने इस देश को राजनीति तथा सभ्यता के प्रचार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वैदिक काल से ही यह क्षेत्र अपनी राजनैतिक तथा सांस्कृतिक महत्ता के लिए प्रसिद्ध रहा है।

भगवान् राम के विद्या गुरु महर्षि विश्वामित्र की तपोभूमि यही क्षेत्र रहा है। ऐसा कहा जाता है कि राम ने अपने गुरु के आदेश से ताड़का का वध बक्सर नामक स्थान में किया था; जो भोजपुर में अवस्थित है।

संसार के दो महान् धर्मों—बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म—को जन्म देने का श्रेय इसी भूखण्ड को प्राप्त है। भगवान् बुद्ध का जन्म कपिलवस्तु में हुआ था और उन्होंने महानिर्वाण कसिया नामक स्थान में प्राप्त किया जो देवरिया जिला में स्थित कुशीनगर के नाम से आज भी विख्यात है। बुद्ध ने बोधगया में सम्बोधि प्राप्त कर अपने धर्म का सर्वप्रथम प्रचार, सारनाथ नामक स्थान से प्रारम्भ किया था, जो वाराणसी के पास है। इन्होंने यहीं से अपने 'धर्म-चक्र' के प्रवर्तन का श्रीगणेश किया था जो बाद में समस्त भारत किम्वा विश्व में प्रचलित हो गया। जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर की जन्मस्थली वैशाली नगरी मानी जाती है। "अहिंसा परमोधर्मः" इस उपदेश का शंखनाद इसी भोजपुर की भूमि में सबसे पहिले हुआ था।

राजनैतिक दृष्टि से तो इस प्रदेश का समधिक महत्व दिखाई पड़ता है। भगवान् बुद्ध के समय में षोडश महाजनपदों का उल्लेख पाया जाता है जिनमें काशी, कोशल तथा मगध अत्यधिक प्रसिद्ध थे। इनमें से काशी और कोशल महाजनपदों का अधिकांश भाग आज के भोजपुरी जनपद में अन्तर्भुक्त था। तत्कालीन राजनैतिक इतिहास में इन तीनों जनपदों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारत का प्रथम सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य पिप्पली वन के मोरिय जाति का क्षत्रिय था, जिसने सबसे पहिले भारत में एकछत्र साम्राज्य की स्थापना की। इसी का पौत्र सम्राट् अशोक था जिसने युद्ध विजय के स्थान पर 'धम्म विजय' की स्थापना करके संसार में बौद्धधर्म का प्रचार किया। अपनी प्रजा-वत्सलता तथा दयालुता के कारण अशोक की गणना संसार के प्रसिद्ध सम्राटों में की जाती है। चन्द्रगुप्त तथा अशोक भोजपुरी जनपद में ही उत्पन्न हुए थे। ये मल्लों के पड़ोसी पिप्पली वन के मोरियों की सन्तान थे।

भारत के मध्ययुगीन इतिहास में भी इस क्षेत्र का महत्व रहा है। बिहार राज्य में सासाराम जनपद (भोजपुरी क्षेत्र) में उत्पन्न बहादुर शेरशाह सूरी ने अपनी सेना के द्वारा चौसा (बिहार) नाम के स्थान में हुमायूँ को परास्त किया था। इतना ही नहीं उसने अपने वीर बाँकुड़े भोजपुरी सैनिकों को लेकर दिल्ली पर भी आक्रमण कर दिया था तथा मुगल सम्राट् हुमायूँ को भगाकर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। अपने अल्पकालीन राज्यकाल में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये जो आज भी उसकी कीर्ति को उजागर किये हुए हैं।

भारतीय स्वतन्त्रता के प्रथम संग्राम में, सन् १८५७ ई० में, शाहाबाद (अब भोजपुर जिला) के निवासी बाबू कुंवर सिंह ने अपनी बुढ़ापावस्था में भी अंग्रेजों से युद्ध कर उनके सैनिकों के छक्के छुड़ा दिये थे। आज भी भोजपुरी लोकगीतों में कुंवर सिंह की वीरता के गीत गाये जाते हैं।

किम्बहुआ, आधुनिक स्वतन्त्रता संग्राम में भी भोजपुरी क्षेत्र के लोगों ने प्रमुख भाग लिया है। सन् १९४२ ई० के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के समय, भोजपुरी क्षेत्र के प्रमुख नगर बलिया में सर्वप्रथम स्वराज्य की स्थापना हुई थी। इस जनपद के स्वतन्त्रता सेनानियों ने कुछ दिनों के लिए यहाँ अंग्रेजी राज्य को समाप्त कर दिया था। स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद की जन्मभूमि होने का श्रेय इसी प्रदेश के सारन जिले के जीरादेई गाँव को प्राप्त है। समाजवादी आन्दोलन के जन्मदाता लोकनायक जयप्रकाश नारायण की कर्मभूमि भले ही बिहार (पटना) रहा हो, परन्तु उनका भी जन्म इसी जनपद के बलिया जिले के सिताब दियरा गाँव में हुआ था जो आज उनकी स्मृति में "जयप्रकाश नगर" के नाम से विख्यात है। कुछ वर्षों पूर्व इस देश की सर्वश्रेष्ठ न्यायपालिका—सुप्रीम कोर्ट—के प्रधान न्यायाधीश तथा व्यवस्थापिका—संसद के स्पीकर के पद को भोजपुरी प्रदेश के सपूतों ने ही सुशोभित किया था। यह किसी भी प्रदेश के लिए गौरव की वस्तु है।

ये सब बातें लिखने का मेरा एकमात्र उद्देश्य भोजपुरी-क्षेत्र की राजनैतिक तथा सांस्कृतिक महत्ता का प्रतिपादन करना है। पाठकों को यह बतलाना ही मेरा एकमात्र लक्ष्य है कि भोजपुरी प्रदेश (या भूखण्ड) ने इस देश के राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। किसी जाति या किसी क्षेत्र के साथ पक्षपात नहीं।

भोजपुरी क्षेत्र में सभी जातियों तथा धर्मों का निवास पाया जाता है। यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र सभी समान



भाव से सुखपूर्वक निवास करते हैं। हरिजनों के साथ समान रूप से व्यवहार किया जाता है तथा वे भी समान रूप से शिक्षा प्राप्त कर नौकरी करते हैं। किम्बहुना, इस क्षेत्र में विशेषकर मिर्जापुर जिले में अनेक आदिवासी, हरिजन तथा गिरिजन भी निवास करते हैं जो अपने जीवन को सुख के साथ बिताते हैं। प्राचीन रूढ़ियाँ और परम्पराएँ धीरे-धीरे नष्ट हो रही हैं। स्पर्शास्पर्श की भावनाएँ भी अब नष्ट-सी हो गयी हैं। इन जातियों के संबंध में ऊँच-नीच के विचार में अब बड़ा परिवर्तन आ गया है। इस प्रकार भोजपुरी प्रदेश में सभी जातियों के लोग सद्भावपूर्वक रहते हैं और किसी से द्वेष या ईर्ष्या की भावना नहीं रखते।

भोजपुरी प्रदेश के लोगों में क्षेत्रीयता का अभाव पाया जाता है। ये देश के अनेक राज्यों में फैले हुए हैं। उत्तरप्रदेश के पूर्वी नौ जिलों तथा बिहार राज्य के नौ-दस जिलों में यह क्षेत्र फैला हुआ है। इसके अतिरिक्त बम्बई के अँघेरी में, बंगाल के चटकलों में और आसाम के चाय बागानों में लाखों की संख्या में भोजपुरी लोग पाये जाते हैं। परन्तु इन लोगों में क्षेत्रीयता की भावना का नितान्त अभाव पाया जाता है।

भोजपुरी जनता शत-प्रतिशत राष्ट्रीय है। वह समस्त भारत को अपना देश समझती है। इसीलिए यहाँ के निवासी प्रान्तीयता, क्षेत्रीयता या स्थानीयता के क्षुद्र बन्धनों से अपने को नहीं बाँधना चाहते। इसी राष्ट्रीय भावना के कारण लगभग ६-७ करोड़ की संख्या में विद्यमान होने पर भी भोजपुरियों ने कभी प्रान्तीयता के प्रश्न को नहीं उठाया। भोजपुरी लोगों का मूलमंत्र है—“यह भारत देश हमारा है। मेरा देश महान्। हम भारत की हैं सन्तान।” इस प्रकार जब समस्त देश ही अपना है तब प्रान्तीयता अथवा जातीयता की भावना ही कहाँ से पैदा हो सकती है।

‘भोजपुरी लोक-संस्कृति’ पुस्तक को लिखकर किसी एक क्षेत्र या प्रदेश की लोक-संस्कृति को प्रचारित करने का प्रयास नहीं किया गया है। प्रत्युत यह उस असंख्य जनता की संस्कृति को उजागर करने का विनम्र प्रयास है जो भारत में करोड़ों की संख्या में विराजमान है तथा इस देश के बाहर मारिशस, फीजी, सुरिनाम, गुयाना, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में भी लाखों की संख्या में निवास करते हैं। इस ग्रन्थ के द्वारा राष्ट्रीय एकता (National Integration) तथा भावनात्मक एकता (Emotional Integration) को प्रचारित करने का लघु प्रयास किया गया है। इसमें जिस संस्कृति का वर्णन किया गया है, जिन संस्कारों तथा विधि-विधानों का विवरण दिया गया है वे केवल भोजपुरी प्रदेश में ही नहीं बल्कि थोड़े-बहुत अन्तर से सर्वत्र प्रचलित हैं।

इतना ही नहीं, विदेशों में भी जो भारतीय—विशेषकर भोजपुरी भाषी लोग हैं उनसे भी भावनात्मक एकता स्थापित करने में इस ग्रन्थ से सुविधा उत्पन्न होगी। उन प्रवासी भारतवासियों के हृदय में अपने देश की संस्कृति को जानने की भावना उत्पन्न होगी। इस तथ्य का साक्षात्कार लेखक ने अपनी मारिशस यात्रा के दौरान स्वयं किया है। अतः मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि इस पुस्तक के द्वारा राष्ट्रीय तथा भावनात्मक एकता की स्थापना होगी तथा इसकी संवृद्धि होगी।

—कृष्णदेव उपाध्याय





## संकेत-शब्द-सूची

००

उपाध्याय	—कृष्णदेव उपाध्याय
ऋ० वे०	—ऋग्वेद
जे० आर० ए० एस०	—जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी
दु० स०	—दुर्गा सप्तशती
द्वि० सं०	—द्वितीय संस्करण
नै० च०	—नैषधीय चरितम्
वा० का०	—बालकाण्ड
बौ० ध० सू०	—बौधायन धर्म सूत्र
वि० ध० सू०	—विष्णु धर्म सूत्र
भो० लो० गी०	—भोजपुरी लोक गीत
भो० लो० गी० अ०	—भोजपुरी लोकगीतों का अध्ययन
भो० लो० गी० क० र०	—भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस
भो० लो० गी० वि० रू०	—भोजपुरी लोकगीतों के विविध रूप
भो० लो० गी० भा०	—भोजपुरी लोकगीत भाग १
भो० लो० सा० अ०	—भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन
भो० लो०	—भोजपुरी लोकोक्तियाँ
भो० लो० मु०	—भोजपुरी लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे
भो० लो० सा०	—भोजपुरी लोक साहित्य
भो० लो० सं०	—भोजपुरी लोक संस्कृति
रा० च० मा०	—राम चरित मानस
लि० स० इ०	—लिग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया
श० शे० ति०	—शशि शेखर तिवारी
शु० यजु० सं०	—शुक्ल यजुर्वेद संहिता





# विषय - सूची

० ०

	पृष्ठ संख्या
प्रकाशकीय—डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल, साहित्य मंत्री	७
शुभाशंसा—पद्मभूषण आचार्य बदेल्ब उपध्याय	९
भूमिका—डॉ० विद्यानिवास मिश्र	१३
लेखक का वक्तव्य—डॉ० कृष्णदेव उपध्याय	१५
संकेत—शब्द-सूची	२६

## प्रस्तावना : संस्कृति का स्वरूप १—२

संस्कृति शब्द का अर्थ १, संस्कृति और अंग्रेजी का कल्चर शब्द १, संस्कृति तथा सम्यता में अन्तर १, लोक-संस्कृति २।

## अध्याय-१ : वर्ण तथा आश्रम ३—१६

(क) ब्राह्मण—(१) परिच्छेद—३, ब्राह्मण का धर्म ३, महत्त्व ३। (१) अनुच्छेद ४, ब्राह्मणों के भेद ४, ऊँच-नीच की भावना ५, पंक्ति-पावन ब्राह्मण ५। (२) अनुच्छेद ६—ब्राह्मणों के अन्य भेद ६, (१) अथीथ ६, (२) गिर या गिरि ६, (३) महाब्राह्मण ६, (४) करन्न ७, (५) शकद्वीपीय ब्राह्मण ७। (३) अनुच्छेद ७—ब्राह्मणों की विशेषताएँ ७, गुरु का महत्त्व तथा भेद ८, पुरोहित ९, जजमानी प्रथा ९। (ख) क्षत्रिय ९, (४) अनुच्छेद ९, राजपूत १०। (ग) वैश्य १०, (५) अनुच्छेद १०—वनिया ११। (घ) शूद्र ११—(६) अनुच्छेद ११। हरिजन जातियाँ १२—(१) चमार १२, (२) डोम १२, (३) दुःसाघ १३, (४) बँसफोर १४, (५) हलखोर १४, (६) धिरिकार १४। आश्रम—(२) परिच्छेद—१५, (१) ब्रह्मचर्य आश्रम १५, (२) गृहस्थ आश्रम १६, (३) वानप्रस्थ आश्रम १६, (४) संन्यास आश्रम १६।

## अध्याय-२ : भोजपुरी लोक-साहित्य में स्त्रियों का चित्रण १७—३९

महत्त्व १७, नारी पुत्री के रूप में १८ (१) अनुच्छेद १८—प्रसूता स्त्री का अनादर १९। नारी पत्नी के रूप में, २१, (२) अनुच्छेद—पतिव्रता २१, अपमान में ही सम्मान की भावना २२, मार-पीट तथा ताड़ना २२, आर्थिक पराधीनता २३। नारी माता के रूप में २३, (३) अनुच्छेद २३; आदर्श सती के रूप में २५। (४) अनुच्छेद २५; कुलटा के रूप में २९ (५) अनुच्छेद २९; वन्ध्या के रूप में ३१, (६) अनुच्छेद ३१—विधवा के रूप में ३४। (७) अनुच्छेद ३४—बाल-विधवा ३८, लुबुकी के रूप में ३८, (८) अनुच्छेद ३८।

## अध्याय-३ : भोजपुरी परिवार का संगठन ४०—४८

(१) अनुच्छेद-४० : परिवार की श्रेणियाँ—४०, परिवार का संगठन ४०। (२) अनुच्छेद ४१—(क) भोजपुरी परिवार के सदस्य ४१, (ख) सम्बन्धी या रिश्तेदार ४२, संयुक्त परिवार के गुण ४३, संयुक्त परिवार के दोष ४४। (३) अनुच्छेद—सम्बोधन के विभिन्न प्रकार ४५। (४) अनुच्छेद-४७, अभिवादन की पद्धति ४७।

## अध्याय-४ : संयुक्त परिवार के सदस्यों में पारस्परिक सम्बन्ध ४९—७७

प्रथम परिच्छेद (क) मधुर सम्बन्ध ४९, (१) अनुच्छेद—माता और पुत्र ४९, शीतला माता से प्रार्थना ५०, कौशल्या का राम के प्रति अकृत्रिम स्नेह ५०। (२) अनुच्छेद—माता और पुत्री ५१, पुत्री के प्रति माता का प्रेम ५१,



पार्वती का कष्ट ५२, पुत्री का दुःख ५३। (३) अनुच्छेद—पिता और पुत्र ५३। (४) अनुच्छेद—माई और बहिन ५३, माई का प्रेम ५४, बहिन का अकृत्रिम प्रेम ५५, माई के दर्शन मात्र से प्रसन्नता ५५, आदर्श प्रेम ५६, गोपीचन्द का उदाहरण ५६। (५) अनुच्छेद—पति और पत्नी ५७, पत्नी का पति-प्रेम ५७, पत्नी का उत्कट प्रेम ५८, पति का पत्नी के प्रति प्रेम ५८। (ख) कटु सम्बन्ध (२) परिच्छेद ५९, (१) अनुच्छेद—सास और पतोह-६०, सास तथा बहू में पारस्परिक सम्बन्ध-६१। (२) अनुच्छेद—ननद और भावज ६४, भावज की निर्दयता ६५। (३) अनुच्छेद—देवर और भावज ६७, देवर शब्द की व्युत्पत्ति ६८, नियोग प्रथा का ह्रास ६८, देवर की दुश्चरित्रता ६८, देवर और भावज में आदर्श प्रेम ६९। (४) अनुच्छेद—मसुर और भवहि ७०, मसुर की कामुकता ७०। (५) अनुच्छेद—ससुर और पतोह ७१। (६) अनुच्छेद—सौत और सौत ७२, सौतों का पारस्परिक सम्बन्ध ७२, सौत का भय ७२, परदेस से सौत को ले आना ७२, वंशी में सपत्नी-भाव ७३, सौतियाडाह का उग्र रूप ७४। (३) परिच्छेद—दिव्य की प्रथा ७४, दिव्य का प्रयोग ७५, गीतों में दिव्य के भेद ७५, दिव्य का अवसर ७६, दिव्य लेने का समय ७७, दिव्य लेने की विधि ७७।

#### अध्याय-५ : संस्कार ७८—१००

संस्कार के भेद ७८। (१) परिच्छेद—पुत्र-जन्म ७८, सूतिका गृह ७९। (१) अनुच्छेद—गायन, वादन तथा नृत्य ८०। (२) अनुच्छेद—छठी और बरही संस्कार ८१। (३) अनुच्छेद—गर्भिणी स्त्री के लिए विहित तथा निषिद्ध कर्म ८१। (२) परिच्छेद—मुण्डन संस्कार ८१। (३) परिच्छेद—यज्ञोपवीत संस्कार ८३। (४) परिच्छेद—विवाह ८५। (१) अनुच्छेद—वर की खोज ८५, तिलक-दहेज की प्रथा ८६, वर-रक्षा तथा तिलक ८६, मण्डप की तैयारी ८७। (२) अनुच्छेद—बारात का प्रस्थान ८७। (३) अनुच्छेद—वर की वेश-भूषा ८८। (४) अनुच्छेद—बारात का प्रस्थान-८८। (५) अनुच्छेद—विभिन्न वैवाहिक विधि-विधान ९०, (१) कन्या निरीक्षण ९०, (२) कन्यादान ९०, (३) सुमंगली तथा सप्तपदी ९०, (४) कोहबर ९१। (५) मात खाना, खिचड़ी खाना तथा 'माँडो हिलाई' ९१। (६) बारात की बिदाई ९२। (५) परिच्छेद—गवना ९२। (१) अनुच्छेद—पुत्री की बिदाई ९३। (६) परिच्छेद—मृत्यु संस्कार ९५, (१) अनुच्छेद—मूसेज देना ९५, अरथी ९७, दाह-संस्कार ९८। (२) अनुच्छेद—दाही की वेश-भूषा, दैनिक चर्या तथा विधि-निषेध ९९। (३) अनुच्छेद—विधि ९९। (४) अनुच्छेद—महाम्राह्मण को दान-दक्षिणा ९९। (५) अनुच्छेद—तेरही तथा ब्रह्मोज १००।

#### अध्याय-६ : प्रथाएँ १०१—११२

(१) अनुच्छेद—परदा की प्रथा १०१। (२) अनुच्छेद—छुआछूत की प्रथा १०२। (३) अनुच्छेद—तिलक-दहेज की प्रथा १०३, वर की योग्यता, शिक्षा तथा आय १०५, तिलक का बाजार-भाव १०५, विवाह के दो अन्य निर्णायक तत्त्व १०६, इस प्रथा के कुछ दोष १०६। (४) अनुच्छेद—बाल-विवाह १०७। (५) अनुच्छेद—वृद्ध विवाह १०८। (६) अनुच्छेद—अनमेल विवाह १०८। (७) अनुच्छेद—बहु-विवाह १०९। (८) अनुच्छेद—विधवा-विवाह ११०। (९) अनुच्छेद—मृत्यु-भोज १११। (१०) अनुच्छेद—गायडार की प्रथा ११२।

#### अध्याय ७ : खान-पान ११३—१७२

महत्ता ११३, भोज्य पदार्थों के प्रकार अथवा श्रेणी-विभाजन ११३। (१) परिच्छेद—प्रधान भोज्य पदार्थ ११४। (१) अनुच्छेद—मात ११४, महत्व ११४, चावलों के प्रधान भेद ११५, मात बनाने का प्रकार ११५, मात को परोसने का प्रकार ११६, खाने की विधि ११६, खुद्दी का चावल ११६, चावल के द्वारा निर्मित अन्य भोज्य पदार्थ ११७, विभिन्न अन्नों के मात ११७, जनेरा का मात ११८, पकाने की विधि ११८, खाने की विधि ११८। (२) अनुच्छेद—दाल ११९, खिचड़ी १२०। (३) अनुच्छेद—रोटी १२०, आम की गुठली की रोटी १२२। (४) अनुच्छेद—गेहूँ के आटे से बननेवाले अन्य भोज्य पदार्थ १२२, पूड़ी १२२, कचौड़ी १२३, पूरी १२४, पराठा १२४, मकुनी १२५, फुटेहरी १२५, बाटी १२५, पूआ १२५, पूआ बनाने की विधि १२६, ठेकुआ १२६, चोंथा १२६, दहिरवरी १२६। महुँअरि १२७, दोहथी १२७, पिठौरी १२७, गोझा १२७, हलुआ १२८, कांची १२८, रुपसी १२८, अबरवटा १२८। (५) अनुच्छेद—चना १२९, सत्तू—महत्त्व तथा विशेषता १२९, बनाने की विधि १३०, खाने की विधि १३०, विभिन्न अन्नों के सत्तू १३१। (६) अनुच्छेद—चना से बनाये जाने वाले अन्य भोज्य पदार्थ १३१, पकौड़ी १३१, बजका, बरी-फुलौरा १३१, छनौरी, तिलौरी, पापड़, कढ़ी १३२, परा १३२। (७) अनुच्छेद—उड़द से बननेवाले भोज्य पदार्थ १३३, अदवरी १३३, दही-बड़ा १३३, फुलवरा १३३। (८) अनुच्छेद—चिउड़ा-दही १३३, मार्हा १३४। (२) परिच्छेद—जलपान १३५। (१) अनुच्छेद—जलपान के विभिन्न प्रकार १३५,



भुजुना १३५, चने का भुजुना १३६, चावल का भुजुना १३६, जनेरा (मक्का) का भुजुना १३६, ज्वार, जौ, चिउड़ा, बरें, धान का लावा, महुए का भुजुना १३७। (२) अनुच्छेद—घुघुनी १३७, होरहा १३८, तिलवा १३८, कसार १३८, बनाने की विधि १३८, मेथी १३९, सठौरा १३९, खाजा (खाझा) १३९। ओछवानी १४०। (३) परिच्छेद—शाक १४०, आलू १४०, बनाने की विधि १४१, कोहड़ा १४१, कटहल १४१, लौकी १४२, करैला १४२, राम तरौई १४३, तरौई १४३, नेनुआ १४३, सतपुतिया १४३, अरुई १४३, अरुआ १४४, सूसन १४४, सेमि १४४, गोभी १४४, बोरो १४४, परवल १४४, कुंदरू १४५, बैंगन १४५, टमाटर १४५, सहिजन १४६, केला १४६, चिचिडा १४६, मूली १४६, साग १४६, गिरवैछ १४७। (४) परिच्छेद—(क) अचार १४७। (१) अनुच्छेद—अचार १४८, आम १४८, कटहल १४८, बड़हर १४८, मिर्चा १४८, अमड़ा १४९, आंवला १४९, करौना १४९, नीबू १४९, आलू १४९, करैला १५०, सेमि १५०, इमली १५०, कदम्ब १५०, सूरन १५०, अदरख १५०, मूली १५०। (२) अनुच्छेद—चटनी १५१, आम की चटनी १५१, कोडता १५१, इमली १५१, टमाटर १५१, अमरस १५२, करौना १५२, अमड़ा १५२, अमचुर १५२, मूली १५२, घनिया १५२। (३) अनुच्छेद—रायता १५२, लौकी का रायता १५२, खीरा का रायता १५२, बथुआ का रायता १५३, प्याज का रायता १५३, केला का रायता १५३। (४) अनुच्छेद—खटमिट्ठी १५३, मुरब्बा १५३। (५) परिच्छेद—मिष्ठान्न १५४, टिकरी १५४, जलेबी १५४, वतासा १५४, लकठो १५४, बुनियाँ १५५, पटउरा १५५, खरुमा १५५, कुटकी १५५, गाटा १५५, अनरसा १५५, मनरसा १५५, लड्डू १५५, मोतीचूर का लड्डू १५६, वेसन का लड्डू १५६, संकर लड्डू १५६, आटे का लड्डू १५७, तीसी का लड्डू १५७, खोवा का लड्डू १५७, पेड़ा १५७, खजुली १५७, गुलाबजामुन १५७। (६) परिच्छेद—फल १५७, आम १५८, आम के भेद १५८, जामुन १५९, कटहल १५९, बड़हल १५९, नीबू १५९, नारंगी १५९, अनार १६०, केला १६०, इमली १६०, बेर १६०, कदम्ब १६०, पपीता १६०, लीची १६१, फालसा १६१, शहतूत १६१, मकोइ १६१, अमरुद १६१, बेल १६१, शरीफा १६२, गोदा १६२, गूलर १६२, बरगद का फल १६२, अमरस १६२, अमड़ा १६२, आंवला १६२, खजूर १६२, तरकुल १६३, कोंयता १६३, कोइना १६३, भटकोंआ १६३, ककड़ी १६३, खरबूजा १६४, फूट १६४, तरबूजा १६४, खीरा १६४, कन्द १६४, सुयनी १६५, गाजर १६५, सिंघाड़ा १६५। (७) परिच्छेद—पेय पदार्थ १६५, शरबत १६५, सीरा, राब, रोपारी और महिया १६६, कचरस १६६, देहाती लस्सी १६७, अमझोर १६७, श्रीफल का शर्बत १६७, दूध १६७, गोरस १६७, दही १६८, मट्ठा १६८, ठण्डई १६८, खीर १६८, रसियाव १६९, उपसंहार १६९। (८) परिच्छेद—(१) अनुच्छेद—मादक द्रव्य १६९, शराब १६९, ताड़ी १६९, माँग १७०, गाँजा १७०, अफीम १७१, संखिया १७१। (२) अनुच्छेद—धूम्रपान १७१, बीड़ी १७१, सिगरेट १७१, तम्बाकू १७१, खइनी १७१। (३) अनुच्छेद—मुखशुद्धि १७२, पान १७२, सुपारी १७२, गरी १७२, सौंफ १७२।

#### अध्याय-८ : वेश-भूषा १७३—१८४

(१) अनुच्छेद—पुरुषों के वस्त्र १७३, वस्त्रों का महत्त्व १७३। (क) सिर के वस्त्र १७३, पगड़ी १७३, टोपी १७४, कनटोप १७५। (ख) गले के वस्त्र १७५, चादर १७५, गमछा १७५। (ग) शरीर में पहने जाने वाले वस्त्र १७६, कुर्ता १७६, कुर्तों के विभिन्न प्रकार १७६, बगलबन्दी १७६, मिरजई १७७, शेरवानी १७७, रुईगर्दा १७७, गंजी १७७। (घ) अधोवस्त्र १७७, धोती १७७, लुंगी १७८, लँगोट १७८। (ङ) पैर के परिधान १७९, जूता १७९, खड़ाऊँ १७९, वर की वेश-भूषा १८०, जोड़ा और जामा १८०, जूता १८०, सेहरा १८०। (२) अनुच्छेद—बच्चों के वस्त्र १८१, घुटन्ना १८१, गाँती १८१, जूता १८१। (३) अनुच्छेद—स्त्रियों के वस्त्र १८२, ओढ़नी १८२, झूला १८२, कुस्ती १८२, चोली १८२, अधोवस्त्र-लूंगा १८२, लुगरी १८३, सटुआ तथा साया १८३, खरपा १८४।

#### अध्याय-९ : आभूषण १८५—१९९

(१) परिच्छेद—भोजपुरी स्त्रियों का जीवन १८५, शरीर के अंग-आभूषण का नाम १८५, स्त्रियों के विभिन्न अंगों के आभूषण १८५, (क) पैर के आभूषण १८६, नूपुर १८७, गोड़ाव १८७, झाँझ १८७, छड़ा १८७, पावजेव १८७, पैरी या पड़री १८७, चूरा १८८। (ख) पैर की अँगुलियों के गहने १८८, बिछिया १८८, बिच्छुआ १८८। (ग) कटि के आभूषण १८९, करघनी १८९, डण्डाया डंडकसी १८९। (घ) हाथ की अँगुली के आभूषण १८९, अँगूठी १८९, हथसंकर १९०। (ङ) प्रकोष्ठ (पहुँचा) के आभूषण १९०, कँगना १९०, पहुँची १९१, चूड़ा अथवा चूड़ियाँ १९१, बँहलोई १९१, हथउरा १९१, (च) बाँह के आभूषण १९२, बाजूबन्द १९२, बाँक १९२, बिजायठ १९२, जोसन १९२, बहरबूँटा १९२। (छ) वक्षस्थल के आभूषण



१९२, हार १९३, चन्द्रहार १९३, तिलरी १९३, मोहरमाला १९३, सिकड़ी १९४, हलका १९४। (ज) कण्ठ के आभूषण १९४, कण्ठा १९४, कण्ठसिर १९४, हँसुली १९४। (झ) कान के आभूषण १९४, तरिवन १९४, कनफूल १९४, कुण्डल १९४, बागी या वाली १९६, उतरना १९६। (ञ) नाक के आभूषण १९६, झुलनी १९६, नकबूली १९७, बेसर १९७, नथिया १९७, नथुनी १९७, छूँछी १९७, पान १९७, बुलाक १९७। (ट) सिर के आभूषण १९८, मँगटीका १९८, सेपटीपिन १९८, मोती १९८, लटकन-झबिया, १९८, झबिया १९८। (ठ) वस्त्रों में टाँके जाने वाले आभूषण १९८, मनोरी १९८, पत्ती १९९। (२) अनुच्छेद—बालकों के आभूषण-१९९।

#### अध्याय-१० : अलंकरण तथा प्रसाधन के साधन २००—२०८

(१) अनुच्छेद—बालों के प्रसाधन २००, तेल २००, सरसों का तेल २००, नारियल का तेल २०१, तीसी का तेल २०१, रेड़ी का तेल २०१, कोइना का तेल २०२, बाल झारने के साधन २०२, कंधी २०२, थकरी २०२। (२) अनुच्छेद—केश-पाश की रचना २०२, बालों के गूँथने के प्रकार २०२, जूरा २०२, चोटी २०३, वेणियाँ २०३। (३) अनुच्छेद—शरीर के विभिन्न अंगों का प्रसाधन २०३, अबटन २०३, बुक्वा २०४, माँग २०४, ललाट २०४, लाल टीका २०४, आँख-काजल २०४, अंजन २०६, सुरमा २०६, दाँत—मिस्सी २०६, गला-फूलों की माला २०७, बाँह—गोदना २०७, हाथ—मेंहदी २०७, पैर-महावर २०८, इत्र-२०८।

#### अध्याय-११ : भोजपुरी लोक-कला २०९—२१७

(१) परिच्छेद—वास्तुकला २०९, निर्माण का प्रकार २०९, कमरों की संख्या २१०, छप्पर का घर २१०। (२) परिच्छेद—मूर्तिकला २११। (३) परिच्छेद—चित्रकला २१२, चित्रकला के उपादान २१२। (४) परिच्छेद—अल्पना २१३; थापे २१३। (५) परिच्छेद—मेंहदी-२१३, महावर २१४, गोदना २१४, मिष्ठान्न २१४, चारपाई बुनना २१५। (६) परिच्छेद—गृह-निर्माण २१५, सिरकी के घर २१५, छप्पर के घर २१६, मिट्टी के घर २१६, पक्का मकान २१७।

#### अध्याय-१२ : लोक-विश्वास २१८—२५४

(१) परिच्छेद—शकुन तथा अपशकुन २१८, शकुन का अर्थ तथा उसके भेद २१८। (१) अनुच्छेद—नभचर संबंधी लोक-विश्वास २१९, कौआ २१९, नीलकंठ २१९, खंजन २१९, गृद्ध २२०, कबूतर २२०, उल्लू २२०, मयूर २२०, क्षेमकरी २२०, कुररी २२१, गौरैया २२१, हंस २२१। (२) अनुच्छेद—थलचर संबंधी विश्वास २२१, गाय २२१, बैल २२२, बिल्ली २२२, गोदड़ २२२, मैसा २२२, छिपकली का गिरना २२२। (३) अनुच्छेद—जलचर सम्बन्धी विश्वास २२३, मछली २२३। (२) परिच्छेद—आकाशीय पिण्ड सम्बन्धी विश्वास २२३। (१) अनुच्छेद—२२३, सूर्य २२३, चन्द्रमा २२४, मंगल २२४, बृहस्पति २२४, शुक्र २२४, शनि २२५। (२) अनुच्छेद—तारा २२५, अगस्त २२५, ध्रुव तारा २२५, सप्तर्षि मण्डल २२५। (३) अनुच्छेद—नक्षत्र २२५। (४) अनुच्छेद—प्राकृतिक प्रकोप सम्बन्धी विश्वास २२६, बादल २२७, बिजली २२७, वर्षा २२७, वर्षा कराने वाले विविध विधि-विधान २२७, आँधी या बवंडर २२७। (३) परिच्छेद—जलाशय सम्बन्धी विश्वास २२८। (१) अनुच्छेद—नदी सम्बन्धी विश्वास २२८, गंगा २२८, यमुना २२९, कर्मनासा २२९, सरयू २२९। (२) अनुच्छेद—कूप २२९, कुण्ड २३०। (४) परिच्छेद—वनस्पति जगत् सम्बन्धी विश्वास २३०, पीपल २३०, बरगद २३०, गूलर २३१, नीम २३१, बेल २३२, तुलसी २३२, कोंहड़ा २३३, सतपुतिया २३३, नेनुआ २३३, कुश २३३, दूब २३३। (५) परिच्छेद—यात्रा सम्बन्धी लोक-विश्वास २३४ (१) अनुच्छेद—यात्रा २३४, दिशाशूल २३४, दिशाशूल का परिहार २३४, यात्रा सम्बन्धी विश्वास २३५। (२) अनुच्छेद—स्वप्न-विचार २३७। (३) अनुच्छेद—दिन सम्बन्धी लोक-विश्वास २३७, सोमवार २३७, मंगलवार २३७, बुधवार २३८, बृहस्पतिवार २३८, शुक्रवार २३८, शनिवार २३८। (६) परिच्छेद—शरीर के विभिन्न अंगों सम्बन्धी लोक-विश्वास २३८ केश २३८, खल्वाट होना २३९, चुटिया २३९, सिर तथा ललाट २३९, आँख २३९, नाक २४०, छींक २४०, भुजा २४०, छाती २४१, पैर २४१। (७) परिच्छेद—विविध लोक-विश्वास २४१। (१) अनुच्छेद—जन्म सम्बन्धी लोक-विश्वास २४२। (२) अनुच्छेद—मृत्यु संबंधी लोक-विश्वास २४२। (३) अनुच्छेद—श्राद्ध सम्बन्धी लोक-विश्वास २४२। (४) अनुच्छेद—अंक सम्बन्धी लोक-विश्वास २४३, तीन २४३, पाँच २४३, सात और नव २४४, नौ २४४, तेरह २४४, बारह और चौदह २४४, अठारह २४४, अक्षर तथा वाक्य सम्बन्धी विश्वास २४५। (५) अनुच्छेद—(१) भोजन सम्बन्धी लोक-विश्वास २४५। (२) प्रातःकाल में मुख दर्शन २४५। (३) दन्त धावन



२४६। (४) नवीन वस्त्र धारण करना २४६। (५) शयन २४७। (६) अनुच्छेद—झाड़ू सम्बन्धी विश्वास २४७, चारपाई बुनना २४७। (८) परिच्छेद—निषिद्ध (व्यक्ति-वस्तु) टैबू २४८। (१) अनुच्छेद—निषिद्ध व्यक्ति २४८। रजस्वला स्त्री २४८, दाही मनुष्य का स्पर्श निषिद्ध २४९, हत्यारा मनुष्य निषिद्ध २४९। (२) अनुच्छेद—निषिद्ध वस्तुएँ २४९। लोहा २४९, रुधिर २५०, केश निषिद्ध २५०, केश-पाश तथा गांठ बाँधना निषिद्ध २५०, भोजन २५१। (३) अनुच्छेद—निषिद्ध कार्य २५१, भोजन २५१, मुँह दिखलाना तथा देखना २५१, उच्छिष्ट भोजन २५१, वृक्ष काटना २५२। (४) अनुच्छेद—निषिद्ध शब्द २५२, व्यक्तिगत नाम २५२, सम्बन्धियों का नाम न लेना २५३, मृतात्मा का नाम न लेना २५३, राजाओं तथा पवित्र आत्माओं का नामोच्चारण न करना २५४, देवताओं का नाम लेना निषिद्ध २५४।

### अध्याय-१३ : मनोरंजन के साधन २५५—२६९

सामान्य विवरण २५५, खेल-कूद २५५, खेलकूद का महत्त्व २५५। (१) परिच्छेद—कबड्डी २५६, गुल्ली-डंडा २५७, गूंगा-गूंगी-२५८, कोड़ा-कोड़ा के खेल २५९, जय कल्हैयालाल की २५९, हमार घोड़ी विरवनी २५९, घोड़ा के खेल २६०, घुमरी परउवा २६०, घोड़ी का खेल २६०। (२) परिच्छेद—घर के भीतर के खेल २६१, ओका-बोका का खेल २६१, झाका-झूमरि २६१, तार काटो तरकुल काटो २६२, घुघुआ माना २६२, चिऊँटा ही चिऊँटा का खेल २६५, आँखि मुदौवल २६५, अन्हर चटकी २६६, लाता-लूती २६६। (३) परिच्छेद—ताश का खेल २६६। (४) परिच्छेद—मेला २६६, बलिया २६७, घनुषयज्ञ का मेला २६७, शंकरपुर का मेला २६७, सोनपुर का मेला २६७, सारन २६८, आरा (भोजपुर) २६८, वक्सर २६८, विहटा २६८, वाराणसी २६८, रथयात्रा का मेला २६८, सारनाथ का मेला २६८, दुर्गा जी का मेला २६८, लक्ष्मी कुण्ड का मेला २६८, भरत-मिलाप का मेला २६८, प्रयाग का माघ मेला २६९।

### अध्याय-१४ : लोक-औषधि २७०—२७७

रोगों की सूची २७०। (१) परिच्छेद—शरीर के विभिन्न अंगों से सम्बन्धी रोग २७१, सिर दर्द २७१, अघकपारी २७१, अंजनहारी २७१, आँख आना २७२, फूली और माड़ा २७२, रतौंधी २७२, कान का दर्द २७२, दाँत का दर्द २७२, सर्दी या जुकाम २७२, खाँसी २७३, पेचिस २७३, आँव २७३, पेटदर्द २७३, पेट-फूलना २७३, कमर में दर्द २७४, पैर का दर्द २७४। (२) परिच्छेद—सामान्य रोग २७४, चेचक २७४, ज्वर तथा मियादी बुखार २७४, मलेरिया २७४, मिरगी २७४, पाण्डु रोग २७५, चरक फूटना २७५, हैजा २७५, लू २७५, घाव या फोड़ा २७५, फोड़िया-फुंसी २७६, रक्तस्राव २७६, जलना २७६, छरियाना २७६, सुखण्डी रोग २७६। (३) परिच्छेद—सर्पदंश-२७६, बिच्छ का दंश २७७, ततैया का काटना २७७, कुत्ता का काटना २७७।

### अध्याय-१५ : आर्थिक जीवन २७९—३०९

(१) परिच्छेद—सामान्य जनता के आर्थिक जीवन का चित्रण २७९, (१) अनुच्छेद—समाज में समृद्धि २७९। (२) अनुच्छेद—गरीबी तथा निर्धनता २७९। (२) परिच्छेद—पेशेवाली जातियाँ २७९, अहीर २८०, कलवार २८१, कहार २८२, काछी २८२, कानू २८२, कायस्थ २८३, कुँजड़ा २८४, कुस्मी २८५, कोइरी २८५, कोंहार २८६, खटिक २८७, गोंड २८७, घटवार २८७, घाटिया २८८, जुलाहा २८८, ठठेरा २८९, तमोली २८९, तुरहा २९०, तेली २९०, दर्जी २९१, घुनिमा २९१, घोबी २९१, नाई २९२, नेटुआ २९३, नोनिया २९३, पटहेरा २९४, पर्वरिया २९४, पेशराज २९४, पंसारी २९४, बढई २९५, वरई २९५, भर २९५, भाट २९५, मांड २९६, मछुआ २९६, मल्लाह २९६, माली २९६, मुसहर २९७, लकड़हारा २९७, लोहार २९८, सोनार २९८, हलुवाई २९८। (३) परिच्छेद—भूमि (जमीन) के प्रकार २९९, सिंचाई के विभिन्न साधन ३००, मोट ३००, रहट ३००, कूँड़ि ३००, दोन ३००, दौरी ३००, नहर ३०१, सिंचाई के आधुनिक साधन ३०१, ट्यूबवेल ३०१। (४) परिच्छेद—प्राकृतिक आपत्तियाँ ३०१, ईतियाँ ३०२, अतिवृष्टि ३०२, अनावृष्टि ३०२, मूषकाः शलभाः शुकाः ३०२, नदियों के द्वारा धरती का कटाव ३०२। (५) परिच्छेद—बाट और माप ३०३, ठोस द्रव्यों को नापने का पैमाना ३०५, कपड़ा नापने का माप ३०५, लम्बाई नापने का माप ३०६, खेत नापने का माप ३०६, दूरी नापने का नया मैट्रिक पैमाना ३०७, कपड़ा आदि नापने का नया पैमाना ३०७, इकाई का पैमाना ३०७। (६) परिच्छेद—आदान-प्रदान के साधन ३०७, सिक्का ३०८।



### अध्याय-१६ : धार्मिक जीवन ३१०—३४०

(१) परिच्छेद—लोक देवी और देवता ३१०। (१) अनुच्छेद (क) देवता की पूजा ३१०, हनुमान् ३१०, गणेश ३१२, शिव ३१२, भैरव ३१३, बाबा सत्यनारायण २१३, बाबा त्रिलोकीनाथ २१४। (२) अनुच्छेद—(क) दुर्गा ३१४, (ख) लोक देवी की पूजा ३१५, काली माई ३१५, सामे माई ३१५, चटपटी माई ३१६, सन्तोषी माता ३१६। (२) परिच्छेद—प्रकृति के देवता ३१६, सूर्य ३१६, चन्द्रमा ३१७, अग्नि ३१७, ग्रहों की पूजा ३१७, ध्रुवतारा ३१८, सप्तर्षि मण्डल ३१८, धरती माता ३१८। (३) परिच्छेद—रोगों के देवता ३१९, शीतला माता ३१९, पिलेग मइया ३१९, चटपटी माता ३२०, खोंखी मइया ३२०, मनसा देवी ३२०। (४) परिच्छेद—भूत-प्रेतों की पूजा ३२०, भूत ३२१, भूतों के लक्षण ३२१, भूत का भोजन तथा निवास ३२२, भूत का निवास ३२२, भूत को भगाने के उपाय ३२२, भूतों के विभिन्न प्रकार ३२३, प्रेत ३२३, पिशाच ३२३। (५) परिच्छेद—व्रत और त्योहार ३२३, व्रत का अर्थ तथा विशेषता ३२३, त्योहार ३२४, विजयादशमी ३२५, दिवाली ३२६, घनतेरस ३२६, दीपावली ३२६, दलित्तर खेदना ३२७, अन्नकूट ३२७, होली ३२८, रथयात्रा ३२९, नागपंचमी ३२९, रक्षाबन्धन ३३०, कजरी ३३०, बहुला व्रत ३३१, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी ३३१, गणेश चतुर्थी ३३१, ऋषिपंचमी ३३२, अनन्त चतुर्दशी ३३२, जीवित पुत्रिका व्रत ३३३, मातृनवमी ३३३, महालया ३३३, करवाचौथ ३३४, पिडिया का व्रत ३३४, भ्रातृ द्वितीया ३३४, सूर्य षष्ठी व्रत ३३५, अक्षय नवमी ३३५, प्रबोधिनी एकादशी ३३६, कार्तिकी पूर्णिमा ३३६, मकर संक्रान्ति ३३६, मौनी अमावस्या ३३७, वसंत-पंचमी ३३७, महाशिवरात्रि ३३७, रामनवमी ३३८, वट-सावित्री व्रत ३३८, एकादशी व्रत ३३८, प्रदोष व्रत ३३९, सत्यनारायण व्रत ३३९, व्रतों की सूची ३३९।

### अध्याय-१७ : दार्शनिक जीवन ३४१—३४३

दार्शनिक अवस्था ३४१, कर्मवाद ३४१, भाग्यवाद ३४२, जन्मान्तरवाद ३४२, संसार की असारता ३४३।

### अध्याय-१८ : भोजपुरी लोक-संस्कृति का बदलता स्वरूप ३४४—३६४

वर्ण में परिवर्तन ३४४, आश्रम धर्म में व्यत्यय ३४५। (१) अनुच्छेद—संयुक्त परिवार ३४५, माता-पिता की उपेक्षा ३४६, पति-पत्नी के प्रेम में वृद्धि ३४६, समाज में स्त्री की दशा में परिवर्तन ३४७। (२) अनुच्छेद—भोज्य पदार्थ—चावल ३४७, पूड़ी ३४७, सत्तू ३४७, पक्वान्न ३४८, मिष्ठान्न ३४८, शाक सब्जी ३४८, पेय पदार्थ ३४८, शुद्ध घी और दूध का अभाव ३४९। (३) अनुच्छेद—वस्त्र या वेश-भूषा ३४९, परिधान ३४९। (४) अनुच्छेद—आभूषण ३५०। (५) अनुच्छेद—(क) गृह-निर्माण ३५१, (ख) गृह-सामग्री ३५२। (६) अनुच्छेद—मनोरंजन के साधन ३५२, खेल ३५२। (२) परिच्छेद—आर्थिक जीवन में परिवर्तन ३५३। (१) अनुच्छेद—(क) खेत जोतने का साधन ३५३, खेतों की कटाई, दवाई और ओसाई के नवीन साधन ३५३। (ख) सिंचाई के साधन ३५४। (ग) बीजों के उन्नत प्रकार ३५४। (२) अनुच्छेद—यातायात के साधन ३५५। (३) अनुच्छेद—बाट और माप में परिवर्तन ३५५। (४) अनुच्छेद—सिक्का ३५६। (३) परिच्छेद—धार्मिक जीवन में परिवर्तन ३५६। (१) अनुच्छेद—पुत्र-जन्म ३५६। (२) अनुच्छेद—मुण्डन ३५७। (३) अनुच्छेद—यज्ञोपवीत संस्कार ३५७। (४) अनुच्छेद—विवाह ३५८। (५) अनुच्छेद—गवना ३५९। (६) अनुच्छेद—मृत्यु संस्कार ३५९। (७) अनुच्छेद—धार्मिक जीवन में परिवर्तन ३६०, लोक-विश्वासों में ह्रास ३६०। (४) परिच्छेद—(क) सांस्कृतिक जीवन में परिवर्तन ३६१, माता-पिता की घनघोर उपेक्षा ३६१, गुरुओं के प्रति विद्रोह ३६२, प्राचीन आदर्शों का ह्रास ३६२, देवी-देवताओं में अनास्था ३६२, अपरिग्रह का अभाव ३६२, प्राचीन आदर्शों के प्रति उदासीनता ३६३, राजनैतिक जीवन में उथल-पुथल ३६३, उपसंहार ३६४।

### अध्याय १९ : भोजपुरी जनता का स्वभाव और चरित्र ३६५—३७०

(१) परिच्छेद—स्वभाव ३६५, स्पष्टवादिता ३६५, वीरता ३६५, वीर-पूजा ३६६, साहसिकता ३६७, कर्मठता ३६८, (२) परिच्छेद—चरित्र ३६९।

### अध्याय २० : उपसंहार ३७१—३७२

#### परिशिष्ट (१)

संशोधन तथा परिवर्द्धन-३७३

नारी—फूहड़ स्त्री के रूप में ३७३। (१) फूहड़ स्त्री का स्वरूप ३७३, (२) फूहड़ स्त्री में आलस्य की प्रधानता ३७४,



(३) फूहड़ स्त्री की असम्यता ३७४, (४) फूहड़ स्त्री की असावधानता ३७५, (५) फूहड़ स्त्री के द्वारा भोजन बनाना ३७५, (६) फूहड़ स्त्री की भोजन भट्टता ३७६। नारी—कर्कशा के रूप में ३७६, कर्कशा स्त्री की विशेषताएँ ३७६, (१) कटुभाषिणी ३७६, (२) कलहप्रियता ३७७, (३) बातूनी तथा बतकट ३७७, सतत कष्टयादिनी ३७८, (५) कर्कशा की सामूहिक विशेषता ३७८, नारी—वेश्या के रूप में ३७९, वेश्याओं की विशेषताएँ ३७९, (१) रूपाजीवा के रूप में ३७९, (२) घन के प्रति लोभ ३७९, (३) वेश्या का चारित्रिक पतन ३८०, (४) अविश्वास की खान ३८०, (५) शुद्ध तथा सात्त्विक प्रेम का अभाव ३८०, नारी—कन्या के रूप में ३८०, टिप्पणियाँ ३८३, कुल्दुरा ३८३, शिष्ट संस्कृति तथा लोक संस्कृति के भेद ३८३, सरयूपारीण ३८३, पंक्तिपावन ब्राह्मण ३८३, तियाग ३८३, करन ३८३, दँवरी ३८३, चमार ३८३, पँसगी ३८४, ओछवानी ३८४, खुरखुड़ी ३८४, छठी तथा बरही ३८४, उसिना ३८४, जीवित्पुत्रिका ३८४, आहिनक सूत्रावली ३८४, मुंगरी ३८४, सूर्यपंथी व्रत ३८४, सोहर ३८४, निरवाही के गीत ३८४, कुसुम देवी ३८४, बबुर ३८४, कोठिला ३८४, लोलार्क कुण्ड ३८४, परिछावन ३८४, खोरिस ३८५, सतनहयना ३८५, विधवा के अधिकार ३८५, दाल मण्डी ३८५, ३८५, पटरी खाना ३८५, पेड़े कटहर ओंठे तेल ३८५, घृत, लवण, तैल, तन्दुल ३८५, भाई और बहिन का पारस्परिक प्रेम ३८५, सौतिया डाह ३८५, दिव्य की प्रथा ३८५, बारात का प्रस्थान ३८५, विवाह संस्कार ३८६, गवना के गीत ३८६, मृत्यु संस्कार ३८६, पर्दे की प्रथा ३८६, तिलक का बाजार भाव ३८६, वृद्ध विवाह ३८७, विधवा विवाह ३८७, बाल विवाह ३८७, सत्तू ३८७, घोती ३८८, आभूषण ३८८, गोदना ३८८, अलंकरण तथा प्रसाधन ३८८, मेंहदी ३८९, चिक्का ३८९, वेश-भूषा ३८९, भोजन ३८९, भाषा ३९०, राष्ट्रीयता ३९०।

परिशिष्ट (२)

२. संदर्भ ग्रन्थ-सूची-३९१

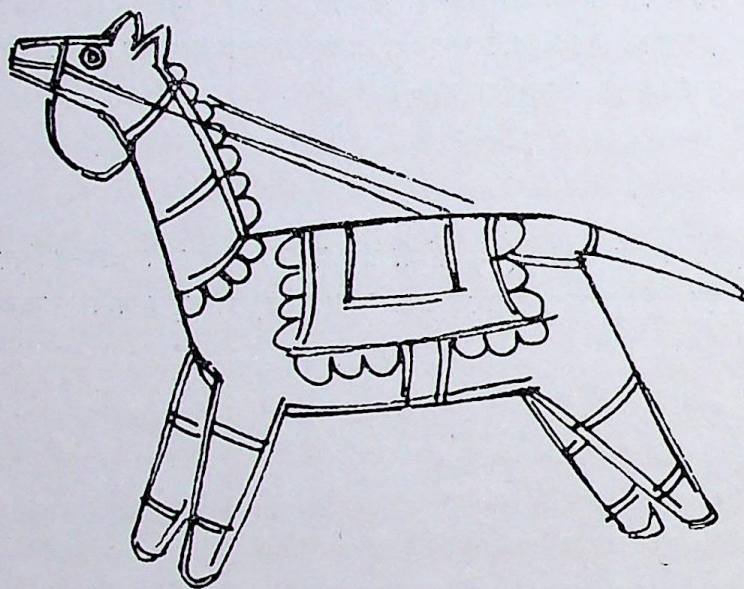
(क) हिन्दी ३९१, (ख) संस्कृत ३९३, (ग) अंग्रेजी ग्रंथ ३९३। भोजपुरी लोक-साहित्य सम्बन्धी पठनीय सामग्री ३९४। (क) लोकगीत-संग्रह ३९४, (ख) आलोचनात्मक ग्रन्थ ३९५, (ग) भोजपुरी भाषा सम्बन्धी ग्रन्थ ३९५।

परिशिष्ट (३)

३. अनुक्रमणिका—३९६-४०७









# प्रस्तावना

## संस्कृति का स्वरूप

० ०

### संस्कृति शब्द का अर्थ

संस्कृति शब्द सम् उपसर्गक 'कृ' धातु से निष्पन्न होता है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार सम् उपसर्ग के आगे कृति अथवा कार शब्द के होने पर इसके फलस्वरूप सम् + कृति = संस्कृति : तथा सम् + कार = संस्कार आदि शब्दों की निष्पत्ति होती है। आप्टे के संस्कृत-अंग्रेजी कोश में संस्कृत, संस्कार तथा संस्क्रिया आदि शब्दों की उपलब्धि होती है। संस्कृत शब्द का अर्थ है—संस्कार किया हुआ, पालिश किया हुआ, दोष अथवा त्रुटियों को निकालकर शुद्ध किया हुआ। इसी प्रकार से संस्कार शब्द का भी अर्थ है—किसी वस्तु का संशोधन करना, उत्तम बनाना तथा उसका परिष्कार करना। आप्टे के उपर्युक्त कोश में 'संस्कृति' शब्द उपलब्ध नहीं होता। इससे सहज में ही यह अनुमान किया जा सकता है कि आजकल जिस अर्थ में संस्कृति शब्द का व्यवहार किया जा रहा है, प्राचीन काल में उसका यह अर्थ नहीं था। संस्कृत साहित्य में संस्कृति शब्द के प्रयोग के स्थान पर संस्कार और संस्क्रिया शब्द का ही व्यवहार पाया जाता है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने प्राचीन भारतीय साहित्य में भी संस्कृति शब्द के प्रयोग को खोजने का अथक प्रयास किया है परन्तु प्राचीन ग्रन्थों में जो संस्कृति शब्द उपलब्ध होता है वह वर्तमान अर्थ को प्रकाशित करने में नितान्त असमर्थ है।

### संस्कृति और अंग्रेजी का कल्चर शब्द

आजकल का संस्कृति शब्द अंग्रेजी के 'कल्चर' का पर्यायवाची है। निरुक्ति की दृष्टि से 'कल्चर' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा की कोलर (Colere) धातु से निष्पन्न 'कुल्टुरा' (Cultura) शब्द से हुई है जो संक्षेप में क्रमशः पूजा करना तथा कृषि सम्बन्धी कार्य का बोधक है। कुछ विद्वान् कल्चर तथा कल्टीवेशन (कृषि कार्य) में साम्य की स्थापना करते हैं। अतः इस समानता के आधार पर यह कहना कुछ असमीचीन न होगा कि कृषि-विद्या के नियमों के आधार पर जिस प्रकार पेड़-पौधों को सुविकसित करके, अच्छी खेती तैयार की जाती है, ठीक उसी प्रकार मनुष्यों में भी मानवता की भावना को पल्लवित करने के लिए जो पद्धति काम में लायी जाती है उसे 'संस्कृति' कहा जा सकता है। अन्य विद्वानों के अनुसार किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले आदर्शों को ही संस्कृति कहते हैं। इस प्रकार समस्त सामाजिक जीवन की समाप्ति संस्कृति में ही होती है। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र का कथन है कि 'संस्कृति मानव जीवन के विचार तथा आचार का संशुद्धिकरण अथवा परिमार्जन है। वह मानव जीवन की सजी तथा संचारी हुयी अन्तःस्थिति है।' वह मानव समाज की परिमार्जित मति, रचि, और प्रवृत्ति-पुंज का नाम है।'

### संस्कृति तथा सभ्यता में अन्तर

आजकल जिस प्रकार संस्कृति के लिये अंग्रेजी में 'कल्चर' शब्द का प्रयोग हो रहा है उसी प्रकार सभ्यता के लिये 'सिविलायिजेशन' शब्द का व्यवहार होता है। इन दोनों के अन्तर को समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। सुप्रसिद्ध मानवविज्ञान-शास्त्री डा० डी० एन० मजूमदार के अनुसार संस्कृति के अन्तर्गत मनुष्यों की रीति-नीति, विश्वास, आदर्श, कलाएं तथा मानव द्वारा उपलब्ध समस्त कौशल एवं क्षमताओं को लिया जा सकता है।<sup>१</sup>

सभ्यता—जिसे अंग्रेजी में 'सिविलायिजेशन' की संज्ञा दी जाती है—मनुष्य के सामाजिक गुणों तथा बाह्य व्यवहारों की द्योतिका है। इसकी प्रारम्भिक स्थिति में भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा अन्य प्राकृतिक संघातों से संघर्ष करने के

१. डा० बलदेव प्रसाद मिश्र :—भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास का योगदान, पृ० ६ (१६५३)।

२. डा० डी० एन० मजूमदार तथा टी० एन० मदन—एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल एनथ्रोपोलाजी, पृ० १४ (प्रथम संस्करण, सन् १९६० ई०)।



अभियान में मनुष्य में सामूहिक भावना एवं सहयोग की प्रवृत्तियों का विकास हुआ। डा० भगवतशरण उपाध्याय ने सभ्यता और संस्कृति के अन्तर को स्पष्ट करते हुये लिखा है कि “सभ्यता और संस्कृति मनुष्य की सामूहिक प्रेरणा और विजय के परिणाम हैं जिनमें प्रथम अर्थात् सभ्यता आदिम जंगली स्थिति से सामाजिक जीवन की ओर मनुष्य की प्रवृत्ति का नाम है। दूसरा उसी प्रगति की सत्यं, शिवं और रुचिर परम्परा का।” सभ्यता में सामाजिक व्यवहारों तथा प्रगति का बाह्य तत्व सम्मिलित है। अतएव इन तत्वों को सद्यः अपनाया जा सकता है जिसके परिणाम स्वरूप सभ्यता की सद्यः अनुकृति की जा सकती है। परन्तु संस्कृति अन्तः चेतना तथा परम्परा द्वारा प्रतिष्ठित होने के कारण उसे अपनाने में बहुत देर लगती है।

कुछ विद्वानों के मतानुसार संस्कृति जीवन का आन्तरिक सौन्दर्य है। जबकि सभ्यता उसके बाह्य साधनों की सुविधा है। संस्कृति वह थाती है जिसे मनुष्य अपने संस्कार और वातावरण से प्राप्त करता है। परन्तु सभ्यता मनुष्य को प्रगति के पथ की ओर ले जाने का संकेत करती हुयी उसके बाह्य क्रिया-कलापों की द्योतिका है।

संस्कृति तथा सभ्यता के अन्तर को साध्य और साधन के विवेचन द्वारा भी स्पष्टतया समझा जा सकता है। सभ्यता वह साधन है जिसके द्वारा संस्कृति रूपी साध्य की प्राप्ति की जाती है। संस्कृति के क्षेत्र में आने वाले आदर्श, विश्वास और परम्पराएं आदि जीवन के लक्ष्य अथवा साध्य बन जाते हैं। मानव जीवन को भौतिक प्रगति की दिशा में अग्रसर कर उसे सुख, समृद्धि-सम्पन्न बनाने वाले सभ्यता के उपकरण साधन रूप में आते हैं।

सभ्यता तथा संस्कृति के विकास क्रम के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये दोनों ही मानव विकास के दो पहलू हैं। संस्कृति मानव की अन्तस् चेतना, सौन्दर्यानुभूति एवम् आनन्द तथा उल्लास के आभ्यन्तरिक तत्वों से सम्बन्धित है। सभ्यता उसकी स्थूल तथा भौतिक सुख और सामग्री के संयोजन एवं उसके लिये आवश्यक संगठित प्रयत्नों की ओर संकेत करती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि संस्कृति का सम्बन्ध मानव की आन्तरिक परिष्कृति तथा अन्तस् चेतना से रहता है किन्तु सभ्यता सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों से बंधी रहती है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सभ्यता को बाह्य प्रयोजन को सहज लभ्य बनाने का विधान तथा संस्कृति को अतिशय आनन्द की अभिव्यक्ति बताया है।<sup>१</sup>

संस्कृति के अन्तर्गत जितने विषयों का समावेश होता है उनको हम दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। (१) आध्यात्मिक तत्व (२) लौकिक तत्व। आध्यात्मिक तत्व के अन्तर्गत (१) परलोक सम्बन्धी धारणा, (२) मोक्ष तथा स्वर्ग संबंधी विचार (३) साधना मार्ग (४) जीवन का आदर्श और (५) धार्मिक सिद्धान्तों का समावेश होता है। इसी प्रकार से लौकिक तत्व के अन्तर्गत—(१) मानव जीवन के विभिन्न संस्कार (२) सामाजिक उत्सव (३) पर्व तथा त्योहार (४) मनोरंजन के साधन (५) रहन-सहन (६) वेश-भूषा (७) अलंकरण तथा प्रसाधन (८) भोजन तथा पेय पदार्थ (९) सामाजिक रूढ़ियां (१०) लोक-विश्वास तथा मान्यताएं एवं (११) कला आदि की परिगणना की जाती है। इस प्रकार किसी ग्रन्थ का सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत करते समय इन विषयों का वर्णन करना अत्यन्त आवश्यक है।

### लोक-संस्कृति

संस्कृति को साधारणतया दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। (१) शिष्ट-संस्कृति (२) लोक-संस्कृति। समाज के उच्च शिक्षा प्राप्त विद्वान्, दार्शनिक, पण्डित तथा मनीषी, वेद-शास्त्र, पुराण तथा स्मृतियों में उल्लिखित विधि-विधानों का पालन करते हैं और उन नियमों के अनुसार अपनी जीवन-चर्या को परिचालित करते हैं। परन्तु सामान्य जनता की जो धारणाएं, मान्यताएं और लोक-विश्वास हैं, उनका जो रहन-सहन है, आचार-विचार है, वेश-भूषा है, वह लोक संस्कृति के अन्तर्गत आती है। वेद और शास्त्र, आगम और निगम, शिष्ट संस्कृति के उत्स हैं परन्तु लोक-संस्कृति का स्रोत स्वयं लोक ही है, जनता जनार्दन है। लोक जीवन में जो कुछ दीख पड़ता है और जो कुछ पाया जाता है वह सभी लोक-संस्कृति के अन्तर्गत समाविष्ट किया जा सकता है।

शिष्ट-संस्कृति और लोक-संस्कृति के अन्तर को स्पष्ट करते हुए उदाहरण स्वरूप हम यह कह सकते हैं कि वेद और पुराणों में वर्णित इन्द्र और वरुण, उषा और विष्णु, राम और कृष्ण शिष्ट संस्कृति के उपस्थ देव हैं। परन्तु डीह, डिहवार, भूत-हूत, प्रेत-पिशाच आदि की पूजा लोक संस्कृति के अन्तर्गत मानी जाती है।<sup>१</sup>

१. डॉ० भगवतशरण उपाध्याय :—सांस्कृतिक भारत, पृ० ११ (प्रथम संस्करण)।

२. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी :—अशोक के फूल, पृ० ८१ (सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण)।

३. इस अध्याय को लिखने में डॉ० मदनगोपाल गुप्त द्वारा लिखित “मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति” नामक ग्रन्थ से प्रचुर सहायता ली गयी है। अतः लेखक उनका हृदय से आभार स्वीकार करता है।



## अध्याय-१

# वर्ण तथा आश्रम

० ०

प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रियों ने मनुष्यों के गुण, कर्म और स्वभाव के कारण उन्हें चार वर्णों में विभक्त किया है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में लिखा है कि मैंने चातुर्वर्ण की सृष्टि इसी आधार पर की है।<sup>१</sup> ये चार श्रेणियाँ हैं:—(१) ब्राह्मण (२) क्षत्रिय (३) वैश्य और (४) शूद्र। मनु ने इन चारों वर्णों के कर्तव्य कर्म का बड़ा ही सुन्दर तथा विस्तृत वर्णन किया है। इस विवेचन से पता चलता है कि मानवों का इन चार श्रेणियों में विभाजन कितना मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक था। भारतीयों में प्रचलित वर्ण-धर्म का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि प्राचीन समाजशास्त्रियों ने समाज की सम्यक् व्यवस्था के लिए प्रत्येक मनुष्य का करणीय कर्म उसके गुण, कर्म, स्वभाव, योग्यता, वंशानुक्रम, प्रशिक्षण आदि के आधार पर निश्चित कर दिया था। इस प्रकार इन ऋषियों ने श्रम का विभाजन (Division of labour) करके समाज में होने वाली प्रतिस्पर्धा को सदा के लिए समाप्त कर दिया था। जो व्यक्ति जिस वंश और परम्परा में पैदा हुआ है वह वंशानुकूल सुन्दर कार्य कर सकता है इसे आजकल के मनोवैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं। इस वंशानुक्रम को दृष्टिपथ में रखकर हमारे शास्त्रकारों ने बड़ी योग्यता से इस वर्ण व्यवस्था की स्थापना की थी जिसका प्राचीन काल में अत्यधिक महत्त्व था और आज भी कुछ कम नहीं है।

## (क) ब्राह्मण

### (१) परिच्छेद

#### ब्राह्मण का धर्म

चारों वर्णों में ब्राह्मण की गणना महत्त्व की दृष्टि से प्रथम है। मनु ने ब्राह्मणों के छः कर्मों का उल्लेख किया है:—

‘अध्यापनं, अध्ययनं, यजनं, याजनं तथा; दानं, प्रतिग्रहं चैव, ब्राह्मणानामकल्पयत्।’ अर्थात् (१) अध्ययन करना (२) अध्यापन करना (३) यज्ञ करना और (४) यज्ञ कराना (५) दान लेना और (६) दान देना—ये ही ब्राह्मणों के छः कर्तव्य हैं। प्राचीन काल में ब्राह्मणों का प्रधान कार्य विद्या का पढ़ना था। इसके पश्चात् वे गुरु से अधीत विद्या को अपने छात्रों को पढ़ाया करते थे। ब्राह्मण का अधिकांश समय अध्ययन और अध्यापन में ही व्यतीत होता था। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि:—

ब्राह्मण जब तक जीता है, ज्ञान की गुदरी को सीता है।

आजकल भी ब्राह्मणों का प्रधान कार्य अध्ययन और अध्यापन ही समझना चाहिए। ब्राह्मण एक बुद्धिजीवी वर्ग है। अतः अपनी बुद्धि से वह जीविकोपार्जन करता है। संस्कृत साहित्य में ब्राह्मणों को ‘भूसुर’ कहा गया है जिसका अर्थ है पृथ्वी का देवता। चूँकि प्राचीन काल में ब्राह्मणों का चरित्र अत्यन्त पवित्र था, वे विद्वान् तथा आस्थावान् थे, वे समाज के अग्रणी थे इसीलिए उन्हें ‘भूदेव’ या ‘भूसुर’ की यदि संज्ञा प्रदान की गई थी तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं।

#### महत्त्व

प्राचीन काल में ब्राह्मणों का बड़ा आदर तथा सम्मान था। इनका वचन भगवान् की वाणी समझी जाती थी।<sup>२</sup> विष्णु धर्म-सूत्र में लिखा है कि ब्राह्मण की वाणी कभी झूठी हो ही नहीं सकती।<sup>३</sup> गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी लिखा है कि देवताओं

१. चातुर्वर्णं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः—गीता

२. विप्र-वाक्यं जनार्दनः।

३. ब्राह्मणाभिहितं वाक्यं न मिथ्या जायते क्वचित्। वि० ध० सू० १६।२०



और ऋषियों (ब्राह्मणों) की वाणी सदा सत्य होती है।<sup>१</sup> भोजपुरी समाज में ब्राह्मणों का आज भी वही महत्व है जो प्राचीन काल में था। समाज के सभी वर्ग के लोग इनका आदर-सत्कार करते हैं। जहाँ भी कोई ब्राह्मण दिखाई पड़ा सभी लोग हाथ जोड़कर उसे प्रणाम करते हैं। ब्राह्मण के एक छोटे बालक के प्रति भी दूसरी जाति के बूढ़े लोग सन्मान प्रदान करते हैं।

ब्राह्मणों की उपयोगिता समाज के लिए अत्यन्त अधिक है। जब किसी के घर में पुत्र का जन्म होता है तब पुत्र की जन्म-कुण्डली बनाने के लिए ज्योतिषी को बुलाया जाता है। मुण्डन तथा यज्ञोपवीत के अवसर पर विविध विधानों को सम्पादित करने के लिए वैदिक जी को निमंत्रण दिया जाता है। विवाह आदि कृत्यों को सम्यक् रूप से सम्पादित करने के लिए काशी के वैदिक को बुलाना आवश्यक माना जाता है। भोजपुरी में वैदिक को 'बेदुआ' कहते हैं। अतः जब तक काशी का 'बेदुआ' विवाह में वेद नहीं 'भनता' अर्थात् वैदिक मन्त्रों का सस्वर उच्चारण नहीं करता तब तक विवाह का काम सफल नहीं समझा जाता। किम्बहुना, मानव जीवन के अन्तिम संस्कार मृत्यु पर भी अन्त्येष्टि क्रिया को सम्पादित करने के लिए किसी पण्डित का होना आवश्यक है।

इस प्रकार जीवन से लेकर मृत्यु पर्यन्त ब्राह्मण समाज की सेवा के लिए तत्पर रहता है। ऐसी परिस्थिति में यदि समाज उसे उचित आदर तथा सन्मान प्रदान करता है तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं समझनी चाहिए। इसीलिए ब्राह्मण जो कुछ भी उपदेश देता है, जो कोई आदेश करता है उसे सभी लोग "सत्य वचन महाराज" कह कर स्वीकार करते हैं। भोजपुरी की एक कहावत में ब्राह्मण के वचन को प्रामाणिक बतलाया गया है।<sup>२</sup> यद्यपि "बाबा वाक्यं प्रमाणम्" का प्रयोग किसी अन्य प्रसंग में किया जाता है परन्तु उसका भी आशय यही है कि जो प्राचीन, बड़े बूढ़े, बुद्धिमान् ब्राह्मण हैं उनके वाक्य को प्रामाणिक मानना चाहिए। आज भी समाज में विवाहादि मांगलिक कार्य के सम्बन्ध में पण्डित या ज्योतिषी जो निर्णय दे देते हैं उसे कोई टाल नहीं सकता।

### (१) अनुच्छेद

#### ब्राह्मणों के भेद

यों तो ब्राह्मणों के अनेक भेद हैं परन्तु इनके प्रधान भेद निम्नांकित हैं। (१) सरयूपारीण (२) कान्यकुब्ज, (३) गौड़ (४) सनाढ्य (५) सारस्वत आदि। इनमें कान्यकुब्ज ब्राह्मण अधिक शिक्षित और प्रगतिशील हैं। इनका प्रधान केन्द्र अवध प्रवेश है। लखनऊ, सीतापुर, उन्नाव आदि जिलों में इनकी संख्या अधिक पायी जाती है। ये बड़े ही श्रेष्ठ ब्राह्मण समझे जाते हैं जैसा कि "कान्यकुब्जाः द्विजाः श्रेष्ठाः" इस लोकोक्ति से प्रसिद्ध है। ये लोग भोजन आदि में स्पर्शास्पर्श का बहुत विचार रखते हैं। ब्राह्मणतर के द्वारा बनाये गये भोजन के ग्रहण की चर्चा तो दूर रही, कान्यकुब्ज लोग अपने स्वजातीय ब्राह्मण के हाथ का बनाया हुआ भोजन भी नहीं करते हैं। "अपनी अपनी डफली, अपना अपना राग" के सिद्धान्त के ये परम पक्षपाती हैं। भोजन के सम्बन्ध में इनकी छुआछूत की भावना चरम सीमा पर पहुँची हुई है। इनके सम्बन्ध में यह कहावत ठीक ही कही जाती है कि :—

#### "तीन कनौजिया, तेरह चूल्हा"

अर्थात् यदि तीन भी कनौजिया ब्राह्मण होंगे तो उनकी रसोई तेरह चूल्हों पर बनायी जायेंगी। भाव यह है कि स्पर्शास्पर्श की भावना के कारण ये एक दूसरे से बहुत दूर रहते हैं।

भोजपुरी प्रदेश में सरयूपारीण ब्राह्मणों की ही प्रधानता है। ये उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में तथा बिहार राज्य के पश्चिमी जिलों में फैले हुए हैं। सरयू (घाघरा) नदी के पार के जिलों में बसने के कारण ही इनका नाम सरयूपारीण पड़ गया है। जिस प्रकार पंजाब की प्राचीन सरस्वती नदी के तट पर निवास करने वाले ब्राह्मणों का नाम सारस्वत पड़ गया, सरयूपारीण नामकरण का भी यही कारण समझना चाहिए। लोकभाषा में ये ब्राह्मण 'सरजूपारी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ऐसा ज्ञात होता है प्राचीन काल में इनका प्रधान निवास सरयू नदी के किनारे ही रहा होगा। परन्तु आजकल ये गंगा, जमुना, गोमती, गण्डक आदि अनेक नदियों के द्वारा सिंचित भूमि में रहते हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने सारन, चम्पारन, राँची और पलामू की आरण्यक भूमि में भी अपना निवास स्थान बना लिया है।

१. मृषा न होई देव, ऋषि वाणी। रा० च० मा०।

२. ब्राह्मण वचन परमान।



### ऊँच-नीच की भावना

जिस प्रकार कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में जातीय श्रेष्ठता या नीचता का मापदण्ड 'विस्वा' है उसी प्रकार से सरयूपारीण ब्राह्मणों में कुलीनता का परिचायक 'तीन-तेरह' की कल्पना है। जो कान्यकुब्ज ब्राह्मण बीस विस्वे का होता है वह समाज में सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण बनने का दावा करता है। इसी प्रकार एक या दो 'विस्वा' का ब्राह्मण कुलीनता की अधम कोटि में है। यही कारण है कि बीस विस्वा वाले निर्धन, निरक्षर और निर्गुण वर से विवाह करने के लिए कम विस्वा वाले धनी, मानी ब्राह्मण भी लालायित रहते हैं। अपनी तथाकथित श्रेष्ठता का दुरुपयोग करते हुए ऐसे वरों के पिता मनमाना तिलक और दहेज माँगते हैं जिसका परिणाम बड़ा विषम होता है।

सरयूपारीण ब्राह्मणों में ऊँचता और नीचता का यह निर्णायक तत्व 'तीन तेरह' की भावना है। ऐसी किम्बदन्ती है कि भगवान् रामचन्द्र ने जब राजसूय यज्ञ किया था कि उस समय यज्ञ में सम्मिलित होने वाले ब्राह्मणों को उन्होंने भूयसी दक्षिणा देनी चाही। परन्तु सभी ब्राह्मणों ने दक्षिणा लेने के कार्य को निकृष्ट समझ कर इस दान को अस्वीकार कर दिया। परन्तु बिना दक्षिणा दिये हुए यज्ञ सफल कहीं समझा जाता, अतः भगवान् रामचन्द्र बड़े ही असमंजस में पड़े कि अब क्या करना चाहिए। उन्हें एक उपाय सूझा। उन्होंने ब्राह्मणों को जो ताम्बूल खाने के लिए दिया उसमें उन ब्राह्मणों को दान रूप में दातव्य धन राशि का उल्लेख कर दिया। विभिन्न गोत्रों के तेरह ब्राह्मणों ने उस ताम्बूल को खा लिया परन्तु तीन गोत्र के चालाक ब्राह्मणों ने उस पान को खोल कर देखा और उसमें उल्लिखित दान रूप में देय धनराशि को देखकर उसे ग्रहण करने से अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार दान न लेने के कारण ये तीन गोत्र वाले ब्राह्मण अपने को श्रेष्ठ मानने लगे और जिन तेरह ब्राह्मणों ने छलपूर्वक दिये गये दान को स्वीकार कर लिया था वे इनकी दृष्टि में नीच समझे जाने लगे। ये तीन गोत्र वाले ब्राह्मण हैं (१) गर्ग (२) गौतम और (३) शाण्डिल्य। गर्ग गोत्रीय ब्राह्मणों की उपाधि शुक्ल है और गौतम और शाण्डिल्य वाले मिथ आदि आस्पद से पुकारे जाते हैं। इन गोत्रों के अतिरिक्त काश्यप, भारद्वाज, घृतकौशिक, जमदग्नि, वशिष्ठ, आदि गोत्रों के ब्राह्मण तेरह की कोटि में आते हैं। "तीन तेरह" का यही रहस्य है।

भोजपुरी में यह लोकोक्ति प्रचलित है:—"तीन में ना तेरह में" जिसका भाव यह है कि हम न तो विशिष्ट तीन गोत्रों वाले ब्राह्मणों की तरह श्रेष्ठ हैं और न इतर तेरह प्रकार के ब्राह्मणों की भाँति नीच हैं। उपेक्षा की भावना को द्योतित करने के लिए यह कहावत कही जाती है जिसका आधार "तीन तेरह" की वह भावना है जिसका उल्लेख पहिले किया जा चुका है।

### पंक्ति-पावन ब्राह्मण

सरयूपारीणों में एक प्रकार के अन्य ब्राह्मण भी पाये जाते हैं जो अपने को श्रेष्ठ मानते हैं। ये 'पंक्ति पा न' ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'पंक्ति पावन' का शाब्दिक अर्थ होता है पंक्ति को पवित्र करने वाला। सैकड़ों ब्राह्मण जब भोजन करने के लिए एक साथ बैठते हैं, तब उसे पंक्ति या पाँत कहते हैं—जैसे—'बामन लोगन के पाँत बइठल बा।' ऐसा ज्ञात होता है कि अतीत काल में अपने को "पावनमन्याः" ये ब्राह्मण जिस पाँत में भोजन करने बैठते थे, वह पवित्र मानी जाती थी। इसीलिए कदाचित् इनका नाम "पंक्ति पावन" ब्राह्मण पड़ गया हो। मनु ने श्राद्ध के अवसर पर भोजन करने के लिए आमन्त्रित किये जाने वाले ब्राह्मणों में "पंक्ति पावनों" को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। डा० काणे ने अपने 'धर्मशास्त्र के इतिहास' में इन ब्राह्मणों का उल्लेख किया है जिससे ज्ञात होता है कि इन ब्राह्मणों की परम्परा बहुत प्राचीन है। आजकल इन ब्राह्मणों का गढ़ गोरखपुर और देवरिया के जिले हैं। इसके अतिरिक्त बस्ती जिले की भूतपूर्व रियासतों में पंक्तिपावनों का निवास प्रचुर परिमाण में पाया जाता है, जहाँ इनकी जीर्ण शीर्ण बस्तियाँ इनकी निर्धनता तथा दरिद्रता की साक्षी दे रही हैं।

"बीस बीस्वा" वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की तरह "पंक्ति पावन" ब्राह्मण भी—जो 'पतिहा' के नाम से अधिक प्रचलित हैं—उत्तम तथा पवित्र समझे जाते हैं। इतर ब्राह्मण अपनी लड़कियों का विवाह इन "पंक्ति पावनों" के घर में करना अपना सौभाग्य समझते हैं। इसके लिए इन्हें मुंहमाँगी दक्षिणा तिलक के रूप में देनी पड़ती है। इन्हें पंक्ति पावनों का निरक्षर पुत्र भी अन्य लड़कों की अपेक्षा उत्तम माना जाता है क्योंकि वह कुलीन वंश में पैदा हुआ है।

जो ब्राह्मण 'पंक्ति पावनों' के नियमों तथा मर्यादाओं का पालन करने में असमर्थ होते हैं अथवा उनका पालन करने से च्युत हो जाते हैं वे 'पंक्ति टूट' के नाम से प्रसिद्ध हैं। भोजपुरी में ये 'टुटहा' कहे जाते हैं। ऐसे ब्राह्मण पंक्तिपावनों की पंक्ति या श्रेणी से पृथक् कर दिये जाते हैं।

पंक्तिपावन ब्राह्मणों की क्या विशेषतायें हैं इन्हें स्पष्ट रूप से बतलाना बड़ा कठिन है क्योंकि इनका कहीं कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। हाँ, उनके व्यवहार से उनकी विशिष्टताओं का कुछ परिचय प्राप्त किया जा सकता है। पंक्तिपावनों के



घर की स्त्रियाँ न तो अपने हाथ से कपड़ा सीती हैं और न आटा को ही चलनी से छानती हैं। सूँ से किसी अन्न को फटक कर साफ करना भी इनके लिए निषिद्ध है। संभवतः ये सब कार्य इनके यहाँ दाइयाँ या नौकरानियाँ करती हैं। पंक्ति पावन ब्राह्मण स्वयं हल चलाने को निषिद्ध समझते हैं और खेती करना इनके लिए पाप है। इसका परिणाम यह होता है कि स्वयं खेती न करने के कारण इनका कृषि कर्म चौपट हो जाता है। घाघ ने लिखा है कि जो नौकरों के बल पर खेती कराता है उसका नाश ही समझना चाहिए। इन पंक्तिपावनों पर घाघ की यह उक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती है। पंक्तिपावन ब्राह्मण पवित्रता की दृष्टि से छुआछूत में अधिक विश्वास करते हैं। ये किसी का छुआ हुआ भोजन ग्रहण नहीं करते हैं। चौका में बैठकर खाते हैं और भोजन करते समय सिला हुआ वस्त्र शरीर पर धारण करना अपवित्र मानते हैं। ये लोग मांस भक्षण में कोई दोष नहीं मानते। पंक्तिपावनों का यह प्रासाद बड़ा जीर्ण तथा जर्जर हो गया और वे दिन दूर नहीं हैं जब कि यह प्रासाद भूमिसात् हो जायेगा।

## (२) अनुच्छेद

### ब्राह्मणों के अन्य भेद

(१) अथीथ—सरयूपारीण ब्राह्मणों के कुछ अन्य भी प्रकार हैं जिनकी गणना नीच कोटि के ब्राह्मणों में की जाती है। ऐसे ब्राह्मणों में 'अथीथ' प्रधान हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'अतिथि' शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ होता है वह व्यक्ति जिसके आने की कोई तिथि न हो। अर्थात् वह जब चाहे तब किसी के घर भिक्षा भी याचना के लिए अपनी स्वतंत्र इच्छा से चला जाये। भोजपुरी प्रदेश में ये 'अथीथ' ब्राह्मण आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं और जब ब्रह्मभोज किया जाता है उस समय ये सादर निमंत्रित किये जाते हैं।

### (२) गिर या गिरि—

एक दूसरे प्रकार के भी ब्राह्मण पाये जाते हैं जो प्रायः 'गिर' की उपाधि से अभिहित किये जाते हैं जैसे आ न्द गिर, पूरन गिर। यह गिर शब्द गिरि का अपभ्रंश रूप है। आद्य शंकराचार्य ने संन्यासियों का जो सगठन किया वह दशनामी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इन संन्यासियों ने—सरस्वती, भारती, गिरि, पुरी, आदि इस प्रकार के आस्पदों को धारण किया। इसीलिये ये 'दशनामी' के नाम से पुकारे जाते हैं। भोजपुरी प्रदेश के 'गिर' उपाधिधारी साधु इसी दशनामी 'गिरि' सम्प्रदाय के संन्यासी हैं। ये लोग गेरुआ वस्त्र तो पहिन्ते हैं परन्तु दण्ड और कमण्डलु धारण नहीं करते।

### (३) महाब्राह्मण—

संस्कृत के किसी कवि ने लिखा है कि ब्राह्मण, पात्र, निद्रा, यात्रा आदि शब्दों के पहिले 'महा' शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि इससे इनकी उत्कृष्टता द्योतित न होकर अपकृष्टता ही प्रकाशित होती है। इसीलिए भोजपुरी प्रदेश में महाब्राह्मण शब्द ब्राह्मणों की उस श्रेणी को द्योतित करता है जो अनादर की दृष्टि से देखी जाती है। 'महाब्राह्मण' को 'महापात्र' भी कहते हैं। ये 'करटहा' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। 'महापात्र' का ही अपभ्रंश रूप 'महापातर' है जो लोक में प्रचलित है।

जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो उसके तेरहवें दिन ब्राह्मण भोज किया जाता है। यह श्राद्ध संस्कार का अन्तिम दिन होता है और 'तेरही'—त्रयोदशाह—के नाम से प्रसिद्ध है। बारहवें दिन महाब्राह्मण को बुलाया जाता है और मृत आत्मा की शान्ति के लिए इसे शय्यादान, द्रव्यदान आदि दिया जाता है। लोगों की ऐसी धारणा है कि जब तक महाब्राह्मण भोजन न कर ले तब तक श्राद्ध का यज्ञ सम्पूर्ण नहीं समझा जाता है। साधारण जनता की इस धारणा का ये महाब्राह्मण बड़ा ही दुरुपयोग करते हैं। मृत व्यक्ति जितना ही अधिक 'कमासुत' होता है उसके श्राद्ध में ये उतना ही अधिक द्रव्य अपनी दक्षिणा के रूप में माँगते हैं और जब तक मनवांछित धन नहीं मिल जाता तब तक भोजन नहीं करते।

ये महाब्राह्मण बड़े ही कठोर, निर्दयी और क्रूरकर्मा होते हैं। मृत व्यक्ति के परिवारवाले तो दुःखी रहते हैं, फिर भी ये उनसे रुपया ऐंठने में तनिक भी बाज नहीं आते। श्राद्ध के अन्त में एक कटोरी में रखे गये दूध—जिसे 'तियाग' कहा जाता है—को पीने के लिए ये सैकड़ों रुपये फीस (दक्षिणा) के रूप में लेते हैं। इन्हीं सब निकृष्ट कर्मों के कारण समाज में ये तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाते हैं। किसी व्यक्ति को महाब्राह्मण या महापात्र कहना निन्दा का सूचक माना जाता है। इनके लिए प्रयुक्त 'करटहा' शब्द भी इनके प्रति समाज के आक्रोश तथा घृणा को सूचित करता है।

इन्हीं घृणित कार्यों के कारण महाब्राह्मणों की एक पृथक् जाति ही बन गयी है। ये अपनी ही जाति में विवाह आदि कर सकते हैं, अन्यत्र नहीं। कोई भी ब्राह्मण इनका सृष्ट किया हुआ जल ग्रहण नहीं करता।



## (४) करन्न--

ब्राह्मणों की ही एक अन्य भी श्रेणी है जो 'करन्न' के नाम से प्रसिद्ध है। यों ये लोग अपने को ब्राह्मण ही कहते हैं परन्तु कर्म, गुण और स्वभाव की नीचता के कारण इनकी गणना ब्राह्मण समुदाय में नहीं करनी चाहिए। 'करन्न' शब्द की व्युत्पत्ति का निर्णय करना कठिन है। ये बड़े ही भोजन भट्ट होते हैं और इनका एकमात्र पेशा मृतक के श्राद्ध में भोजन करना है। जहाँ ये किसी व्यक्ति की मृत्यु का समाचार सुनते हैं उसकी 'तेरही' में ये अनाहृत, अनिमन्त्रित, भोजन के लिए बिना बुलाये, अपनी उदर-दरी की पूर्ति के लिए प्रचुर संख्या में पहुँच जाते हैं। मृतक के परिवार वालों के द्वारा, इन्हें भोजन कराने में अपनी असमर्थता प्रकट करने पर भी ये "मान न मान, मैं तेरा मेहमान" की लोकोक्ति को चरितार्थ करते हैं। ये कितना ही हटाने पर भी भरपेट भोजन किये बिना नहीं हटते। जब ये भोजन करने के लिये सैकड़ों की संख्या में जमीन पर बैठकर डट जाते हैं तब ये लो। बड़े-बड़े घनाढ्यों के भोजन-भाण्डार का दिवाला निकाल देते हैं। खिलाने वाले हाथ जोड़कर इनसे पनाह माँगते हैं। अनियंत्रित, पेटू, भोजन-भट्ट की उपमा प्रायः 'करन्न' से दी जाती है जिन्हें कभी भी 'सुअन्न' खाने को नहीं मिलता।

## (५) शकद्वीपीय ब्राह्मण--

इन ब्राह्मणों को भोजपुरी में 'सकलदीपी' ब्राह्मण कहा जाता है परन्तु इनका शुद्ध नाम 'शाकद्वीपीय' है। ऐसा कहा जाता है कि प्राचीनकाल में ये शकद्वीप से यहाँ आये या लाये गये थे। ये श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं परन्तु भारत से बाहर शकद्वीप से आने के कारण ये सरयूपारियों से कुछ भिन्न समझे जाते हैं। वंश परम्परा के अनुसार ये प्रायः वैद्य का पेशा करते हैं। गाँवों में जहाँ कोई सरकारी डाक्टर या वैद्य नहीं हैं ये लोग अपनी आयुर्वेदीय दवाओं से जनता की सेवा करते हैं। ये ज्योतिषी भी अच्छे होते हैं। अतः ग्रामीण जनता अपने भविष्य को जानने के लिए इनके पास पहुँचती है। इस प्रकार इनके एक हाथ में पंचांग और दूसरे हाथ में दवा की पुड़िया होती है।

ब्राह्मण जाति के अन्तर्गत शकद्वीपीय ब्राह्मणों का एक पृथक् समुदाय बन गया है जो आपस में ही विवाहादि कार्य करते हैं। इनकी श्रेष्ठता, पवित्रता और विद्वत्ता सन्देह से परे की वस्तु है। ये सरयूपारीण ब्राह्मणों से पृथक् होने के कारण उनसे भोजन तथा विवाह का संबंध स्थापित नहीं कर सकते।

## (३) अनुच्छेद

## ब्राह्मणों की विशेषतायें

भोजपुरी लोक साहित्य—विशेषकर लोकोक्तियों—में ब्राह्मणों का जो उल्लेख पाया है उससे उनकी अनेक विशेषताओं का पता चलता है। ब्राह्मणों की सबसे बड़ी विशिष्टता यह है कि वे अपनी जाति के द्वेषी होते हैं। वे अपने ही भाइयों से घृणा करते हैं। इस संबंध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि ब्राह्मण, कुत्ता और नाऊ ये तीनों अपनी जाति को देखकर गुराते हैं।<sup>१</sup> इस विषय में संस्कृत के एक कवि ने ठीक ही लिखा है कि एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण को सामने आया देखकर कुत्ते की तरह गुरगुराता है :—

“ब्राह्मणं ब्राह्मणं दृष्ट्वा, श्वानवत् गुरगुरायते”

एक दूसरी कहावत में कहा गया है कि ब्राह्मण, कुत्ता और हाथी अपनी जाति के साथी नहीं होते।<sup>२</sup> इतना ही नहीं बल्कि ब्राह्मण, कुक्कुर और भाट की तरह अपनी ही जाति वाले को काटते हैं अर्थात् अपनी ही बिरादरी का नुकसान करते हैं।<sup>३</sup> ब्राह्मण और हाथी ये कभी अपना साथी नहीं खोजते।<sup>४</sup> इन कहावतों का भाव यह है कि ब्राह्मण अपनी जाति का शत्रु होता है और दूसरे ब्राह्मण को टिकने देना नहीं चाहता।

ब्राह्मणों की दूसरी विशेषता यह है कि ये बड़े ही भोजन-लोलुप और भोजन-भट्ट होते हैं। एक लोकोक्ति के अनुसार यदि ब्राह्मण को चिउड़ा और दही खाने को मिले तो वह बारह कोस अर्थात् चौबीस मील जा सकता है और कहीं लुचुई अर्थात्

१. बाभन, कुकुर, नाऊ; आपन जाति देखि गुराऊ।

२. बाभन, कुकुर, हाथी; आपन जाति के ये ना साथी।

३. बाभन, कुकुर, भाट; जाति जाति के काट।

४. बाभन, कुकुर, हाथी; ई ना जोहे आपन साथी। —लेखक का निजी संग्रह



पूड़ी पर हाथ साफ करने का निमंत्रण मिल गया तो १८ कोस अर्थात् छत्तीस मील भी पैदल चल कर जाना उसके लिए कठिन नहीं है।<sup>१</sup> परन्तु एक दूसरी कहावत के अनुसार यदि ब्राह्मण को चिउड़ा और दही खाने की तनिक सूचना भी मिल जाय तो वह अस्सी कोस अर्थात् एक सौ साठ मील तक झुक कर चला जा सकता है।<sup>२</sup> किम्बहुना, संस्कृत के एक श्लोक में तो यहाँ तक कह दिया गया है यदि ब्राह्मण के सामने पूड़ी (शङ्कुली) का केवल नामोच्चारण कर दिया जाय तो उसके लिए सौ योजन अर्थात् आठ सौ मील की यात्रा भी क्या दूर है?<sup>३</sup> इसमें सन्देह नहीं कि ये सब उक्तियाँ अतिशयोक्ति से पूर्ण हैं परन्तु ब्राह्मणों की भोजन प्रियता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता।

ब्राह्मण अपने घर का आटा गीला करना नहीं जानता बल्कि वह दूसरों के अन्न पर ही अपना पेट पालता है। जब जजमान का आटा और उसी का घी उसे पेट पूजा करने के लिए मिलता है तब वह बड़े प्रेम से आकण्ठ भोजन करता है।<sup>४</sup> वह दूसरों के ही धन का उपभोग करना उचित समझता है।<sup>५</sup> ब्राह्मण तो केवल पेट भर खाना जानता है परन्तु अहीर दूसरों को लूटता है।<sup>६</sup>

ब्राह्मणों की तीसरी विशेषता उनकी सादगी, सीधापन, और निष्कपटता है जो कभी कभी मूर्खता की सीमा तक पहुँच जाती है। एक सूक्ति के अनुसार ब्राह्मण को पोंगा कहा गया है अर्थात् वह छल-छद्म से रहित होता है।<sup>७</sup> यह ब्राह्मण की निन्दा नहीं बल्कि उसकी प्रशंसा ही समझनी चाहिए।

आजकल बहुत से साधु, सन्त और बैरागी ललाट पर तीन रेखाओं वाली टीका लगाकर मीठी मीठी बाणी बोलते हैं। इस प्रकार वे जनता को ठगा करते हैं।<sup>८</sup> चाहे ये साधु, सन्त, ब्राह्मण जाति के न भी हों परन्तु जनता में विश्वास उत्पन्न करने के लिये वे अपने को ब्राह्मण वंशावतंस ही बतलाते हैं। काशी के संन्यासियों से चकर रहने का उपदेश एक सूक्ति में दिया गया है और इनकी गणना राँड, साँड और सीढ़ी की श्रेणी में की गई है।<sup>९</sup>

गत पृष्ठों में प्रस्तुत किये विवरण से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि समाज के ब्राह्मणों का बड़ा ही महत्त्व है। भोजपुरी लोकोक्तियों में उनकी चारित्रिक विशेषताओं का जो कुछ उल्लेख मिलता है उसमें सत्य का अंश कुछ कम नहीं है परन्तु उनकी भोजन-भट्टता के संबंध में निश्चय ही अत्युक्ति का प्रयोग किया गया है।

### गुरु का महत्त्व तथा भेद

ब्राह्मणों में धार्मिक दृष्टि से सामान्यतया दो वर्ग उपलब्ध होते हैं। ये (१) गुरु और (२) पुरोहित के नाम से अभिहित किये जाते हैं। गुरु का शाब्दिक अर्थ है अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने वाला जब कि पुरोहित आगे आने वाली (पुरः) भलाई (हित) की चिन्ता करने वाला होता है। गुरु और पुरोहित इन दोनों में गुरु का स्थान श्रेष्ठ माना जाता है। गुरु अपने शिष्यों को ज्ञान का उपदेश देता है, उनको सन्मार्ग पर चलने का आदेश करता है। भक्तजन उसके उपदेशों का पालन कर अपने जीवन को सुखमय बनाते हैं। धर्म और ज्ञान का प्रचार करना उसका परम कर्तव्य होता है।

कुछ गुरु अपने शिष्यों को दीक्षा देने के कारण 'दीक्षागुरु' कहलाते हैं। भोजपुरी में इन्हें "कानफूकवा गुरु" कहा जाता है। ये अपने शिष्यों के कर्ण कुहरों में पंचाक्षर—"शिवाय नमः"—अथवा द्वादशाक्षर—"ओम् नमो भगवते वासुदेवाय"—मंत्र का उपदेश देते हैं। शिष्यों के कान में इन मंत्रों के फूंकने अथवा कहने के कारण इनको 'कनफूकवा गुरु' की संज्ञा दी गई है। ये वर्ष में कम से कम एक बार अपने शिष्यों के घर जाते हैं। उन्हें उपदेश देते हैं। विदाई के समय शिष्य धन, धान्य, वस्त्र आदि दक्षिणा के रूप में इन्हें देते हैं। इस वृत्ति को "चेलवाही" कहा जाता है जो इन गुरुओं की जीविका का एक मात्र साधन है।

१. चिउड़ा दही बारह कोस। लुचुई अठारह कोस॥
२. दही चिउड़ा के सुनगुन पाई। अस्सी कोस निहुरले जाई॥
३. शङ्कुली नाम मात्रेण, किं दूरं योजनं शतम्।
४. अनकर आटा, अनकर घीव। चाबस, चाबस, बाबा जी॥
५. अनकर धन पर, लच्छमी नारायन।
६. बाभन पेटे, अहीर बकोटे।
७. बाभन पोंग ही पोंग।
८. तीन फँकिया टीका, मधुरी बानी। दगाबाज के, इहे निसानी॥
९. राँड, साँड, सीढ़ी, संन्यासी। इनसे बचे तो सेवै कासी॥



गुरु की महिमा का पता निम्नांकित सात बातों से चलता है।

- (१) गुरु का आदर-सत्कार
- (२) उसका चरणामृत लेना
- (३) उसका उच्छिष्ट भोजन करना
- (४) 'सौ ठाकुरद्वारा ना एक गुरुद्वारा'
- (५) 'मन लागल हमार गुरु चरनन से'
- (६) मरने के पहिले गुरुमंत्र लेना आवश्यक
- (७) शास्त्रों में गुरु की महिमा

### पुरोहित

भोजपुरी में पुरोहित को 'उपुरोहित' कहा जाता है। पुरोहित का स्थान गुरु की अपेक्षा कुछ नीचा समझा जाता है। समाज में दोनों ही आदर और सत्कार के अधिकारी हैं परन्तु गुरु को विशेष सन्मान प्रदान किया जाता है।

जब किसी गृहस्थ के घर में पुत्र का जन्म होता है अथवा उसका मुण्डन या यज्ञोपवीत संस्कार किया जाता है तब पुरोहित को बुलाया जाता है। विवाह और गवना के समय भी पुरोहित की आवश्यकता होती है। किम्बहुना, किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् जो श्राद्ध कर्म किया जाता है उसमें पुरोहित को शय्यादान, वस्त्रदान, पात्रदान दिया जाता है। सत्यनारायण की कथा कहनी हो अथवा त्रिलोकी बाबा की कहानी, या दुर्गा सप्तशती का पाठ करना हो अथवा महामृत्युन्जय का जप—इन सभी कृत्यों का सम्पादन पुरोहित जी के द्वारा ही किया जाता है। इस प्रकार पुरोहित अपने यजमान—जिसे भोजपुरी में 'जजमान' कहते हैं—का सतत सहचर है। यह यजमान के सभी शुभ और अशुभ कर्मों में सदा उपस्थित रहता है। सच तो यह है कि गृहस्थ का दैनिक जीवन संबंधी तथा धर्म संबंधी कार्य गुरु के बिना भले ही चल जाय परन्तु पुरोहित जी के बिना जजमान की गाड़ी एक डग भी आगे नहीं बढ़ सकती। इसी से पुरोहित का कुछ महत्त्व समझा जा सकता है।

### जजमानी प्रथा

भोजपुरी में प्रचलित जजमान शब्द संस्कृत के 'यजमान' का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ है यज्ञ करनेवाला। चूंकि गृहस्थ सभी धार्मिक तथा "सेकुलर" कृत्यों को यज्ञ के रूप में ही सम्पादित करता है, अतः वह जजमान कहा जाता है। जब खेतों में अन्न बोया जाता है तब गृहस्थ अपने पुरोहित को बुलाकर इसके लिए शुभ मुहूर्त पूछता है और उसी समय में अन्न का बीजारोपण करता है। जब अन्न खेत में पक कर तैयार हो जाता है और 'दंवरी' कर घर लाया जाता है तब उसका एक विशिष्ट अंश जजमान अपने पुरोहित को देता है। इसी प्रकार से सभी मांगलिक कृत्यों के अवसर पर पुरोहित को धन और वस्त्र दिया जाता है।

पुरोहित अपने जजमानों के घर जाकर उसके धार्मिक कृत्यों का सम्पादन करता है। इसके फलस्वरूप उसे दक्षिणा दी जाती है। पुरोहित की जीविका का यही एकमात्र साधन होता है। यही "जजमानी प्रथा" के नाम से प्रसिद्ध है। आधुनिक समाज-शास्त्रियों ने इस प्रथा का बड़ा ही सांगोपांग विवेचन किया है तथा पुरोहित और जजमान के कर्तव्यों पर प्रचुर प्रकाश डाला है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में "पौरोहित्य" परीक्षा हुआ करती है जिसे उत्तीर्ण करने वाला व्यक्ति पुरोहित बनने का अधिकारी समझा जाता है। 'जजमानी प्रथा' समाज-शास्त्रियों के लिए अध्ययन का विस्तृत क्षेत्र है जिसके गंभीर मीमांसा की अत्यन्त आवश्यकता है।<sup>१</sup>

## (ख) क्षत्रिय

### (४) अनुच्छेद

वर्णों की गणना में दूसरा स्थान क्षत्रिय का है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में इन्हें विराट् पुरुष के बाहुओं से उत्पन्न बतलाया गया है।<sup>१</sup> मनुष्य के शरीर में मुजा शक्ति का प्रतीक है। अतः विराट् की बाहुओं से उत्पन्न क्षत्रियों का वीर धर्मावलम्बी होना स्वाभाविक ही है। महाकवि कालिदास ने क्षत्रिय शब्द की उत्पत्ति को बतलाते हुए लिखा है कि जो गरीबों और निर्बलों की

१. इस प्रथा के विशेष विवरण के लिए देखिए—दि जजमानी सिस्टम।

२. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्; बाहुः राजन्यः कृतः।



रक्षा करता है वही वास्तव में क्षत्रिय है।<sup>१</sup> अतः क्षत्रियों का एकमात्र धर्म समाज और देश की रक्षा करना था। इसमें सन्देह नहीं कि इन्होंने अपने धर्म तथा देश की रक्षा अपने प्राणों की बाजी लगा कर की है।

क्षत्रियों की विभिन्न जातियाँ और उप—जातियाँ पायी जाती हैं। अधिकांश क्षत्रिय अपने को सूर्यवंश और चन्द्रवंश से उत्पन्न मानते हैं। इन क्षत्रियों में सिसोदिया, उज्जैनवंशी, विसेन, हैहय वंशी आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। इन लोगों को अपने वंश पर बड़ा अभिमान है जो उचित ही है। ये लोग अपने आन के पक्के होते हैं। भोजपुरी प्रदेश में अनेक क्षत्रियों के वंशज विद्यमान हैं जो बड़े श्रेष्ठ हैं। समाज में इनका बड़ा ही आदर है और सभी लोग इन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। वास्तव में ये प्रतिष्ठा और मान के समुचित अधिकारी हैं।

**राजपूत**—यह शब्द संस्कृत के 'राजपुत्र' का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ है राजा का पुत्र या राजकुमार। मध्ययुग में राजस्थान में क्षत्रिय राजाओं का एकछत्र साम्राज्य स्थापित था जिसके कारण इस जनपद का नाम ही 'राजपुताना' पड़ गया। कर्नल टाड ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ—एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज आफ राजस्थान—में राजपूतों के शौर्य, पराक्रम, और वीरता का बड़ा ही सुन्दर तथा ओजस्वी वर्णन प्रस्तुत किया है। उसने लिखा है कि हल्दीघाटी राजस्थान की थर्मोपोली है और दिवेर उसका मेरेथान है। राजपूतों की आन तो प्रसिद्ध ही है। राजपूत अपनी आन का पक्का होता है और अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी शरणागत की रक्षा करता है। महाराजा हम्मीर की प्रतिज्ञा तो प्रसिद्ध ही है जिन्होंने शरण में आये हुए एक मुसलमान शासक की रक्षा के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया। इसीलिए उनके संबंध में यह कहावत प्रचलित है कि:—

**“तिरिया, तेल, हमीर-हठ, चढ़ै न दूजी बार।”**

राजपूतों का यह स्वाभाविक गुण है कि वे किसी के सामने झुकना नहीं जानते। वे समूल नष्ट हो जाना पसन्द करते हैं परन्तु किसी के आगे गिड़गिड़ाना नहीं जानते। उनकी इसी स्वभावगत विशेषता का वर्णन एक लोकोक्ति में इस प्रकार किया गया है।

**“राजपूत जाति मूसर के धनुही । टूटे त टूटे, नवे ना कबहीं ॥”**

अर्थात् राजपूत जाति मूसर<sup>२</sup> से बने हुए धनुष के समान है। इसलिए इनका टूटना तो संभव है परन्तु उसे झुकाया नहीं जा सकता। राजपूतों की अक्खड़पन का इससे कुछ अनुमान किया जा सकता है। एक दूसरी कहावत है—“सूते रजपूत, उठे अजगूत।”—अर्थात् जब सोया हुआ व्यक्ति हो, तब उसे राजपूत समझना चाहिए और जब जगा हुआ हो तब 'अजगूत' मानना चाहिए। राजपूत लड़ने-भिड़ने और युद्ध की कला में बड़े प्रवीण होते हैं। कभी-कभी ये जोश में आकर होश भी खो देते हैं। उपर्युक्त लोकोक्ति में प्रयुक्त 'अजगूत' शब्द का संकेत राजपूतों की वीरता की ओर है।<sup>३</sup>

राजपूतों की अनेक जातियाँ और उपजातियाँ उपलब्ध होती हैं जिनका वर्णन करना कठिन है। 'राजपूत अउर धान के ओर ना मिले' इस लोकोक्ति में इसी कथन की चरितार्थता का उल्लेख है। जिस प्रकार चावल की विभिन्न किस्मों—वास-मती, आलू चीनी, लटेरा, मोहन भोग, अरवा, उसिना, आदि का अन्त नहीं है, उसी प्रकार से राजपूतों की भी विभिन्न जातियों को समझना चाहिए।

राजपूतों की उपाधि प्रायः सिंह होती है। अतः पराक्रम में इनकी उपमा जंगल के राजा सिंह से दी जाती है। अवधी की एक पहेली में इनकी तुलना सिंह से की गई है:—

**“एक जाति अइसन अहै । घर, वन दुनो मां रहै ॥”**

कहने की आवश्यकता नहीं कि घर में रहने वाली यह जाति क्षत्रिय है और वन में निवास करने वाली जाति सिंह है।

## (ग) वैश्य

### (५) अनुच्छेद

वर्णों की गणना में तीसरा स्थान वैश्यों का है। मनु ने लिखा है कि खेती करना, गायों की रक्षा तथा व्यवसाय करना ये वैश्यों के स्वाभाविक कर्म हैं। “कृषिगोरक्षवाणिज्यं, वैश्य कर्म स्वभावजम्”। आजकल वैश्यों का प्रधान व्यवसाय व्यापार

१. क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः, क्षत्रस्य शब्दः भुवनेषु रूढः —रघुवंश

२. गोला और मोटा काष्ठ खण्ड जिससे ओखली में चावल छाँटा जाता है।

३. डॉ० शशि शेखर तिवारी । —भो० लो०, पृ० १३४।



करना है। ये समाज के लोगों के लिए उनके जी न की उपयोगी वस्तुओं को सुलभ कर उनका पालन करते हैं। वैश्यों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में इनका उल्लेख पाया जाता है, जहाँ इनकी उत्पत्ति विराट् पुरुष के उरु अर्थात् जंघे से बतलाई गई है।

**बनिया**—वैश्यों की भी अनेक जातियाँ और उपजातियाँ पायी जाती हैं जिनमें अग्रवाल, बारहसेनी आदि प्रसिद्ध हैं। गाँवों में वैश्य लोग खाद्य-पदार्थों का व्यापार करते हैं। ये अपनी दूकान पर चावल, दाल, आटा, सत्तू, गुड़, नमक आदि सामग्री को बेचते हैं जो ग्रामीण जनों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। ये बिसातखाना की दूकान भी करते हैं जहाँ अन्नादि को छोड़कर अन्य आवश्यक वस्तुओं का भी विक्रय किया जाता है।

व्यापारी होने के कारण बनिया मितव्ययी, व्यवहार-कुशल, और चतुर होता है। लोक साहित्य में ये अपनी कंजूसी, चालाकी, और दबूपन के लिए प्रसिद्ध हैं। एक लोकोक्ति के अनुसार यह अत्यन्त कंजूस होता है। यदि यह प्रसन्न होता है तभी एक दमड़ी से अधिक का दान नहीं करता।

**‘बनिया के खुसी भइल, दमड़ी के दान कइलसि।’**

बनिया का हृदय उदार नहीं होता। वह अत्यन्त संकुचित तथा संकीर्ण हृदय वाला होता है। इसीलिए यह कहा गया है कि बनिया का जीव घनिया के बराबर होता है। ‘बनिया के जीव घनिया बरोबर।’ बनिया किसी को दान के रूप में अपना धन नहीं देता है। परन्तु जब वह संकट में पड़ता है तभी अपने धन को खर्च करता है। इसीलिए इसकी गणना आम और नीबू के साथ की गई है जो चाँपने अर्थात् दवाने से ही रस देते हैं:—

**‘आमी, नीबू, बनिया, चाँपे से रस देय।’**

इसी अर्थ को द्योतित करने वाली एक दूसरी लोकोक्ति इस प्रकार है:—

**‘माँगे बनियाँ गुड़ ना दे, मुँह मलला पर भेली दे।’**

अर्थात् माँगने पर बनिया गुड़ का एक टुकड़ा भी नहीं देता परन्तु उसका मुँह मल देने पर अर्थात् मारने पर वह ‘भेली’ देने के लिए तैयार हो जाता है।

बनिया बड़ा ही चालाक होता है। वह ‘डण्डी मारने’ (कम तौलना) की कला में अत्यन्त निपुण होता है। वह कभी भी पूरा तौल कर नहीं देता है। वह इस सफाई के साथ ‘डण्डी मारता’ है कि तीन पाव सामग्री को एक सेर तौल कर दिखला देता है।

**“कुछ हाथ की सफाई, कुछ डण्डी के फेर।  
दोसरा के तीन पाव, बनिया के सेर॥”**

ठग लोग अनजान में दूसरों को ठगते हैं परन्तु बनिया तो अपने ग्राहकों को उनके सामने ही धोखा देता है।

**“जान मारे बनिया, अन-जान मारे ठग।”**

**(घ) शूद्र**

**(६) अनुच्छेद**

वर्णों में अन्तिम वर्ण शूद्र माना जाता है। मनु ने इनके विषय में लिखा है कि इनका कार्य इतर तीन वर्णों की सेवा करना है। यही इनका स्वाभाविक कार्य है:—

**“परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।”**

यह अन्तिम वर्ण आज भी अपनी परम्परा के अनुसार अपने कार्य में निरत है।

भोजपुरी प्रदेश में शूद्रों की अनेक जातियाँ तथा उपजातियाँ उपलब्ध होती हैं। ये तथाकथित अस्पृश्य जातियाँ हैं। उच्चवर्ण के लोग इन जातियों के अन्न और जल को ग्रहण नहीं करते थे और आज भी नहीं करते हैं। यद्यपि भारतीय संविधान

**१. बनियाँ दे ना पूरे तउल।**



ने अस्पृश्यता को एक अपराध घोषित कर दिया है और कानून की दृष्टि से अस्पृश्यता अवैध करार दे दी गयी है। परन्तु व्यवहार के क्षेत्र में यह आज भी जीवित है। आज सार्वजनिक जलाशयों—जैसे वापी, कूप, तड़ाग आदि तथा सार्वजनिक स्थानों—होटल, धर्मशाला, सराय आदि—में इन अस्पृश्य कही जाने वाली जातियों का प्रवेश निषिद्ध नहीं है। ये लोग सभी स्थानों में निःशंक विचरण कर सकते हैं।

इस क्षेत्र में शूद्र वर्ण की अनेक जातियाँ निवास करती हैं जिनमें चमार, भंगी, दुःसाध, हलखोर एवं बँसफोर आदि प्रसिद्ध हैं। महात्मा गाँधी ने इन जातियों को 'हरिजन' का सुन्दर नाम प्रदान किया है। अतः यहाँ इनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

## हरिजन जातियाँ

(१) चमार—हरिजन कही जाने वाली जातियों में चमार' सबसे अधिक प्रसिद्ध है। चमार शब्द संस्कृत के 'चर्म-कार' का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ है चमड़े को करने वाला अथवा बनाने वाला। जैसा कि इस शब्द से ही विदित होता है, चमार लोगों का प्रधान व्यवसाय चमड़े का है। ये लोग मृत पशुओं की खाल से देशी जूता बनाने का कार्य करते हैं। इन चमार लोगों के द्वारा बनाये जाने के कारण ही इस जूते का नाम 'चमरौघा' पड़ गया है। ये लोग इन देशी जूतों को गाँव के बाजारों में बेचने के लिए ले जाते हैं और इनका विक्रय करके अपनी जीविका चलाते हैं। ये जूते बिना कमाये हुए चमड़े से बनाये जाते हैं, अतः बड़े ही सख्त तथा कठोर होते हैं।

गाँवों में जो पशु—जैसे गाय, बैल, भैंस आदि—मर जाते हैं उन्हें इन चमारों को निःशुल्क दे दिया जाता है जिनके चमड़े से जूता बनाकर ये अपने परिवार का पालन-पोषण करते हैं। अतः लोगों की यह धारणा है कि ये लोग सदा यह मनाते रहते हैं कि कोई जानवर मर जाय जिससे इनकी जीविका चालू रहे। इस संबंध में एक कहावत प्रचलित है कि:—

“चमार के मनबला से डाँगर ना मुवे”

अर्थात् चमार के द्वारा मनौती करने से पशु नहीं मर जाते। इस लोकोक्ति के द्वारा इनके व्यवसाय पर भी किंचित् प्रकाश पड़ता है।

चमार लोगों का रूप-रंग प्रायः काला होता है। यही इनका स्वामाविक रूप है। परन्तु यदि ब्राह्मण का रंग काला हो और चमार गौर वर्ण का हो—अर्थात् अपनी जाति के रूप-रंग से इनमें विपरीतता पायी जाय—तो ये बड़े ही नीच तथा विश्वास घाती होते हैं। कहावत है:—

“करिया बाम्हन, गोर चमार । कायर छत्री, बड़ हतियार॥”

एक लोकोक्ति के अनुसार भादों में भैंसा और चैत्र के महीने में चमार बहुत ही प्रसन्न होता है—“भादों भँइसा चैत चमार।” चैत मास में चमारों के प्रसन्न होने का कारण यह है कि इस मास में रबी की फसल होती है। इनको पीने के लिए ताड़ी मिलती है तथा फाल्गुन और चैत मास में जो विवाह आदि होते हैं उनमें नेग के रूप में इन्हें वस्त्र तथा द्रव्य मिलता है।

चमार लोग गाँव के बाहर मिट्टी का मकान बनाकर रहते हैं। इनके निवास-स्थान को 'चमरौटी' कहा जाता है। विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर ये लोग ढोल, तुरही, डफरा आदि बाजा बजाया करते हैं जो इनके नाम से 'चमरुआ बाजा' के अभिधान से प्रसिद्ध है। इनकी स्त्रियों को 'चमाइन' या 'चमइन' कहते हैं जो गाँवों में किसान के घर बच्चा पैदा होने पर 'नर्स' का काम करती हैं।

(२) डोम—डोम जाति बड़ी प्रसिद्ध है। ये श्मशान के स्वामी माने जाते हैं। बिहार राज्य के पश्चिमी तथा उत्तर-प्रदेश के पूर्वी भागों में 'मगहिया डोम' पाये जाते हैं जो अनेक कारणों से विख्यात हैं। इस जाति के लोग श्मशान घाट पर दाह-संस्कार के समय मृतक को जलाने के लिए 'आग देते' हैं। काशी में मणिकर्णिका घाट पर शव को जलाने के लिए डोम ही अग्नि देता है जिसके लिये ये लोग बड़ी लम्बी दक्षिणा माँगते हैं। यह तो प्रसिद्ध ही है कि राजा सत्य हरिश्चन्द्र काशी में किसी

१. ब्रिग्स (W. G. Briggs) ने चमारों की जनसंख्या, क्षेत्र विस्तार, व्यवसाय, रहन-सहन और सामाजिक प्रथाओं के संबंध में बहुत ही सुन्दर गवेषणात्मक तथा शोधपूर्ण पुस्तक—दि चमारस—लिखी है जिसमें इस जाति का समाज-शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। विशेष विवरण के लिए इस पुस्तक को देखना चाहिए।

२. लेखक का निजी संग्रह।



डोम के हाथों बिके थे और उनका कार्य श्मशान घाट पर टैक्स वसूल करना था। परन्तु डोमों का यह व्यवसाय केवल शहरों में ही सीमित है।

गांवों में ये लोग बाँस की डलिया, चगेली, छोट्टा और सीक से सूप आदि बनाकर अपनी जीविका उपार्जन करते हैं। जब किसी धनी व्यक्ति के घर बारात आती है अथवा किसी प्रकार का भोज होता है तब बारातियों अथवा ब्राह्मणों के भोजन के पश्चात् ये जूठे पत्तलों को एकत्रित करते हैं और जो उच्छिष्ट अन्न भोजनोपरान्त बच जाता है उसे खाकर ये अपनी जिन्दगी बसर करते हैं। डोम लोग देशी शराब तथा ताड़ी पीने के आदी होते हैं। रात में शराब पीकर जब ये मदमस्त हो जाते हैं तब बड़ा हल्ला तथा शोर-गुल मचाते हैं जिसे “डोम घाँउज” कहा जाता है। इसी मस्ती में ये मार पीट भी कर बैठते हैं। भोजपुरी लोकसाहित्य में इनके व्यवसाय की ओर संकेत किया गया है। कहावत है—“भरला के पाछे डोम राजा।” अर्थात् किसी व्यक्ति के मरने पर उसका स्वामी डोम हो जाता है। भाव यह है कि डोम की आज्ञा के बिना मृतक के दाह-संस्कार के लिए अग्नि कदापि नहीं मिल सकती। डोम स्वयं नीच वर्ग के सदस्य हैं परन्तु वे धोबी को अपने से भी नीच समझते हैं—

“डोम के जनते धोबी नीच।”

अर्थात् डोमों के अनुसार धोबी सबसे नीच कर्म करने वाले हैं। इसीलिए डोम धोबी के हाथ का हुआ भोजन आदि ग्रहण नहीं करते। इससे ज्ञात होता है कि स्पृश्यास्पृश्य की प्रथा हरिजनों में भी प्रचलित है। डोम अघोरी से हार जाता है—“डोम हारे अघोरी से” अर्थात् डोम अघोरी (औघड़) से भी गन्दे रहते हैं।

ऐसा ज्ञात होता है कि मध्य युग में डोम एक पराक्रमी जाति थी। डॉ० द्विवेदी ने लिखा है कि “बंगाल के डोम सहजिया बौद्ध थे और किसी जमाने में प्रबल, पराक्रान्त राज्यों के अधीश्वर थे। अधिकार वंचित होने पर ये लोग दुर्दान्त हो गये थे।” ब्रिटिश शासन काल में डोमों की गणना ‘क्रिमिनल ट्राइब्स’ में की जाती थी और पुलिस इनकी हरकतों पर कड़ी निगाह रखती थी। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इनके ऊपर से यह प्रतिबन्ध हटा लिया गया है और अब ये लोग स्वतंत्र नागरिक हैं। दुःसाधों के समान डोम भी अपनी शक्ति और साहस के लिए प्रसिद्ध हैं।

(३) दुःसाध—दुसाध शब्द का संबंध संस्कृत के ‘दुःसाध्य’ से ज्ञात होता है जिसका अर्थ है कठिनता के साथ साधन करने योग्य। इस शब्दार्थ से ही इस जाति की विशेषता का कुछ अनुमान किया जा सकता है। दुसाध एक अन्त्यज जाति है। अंग्रेज लोग जब इस देश में अपना राज्य स्थापन में संलग्न थे तो उन्हें कुछ अत्यन्त दुर्दान्त जातियों का सामना करना पड़ा था। उत्तर भारत के अहीर और दुसाध तथा बंगाल के डोम बड़े लड़के थे और कानून को मानने से सदा इन्कार करते थे। चतुर अंग्रेजों ने इन जातियों से चौकीदारी का काम लेकर इन्हें अपने वश में कर लिया।<sup>१</sup> दुसाधों के पुरातन इतिहास का पता लगाना कठिन है। परन्तु निःसन्देह ये किसी अधिकार-च्युत बड़ी जाति के भग्नावशेष होंगे। अब ये लोग अपने को दुःशासन के वंशज बताते हैं।<sup>२</sup>

गांवों में दुसाध जाति के लोग प्रायः चौकीदारी का काम करते हैं। ये गाँव के प्रहरी हैं और ग्रामीण जनता की रक्षा करना ही इनका प्रधान कार्य है। गाँव में यदि कोई चोरी, डकैती, मार-पीट या खून-खच्चर होता है तो उसकी सूचना ये अति शीघ्र निकटतम पुलिस स्टेशन को देते हैं और इनकी सूचना पाते ही पुलिस वहाँ उपस्थित होकर शान्ति की स्थापना करती है। इस प्रकार चौकीदार—जो प्रायः दुसाध जाति का सदस्य होता है—भारतीय शासन-सूत्र की सबसे छोटी ईकाई (unit) है। अतएव उसका एक विशेष स्थान है।

दुसाध की झोपड़ी गाँव से बाहर बनायी जाती है। यह भी एक अस्पृश्य जाति है। अतः गाँव के भीतर इनका निवास उचित नहीं माना जाता। इस संबंध में एक कहावत प्रसिद्ध है।

“दुसाध के खोभाड़, कहीं गाँव बसेला”

अर्थात् दुसाध की झोपड़ी के पास कहीं गाँव बसाया जाता है? आशय यह है कि दुसाध का निवास-स्थान गाँव के बाहर होता है। इस जाति के सदस्य चोरी भी करते हैं जिसका संकेत निम्नांकित लोकोक्ति में पाया जाता है।

१. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : अशोक के फूल, पृ० ३४।

२. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : अशोक के फूल, पृष्ठ ३४।

३. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : अशोक के फूल, पृ० ३४।



“दुसाध जाति खाये नीचे, ताके ऊँचे”<sup>१</sup>

इसका भाव यह है कि दुसाध जाति दूसरों के यहाँ नीचे बैठकर खाती है परन्तु उसकी दृष्टि सदा ऊँची रहती है। अर्थात् उनकी नजर ऊँची जगहों पर दौड़ती रहती है। ये लोग चोरी करने के लिये दूसरों के घरों का भेद लेते रहते हैं।

दुसाधों के देवता ‘राहु’ माने जाते हैं। ये लोग इनकी मिट्टी की प्रतिमा बनाकर पूजा करते हैं जिसमें ‘गाँजा’ का प्रयोग अधिक किया जाता है। गाँवों में दुसाध लोग सूअर पालते हैं जिनके मांस को संभवतः ये लोग खाते हैं। ये लोग सूअर के बच्चों को बेंचकर धन कमाते हैं। इस प्रकार इनका यह व्यवसाय आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद तथा उपयोगी है। सूअर और उनके बच्चों को एक छोटे से घर में रखा जाता है जिसका दरवाजा बड़ा ही छोटा और तंग होता है। यह ‘खोभारि’ के नाम से प्रसिद्ध है। इसीलिये गन्दे, छोटे, तंग, और बहुल-संकुल स्थान को ‘खोभारि’ की संज्ञा प्रदान की जाती है।

(४) बँसफोर—यह भी एक अस्पृश्य जाति है। जैसा कि इसके नाम से ही विदित होता है इसका व्यवसाय बाँस को फोरना या चीरना है। इसीलिये ये ‘बाँसफोर’ के नाम से अभिहित किये जाते हैं। इनका प्रधान व्यवसाय बाँस को चीरकर उसकी पतली पतली ‘पत्तियाँ’ बनाना है। इन्हीं पत्तियों के द्वारा ये लोग दौरा, दौरा, डाली, छोट्टा, पंखी, बेनिया, आदि बाँस के पात्र बनाते हैं। दौरा-दौरा आदि बड़े पात्र विवाह आदि में पूड़ी और मिठाई रखने के काम लाया जाता है। बेनिया का उपयोग पंखा झलने के काम में होता है। इस प्रकार बँसफोर जाति के लोग किसानों के लिए जितने भी उपयोगी बाँस के पात्र हैं, उनका निर्माण करते हैं।

(५) हलखोर—शहरों में जो कार्य भंगी किया करते हैं गाँवों में वही काम हलखोर का समझना चाहिए। इस शब्द की निरुक्ति के संबंध में कुछ कहना बड़ा कठिन कार्य है। क्या ‘हलालखोर’ से इसका कुछ संबंध तो नहीं है? ये लोग गाँव में बने “उठऊवा पाखाना” को साफ करते या कमाते हैं जिसके लिए इन्हें स्वल्प द्रव्य प्रदान किया जाता है। इनकी स्त्रियों को ‘हलखोरिन’ कहते हैं जिनकी दूसरी संज्ञा ‘हेलिन’ भी है। ये लोग अपने परिश्रम के द्वारा गाँव की गन्दगी को दूर करने में लगे रहते हैं। गन्दी नाली को साफ करना, घूर को ‘बीगना’, तथा कूड़े-करकट और कतवार को फेंकना इनका ही काम है। इस प्रकार गाँवों के भीतर सफाई रखना इनका काम है।

(६) धिरिकार—यह भी एक अस्पृश्य जाति है जो गाँवों में कहीं कहीं पायी जाती है। ‘धिरिकार’ शब्द धिक्कार से संबंधित जान पड़ता है। चूँकि इस जाति के सदस्यों को उच्चवर्ग के लोग धिक्कारते रहे होंगे, इनको घृणा की दृष्टि से देखते रहे होंगे, अतएव इनका नाम ‘धिरिकार’ पड़ गया होगा। हरिजनों में भी यह जाति अत्यन्त निम्न समझी जाती है। इनका प्रधान व्यवसाय क्या है यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। मनु ने ‘चाण्डाल’ को पाँचवाँ वर्ण कहा है और इन्हें ‘अधमाधम’ की संज्ञा प्रदान की है। वर्तमान लेखक की विनम्र सम्मति में मनु के द्वारा उल्लिखित ‘चाण्डाल’ के वंशज वर्तमान ‘धिरिकार’ जाति के लोग हैं। संभवतः धर्मशास्त्रों में इस जाति का कहीं उल्लेख नहीं पाया जाता। इसके सदस्यों की संख्या प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है।

गत पृष्ठों में हरिजन जातियों का जो वर्णन प्रस्तुत किया गया है उनके संबंध में यह जान लेना आवश्यक है कि उच्च वर्ग के लोग इन्हें अस्पृश्य समझते हैं और इनके द्वारा स्मृष्ट अन्न और जल को ग्रहण नहीं करते। परन्तु यह बहुत ही आश्चर्य-जनक तथा मनोरंजक विषय है कि हरिजन जातियों में भी स्पर्शास्पर्श की भावना विद्यमान है। इनमें भी ऊँच-नीच का विचार पाया जाता है। उदाहरण के लिए चमार जाति के लोग डोम का छुआ हुआ पानी नहीं पी सकते और न दुसाध लोग हलखोर या धिरिकार के यहाँ भोजन ही कर सकते हैं। इस प्रकार तथाकथित अस्पृश्यों में भी स्पृश्यास्पृश्य की भावना अपने उग्र रूप में पायी जाती है। जब अछूत ही आपस में छुआछूत का विचार रखते हैं तब उच्च वर्ग के लोग इस भावना से भावित हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

परन्तु आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार से तथा केन्द्रीय और राज्य सरकारों के उद्योग से स्पृश्यास्पृश्य की भावना अब धीरे-धीरे नष्ट हो रही है और वे दिन अब दूर नहीं जब यह अतीत की वस्तु बन कर रह जायेगी। गाँवों में अब हरिजनों की दशा सुधर रही है। सार्वजनिक स्थानों में जाने के लिए उन पर अब कोई प्रतिबन्ध नहीं है और वे स्वतन्त्र भारत के स्वतंत्र नागरिक के रूप में निवास कर रहे हैं। सरकारी नौकरियों में उनका ‘कोटा’ निश्चित हो जाने के कारण उनकी आर्थिक दशा भी सुधरने लगी है और उनकी सर्वांगीण उन्नति होने लगी है।



## आश्रम

## (२) परिच्छेद

भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने मनुष्य के जीवन की अवधि सामान्यतया एक सौ वर्ष मानी है। इसी कारण वैदिक आर्य सदा सौ वर्ष जीवित रहने की प्रार्थना किया करते थे। प्रतिदिन भगवान् से उनकी यही विनती रहती थी कि—

१. जीवेम शरदः शतम्।

४. प्रब्रवाम शरदः शतम्।

२. पश्येम शरदः शतम्।

५. अदीना : स्याम शरदः शतम्।

३. शृणुयाम शरदः शतम्।

भूयश्च शरदः शतात्।

अर्थात् हम लोग एक सौ वर्षों तक जीवित रहें। सौ वर्षों तक देखते, सुनते और बोलते रहें। हम सौ वर्षों तक सभी इन्द्रियों से समर्थ रहें। कभी दीन न बनें और इस प्रकार अपने जीवन के सौ वर्षों को प्रसन्नता पूर्वक व्यतीत करें।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने मानव जीवन के इन सौ वर्षों को चार आश्रमों अथवा अवस्थाओं में विभक्त किया है:—

(१) ब्रह्मचर्य (२) गार्हस्थ (३) वानप्रस्थ तथा (४) संन्यास। ये जीवन की चार अवस्थाएँ हैं। प्रत्येक आश्रम में मनुष्य के लिए एक विशिष्ट कार्य करना निर्धारित किया गया है। इन चार आश्रमों में से प्रत्येक को (२५) पचीस वर्षों में विभक्त किया गया है। यथा—

(१) ब्रह्मचर्य आश्रम—१ वर्ष से २५ वर्ष तक

(३) वानप्रस्थ आश्रम—५० वर्ष से ७५ वर्ष तक

(२) गृहस्थ आश्रम—२५ वर्ष से ५० वर्ष तक

(४) संन्यास आश्रम—७५ वर्ष से १०० वर्ष तक

## (१) ब्रह्मचर्य आश्रम

प्राचीन परम्परा के अनुसार मनुष्य को प्रथम पचीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। उसका सबसे प्रधान कार्य अविवाहित रहकर वेद का अध्ययन करना है। यह कहना कुछ अनुचित न होगा कि भोजपुरी प्रदेश में आश्रम-परम्परा का सर्वथा ह्रास हो गया है। वेदाध्ययन की प्राचीन प्रणाली—जिसके अनुसार यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् बालक गुरुकुल में जाकर वेदों का अध्ययन करता था—बिल्कुल लुप्त हो गई है। अब न तो ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करने की कोई अवधि है और न तो अध्ययन के काल का कोई समय निश्चित है।

मनु ने ब्राह्मण और क्षत्रिय के बालकों के यज्ञोपवीत का विधान क्रमशः उनके जन्म के आठवें और बारहवें वर्ष में किया है। इसके पश्चात् वे गुरुकुल में जाकर विद्याध्ययन किया करते थे। परन्तु आजकल इस प्रथा का सर्वथा लोप हो गया है। कदाचित् ही कोई ब्राह्मण अपने पुत्र का उपनयन संस्कार आठवें वर्ष में सम्पादित करता हो। यदि कोई पुराण-पन्थी इस नियम का पालन भी करे तो उसके पुत्र के गुरुकुल में जाने की कोई व्यवस्था नहीं है। अतः वह नियमपूर्वक पचीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने में असमर्थ है।

भोजपुरी प्रदेश में क्षत्रिय और वैश्यों के यज्ञोपवीत की चर्चा तो दूर की बात है, ब्राह्मण-बालकों के भी जनेऊ-संस्कार का कोई निश्चित समय नहीं है। “अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयीत” मनु का यह विधान उनकी स्मृति में ही सुरक्षित रह गया है, अब उसका पालन कोई भी व्यक्ति नहीं करता।

अनेक ब्राह्मण अपने बालकों का यज्ञोपवीत विवाह के अवसर पर ही किया करते हैं। उनके कुल में विवाह से पहिले बालक का जनेऊ नहीं सहता। अतः ये दोनों संस्कारों को एक ही में मिला देते हैं। आर्थिक दृष्टि से यह व्यापार उनके लिए सस्ता और सरल पड़ता है। जहाँ यज्ञोपवीत संस्कार पृथक् रूप से सम्पादित किया जाता है वहाँ भी अक्षरारंभ, वेदाध्ययन और समावर्तन—ये तीनों ही संस्कार एक ही दिन में, कुछ घंटों के भीतर, समाप्त कर दिये जाते हैं। जहाँ जनेऊ के अवसर पर विवाह भी कर दिया जाता है, वहाँ पाँच संस्कारों का विधान दो या तीन दिनों के भीतर ही इतिश्री को प्राप्त करता है। इसे संस्कार-संकर कहें अथवा संस्कार-पंचामृत इसका निर्णय करना कठिन है।

भोजपुरी-क्षेत्र में बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित है। आज से लगभग चालीस-पचास वर्षों पूर्व, आठ-दस वर्षों के बच्चों का विवाह होता था। यह प्रथा प्रायः आज भी प्रचलित है। जिस समाज में बालकों का विवाह इतनी स्वल्प आयु में किया जाता हो उस समाज के लोगों के द्वारा ब्रह्मचर्य आश्रम के पालन की आशा दुराशा मात्र है। सच तो यह है कि भोजपुरी बालक प्रथम आश्रम में वर्तमान रहते हुए भी गृहस्थाश्रम के आनन्द का अनुभव करने लगता है। आश्रमों का यह व्यत्यय बड़ा ही शोचनीय है। अतः इस प्रदेश में ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन कदाचित् ही कोई व्यक्ति करता हो। आश्रमों की यह संकरता हमारे ब्रह्मचर्य जीवन का सर्वथा नाश कर रही है और इसके फलस्वरूप हमारा बौद्धिक विकास भी समुचित रूप से नहीं हो रहा है।



## (२) गृहस्थ आश्रम

अधिकांश भोजपुरी युवकों का विवाह ब्रह्मचर्य आश्रम की समाप्ति के पहिले ही हो जाया करता है। अतः गृहस्थ आश्रम में उनके प्रवेश की अवधि की कोई रेखा नहीं खिंची जा सकती। भोजपुरी लोक साहित्य में ऐसे अनेक गीत उपलब्ध हैं जिनमें बाल-विवाह की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। कोई युवती—जिसका विवाह किसी बालक पति से हो गया है—अपने हृदय की मार्मिक पीड़ा को व्यक्त करती हुई भोला बाबा (शिवजी) से उलाहना देती हुई कहती है कि:—

“सबके त देल भोला; अन, धन, सोनवा।  
बनवारी हो, हमरा के लरिका भतार।”

“बनवारी” का यह गीत इस प्रदेश में बड़ा लोक-प्रिय है। कहने का आशय यह है कि बाल-विवाह के कारण ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रम में जो अव्यवस्था उत्पन्न हो गई है, उसके कारण इस समाज का व्यक्ति किसी भी आश्रम के सम्यक् परिपालन में असमर्थ है। विवाह के पश्चात् घर बसाने की चिन्ता होना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार अपनी गृहस्थी के झंझटों में पड़ा हुआ भोजपुरी किसान अपना जीवन समाप्त कर देता है। कितने लोग वानप्रस्थ या संन्यास ग्रहण करने की बात तो दूर रही, अपने जीवन के अन्तिम घड़ियों तक अपने सन्दूक—जिसमें उनकी कमाई रखी रहती है—की चाभी भी पुत्र, पौत्रों को नहीं देते और गृहस्थ आश्रम में रहते हुए ही अपनी ऐहिक लीला समाप्त कर देते हैं।

## (३) वानप्रस्थ आश्रम

प्राचीन काल में पचास वर्ष बीत जाने के पश्चात् मनुष्य गृहस्थी के भार को अपने पुत्र को समर्पित कर अपनी स्त्री के साथ वन में निवास करता था। परन्तु आजकल इस आश्रम का सर्वथा लोप हो गया है। आज का गृहस्थ नाना प्रकार के घरेलू झंझटों में इतना अधिक फँसा रहता है कि उसे घर छोड़कर इस आश्रम में प्रवेश करने का अवकाश कहाँ? वह इस संसार को छोड़कर भले ही चला जाय परन्तु वह यावत् जीवन अपनी गृहस्थी को नहीं छोड़ सकता। इसलिए अधुना कदाचित् ही कोई वानप्रस्थी मिल सके। वर्तमान काल में जीवन की समस्या इतनी जटिल हो गई है, सामाजिक बुराइयों के कारण लड़कियों के विवाह का सम्पादन इतना कठिन है तथा मँहगाई और बेरोजगारी से जीवन-यापन इतना दूभर हो गया है कि अपनी गृहस्थी को छोड़कर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने की कोई बात सोच ही नहीं सकता। ऐसी दशा में इस आश्रम का सर्वथा लोप ही समझना चाहिए।

## (४) संन्यास आश्रम

प्राचीन समय में “चौथेपन नृप कानन जाहीं” की परम्परा प्रचलित थी। साधारण मनुष्य भी गृहस्थी और वानप्रस्थ के झंझटों को छोड़कर संन्यास आश्रम में प्रवेश करते थे। परन्तु अनेक कारणों से इस परम्परा का ह्रास होने लगा है। स्मृतिकारों ने भी कलियुग में जिन पाँच कार्यों को न करने का आदेश दिया है उसमें संन्यास ग्रहण करना भी एक है। “कलौ पंच विवर्जयेत्” की सूची में संन्यास की भी गणना होने के कारण इस आश्रम के प्रति सामान्य जनता की अभिरुचि कम होने लगी है। गोस्वामी तुलसीदास ने कलियुग की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है कि:—

“नारि मुई, गृह सम्पत्ति नासी । मूड़ मुड़ाय भये संन्यासी ।”

अर्थात् जब किसी व्यक्ति की स्त्री मर जाती है और घर की समस्त सम्पत्ति नष्ट हो जाती है तब वह अपने सिर को मुण्डित कराकर संन्यासी हो जाता है। गोस्वामी जी का यह कथन आधुनिक संन्यासियों पर अक्षरशः चरितार्थ होता है। यदि आज कल के संन्यासियों के संन्यास ग्रहण करने के कारणों का अन्वेषण किया जाय तो निनानबे प्रतिशत ऐसे संन्यासी मिलेंगे जो घर-गृहस्थी के झंझटों से ऊब कर अथवा सम्पत्ति के नष्ट हो जाने के कारण ही इस आश्रम में प्रविष्ट हुए हैं। वानप्रस्थ आश्रम के अभाव में अब गृहस्थ आश्रम से सीधे (डाइरेक्ट) संन्यास को ही, लोग ग्रहण कर लेते हैं। काशी में इन संन्यासियों के निवास के लिए एक ‘दण्डी आश्रम’ बना हुआ है जहाँ इनको निःशुल्क आवास और भोजन प्रदान किया जाता है। परन्तु इनमें उस त्याग और तपस्या का अभाव पाया जाता है जो इनका आवश्यक धर्म है।



## भोजपुरी लोक - साहित्य में स्त्रियों का चित्रण

० ०

महत्त्व—हिन्दू धर्मशास्त्रियों ने नारी के महत्त्व का प्रतिपादन अत्यन्त विशद शब्दों में किया है। भगवान् मनु ने तो यहाँ तक लिखा है कि जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ साक्षात् देवता का निवास होता है:—

“वत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः”

इसके ठीक विपरीत जिस कुल में स्त्रियाँ शोक करती हैं, उन्हें कष्ट प्राप्त होता है, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है:—

“नारयो यत्र शोचन्ति विनशत्याशु तत् कुलम् ॥

वेदों के अध्ययन करने से पता चलता है वैदिक काल में स्त्रियाँ अत्यन्त विदुषी होती थीं। वे अनेक मन्त्रों की द्रष्टा थीं। उपनिषद् काल में भी मैत्रेयी, अपाला, घोषा आदि शास्त्रों में निष्णात स्त्रियों का पता चलता है। पुराणों के समय में भी स्त्रियों का महत्त्व कुछ कम नहीं था। पद्म-पुराण में तो यहाँ तक लिखा है जो व्यक्ति स्त्रियों की पूजा करता है उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। रामायण तथा महाभारत काल में भी स्त्रियों का आदर समाज में अधिक था। द्रौपदी के अपमान का बदला चुकाने के लिए महाभारत का युद्ध हुआ यह तो सर्वविदित ही है।

भोजपुरी समाज में भी स्त्रियाँ समाज की आधारशिला समझी जाती हैं। वे परिवार तथा घर की स्वामिनी हैं। घर की मालकिन होने के कारण ही उन्हें ‘घरिनी’ की संज्ञा दी गई है। एक कहावत में ऐसा उल्लेख मिलता है कि बिना स्त्री के घर को भूत का निवास ही समझना चाहिए:

“बिन घरिनी घर भूत के डेरा।”

संस्कृत के एक पद्य में भी इसी प्रकार का भाव अभिव्यक्त किया गया है। कवि कहता है कि गृहिणी को ही गृह कहा जाता है “गृहिणी गृहमुच्यते।” जो गृह गृहिणी से विहीन है वह जंगल से भी भयानक होता है:—

“गृहं तु गृहिणीहीनम्, कान्तारादतिरिच्यते।”

घर को भूत का डेरा कहें या जंगल कहें दोनों का भाव एक ही है। तात्पर्य यह है कि स्त्री ही परिवार की आधारशिला है। इस प्रकार भार्या परिवार में केन्द्र-बिन्दु के समान है। वह परिवार रूपी रथ-चक्र की वह घूरी है जिसपर गृहस्थी का चक्का चलता या नाचता रहता है। जिस प्रकार आकाश में हजारों किम्बा लाखों ताराओं के विद्यमान होते हुए भी केवल एक चन्द्रमा के बिना प्रकाश नहीं होता, उसी प्रकार परिवार में अनेक पुत्रों तथा पुत्रियों के होने पर भी स्त्री के अभाव में कुटुम्ब का आनन्द नष्ट हो जाता है।

कर्म अथवा क्रियाशीलता से रहित बाचाल पुरुष के जीवन की निरर्थकता की उपमा उस घर से दी गई है जिसमें चारपाई तो है परन्तु उसको सुशोभित करनेवाली स्त्री का नितान्त अभाव है। इस प्रकार नारी का महत्त्व कौटुम्बिक जीवन में प्रचुर परिमाण में पाया जाता है।

भोजपुरी लोक साहित्य—विशेषकर लोकोक्तियों—में स्त्री को आदर प्रदान करने का उल्लेख पाया जाता है। कोई स्त्रैण—स्त्री-भक्त-पति—कहता है कि मैं अपनी माता को मारूँगा, बहिन को गाली दूँगा। परन्तु अपनी ‘मेहरी’ (स्त्री) को

१. बतिया बा करमतिया ना । छटिया बा, घर मेंहरी ना॥

भोज-३



कन्धे पर चढ़ाऊँगा अर्थात् उसे अत्यधिक सम्मान प्रदान करूँगा।<sup>१</sup> कोई पति संभवतः माता या बहिन की चुगली के कारण क्रोधित होकर अपने झूठे क्रोध को दिखलाते हुए अपनी स्त्री को मारने चलता है, परन्तु अपनी प्रेयसी के प्रति, अतिशय प्रेम के कारण, घर की द्योढ़ी को ही लाठी से पीटने लगता है।<sup>२</sup>

शास्त्रों में नारी महिमा का कितना भी डिंडिम-घोष किया गया हो, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया जाय तो भोजपुरी समाज में स्त्रियों का स्थान कुछ बहुत ऊँचा नहीं पाया जाता। प्रत्युत लोक-साहित्य में स्त्रियों का जो चित्रण किया गया है उससे उनकी दीन तथा हीन दशा का ही पता चलता है। वर्णन की सुविधा के लिए नारी जीवन को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं।

(१) नारी पुत्री के रूप में। (२) नारी पत्नी के रूप में। (३) नारी माता के रूप में।

इसके अतिरिक्त नारी को विधवा, वन्ध्या, वेश्या आदि रूपों में भी पाया जाता है। नारी के इन विभिन्न स्वरूपों का विवरण अगले पृष्ठों में प्रस्तुत किया जाता है।

## नारी पुत्री के रूप में

### (१) अनुच्छेद

भोजपुरी समाज में पुत्री का जन्म अभिनन्दनीय नहीं समझा जाता। जो उछाह और उत्सव पुत्र-जन्म के अवसर पर दिखाई पड़ता है, उसका इस समय नितान्त अभाव पाया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि पुत्री के जन्म होने पर पृथ्वी तीन हाथ नीचे घँस जाती है और पुत्र जन्म पर तीन हाथ ऊँची उठ जाती है। पुत्र का जन्म 'अँजोरिया' (उजेली रात) के समान है तो पुत्री के जन्म से संसार में अँधेरा छा जाता है। इसी एक उपमा से लड़की के जन्म की अवाँछनीयता का अनुमान किया जा सकता है। यों तो पुत्री के जन्म का स्वागत कभी भी नहीं किया जाता परन्तु माता की प्रथम सन्तान के रूप में यदि पुत्री पैदा हो जाय तो उसकी निराशा तथा उदासीनता का सहज में ही अनुमान किया जा सकता है। ऐसी विषम परिस्थिति में पुत्री की माता की यही अभिलाषा होती है कि या तो पुत्री पैदा ही न होती और यदि पैदा भी हो गई तो वह मर जाय तो अच्छा हो। एक भोजपुरी गीत में कोई माता कहती है कि "यदि मैं यह जानती कि मुझे पुत्री पैदा होगी तो मैं काली मिर्च पीसकर पी लेती जिसकी तीक्ष्ण कटुता से यह लड़की मर जाती। इस प्रकार मैं पुत्री-जन्म के सन्ताप से मुक्त हो जाती।"<sup>३</sup>

इतना ही नहीं, एक दूसरे गीत में कोई स्त्री कहती है कि यदि पुत्री के जन्म होने की मुझे तनिक भी आशंका होती तो मैं अपने पति के साथ सेज पर सोती ही नहीं और घर के दीपक को बुझा देती। पुत्री के जन्म का भय और आतंक इससे अधिक और क्या हो सकता है कि उपर्युक्त गीत में वर्णित नारी इसके कारण अपने दाम्पत्य सुख का ही परित्याग करने का संकल्प कर लेती है।

पुत्री के पैदा होते ही पास-पड़ोस की स्त्रियाँ आकर उसकी माता को तरह-तरह के व्यङ्ग्य बाणों से बेधने लगती हैं। कोई कहती है कि इस लड़की के पैदा होने की क्या आवश्यकता थी? तो कोई दूसरी बुढ़िया इस प्रकार ताना मारती है कि इसके बाप के रुपयों में काई लग गयी थी। इसी को घोने के लिए अर्थात् खर्च कराने के लिए यह आई है।<sup>४</sup> कोई मुंह बिजुकाती हुई कहती है—यह बेटियों की बाढ़ लगा देगी।<sup>५</sup> पुत्र तथा पुत्री के जन्म होने पर, इन अवसरों के समय, बड़ा

१. माई के मरबो, बहिन के गरिअइबों।

मेहरी के कान्हें चढ़इबों, गोविन्दे गोबिन्द॥

२. मारे गइले मेहरी। ठेठावे लगले डेहरी॥

३. जाहु हम जनिती धियवा कोखी रे जनमिहे।

पिहितों में मरिच झराई रे।

मरिच के झाकु झुके धिअवा मरि रे जाइति।

छुटि जइते गरुवा संताप रे।" —डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोक-गीत भाग २, पृ० १३१।

४. एकरा बाप के रुपया में काई लागत

रहल हा, एही से ई पंदा भइलि हा।

५. इ बेटिनि के झुंडि लगावे आइलि हा॥



भेद-भाव पाया जाता है। पुत्र के जन्म होने पर जहाँ नार काटनेवाली चमाइन को 'दो टका'—छः पैसा दिया जाता है वहाँ पुत्री के पैदा होने पर उसे केवल 'एक टका'—तीन पैसा—ही मिलता है। पुत्र जन्म का अमिनन्दन करने के लिए इस अवसर पर थाली बजाई जाती है परन्तु पुत्री पैदा होने पर विषाद का वातावरण उत्पन्न हो जाने के कारण, न तो थाली ही बजाई जाती है और न किसी प्रकार का उत्सव ही मनाया जाता है। लड़का पैदा होने के छः दिनों के बाद 'छठी' और बारह दिनों के बीतने पर 'बरही' नामक उत्सव मनाया जाता है परन्तु पुत्री के जन्म पर इन उत्सवों का कहीं पता भी नहीं चलता। पुत्री का 'नामकरण' संस्कार भी नहीं किया जाता। लड़का के पैदा होने पर ज्योतिषी या पुरोहित बुलाकर उसकी जन्मकुण्डली बनवायी जाती है। पौरिया का नाच कराया जाता है। परन्तु लड़की के जन्म पर कुण्डली बनवाने के लिए माता-पिता कुछ भी चिन्ता नहीं करते। हाँ, उसके विवाह के अवसर जब उसकी जन्मकुण्डली की आवश्यकता पड़ती है, तब उसकी झूठी 'जन्मपत्री' तैयार करा ली जाती है।

**प्रसूता स्त्री का अनादर**—पुत्री के जन्म के समय जच्चा को जो भोजन तथा वस्त्र दिया जाता है वह कुछ सुन्दर तथा समुचित नहीं होता। पुत्र पैदा होने पर उसके भोजन-छाजन की व्यवस्था में विशेष सतर्कता रखी जाती है। परन्तु पुत्री होने पर जच्चा को मोटा अन्न खाने के लिए तथा मोटा वस्त्र पहिनने के लिए दिया जाता है। "ओछवानी" नामक पौष्टिक पदार्थ—जो अनेक सूखे मेवों को डालकर बनाया जाता है—ऐसी स्त्री को नसीब भी नहीं होता। उसके लिए दूध और घी की सम्यक् व्यवस्था नहीं रहती। हल्दी में थोड़ा दूध मिला कर उसे पीने के लिए दे दिया जाता है। यही उसके लिए पौष्टिक पेय पदार्थ समझा जाता है। खाने के लिए उसे 'काँची' (देहाती हलुवा) —जो आटा-गुड़ और पानी के मिश्रण से बनाई जाती है—मिलती है।

परन्तु उसके लिए वस्त्र और आच्छादन की व्यवस्था तो भोजन से भी बुरी होती है। पुत्र के जन्म पर जहाँ माता को ओढ़ने के लिए शाल और दुशाला दिया जाता है वहाँ पुत्री पैदा होने पर उसे कुश की घास पर ही अपना आसन लगाना पड़ता है। उसे ओढ़ने के लिए 'गूदड़ी'—फटा पुराना वस्त्र—ही नसीब होती है। इस अवसर पर सौर गृह के समीप चन्दन की जगह उसे 'पँसगी' में जलाने के लिए 'खुखुड़ी'—दानों से रहित सूखा भुट्टा—ही दी जाती है। इस कष्ट दायक व्यवहार की ओर संकेत करती हुई कोई स्त्री कहती है कि पुत्री के जन्म के अवसर पर मेरा तथा मेरे पति का हृदय उसी प्रकार काँपने लगता है जिस प्रकार तालाब के बीच पुरइन का पत्ता। मेरे घर में 'खुखुड़ी' की 'पँसगी' जलने के कारण मुझे नींद भी नहीं आती। एक लोक गीत में पुत्री को जन्म देने वाली माता की दुर्दशा का बड़ा ही दुःखद चित्रण उपलब्ध होता है।<sup>१</sup> भोजपुरी समाज में पुत्र और पुत्री के जन्म के अवसर पर जच्चा के साथ उसे खान-पान तथा वेश-भूषा प्रदान करने में कितना भेद-भाव बरता जाता है इस विषय पर भी प्रचुर प्रकाश पड़ता है।

जिस दिन पुत्री पैदा होती है पिता को उसी दिन से उसके विवाह की चिन्ता सताने लगती है। कोई दुःखी पिता कहता है कि ए पुत्री जिस दिन तुम पैदा हुई उसी दिन से मेरे लिए तुमने गाली 'बेसाहा' अर्थात् क्रय किया। अब मुझे जीवन में गाली सहनी पड़ेगी यह निश्चित हो गया:—

"जाहि दिन बेटी हो तोहार जनमवा, हमरे सीरे बेसहलू गारि ए॥"

देहात के लोग प्रायः बात-बात में 'ससुर' कह कर गाली दिया करते हैं। पिता का संकेत इसी गाली की ओर समझना चाहिए।

१. साल ओढ़न, साल डालन,

मेवा फल भोजन रे।

ए ललना ! चनन के जरेला पसँगिया,

निनरि भल आवेला रे॥

२. जइसन दह में के पुरइन,

बह बीचे काँपेले रे

ए ललना ! ओइसन काँपेले हमरो हरी जी,

धिया का रे जनम नु रे।

३. कुस ओढ़न, कुस डालन, वन फल भोजन रे।

ए ललना ! खुखुड़ी के जरेला पसँगिया।

निनरियों ना आवेला रे।

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोक—गीत, भाग १, पृ० ७१।



पिता के लिए पुत्री का जन्म लेना ही कष्ट का कारण बन जाता है। ज्यों-ज्यों लड़की की आयु बढ़ने लगती है त्यों-त्यों पिता की चिंता भी गंगा की बाढ़ की तरह बढ़ने लगती है। पुत्री का विवाह कहाँ करना पड़ेगा इसकी चिन्ता से उसे रात-रात भर नींद नहीं आती। एक गीत में कहा गया है कि जिसके घर में कुंवारी कन्या विद्यमान हो वह पिता निश्चिन्त कैसे सो सकता है ?<sup>१</sup>

“जाहि घर कनिया हो कुंवारी,  
सो कइसे सोवे निरभेद हो”

संस्कृत के किसी कवि ने भी इसी भाव का बड़े ही मार्मिक शब्दों में इस प्रकार वर्णन किया है।

“पुत्रीति जाता महती हि चिन्ता;  
कस्मिं प्रदेयेति महान् वितर्कः।  
दत्त्वा सुखं प्राप्स्यति वा नवेति,  
कन्या-पितृत्वं खलु नाम कष्टम्॥”

आजकल तिलक तथा दहेज के बढ़ते हुए ‘डिमाण्ड’ के कारण यह चिन्ता और भी अधिक हो गई है। यदि परिवार में दो या तीन से अधिक पुत्रियाँ पैदा हो गईं तो उस पिता का भगवान् ही रक्षक हैं।

कुछ लोगों की यह धारणा है कि पुत्री के विवाह में कन्यादान दिये बिना पिता का जंघा पवित्र नहीं होता। अतः प्रायः सभी पिता यह चाहते हैं कि कम वे कम एक पुत्री उन्हें अवश्य पैदा हो जिसका ‘कन्यादान’ करके उनका जंघा पवित्र हो सके। जो पिता पुत्री के जन्म से बंचित हैं वे अपने चचेरे भाई की पुत्री को कन्यादान में देते हैं और इसके लिए उसके विवाह में बहुत धन खर्च करते हैं। कन्यादान करके पवित्र होने की यही भावना पुत्री के जन्म का स्वागत करती है।

सर्वसाधारण जनता की यह भी धारणा है कि यदि तीन पुत्रियों के बाद पुत्र पैदा हो तो वह भीख मँगाता है परन्तु तीन-पुत्रों के पश्चात् जो बेटी जन्म लेती है वह ‘राज रजाती’ है अर्थात् घर में ऐश्वर्य तथा वैभव को प्रदान करती है। लोकोक्ति है कि :—

“तेंतर बेटी राज रजावे,  
तेंतर बेटा भीख मँगावे।”

इस बद्धमूल दृढ़ धारणा के कारण लोग ‘तेंतर बेटी’ के जन्म का बड़ा स्वागत करते हैं। ऐसी पुत्री का घर में उतना ही सम्मान तथा आदर किया जाता है जितना किसी पुत्र का। जिस व्यक्ति के घर में कोई पुत्र नहीं होता, बल्कि एकमात्र पुत्री ही उस कुल को उजागर करनेवाली होती है, उसके प्रति पिता-माता दोनों का प्रेम अत्यधिक होता है। उस लाड़ली लड़की का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से किया जाता है। उसकी सुख-सुविधा का सभी प्रकार से ध्यान रखा जाता है।

जब तक पुत्री का विवाह नहीं हो जाता तब तक उसके पिता का उससे ‘पिण्ड’ नहीं छूटता, उसकी मुक्ति नहीं होती। इसीलिए लड़की के विवाह की उपमा ‘ग्रहण लगने’ से दी गई है। कोई पुत्री पिता से पूछती है कि पिताजी कौन ग्रहण कहाँ लगता है? इस पर उसका पिता उत्तर देते हुए कहता है कि ए पुत्री! चन्द्र—ग्रहण सन्ध्या अर्थात् रात्रि में लगता है और सूर्य ग्रहण दिन में लगता है। परन्तु पुत्री रूपी ग्रहण विवाह के मण्डप में लगता है। इससे कब मोक्ष होगा इसका मुझे पता नहीं है।<sup>२</sup>

१. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक—गीत भाग १।

२. चान गरहनवा बेटी साँझ ही लागेला,

सुरुज गरहनवा भितुसार ए।

धियवा गरहनवा बेटी मँडविन लागेला,

कब दोनी उगरह होई ए।

—डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक—गीत, भाग १, पृ० १५६



इन उल्लेखों से पता चलता है कि जन्म से लेकर विवाह तक पुत्री को अनादर, अपमान तथा अवमानना का आलिङ्गन करना पड़ता है। जहाँ पुत्र के जन्म के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ तथा 'जीवित्युत्रिका' व्रत किया जाता है वहाँ पुत्री के लिए न तो कोई यज्ञ-यागादि सम्पन्न किया जाता है और न तो व्रत का अनुष्ठान ही। अतः पुत्री हिन्दू परिवार की एक ऐसी अनमिलित सदस्या है जिसके आविर्भाव होने पर स्वागत के लिए न तो शहनाई बजती है और न नफीरी। जिसके जन्म पर न तो सौहर गाया जाता है और न तो छठी और 'बरही' के संस्कार ही सम्पादित होते हैं।

## नारी पत्नी के रूप में

### (२) अनुच्छेद

धर्मशास्त्रों में पत्नी की बड़ी प्रशंसा की गई है। धर्मपत्नी से रहित पुरुष अपूर्ण कहा गया है। अतः पूर्णता प्राप्त करने के लिये पत्नी का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीन काल में स्त्रियाँ पुरुषों के साथ यज्ञ, यागादि में समान रूप से भाग लेती थीं और वैदिक मंत्रों का सस्वर उच्चारण कर यज्ञ की प्रक्रिया में योगदान करती थीं। इसीलिए इन्हें "धर्मपत्नी" की संज्ञा प्राप्त थी। आजकल भी किसी भी मांगलिक कार्य—जैसे सत्यनारायण की कथा, जनेऊ (यज्ञोपवीत) और विवाह आदि—में पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य समझी जाती है। विवाह में कन्या-दान के कृत्य को सम्पादित करने के लिए वह व्यक्ति अयोग्य समझा जाता है जो पत्नी से रहित है। अग्निहोत्र का कार्य तो भार्या के अभाव में असंभव की कोटि में गिना जाता है। "दुर्गा सप्तशती" में "स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु" कहकर स्त्रियों की प्रचुर प्रशंसा की गई है।

भोजपुरी समाज में भी सामान्यतया स्त्रियों का आदर पाया जाता है। वह "घरनी" के नाम से अभिहित की जाती है जिसका अर्थ होता है घरवाली अर्थात् गृहस्वामिनी। जिस प्रकार पुरुष घर के बाहरी क्रिया-कलापों का स्वामी माना जाता है उसी प्रकार स्त्री परिवार के गृहस्थी के मामलों की मालकिन है। कुशल तथा चतुर स्त्री पति के प्रेम की पूर्ण अधिकारिणी होती है। इसीलिए वह प्रिय तथा प्रेयसी कही जाती है।

**पतिव्रता स्त्रियों—**विशेषकर भोजपुरी स्त्रियों—का प्रधान गुण उनका पातिव्रत धर्म है। वे मन, वचन और कर्म से पति-परायणा होती हैं। पति कितना भी कुकर्मी, कदाचारी, दुष्ट तथा पतित क्यों न हो परन्तु वे अपने मुँह से उसके कुकृत्यों का किसी से उल्लेख तक नहीं करतीं। पति जीविका के लिए परदेस चला जाता है, वहाँ किसी स्त्री के माया-जाल में फँस जाता है। वह अपने बच्चों तथा स्त्री के पालन-पोषण के लिए रुपया भेजने की बात तो दूर रही, प्रत्युत उनकी खोज खबर लेने के लिए चिट्ठी भी नहीं भेजता। फिर भी जब वह दस-पन्द्रह वर्षों के बाद घर लौटता रे तब उसकी उपेक्षिता स्त्री उसका हृदय से स्वागत करती है। वह अपने अनुभूत कष्टों को भुलाकर, अपनी उपेक्षा करने के लिए पति को उलाहना तक नहीं देती। घर में गरीबी के कष्टों को वह सहर्ष सहती रहती है। फिर भी वह पति-सेवा को ही अपना परम धर्म समझती है। इस प्रकार भोजपुरी नारी सहिष्णुता, सतीत्व तथा सदाचार का पूर्ण प्रतीक है।

परन्तु भोजपुरी लोक-साहित्य में स्त्रियों का जो चित्रण किया गया है वह सुन्दर नहीं कहा जा सकता। नारी-जीवन की कष्ट-कहानी उसी दिन से प्रारम्भ होती है जिस दिन उसका माँग सिन्दूर से सुशोभित किया जाता है। इस दिन को उसके गार्हस्थ्य जीवन के श्रीगणेश के साथ ही, उसके भावी दुःखमय जीवन का प्रारम्भ समझना चाहिए। विवाह के पश्चात् जब वह स्त्री अपनी ससुराल जाती है तब कुछ दिनों तक—प्रायः छः मास तक—उसका बड़ा ही आदर-सत्कार किया जाता है। वह घर में 'बहू' के नाम से पुकारी जाती है। परन्तु छः मास की अवधि के व्यतीत होते ही उसे 'चौका चूल्हा' 'छुआ' दिया जाता है तथा उसे भोजन बनाने का आदेश मिलता है। कुछ परिवारों में यह प्रथा है कि घर में जो सबसे छोटी बहू होती है उसे ही परिवार के सभी लोगों के लिए भोजन पकाना पड़ता है और भोजन के उपरान्त सब जूठे बर्तनों को भी 'माँजना' (साफ करना) पड़ता है। उसे चावल 'छाँटना' (कूटना) और गेहूँ भी जाँत में पीसना पड़ता है।

चूल्हा-चौका ही उस 'बहू' का अभिन्न सहचर होता है। परिवार के जितने पुरुष सदस्य हैं पहिले उन्हें ही भोजन कराना पड़ता है। इसके बाद सास का नम्बर आता है। पश्चात् घर की ननद और जेठानी की वारी होती है। सबके बाद, मध्याह्न के उपरान्त, बहू को भोजन करने के लिए मिलता है। परिवार के सभी सदस्यों के खाने के पश्चात् जो भोजन बच जाता है वही बहू को खाने को मिलता है। यदि 'चुहानी' (रसोई घर) में रोटी अथवा भात का अभाव हुआ तो उस विचारी को नवमी या दशमी के दिन भी एकादशी का ही व्रत करना पड़ता है। इस प्रकार से दिन भर घनघोर परिश्रम के उपरान्त भी उसे किसी-किसी दिन आधे पेट भोजन पर भी सन्तोष करना पड़ता है।

सन्ध्या होने पर फिर वही रसोई बनाने की चिन्ता। गाँवों में प्रायः उसिना (भुजिया) चावल खाया जाता है जो



ओखल में 'छाँटने' पर ही पकाने लायक होता है। अतः बहू को एक 'पसेरी'—पाँच किलो—चावल छाँटना पड़ता है। गेहूँ को जाँत में पीसकर रोटी 'पोनी' अर्थात् पकानी पड़ती है। फिर परोसने और भोजन का वही क्रम चलता है। इस प्रकार कूटना, पीसना, बर्तन माँजना और रसोई बनाना भोजपुरी स्त्री की दैनिक-चर्या का अभिन्न कार्यक्रम होता है। यही उसके दैनिक कृत्य हैं। यही उसकी "आहि सूत्रावली" है।

भोजपुरी के एक लोक-गीत में स्त्री के दैनिक-कार्यों की सूची दी गई है। उसे प्रतिदिन जो कष्ट उठाने पड़ते हैं उसका विवरण बड़े ही मार्मिक तथा हृदय स्पर्शी शब्दों में प्रस्तुत किया गया है। लम्बा होने पर भी इस गीत को यहाँ उद्धृत करने का लोभ संवरण करना संभव नहीं है, क्योंकि इसमें नारी जीवन की कष्ट गाथा का बड़ा ही सुन्दर तथा सटीक वर्णन उपलब्ध होता है।<sup>१</sup>

पार्वती भी शिवजी के लिये दिन भर भाँग पीसते-पीसते ऊब जाती हैं और उनके लिए धतुर की गोलियाँ बनाते-बनाते उनका हाथ घिस जाता है।<sup>२</sup> इस कष्ट की शिकायत वे अपनी माता से करती हैं। इसी प्रकार से एक दूसरे लोकगीत में पार्वती जी भाँग पीसने के अतिरिक्त बर्तन माँजने, कूटने, पीसने तथा रसोई बनाने की कष्ट कहानी को अपनी जननी से कहती हैं।<sup>३</sup> जब देवी देवताओं की यह दशा है तब साधारण स्त्रियों की चर्चा ही व्यर्थ है।

**अपमान में ही सन्मान की भावना**—लोक साहित्य में अनेक ऐसे गीत, लोकोक्तियाँ और मुहावरे पाये जाते हैं, जिनके अध्ययन से स्त्रियों की दशा अथवा दुर्दशा पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। ऐसी बहुत सी लोकोक्तियाँ उपलब्ध होती हैं जिनमें समाज में स्त्रियों की दशा की झाँकी पायी जाती है। कोई स्त्री कहती है कि मेरे प्रियतम ने मुझे 'पदनी' (भोजपुरी गाली) कहकर सम्बोधित किया 'यह मेरा बहुत बड़ा भाग्य है।' किसी स्त्री का पति उसका सदा अनादर करता है, उसे कभी पूछता तक नहीं। फिर भी वह अपने को 'सोहागिन' (सौभाग्य शालिनी) कहती फिरती है।<sup>४</sup> किसी छोटे से अपराध के कारण पति ने अपनी स्त्री को एक 'चपत' रसीद कर दिया। परन्तु वह स्त्री इस पर प्रसन्न होकर कहती है कि यह 'चपत' तो मेरे लिए आमूषण के समान है।<sup>५</sup> इस प्रकार पति के द्वारा किये गये घोर अपमान को भी भोजपुरी स्त्रियाँ अपना सन्मान ही समझती हैं।

**मार-पीट तथा ताड़ना**—लोकगीतों में स्त्रियों को पीटने का उल्लेख अनेक बार हुआ है। एक लोकोक्ति से पता चलता है कि पान तथा घान पानी देने से बढ़ता है परन्तु दुष्ट नारी 'लात' से मारने से ही ठीक रहती है।<sup>६</sup> किसी स्त्री के हाथ की अँगूठी खो जाने के कारण सास और ननद तो उसे पीटती ही हैं उसका निर्दयी पति भी बबूल के डण्डे से उसकी पीठ-पूजा करता है।<sup>७</sup> इसी प्रकार से एक स्त्री की नाक की झुलनी कहीं खो जाती है। इस पर क्रोधित होकर उसकी दारुण सास गाली देती है, ननद छड़ी से पीटती हैं और उसका स्वामी (पति) मोटी 'मुंगरी'<sup>८</sup> से उसे मारता है। कोई स्त्री कहती है ससुराल में 'लात, मूका (धूँसा) खाने को मिलता है। अतः मैं वहाँ नहीं जाऊँगी।'<sup>९</sup>

१. त्रिपाठी : कविता-कौमुदी भाग ५ (ग्राम-गीत)। परिशिष्ट १ देखिए

२. भँगीआ पीसत ए आमा, जीयरा अकुलाई

धतुरा के गोलिया ए आमा, हाथवा रे खिआई।

—डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोकगीत, भाग १, पृ० ५४

३. डॉ० प्रणयी - शिव जी के गीत।

४. पियवा कहलसि पदनी, मोर बड़ भाग।

५. मोर पियवा बात ना पूढ़े, मोर सोहागिन नाँव।

६. पियवा के चटकन, मोरा लेखे लटकन।

—लेखक का निजी संग्रह

७. घान-पान पनिअबला से,

नारि दुहुट लतिअबला से।

८. सामु मोरा मारे, ननद मोरा मारे, सँइया मारे रे।

बबूर डंडा तानि तानि, सँइया मारे रे।

डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० २४०

९. सामु मारे हुंका, ननदि मारे पटुका, सँइया मारे मुंगरी के मारि हो।

तिन पतिया मोर झुलनिया।

—वही,

१०. "ससुरा से मिलेला लात अवर मूका,

ससुरवा में ना जाऊँ हो।"

डॉ० उपाध्याय : वही, पृ० २४०



**आर्थिक पराधीनता**—भोजपुरी स्त्रियों के जीवन का सबसे बड़ा कष्ट उनकी आर्थिक पराधीनता है। इसी पराधीनता की चट्टान से टकरा कर उनकी जीवन-नैया चूर चूर हो जाती है। अर्थाभाव के कारण वे भोजन-छाजन, वस्त्र-आभूषण, साज-शृंगार आदि सभी कार्यों के लिए अपने पति पर आश्रित रहती हैं। यदि पति कमाने वाला हुआ तो तब तो किसी बात की चिन्ता नहीं, परन्तु यदि वह कहीं निखट्टू मिल गया तब तो उस स्त्री का ईश्वर ही मालिक है। कभी-कभी कोई खूबसूरत पति बन कमाने पर भी अपनी स्त्री को एक पैसा भी नहीं देता। अतः वह कष्ट का अनुभव करती है। जब किसी स्त्री का पति परदेस चला जाता है और वह अपनी पत्नी के पालन-पोषण के लिए द्रव्य नहीं भेजता तब उसकी सास, देवरानी तथा जेठानी आदि परिवार की स्त्रियाँ उसे ताना मारती हुई उससे कहती हैं कि तुम किसकी कमाई खावोगी? (तू केकर कमाई खइबू?)। तुम्हारा पति तो एक पैसा भी घर नहीं भेजता। घर में अन्न के अभाव से पीड़ित किसी स्त्री से कोई लम्पट पुरुष पूछता है कि तुम कहाँ जा रही हो। इस पर वह स्त्री उत्तर देती है कि मेरे घर में खर्ची (खाद्यान्न) का अभाव हो गया है। अतः मैं अपने शरीर को बेचकर भोजन सामग्री की तलाश में जा रही हूँ। इस पर वह कामी पुरुष कहता है कि आज मैं तुम्हारी खाद्य-सामग्री (खर्ची) का प्रबन्ध कर दूंगा परन्तु तुम अपने यौवन के विक्रय में मुझे भी साझीदार बनाओ। वन्ध्या तथा विधवा स्त्रियों को, जिनके पास अर्थ-प्राप्ति का कोई साधन नहीं होता, इसी प्रकार की व्यंगोक्ति, कटुवचन तथा 'ताना' सहना पड़ता है।

इस प्रकार से भोजपुरी लोक साहित्य में स्त्रियों का जो चित्रण किया गया है, वह बड़ा ही दीन, हीन और अपमानजनक है। राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त की यह उक्ति भोजपुरी समाज पर अक्षरशः चरितार्थ होती है कि:—

“अबला जीवन हाथ तुम्हारी यही कहानी।

आँचल में है दूध और आँखों में पानी ॥”

० ०

## नारी माता के रूप में

### (३) अनुच्छेद

हमारे प्राचीन धर्मशास्त्रों में माता की बड़ी महिमा गायी गयी है। माता और पिता को बहुत ऊँचा स्थान प्रदान किया गया है। परन्तु माता का जीवन तभी सार्थक माना जाता है जब वह पुत्रवती हो। यद्यपि शास्त्रीय तथा मानवीय दृष्टि से पुत्र और पुत्री में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि दोनों ही सन्तानें हैं परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इनमें बड़ा अन्तर पाया जाता है।

प्राचीन काल में जब किसी राजा को लड़का नहीं पैदा होता था, तब 'पुत्रेष्टि यज्ञ' का विधान किया जाता था। किसी स्त्री के गर्भवती होने पर 'पुंसवन' नामक संस्कार का आयोजन किया जाता था, जिसका अभिप्राय यह था कि जो सन्तान पैदा हो वह पुत्र ही हो। प्राचीन युग में वृद्ध वशिष्ठ तथा श्रेष्ठजन किसी स्त्री को “पुत्रवती भव”—पुत्रवाली होवो—आशीर्वाद दिया करते थे। आजकल भी बूढ़े लोग किसी युवक या युवती पर प्रसन्न होकर आशीर्ष के रूप में “तोहरा बेटा होखो”—तुम्हें पुत्र रत्न उत्पन्न हो—ऐसा कहते हैं। 'पुत्र' का शाब्दिक अर्थ होता है 'पुम्' नामक नरक से रक्षा करने वाला। इसीलिए शास्त्रकारों ने उच्च स्वर से उद्घोषित किया है कि “अपुत्रस्य गतिर्नास्ति” अर्थात् जो व्यक्ति पुत्र रहित है उसकी सद्गति नहीं हो सकती।

पुत्र ही घर की शोभा है। वह गृहान्धकार में प्रकाश पुंज है। वह बूढ़े माता-पिता के बुढ़ापे की लकड़ी है और उनके जीवन की ज्योति है। इसीलिए जिस घर में पुत्र नहीं होता वह सूना सूना तथा अन्धकारमय दिखाई पड़ता है। इसी कारण 'मृच्छकटिक' नाटक में शूद्रक ने कहा है कि:—

“अपुत्रस्य गृहं शून्यं, सर्वशून्या दरिद्रता।”

अर्थात् पुत्र से रहित पुरुष का घर सूना रहता है और दरिद्रता के कारण सब कुछ शून्य है।

१. बाट में भैंटे रसिया कवन राम हो,

काहाँ रे जालु मोर रनिया।

आजु के खरचिया ओराइल बाटे हो,

जोबन बेंचे ओहि गलिया ॥

आजु के खरचिया हम चलाइबि हो,

जोबनवा में हम सक्षिया ॥

२. पुंनामकात् नरकात् त्रायते इति पुनः।

डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० २४१



यदि तुलसीदास जी की निम्नांकित पंक्ति को थोड़ा बदल कर इस प्रकार कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा।

“जिय बिनु देह नदी बिनु बारी।

तइसहि—जान पुत्र बिनु नारी।”

पुत्र की महिमा की इसी पृष्ठभूमि में, भोजपुरी समाज में यदि किसी स्त्री का महत्त्व उसके पुत्रोत्पत्ति की क्षमता तथा पुत्रों की संख्या से किया जाता है, तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं समझना चाहिए। जिस स्त्री को जितने ही अधिक पुत्र उत्पन्न होते हैं उसका मूल्य उतना ही अधिक कूता जाता है। स्त्री जीवन के दो ही रत्न हैं—(१) पति और (२) पुत्र। जिस प्रकार से नारी पति की मंगल-कामना की कामना सदा करती है उसी प्रकार से वह पुत्र की प्राप्ति के लिए अभिलाषा करती हुई अनेक व्रतों का विधान करती है। वह सूर्यपष्ठी का व्रत करके सूर्य भगवान् से प्रार्थना करती है कि मुझे पुत्रवती होने का वरदान दीजिए। इसी प्रकार वह जीवितपुत्रिका व्रत के द्वारा, कष्ट से प्राप्त पुत्र की जीवन रक्षा के लिए, कठोर उपवास करती है। इतना ही नहीं, वह सात पुत्रों की माता बनने की अभिलाषा भी करती है:—

“सात पुतर हमरा के दिहीं ए अदित मल”

नारी जीवन की सार्थकता मातृत्व में ही है। जब तक नारी माता नहीं बनती तब तक उसका जीवन निरर्थक है। कोई स्त्री कहती है कि मैंने अपनी गोदी में बालक नहीं खेलाया, अतः मेरा जीवन व्यर्थ ही है:—

राम जी गोदिया बालक ना खेलवली,

मोर जनम अकारथ रे।

भोजपुरी समाज में माता का बड़ा आदर किया जाता है। वह सम्मिलित परिवार की सर्वश्रेष्ठ सदस्या है। उसकी आज्ञा का पालन पुत्र, पुत्री, बहू, आदि सभी लोग करते हैं। घर का समस्त कार्य-कलाप उसी की आज्ञा से होता है। माता का हृदय गंगा जल के समान निर्मल और दूध के समान स्वच्छ होता है। वह पुत्र के लिए अनेक कष्टों को उठाती है। वह स्वयं उपवास रहकर अपने बच्चों के भोजन का प्रबन्ध करती है। वह पुत्र की मंगल कामना के लिए अनेक व्रत-उपवास का विधान करती है। साधु-सन्तों की कुटिया में जाकर ‘ताबीज’ और ‘गण्डा’ लाती है और भैरव बाबा की विभूति अपने पुत्र के सिर में लगाती है। फलस्वरूप पुत्र भी माता का आज्ञाकारी और उसके चरणों का पुजारी होता है।

एक लोकगीत में पार्वती जी शिवजी से अपना दर्शन देने के लिए प्रार्थना करती हैं। परन्तु शिवजी कहते हैं कि मेरे घर में बूढ़ी माता हैं। मैं उसे छोड़कर तुम्हारे पास कैसे आऊँ? इस पर पार्वती कहती हैं कि अपनी बूढ़ी माता को गंगा में ‘भसिआ’ (फेंक) दीजिए। तब शिवजी कुछ क्रोधित होकर उत्तर देते हैं कि ए ‘गऊरा’ (गौरी-पार्वती) तुम्हारी जैसी स्त्रियाँ तो बहुत सी मिलेंगी परन्तु संसार में माता कहाँ मिलेंगी। राम ने अपने प्रिय अनुज लक्ष्मण को ‘शक्ति’ लगने पर अपने हृदय के भावों को निम्नांकित शब्दों में प्रकट किया था:—

“देशे देशे कलत्राणि, देशे देशे च बान्धवाः।

तं तु देशं न पश्यामि, यत्र भ्राता सहोदरः॥

इस श्लोक के अन्तिम दो शब्दों को यदि इस प्रकार से बदल दिया जाय तब शिवजी की उक्ति पूर्णतया चरितार्थ हो जाती है:—

“तं तु देशं न पश्यामि

यत्र माता प्रियम्बदा।”

१. हमरा के ए सिव ! तनि एक दरसन दीहि

कइसे के दरसन दीही ए गउरा,

हमरा घरे बाड़ी बूढ़ी महतारी।

बूढ़ी महतारी ए सिव ! गंगा भसिआव।

तोहरा नियर ए गउरा मेहरारु अनेका परी।

बूढ़ी महतारी ए गौरा संसार में कहवाँ मिली॥ —लेखक का निजी संग्रह, पृ० ३१०



पुत्र का स्नेह माता के लिए अविचल रहता है। परन्तु विवाह होते ही माता और पुत्र के स्वाभाविक प्रेम के बीच में स्त्री दीवाल के रूप में खड़ी हो जाती है। इस प्रकार पुत्र का मन माता की ओर से खिंचता चला जाता है। सास और बहू में तो प्रायः झगड़ा सुना जाता है परन्तु माता और पुत्र के बीच में किसी प्रकार का मनोमालिन्य का कहीं पता नहीं लगता।

## आदर्श सती के रूप में

### (४) अनुच्छेद

भोजपुरी प्रदेश में नारी के सतीत्व का आदर्श बहुत ही ऊँचा है। पर-पुरुष से विवाह की कल्पना तो बहुत दूर की बात रही, किसी अन्य पुरुष से किसी प्रकार के सम्पर्क की भावना भी ये स्वप्न में भी नहीं कर सकतीं। अंग्रेजी में एक कहावत है “सीजर की स्त्री सन्देह से परे है।” इसी प्रकार से हम बिना किसी संकोच के, निःसन्देह कह सकते हैं कि भोजपुरी नारी के चरित्र के विषय में किसी प्रकार की भी आशंका करना नितान्त निर्मूल है। उसका चरित्र हिम-राशि के समान स्वच्छ, गंगा के समान पावन और अग्नि के समान पवित्र है। जिस प्रकार अग्नि और गंगा-जल दूसरी वस्तुओं को पवित्र करने वाला समझा जाता है उसी प्रकार से सती स्त्री का चरित्र भी है। आज लाखों की संख्या में, इस प्रदेश में, ऐसी अक्षत योनि बाल-विधवायें विद्यमान हैं जिन्होंने जीवन भर अपने पति का कभी मुख भी नहीं देखा। गवना होने के पहिले ही विधवापन के शाप से अभिशप्त हो गयीं, परन्तु फिर भी वे अपने मृत पति की स्मृति में, अपने अलौकिक सौन्दर्य तथा कान्चन काया को जला-जलाकर भस्म कर रही हैं। ये अपने बाल-वैधव्य के दुःखद दिनों को तिल तिल करके काट रही हैं परन्तु ये पुनः ‘सप्तपदी’ की कल्पना भी नहीं करती। यह बाल-विधवाओं का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि विधाता ने उनके भाग्य में चिर वैधव्य के साथ ही दीर्घ आयुष्य भी लिख दिया है। इसका परिणाम यह होता है कि इन विधवाओं को अपने कष्टमय जीवन के अनेक वर्षों को बड़े ही दुःख से काटना पड़ता है। भोजपुरी की एक लोकोक्ति है कि सबके दिन तो किसी प्रकार से ‘कट’ जाते हैं परन्तु भोजपुरी विधवा-रांड -- का दिन कभी समाप्त ही नहीं होता।

जो स्त्रियाँ सधवा हैं,—विधाता ने जिन्हें अपने पति के साथ संसार के सुखों को दोनों हाथों से लूटने के लिए बनाया है—वे भी चरित्र की दृष्टि से बड़े ही उच्च स्थान की अविकारिणी हैं। ऐसे अनेक पति होते हैं जो स्वभाव से ही दुराचारी, लम्पट, दुश्चरित्र, मद्यपी तथा परतिय-गामी हैं। वे अपनी स्त्रियों को निर्दयता के साथ पीटते हैं। उनके साथ अमानवीय व्यवहार करते हैं, परन्तु भोजपुरी पत्नी यह सब दुःख सहते हुए भी पति-परायणा बनी रहती हैं। अनेक कामी पति “दाल की मण्डी” में अटारी पर चढ़ने के अभ्यासी होते हैं, कुछ अपने घर में ही किसी रक्षिता को रख लेते हैं परन्तु उनकी भी पत्नियाँ, इसके लिए तनिक भी दुःख प्रकट न करके, उनकी सेवा में ही सदा तत्पर रहती हैं। कुछ वारुणी-सेवी पति मद्य के नशे में आकर अनेक अनाचार करते हैं परन्तु पत्नी की ओर से उसका कोई प्रतिकार नहीं किया जाता। विवाह के पश्चात् यदि कोई पति कुष्ठ अथवा क्षय रोग से पीड़ित हो जाय अथवा किसी दुर्घटना के कारण वह पंगु या अपाहिज हो जाय फिर भी उसकी धर्मपत्नी उसका साथ नहीं छोड़ती और छाया की भाँति उसके साथ साथ लगी रहती हैं।

भोजपुरी पति परदेस चला जाता है। जहाँ जाकर वह किसी सुन्दरी युवती के प्रेम-पाश में फँस जाता है। वह अपनी स्त्री के भरण-पोषण के लिए धन भेजने की बात तो दूर रही, वह उसकी सुधि-बुधि भी नहीं लेता। फिर भी उसकी पत्नी अपने दुःख के दिनों को अत्यन्त कष्ट में काटती है परन्तु उस दुष्ट पति के परित्याग की भावना को भी अपने हृदय में स्थान नहीं देती। इसके ठीक विपरीत, जब वह पति अनेक वर्षों के बाद घर लौटता है तब वह उसका बड़े प्रेम से स्वागत-सत्कार करती हैं। इसका कारण प्राचीन धर्मशास्त्र-कारों के सती-संबंधी उपदेश भले ही हों, अथवा नारी-जीवन की आर्थिक परवशता ही क्यों न हो, फिर भी इन स्त्रियों के आदर्श चरित्र में सतीत्व की भावना ही मूल-भूत कारण है।

भोजपुरी लोक साहित्य में ऐसे अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं जिनसे भोजपुरी नारी के पावन चरित्र पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। लोक-गीतों में ऐसे सन्दर्भ भरे पड़े हैं जिनसे स्त्रियों के आदर्श सतीत्व का पता चलता है। कोई स्त्री नदी पार करने के लिए किसी मल्लाह से नाव मांगती है, परन्तु वह कामुक मल्लाह उस स्त्री से कहता है कि “मैं तुम्हें दूध पिलाऊँगा और मछली

१. Ceaser's wife is above suspicion.

२. रांड के दिन कभी ना ओराला।

भो०-४



खिलाऊंगा। अतः आज तुम मेरे पास ही रहो।” इस पर क्रोधित होकर वह सती स्त्री उत्तर देती है कि “मैं तुम्हारी मछली में आग लगा दूंगी और तुम्हारे दूध में वज्र पड़ जाय। मैं अब नदी के उस पार नहीं जाऊँगी।” प्रोषितपतिका किसी स्त्री को देखकर कोई बटोही उस पर मोहित हो जाता है और उसे बहुमूल्य सोना, चाँदी, मोती देकर उसके सतीत्व को खरीदना चाहता है। परन्तु वह सती स्त्री इस प्रस्ताव के कारण क्रोध से उत्तेजित हो जाती है और कहती है कि तुम्हारे सोने में आग लग जाय और मोतियों पर वज्र पड़ जाय। दुनियाँ में ‘सत’ (सतीत्व) छोड़ने से ‘पत’ (प्रतिष्ठा) नहीं रह जाती।” इसी प्रकार जाँत के एक गीत में एक अश्वारोही कामुक के द्वारा किसी स्त्री को सोना और मोती देने का उल्लेख मिलता है जिसे पति-परायणा वह स्त्री दृढ़तापूर्वक उसका तिरस्कार करती हुई अस्वीकार कर देती है।

पुत्र-जन्म (सोहर) के एक गीत में किसी स्त्री का अलौकिक पराक्रम दिखलाई पड़ता है। नदी के पार जाने के लिए कोई स्त्री मल्लाह वे नाव मंगाती है। परन्तु वह कामुक नाविक हार और अँगूठी देने का उसे लालच दिखाकर उससे व्यभिचार का प्रस्ताव करता है। वह सती स्त्री, इस दुष्ट के इस दूषित प्रस्ताव को, पैरों से ठुकरा देती है और उमड़ती हुई नदी को स्वयं तैर कर पार कर जाती है। लौटती बार वह अपने भाई को यह आदेश देती है कि इस दुष्ट मल्लाह की खाल को खींच कर इसमें भूसा भर दो।<sup>१</sup>

लोक गीतों में कुछ ऐसी भी वीर, साहसी तथा पराक्रमी स्त्रियों का वर्णन पाया जाता है जिन्होंने अपने सतीत्व की रक्षा के लिये बड़े अड़े राजकुमारों के प्रलोभन को ठुकरा दिया; बड़े-बड़े कठोर शासकों के चंगुल से चतुरता से अपने को छुड़ा लिया, चाहे इसके लिए उन्हें जल-समाधि ही क्यों न लेनी पड़ी हो। अपने प्राणों की तिलान्जलि देकर इन्होंने अपने सतीत्व की रक्षा की।

कोई राजकुमार लचिया नामक किसी अलौकिक सौन्दर्यवती स्त्री के रूप का लोभी बन जाता है। वह उसे अतुल वैभव तथा राजसी सुख देने का प्रलोभन प्रदान करता है। परन्तु पति परायणा लचिया का निश्चल प्रेम कभी विचलित नहीं होता। पति-गर्विता लचिया उस राजकुमार से कहती है कि “ए राजा के छोड़के तुम मुझे क्या लालच दे रहे हो। मेरा पति तुमसे कहीं अधिक सुन्दर है, उसका नया चमरौघा जूता ‘चरर मरर’ शब्द करता है और उसके पैरों की एड़ी लाल तथा दर्पण के समान स्वच्छ है।”<sup>२</sup>

इन प्रलोभनों के बावजूद, उस कामी राजकुमार का सम्पूर्ण राजसी वैभव गरीबनी लचिया के प्रेम को खरीदने में समर्थ नहीं हो सका। लचिया के निर्धन पति का ‘चरर मरर’ करनेवाला चमरौघा जूता, राजा के सिंहासन से कहीं अधिक बेशकीमती है। उसका साधारण तथ दरिद्र पति राजकुमार की तुलना में कहीं अधिक सुन्दर तथा प्रिय है।

१. आगि लगइबों चाल्हावा महरिया,

बजर परसु तोरा दूध ए।

आरे दुनुकी फुटहुँ तोरा जाँत के करीयवा,

नउजी उतारि देबो पार ए॥

डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० २४७

२. डाल भर सोना लेहु, मोतिया से माँग भर,

जात छोड़ि मोरे संग लागहु रे की।

आगि लागो सोनवा, बजर पड़ो मोतिया,

सत छोड़े कइसे पत रहिहें नु रे की॥

—वही, पृ० २४७

३. अगिया लगावअँ तोरी मुंदरी बजर परे तिलरी

× × ×

जाते ही दइया अकेलिन, लटत बिरन संग,

केवटा खलवा कढ़ाय, भूसा भरतेअँ जवन, मुख भाखेअँ

—लेखक का निजी संग्रह

४. जो हम चलीं राजा तोहरे गोहनवा रे ना।

राजा तोरे ले मुन्नर मोर बिअहुवा रे ना॥

जे के चरर मरर करें जूतवा रे ना।

जे के एड़िया बरन दरपनवा रे ना॥

—रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम गीत, पृ० ३४३, ४७



निरवाही के एक गीत में जय सिंह नामक कोई राजा किसी सुन्दरी स्त्री से व्यभिचार का प्रस्ताव करता है। इस पर क्रोधित होकर वह सती स्त्री अपनी कमर से कटार निकाल कर उस दुष्ट राजा का वध कर देती है। इस प्रकार वह अपने सतीत्व की रक्षा करती है। रेशमी नामक किसी तरुण युवती पर कोई कोतवाल आसक्त है। वह उससे पूछता है कि “तुमने यह अलौकिक रूप-सौन्दर्य कहाँ से प्राप्त किया है? क्या विधाता ने तुम्हें किसी साँचे में ढाल कर बनाया है अथवा किसी चतुर सोनार ने तुम्हें बड़े परिश्रम से गढ़ा है।” इस पर सती रेशमी उत्तर देती है कि “ए कोतवाल! मैं तुम्हारी दाढ़ी में आग लगा दूंगी। कहीं मनुष्य के निर्माण करने की क्षमता सोनार के पास हो सकती है?”

मन चले नौजवान युवती तरुणियों को छेड़ने से कभी बाज नहीं आते। पनघट पर, नदी के किनारे, तालाब के तट पर, हाट-बाजार में जहाँ भी कोई सुन्दरी मिल गई वहाँ ये छोकरे हँसी-ठिठोली करने तथा अनुचित प्रेम-प्रस्ताव पेश करने में पीछे नहीं रहते। यह दशा पहिले भी थी और आज भी कुछ परिवर्तित रूप में वर्तमान है। प्राचीन काल में प्रेमी अपनी प्रेमिका की रक्षा करता था परन्तु आज का हताश प्रेमी अपनी प्रेमिका की हत्या कर डालता है।

कुसुमा देवी का चरित्र एक आदर्श सती के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है। इस वीराङ्गना का साहस, धैर्य तथा अद्भुत पराक्रम लोक गीतों के इतिहास में सदा अमर रहेगा। किस प्रकार कुसुमा ने आततायी मुगलों के जाल में पड़ कर, छलपूर्वक उन्हें चकमा देकर, उनके पंजे से अपना छुटकारा किया और किस प्रकार उसने अपने पिता के तालाब में डूब कर मुगलों से अपने सतीत्व की रक्षा की यह भारतीय इतिहास की अमर कहानी रहेगी। कुसुमा देवी की यह पवित्र गाथा स्त्रियों के सतीत्व का अमर काव्य है। सच तो यह है कि आत्महत्या करके भी अपने सतीत्व की रक्षा करना भारतीय वीराङ्गनाओं का ही काम है। कुसुमा देवी की कथा हमें सती शिरोमणि पद्मिनी की स्मृति दिलाती है जिसने अपनी हजारों सहेलियों के साथ ‘जौहर’ का कठिन व्रत करके अल्लाउद्दीन के गर्हित प्रयास को मिट्टी में मिला दिया था।<sup>१</sup>

युवती मैना के रूप-माधुर्य का पान करने के लिए गोपी नामक कोई कामुक पुरुष भ्रमर की भूमिका प्रस्तुत करना चाहता है। उसे वह अनेक प्रकार का आर्थिक प्रलोभन भी देता है। मैना का विवाह अन्यत्र हो जाने पर भी वह उसका पिण्ड नहीं छोड़ता और जोगी का वेश बनाकर उसकी ससुराल पहुँच जाता है। तब सती मैना उसे दुत्कारती हुई कहती है कि तुम मेरे प्रेम की आशा को छोड़ कर चुल्लू भर पानी में डूब मरो। तुम मेरे धर्म के भाई लगते हो, अतः ऐसा कुकर्म मत करो।<sup>२</sup> कोई स्त्री पानी भरने के लिए पनघट पर गई हुई है। कोई राजपूत युवा उसके सौन्दर्य पर मोहित हो जाता है और प्रेम संबंधी चिकनी-चुपड़ी बातें करके उसे अपने प्रेमजाल में फँसाना चाहता है। वह कहता है कि यदि तुम अपना प्रेम-दान मुझे दो तो मैं तुम्हें अपने हृदय में रखूँगा। इस पर रोष से उत्तेजित होकर वह सती स्त्री सिंहिनी की तरह गर्जती हुई उत्तर देती है कि “तुम्हारे जैसे राजपूत के छोकरे को मैं नौकर रखूँगी और उसके सिर पर अपने पति का जूता रखकर उससे ढोलाऊँगी।”<sup>३</sup> इस उक्ति में कितना स्वाभिमान भरा हुआ है।

भोजपुरी स्त्रियों के लिए अन्य बाहरी व्यक्तियों से अपने सतीत्व की रक्षा करना तो आवश्यक है ही, कभी कभी घर-वालों से भी अपनी जान बचानी जरूरी हो जाती है। कोई देवर प्रोषित्यतिका अपनी भाजज से अनुचित प्रस्ताव करता है और उससे निर्लज्ज होकर पूछता है कि तुम किसके लिए अपने यौवन की रक्षा कर रही है? अपने देवर के इस दुष्ट प्रस्ताव पर आक्रोश प्रकट करती हुई उसकी भावज ठसाका सा उत्तर देती है कि “मैं अपने पति के लिए अपने यौवन को सुरक्षित रख रही हूँ। ए बदतमीज देवर! यदि तुमने फिर कभी ऐसा अनुचित प्रस्ताव किया तो तुम्हारी लम्बी-लम्बी बांहों को

१. दड़िया में जारों भैया तोर कोतवालवा,  
मनई का गढ़ेला सोनार बहुअरि रेसमी।

—रामनरेश त्रिपाठी—ग्रामगीत, पृ० ३६१

२. त्रिपाठी—वही

३. तोहरो करमवा के कहों गोपी आसिक,  
चुल्लू भरि पनिया में डूबहू रे जी।  
आसिक के आसा छोड़ि देहूँ गोपी भइया,  
तुहूँ त धरम केरा भइया हू रे जी॥

—डॉ० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १, पृ० १३५

४. अस रजपुतवा जो पाइत चाकर हम राखित हो,  
अपने प्रभु जी के पाँय के पनहिया तो तोसे दोवाइत हो॥

—डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोक-गीत, भाग १, पृ० ५६



मैं अपने पति के द्वारा जड़ से कटवा डालूंगी।<sup>१</sup> पति-प्रेम-परायणा भावज का यह कितना करारा जवाब है जिसे सुनकर वह मन-चला देवर फिर कभी प्रेम-प्रस्ताव करने की हिम्मत ही नहीं कर सका।

महाकवि भवभूति ने ठीक ही कहा है कि:—<sup>२</sup>

“यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।”

अर्थात् स्त्री तथा कविता के निर्दोष होने में सभी लोग सन्देह किया करते हैं। भवभूति का यह कथन भोजपुरी समाज की स्त्रियों पर जितना अधिक घटित होता है उतना संभवतः अन्यत्र नहीं। स्त्री कितनी भी पति-परायणा, सती, साध्वी और पवित्र क्यों न हो, पति को उसके आचरण पर सन्देह करने में तनिक भी देर नहीं लगती।

किसी स्त्री का पति जीविकोपार्जन के लिए परदेस गया हुआ है। वह बारह वर्षों के पश्चात् घर लौटता है। उसकी बहिन अपनी भावज के कल्पित दुःश्चरित्र की कथा अपने भाई को सुनाकर, भावज की अग्नि परीक्षा लेने के लिए उससे कहती है। यह दुष्ट पति स्वयं बारह वर्षों तक परदेस में रहने के कारण अपने सच्चरित्र की कोई गारण्टी देने में सर्वथा असमर्थ है, फिर भी वह अपनी दुःखिया परन्तु सती स्त्री की अग्नि-परीक्षा लेता है। इस कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण होकर उसकी पत्नी अपने सतीत्व को प्रमाणित कर पति की आशंका को सर्वथा निर्मूल सिद्ध कर देती है।<sup>३</sup>

आदर्श सतीत्व की यह भावना मानव जगत् को अतिक्रमण कर पशु जगत् में भी व्याप्त दिखाई पड़ती है। कोई हरिणी अपने पति—हिरन की खाल को कौशिल्या से मांगती हुई कहती है कि “मेरे पति को मार कर उनका मांस आपके रसोईघर में पकाया जा रहा है—परन्तु उसकी खाल हमें अवश्य दे देने की कृपा करें। मृत पति के उस खाल को पेड़ पर टांग कर मैं अपने मन को सान्त्वना दूंगी मानों मेरा पति अभी भी जीवित है।”<sup>४</sup> पशु जगत् में सतीत्व की ऐसी भावना अनसुनी तथा अनहोनी है।

भोजपुरी लोकोक्तियों में भी ऐसे भाव अभिव्यक्त किये गये हैं जिनसे आदर्श सतीत्व के संबंध में प्रचुर प्रकाश पड़ता है। भोजपुरी स्त्री अपने ‘भतार’ (भर्ता-पति) से सुन्दर किसी अन्य पुरुष को नहीं समझती चाहे उसका पति कितना ही कुरूप क्यों न हो। किसी पर-पुरुष की निन्दा करती हुई कोई पतिव्रता नारी कहती है उसका पेट (तोंन) आगे निकला हुआ है, वह तुन्दिल है और उसकी पीठ पर कूबर है। क्या यह मेरे पति से किसी भी प्रकार से सुन्दर हो सकता है? नहीं, कदापि नहीं।<sup>५</sup> कोई स्त्री पर-पुरुष की उपमा पानी की लहर-हिलकोरा-से दे रही है जो थोड़ी ही देर में नष्ट हो जाता है।<sup>६</sup>

“अनकर सुनर बर, पानी के हिलोरा।

आपन कुबुज बर, सुतबि भरि कोरा॥”

१. देवर! सँचिले जोबानावा बलमुंआ लागि ना,  
अइसन बोली जनि बोलु देवरवा हो,  
काटाइ रे देबो ना, तोरी अलफी रे बहियाँ  
काटाइ रे देबों ना।

—डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोक-गीत, भाग १, पृ० २१७

२. उत्तर रामचरित अंक १।

३. डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोक-गीत, भाग १, पृ० १४१-४३।

४. पेड़वा से टांगबि खलरिया

त मनवा समुसाइबि हो।

रानी हिरि फिरि देखबि खलरिया

जनुक हरिना बीयतहिं हो॥

—डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, पृ० २६

५. आगे तोंन, पाछे कूबर,

हमरा भतार से, तू ही सुघर?

—लेखक का निजी संग्रह, पृ० ४०१

६. वही।



भाव यह है कि किसी दूसरी स्त्री का पति सुन्दर ही क्यों न हो परन्तु वह मेरे लिए पानी की लहर के समान क्षणिक है, परन्तु अपना पति यदि वह कुबड़ा ही क्यों न हो मैं उसे गोदी में लेकर सुखपूर्वक सोऊँगी। कुछ इसी प्रकार का भाव स्त्री की इस कविता में भी पाया जाता है।

“कहा करो वंकुण्ठ लें, कल्पवृक्ष की छाँह।  
रहिमन बबुर सराहिये, जहँ प्रीतम गल-बाँह॥”

सती स्त्री के लिए पति और पुत्र दोनों ही प्राणों से भी प्रिय होते हैं। अतः इसी पेशेपेश में पड़ी हुई कोई स्त्री कहती है मेरे लिए दोनों ही मीठे (प्रिय) हैं। अतः मैं किसकी शपथ खाऊँ?’ इसी प्रकार स्त्री के लिए पति और अपना भाई दोनों ही आदर के पात्र हैं। कोई स्त्री इसी भावना की अभिव्यक्ति करती हुई सन्देह के झूले में झूल रही है। वह कहती है कि पति की बातों का समर्थन करूँ तो भाई से नाता छूट जायेगा और यदि भाई का कहना मानती हूँ तो पति से विरोध होने की संभावना है।<sup>१</sup> इसी आशय की एक दूसरी लोकोक्ति भी पायी जाती है।<sup>२</sup>

जिस स्त्री का पति परदेस चला जाता है वह अपने शरीर का प्रसाधन तथा शृंगार नहीं करती। वह उसके वियोग में अपने दिनों को किसी प्रकार से काटती है। जब सौन्दर्य का उपभोक्ता ही विद्यमान न हो तो यह सारा साज-शृंगार किसके लिए किया जाय? एक लोकोक्ति का भाव यह है कि जिसकी जबान झूठी है उसकी प्रतिज्ञा या वादा का क्या मूल्य है? इसी प्रकार से जिस स्त्री का प्रियतम परदेस में जा बसा हो उसका शृंगार करना व्यर्थ है।<sup>३</sup> जब किसी युवती का विवाह बालक पति से हो जाता है—जो संभोग में असमर्थ है—तो उसके संबंध में भी इसी प्रकार की उक्ति कही जाती है।<sup>४</sup>

भोजपुरी नारी अपने पति की सदा सहचारिणी होती है। परन्तु दुष्ट पति उसके साथ कितना भी कुत्सित व्यवहार क्यों न करें, वह चाहे उसे मारे अथवा काट ही क्यों न डाले परन्तु वह उसकी ही शरण में रहना चाहती है।<sup>५</sup>

इसी प्रकार से भोजपुरी लोक-गीतों तथा लोकोक्तियों में भी नारी के आदर्श चरित्र का चित्रण उपलब्ध होता है। शायद ही संसार के किसी साहित्य में लोक-संस्कृति का ऐसा पावन तथा समुज्ज्वल स्वरूप उपलब्ध हो सके।

## कुलटा के रूप में

### (५) अनुच्छेद

गत पृष्ठों में भोजपुरी समाज तथा लोक साहित्य में सती स्त्रियों का जैसा चित्रण उपलब्ध होता है उसे प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। परन्तु समाज में कुछ ऐसी भी स्त्रियाँ होती हैं जिनका आचरण उचित नहीं कहा जा सकता। ये कुलटा स्त्रियाँ तीन प्रकार की होती हैं—(१) पहिली वे हैं जो अपने व्याहता पति को छोड़कर दूसरे पति को स्वीकार कर लेती हैं और (२) दूसरी अपने प्रथम पति की मृत्यु के पश्चात् अनाचार कर्म में प्रवृत्त होती हैं। (३) इनकी एक तीसरी कोटि भी है जो अपने व्याहता पति की आँख बचा कर पर-पुरुष से संबंध स्थापित कर लेती हैं। इनमें से प्रथम तथा तृतीय कोटि की स्त्रियों की ही प्रधानता है।

कोई कुलटा स्त्री अपने पति को तो देखकर रोने लगती है परन्तु पर-पुरुष से संभोग की संभावना से प्रसन्न होकर हँसती

#### १. पुतरो मीठ, भतरो मीठ। किरिया केकर खाई॥

—लेखक का निजी संग्रह

#### २. सँझ्याँ अस कहीं, त नातावा टूटी।

भइया अस कहीं, त सेजिया छूटी॥

—लेखक का निजी संग्रह

#### ३. सँझ्याँ से जनि बोल, सेजिया छूटी।

भइया से जनि बोल, नइहरवा छूटी॥

—लेखक का निजी संग्रह

#### ४. जेकर जबान झूठ, ओकर करार का?

जेकर पिया परदेस, ओकर सिंगार का?

—लेखक का निजी संग्रह

#### ५. कापर करो सिंगार, पुरुष मोर आल्हर।

—लेखक का निजी संग्रह

#### ६. मारु चाहे काटु पिया तोरे ओरिया।

—लेखक का निजी संग्रह



है, प्रसन्नता प्रकट करती है।<sup>१</sup> दूसरी कुलटा पर-पुरुष को अपनाने के लिए, उसे अपनी ओर आकर्षित करने के लिए अपने ललाट में बड़ी बड़ी टिकुली (टिकुला) लगा रही है।<sup>२</sup> किसी स्त्री का पति कुछ काम नहीं करता, दिन भर निठल्ला बैठा रहता है। अतः वह कहती है कि ऐसा बेकार पति मर भी नहीं जाता क्योंकि इसके साथ सोने पर चित्त को बड़ा कष्ट होता है।<sup>३</sup> कोई पति अपनी स्त्री से कहता है कि यदि तुम अपना आचरण तथा व्यवहार अच्छा रखोगी तो तुम्हीं को अपने घर में रखूंगा परन्तु यदि तुमने अनुचित आचरण किया तो परिणामस्वरूप मुझे तुम्हें ताड़ना देनी पड़ेगी।<sup>४</sup> किसी कुलटा स्त्री ने अपने घर के 'कोठिला' में अपने प्रेमी-जार-को छिपा रखा था। वह साधारणतया घर के बारे में बातचीत तो अपने व्याहृत पति से करती थी परन्तु अपने हृदय की बातें—प्रेमालाप—उस कोठिला में छिपा कर रखे गये पर-पुरुष से किया करती थी।<sup>५</sup> जो कुलटा स्त्रियाँ कुटनी का काम करती हैं उनकी दशा के संबंध में यह लोकोक्ति चरितार्थ होती है कि "एक तो तितलौकी, दूसरे नीम-चढ़ी।" एक तो कुलटा स्वतः आचरण हीन होती है फिर यदि वह कुटनी (कुटनी) की भूमिका अदा करने लगे तो फिर उसका क्या पूछना? वह अपनी आँखों को घुमाकर संकेत करती रहती है, उसकी भौ और 'पपनी' (वरौनी) भी चलती रहती है। इस प्रकार अपने हाव-भाव से वह अनेक प्रकार की झूठी-सच्ची बातों को संकेत द्वारा प्रकाशित करती रहती हैं।<sup>६</sup> कोई दुश्चरित्र स्त्री अपने संकेत-स्थल को जाना चाहती है परन्तु वह इस बात को छिपाने के लिए लोगों से पूछती है कि बाजार कहाँ लगता है और वहाँ जाने के लिए रास्ता कौन सा है?<sup>७</sup>

× × ×

× × ×

× × ×

× × ×

शास्त्रकारों ने लिखा है कि:—

“वृद्धस्य तरुणी भार्या, प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।”

अर्थात् वृद्ध-पुरुष के लिए युवती स्त्री उसके प्राणों से भी प्रिय होती है। परन्तु तरुणी भार्या के लिए बूढ़ा तथा जीर्ण-शीर्ण पति विष के समान त्याज्य और घृणित होता है। ऐसी ही कोई युवती स्त्री किसी देवी से प्रार्थना करती है कि बूढ़े पति से मेरा पिण्ड किस प्रकार छूटेगा इसके लिए हे देवी कोई उपाय बतलाइए। तब यह आकाशवाणी होती है कि माघ के महीने में घी से युक्त खिचड़ी खिलाने से तुम्हारा बूढ़ा पति मर जायेगा।<sup>८</sup> उस कुलटा ने वृद्ध-पति को घृत मिश्रित खिचड़ी खूब खिलायी परन्तु उसकी आशा की पूर्ति नहीं हो सकी। युवती स्त्रियाँ अपने बूढ़े 'झुरकुट'-पतियों से प्रसन्न नहीं रहतीं। अतः वे चाहती हैं कि यह बूढ़ा किसी प्रकार से मर जय जिससे पर—पुरुष से उनके सुख-संभोग के मार्ग का काँटा सदा के लिए दूर हो जाय। यद्यपि लोक-गीतों में कुलटा स्त्रियों का वर्णन प्रायः नहीं पाया जाता, फिर भी एक गीत में इनकी झाँकी देखने को मिलती है। किसी कर्कशा स्त्री—जो कुलटा भी है—का वर्णन एक गीत में बड़ी ही सजीव भाषा में किया गया है। लोक कवि कहता है कि ए पुरुष! तुम धन्य हो क्योंकि तुम्हें कर्कशा स्त्री मिली है। वह अपने घर के दरवाजे पर बैठ कर अपने सिर में तेल लगाती है और अपनी माँग को सिन्दूर से भरती है। वह प्रातःकाल उठकर, अपना आँचल

१. आपन भतार देखि रोवे बपुरी।

अन कर भतार देखि हँसे बपुरी॥

—लेखक का निजी संग्रह

२. आन का भतार पर टिकुला।

—वही

३. अकरब पियवा मरियो न जाय।

सूते के बेरिया चित फरियाय॥

—लेखक का निजी संग्रह

४. मन करबू मेंही तब घर में रहबू तूही।

मन करबू मोटा, तब खइबूतू सोटा॥

—वही

५. अचन, बचन, पिय तोहरा से।

हिरदयवा के बात कोठिलवा से॥

—लेखक का निजी संग्रह

६. आँखि चले, भँहू चले, चले पपनी।

सात रंग के बात कहे, अहे कुटनी॥

—लेखक का निजी संग्रह,

७. छउड़ी छिनारि छने गाहता।

कहवाँ बाजार, कहवाँ रासता॥

—वही

८. माघ मास घिउ खीचड़ि खाय।

बुढ़वा छटक छटक मरि जाय॥

—लेखक का निजी संग्रह,



फैलाकर भगवान् भास्कर से नित्य यही प्रार्थना करती है कि मैं कब राँड़ होऊँगी? मुझे विधवा होने का वरदान कब मिलेगा? सचमुच ऐसा वरदान माँगने का साहस कर्कशा तथा कुलटा स्त्री ही कर सकती है।<sup>१</sup>

## वन्ध्या के रूप में

(६) अनुच्छेद

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है भोजपुरी समाज में किसी स्त्री का महत्त्व उसके पुत्रों की संख्या से ही आँका जाता है। जिस स्त्री के जितने ही अधिक पुत्र होते हैं उसका उतना ही अधिक आदर एवं सन्मान घर में किा जाता है। नारी जीवन का महत्त्व उसके पुत्रवती होने में ही है। गोस्वामी जी ने भी पुत्रवती नारी की ही कल्पना अपने 'मानस' में इस प्रकार की है:—

“पुत्रवती जुवती जग सोई,  
रघुबर भगत जासु सुत होई।”

जिस स्त्री को पुत्र पैदा नहीं होता वह समाज में घृणित दृष्टि से देखी जाती है। घर वाले उसे ताना मारते हैं। यदि विवाह के बाद अनेक वर्षों तक पत्नी को कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुई अथवा केवल लड़कियों की ही 'बाढ़' लगती गयी तो उसका पति दूसरा विवाह करने पर उतारू हो जाता है। पत्नी के बहुत मना कर भी वह नहीं मानता तथा उसकी सीत को घर में लाकर विठा देता है। इस प्रकार से प्रथम पत्नी को अनेक प्रकार का शारीरिक तथा मानसिक कष्ट उठाना पड़ता है। यदि समाज में विधवा होना अभिशाप तथा पूर्वजन्म के पापों का कारण माना जाता है, तो वन्ध्या होना अदृष्ट का हेतु समझा जाता है। दोनों ही स्त्री के दुर्भाग्य का सूचक है जिसमें उसका कोई वश नहीं होता।

इसीलिए वन्ध्या स्त्री—जिसे भोजपुरी में 'बाँझ' या 'बाँझिन' कह कर अपमानित किया जाता है—पुत्र-प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार का प्रयास करती है। वह कभी पण्डी-व्रत का विधान कर भगवान् भास्कर से पुत्र देने की प्रार्थना करती है, तो कभी शीतला माता को प्रसन्न कर पुत्र की भिक्षा माँगती है। कभी काशी के लोलार्क कुण्ड में स्नान कर अपनी सूनी गोद को भरना चाहती है तो कभी किसी साधु, सन्त, औलिया अथवा पीर की शरण में जाकर अपने वन्ध्यात्व को दूर करने का निवेदन करती है।

स्त्रियों के हृदय में पुत्र-प्राप्ति की कामना का उदय होना स्वाभाविक है। वे जानती हैं कि पुत्र के बिना उनका जीवन निरर्थक है। इसीलिए वे गंगा स्नान, व्रत, तप और पूजा-पाठ में अपना मन लगाती हैं। एक सोहर में पुत्र-प्राप्ति के लिए किसी स्त्री के द्वारा गंगा-स्नान का उल्लेख उपलब्ध होता है। गंगाजी जब उस स्त्री से पूछती हैं कि तुम क्यों स्नान कर रही हो तब वह उत्तर देती है कि मेरे पास सुवर्ण प्रचुर परिमाण में है, चाँदी की तो कथा ही क्या है? मुझे पुत्र प्राप्ति की प्रबल कामना है। मैं केवल उसी को चाहती हूँ।<sup>२</sup>

“सोनवा ए गंगा जी ढेर बाटे, रूपवा के पूछेला हो।  
मोरा रे सन्ततिया के साध; सन्तति हम चाहिले हो॥”

सन्तति (पुत्र) का अभाव दुर्दैव का कारण समझा जाता है। अतः कोई स्त्री अपने माग्य पर चार चार आँसू बहाती हुई कहती है कि:—<sup>३</sup>

१. धनि धनि रे पुरुष तोर भागि,  
करकसा नारि मिली।  
डेहरी बंठे तेल लगावै,  
सेनुर भरावै माँगि।  
आँचर पसारि के सुरज मनावै  
कब होइबो में राड़ि।  
करकसा नारि मिली।

—डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोक-गीत, भाग १, पृ० ७१

२. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० २४२।

३. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक-गीत, भाग १, पृ० ६२।



“ए रानी नांही बिधि लिखले लिलार,  
संतति नाहि मिलेला हो।”

सोहर के एक अन्य गीत में सन्तानहीनता के लिए भाग्य को कोसा गया है।<sup>१</sup> कोई स्त्री सन्तान-प्राप्ति के लिए अनेक तीर्थों, नदियों और मन्दिरों की खाक छानती है। परन्तु फिर भी पुत्र से रहित होने के कारण उसका “बाँझिन” का नाम नहीं छूटता। इसी मनोवेदना की अभिव्यंजना नीचे की पंक्ति में बड़ी सुन्दर रीति से की गई है।<sup>२</sup>

“आताना तीरिथि हम कहलों,  
बाँझिनि हम रहि गइलों हो।”

पुत्र की प्राप्ति ही नारी-जीवन की एकमात्र कामना होती है। उसके अभाव में यदि वह अपने जीवन को निरर्थक समझती है तो इसमें आश्चर्य ही क्या? किसी बाँझिनि की हार्दिक व्यथा की यह अभिव्यक्ति कितनी मर्मस्पर्शी है।<sup>३</sup>

“लाल, पियर ना पहिरलीं, चउक ना बइठलीं हो।  
ललना ! गोदिया ना खेलवनीं बालकवा; मोर जनम अकारथ हो।”

पुत्र के अभाव में, व्याहता पति भी अपनी पत्नी से ‘मुंह खोल कर’ नहीं बोलता है, प्रत्युत व्यंग वाणों से उसे सदा पीड़ित करता रहता है। इसी बात की शिकायत करती हुई कोई भावज अपने देवर से रो रो कर कहती है कि ए बबुआ ! (लहुरा देवर) आपका बड़ा भाई केवल पुत्र न होने के कारण मुझे “कुबोली”—बुरी तथा कटु—बात बोलता रहता है।<sup>४</sup>

“ए बबुआ ! राउर भइया बोलेले कुबोलिया।  
एक रे बालक बिनु ए राम॥”

बन्ध्या स्त्री कितनी अभागिनी होती है, कितनी उपेक्षिता तथा कितनी गर्हणीय समझी जाती है इसका अनुमान केवल इसी से लगाया जा सकता है कि उसकी पूजा-अर्चा को भगवान् सूर्य भी स्वीकार नहीं करते। इतना ही नहीं बल्कि शीतला देवी भी—जो स्वयं मातृत्व की देवी है—किसी बन्ध्या की पूजा को इसलिए ग्रहण नहीं करती क्योंकि उसका जीवन पुत्र के बिना अपवित्र तथा घृणित है।<sup>५</sup>

किम्बहुना, स्त्रियों की बात तो दूर रही, पार्वती और सीता जैसी देवियाँ भी पुत्र की प्राप्ति के लिए अनेक उपायों में प्रवृत्त पायी जाती हैं। पार्वती भी पुत्र की कामना से सूर्य-पष्ठी का व्रत करती हैं।<sup>६</sup> सीता जी भी पुत्र को पाने के लिए रोती कलपती दिखाई पड़ती हैं। वह कहती हैं कि मैं पुत्र से वंचित हूँ, अतः अब मेरे जीवन की मनोकामना कैसे पूर्ण होगी।<sup>७</sup>

“राजा मोरा गोदिया ना जनमल बलकवा।  
अहकल कइसे पुजिहई हो॥”

यहाँ पार्वती और सीता को भोजपुरी प्रदेश की एक सामान्य स्त्री का प्रतिनिधि समझना चाहिए। देवत्व की भावना से इन्हें अभिमूत करना उचित नहीं है।

गोस्वामी जी ने लिखा है कि—

“पति बिहीन सब सोक समाबू।”

वास्तव में यही बात पुत्र के विषय में भी कही जा सकती है। घर में सारी सम्पदा भरी पड़ी हो, भाई, भतीजा, देवर

१. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, पृ० ६२।

२. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, पृ० ७२।

३. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, पृ० ८२।

४. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० २३६।

५. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, भाग २, पृ० २५७।

६. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० २५३।

७. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, भाग २, पृ० २७२।



और जेठ सैकड़ों की संख्या में भले ही विद्यमान हों, परन्तु एक बालक के बिना माता की गोद सूनी दिखाई पड़ती है। जतसार की कुछ कड़ियों में किसी बन्ध्या स्त्री की दुःखी आत्मा तड़प रही है, उसके हृदय का करुणक्रन्दन पाषाण-हृदय को भी द्रवीभूत करने में समर्थ है :—

“रामा एक सई आमावा लगबलों, सवा सई जामुन हो।  
आहो राम, तबहूँ ना बगिया सोहावन, एक रे कोइलि बिनु हो राम॥१॥  
नइहर में पांच गो भइया, अवरु सात गो भतिजा बाड़े हो।  
आहो रामा, तबहूँ ना नइहर सोहावन, एक रे मयरिया बिनु हो राम॥२॥  
एक कोरा लिहलो में भइया, दूसरे कोरा भतिजवा हो राम।  
आहो रामा, तबहूँ ना गोदिया सोहावन, एक रे बालक बिनु हो राम॥३॥”

बाँझ-बन्ध्या स्त्री भोजपुरी समाज की अत्यन्त उपेक्षिता नारी है। उसे कोई भी व्यक्ति अपनी वस्तु को देना नहीं चाहता। कोई रानी अपनी पुत्रेच्छा की पूर्ति के लिए, किसी दूसरी स्त्री से अपनी गोद में खिलाने के लिए उसके बालक को माँगती है, परन्तु वह यह कहते हुए उसकी प्रार्थना को स्पष्ट ही अस्वीकार करते हुए कहती है कि मैं तुमको अपना बालक नहीं दूंगी, क्योंकि तुम्हें ‘बाँझिन’ के नाम से सम्बोधित किया जाता है :—

“ए रानी ! आपन बालकवा नाही देबों।  
तोर नइयाँ बझिनियाँ के हो॥”

एक अन्य गीत में बन्ध्या स्त्री की यह पुत्र-कामना अपनी सीमा को पार करती हुई दिखाई पड़ती है। जब उसे अस्थि-चर्म-सम्पन्न किसी पुत्र की प्राप्ति नहीं होती, तब वह अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिए काष्ठ-खण्ड से निर्मित लकड़ी के निर्जीव बालक को ही लेकर अपनी सूनी गोद को सुशोभित करना चाहती है। वह किसी बड़ई से काठ का लड़का गढ़ देने की प्रार्थना करती है और उस निर्जीव बालक में प्राण संचार करने के लिए भगवान् से निवेदन करती है : जिससे उसके बाँझ होने का कलंक मिट जाय। इस पर वह निर्जीव बालक कहता है कि ए रानी बड़ई के द्वारा गढ़ा हुआ बालक सजीव की भाँति आचरण करने में असमर्थ होता है। यदि मुझे भगवान् ने गढ़ा होता, तो मैं तुम्हारी अभिलाषा की पूर्ति अवश्य करता।<sup>१</sup>

बाँझ स्त्री को अपनी सास और ननद के तीक्ष्ण बाक्-बाणों का सदा शिकार बनना पड़ता है। गाँव की सभी स्त्रियाँ उसे ‘बाँझिन’ के नाम से सम्बोधित करती हैं। ऐसे विषम वातावरण में रहने के कारण तथा घर के लोगों के सतत दुर्व्यवहार से ऊब कर, कोई स्त्री कहती है कि मेरे मन में यह विचार आता है कि मैं या तो विष खाकर मृत्यु का आलिङ्गन कर लूँ अथवा भगवान् अग्निदेव को अपने शरीर को अर्पित कर दूँ। मृत्यु के बाद मेरी बन्ध्यात्व रूपी कलंक की कालिमा तो मिट जायेगी।<sup>२</sup>

स्त्री के बन्ध्या होने के कारण पति का मन भी पत्नी से उचाट खाने लगता है। वह उसका उचित आदर-सत्कार नहीं करता। इसी अपमान के कारण कोई स्त्री घर से निकल कर, जंगल में जाकर, ‘जोगिनी’ का वेष धारण कर अपना कलंकित जीवन बिताना चाहती है। अपनी दुःखिया जीवन-गाथा की व्यथा का सदा के लिए अन्त कर देने के लिए, वह किसी बाधिन को अपने शरीर को भक्षण कर लेने के लिए अर्पित करती है, नागिन से डँसने की प्रार्थना करती है और घरती माता से अपने भीतर उसे स्थान देने के लिए हाथ जोड़ती है; परन्तु कोई भी उसकी बिनती को स्वीकार नहीं करता। सभी यही उत्तर देती हैं कि ए बाँझिन !

१. लेखक का निजी संग्रह, पृ० १०५।

२. रानी बड़ई के गढ़ल होरिलवा,

रोवन नाही जानइ हो॥

देव गढ़ल ओ में होइतों,

तो रोइ के सुनइतेऊँ हो॥

त्रिपाठी : ग्राम-गीत, पृ० ७।

३. अस मन करे मइया, जहरवा खाइ मरितों हो।

एक मन करे मइया, अगिनिया में जरि हो जाऊँ॥

भो०—५

—डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० ३५४



यदि हम तुमको खा लें, डँस लें, अथवा अपने भीतर (पृथ्वी में) स्थान दे दें, तो तुम्हारी छूत हमें भी लग जायेगी और हम स्वयं भी बन्ध्या बन जायेंगी।<sup>१</sup>

पृथ्वी, माता कहलाती है। वह अपने गर्भ में सब को स्थान देती है; परन्तु वह भी एक दुःखिया बाँझ स्त्री को अपने हृदय में स्थान देने से डरती है कि कहीं वह भी बन्ध्या न बन जाय। उसका उर्वरात्व कहीं नष्ट न हो जाय और वह ऊसर भूमि के रूप में परिणत न हो जाय। किमाश्चर्यमतः परम्।

गत पृष्ठों में भोजपुरी लोक साहित्य में बन्ध्या स्त्रियों का जैसा चित्रण किया गया है, उसकी केवल एक झाँकी यहाँ प्रस्तुत है। यदि समाज की वास्तविक दशा पर दृष्टिपात किया जाय, तो पूर्वोक्त वर्णन अत्यन्त सत्य तथा सटीक दिखाई पड़ता है। आज समाज में लाखों की संख्या में बन्ध्याएँ मौजूद हैं, जो नारकीय यन्त्रणा को सहते हुए अपने जीवन के शेष दिनों को बड़े ही दुःख में काट रही हैं।

बाँझपन एक बीमारी है, जो स्त्री या पुरुष किसी में भी हो सकती है। परन्तु भोजपुरी समाज की यह विशेषता है कि वह इस रोग से केवल स्त्रियों के ही पीड़ित होने की सम्भावना समझता है, पुरुषों में कदापि नहीं। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि विवाह के आठ-दस वर्षों तक यदि कोई सन्तान पैदा नहीं होती अथवा केवल पुत्री ही पैदा होती जाती है, तब स्वेच्छाचारी पुरुष अपना दूसरा विवाह कर लेता है। और यदि इस स्त्री से भी पुत्र की उत्पत्ति नहीं हुई, तब तीसरे और चौथे विवाह की तैयारी करता है। बाद की परिणीता स्त्रियों से, ओझा-औलिया के झड़-फूँक की मदद से, यदि पुत्र उत्पन्न हो जाता है, तो पहिली स्त्री को रौरव नरक की यातना भुगतनी पड़ती है। ऐसे अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण दिये जा सकते हैं, जिनमें ऐसी परिस्थिति में अनेक स्त्रियों को आज भी मार्मिक कष्ट तथा मानसिक पीड़ा भुगतनी पड़ रही है।

## विधवा के रूप में

### (७) अनुच्छेद

भारतीय समाज—विशेषकर भोजपुरी समाज—में विधवाओं की दशा बड़ी ही दयनीय है। विधवापन हिन्दू समाज में अमिश्राप समझा जाता है। कोई स्त्री धन, रूप, सौन्दर्य, शील और विद्या आदि गुणों से कितनी भी सम्पन्न क्यों न हो, परन्तु यदि विधाता ने उसे विधवापन का शाप दे दिया, तो वह अत्यन्त पापिनी, अभागिनी और गरीबनी समझी जाती है। बिना किसी अपराध के वह अपराधिनी है और किसी पाप कर्म किये बिना ही वह 'महापापिनी' की संज्ञा से विभूषित की जाती है। जहाँ सधवापन सौभाग्य का लक्षण माना जाता है, वहाँ विधवापन दुर्भाग्य का प्रतीक है। यदि यह कहा जाय कि हिन्दू विधवा समाज में सबसे अधिक घृणित, उपेक्षित, तिरस्कृत तथा पीड़िता नारी है, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

हिन्दू धर्मशास्त्रकारों ने भी विधवाओं के साथ न्याय नहीं किया है। जहाँ सधवा स्त्रियों के लिए भोजन-छाजन, भोग-विलास के लिए उन्होंने सर्वत्र छूट दी है, वहाँ विधवा की आचरण-संहिता को बनाने में उन्होंने काफी कठोरता से काम लिया है। उन्होंने अपनी सारी शक्ति स्त्री-समाज की इस उपेक्षित सदस्या के दुःखमय जीवन को शास्त्र-वचनों की कठोर-शृंखला में बाँध कर, उन्हें प्रताड़ित तथा प्रपीड़ित करने में कुछ उठा नहीं रखा है। मानों उनकी सारी विद्वत्ता और विचार-शक्ति इसी कार्य के लिए विधाता ने बनायी हो। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी विधवाओं के लिए सुन्दर आमूषण आदि पहिनने का निषेध किया है। कलियुग का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि—

“सोभागिनी विभूषन हीना।  
विधवन के सिंगार नबीना॥”

१ बाधिन हम का जो तू खाइ लेतिउ, विपतिया से छूटि हो।

बाँझिन ! तुमका जो हम खाइ लेबि, हमहूँ बाँझिन होइब हो॥१॥

नागिन, हमका जो तुम डँसि लेतिउ, विपति से हम छूटि हो।

बाँझिन ! तुमका जो हम डँसि लेबि, हमहूँ बाँझिन होइब हो॥२॥

धरती ! तुम ही सरन अब देहु, बाँझिन नाम छूटि हो।

बाँझिन ! तोहका जो हम राखि लेबि, हमहूँ होइबि ऊसर हो॥३॥

डॉ० उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग १, पृ० ३५४।



जो स्त्री सन्तान से वंचित होती है, उसे “बाँझ” की संज्ञा प्रदान की जाती है और जो पति से रहित होती है वह “विधवा” कही जाती है। इन दोनों में कौन अधिक दुःखिता और पीड़िता है, यह कहना कठिन है। दोनों के ही दुःखों का वर्णन करना वाणी के परे का विषय है। परन्तु जो स्त्री “बन्ध्या” भी हो और इसके साथ ही उसे “विधवा” होने का भी कलंक लगा हो, उसके दुःखों के विषय में तो कुछ कहना ही व्यर्थ है। उसके सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि—

“दुखवा अमित न कहि सकहि,  
सहस, सारदा, सेस।”

हिन्दू विधवा का जीवन कष्ट रस का एक महाकाव्य है, जिसे पढ़कर वज्रहृदय भी शतधा विदीर्ण हो जाता है। इसके विषय में महाकवि भवभूति की यह उक्ति नितान्त अक्षरशः चरितार्थ होती है कि—

“अपि घावा रोदति, अपि दलति वज्रस्य हृदयम्।”

भोजपुरी विधवा की दुर्दशा का प्रधान कारण उसकी आर्थिक परिस्थिति है। पति जब तक जीवित है और अर्थोपार्जन कर घरवालों को देता है, तब तक ही स्त्री की घर में पूछ होती है। परन्तु पति की मृत्यु के पश्चात्, विधवा के लिए, आर्थिक सहायता का एकमात्र आश्रय तथा स्रोत सदा के लिए सूख जाता है। ऐसी दुर्दशा में उसी घर में—जिसमें पहिले उसका इतना आदर था—उसे कोई पूछनेवाला भी नहीं रहता। यदि वह अभागिनी विधवा पुत्र के सुख से भी वंचित है, तो उसका भगवान् ही मालिक है। जो स्त्री कुछ दिनों पूर्व ‘वधू’ के नाम से पुकारी जाती थी, उसे लोग ‘मुसम्मात’ के घृणित नाम से सम्बोधित करते हैं। ‘कमासुत’ (द्रव्य उपार्जन करने वाला) पति की मृत्यु के पश्चात् घर की स्त्रियाँ उस विधवा के दुःखिया मन तथा कान्तिहीन शरीर को कटुवाणों से बेधने लगती हैं। वे उसे ताना मार कर पूछती हैं कि “अब तू केकर कमाई खइबू” अर्थात् तुम किसकी कमायी खावोगी? इतना ही नहीं, घरवाले उसके दिवंगत पति का, बड़ी घृणा से नाम लेकर कहते हैं कि अमुक (मँगरुआ या फेंकरुआ) तो मर गया, परन्तु इस डाइन (विधवा) को हम लोगों को दुःख देने के लिए छोड़ गया। इन कटु उक्तियों तथा विष भरे वचनों से बिषकर विधवा की छाती ‘चलनी’ हो जाती है और वह अपने जीवन के दिनों को किसी प्रकार से काटती है।

इसीलिए एक कहावत में कहा गया है कि सभी लोगों का दिन तो किसी प्रकार बीत जाता है, परन्तु विधवा का दिन किसी भाँति काटे भी नहीं कटता।

बड़्डी घर रुपया ओरा जाला  
छेकिन राँड़ के दिन ना ओराला।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने पति-विहीन (अर्थात् विधवा) स्त्री का जो चित्रण किया है, वह बहुत ही सटीक और समीचीन है। सीताजी कहती हैं कि:—

“जिय बिनु देह नदी बिनु बारी,  
तैसिहि नाथ पुरुष बिनु नारी।”

पति के बिना संसार की सभी वस्तुएँ कष्ट-दायक मालूम होती हैं—

“घोग रोग सम, घूषण थारु,  
जम जातना सरिस संसार।  
प्राणनाथ! तुम्ह बिनु जग माँहीं,  
यो कहुँ सुखव कतहु कछु नाहीं।”

संसार में जो कुछ नेह और नाता है, वह सभी कुछ पति के ही कारण है। पति के बिना सारा समाज शोक का समुदाय है।

१. रामचरित मानस : बालकाण्ड।
२. वही।



“जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते,  
पिय बिनु तिर्याहँ तरनिहु ते ताते।  
तन, धन, धाम, धरनि पुरराजू,  
पति बिहीन सब सोक समाजू॥”

पत्नी का श्रृंगार पति ही है। उसके अभाव में सारे संसार में उसे दुःख ही दुःख दिखाई पड़े, तो इसमें कोई आश्चर्य ही क्या है।

‘कमासुत’ पति के अभाव में उसकी पत्नी को घरवाले कभी भर-पेट भोजन भी नहीं देते। इसके लिए उस विधवा को कुटुम्बियों से प्रार्थना करनी पड़ती है। पंचायत घर का दरवाजा खटखटाना पड़ता है। गाँव के मुखिया के घर की खाक छाननी पड़ती है। परन्तु जब इतना प्रपंच करने पर भी उसके भर-पेट भोजन का प्रबन्ध नहीं हो पाता, तब अन्ततोगत्वा उसे कचहरी की शरण लेनी पड़ती है। न्यायालय विधवा के कुटुम्बियों को एक निश्चित धन राशि इस अमागिनी को प्रति माह देने के लिए बाध्य करता है, जिसे विधवा को देना उनके लिए अनिवार्य हो जाता है। उदरपूर्ति के लिए दिये जानेवाले इस धन को “खोरिस” कहा जाता है। ‘खोरिस’ पानेवाली विधवा घृणित दृष्टि से देखी जाती है। क्योंकि जिन परिस्थितियों में उसे ‘खोरिस’ मिलती है, वे बड़ी दुःखद और दयनीय हैं।

आर्थिक दृष्टि से विधवा की दशा दयनीय होने के साथ ही, सामाजिक दृष्टि से वह घृणित है। विधवापन अमंगल का मूल माना जाता है। अतः विधवा किसी मांगलिक कार्य—विवाह, यज्ञ-यागादि—में भाग नहीं ले सकती। किम्बहुना, विवाह के लिए जाते हुए अपने औरस पुत्र का “परीछावन” करने के लिए भी वह अयोग्य समझी जाती है। इसी प्रकार से वह यज्ञ का विधान नहीं कर सकती। विधवा का मुख देखना ही अशुभ माना जाता है। किसी शुभ कार्य के लिए प्रस्थान करते समय यदि उसका मुँह दिखाई पड़ गया, तो कार्य में असफलता की प्राप्ति निश्चित है।

लोक-साहित्य में विधवा का जो चित्रण उपलब्ध होता है, वह बड़ा ही दयनीय तथा हृदय-द्रावक है। कोई बाल विधवा पुत्री अपने पिता से कहती है कि ए पिता जी ! मेरी माँग सिन्दूर के बिना रो रही है। आँखें काजल के अभाव में रो रही हैं। मेरी गोद बालक के बिना और सेज पति के न रहने से रो रही है।’

“बाबा ! सिर मोरा रोबेला सेंनुर बिनु,  
नयना काजरवा बिनु ए राम।  
बाबा ! गोद मोरा रोबेला बालक बिनु,  
सेजिया कन्हैया बिनु ए राम॥”

उपर्युक्त गीत में किसी बाल विधवा का हृदय फूट-फूट कर रोता दिखाई पड़ता है। इस गीत की अंतिम पंक्ति तो बड़ी ही हृदयद्रावक है।

कोई स्त्री अपने पति से जीविकोपार्जन के लिए पूर्व देश-बंगाल-न जाने के लिए प्रार्थना करती हुई कहती है कि बंगाल का ‘पानी’ विष के समान खराब होता है, वह पेट में खराबी पैदा कर देता है। यदि वहाँ “पानी लगने” से कदाचित् तुम्हारी मृत्यु हो गयी, तो मैं अनाथ हो जाऊँगी।’

“पुरुब के पनिआ जहर, विष, महरा,  
बागे करेजवा में घाव।  
पनिया पियत सामी ओ मरि जइव,  
हम धनि होइबों अनाथ॥”

कोई विधवा विलाप करती हुई कहती है कि ए पति ! तुम्हारे बिना मेरा जीवन व्यर्थ है। यदि मायके में मेरा भाई होता और ससुराल में देवर होता तो, मैं उसकी आशा करती; परन्तु अब मैं किसका आश्रय ग्रहण करूँगी, किसकी शरण में जाऊँगी ?’ इस निराश्रिता विधवा की दशा कितनी दयनीय है। भगवान् को छोड़कर कोई इसे पूछनेवाला तक नहीं है। रूपा

१. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, भाग १। पृ० २११

२. डॉ० उपाध्याय : वही — पृ० १०३।

३. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० ४६६।



देवी नामक स्त्री अटारी पर चढ़कर अपने लम्बे-लम्बे बालों को सँवार रही है। इतने में ही उसकी माता आकर उसे यह दुःखद सूचना देती है कि ए बेटी ! अब क्या बाल सँवार रही हो। तुम्हारा पति गायों की रक्षा करते समय आततायियों के द्वारा मार डाला गया है। इतना सुनते ही रूपा की हाथ की कंधी हाथ में ही रह जाती है। वह मूर्छित होकर गिर पड़ती है और उसके सिर का सिन्दूर सदा के लिए नष्ट हो जाता है।<sup>१</sup>

जिस स्त्री का पति मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, उसे भोजपुरी में “रांड” की संज्ञा दी जाती है। ऐसी स्त्री घृणा की दृष्टि से देखी जाती है। वह अकारण स्वेच्छाचारिणी समझी जाती है। इसीलिए यह कहावत प्रचलित है कि:—

“रांड भइली कि सांड भइली।”

अर्थात् यह स्त्री रांड क्या हुई सांड के समान आचरण करनेवाली हो गयी है। काशी के सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है, जिसमें रांड और सांड दोनों ही एक ही कोटि में रखे गये हैं। दोनों एक ही ब्रेकेट (कोष्ठ) के भीतर स्थापित हैं।

“रांड, सांड, सीढ़ी, संन्यासी।

इनसे बचे तो सेवे कासी॥”

विधवा स्त्री के लिए अपने अंगों का शृंगार करना निषिद्ध है। वह न तो अपने लम्बे बालों में, तेल लगाकर, उनका प्रसाधन ही कर सकती है और न आँखों में काजल अथवा अंजन का ही प्रयोग कर सकती है। उसके लिए माँग में सिन्दूर लगाना अत्यन्त निषिद्ध है; क्योंकि सिन्दूर सौभाग्य का प्रतीक समझा जाता है। यही कारण है कि भोजपुरी प्रदेश में ज्यों ही किसी स्त्री के पति की मृत्यु की सूचना मिलती है, त्यों ही उसके घर की स्त्रियाँ उसके माँग के सिन्दूर को मिटाना अथवा धोना प्रारम्भ कर देती हैं। इसी कुत्सित प्रथा के कारण भोजपुरी में यह गाली प्रचलित है कि “तोर माँग धोवों।” पति की मृत्यु के सात दिनों के पश्चात् एक विधान या कर्म किया जाता है, जिसे “सतनहयना” कहते हैं। इस दिन विधवा स्त्री के माँग में पानी या तेल में मिंगोयी गयी सरसों की ‘खली’ मली जाती है, जिससे उसके माँग का सिन्दूर—यदि उसके परमाणु भी अवशेष रह गये हों तो वे—सदा के लिए मिट जायें। इसी कृत्य की ओर संकेत करती हुई एक दूसरी गाली भी प्रचलित है, जो इस प्रकार है:—

“तोरा माँग में बरी दरोँ।”

स्त्रियाँ जब आपस में झगड़ा करती हैं, तब इस गाली का बहुधा प्रयोग किया करती हैं। विधवा के माँग में सिन्दूर के अभाव की कल्पना माँग के रोने से की गयी है। कोई स्त्री कहती है कि:—

“माँग मोर रोबेला सेनुर बिनु।

गोबिया बालकवा बिनु ए राम॥

पति के मरने के बाद, स्त्रियों के शृंगार स्वरूप हाथों की चूड़ियों से भी विधवा वंचित कर दी जाती है। माँग के सिन्दूर को धोने के साथ ही उनके हाथों की चूड़ियाँ भी बड़ी निष्ठुरता से फोड़ दी जाती हैं। इधर सद्यः विधवापन के अभिशाप से अभिशप्त अमागिनी स्त्री रोती, कलपती तथा चिल्लाती रहती है; उधर घर की पाषाण हृदया देवरानी या जेठानी उसकी चूड़ियों को ‘ताबड़-तोड़’ फोड़ती जाती हैं। क्योंकि उनका यह विश्वास है कि इस अशुभ कार्य को जितनी ही जल्दी सम्पन्न कर दिया जाय, उतना ही अच्छा है। इसी कर्म के कारण “तोरा हाथ के चूरी फोरोँ”—भोजपुरी समाज में गाली के रूप में प्रसिद्ध हो गया है।

माँग धोने तथा चूड़ी फोड़ने के साथ ही एक तीसरा कर्म तत्काल ही सम्पादित किया जाता है—वह है विधवा की कमर से रंगीन साड़ी उतरवा कर उसे सफेद लुगरी (फटी, पुरानी सारी) पहिनने को दे देना। इस प्रकार पति की

१. “का तुहु रूपा बेटी झारेलू लामी केसिया,

तोरा सामी जूमेले, गइया के रे गोहारि।

हाथ के रही ककही, हाथहि रहि गइली,

माया के सेनुरवा दइवा हर ले रे जाइ॥”

डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० ४७०।



मृत्यु के कुछ घंटों के भीतर ही भोजपुरी विधवा, भीषण हिमपात से प्रताड़ित उस सूखी लता के समान हो जाती है, जो प्रसून और पल्लव से रहित है। संसार में हिन्दू विधवा के समान दीन, हीन, अनाथ, दुःखी, दरिद्र और निराश्रित कोई भी प्राणी नहीं है।

कानून की दृष्टि से भी विधवा को कोई आर्थिक अधिकार प्राप्त नहीं है। न तो वह अपने पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी हो सकती है और न किसी बालक को गोद लेने का ही अधिकार उसे प्राप्त है। वह परिवार वालों पर पूर्णतया आश्रित होकर, केवल अपनी पेट-पूजा मात्र कर सकती है। इस प्रकार दाय-भाग के अधिकारों से वंचित, आर्थिक साधनों से रहित, शारीरिक प्रसाधनों से अपहृत, हिन्दू विधवा दीनता, दरिद्रता और दयनीयता की साक्षात् प्रतिमूर्ति है, जिसे देखकर पाषाण का हृदय भी पिघल कर पानी-पानी हो जाता है। धन्य है यह नारी, जो इतने कष्टों तथा इतनी यन्त्रणाओं को उठाते हुए भी, मौन होकर इनको सहन करती है और समाज के इस अन्याय के प्रति तनिक चूँ भी नहीं करती।

### बाल-विधवा

भोजपुरी समाज में बाल-विवाह प्रचलित है। अतः इसके फलस्वरूप बाल-विधवाओं की संख्या बढ़ती जा रही है। कुछ ऐसी भी अक्षतयोनि बाल विधवाएँ पायी जाती हैं, जिन्होंने अपने पति का मुख भी कभी नहीं देखा है। विवाह होने के बाद उनका अभी गवना भी नहीं आया था कि इसी बीच उनका बाल पति इस संसार से सदा के लिए कूच कर गया। ऐसी अक्षतयोनि विधवाओं के लिए कुछ प्राचीन धर्मशास्त्री पुनर्विवाह का विधान बतलाते हैं। परन्तु भोजपुरी समाज इस कार्य की आज्ञा नहीं देता और इसे अत्यन्त गहिँत तथा निषिद्ध बतलाता है। आश्चर्य तो इस बात से होता है कि जो समाज पुरुषों के लिए एक दो नहीं, बल्कि अनेकों विवाह की अनुमति ही नहीं देता, बल्कि उसका स्वागत करता है; वही समाज इन अक्षतयोनि बाल-विधवाओं के पुनर्विवाह को अत्यन्त घृणित तथा अधार्मिक बतलाता है। वृद्ध विवाह का अनुमोदन करनेवाला यह समाज, दुधमुँही विधवा बच्चियों का भी पुनर्विवाह करने का प्रबल विरोधी है। इससे हिन्दू समाज की जो क्षति हो रही, उसका प्रतिदिन जो ह्रास हो रहा है, वह प्रत्यक्ष है। फलस्वरूप कुछ बाल-विधवाएँ 'दालमण्डी' की अटारी की शोभा बढ़ाती हैं, तो कुछ बंगा मझ्या को अपने को समर्पित कर जल समाधि ले लेती हैं। कुछ को विधर्मी उड़ा ले जाते हैं, तो कुछ बारकीय जीवब बिताबी हुई समाज को कोसती रहती हैं। यही इन विधवाओं की दयनीय दशा है।

## लुबुकी के रूप में

### (८) अनुच्छेद

भोजपुरी प्रदेश में कुछ स्त्रियाँ ऐसी पायी जाती हैं, जिन्हें आसानी से "लुबुकी" की संज्ञा दी जा सकती है। ऐसी स्त्रियों के पेट में कोई बात नहीं पचती। वे जो कोई बात किसी से सुनती हैं, उसे कुटुम्ब तथा गाँव के अन्य लोगों से सुनाती फिरती हैं। इनकी बुद्धि अत्यन्त अल्प तथा साधारण होती है। सम्भवतः ऐसी ही स्त्रियों के लिए गोस्वामी जी ने "अघर बुद्धि" का प्रयोग किया है। लुबुकी स्त्री के हृदय में न तो गम्भीरता होती है और न उसकी वाणी में संयम ही। वह अपने 'पेट में पानी' को भी नहीं पचा सकती, फिर रहस्यमय तथ्यों को छिपाने की बात तो दूर रही। उसके क्षुद्र हृदय में जो कुछ बात आती है, उसे वह सहज रूप में कह डालती है। परन्तु उसे कुलटा कहना उसके साथ अन्याय करना होगा अथवा उसे सती-साध्वी की संज्ञा प्रदान करना, उसके प्रकृत स्वरूप से बहुत दूर जा पड़ेगा।

लुबुकी स्त्री को 'लबरलच्छनी' भी कहा जाता है, क्योंकि वह सभी बातों में 'लब, लब' किया करती है। बिना पूछे ही प्रत्येक बात में हस्तक्षेप करती रहती है। चूँकि उसकी बातों में सत्य की अपेक्षा असत्य की ही मात्रा अधिक होती है, अतः वह कभी-कभी "लबजी" (झूठी) के नाम से भी अमिहित की जाती है। ऐसी स्त्री के स्वभाव की उच्छृङ्खलता को देखकर कभी-कभी उसे 'छुछुन्दर' की भी उपाधि से विभूषित किया जाता है। कहने का आशय यह है कि लुबुकी के स्वभाव, गुण और शील के अनुसार उसको विभिन्न नामों से पुकारा जाता है।

लुबुकी स्त्रियों का स्वभाव स्थिर नहीं रहता। वह सदा चंचलता के झूके पर झूलता रहता है। ऐसी स्त्री सदा वह



सोचती रहती है कि मैं ससुराल कब जाऊँगी और घीव कब खाऊँगी।' ऐसी स्त्रियों की अपने पति से कमी 'पटरी' नहीं खाती। वह सदा उनसे उदासीन तथा 'फिरन्ट' रहती है। परन्तु कदाचित् दैव योग से वह गर्भवती हो गई और छः महीने का गर्भ हो गया, तो वह सारे नगर में ढिढोरा पीट आती है। वह चमार के घर जाकर उसे 'साई' (अग्रिम मूल्य) या एडवान्स रुपया देती है और कहती है कि मुझे शीघ्र ही पुत्र होनेवाला है। तुम आकर उस समय सहनाई अवश्य बजाना।' भविष्य में लड़का पैदा होगा या लड़की, इसका अभी कोई ठिकाना नहीं है; परन्तु इस लुबुकी स्त्री ने चमार को बाजा बजाने का न्यौता अभी से दे दिया। इस सम्बन्ध में यह कहना कुछ अनुचित न होगा कि भोजपुरी समाज में पुत्री-जन्म के अवसर पर बाजा नहीं बजाया जाता, अतः इस सन्दर्भ में 'साई' देने का औचित्य संदिग्धपूर्ण है। ठीक ही कहा है कि—“पेड़े कटहर ओठे तेल।”

ऐसी लुबुकी स्त्रियाँ प्रत्येक बात में दखल देती हैं। उन्हें कोई पूछता भी नहीं, फिर भी विवाह के अवसर पर वह कहती हैं कि मैं दूल्हे की चाची हूँ।' ऐसी स्त्रियाँ अपने मायके जाने के लिए बड़ी इच्छुक रहती हैं। क्योंकि वहाँ उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार भरपेट भोजन और स्वच्छन्द विचरण का अवसर मिलता है। लुबुकी स्त्री कुलटा तथा कुटनी से कहीं अच्छी होती है। जहाँ कुलटा का आचरण समाज के लिए बाधक है, वहाँ लुबुकी का आचरण समाज के सदस्यों के लिए साधक सिद्ध होता है। लुबुकी किसी का कोई नुकसान नहीं करती, किसी को क्षति नहीं पहुँचाती, बल्कि सहज स्वभाव और परोपकारिता की वृत्ति के कारण दूसरों का उपकार ही करती है। उसकी यही वृत्ति उसका प्रधान गुण है। प्रत्यक्ष रूप में मले ही कोई उसकी निन्दा करे, परन्तु सभी उसकी भलाई का लोहा मानते हैं।



१. लब लब करे, लबजसिया' के जीव।

कब जाइबि ससुरा, कब खाइबि घीव॥

—लेखक का निजी संग्रह।

२. छः महीना का पेट रहल, चमार के दिहली "साई"।

हमरा होइहें बबुआ, बजइहें सहनाई॥

—लेखक का निजी संग्रह।

३. पूछे ना आछे, हम दूल्ह के चाची।

४. अस मन करे कि नइहर जाई।

छोपा छोड़ि कठवती में खाई॥

—लेखक का निजी संग्रह।



## भोजपुरी परिवार का संगठन

### (१) अनुच्छेद

० ०

**परिवार की श्रेणियाँ**—समाज-शास्त्रियों ने परिवार को दो मुख्य श्रेणियों में विभक्त किया है।

(१) पितृ सत्तात्मक परिवार (Patriorchal Family)

(२) मातृ सत्तात्मक परिवार (Matriorchal Family)

पितृ सत्तात्मक परिवार से हमारा आशय उस परिवार से है, जिसमें पिता की सत्ता प्रधान होती है। वही समस्त परिवार का मुखिया और मालिक होता है। पिता से ही उस वंश की परम्परा चलती है अर्थात् पिता की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र घर का मालिक होता है और उसके पश्चात् उसका पुत्र। ज्येष्ठ पुत्र के अभाव में कोई भी पुत्र गृह का स्वामी बन सकता है। इस प्रकार के परिवार में पिता के बाद पुत्र और उसके बाद पौत्र एवं प्रपौत्र उस मूल व्यक्ति की चल तथा अचल सम्पत्ति के उत्तराधिकारी स्वतः होते जाते हैं। अतः जिस परिवार में उत्तराधिकार की परम्परा पिता-पुत्र-पौत्र एवं प्रपौत्र के रूप में आगे चलती रहती है, उसे पितृसत्तात्मक परिवार कहा जाता है। परन्तु जिस परिवार में यह परम्परा माता-पुत्री-पौत्री और प्रपौत्री के रूप में प्रचलित है, उसे मातृसत्तात्मक परिवार की संज्ञा दी जाती है।

कहने की यह आवश्यकता नहीं, समस्त भारत में, केवल केरल राज्य को छोड़कर, पितृसत्तात्मक परिवार की प्रणाली प्रचलित है। भोजपुरी प्रदेश भी इसका अपवाद नहीं है, जहाँ यही परम्परा अनादि काल से प्रतिष्ठित है। हमारे सामाजिक संगठन में परिवार का केन्द्रीय स्थान है। व्यक्तियों से पहिले परिवार बनता है और इसके पश्चात् परिवार से समाज का संगठन होता है।

**परिवार का संगठन**—भोजपुरी परिवार में संयुक्त परिवार-प्रणाली आज भी प्रचलित है। एक ही परिवार में माता, पिता, भाई, बहिन, पुत्र, वधू, पौत्र, पौत्रियाँ तथा चाचा-चाची, और ताऊ समान रूप से एक साथ रहते हैं। एक ही साथ खाते-पीते हैं और एक ही छत के नीचे सोते हैं। इस संयुक्त परिवार का स्वामी पिता होता है। इसकी आज्ञा सभी लोग समान रूप से शिरोधार्य करते हैं। क्या मजाल कि परिवार का कोई भी व्यक्ति इसकी आज्ञा का उल्लंघन कर सके? सामाजिक तथा धार्मिक सभी कृत्य पिता की आज्ञा से ही सम्पन्न किये जाते हैं। मुण्डन, यज्ञोपवीत और विवाह आदि सभी मांगलिक कार्यों का श्रीगणेश गृहस्वामी के द्वारा ही किया जाता है। सत्यनारायण की कथा और जितने भी यज्ञ-यागादि हैं, उनका सम्पादन घर का मालिक ही करता है। लड़की के विवाह के लिए योग्य वर का चयन पिता ही करता है और पुत्र के विवाह के अवसर पर अपने पुत्र के तिलक और दहेज के लिए कन्या पक्ष वालों से मोल-तोल करना इसी का कार्य है। अपने पुत्र के विवाह में, वर का पिता कन्या मण्डप में जब तक भोजन नहीं करता, तब तक वह मण्डप पवित्र नहीं समझा जाता। इस समय उसकी आज्ञा अनिवार्य मानी जाती है। इसी से मांगलिक कार्यों में पिता का महत्त्व आँका जा सकता है।

आर्थिक मामलों में भी पिता अर्थात् गृहस्वामी का अधिकार सर्वाधिक माना जाता है। परिवार के समस्त सदस्यों का भरण-पोषण करना उसका आवश्यक कर्तव्य है। वह परिवार के बालकों की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करता है, उनके भोजन-छाजन तथा वस्त्र-आच्छादन की चिन्ता में संलग्न रहता है। घर के सभी 'कमासुत' (कमानेवाले) सदस्य इसी गृह-स्वामी को अपनी कमाई समर्पित करते हैं, जिसके द्वारा वह परिवार का खर्चा चलाता है। परिवार की आर्थिक वृद्धि के लिए यदि कोई अचल सम्पत्ति-भूमि या मकान का क्रय करना हो, तो यह इसके एकाधिकार के अन्तर्गत आता है। पिता के जीवित रहते समय पुत्र या पौत्र का उसकी सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं समझा जाता। इस प्रकार पिता सच्चे अर्थों में प्रजापति है। उसकी आज्ञा अनुलङ्घनीय है और उसका आदेश अवश्यमेव पालनीय है।



भोजपुरी परिवार का सबसे बड़ा बूढ़ा चाहे वह पिता हो अथवा बाबा या दादा, अपने जनेऊ में तालियों का झोंझ (गुच्छा) बाँधे रहता है। यह गुच्छा उसके गृहस्वामी होने का प्रतीक है। ये तालियाँ उन लोहे अथवा काठ के बने सन्दूकों में लगे तालों की होती हैं, जिनमें समस्त परिवार की स्त्रियों का सुवर्ण तथा रजत-आभूषण सुरक्षित रखा रहता है। इसके अतिरिक्त कीमती जरी की साड़ियाँ तथा बहुमूल्य बर्तन भी इन सन्दूकों में पाये जाते हैं। इसके साथ ही इन लौह मंजूषाओं में कचहरी के जरूरी कागजात—जिनमें रेहन या बय (कवाला) के रूप में खरीदी गयी भूमि या खेत का विक्रय-पत्र (Sale Deed) और कर्ज के रूप में दिये गये रूपयों की सरखत (हैण्डनोट) सम्मिलित हैं—बड़ी सावधानी के साथ सँजोया गया रहता है। इस प्रकार ये तालियाँ, ताली पीट कर उस व्यक्ति के स्वामित्व की घोषणा करती हैं। ये उसके सर्वाधिकार की सूचना देती हैं। यही कारण है कि भोजपुरी संयुक्त परिवार का स्वामी तब तक उन तालियों को अपने पुत्र को भी नहीं देता, जब तक उसका श्वास चलता रहता है। ऊर्ध्वश्वास के समय भी वह अपनी 'धाती' को सँजोकर रखता है, चाहे कुछ घंटों के बाद उसके प्राण पखेरू मले ही उड़ जायें। इस 'मालिक' के जीवन में उसकी सबसे अधिक प्रिय, प्रेय और बहुमूल्य वस्तु चामियों का यही गुच्छा है, जिसे वह आजीवन पृथक् करना नहीं चाहता।

परिवार के मालिक को भोजपुरी में 'मलिकार' कहते हैं। यह व्यक्ति घर के सभी सदस्यों के आदर और सन्मान का भाजन होता है। परन्तु व्यक्तिगत रूप में यह बड़ा ही कजूस होता है। धन के अपव्यय करने की बात तो दूर रही, यह सदुपयोग के लिए भी द्रव्य खर्च करने में बद्ध-मुष्टिता दिखलाता है। इसका कुछ कारण तो यह हो सकता है कि इसे एक बड़े परिवार का भरण-पोषण करना पड़ता है, परन्तु इसका अधिकांश श्रेय उसके कृपण स्वभाव को ही दिया जा सकता है। घर के स्वामित्व का अधिकार प्राप्त करते ही, उसके व्यवहार में कृपणता का प्रवेश हो जाता है। वह अतिथियों के स्वागत-सत्कार में किये गये खर्चों को भी फिजूलखर्ची समझता है। किम्बहुना, वह परिवार के सदस्यों के सुखपूर्वक भोजन करने तथा ठाट-बाट से रहने को भी अनुचित समझता है। ऐसे ही भोजपुरी परिवार के किसी स्वामी के मुख से यह लोकोक्ति कहलवायी गयी है कि:—

“नून, तेल, मरिचाई,  
ई घर रही कि जाई।”

अर्थात् जिस घर में नमक, तेल और मिर्चा यदि इन सभी वस्तुओं का खर्चा हो, तो वह घर अवश्य नष्ट हो जायेगा। अतः यह 'मलिकार' अपनी काया को कृपणता की आग में जलाता हुआ घरवालों के 'अपव्यय' पर सदा चिन्तित रहता है।

## (२) अनुच्छेद

### (क) भोजपुरी परिवार के सदस्य

भोजपुरी संयुक्त परिवार में विभिन्न सदस्य एक साथ ही निवास करते हैं, जो विभिन्न नामों से पुकारे जाते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी सदस्य हैं, जो एक साथ तो नहीं रहते, परन्तु उनसे पारिवारिक सम्बन्ध (रिश्तेदारी) इतना घनिष्ठ है कि वे परिवार के सदस्य के रूप में ही परिगणित किये जाते हैं। इस प्रकार इनको दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है:—

(क) परिवार के सदस्य।

(ख) सम्बन्धी या रिश्तेदार।

(क) परिवार के सदस्य

परिवार के विभिन्न सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं:—

(१) पिता—जनक—यह परिवार का स्वामी तथा मालिक होता है।

(२) माता—पिता की स्त्री।

(३) पुत्र—पिता का लड़का।

(४) पुत्री—पिता की लड़की।

(५) माई—पिता के विभिन्न पुत्र आपस में भाई लगते हैं।

(६) बहिन—पिता की पुत्रियाँ आपस में बहिन हैं।

(७) पतोहू—पुत्र की स्त्री।



- (८) भावज—बड़े भाई की स्त्री।
- (९) ननद—भावज के लिए, उसके पति की बहिन ननद लगती है।
- (१०) ताऊ—पिता का बड़ा भाई।
- (११) चाचा या काका—पिता का छोटा भाई।
- (१२) चाची या काकी—पिता के छोटे भाई की स्त्री।
- (१३) ससुर—पुत्रवधू के पति का पिता।
- (१४) सासु—पुत्रवधू के पति की माता।
- (१५) देवर—पति का छोटा भाई।
- (१६) सौत—पति की दूसरी स्त्री।
- (१७) सौतेली माँ—पिता की दूसरी स्त्री।
- (१८) सौतेला पिता—माता का दूसरा पति।
- (१९) दादा, बाबा आजा या पितामह—पिता का पिता।
- (२०) दादी, आजी या पिताम्ही—पिता की माता।
- (२१) पौत्र—(पिता के) पुत्र का पुत्र।
- (२२) प्रपौत्र—पौत्र का पुत्र।
- (२३) नाती (या धेवता)—पुत्री का पुत्र।
- (२४) परदादा (प्रपितामह)—दादा का पिता।
- (२५) परदादी—दादा की माता।
- (२६) चाची या काकी—पिता के छोटे भाई की स्त्री।
- (२७) बड़की भाई (ताई)—पिता के बड़े भाई की पत्नी।
- (२८) भतीजा—बड़े या छोटे भाई का पुत्र।
- (२९) भतीजी—बड़े या छोटे भाई की पुत्री।
- (३०) सौतेला भाई—सौतेली माता का पुत्र।
- (३१) सौतेली बहिन—सौतेली माता की पुत्री।
- (३२) देवरानी—देवर की स्त्री।
- (३३) जेठ या भसुर—पति का बड़ा भाई।
- (३४) जेठानी—पति के बड़े भाई की स्त्री।
- (३५) पति—स्त्री का व्याहता पुरुष।
- (३६) पत्नी—व्याहता स्त्री।
- (३७) नातिन पतोहू—पौत्र की स्त्री।
- (३८) नातिन दामाद—पौत्र की पुत्री का पति।
- (३९) भसुर—पति का बड़ा भाई।
- (४०) भवहि (भयहू)—छोटे भाई की पत्नी।

#### (ख) सम्बन्धी या रिश्तेदार

भोजपुरी परिवार में जो विभिन्न सम्बन्धी या रिश्तेदार हैं, उनकी गणना इस प्रकार से की जा सकती है।:--

- (१) फूफा—पिता के बहिन का पति।
- (२) फूआ—पिता की बहिन।
- (३) मौसा—माता की बहिन का पति।
- (४) मौसी—माता की सगी बहिन।
- (५) बहनोई—बहिन का पति।
- (६) साला—पत्नी का भाई।



- (७) साली—पत्नी की बहिन।
- (८) सरहज—पत्नी के माई (साला) की स्त्री।
- (९) दामाद—पुत्री का पति।
- (१०) समधी—विवाह में वर और कन्या के पिता।
- (११) मामा—माता का माई।
- (१२) मामी—माता के माई की पत्नी।
- (१३) सास—पत्नी की माता।
- (१४) ससुर—पत्नी का पिता।
- (१५) नाना—माता का पिता।
- (१६) नानी—माता की माता।
- (१७) ममेरा माई—मामा का लड़का।
- (१८) मानजा (भगिना)—बहिन का पुत्र।
- (१९) मानजी (भगिनी)—बहिन की पुत्री।
- (२०) नाती—पुत्री का पुत्र।
- (२१) नतिनी—पुत्री की पुत्री।
- (२२) फुफेरा माई—फूआ का लड़का।
- (२३) फुफेरी बहिन—फूआ की लड़की।
- (२४) ममेरी बहिन—माता की लड़की।
- (२५) मौसेरा माई—मौसा का पुत्र।
- (२६) मौसेरी बहिन—मौसा की पुत्री।
- (२७) चचिया ससुर—पत्नी का चाचा।
- (२८) चचिया सास—पत्नी की चाची।
- (२९) ममिया ससुर—पति का मामा।
- (३०) ममिया सास—पति के मामा की स्त्री।
- (३१) सरपुत—साला का लड़का।
- (३२) साढ़ू—सगी बहिनों के पति आपस में साढ़ू लगते हैं।
- (३३) सढ़ुआइनि—साढ़ू की स्त्री।
- (३४) फुफुआ ससुर—पति का फूफा।
- (३५) फुफुआ सास—पति की फूआ।
- (३६) ननदोई—ननद का पति।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भोजपुरी समाज के संयुक्त परिवार के सदस्यों की संख्या चालिस तथा इस परिवार के सम्बन्धियों की संख्या पैंतीस से भी अधिक है। संसार के किसी भी देश के समाज का पारिवारिक संगठन शायद ही इतना विस्तृत और सुसंगठित हो, जितना भोजपुरी प्रदेश में पाया जाता है। भोजपुरी लोग “संधे शक्ति: कलौ युगे”, इस सिद्धान्त के पक्षपाती हैं। अतएव वे लोग संध बनाकर रहना ही अधिक पसन्द करते हैं। अतः ये लोग एक ही संयुक्त परिवार के सदस्यों के रूप में बड़े ही सुख और शान्तिपूर्वक निवास करते हैं। यद्यपि पाश्चात्य शिक्षा तथा सम्यता के विध्वंसकारी प्रभाव के कारण, यह संयुक्त परिवार की परम्परा क्रमशः क्षीणता को प्राप्त होती जा रही है। फिर भी आज भोजपुरी प्रदेश में कुछ संयुक्त परिवार ऐसे पाये जाते हैं, जिनके सदस्यों की सम्मिलित संख्या—पुरुष, स्त्री तथा बच्चों को मिलाकर—एक शतक को भी अतिक्रमण कर जाती है। ये सभी लोग बड़ी प्रसन्नता से एक साथ निवास और भोजन करते हैं। सम्मिलित परिवार में रहने का जो सुख और सौन्दर्य है, उसे वे ही लोग जान सकते हैं, जिन्होंने इसका अनुभव किया है।

#### संयुक्त परिवार के गुण

आज जब कि संयुक्त परिवार की प्रथा बकाल काल के नाल में प्रवेश करने का प्रयास कर रही है, ऐसी स्थिति



में इसके गुण-दोषों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करना कुछ अनुचित न होगा। संयुक्त परिवार की सबसे बड़ी विशेषता इसके सदस्यों की निश्चिन्तता है। इस परिवार के सभी सदस्य अपने को निश्चिन्त और सुखी समझते हैं। दुःख, चिन्ता और कष्ट को गृहस्वामी को समर्पित कर, सभी लोग सुख की नींद सोते और चैन की वंशी बजाते हैं। परिवार के 'कमासुत' सदस्य अपना मासिक वेतन 'मलिकार' को सुपुर्द कर, सुख और शान्ति की रोटी खाते हैं। उन्हें "घृत, लवण, तैल, तन्दुल" की चिन्ता नहीं सताती। यह सिर दर्द घर के मालिक का होता है कि वह उनके भोजन और वस्त्र—सभी सामग्री को, उनके लिए 'मुहय्या' करे।

इस प्रथा से दूसरा लाभ यह है कि जो सदस्य अनपढ़ होने के कारण, अथवा शारीरिक दुर्बलता के हेतु, अर्थ का अर्जन नहीं कर सकते, उनके दिन भी इस परिवार के सदस्य होने के कारण, सुख पूर्वक कट जाते हैं। यदि परिवार के दूसरे व्यक्ति उनका भरण पोषण न करें, तो उनका जीवन दूभर हो जाय। सम्मिलित परिवार में शरीर से समर्थ व्यक्ति खेती-बारी का काम करते हैं। शिक्षित युवक नौकरी करके अर्थ का उपार्जन करते हैं। खेती के कारण घर शस्य-सम्पदा से भरा रहता है। इस प्रकार परिवार के कुछ सदस्य भोजन के लिए अन्न का उत्पादन करते हैं और दूसरे सदस्य नौकरी के द्वारा धन कमा कर, परिवार की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति में संलग्न रहते हैं। इस प्रकार सभी सदस्यों को भरपेट भोजन मिल जाता है और वे शान्ति से अपना जीवन बिताते हैं।

इस प्रथा की तीसरी विशेषता शारीरिक शक्ति का संचयन है। गाँवों में "जिसकी लाठी उसकी भैंस" का सिद्धान्त आज भी प्रचलित है। खेत जोतते समय, या नहर का पानी खेतों में ले जाने के अवसर पर तथा धान की रोपनी के समय, जन शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। गाँवों में जिसके घर दस 'जवान' (युवा पुरुष) नहीं हैं, वह खेती का काम नहीं कर सकता। जिसके पास शारीरिक शक्ति का अभाव है, वह पंगु तथा बेकार है। ऐसी परिस्थिति में घरमें अधिक-से-अधिक जवानों का होना अत्यन्त आवश्यक है। तभी खेती हो सकती है अन्यथा नहीं, कदापि नहीं।

संयुक्त परिवार की चौथी विशेषता उस अलौकिक आनन्द का अनुभव है, जो केवल ऐसे ही परिवार में प्राप्त हो सकता है। घर में माता, पिता, भाई, बहिन, पति, पत्नी, पतोहू, पौत्र और पौत्री सब एक साथ रहें, इससे बड़ा सुख और क्या हो सकता है। जीवन के सुखों का वर्णन करते हुए किसी कवि ने लिखा है कि:—

“यदि रामा, यदि च रमा,

यदि तनयो विनय-धी-गुणोपेतः।

तनयात् तनयोत्पत्तिः,

सुरवर-नगरे किमाधिक्यम्॥

अतः स्वर्ग का सुख यदि कहीं पृथ्वी पर मिल सकता है, तो वह केवल संयुक्त परिवार में ही सम्भव है।

### संयुक्त परिवार के दोष

संयुक्त परिवार का सबसे बड़ा दोष यह है कि यह परिवार के प्रायः सभी सदस्यों को आलसी, निरुद्योगी और कर्तव्य-हीन तथा उत्तरदायित्व से रहित बना देता है। परिवार में कमानेवाले एक ही दो सदस्य होते हैं। उन्हीं की 'कमाई' (अर्थोपार्जन) से घर का सारा खर्चा चलता है। परन्तु इन 'कमासुत' सदस्यों को छोड़कर, परिवार के अन्य सदस्य घर का कुछ काम नहीं करते हैं और दूसरों के अर्थोपार्जन पर आश्रित रहकर, घर में सुख की नींद सोते हैं। इससे इनमें अकर्मण्यता बढ़ती जाती है। ये निरुद्योगी हो जाते हैं। इनकी क्रिया-शीलता नष्ट हो जाती है और इस प्रकार वे पराश्रयी पौघों (Parasite) की तरह घरवालों को चूस कर अपना जीवन-यापन करते हैं। यदि बिना हाथ पैर डुलाये ही भरपेट भोजन आसानी से मिल जाया करे, तो कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो काम करने का नाम लेगा?

संयुक्त परिवार का दूसरा दोष पारिवारिक कलह है। अंग्रेजी की एक कहावत है कि "खाली दिमाग में शैतान का डेरा होता है"।<sup>१</sup> सम्मिलित परिवार के अधिकांश सदस्य बेकार बैठे रहते हैं। ये काम करना भी नहीं चाहते। ऐसी स्थिति में वे व्यर्थ की उल्टी-सीधी बातें सोचा करते हैं। धन कमाने का नाम तो वे जानते ही नहीं, परन्तु चाहते वे यह हैं कि "कमासुत पूत" की ही माँति घर में मेरा आदर-सत्कार हो, जो असम्भव है। उनके स्वागत में तनिक भी कमी आयी कि



वे कलह का बीज बोने लगते हैं। कमी-कमी तो मार-पीट की नौबत आ जाती है और एक माई दूसरे माई की कपाल-क्रिया तक कर बैठते हैं।

दूसरा दोष स्त्रियों का पारस्परिक कलह है। पारिवारिक संघर्ष तथा कलह की जड़ घर की स्त्रियों को ही समझना चाहिए। इसलिए संस्कृत के किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि:

**बद्धमूलस्य मूलं हि, महद् वेरतरोः स्त्रियः**

अर्थात् स्त्रियाँ वैर रूपी वृक्ष की दृढ़ जड़ (मूल) हैं। यह सूक्ति भोजपुरी स्त्रियों के विषय में पूर्णतया चरितार्थ होती है। इन स्त्रियों को संयुक्त परिवार में भोजन बनाने के अतिरिक्त कोई काम नहीं रहता। अतः वे आपस में लड़ती-झगड़ती रहती हैं और कमी-कमी तो 'झोंटाझोंटी' भी कर बैठती हैं। वे अपने पति को 'फुटका' कर दूसरे माई से अलग हो जाने का प्रयास करती हैं और इसमें प्रायः सफलता प्राप्त कर लेती हैं। छोटी-छोटी बातों को लेकर वे घर में सदा कुहराम मचाया करती हैं, जिससे परिवार की शान्ति भंग हो जाती है। इन गृहलक्ष्मियों के सतत कलह के कारण, घर की लक्ष्मी (ऐश्वर्य) रुठकर चली जाती है। इस प्रकार चिरकालिक अशान्ति, कलह, झगड़ा और वैमनस्य के कारण, यह संयुक्त परिवार रौरव नरक के समान बनता जा रहा है।

संयुक्त परिवार का तीसरा दोष गृहस्वामी की पक्षपात-प्रियता है। गोस्वामी जी ने लिखा है कि:—

**'मुखिया मुख सो चाहिए,  
खान पान सब एक।**

अर्थात् घर का मालिक—मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो परिवार रूपी शरीर के सभी अंगों-सदस्यों का समान रूप से पालन-पोषण करे। प्राचीन काल में घर का स्वामी—मलिकार—इसी सिद्धान्त का पालन करता था, जिससे घर में शान्ति और व्यवस्था बनी रहती थी। परन्तु आधुनिक संयुक्त परिवार का स्वामी पक्षपात की नीति का पालन करने लगा है। वह अपने पुत्रों को अधिक स्नेह, आदर और सन्मान प्रदान करता है, परन्तु अन्य भाइयों के पुत्रों को उसी दृष्टि से नहीं देखता। कमी-कमी वह परिवार के दूसरे सदस्यों के द्वारा अर्जित धन को अपने नाम से हड़प लेता है और कमी समस्त चल-अचल सम्पत्ति का एक मात्र स्वामी अपने को घोषित कर देता है। ऐसी परिस्थिति में वह मुखिया के धर्म से च्युत हो जाता है और गृहस्वामी के कर्तव्य का पालन करने में अपने को नितान्त असमर्थ सिद्ध करता है। घर के मालिक की इसी पक्षपात प्रियता तथा कर्तव्यहीनता के कारण, संयुक्त परिवार का विशाल प्रासाद क्रमशः भूमिसात् होता जा रहा है और इसमें आश्चर्य नहीं कि निकट भविष्य में यह अतीत की वस्तु बन जाय।

### (३) अनुच्छेद

#### सम्बोधन के विभिन्न प्रकार

संयुक्त परिवार के विभिन्न सदस्यों को भिन्न-भिन्न सम्बोधनों से पुकारा जाता है। इनमें से प्रधान सदस्यों के सम्बोधन के प्रकार का यहाँ उल्लेख किया जाता है।

पिता को प्रधानतया पिता जी, बाबूजी आदि कहकर पुकारा जाता है। कुछ लोग उसे चाचा या काका भी कहते हैं। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलों में पिता को 'लाला' की संज्ञा दी जाती है।

भोजपुरी माता 'माँ' अथवा 'माई' के प्रिय नाम से पुकारी जाती है। उसे 'मतारी' (महतारी) भी कहा जाता है। परन्तु 'माँ' इस एकाक्षर अभिधान में जो प्रेम, ममता और स्नेह भरा हुआ है, वह मला अन्यत्र कहाँ उपलब्ध हो सकता है।

घर का छोटा लड़का (पुत्र) मुन्ना, लल्ला, बच्चा आदि संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है। कुछ बड़ा होने पर उसे 'बबुआ' कहा जाता है। शास्त्रकारों ने लिखा है—बड़े पुत्र के नाम का उच्चारण नहीं करना चाहिए। अतः माता-पिता अपने ज्येष्ठपुत्र को 'नन्हकूराम', 'मइया' आदि नामों से पुकारते हैं। छोटा लड़का 'छोटे बाबू' कहा जाता है। घर के माता-पिता तथा गुरुजन पुत्र का वास्तविक नाम लेकर उसे नहीं पुकारते, बल्कि इसके लिए वे किसी कल्पित नाम का सहारा लेते हैं जैसे—भालन जी, मूलन जी, बलदाऊ, कन्हैया, कन्हैयालाल आदि-आदि।

इसी प्रकार से छोटी पुत्री मुन्नी, बच्ची, लाली, लल्ली, ललिया, बबुई, बुचिया आदि नामों से पुकारी जाती है।



बड़ी होने पर उसे 'बेटी' कहा जाता है। भाई अपनी बड़ी बहिन को बहिनियाँ या दीदी और छोटी बहिन को 'बुचिया' कहकर बुलाता है। इसी प्रकार से बहिन अपने बड़े भाई को 'भइया जी' और छोटे भाई को 'बबुआ' कहती है।

भाई-भाई भी आपस में बड़ी शिष्टता से बातें करते हैं तथा उनका सम्बोधन शिष्टाचार से परिपूर्ण होता है। भाई अपने बड़े भाई को 'भइया जी' और मझले भाई को 'भाई जी' कहकर पुकारता है। बड़ा भाई अपने कनिष्ठ भ्राता को 'बबुआ' कहता है। कभी-कभी उसे 'बच्चा' नाम से भी पुकारता है। ज्येष्ठ भ्राता को 'बड़का भइया' मझले को 'मझला भइया' और कनिष्ठ को 'छोटका भइया' कहने की परम्परा भी पायी जाती है। किसी सामान्य जन को भी आदरार्थ 'भाई जी' के नाम से अभिहित किया जाता है।

पुत्र-बधू या पतोहू को घर की सास तथा जेठानी 'बहू' नाम से सम्बोधित करती है। ससुर अर्थात् पति का पिता उसे 'बेटी' कहकर पुकारता है। नव विवाहिता स्त्री अपनी ससुराल में जाने पर 'बधू' की संज्ञा प्राप्त करती है; परन्तु कुछ वर्षों के उपरान्त जब वह पुत्रवती हो जाती है, तब अन्य स्त्रियाँ उसके पुत्र का नाम लेकर 'अमुक की माँ' कहकर उसे सम्बोधित करती हैं—जैसे ए जमुना के भाई। चूँकि माता अपने पुत्र को प्रायः बबुआ कहकर पुकारती है। अतः बहू को बुलाने के लिए वह इस शब्द में 'ब' (हु) प्रत्यय लगा देती है, जो सम्भवतः 'बधू' शब्द का अपभ्रंश रूप है—जैसे—ए बबुआ ब (हु)। कभी-कभी माता अपने पुत्र के नाम में यह प्रत्यय (ब) लगाकर बधू का आह्वान करती है। यदि पुत्र का नाम जमुना हो, तो वह कहेगी—ए जमुना ब (हु) अर्थात् ए जमुना की स्त्री। परन्तु यह अधिकार बहू की सास, चचिया सास और जेठानी आदि—जो उससे पद में बड़ी हैं—को ही प्राप्त है। घर की छोटी स्त्रियाँ उसे 'बहू' की ही उपाधि देंगी।

बहू अपने पति के छोटे भाई को देवर जी कहती है और देवर अपने ज्येष्ठ भाई की पत्नी को 'भावज' 'भउजी' या मामी कहकर पुकारता है। भावज और देवर का सम्बन्ध कुछ ऐसा है, जिसमें हास-परिहास, हँसी-मजाक की भी थोड़ी गुंजाइश होती है। अतः देवर अपनी भावज को परिहास में 'ए बड़की' कहकर पुकारते हैं। 'मामी जी' में भी कुछ विनोद की मात्रा छिपी हुई है। 'देवर' शब्द का अर्थ भाषाशास्त्रियों ने 'द्वितीयवरः' अर्थात् दूसरा पति स्वीकार किया है। अतः इस सन्दर्भ में देवर को अपनी मामी से परिहास करने का कुछ अधिकार मिल जाता है। भावज अपने देवर को 'बबुआ जी' कहकर पुकारती है; परन्तु यदि वह समानवयस्का हुई, तो 'देवर जी' के सन्मानित नाम से अभिहित करती है।

पतोहू अपने ससुर (पति के पिता) को बाबू जी या 'पिता जी' कहकर सम्बोधित करती है तथा सास को 'बाबूजीब' कहती है। कहीं-कहीं 'भइया जी' भी कहने की प्रथा है।

परिवार का स्वामी पिता होता है। अतः पिता के पिता को 'बाबा' या 'दादा' कहते हैं। सन्मान के लिए इन शब्दों में 'जी' प्रत्यय भी जोड़ दिया जाता है। दादा की स्त्री को 'दादी' कहा जाता है। कुछ लोग अपने जेठे भाई को भी 'दादा' की संज्ञा प्रदान करते हैं; परन्तु यह बँगला की नकल है। भोजपुरी प्रदेश में केवल पितामह को ही 'दादा' कहते हैं।

पिता का जेठा भाई 'बड़का बाबू जी' के नाम से प्रसिद्ध है। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलों में उसे 'ताऊ' कहते हैं और उसकी स्त्री 'ताई' कहलाती है। बड़का बाबू जी की पत्नी 'बड़की माई' है। इसी प्रकार से पिता का छोटा भाई 'चाचा जी' या 'काका जी' के नाम पुकारा जाता है और उसकी स्त्री 'चाची' या 'काकी' के नाम से प्रसिद्ध है। कोई-कोई इसे 'छोटकी माई' की संज्ञा प्रदान करते हैं।

बड़े या छोटे भाई का लड़का भतीजा और उसकी लड़की भतीजी कहलाती है। चूँकि ये पुत्र और पुत्री के ही समान हैं, अतः बबुआ और बबुनी के नाम से भी अभिहित किये जाते हैं।

परिवार में पति-पत्नी का आपस में सबसे अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। अतः आपस में दैनिक वार्तालाप के लिए अन्य लोगों की अपेक्षा इन्हें सम्बोधनों की अधिक अपेक्षा रहती है। परन्तु धर्मशास्त्र का वचन यह है कि स्त्री को अपने पति का नाम कदापि नहीं लेना चाहिए। अतः भोजपुरी पत्नी के सामने यह एक जटिल समस्या है कि वह अपने प्राणनाथ को किन शब्दों से सम्बोधित करे। इसके लिए वह अनेक प्रकार का उपाय करती है। कभी वह अपने पति को 'रउरा' या 'रउरा लोग' (आप लोग) शब्दों से सम्बोधित करती है और कभी 'सुनतानी जी' (क्या आप सुन रहे हैं?) से। कभी वह अपने पति का अभिप्राय 'उ लोग' कहकर प्रकट करती है और कभी 'मरद लोग' (पुरुष वर्ग), से। यदि संयोग से उसका पति घर का स्वामी भी है, तो 'मलिकार' (मालिक) शब्द से वह उनकी अभिव्यञ्जना करती है। सौभाग्यवश यदि वह स्त्री सन्तानवती है, तो अपने पुत्र या पुत्री का नाम लेकर अमुक का पिता कहकर पति के अभिधेयार्थ तक पहुँचती है। यदि पुत्र का नाम रामप्रसाद है, तो वह अपने पति को "रामू के बाबू जी" कहती है। कभी-कभी 'हमरा



बबुआ के बाबू जी' से भी इसी अभिप्राय की अभिव्यक्ति होती है। 'उनुकरा से' (उन लोगों से) भी पति का ही द्योतन होता है। वृद्धा स्त्रियाँ, अपने पति को 'बूढ़ऊ' कहा करती हैं। परन्तु अपने इसी बूढ़े पति पर उसे इतना नाज होता है, जितना क्या किसी युवती को अपने नौजवान पति पर हो सकता है। नीचे के इस 'विरहा' में पति के लिए 'बूढ़ऊ' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। सास और पतोहू में भयंकर युद्ध हो रहा है और वे आपस में मूशलों (मूसर) के द्वारा एक दूसरे का सिर फोड़ रही हैं। इस पर क्रुद्ध होकर बूढ़ी सास कहती है कि यदि आज मेरे 'बूढ़ऊ' (बूढ़ा पति) जीते रहते, तो मैं इस पतोहू को घर से निकालकर जंगल में खदेड़ देती।

“सासु पतोहिया में लागल बा झगरवा,  
कहली मुसरवा के मार।  
आजु पतोहिया के हम बन दिहिती,  
जो जियत रहिते 'बूढ़ऊ' हमार॥”

दूसरों के द्वारा, द्वार पर बैठे हुए पति के पास सन्देश पहुँचाना तो पत्नी के लिए अत्यन्त सरल कार्य है, क्योंकि इस स्थिति में 'पति' के अभिप्राय को द्योतित करनेवाले शब्दों की उसके पास कोई कमी या 'टोटा' नहीं रहता। परन्तु जब वह पति से आमने सामने, साक्षात् रूप से, वार्तालाप करने लगती है, तब वह सम्बोधनों के अत्यन्त अभाव के कारण “पंके गौरिव सीदति” की दशा का अनुभव करने लगती है।

जिस प्रकार पत्नी के द्वारा पति का नाम लेना शास्त्रीय आदेश से निषिद्ध है, उसी प्रकार पति के द्वारा पत्नी का नामोच्चारण शिष्टाचार की दृष्टि से अशोभन तथा अनुचित माना जाता है। अतः पत्नी जब सामने है, तब पति उसे 'ए जी' कहकर सम्बोधित करता है। “सुनतारू जी” (क्या तुम सुन रही हो?) के द्वारा भी प्रियतमा को पुकारा जाता है। परन्तु लड़के जब बड़े हो जाते हैं, तब इन स्नेह-वाची सम्बोधनोंका प्रयोग नहीं किया जाता। उस समय पति अपनी पत्नी को 'ए बबुआ के माई' कहकर बुलाता है। कभी-कभी पुत्र का नामोच्चारण कर, उसकी माता को बुलवाता है—जैसे “गंगा के मतारी के इहवाँ भेजिद।”

परन्तु आजकल की नयी रोशनी में पैदा हुए एवं पले मनचले छोकरे अपनी 'वाइफ' (पत्नी) का नाम लेकर उसे पुकारते हैं; जैसे विद्या, मंजू या सुशीला जरा इधर आना। परन्तु कभी-कभी ये नवयुवक अपने हृदय के प्रेम-प्रवाह को प्रकट करने के लिए स्नेहवाची कल्पित नामों से अपनी पत्नियों का आवाहन (या आह्वान?) करते हैं; जैसे प्रेम, शकुन, राघे, मनोज आदि। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह प्रथा भारतीय शिष्टाचार के विरुद्ध है और हमारी संस्कृति के प्रतिकूल भी है।

दामाद का भोजपुरी समाज में बड़ा आदर है। वह ससुर के लिए पुत्र के समान ही प्रिय होता है। अतः उसे 'बबुआ जी', 'बच्चा जी' या 'पाहुन जी' के नामों से अभिहित किया जाता है। दामाद भी अपने ससुर को पिता के समान ही सन्मान प्रदान करता है। अतः वह भी उन्हें 'बाबू जी' या 'पिता जी' कहकर और सास को 'माता जी' कह कर सम्बोधित करता है।

बहिन के पति को बहनोई कहते हैं। वह 'जीजा जी' या 'पाहुन जी' के नाम से भी पुकारा जाता है। बहनोई अपने बड़े साले को 'माई साहब' कहता है और छोटे साले का नाम लेकर पुकारता है। साले भी अपने जीजा से इसी तरह का बर्ताव करते हैं।

ननद के पति को 'ननदोई' की संज्ञा प्राप्त है। ननद की छोटी बहिनें अपने 'ननदोई' की चुटकी लेती हैं और उनसे हास परिहास भी करती हैं।

एक सौत अपनी दूसरी सौत (सपत्नी) को बहिन कहती है; यद्यपि इनके हृदय में सौत के प्रति स्नेह तथा सौहार्द का नितान्त अभाव होता है। इसी प्रकार से सौतेले माई एक दूसरे को 'माई' या 'मइया' कह कर पुकारते हैं। फूफा, मौसा और मामा के पुत्र रिश्ते में सभी माई-माई लगते हैं। अतः वे आपस में 'मइया' कहकर व्यवहार करते हैं। परन्तु इनके सन्दर्भ में यह शब्द औपचारिक ही समझना चाहिए। इससे उनके हृदय का स्नेह द्योतित नहीं होता।

## (४) अनुच्छेद

### अभिवादन की पद्धति

भोजपुरी संयुक्त परिवार में परदादा, परदादी, दादा, दादी, पिता, माता, ताऊ, ताई, चाचा, चाची, काका, काकी, बड़ा माई और भावज सभी श्रेष्ठ व्यक्ति हैं तथा यथोचित आदर तथा सन्मान के अधिकारी माने जाते हैं। अतः इस परिवार के



छोटे सदस्यों—माई, बहिन, पुत्र, पुत्री, पौत्र, पौत्री—का यह परम कर्तव्य है कि इन श्रेष्ठ पुरुषों का चरण-स्पर्श कर, प्रणाम करें। यह शुभ लक्षण है कि अभिवादन की यह परम्परा आज भी भोजपुरी समाज में अक्षुण्ण रीति से चली आ रही है। जब कोई परिवार का व्यक्ति घर से बाहर जाता है अथवा परदेस से घर लौटता है, तब वह अपने से बड़े परिवार के समस्त सदस्यों का पैर छूकर प्रणाम करता है। इसी प्रकार से उस व्यक्ति से छोटे सदस्य उसका चरणस्पर्श करते हैं। प्रणाम के उत्तर में घर के बड़े बूढ़े 'बेटा खुश रहो', 'तुम्हें पुत्ररत्न उत्पन्न हो', 'खूब विद्या पढ़ो' ऐसा आशीर्वाद देते हैं। बूढ़ी स्त्रियों को अपने बच्चों के विवाह की बड़ी चिन्ता रहती है। अतः उन्हें 'बच्चा तोर बिआह होखो' (तुम्हारा विवाह हो) यही आशीस देती है। जीवन में विद्या का अध्ययन तथा धन का उपार्जन करना इन वृद्धाओं के लिए विवाह के आगे कुछ भी प्रयोजन नहीं रखता। अतः वे बच्चों को पढ़ने और कमाने का आशीर्वाद न देकर, विवाह का ही आशीस देती हैं; मानों जीवन में विवाह के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

परन्तु, गाँव में जो बूढ़े बन्धु-बान्धव हैं, जो स्ववर्गीय पड़ोसी हैं तथा पद में जो बड़े हैं, उन्हें लोग हाथ जोड़कर "गोड़ लागत बानी बाबा" अथवा "पाव लागत बानी दादा" कहकर दूर से ही प्रणाम करते हैं। इनके चरण-स्पर्श की आवश्यकता नहीं समझी जाती, क्योंकि ये लोग पद में बड़े होते हुए भी निजी परिवार के व्यक्ति नहीं हैं। दूर के रिश्तेदारों से भी प्रणाम की यही पद्धति व्यवहार में लायी जाती है। गाँव के पण्डित, पुरोहित तथा गुरु को 'प्रणाम पुरोहित जी' अथवा "प्रणाम पण्डित जी" कहा जाता है। घर में आये हुए समान वयस्क वाले ननदोई, बहनोई और दामाद को घर के लड़के 'नमस्कार जीजा जी' कहकर अभिवादन करते हैं। कहने का आशय यह है कि अपने परिवार के श्रेष्ठ जनों का चरण स्पर्श, गाँव के गुरु-पुरोहित को प्रणाम और समान आयु वाले सम्बन्धियों और मित्रों को नमस्कार करने की परम्परा प्रचलित है। तथाकथित नीच वर्ग के लोग जब आपस में मिलते हैं, तो 'जै राम जी की' अथवा 'राम राम जी' कहकर एक दूसरे का अभिवादन करते हैं। कुछ लोग 'नमस्ते' और 'जयहिन्द' के द्वारा भी अपने हृदयगत भावों को प्रकट करते हैं। सन्यासियों को 'नमो नारायणाय' कहकर अभिवादन किया जाता है। देव मन्दिरों में देव-प्रतिमाओं के सामने, हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं। कुछ भक्त जन मन्दिर की फर्श पर लेट कर 'साष्टाङ्ग दण्डवत' करते हैं; परन्तु यह परम्परा केवल मन्दिरों तक ही सीमित है।

जब घर की कोई बहू अपनी सास, जेठानी अथवा गाँव की कोई श्रेष्ठ वृद्धा के प्रति अपना सन्मान प्रकट करना चाहती है, तो अभिवादन के रूप में वह अपने आँचल से उसके चरणों को पाँच बार स्पर्श कर प्रणाम करती है। आशीर्वाद के रूप में सास या जेठानी उसे "मांगे, कोखी भरल रह", "पूते, मतारे नीके रह" अर्थात् तुम पति और पुत्र से सम्पन्न होकर सुखपूर्वक रहो—का वरदान देती हैं। नारी जीवन में पति और पुत्र का बड़ा ही महत्त्व है। इसीलिए जब कभी बहू प्रणाम करती है, तब उसे वृद्धा स्त्रियाँ यही आशीर्वाद देती हैं। जिस प्रकार श्रेष्ठ स्त्रियाँ बच्चों को "बेटा जीय, जाग अम्मर होख" के अतिरिक्त उनके विवाह होने का आशीस देती हैं, उसी प्रकार वे बहू को पुत्रवती होने का वर देती हैं।

पण्डित, साधु और संन्यासी प्रणाम करने पर "मंगल हो" "कल्याण हो", 'भगवान् सुखी बनाये रखें' की कामना करते हैं। प्रणाम और आशीर्वाद की यह पद्धति केवल इसी देश में, और विशेषकर भोजपुरी प्रदेश में ही पायी जाती है, जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अनुरूप है। हमारे शास्त्रकारों ने लिखा है कि जो व्यक्ति श्रेष्ठ जनों का अभिवादन करता है, उसकी आयु, बुद्धि, यश और शक्ति दिनोदिन बढ़ती जाती है।

**"अभिवादनशीलस्य, नित्यं वृद्धोपसेविनः।**

**चत्वारि तस्य वर्धन्ते, आयुर्प्रज्ञा यशो बलम्॥**

भोजपुरी समाज में इस सिद्धान्त का पालन नियमित रूप से किया जाता है।





## संयुक्त परिवार के सदस्यों में पारस्परिक सम्बन्ध

० ०

भोजपुरी परिवार, संयुक्त परिवार का ज्वलन्त उदाहरण है। यद्यपि आधुनिक युग में अनेक परिवर्तनों के कारण, इसकी शृंखला की कड़ियाँ टूट-टूट कर बिखरने लगी हैं, फिर भी, गाँवों में आज भी दादा-दादी, माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहिन, पुत्र-पौत्र आदि सभी एक ही घर में सम्मिलित रूप से रहते और सुखपूर्वक अपना जीवन बिताते हैं। ये अपने सुख और दुःख के दिनों को एक साथ बाँट कर, उसका आनन्द लेते अथवा कष्ट उठाते हैं।

संस्कृत की एक सूक्ति के अनुसार, जहाँ बहुत से लोग रहते हैं, वहाँ झगड़ा होना स्वाभाविक है और यदि दो व्यक्ति भी रहें, तो कुछ (कटु) बातचीत तो होती ही रहती है :—

‘वादे बहूनां कलहः, भवेत् वार्ता द्वयोरपि’

इसी नियम के अनुसार संयुक्त परिवार में कुछ झगड़ा अवश्य होता है, परन्तु संयुक्त रूप से एक साथ रहने का जो अलौकिक आनन्द है, वह उस विवाद के विषाद को नष्ट कर देता है।

भोजपुरी संयुक्त परिवार पितृमूलक प्रधान समाज है। अर्थात् इस समाज में पिता ही घर का मालिक और कर्त्ता-धर्ता है। उसकी ही आज्ञा सर्वोपरि मानी जाती है और घर के अन्य सभी प्राणी, उसकी आज्ञा का बड़े ही आदर के साथ पालन करते हैं। भोजपुरी संयुक्त परिवार में साधारणतया पाँच पीढ़ी तक के व्यक्ति एक साथ घर में निवास करते हैं, जिनमें दादा-दादी, माता-पिता, भाई-बहिन, पुत्र-पौत्र, सास-ससुर, ननद-भावज, आदि प्रधान हैं। संयुक्त परिवार के इन सदस्यों में, कुछ लोगों का सम्बन्ध तो आपस में बड़ा मधुर होता है, परन्तु कुछ व्यक्तियों का आपसी व्यवहार बड़ा कटु होता है। अतः इन सम्बन्धों के आधार पर, परिवार के इन सदस्यों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। यह दुःख का विषय है कि मधुर सम्बन्ध की अपेक्षा कटु सम्बन्धवाले सदस्यों की संख्या ही अधिक है।

### (क) मधुर सम्बन्ध

- (१) माता-पुत्र
- (२) माता-पुत्री
- (३) पिता-पुत्र
- (४) भाई-बहिन
- (५) पति-पत्नी

### (ख) कटु सम्बन्ध

- (१) सास और पतोहू
- (२) ननद और भावज
- (३) देवर और भावज
- (४) भसुर और भवहि (भयहू)
- (५) ससुर और पुत्रवधू
- (६) सौत और सौत

### प्रथम परिच्छेद

### (क) मधुर सम्बन्ध

#### (१) अनुच्छेद—माता और पुत्र

पुत्र-जन्म के अवसर पर माता और पिता को कितने अधिक आनन्द का अनुभव होता है, इसका वर्णन करना कठिन है। सोहर के गीत ऐसे विषयों से भरे पड़े हैं। भोजपुरी प्रदेश में पुत्र, घर का दीपक अथवा प्रकाश माना जाता है। संस्कृत के एक नाटककार ने तो यहाँ तक लिखा है कि पुत्र से हीन व्यक्ति का घर शून्य तथा अन्धकारमय होता है—“अपुत्रस्य गृहं शून्यम्।” ऐसी दशा में, पुत्र के प्रति माता और पिता का प्रगाढ़ प्रेम होना स्वाभाविक ही है। यह ध्यान देने की बात है कि लोकगीतों



में पिता और पुत्र के प्रेम की चर्चा बहुत ही कम पायी जाती है, परन्तु माता और पुत्र के स्वाभाविक प्रेम का वर्णन इन लोक-गीतों में अनेकशः उपलब्ध होता है।

**शीतला माता से प्रार्थना**—शीतला माता के गीतों में पुत्र के प्रति माता का अकृत्रिम प्रेम उमड़ता हुआ दिखलाई पड़ता है। जब कोई छोटा बच्चा चेचक के रोग से पीड़ित होकर बेचैन होता है, तब उसकी माता व्याकुल होकर इस रोग की अधिष्ठात्री देवी शीतला माता का आवाहन करती है। वह उनसे करुण-स्वरों में प्रार्थना करती हुई अपने प्राण प्यारे पुत्र के जीवन की मिक्षा माँगती है। नीचे की इन पंक्तियों में पुत्र के प्रति माता की कितनी ममता, कितनी वेदना और कितनी व्याकुलता छिपी हुई है।<sup>१</sup>

“आँचरा पसारि भीखी माँगले बालाकावा के माई,  
हमारा के बालाकावा भीखी दी।  
मोरी दुलारी हो मइया,  
हमरा के बालाकावा भीखी दी।”

कोई व्यक्ति देवी-देवताओं से अन्न, धन, सोना-चाँदी, धन-वैभव तथा सुख-सम्पत्ति की याचना करता है; परन्तु यह दुःखिया माता, अपने रोगी बालक के स्वास्थ्य-लाभ के लिए प्रार्थना करती है—“मोरी मन राखानि हो मइया, हमरा के बालाकावा भीखी दी”—केवल इस एक पंक्ति में कितनी ममता, कितना व्यामोह, कितना स्नेह दिखाई पड़ता है। इस गीत में माता की ममता लिपटी पड़ी है।

शीतला माता शीघ्र आकर बालक को नीरोग करने में जब विलम्ब करती है, तब माता अत्यन्त व्याकुल हो जाती है और वह आतुरता के साथ किसी राही से पूछती है कि क्या तुम ने शीतला माता को आते हुए देखा है।<sup>२</sup> परन्तु जब वह राही नकारात्मक उत्तर देता है, तब माता अत्यन्त अधीर हो उठती है; पुत्र के कष्ट से उसका हृदय पिघलने लगता है और वह शीतला से निवेदन करती है कि ए माता ! मेरे पुत्र को आरोग्य प्रदान कर, मेरे ऊपर कृपा करो :—“मइया दाया ना करी”

### कौशिल्या का राम के प्रति अकृत्रिम स्नेह

राम के प्रति कौशिल्या का अनन्य प्रेम प्रसिद्ध ही है, जिसे आदि कवि वाल्मीकि ने आदर्श रूप में चित्रित किया है। इस अलौकिक प्रेम की झाँकी इन गीतों में भी प्राप्त होती है। राम वन जाने के लिए तैयार हैं। वे अपनी माता के पास वन जाने की आज्ञा माँगने के लिए जाते हैं। परन्तु पुत्रवत्सला कौशिल्या बड़े असमंजस में पड़ जाती हैं। वह कहती हैं कि “बेटा ! तुम मेरे हृदय में निवास करते हो और लक्ष्मण मेरे आँखों की पुतली हैं। अतः वन जाने के लिए मैं तुम्हें कैसे आज्ञा दे सकती हूँ।”<sup>३</sup>

“राम त मोर करेजवा, लखन मोरी पुतरिय हो।  
आरे रामा, सीता रानी केरा चुरिया,  
मैं कइसे बन भाखे हो॥”

माता की ममता ने इस सोहर में मूर्तिमान् रूप प्राप्त किया है। वन में निवास करनेवाले राम को भोजन कराने के लिए माता कौशिल्या पूड़ी और दूध की बनी खीर को लेकर, उनके पास जाती हैं। परन्तु राम का कुछ पता कहीं चलता। वह लता, पुष्पों, और वृक्षों से राम का पता पूछती फिरती हैं, परन्तु कुछ पता नहीं चलता। कितनी व्याकुलता है। लोककवि कहता है कि—

‘घिउवा के काढ़ेली पुड़िया,  
त दूधवा के जाउरि कइली हो।

१. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० २६०।

२. वही, पृ० २६२।

३. वही, भाग १, ।

४. वही, भाग १



लिहली आंचर तर ढाँकि,  
रमइया हेरइ निकसेली हो॥”

राम के वन जाते समय कौशल्या को जो हार्दिक दुःख हुआ, उसकी अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में बड़े ही सुन्दर रूप से हुई है। कौशल्या कहती हैं कि ए कैकेयी ! तुमने यह अच्छा काम नहीं किया। राम को वन भेजकर तुमने मेरे बसे बसाये हुए घर को उजाड़ दिया।

“आछा काम ना कइलू ए कैकेयी।  
आछा काम ना कइलू।  
हमार बसल भवनवा उजरलू ए कैकेयी,  
आछा काम ना कइलू॥”

संस्कृत के एक स्तोत्र में लिखा है कि पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाय, परन्तु माता कभी कुमाता नहीं होती :—

“कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति”

माता का पुत्र के प्रति स्वाभाविक प्रेम होता है। यह प्रेम स्फटिक के समान स्वच्छ और गंगा जल के समान निर्मल है। इसमें कृत्रिमता का कोई स्थान नहीं होता। पत्नी भी पति से प्रेम करती है, परन्तु उसका प्रेम स्वार्थ की आधार-शिला पर अवस्थित रहता है। परन्तु माता का दिव्य स्नेह वह प्रेम है, जिसमें कृत्रिमता का प्रवेश लेश मात्र तक नहीं होता। भोजपुरी में एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि माता पुत्र के स्वास्थ्य की ओर सदा दृष्टि रखती है, परन्तु स्त्री स्वार्थ से प्रेरित होकर सदा उसकी मोटरी (घन अथवा अन्न की गठरी) की ओर देखती है।

“भइया निहारे पोटरी।  
कि जइया निहारे मोटरी॥”

पुत्र के प्रति माता की ममता वह दिव्य और अलौकिक विभूति है, जो संसार में मिलना कठिन है।

## (२) अनुच्छेद—माता और पुत्री

यद्यपि माता का प्रेम पुत्र के प्रति अगाध होता है, परन्तु पुत्री के प्रति भी उसका प्रेम कुछ कम नहीं होता। पुत्री के जन्म के समय उसकी माता को बड़ा अपमान सहन करना पड़ता है; विवाह के अवसर पर वर को ढूँढ़ने की परेशानी के साथ ही घन की बरबादी भी करनी पड़ती है। फिर भी पुत्री के प्रति माता का प्रेम अत्यन्त प्रगाढ़ होता है।

### पुत्री के प्रति माता का प्रेम

गवना के गीतों में पुत्री के प्रति माता का प्रेमरूपी पारावार उमड़ता हुआ दिखलाई पड़ता है। जब पुत्री अपनी ससुराल जाने को उद्यत होती है, तब उसके वियोग में माता, पिता और भाई सभी करुण क्रन्दन करने लगते हैं। पिता के अनवरत अश्रुपात से गंगा में बाढ़ आ जाती है, और माता के कारुणिक प्रलाप से चारों दिशाओं में अंधेरा छा जाता है। बिचारे भाई की आँखों से आँसुओं के लगातार गिरने से धोती तक भीग जाती है :—

“बाबा के रोवले, गंगा बढ़ि अइली,  
आमा रोवले अन्होर ए॥  
भइया के रोवले चरन-धोती भीजे,  
भऊजी नयनवों ना लोर ए॥”

इस गीत से पुत्री के प्रति माता की अगाध ममता, पिता का अलौकिक प्रेम तथा भाई का अकृत्रिम स्नेह प्रकट होता है। यह गीत क्या है—करुणा तथा प्रेम की पयस्विनी है; जिसमें माता, पिता और भाई—सभी बहे चले जा रहे हैं।



पुत्री जब ससुराल चली जाती है, तब उसकी माता सदा इस बात का ध्यान रखती है कि मेरी पुत्री सर्वदा सुखपूर्वक जीवन बितावे। वह नौकरानी से अपनी समझिन के पास सन्देश भिजवाती है कि “वह न तो मेरी पुत्री को गाली दे और न उसकी ताड़ना करें। जब मेरी पुत्री कच्ची नींद अर्थात् गाढ़ निद्रा में सो रही हो, तो उसे कभी भी न जगावें।”<sup>१</sup> इस सन्देश से माता का अपनी पुत्री के प्रति प्रगाढ़ प्रेम का पता चलता है। भोजपुरी माता का यह सन्देश कुछ-कुछ ऐसा ही है, जैसा सन्देश यशोदा माता ने कृष्ण के लिए देवकी के पास भेजा था।<sup>२</sup>

जब कोई भोजपुरी भाई अपनी बहिन को ससुराल पहुँचा कर, अपने घर लौटकर आता है तब उसकी माता व्याकुल होकर उससे पूछती है कि तुम मेरी प्राणप्यारी पुत्री को कहाँ छोड़ आये? इस पर पुत्र उत्तर देता है, कि ए माता ! जिसकी वह स्त्री थी, वही उसे ले गया है।

“आरे काहाँ छोड़लऽ काहाँ ए बबुआ।

बाचावा रे हमारी॥

आरे जेकर घरनी ए आमा,

से हो ले ले जाई॥”

जब पुत्री को ससुराल में कष्ट होने लगता है, जब उसे भोजन तक के लाले पड़ने लगते हैं, तब वह अपने हृदय की आधि और व्याधि को अपनी प्रेमी माता को छोड़कर, किसी दूसरे व्यक्ति से नहीं कहना चाहती और इसीलिए बार-बार अपने को मायका बुला लेने के लिए उससे प्रार्थना करती है।

कोई भाई अपनी बहिन की ससुराल गया है। माता को आशा थी कि उसका पुत्र उसकी प्यारी पुत्री को वापस लेकर लौट आवेगा। अतः वह मकान के सबसे ऊँचे भाग-छत पर चढ़ कर, अपनी पुत्री के आने की प्रतीक्षा बड़ी आतुरता से कर रही है।<sup>३</sup> परन्तु पुत्र बहिन को बिना लिये अकेले घर लौट आता है। इस पर उसकी माता क्रुद्ध होकर कहती है कि तुम तो बहुत ही बड़े कपूत निकले, जो ससुराल में रोती हुई बहिन को छोड़कर चले आये। आज मेरे पति यदि जीवित होते, तो उसे हँसते-खेलते घर ले आते।<sup>४</sup>

“पूत हो तुम भयउ कपूते;

रोअत बहिना आये छाड़ि रे।

जो मोरी धियवा के बाबुल होई तें,

हँसत खेलत लेइ अवते रे॥”

### पार्वती का कष्ट

साधारण भोजपुरी बेटा की ही नहीं, बल्कि पार्वती भी जब अपनी ससुराल जाती हैं, तब उनकी भी यही दुर्गति होती है। वे अपनी ससुराल के कष्टों को माता मैना से निवेदन करती हुई कहती है कि ए माता ! भँगोड़ी शिव के लिए सील पर माँग पीसते-पीसते मेरा हाथ घिस गया है और घटूरा को मलते-मलते मेरा हृदय व्याकुल हो उठा है:—

“भँगिया पीसत ए आमा, हाथवा खिअइले।

घटूरा मलत ए आमा, जियरा अकुलइले॥”

१. लाते जनि मरिहे; पाराते जनि गारी।

काँचि निदियाँ मत जगइह मोरी दुलारी॥

—डॉ० उपाध्याय— भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० १६०।

२. संदेसो देवकी सो कहियो।

हौं तो घाय तुम्हारे सुत की,

कृपा करत ही रहियो।

संक्षिप्त सूरसागर

३. ऊँचवा चढ़ि चढ़ि माता निरेखे,

मोरी धिया हौं केति दूरि रे॥

पं० रामनरेश त्रिपाठी - ग्राम गीत, पृ० ४१५।

४. दुर्गाशंकर सिंह : भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० ३०७।



ससुराल के इन दारुण दुःखों को पुत्री अपने माता से न कहे, तो और किससे कहे ? संसार में उससे प्यारा भला उसके लिए कौन व्यक्ति है ?

### पुत्री का दुःख

कोई बहिन अपने भाई से ससुराल के अतिशय कष्टों का निवेदन करती हुई कहती है कि ए भइया ! मुझे 'खांची' भर बर्तन मलना पड़ता है; बीसों आदमियों का भोजन बनाने के लिए दिया जाता है; प्रतिदिन कई पसेरी (पाँच किलो) गेहूँ पीसना पड़ता है। रसोई बनाकर घर के सभी लोगों को पहिले भोजन कराना पड़ता है। अन्त में सब प्राणियों के भोजन करने के पश्चात् ही मुझे भोजन मिलता है। तिस पर भी अन्त में केवल दो-तीन लिट्टी—मोटी रोटी। परन्तु ए भइया ! इस दुःख को मेरी माता से कभी मत कहना, नहीं तो मेरे दुःखों को सुनकर उसकी छाती फट जायेगी।'

“इ दुःख जनि कहिय, भाई के अगवा हो ना।

भाई छतिया विहरि मरि जइहे हो ना॥

यह गीत क्या है, पुत्री के प्रति माता की प्रगाढ़ ममता की मार्मिक कथा है; जिसे पढ़कर पाठकों का भी हृदय द्रवीभूत हो जाता है।

### (३) अनुच्छेद—पिता और पुत्र

लोकगीतों में पिता और पुत्र के प्रेम का उल्लेख बहुत ही कम मिलता है। विवाह के लिए जानेवाला कोई पुत्र, अपनी माता से कहता है कि मैं तो पिता जी का आज्ञाकारी सेवक बनूँगा और मेरी स्त्री तुम्हारी दासी बनेगी।<sup>१</sup> आदर्श पुत्र की चर्चा करते हुए एक गीत में कहा गया है कि सुपुत्र तो वही है, जो पिता की सेवा करे।<sup>२</sup> शास्त्रों में जीवन में प्राप्त होनेवाले छः सुखों का वर्णन करते हुए पुत्र का आज्ञाकारी होना आवश्यक सुख बतलाया गया है।<sup>३</sup> एक अन्य गीत में तो यहाँ तक उल्लेख मिलता है कि पिता की सेवा में संलग्न पुत्र ही वास्तविक पुत्र है, अन्यथा दुष्ट पुत्र के उत्पन्न होने से क्या लाभ है।<sup>४</sup> महाभारत में तो यहाँ तक लिखा है कि पिता ही धर्म है; पिता ही स्वर्ग है और पिता की सेवा ही परम तपस्या है। पिता के प्रसन्न रहने पर समस्त देवता प्रसन्न रहते हैं तथा आशीर्वाद और मंगल प्रदान करते हैं।<sup>५</sup>

### (४) अनुच्छेद—भाई और बहिन

भाई और बहिन के दिव्य प्रेम का जो भव्य रूप इन गीतों में प्राप्त होता है, वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। सच तो यह है कि माता और पुत्र के विशुद्ध प्रेम के अनन्तर भाई और बहिन के प्रेम को ही आदर्श की कोटि में रखा जा सकता है। बहिन के हृदय में अपने भाई के प्रति अगाध प्रेम भरा पड़ा है और भाई भी अपनी बहिन को प्राणों से भी अधिक प्यार करता है।

१. रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम गीत, पृ० ४१५।

२. हमहूँ होखबि ए आमा बाप के सेवइत,  
धनि होइहें दासी तोहार ए।

डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० १४०।

३. रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम गीत, पृ० ४८३।

४. अर्थागमो नित्य मरोगिता च,  
प्रिया च भार्या प्रिय वादिनी च।  
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या,  
षट् जीव लोकस्य सुखानि राजन्॥

५. पूत त उ ह जो पिता को सेवं,  
नाहों त पाजी के जनमे से का भा।

६. पिता धर्मः, पिता स्वर्गः, पितृव परमं सुखम्।  
पितरि प्रीतिमापन्ने, प्रियन्ते सर्वदेवताः॥



यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है कि जहाँ संस्कृत साहित्य में भाई और बहिन के पारस्परिक प्रेम का प्रायः अभाव पाया जाता है, वहाँ लोक साहित्य में इस नैसर्गिक प्रेम की प्रबल तरंगिणी प्रवाहित होती है; जिसमें अवगाहन कर मानवों का मन पवित्र तथा निर्मल हो जाता है। संस्कृत वाङ्मय में यम और यमी के एक अपवाद को छोड़कर, भाई और बहिन के प्रेम का दूसरा उदाहरण सम्भवतः उपलब्ध नहीं होता। परन्तु लोक साहित्य ऐसे सैकड़ों दृष्टान्तों से भरा पड़ा है, जिसमें भाई ने अपनी बहिन की इज्जत तथा प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अपने प्राणों की भी आहुति दे डाली और बहिन ने भी भाई के प्रेम के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया।

गवना के गीतों में—बहिन की बिदाई के अवसर पर—भाई अपनी प्राण प्यारी बहिन के कारण बिलखता हुआ दिखाई पड़ता है। उसके करुण क्रन्दन से, आँखों से आँसुओं की अनवरत झड़ी से धोती तक भीग जाती है।<sup>१</sup>

### भाई का प्रेम

सोहर के एक गीत में कोई बहिन भावज के द्वारा दिये गये कष्टों का उल्लेख अपने भाई से कहती है, जिसे सुनकर वह अत्यन्त कष्ट को प्राप्त करता है। भाई ससुराल जानेवाली अपनी बहिन की पालकी को रोककर, उसके पहिनने के लिए रेशमी वस्त्र प्रदान करता है और उसके 'खोईछा' में मुहर रख देता है। परन्तु दुष्टा भावज, अपनी ननद को फटही लुगरी—पुराना वस्त्र पहिनने के लिए देती है और खोईछा में बनउर (बेनउर)—कपास का बीज—देकर उसे बिदा करती है। अतः प्रेमी भाई अपनी बहिन से आग्रह करता है कि पुराने वस्त्र का परित्याग कर, रेशमी साड़ी को ही पहिन कर अपनी ससुराल जावो:—

“ए बहिनी खोलिद तू फटही लुगरिया,  
बनउर केरा खोईछा हो।  
ए बहिनी पहिरहु लहंगा पटोरवा,  
मोहर भरि खोईछा हो।”

इस गीत में जहाँ भावज की दुष्टता दिखाई पड़ती है वहाँ भाई के स्वाभाविक प्रेम का पारावार हिलोरे मारता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

रोपनी के एक गीत में कोई भाई, बहिन से ससुराल के कष्टों को सुनकर अत्यन्त दुःखी दिखाई पड़ता है। वह कहता है कि मैंने सूर्य के समान प्रकाशमान और चन्द्रमा के समान सुन्दरी अपनी बहिन को विवाह में दिया था। परन्तु आज वह ससुराल के कष्टों के कारण, जलकर कोयला के समान काली पड़ गयी है।<sup>२</sup>

“चाँद सुरुज अस बहिनी संकलपो हो ना।  
बहिनि जरि जरि भइली कोइलिया हो ना॥  
जरि जरि भइली कोइलिया हो ना।”

इस पंक्ति के “जरि जरि भइली” शब्दों में कितनी व्यञ्जना मरी पड़ी है; कितनी विषम वेदना की अभिव्यक्ति हुई है। ‘जरि जरि’ शब्द की पुनरावृत्ति से पता चलता है कि वह (बहिन) घर के कठोर श्रम और पारिवारिक कष्टों से जलाकर काली कर दी गयी है।

एक दूसरे गीत में बहिन के प्रति भाई के प्रेम की गहरी अभिव्यञ्जना हुई है। भाई बहिन का सन्देशवाहक है। वह अपनी बहिन के कष्टों को माता से कहता है, जो उसके कष्टों को सुनकर उसे ससुराल से बुला लेती है तथा उसे आराम से अपने घर में रखती है। भाई ही बहिन का बल और सम्बल है। वह उसकी सर्वदा तथा सर्वथा सहायता करने को उद्यत है और उसकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयास करता है। बहिन के दुःखी जीवन में उसकी माता और भाई ही उसके अवलम्बन हैं। ये ऐसे ध्रुवतारा के समान हैं, जिनकी ओर वह सदा निश्चिन्तता और निश्चितता के साथ सहायता के लिए देखा करती है। भोजपुरी में एक कहावत प्रसिद्ध है कि “फूटल बर्तन ठठेरा के घर जाला; अवरु दुःखिया बिटिया नैहर जाले।” वास्तव में मायका ही किसी दुःखी बेटी का आश्रय तथा अवलम्ब है।



## बहिन का अकृत्रिम प्रेम

यद्यपि भाई और बहिन का पारस्परिक प्रेम अत्यन्त शुद्ध, निर्मल, अकृत्रिम और समानरूप से उभयनिष्ठ होता है; फिर भी भाई के प्रति बहिन के प्रेम की तुला कुछ झुकती हुई दृष्टिगोचर होती है। बहिन की प्रगाढ़ तथा प्रखर प्रेम की धारा में भाई का प्रेम तिनके के समान बहता हुआ दिखाई पड़ता है। भाई के ऊपर जब कोई विपत्ति आ पड़ती है, तब उसकी चिर सहचरी धर्मपत्नी भी समुराल में उसे आश्रय नहीं देती। उसे पहिचानती तक नहीं। ऐसी दशा में वह अपनी बहिन के पास जाता है, जो उसे आश्रय और अवलम्बन प्रदान करती है। जीवन की विषम परिस्थितियों में, गाढ़े दिनों में, विपत्ति की अवस्था में, बहिन ही काम आती है और वह उसे सहायता प्रदान करती है।

## भाई के दर्शन मात्र से प्रसन्नता

बहिन अपने भाई को केवल देखने से ही कितनी आल्लादित और कितनी प्रसन्न होती है, इसका उल्लेख एक गीत में बड़ी ही सुन्दर रीति से हुआ है। कोई भाई अपनी बहिन से मिलने के लिए उसकी समुराल आ रहा है। बहिन अपने घर की अटारी पर चढ़कर उसे दूर से ही आते हुए देखती है। उसे देखते ही बहिन के हृदय का पारावार उमड़ पड़ता है। उसमें आनन्द की हिलोरें आने लगती हैं। जब गाँव-घर की स्त्रियाँ उससे पूछती हैं कि आज तुम्हारे यहाँ कौन आया है, तब वह अत्यन्त उल्लास तथा प्रसन्नता के साथ कहती है कि :—

“कहेली कवन बहिनी हुलसी के ना।  
आजु मोर भइया अइले हा॥  
आजु मोर हवलदार अइले हा।  
आजु मोर सुबिदार अइले हा॥  
आजु मोर भइया अइले हा।  
आजु मोर भइया अइले हा॥”

उपर्युक्त लोक-गीत में “आजु मोर भइया अइले हा” इस पंक्ति की एक बार ही नहीं बल्कि तीन-चार बार आवृत्ति से ही बहिन के हृदय के हुलास तथा आनन्द का पता चलता है। वह अपने अन्तरतम में निहित अतिशय प्रसन्नता को प्रकट करने के लिए बार-बार कहती है कि आज मेरा भाई आया है। गाँवों में पहिले और आज भी, हवलदार और सूबेदार के पद को सुशोभित करना सम्मान का कारण माना जाता था। अतः बहिन अपने प्राणप्रिय भाई को गौरव प्रदान करने के लिए, उसकी तुलना सूबेदार और हवलदार से करती है।

इतना ही नहीं, वह अपनी पड़ोसी स्त्रियों से तथा जोगिन और माटिन से कहती है कि तुम लोग आज आनन्द के गीत गावो। आज मेरा हृदय प्रसन्नता से फूला नहीं समाता, क्योंकि आज मेरा भाई मेरे घर आया हुआ है। गीत इस प्रकार है :—

“आरे आरे गोतिनि, माटिनि सब केहु गावहु हो।  
मोरा जियरा भइल बा हुलास, बीरन मोर आइल हो।  
आरे आरे सासु गोसाईं; करहिया चढ़ावहु हो।  
आजु मोरा जियरा हिलोरे, बीरन मोर आइल हो।”

इस गीत की “मोरा जियरा भइल बा हुलास” पंक्ति में प्रसन्नता का सागर उमड़ता दिखाई पड़ता है।

बहिन अपने भाई के आगमन पर उसे सबसे सुन्दर तथा स्वादिष्ट भोजन कराना चाहती है। वह ‘चलनी’ से आटा ‘चाल’ कर, उसके लिए पूड़ी (लुचुई) पकाती है। मूंग की दाल बनाती है और ‘पालकी’ का साग तैयार करती है। बासमती चावल—जो चावलों में सबसे स्वादिष्ट होता है—का भात पकाती है। इन सभी भोज्यपदार्थों को वह अपने भाई के लिए सोने की थाली में परोस कर खाने के लिए देती है। इतना ही नहीं, वह इसके बाद गर्म घी की धारा को प्रभूतमात्रा में उसकी दाल



में डालती है। इसमें सन्देह नहीं कि बहिन के इस अतिशय सम्मान तथा आदर से उस भोजन का स्वाद शताधिक हो गया होगा। गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

“आटावा जे चालि चालि, लुचुई पकवली हो ना।  
 बहुअरि खोंटि लिहली पालकी के सागवा हो ना।  
 बहुअरि रोन्ही लिहली मुंगिया के दलिया हो ना।  
 बहुअरि बासमती चाउर के भातवा हो ना।  
 सोने के थरियवा में जेवना परोसली हो ना।  
 रामा ऊपर से तातल घीव के धारवा हो ना॥”

मायका से भाई जब अपनी बहिन के पास कुछ दिनों तक नहीं जाता, तब उसकी सास और ननद यह ताना मारती हैं कि तुम्हें कोई पूछता नहीं। तुम उपेक्षिता हो। इतने ही में भाई ‘बँहगी’ पर अपने बहिन के लिए सामान लाद कर और घड़े में घी भर कर के लिये चला आता है। अपने भाई से मिलने के लिए बहिन इस प्रकार उसके पास दौड़ती है, जिस प्रकार से गाय अपने बछड़े के लिए दौड़कर जाती है।

“आगे आगे आवे बँहगिया, पीछे घीव गागर हो।  
 ओहि पीछे भइया असवारवा, बहिनी के देस जाले हो।  
 जइसे दउरे गइया त अपना बछरुआ खातिर हो।  
 ओइसे दउरली बहिनियाँ त अपना भइयवा खातिर हो॥”

इस गीत में भाई-बहिन के अकृत्रिम प्रेम की तुलना गाय और बछड़े के प्रेम से की गयी है।

**आदर्श प्रेम**—लोकगीतों में बहिन और भाई के प्रेम का चित्रण आदर्श रूप में किया गया है। कोई व्यक्ति संसार से विरक्त होकर, अपनी स्त्री के दुष्ट व्यवहार से ऊबकर, संन्यासी हो जाता है। वह देशाटन तथा भिक्षाटन करता हुआ अपनी बहिन के यहाँ भिक्षा के लिए जाता है। बहिन अपने भाई की इस दुर्दशा को देखकर अत्यन्त दुःखित होती है और रोने लगती है। वह उससे आग्रहपूर्वक सविनय प्रार्थना करती हुई कहती है कि ए भइया! अब तुम इस जोगी के वेश—सारंगी और गूदड़ी—को छोड़ दो। तुम मेरे घर पर ही स्थायी रूप से रहो और यहीं धूनी रमाओ। इस गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

“रोवेली बहिनी पटोरवे पोंछि लोरवा,  
 आरे ई त हउएँ बीरना हमार ए जदुवंशी।  
 × × ×  
 छोड़ि देहु भइया हो सरंगी, गुदड़िया,  
 आरे हमरी बुअरिया, धुनिया रमाव, ए जदुवंशी॥”

जिस प्रकार पुत्र भले ही कुपूत हो, परन्तु माता कुमाता नहीं हो सकती, उसी प्रकार भाई अपनी बहिन को भले ही भूल जाय, उसके प्रति अनुचित व्यवहार करे, परन्तु बहिन अपने भाई को कभी भूल नहीं सकती। वह उसके सुख और दुःख में सदा साथ देनेवाली है। पति के प्रति पत्नी का जो प्रेम होता है, उसमें स्वार्थ का अंश थोड़ा हो सकता है, परन्तु बहिन का प्रेम, निःस्वार्थ, निश्छल और गंगा की धारा के समान पवित्र होता है।

### गोपीचन्द का उदाहरण

राजा गोपीचन्द जब संसार को छोड़ कर जोगी बन जाते हैं, तब अपनी माता के निषेध करने पर भी वे बहिन से मिलने के लिए उसके घर जाते हैं। भिक्षा माँगने पर घर की दासी उनका तिरस्कार करती है। परन्तु उनकी बहिन उन्हें पहिचान लेती है और वह दौड़कर सोने की थाली ले आती है और उसमें उनका पाँव पखारती है:—



“आतना वचन बहिना सुनही ना पवली।  
सोने के थरियवा गोड़वा धोवेली हो राम।”

इतना ही नहीं, वह अपने भाई के भोजन के लिए “आरावा” (बासमती) चावल का भात और अरहर की दाल को बनाकर, बड़े प्रेम से गोपीचन्द को भोजन कराती है।

“आरावा चउरवा अवर रहरी के बलिया,  
अमृत भोजन करवली हो राम।”

वास्तव में यदि भोजन सुस्वाद हो और भोजन को प्रेम से परोस कर स्नेहपूर्वक खिलाया जाय, तो घाघ के अनुसार इस मर्त्यलोक में ही, संसार में ही स्वर्ग का सुख मिल सकता है।

बहिन अपने भाई के कष्टों को कथमपि सहन नहीं कर सकती। उसके दुःखों को देखकर, उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है। भोजपुरी में एक कहावत प्रसिद्ध है कि “भाई अवरू केहुनी के घाव ना सहाला” अर्थात् भाई का कष्ट और ‘केहुनी’ (हाथ का मध्य भाग) की चोट असहनीय होती है। इसी एक लोकोक्ति में बहिन का भ्रातृस्नेह उमड़ता हुआ दिखलाई पड़ता है। यों तो बहिन के लिए सभी भाई समान रूप से प्रिय हैं, परन्तु छोटा भाई सर्वाधिक प्रिय होता है।

बहिन और भाई के अकृत्रिम, निःस्वार्थ और स्वाभाविक प्रेम की गाथा—अलौकिक तथा दिव्य है। आधुनिक स्वार्थ-परता के इस युग में, ऐसे स्वर्गीय प्रेम का प्राप्त करना तो कठिन है ही, उसका दर्शन भी नितान्त दुर्लभ है।

#### (५) अनुच्छेद—पति और पत्नी

भारतीय संस्कृति में पति और पत्नी का सम्बन्ध अटूट माना जाता है। हमारे देश में विदेशों की भाँति, विवाह एक सामाजिक ठेका (सोशल कान्ट्रैक्ट) नहीं है; प्रत्युत यह परमपवित्र धार्मिक कृत्य है और दो हृदयों का मिलन समझा जाता है। भारत में पति अपनी पत्नी के बिना अपूर्ण है और पत्नी के जीवन में, पति के अभाव में, सुखद परिवार की कोई कल्पना नहीं की जा सकती। अतः पति और पत्नी का सम्बन्ध अभिन्न तथा अविच्छेद्य है।

#### पत्नी का पति प्रेम

लोक-गीतों में पति और पत्नी के सम्बन्ध का जो चित्रण हुआ है, वह अत्यन्त सुन्दर तथा मनोरम है। इन गीतों में आदर्श गार्हस्थ्य जीवन की बाँकी झाँकी हमें देखने को मिलती है। आधुनिक जीवन की विषमता का प्रवेश, इसमें बहुत कम पाया जाता है। दाम्पत्य जीवन का मधुर तथा मधुमय स्वरूप, झूमर के गीतों में उपलब्ध होता है। कोई पति परदेस जाने के लिए, जीविकोपार्जन के हेतु, पूर्व देश को प्रस्थान करने के लिए उद्यत है। परन्तु उसके वियोग को सहने में असमर्थ उसकी स्त्री, इन्द्रदेव से प्रार्थना करती है कि हे देव! बरसो। खूब बरसो। एक प्रहर रात्रि से ही जल बरसाना प्रारम्भ कर दो; जिससे मेरे पति के प्रस्थान करने का समय वर्षा के कारण बीत जाय और वह परदेस न जा सके। झूमर की पंक्ति है:—

“बरिसहु ए देव! आरे घरी रे पहर राति।  
आरे पिया के पायेतवा घरे बेलमावहु रे की॥”

किसी स्त्री का पति खेती के कामों में इतना व्यस्त रहता है कि खेत और खलिहान में ही वह अपना डेर डाले रहता है। घर पर आने का उसे अवकाश ही नहीं मिलता। वह तेली की बैल की तरह सदा काम में जुटा ही नहीं रहता, बल्कि इन बैलों को कोल्हू में जोतकर वह तेल पेरने का काम भी करता है। अतः उनकी दुःखी स्त्री, कोल्हू के बैल से निवेदन करती है कि हे कोल्हू के देवता! तुम जुआठ (काष्ठ दण्ड) तोड़ दो, जिससे मेरे पति के सिर में गहरी चोट लग जाय। तब वह अपनी चोट की दवा कराने के लिए, उस पर हल्दी और चूना लगवाने के लिए तो घर अवश्य ही आयेगा। इस प्रकार उससे मिलने का अवसर प्राप्त हो सकेगा। गीत है:—

“गोड़ तोरा लागीले सोरही के बछवा,  
जुअठिया तुरि घरवा आव हो राम।  
जुअठिया के टूटले कपरो नु फूटिहें,  
घइया लठावे घरवा अइहें हो राम॥”



उपर्युक्त गीत में पत्नी की पति-समागम की प्रबल लालसा स्पष्टतया प्रतीत होती है। उसकी यह अभिलाषा कितनी उत्कट है। प्रेमी पति के साहचर्य की कामना स्त्रियों के हृदय में सन्निहित रहती है। कोई नायिका तो यहाँ तक कहती है कि मेरे घर में आज आग लग गयी और घर जलकर नष्ट हो गया। यह बहुत ही अच्छा हुआ। इसी व्याज से, आग बुझाने के लिए, मुझे कुएँ से पानी भरकर, प्रियतम के हाथों में पानी से भरा घड़ा देने का अवसर तो मिला।

“आगि लागि घर जरिगा, बड़ सुख कीन।  
पिय के हाथ घरिलवा, भरि भरि दीन॥”

इसी प्रकार अपने प्रियतम के सतत साहचर्य की कामना करनेवाली कोई प्रियतमा कहती है कि अहीर की जाति सबसे अच्छी होती है; क्योंकि उसकी स्त्री को अपने पति के साथ खेत में घास निराने का सदा अवसर तो मिलता है। यह बरवा कितना मनोरम है।

“नीक जाति अहिरिन की, खुरपी हाथ।  
आपन खेत निरावे, पतिके साथ॥”

### पत्नी का उत्कट प्रेम

कोई पति व्यापार करने के लिए ‘पूरुबी बनजिया’ के लिए जाने को उद्यत है। परन्तु उसकी स्त्री, उसके साथ चलने के लिए आग्रह करती है। पति रेल से रहित मार्ग के कष्टों को उसे बतलाता है और साथ में चलने के लिए निषेध करता है। परन्तु वह पतिपरायणा स्त्री, कहती है कि मैं मार्ग के सभी कष्टों को झेल लूँगी। मैं भूख और प्यास—सभी कुछ सह लूँगी। मैं अपने भाई और बाप को भी छोड़ दूँगी और आपके साथ जोगिनी बन कर चलूँगी।<sup>१</sup>

“भूख में सहबों, पियास में सहबों,  
पान डारबि बिसराई।  
तोहरे संगे पिया जोगिनि होइबों,  
ना संग बाप न भाई॥”

भोजपुरी नारी का उपर्युक्त कथन, सीता के वचनों का स्मरण कराता है, जो वन-गमन के समय उन्होंने राम से कहा था।<sup>२</sup>

“कुस किसलय साथरी सुहाई, प्रभु संग मंजु मनोज तुराई।  
कन्द, मूल, फल, अमिय, अहारू, अबध-सौध-सत सरिस पहारू।  
छिन छिन प्रभु पद कमल विलोकी, रहिहों मुदित, दिवस जिमि कोकी।  
पाँय पखारि बैठि तर छाहीं, करिहउँ बाउ, मुदित मन-माँहीं॥  
सम महि तून-तर पल्लव डासी, पाँय पलोटिहि सब निसि दासी।  
मोहि मग चलत, न होइहि हारी, छिन छिन चरन - सरोज निहारी॥”

### पति का पत्नी के प्रति प्रेम

लोक-गीतों में पत्नी के प्रति पति का भी प्रेम कुछ कम नहीं दिखाई पड़ता। भोजपुरी स्त्री का पति-प्रेम, आदर्श कोटि में पहुँचा हुआ है। परन्तु इसके साथ ही पति का स्नेह भी कुछ कम नहीं है। पति-पत्नी, परिवार रूपी रथ के दो पहिये हैं; जिसके सहयोग से ही यह गाड़ी सुचारु रूप से चल सकती है।

संस्कृत साहित्य तथा लोक-साहित्य में पति की मृत्यु पर, पत्नी के करुण प्रलाप का वर्णन अनेक काव्यों में हुआ है। परन्तु स्त्री के मरने पर पति का करुण रुदन, सम्भवतः अज-विलाप के एक अपवाद को छोड़कर, अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। परन्तु भोजपुरी लोकगीतों में भी ऐसा वर्णन पाया जाता है। किसी परदेसी पति की पत्नी गंगा में डूबकर, जलसमाधि को प्राप्त

१. लेखक का निजी संग्रह।

२. अयोध्याकाण्ड, बोहा ६६-६७।



हो गयी है। परदेस से लौटने पर जब पति को इस दुःखद समाचार का पता चलता है, तब वह विह्वल होकर रोने लगता है और कहता है कि :—

“कहवाँ गइलू सत के तिरियवा।  
बिहरे मोरे छतिया नु रे की॥”

पत्नी की मृत्यु पर प्रियतम के हृदय का विदीर्ण होना स्वाभाविक ही है। किसी स्त्री के द्वारा अँगूठी खो जाती है। पहिले तो उसका पति उसे भला-बुरा कहता है; परन्तु बाद में अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करता हुआ रोने लगता है।<sup>१</sup>

राम—जो भोजपुरी प्रदेश में पति के आदर्श रूप में चित्रित किये गये हैं—को सीता के बिना समस्त संसार सूना दिखाई पड़ता है। क्योंकि उनके द्वारा प्रवर्तित राजसूय यज्ञ में पत्नी का प्रतिनिधित्व अब कौन करेगा? एक सोहर में राम को सीता के अभाव में अपना जीवन ही व्यर्थ जान पड़ता है। वे कहते हैं कि :—

“सीता तोरे बिना जग अँधियार,  
त मोर जीवन अकारथ हो॥”

झूमर के एक गीत से पति-पत्नी के प्रगाढ़ प्रेम का परिचय प्राप्त होता है। एक दूसरे गीत में पत्नी के प्रति स्वाभाविक प्रेम के कारण, पति अपने माता-पिता के निषेध करने पर भी, अपनी नौकरी को छोड़कर, परदेस से लौट आता है। कोई नव विवाहिता पत्नी अपनी ससुराल आकर, माता और पिता का स्मरण कर उदासीन तथा दुःखी हो जाती है। इस पर उसका पति सान्त्वना देते हुए उससे कहता है कि मैं भूख लगने पर भोजन, प्यास लगने पर पानी दूँगा। तुम्हें अपने हृदय में लगा कर रखूँगा। तुम अपने माता-पिता को अब भूल जावो।<sup>२</sup>

“भुखिया में भोजन खिअइवों,  
पिअसिया में पानी देबो हो।  
धनिया रखवों में हियरा लगाई,  
बबैया के बिसरावहु हो॥”

पत्नी के मायके जाते समय, उसके वियोग से दुःखी पति, उससे निवेदन करता है कि तुम अपने आभूषणों को मेरे पास छोड़ जावो; जिन्हें देखकर मैं अपने हृदय को सान्त्वना दूँगा। इस प्रकार, इन गीतों में पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम का बड़ा ही सुन्दर चित्रण उपलब्ध होता है।

## (स) कटु सम्बन्ध

### (२) परिच्छेद

भोजपुरी परिवार में कुछ ऐसे भी सदस्य होते हैं, जिनका पारस्परिक सम्बन्ध मधुर न होकर अत्यन्त कटु होता है। इसका मुख्य तथा सबसे प्रधान कारण संयुक्त परिवार है। चूँकि भोजपुरी परिवारों—विशेषकर गाँवों—में संयुक्त परिवार के सभी सदस्य एक ही घर में रहते हैं; अतः उनमें पारस्परिक कटुता का होना स्वाभाविक ही है। जहाँ सास-पतोहू, ननद-भावज, सौत-सौत के स्वार्थों में टक्कर लगता है, जब उनकी आर्थिक स्थिति आपस में टकराने लगती है, जब पारस्परिक प्रेम का अभाव दीखने लगता है, तब झगड़ा और झंझट का होना कोई असम्भव नहीं है। यही कारण है कि परिवार के विभिन्न सदस्यों में कटु सम्बन्ध स्थायी रूप से स्थापित हो जाता है। इन सदस्यों को निम्नांकित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :—

- (१) सास और पतोहू; (२) ननद और भावज; (३) देवर और भावज; (४) भसुर और भवहि;
- (५) ससुर और पतोहू; (६) सौत और सौत।

अगले पृष्ठों में इन सभी कटु सम्बन्धों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

१. लेखक का निजी संग्रह।

२. लेखक का निजी संग्रह।

३. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० ३४।

४. वही, पृ० ४०१।



## (१) अनुच्छेद—सास और पतोह

लोक-गीतों में सास और पुत्रवधू—जिसे भोजपुरी में पतोहि या पतोह कहते हैं—का सम्बन्ध बड़ा ही कटु, विपाक और दुष्ट दिखलाया गया है। इसके प्रधानतया तीन कारण हैं:—(क) माता के प्रति पुत्र के प्रेम का पत्नी के द्वारा—आंशिक रूप में ही सही—अपकर्षण या अपहरण। (ख) गृहस्वामिनी के रूप में माता के अधिकार को पुत्रवधू के द्वारा चुनौती देना। (ग) माता के आर्थिक अधिकार में कमी।

(क) माता पुत्र को जन्म देती है। उसे अपने गर्भ में नौ मास तक रख कर, अनेक आर्थिक कष्टों को सहती हुई पुत्र को पैदा करती है। गाँवों में जहाँ न तो 'मिडवाइफ' की कोई व्यवस्था है और न किसी प्रसूतिगृह (मेटर्निटी होम) का प्रबन्ध है, वहाँ बच्चों का प्रसव कितना कष्टकारक होता है, इसे भुक्तभोगी माता ही अनुभव कर सकती हैं। इस प्रकार नौ मासों तक आशा और निराशा की दोला में दोलायमान होते हुए तथा असीम प्रसव वेदना को झेलते हुए, जब माता जन्म के समय अपने पुत्र का मुँह देखती है, तब हृदय में आनन्द और उल्लास की कल्लोलों के उठने के साथ ही, उसके अन्तरतम में अनेक आशाओं के प्रासाद—चाहे अन्त में वे हवाई महल ही क्यों न सिद्ध हो जायँ—निर्मित होने लगते हैं। अमेरिका तथा इंग्लैण्ड की भाँति, न तो वृद्धा स्त्रियों के लिए भारत में कोई 'सोशल सेक्योरिटी एक्ट' है और न तो 'ओल्ड एज पेंशन' अर्थात् बुढ़ापे में आर्थिक सहायता।

अतः ऐसी दशा में माता अपने इसी नवजात शिशु (पुत्र) को अपना 'सोशल सेक्योरिटी' समझती है और इसे ही अपने बुढ़ापे की लकड़ी (सहारा) मानती है। वह अपना सम्पूर्ण स्नेह और ममता इस बालक को प्रदान करती है। भोजपुरी प्रदेश में निर्धनता का साम्राज्य होने के कारण, गरीब माता बड़े ही कष्टों से अपने बालक को पालती है। वह अपना स्तनपान करा कर, नहीं नहीं, अपना खून पिलाकर उसका पालन-पोषण करती है। निर्धन पिता जो भी धन कमाकर घर लाता है, पत्नी उसी में गुजर-बसर करती है। जाड़े के दिनों में जब छोटा बालक चारपाई पर बिछाया गयी गूदड़ी को मलमूत्र से गन्दा और गीला कर देता है, तब माता अपनी साड़ी के आँचल पर उसे सुलाती है कि कहीं मेरे बच्चे को सर्दी न लग जाय। जब वह अन्न खाने योग्य हो जाता है, तब वह अपना पेट काट कर अपने बालक का पेट भरती है।

जब बालक कुछ बड़ा होकर पढ़ने के लिए स्कूल जाने लगता है, तब वहाँ खाने के लिए उसे लाई-चना या 'भुजुना' (भूना अन्न) देती है; जिससे वह अपनी क्षुधा को शान्त कर सके। वह बालक को चावल का भात खिलाती है, परन्तु स्वयं केवल 'माँड़' पीकर भूखे पेट रात काट देती है। कभी-कभी तो अपने बालक को स्कूल में पढ़ाने के लिए, उसे अपना गहना भी बेचना अथवा 'गिरवी' रखना पड़ता है। कहने का सारांश इतना ही है कि भोजपुरी माता, बच्चे के जन्म से लेकर उसकी शिक्षा की समाप्ति तक, उसे अत्यन्त कष्ट से पालती-पोसती, खिलाती-पिलाती और पढ़ाती-लिखाती है।

ऐसी दशा में जब उसका शिक्षित पुत्र, नौकरी करके अर्थ की प्राप्ति करने लगता है, तब माता की यह इच्छा अत्यन्त स्वाभाविक है तथा उसकी यह आशा अतिशय उचित ही है कि मेरा सुयोग्य पुत्र, अब मेरा भरण-पोषण करेगा; मुझे सुखपूर्वक रखेगा और मुझे जीवन में खाने-पीने का कष्ट नहीं देगा। माता की समस्त ममता, उसका सारा स्नेह, उसका पूरा प्रेम, उसका सम्पूर्ण व्यामोह अपने पुत्र के प्रति होता है।

इसी समय माता के जीवन में एक जोर का झटका लगता है; उसके हृदय को एक गम्भीर चोट पहुँचती है। जिस काल में वह स्वयं को अपने पुत्र के सम्पूर्ण प्रेम, भक्ति तथा श्रद्धा की अधिकारिणी समझती है—और उचित रूप में ही समझती है—उसी समय उसके योग्य तथा 'कमासुत' पुत्र का विवाह हो जाता है और उसके घर में एक नव विवाहिता पुत्रवधू का प्रवेश हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में पुत्र का यह धर्म होना चाहिए कि वह अपनी पत्नी को प्रेम प्रदान करता हुआ, अपनी माता के चरणों में श्रद्धा और भक्ति के प्रसून अर्पित करे। परन्तु वह नव परिणीता सुन्दरी के तथाकथित रूप-लावण्य—चाहे वह काली-कलूटी ही क्यों न हो—पर मोहित होकर, उसके 'गुणों' पर लट्टू हो जाता है। उससे अगाध प्रेम करने लगता है और अपनी माता—उस माता की, जिसने अपना खून पिलाकर उसे पाला-पोसा है—की उपेक्षा करना प्रारम्भ कर देता है। उस "लायक" लड़के को इस बात की चिन्ता अब बिल्कुल नहीं रहती कि माता के प्रति भी उसका कोई कर्तव्य होता है।

भोजपुरी में एक कहावत प्रचलित है, जिसमें कोई "सपूत" या कपूत कहता है कि मैं अपनी माता को मारूँगा, अपनी बहिन को गाली दूँगा, परन्तु अपनी प्राणप्रिया पत्नी को अपने कन्धों पर चढ़ाकर घुमाऊँगा, उसका आदर करूँगा:—

“माई के मरबों, बहिन गरिअइबों,

मेदरी के कान्हे चढ़इबों, गोविन्दे, गोविन्दे ॥”



इसी सूक्ति से आधुनिक “सपूतों” की मनोवृत्ति का कुछ अनुमान किया जा सकता है। विवाह होते ही, पुत्र के द्वारा माता का अनादर तथा उपेक्षा प्रारम्भ हो जाती है। अब वह अपनी प्रेयसी को कण्ठहार बना लेता है। चूँकि पतोहू के घर में आने के कारण ही, माता की उपेक्षा प्रारम्भ होती है; अतः सास (पुत्र की माता) अपनी पुत्रवधू से द्वेष करने लगती है और उसका तिरस्कार करने एवं उपेक्षा करने के अतिरिक्त उसकी भर्त्सना करना, उसे प्रताड़ित करना, भोजन, वस्त्रादि का कष्ट देना, किम्बहुना मुष्ठीप्रहार तथा दण्डप्रहार से उसको आघात पहुँचाना, उसके दैनिक जीवन की चर्या बन जाती है।

(ख) सास और पुत्रवधू में कटु व्यवहार का दूसरा कारण है—वधू के द्वारा सास के अधिकारों को चुनौती देना। पुत्रवधू के आने के पहिले, माता ही गृहस्वामिनी होती है। वह घर के सभी काम-काज को स्वयं देखती है। यदि घर में नौकर हों, तो उनको उचित आदेश देकर उन्हें विभिन्न कामों में लगाती है। माता रसोईघर का प्रबन्ध देखती है, घर की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती या करवाती है। कहने का आशय यह है कि गृहस्वामिनी होने के नाते, घर में उसका ही प्रभुत्व विराजमान रहता है।

परन्तु पुत्रवधू के गृह में प्रवेश करते ही, वह गृहस्वामिनी के महनीय पद से क्रमशः च्युत होने लगती है और अन्त में उसका यह पद पतोहू के द्वारा छीन लिया जाता है। घर के छोटे-छोटे बालक तथा नौकर-चाकर, जो आज्ञा ‘माताजी’ से लिया करते थे, अब ‘बहूजी’ से माँगने लगते हैं। घर के लोग तथा पास-पड़ोस की स्त्रियाँ भी अब नयी बहू से मिलना तथा बातचीत करना अधिक पसन्द करती हैं। अतः बूढ़ी ‘माताजी’ की घर और बाहर—दोनों स्थानों में, उपेक्षा प्रारम्भ हो जाती है। अब तक माता (सास) गृहस्वामिनी थी। परन्तु अब पतोहू घर की मालकिन बन जाती है। इस प्रकार सास के अधिकारों को पतोहू चुनौती देने लगती है। यही कारण है कि सास अपनी बहू से चिढ़ने लगती है और उसे अपने अधिकारों का अपकर्षण करनेवाली समझने लगती है।

(ग) सास और पतोहू के झगड़े का तीसरा कारण आर्थिक है। विवाह के पहिले पुत्र जो कुछ धन अर्जित करता है, उसे वह पिता अथवा माता के चरणों में अर्पित कर देता है। माता अपनी इच्छा के अनुसार उसे खर्च करती है। उसके इस अधिकार में कोई बाधा पहुँचानेवाला नहीं होता। परन्तु विवाह के पश्चात् पुत्र अपनी कमाई का, यदि सर्वस्व नहीं तो अधिकांश भाग, अपनी प्रियतमा के चरणों में समर्पित कर देता है। ऐसी दशा में, माता को आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वह ‘कमासुत’ पुत्र माता को इतना रुपया भी नहीं देता, जिससे वह घर का खर्चा सुचारु रूप से चला सके। कभी-कभी उसे भोजन तथा वस्त्र के भी लाले पड़ने लगते हैं।

अपनी क्रमशः गिरनेवाली आर्थिक दशा के कारण, तथा अर्थाभाव से उत्पन्न होनेवाले शारीरिक कष्टों के कारण, सास का हृदय अपने पतोहू से ‘फटने’ लगता है। दोनों के प्रेम में दरार पड़ने लगती है और धीरे-धीरे यह मनमोटाव बीभत्स रूप धारण कर लेता है।

सास यह निश्चित रूप से समझ बैठती है—और उसका यह समझना कुछ अंश तक उचित भी है—कि पतोहू ही मेरे आर्थिक कष्टों का एकमात्र कारण है। वह अपने पुत्र के आचरण पर ध्यान तक नहीं देती, बल्कि पतोहू को ही कोसती है। आजकल सास और पुत्रवधू में जो संघर्ष है, जो झगड़ा है, उसके ये ही तीन प्रधान कारण हैं। इन कारणों का उदाहरण सहित संक्षिप्त वर्णन आगे प्रस्तुत किया जायेगा।

### सास तथा बहू में पारस्परिक सम्बन्ध

लोक-गीतों में सास और पतोहू के सम्बन्धों का जो चित्रण किया गया है, वह अत्यन्त, कटु, त्रिषम और क्रूरतापूर्ण है। इसीलिए भोजपुरी गीतों में सास को ‘दरुनिया’ (दारुण अर्थात् कष्ट देनेवाली) की उपाधि से विभूषित किया गया है। नवागत वधू को कष्ट देना, उसको दिनरात कोल्हू के बैल की तरह कामों में जोते रहना, सास अपना धर्म समझती है। इन्हीं दुःखों का वर्णन करती हुई कोई पुत्री अपने पिता से कहती है कि ए पिता जी ! पूर्व देश के लोग अर्थात् उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों के निवासी, बड़े ही निर्दयी और क्रूर होते हैं। वे उलट-पुलट कर अर्थात् सभी प्रकार से अपनी स्त्रियों को दुःख देते हैं। रात में मुझे जौ और गेहूँ को जाँत में पीसना पड़ता है और दिन में चर्खा चलाकर बारीक सूत कातना पड़ता है। जब मैं रात में सो ग्री रहती हूँ, तभी मुझे कच्ची नींद में ही, सास के द्वारा जगा दिया जाता है। चाहे घर में कोई काम करने को रहे अथवा न रहे।<sup>१</sup>



“पूरब के लोगवा निरमोहिया ए बाबा,  
 उलटी, पुलटी दुःख देई।  
 रतिया पिसावे जव, गेहुँआ ए बाबा,  
 दिनवा कतावे झीन सूत॥  
 सूतलि सेजिया उठावे ए बाबा,  
 आँगाना घरेले सब छूछ॥”

कहने की यह आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त गीत में वर्णित विभिन्न दुःखों को देनेवाले लोगों से अभिप्राय, प्रधानतया सास तथा पति से है।

सास के द्वारा बहू को दिये गये कष्टों का एक दूसरा चित्रण देखिये, जिसका वर्णन लोक कवि ने बड़े ही मार्मिक रीति से किया है। बहिन, ससुराल में उससे मिलने के लिए आये हुए अपने भाई से, अपने दारुण दुःखों का वर्णन करती हुई कहती है कि ए भइया ! मुझे यहाँ कई मन अन्न ओखली में कूटना पड़ता है। कई मन गेहूँ और चना जाँत में पीसना पड़ता है। कई मन चावल और आटा से भोजन बनाना पड़ता है। इसके बाद सास मुझसे एक ‘खाँची’ (एक छबड़ी भर) बर्तन मँजवाती है। इतना ही नहीं, वह घर से बाहर स्थित कुएँ से पानी भरने के लिए भेजती है, जो अत्यन्त गहरा है।<sup>१</sup>

“कई मन कूटी भइया, कई मन पीसीला हो ना।  
 भइया कई रे मन रीन्हीं ला रसोइया हो ना॥  
 सासु खाँची भर बासना मँजावेली हो ना।  
 सासु पनिया पाताल से भरावेली हो ना॥”

यह गीत क्या है, करुण रस का महाकाव्य है; जिसमें सास की दुष्टता, निर्दयता तथा कठोरता का बड़े ही मार्मिक शब्दों में हृदयस्पर्शी वर्णन किया गया है।

‘दरुनिया’ सास अपनी बहू के हृदय को, अपने व्यंग्य वाणों से ही केवल नहीं वेधती, बल्कि डण्डे से उसकी पीठ-पूजा भी करती है। छोटे-छोटे अपराधों के लिए भी बधू को सास की ताड़ना का पात्र बनना पड़ता है। किसी बधू ने अपनी सास से बिना पूछे ही भाड़ में चना भुना लिया है। दुष्टा ननद ने इस छोटी-सी बात की शिकायत अपनी माता से कर दी। इसका विषम परिणाम यह हुआ कि सास ने बहू को मुक्का और थप्पड़ मारना प्रारम्भ कर दिया, ननद गाली देने लगी और देवर ने भी कोई कर्म बाकी नहीं रखा।<sup>२</sup>

“सासु मारे हुडुका, ननदिया पारे गारी हो ना।  
 ए चदरिया के अलोतवा, देवरवा हमरो ना॥”

माता को अपनी पुत्री के सुख-दुःख की चिन्ता सदा बनी रहती है। अपनी पुत्री के ससुराल जाते हुए अपने पुत्र से वह कहती है कि मेरी समघिन से तुम जाकर कह देना कि मेरी पुत्री को न तो वह मारेगी और न गाली देगी। और प्रातःकाल में जब वह सुखपूर्वक सो रही होगी, तब उसे कच्ची नींद में मत जगायेगी। जब भाई ने समघिन से ये बातें कहीं, तब वह दुष्टा सास तड़प कर कहती है कि मैं उसे (बहू को) अवश्य अपने पैरों से मारूँगी, प्रातःकाल उसे गाली दूँगी और कच्ची नींद में जब वह सोती होगी, तभी मैं उसे जगा दूँगी।<sup>३</sup>

“लाते हम मरबों, पाराते देबों गारी।  
 काँच ही निदिये, हम जगइबो पूत बहुआरी॥”

दुष्टा सास की यह हेकड़ीबाजी उसके निर्मम तथा निर्दयी स्वभाव की परिचायिका है।

कोई परदेसी पति घर आने पर अपनी स्त्री को उदास, दुःखी तथा मलिन देखकर उससे इसका कारण पूछता है। तब

१. दुर्गाशंकर सिंह : भोजपुरी लोक गीत क० २०, पृ० ४४५।

२. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० २१६।

३. वही, पृ० १६०।



वह दुःखिया स्त्री उत्तर देती है कि तुम्हारी माता मुझे गाली देती तथा मारती है, ननद व्यंग्य वचन बोलती है और तुम्हारा छोटा भाई लाल छड़ी से मुझे पीटता है। इसी कारण मेरा मन दुःखी है।<sup>१</sup>

“भाई तोहरा प्रभु मारे, गरिआवे,  
बहिनी बोले बिरह बोल हो।  
लहुरा देवरवा मारे लाली छड़िया,  
ओही गुने बवन मलीन हो॥”

सास और पतोहू का झगड़ा प्रसिद्ध है। परन्तु एक विरहा में इसका जैसा सुन्दर चित्रण उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र नहीं। लोक कवि कहता है—सास और पतोहू में ऐसा घनघोर युद्ध हो रहा है कि दोनों एक दूसरे को मूसल से मार रही हैं। बूढ़ी सास—जिसका पति परलोक को चला गया है—अपनी गर्वमयी उक्ति में, जोश में आकर, कहती है कि अगर आज मेरा बूढ़ा पति (बूढ़ऊ) जीवित होता, तो मैं इस पतोहू को वनवास दे देती अर्थात् घर से निकाल कर बाहर कर देती:<sup>२</sup>

“सासु पतोहिया में लागल बा झगड़वा,  
कइली मुसरवा के मार।  
आजु पतोहिया के हम बन दिहतीं,  
जो जियत रहिते बूढ़ऊ हमार॥”

जब भोजपुरी ‘रांड’ सास ऐसा गर्व भरा, दुष्ट वचन कह सकती है, तब ‘एहवाती’ (सधवा) सास का क्या कहना है? इस विरहे में ‘दरुनिया सास’ का जो चित्रण है, वह यथार्थ है।

सास के अत्याचारों के कारण वधू अपने शरीर का श्रृंगार-प्रसाधन भी नहीं कर सकती। एक दूसरे विरहे में कोई दुःखिया पतोहू, बड़े ही करुण स्वर में कहती है कि जिस घर में हींग की मँहक भी नहीं है, वहाँ ‘जीरा’ की ‘बघार’ कहाँ मिलेगी। इसी प्रकार से जिस घर में कर्कशा सास विद्यमान है, दरुनिया सास जीवित है, उस घर में भला बहू का श्रृंगार कहाँ सम्भव है?<sup>३</sup>

“जाहि रे घरे हिंगुआ ना मँहके,  
जिवरा के कवन बघार।  
जाहि रे घरे सासु दरुनिया,  
बहुआ के कवन सिंगार॥”

दरुनिया सास अपनी बहू को केवल शारीरिक ताड़ना और मानसिक कष्ट ही प्रदान नहीं करती, बल्कि उसके चरित्र पर भी सन्देह प्रकट कर, उसे नैतिक दृष्टि से भी पतित सिद्ध करना चाहती है। गर्मी के दिन में कोई बहू पंखा झल रही थी। पंखे की शीतल वायु के कारण उसे नींद आ गयी। इतने में उसकी सास ने बहू के हाथ में पंखा देख लिया, जिसके कारण उसके क्रोध का पारा इतना ऊँचा चढ़ गया कि वह बहू के भाई और बाप को गाली देने लगी और उसके चरित्र को आशंका की दृष्टि से देखती हुई कहने लगी कि:—

“बेनिया डोलावत अइले सुख निदिया।  
आरे परि गहले सासु के नजरिया हो राम॥  
बाबा खाँऊ, भइया खाँऊ, तोहरी बहुअवा।  
आरे कवने रसिकवा बेनिया भेजेले हो राम॥”

किसी व्यक्ति का चरित्र-हनन करना, उसको प्राणदण्ड देने से भी अधिक पाप-पूर्ण समझा जाता है। भोजपुरी सास की सदा यह ‘टैक्टिस’ (कोशिश) रहती है कि वह अपने पुत्र की दृष्टि में, उसकी स्त्री को कुलटा या चरित्रहीन सिद्ध कर दे, जिससे पति उसका परित्याग कर दे। उपर्युक्त गीत में भी सास इस बात का प्रयत्न करती दिखाई पड़ती है।

१. दुर्गाशंकर सिंह : भो० लो० गी० क० २०, पृ० ४११।
२. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, भाग २, पृ० ३२६।
३. दुर्गाशंकर सिंह : भो० लो० गी० क० २०, पृ० २१६।



## (२) अनुच्छेद—ननद और भावज

सास और बहू के कटु सम्बन्धों के समान ही ननद और भावज का पारस्परिक सम्बन्ध भी बड़ा ही विषम और विषाक्त चित्रित किया गया है। जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में 'अहि-नकुलम्' (सर्प और नेवला) शाश्वतिक विरोध का उपमान है, उसी प्रकार ननद और भावज में सदा विरोध, झगड़ा पाया जाता है। जिस प्रकार माता, पुत्र के प्रेम और आदर की अधिकारिणी स्वयं को समझती है—जो उचित ही है—उसी प्रकार बहिन भी अपने को, भाई के अकृत्रिम प्रेम का पात्र मानती है। परन्तु भाई के विवाह के पश्चात्, भावज के घर में आने पर, यह स्थिति बिल्कुल बदल जाती है। भाई का प्रेम पुत्र के नाते अपनी माता में, भ्राता के नाते अपनी बहिन में और पति होने के कारण अपनी पत्नी में त्रिधा विभक्त हो जाता है। सम्भवतः प्रेम का यह विभाजन—जो अत्यन्त स्वाभाविक ही है—नवागत वधू के प्रति सास और ननद—दोनों के क्रोध का कारण बन जाता है। इसीलिए ननद और भावज में परस्पर विरोध पैदा हो जाता है। वधू घर में पदार्पण करते ही अपने पति के तन, मन और धन पर अधिकार जमाने का प्रयास करने लगती है और कुछ वर्षों में उसे अपने प्रयत्न में सफलता भी प्राप्त होती दिखाई पड़ने लगती है। यह बात सास के समान ही ननद के लिए भी असह्य हो उठती है। भावज ननद को दो दिनों का 'पाहुन' या 'अतिथि' समझकर, उसका तिरस्कार भी करने लगती है। यही दोनों के पारस्परिक मनोमालिन्य का मूल मनोवैज्ञानिक कारण है।

ननद और भावज के पारस्परिक विरोध ने पारम्परिक विवाद का रूप धारण कर लिया है। इन दोनों का झगड़ा कुछ नया नहीं, प्रत्युत प्राचीन काल से चला आ रहा है। संस्कृत के किसी कवि ने सास और ननद-भावज के आपसी झगड़े की बड़ी ही सुन्दर रीति से चित्रण किया है, जिससे इन तीनों का पारस्परिक विषम सम्बन्ध उजागर होता है। कोई पीड़िता पुत्रवधू अपनी सखी से कहती है कि "मेरी सास तो मेरी ओर सीधी नजर से कभी देखती ही नहीं और कभी देखती भी है, तो अपने तीक्ष्ण कटाक्ष और टेढ़ी भौहों को तान कर देखने का प्रयास करती है। मेरी यह 'कलमुँही' ननद प्रत्येक क्षण ऐसे कटुवचन बोलती है, जिससे मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है। वह हृदयभेदी कटु वाक्यों को बोलने में पटु है। इनके अतिरिक्त मेरे घर के जो अन्य प्राणी हैं, उनके चरित्र (दुश्चरित्र) का मैं क्या वर्णन करूँ? उनका स्मरण करते ही मेरा मन और शरीर काँपने लगता है। परन्तु हे सखी! तुम से सच कहती हूँ कि मेरा अपराध केवल इतना ही है कि मेरा प्रियतम मुझे अपनी प्रेम भरी, मधुर दृष्टि से देखता है। अर्थात् मुझसे प्रेम करता है और मुझे स्नेह प्रदान करता है।" श्लोक यह है:—

“श्वश्रूः पश्यति नैव, पश्यति यदि स्रूभंग वक्रक्षणा,  
मर्मच्छेदपटुः प्रतिक्षणमसौ श्रूते ननान्दा वचः।  
अन्यासामपि किं ब्रवीमि चरितं स्मृत्वा मनो वेपते;  
कान्तः स्निग्धदृशा विलोकयति मामेतावदागः सखि।”

दर्शनिया सास और दुष्टा ननद के चरित्र की इससे अधिक कटु आलोचना और क्या हो सकती है।

भोजपुरी लोक-गीतों में भावज और ननद का जो चित्रण किया गया है, वह बड़ा ही कटु, विषम और बीभत्स है। सास के समान ही ननद भी एक “हार्ड टास्क मास्टर” (कठोर शासक) के रूप में चित्रित की गयी है। जैतसार के एक गीत में कोई सास बहू को पीसने के लिए गेहूँ देती है, तो उसकी ननद उसके लिए एक बहुत बड़ी 'चंगेरी' (छबड़ी) लाकर रख देती है; जिसमें अधिक गेहूँ समा सके और भावज को इतना अधिक गेहूँ पीसने में कष्ट हो। परन्तु कोमल, सुकुमार बहू से इतना भारी जाँत चलता ही नहीं, पत्थर की मोटी चक्की (चकरी) डोलती ही नहीं। वह टस से मस होने का नाम ही नहीं लेती। अतः वह जाँत के घर में, हाथ से जाँत को पकड़ कर, बैठी रो रही है।

“सामु देली गोहुँआ हो रामा, ननदी चंगेरिया,  
गोतिनि बइरिनिया हो रामा; भेजेली जँतसरिया।  
जँतवा चलई हो रामा, चकरी न डोलई।  
जँतवा के धइले हो रामा, रोइला जँतसरिया॥”

ननद, भावज को शारीरिक कष्ट प्रदान करने के साथ ही, उसकी पीठ-पूजा करने की भी धमकी देती है। किसी भावज ने पुत्र होने पर अपनी ननद से नेग के रूप में कोई आभूषण देने का वादा किया था। परन्तु पुत्र-प्राप्ति के पश्चात् उसने आभू-



षण प्रदान करना अस्वीकार कर दिया। इस पर क्रुद्ध होकर ननद कहती है कि ए भावज ! जिस वस्तु को तुमने मुझे देने की प्रतिज्ञा की थी, उसे मुझे दे दो, अन्यथा मैं तुम्हारी पीठ पर सात 'लात' (पैर) मारूँगी और तुम्हारे गालों पर दो थप्पड़ जड़कर लाल कर दूँगी :—'

“भउजी ! जवन बोली बोललू ओसरवा, उहे बोल राखौ।  
मारबि सात लात पीठि पर, गाले दुइ थप्पड़ रे।  
भउजी ! कँगना के जोट पछेलवा, दूनो हम लेबों रे॥”

इस प्रकार भावज के प्रति ननद का व्यवहार बड़ा बुरा दिखलाया गया है।

जब नवविवाहिता बघू प्रथमवार अपनी ससुराल जाती है, तब उसकी ननद अपनी माता से कहती है कि यह हल जोतने-वाले किसान की लड़की है। अतः इसे रहने के लिए ए माँ, वह घर दो, जिसमें जानवरों के खाने के लिए भूसा रखा जाता है और जो 'भुसहुल' के नाम से प्रसिद्ध है। गीत की पंक्ति इस प्रकार है :—

“भइया तो न बोले पावे, ननद उठि बोलै,  
अम्मा एहि हरजोतवा के बिटिया दिहौ घर भुसहुल॥”

भोजपुरी ननद इतनी दुष्ट है कि भावज के पावन चरित्र पर किसी-न-किसी काज से सन्देह ही नहीं प्रकट करती, प्रत्युत अपने भाई से इसकी शिकायत भी करती है। भावज किसी कुएँ से पानी भरने के लिए गयी हुई है। वहाँ पर किसी देवता के मन्दिर में दर्शन करने के कारण घर लौटने में कुछ विलम्ब हो जाता है। बस, फिर क्या है ! ननद को भावज के चरित्र की शुद्धता में आशंका की भावना उत्पन्न हो जाती है। भावज के द्वारा विलम्ब के कारण की हजारों सफाई देने पर भी ननद अपने भाई से कहती है कि ए भाई, तुम्हारी ठकुराई (कुलीनता) में आग लग जाय। तुम्हारी स्त्री तो योगी (जोगी) के मन्दिर में जाकर देर तक घूमा करती है।<sup>१</sup>

#### भावज की निर्दयता

भावज और ननद के चरित्र का यदि तुलनात्मक अध्ययन किया जाय, तो भावज का पलड़ा कुछ भारी ही दिखाई पड़ता है। ननद तो अपने भाई से भावज के चरित्र की केवल शिकायत ही करती है, परन्तु भावज तो अपनी ननद को केवल विष की गाँठ खाने के लिए ही नहीं भेजती, बल्कि उसकी छाती में खंजर धुसेड़ कर उसकी जीवन-लीला ही समाप्त कर देती है। भावज की कठोरता, निर्दयता तथा निर्ममता के अनेक वर्णन लोकगीतों में पाये जाते हैं। इसकी हृदय-हीनता का यह दृश्य कितना निर्मम है।

कोई पुत्री विवाह के पश्चात् पिता के घर से बिदा होकर अपनी ससुराल जा रही है। पुत्री के वियोग से अत्यन्त दुःखी पिता के सतत अश्रुपात से गंगा में बाढ़ आ गयी है। पुत्री के विछोह से पीड़ित माता के रोने से सर्वत्र अँधेरा छा गया है। प्रिय बहिन के जाने से उदास भाई के रोने से उसकी धोती पैर तक भीग गयी है। माता, पिता, भाई सब बिलख-बिलखकर रो रहे हैं, परन्तु भावज की आँखों में आँसू का एक बूँद भी नहीं दिखाई पड़ता। गीत की पंक्तियाँ हैं :—<sup>२</sup>

“बाबा के रोवले गंगा बड़ि अइली,  
आमा के रोवले अनोर।  
भइया के रोवले चरन धोती भाँजे,  
भउजी नयनवों ना लोर॥”

१. पं० रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम गीत, पृष्ठ ६०।

२. आगि लागे भइया तोहरी ठकुरइया।

भउजी जाली जोगी के बिढ़ुलिया हो ना॥

—लेखक का निजी संग्रह।

३. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृष्ठ २७१ (द्वि० सं०)।



घर के प्राणियों में भावज अपनी ननद को भारस्वरूप समझती है। वह सोचती है कि यह व्यर्थ में बैठ कर घर का आटा गीला कर रही है। वह चाहती है कि इसका विवाह जल्दी से करके घर से इसे हटा दिया जाय। इसी दुष्ट भावना से प्रेरित होकर एक गीत में भावज अपने सास, ससुर और पति से अपनी ननद के लिए वर खोजने की प्रार्थना करती है।<sup>१</sup> विवाह हो जाने पर पुत्री के बिदा होते समय उसके माता और पिता वस्त्र, आभूषण बर्तन तथा गाय आदि तथा अन्य पदार्थ दहेज के रूप में देते हैं। परन्तु उसकी दुष्ट भावज अफीम का एक टुकड़ा उसे उपहार-रूप में प्रदान करती है। गीत है :<sup>२</sup>—

“आमा जे देली राम लहर पटोरवा,  
बाबा देले धेनु गाई।  
भइया जे देले राम चढ़न के घोड़वा,  
भऊजी महरवा के गाँठि॥”

भावज की बोली विष के समान कटु तथा कड़वी होती है। वह जब भी कोई वचन बोलती है, तो उसमें व्यंग्य भरा रहता है। जिस प्रकार ननद भावज के चरित्र पर सन्देह करती है, (जिसका उल्लेख पहिले किया जा चुका है) उसी प्रकार भावज भी ननद के चरित्र पर व्यर्थ का कलंक लगाती है। कुएँ से पानी भरने के लिए गयी ननद से भावज पूछती है कि तुम्हारा आँचल (साड़ी) मैला क्यों है? तुम कहाँ गयी हुई थी? भावज ननद के चरित्र पर ही सन्देह नहीं करती, प्रत्युत उसे भोजन-छाजन का भी कष्ट देती है। इसका दुःखद वर्णन इस सोहर के गीत में हुआ है:—

“कोठिला से कढ़लौं खुबुड़िया, त घामावा सुखावेलो हो,  
ए ननदी! खुबुड़ी के रोटिया पकवलों,  
बथुआ केरा सगिया नु हो।”

सावन मास में बहुएँ प्रायः अपने मायके जाना चाहती हैं। ससुराल के कष्टों से ऊबी हुई कोई बहू, मायके आने के लिए अपनी भावज के पास सन्देश भिजवाती है। परन्तु निर्दयी भावज, इस सन्देश के उत्तर में उसके पास अफीम की गाँठ भिजवा देती है और कहती है ‘मायके आने की अपेक्षा तुम इसे खाकर सो जाना।’<sup>३</sup>

“भऊजी जे पठवेले सनेसवा, माहरवा के गाँठि।  
खाई न रहेऊ मोरी ननदी तो सावन मास॥”

अपनी भावज की दुष्टता से परिचित कोई बहिन अपने भाई से ससुराल के अनेक विषम दुःखों का निवेदन करने के पश्चात् कहती है कि ए भाई! मेरे इन दुःखों को मेरी भावज से मत कहना। अन्यथा वह इन कष्टों को सुनकर प्रसन्न होगी और इन्हें बढ़ा-चढ़ाकर दूसरे लोगों से कहती फिरेगी।<sup>४</sup>

“इ दुःख जनि कहिहूँ, भइया भऊजी के अगवा हो ना।  
भऊजी दुई चारि घर कहि अइहै हो ना॥”

इसके अतिरिक्त भावज एक निर्दयी, निर्मम तथा खूंखार जीव के रूप में भी चित्रित की गयी है। उसकी क्रूरता तथा हिंसा-वृत्ति, स्त्रियोचित मर्यादा का उल्लंघन करती हुई दिखलाई पड़ती है। एक सोहर के गीत में भावज एक प्रतिक्रियावादी स्त्री के साथ ही हिंसात्मक जानवर के रूप में प्रदर्शित की गयी है।

पुत्र-जन्म के अवसर पर उसे प्रचुर सहायता न पहुँचाने के कारण भावज अपनी ननद को घमकी देती हुई कहती है कि यदि मैं प्रसव-कार्य से सकुशल निवृत्त हो गयी, तो अपनी ‘गोतिनी’ अर्थात् ‘दायादिनों’—घर की अन्य स्त्रियों—के बालों को खींच कर उन्हें मिट्टी में मिला दूँगी और तेज छूरी को अपनी ननद की छाती में घुसेड़ कर उसे मार डालूँगी।

१. लेखक का निजी संग्रह।
२. लेखक का निजी संग्रह।
३. लेखक का निजी संग्रह।
४. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृष्ठ ४४५।



“गोतिनी के झोंटा धड़ लसार देबों ललना।  
अबकी बरहिया के ऊपर होइबों,  
ननदी के छुरी लेके छाती फारबों ललना।”

क्रूरकर्मा तथा हिंसक इस भावज के कुकर्म पर कुछ टीका-टिप्पणी करना व्यर्थ है।  
इस प्रकार लोकगीतों में यदि ननद क्रूर तथा निर्मम दिखलायी गयी है, तो भावज क्रूरतर तथा हृदयहीन व्यक्ति होने के साथ ही हिंसक जीव के रूप में भी चित्रित की गयी है।

### (३) अनुच्छेद—देवर और भावज

प्राचीन भारत में देवर और भावज का सम्बन्ध अत्यन्त पवित्र तथा आदर्श रूप में चित्रित किया गया है। आदि कवि वाल्मीकि ने लिखा है कि दुष्ट रावण के द्वारा सीताहरण के पश्चात्, मार्ग में गिरे हुए उनके गहनों को देखकर रामचन्द्र ने जब लक्ष्मण से उन गहनों को पहिचानने के लिए कहा, तब लक्ष्मण ने जो उत्तर दिया, वह भारतीय संस्कृति के आदर्श का प्रतीक है। लक्ष्मण कहते हैं कि:—

“केयूरं नैव जानामि, नैव जानामि कुण्डले ।  
नूपुरावेव जानामि, नित्यं पादाभिबन्धनात्॥”

अर्थात्, मैं जगत्जननी सीता के द्वारा हाथ में पहिने जानेवाले आभूषण—केयूर को नहीं पहिचानता और न कानों में पहिने जानेवाले कुण्डलों को ही जानता हूँ। हाँ, मैं पैर में धारण किये जानेवाले नूपुरों को अवश्य पहिचानता हूँ; क्योंकि मैं प्रतिदिन सीता जी के चरणों को प्रणाम किया करता था। लक्ष्मण के कहने का आशय यह है कि मैंने कभी अपनी दृष्टि को ऊपर उठाकर, सीता के शरीर के ऊपरी भाग को नहीं देखा। नित्यप्रति उनके पैरों को प्रणाम करने के कारण, मैं केवल नूपुरों को ही पहिचान सकता हूँ।

एक अन्य प्रसंग के अवसर पर आदि कवि ने भावज की समता माता से की है। उसे माता के समान ही आदर की अधिकारिणी माना है। पिता के आदेश से भगवान् रामचन्द्र जंगल को जाने के लिए तैयार हैं। लक्ष्मण भी उनके साथ जाने के लिए उद्यत हैं। अतः जब लक्ष्मण अपनी पूजनीया माता से इसके लिए आज्ञा माँगने के लिए जाते हैं, तब सुमित्रा उनसे कहती हैं कि:—

“रामं दशरथं विद्धि, मां विद्धि जनकात्मजाम् ।  
अयोध्यामटीं विद्धि, गच्छ तात ! यथासुखम्॥”

अर्थात्, ए बेटा ! तुम अपने ज्येष्ठ भ्राता—राम को पिता के तुल्य—दशरथ—समझना। और जानकी को मेरे (सुमित्रा) समान अपनी माता मानना। जंगल को अयोध्या के समान जानना। तुम सुखपूर्वक बन को जावो।

वाल्मीकि ने इस श्लोक में भावज को माता का स्थान प्रदान किया है और जननी के समान सन्मान प्रदान करने का संकेत किया है।

महाभारत में नियोग प्रथा का प्रचुर उल्लेख प्राप्त होता है। मनु ने तो स्पष्ट ही लिखा है कि पति की मृत्यु पर नियोग के द्वारा देवर को भावज से विवाह कर लेना चाहिए।<sup>१</sup> प्राचीन ग्रन्थों, धर्मशास्त्रों तथा निबन्धों से इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।<sup>२</sup>

१. यस्याः स्त्रियेत कन्यायाः, वाचा सत्ये कृते पतिः।

तामनेन विधानेन निजो विन्देत् देवरः॥

—मनुस्मृति ६।६६।

२. नियोग प्रथा के विशेष के लिए देखिये डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : हिन्दू विवाह की उत्पत्ति और विकास, पृष्ठ ३२४-३४२।



भोजपुरी लोकगीतों में देवर और भावज का जो सम्बन्ध चित्रित किया गया है, वह प्राचीन भारतीय आदर्श के अनुरूप उपलब्ध नहीं होता। इन गीतों में कहीं तो देवर और भावज के अनुचित प्रेम-प्रस्ताव का प्रसंग प्राप्त होता है, तो कहीं दुष्ट व्यवहार का चित्रण है। प्राचीनकाल में जब भावज का स्थान माता के समान आदर का पात्र था, तब लोकगीतों में भावज के प्राचीन उच्च तथा सन्मानित स्थान का अवमूल्यन क्यों हो गया, इसके मूल कारण पर कुछ विचार करना अनुचित न होगा।

### देवर शब्द की व्युत्पत्ति

‘देवर’ शब्द की निरुक्ति ‘द्वितीयो वरः’ (दूसरा पति) शब्द से मानी जाती है। इसका अर्थ यह है कि देवर द्वितीय पति के समान है। प्राचीन धर्मशास्त्रकारों ने नियोग की प्रथा को समुचित बतलाया था। उनके मतानुसार किसी स्त्री के पति की मृत्यु हो जाने के पश्चात्, उस व्यक्ति का छोटा भाई अपनी विधवा भावज से नियोग की प्रथा के अनुसार विवाह कर, उससे सन्तान की उत्पत्ति कर सकता था। यह विधान शास्त्रसम्मत माना जाता था। भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग—गुप्तकाल—में भी इस प्रकार के अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं।<sup>१</sup>

### नियोग प्रथा का ह्रास

ऐसा ज्ञात होता है कि मनु आदि धर्मशास्त्रकारों ने जिन विशेष परिस्थितियों में नियोग के लिए अनुमति प्रदान की थी, उसमें कालक्रम के अनुसार परिवर्तन होने लगा। उन विशेष परिस्थितियों—जैसे किसी सन्तान का अभाव—के अभाव में भी देवों ने अपनी विधवा भातृजाया—भावज—से काम-वासना से प्रेरित होकर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार जो नियोग की प्रथा एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए विहित की गयी थी, उसका दुरुपयोग होने लगा। कुछ लोग अपनी भोग-वासना की पूर्ति के लिए अपने बड़े भाई की स्त्री से विवाह करने लगे। सम्भवतः कुछ काल के पश्चात् इस प्रथा में इतनी अधिक बुराई आगयी कि बाद के धर्मशास्त्रियों को इस प्रथा का निषेध करना पड़ा। कलियुग में जिन पाँच वस्तुओं के विधान का निषेध किया गया है, उसमें नियोग की भी गणना की गयी है।<sup>२</sup> यद्यपि इसके शास्त्र-विरुद्ध होने पर भी कुछ तथाकथित निम्नवर्ग की जातियों में इसकी प्रथा आज भी विद्यमान है; परन्तु सवर्ण हिन्दू उच्चवर्ग में इस प्रथा का अब नितान्त अभाव पाया जाता है तथा यह निन्दनीय समझा जाने लगा है।

### देवर की दुश्चरित्रता

इसी नियोग प्रथा की पृष्ठभूमि में, इसके अभाव हो जाने पर भी, आज भी भोजपुरी लोकगीतों में, देवर और भावज के दूषित प्रेम-सम्बन्ध की झाँकी देखने को प्राप्त होती है। किसी स्त्री का पति जीविकोपार्जन के लिए परदेस चला गया है और अनेक वर्षों तक घर लौट कर नहीं आता। इस परिस्थिति का लाभ उठाने के लिए कोई देवर, अपनी भावज से कहता है कि जब तक मेरा बड़ा भाई परदेस से लौटकर नहीं आता, तब तक तुम मुझसे प्रेम करो:—<sup>३</sup>

“जब तक भउजी, भइया हमार अइहें हो।

कि तब लागि ना, भउजी जोर ना सनेहिया।

कि तब लागि ना।”

एक दूसरे गीत में कोई देवर अपनी भावज से कहता है कि मेरा भाई तो आजकल परदेस गया हुआ है। अतः ए भावज ! तुम मेरे लिए सेज सजावो और उस सेज पर फूलों को बिखेर दो। तुम मेरी सेवा (काम-वासना की तृप्ति) करके अपने पति-प्रवास के दुःखों को भूल जावो।<sup>४</sup>

“हमरेहि सेजिया बिछावहु, फूल छितरावहु हो।

भऊजी ! हमरेहि लागहू टहलिया, त दुःख बिसरावहु हो॥”

१. डॉ० वासुदेव उपाध्याय : गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग १।

२. संन्यासं च, नियोगं च, कलौ पंच विवर्जयेत्।

३. लेखक का निजी संग्रह।

४. दुर्गाशंकर सिंह : भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस, पृष्ठ ४१।



यह देवर कितना दुष्ट तथा कामी है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है।

हंसराज नामक कोई देवर घोड़े पर चढ़ा हुआ कहीं से आ रहा है। उसकी भावज रास्ते के किसी कुएँ पर पानी भर रही है। देवर को देखकर बहुत प्रसन्न होती है और पानी से भरा घड़ा सिर पर उठाने के लिए कहती है। कामासक्त हंसराज, एक हाथ से तो घड़ा उठाता है और दूसरे हाथ से अपनी भावज के आँचल को पकड़कर उसे घर जाने से रोकता है:—

“एक हाथ देवर घड़ला अलगावै,  
कि दूसर हाथे ना, धइ अँचरा बिलमावै।  
कि दूसर हाथे ना॥”

एक अन्य गीत में ऐसा वर्णन मिलता है कि कोई मल्लाह की स्त्री—मल्लाहिन—अपने देवर से विवाह कर लेती है। परन्तु जब उसे अपने पूर्व (प्रथम) पति से उत्पन्न बालक की सुधि आती है, तब वह रोने लगती है। जब देवर उसके रोने का कारण पूछता है, तब वह पुत्र-वत्सला-माता उत्तर देती है कि न तो मुझे अपने माता-पिता के सुख का स्मरण हो रहा है और न प्रथम पति की ही याद आती है; परन्तु पूर्व पति से उत्पन्न मेरी गोदी का छोटा बालक, घर पर रोता होगा, उसी का स्मरण कर मेरी आँखों से आँसू गिर रहे हैं।<sup>१</sup>

देवर और भावज में आदर्श प्रेम

परन्तु अनेक गीतों में देवर और भावज का सम्बन्ध मधुर तथा उचित दिखाई पड़ता है। देवर भावज के सहायक के रूप में चित्रित किया गया है। एक गीत में कोई विरहिणी स्त्री, अपने देवर को बुलाकर अपने पति के पास भेजने के लिए उससे पत्र लिखवाती है:—

“देवरा के बढिहे कयथवा नु ए राम।  
चिठिया जे लिखिहें, समझाइ के नु ए राम॥”

गाँवों में निरक्षर व्यक्तियों के लिए चिट्ठी (पत्र) लिखने का काम प्रायः कायस्थ जाति के लोग किया करते थे। इसी कारण उपर्युक्त गीत में देवर को कायस्थ की भूमिका प्रदान की गयी है।

प्रिय देवर अपनी भावज की विरह-वेदना को पत्र में अंकित करके, उसे स्वयं लेकर अपने भाई के पास जाता है और उससे घर लौट चलने की प्रार्थना करता है। भाई अपने अनुज के आग्रह को मानकर घर लौट आता है, जिससे उसकी स्त्री का विरहजन्य समस्त कष्ट दूर हो जाता है। गीत की पंक्तियाँ हैं:—<sup>२</sup>

“मोरी रानी लहुरा देवरवा के हाथे,  
जो पाती लिखि भेजेउ हो॥”

भावज इस प्रकार देवर से प्रार्थना करती है:—<sup>३</sup>

“देवरा हो मोरे देवरा, आरे तू मोरे देवरा हो।  
मोरा देवरा, जो हरि होंय अकेले, तो बाँचि सुनायउ हो॥”

इस प्रकार कुछ गीतों में देवर केवल सहायक के रूप में ही नहीं, बल्कि पत्रवाहक की भूमिका में भी चित्रित किया गया है।

१. “नाहीं मन परे देवर; भाई-बाप सुखवा हो;

नाहीं मन परे देवर; पहिला बिअहुवा।

एक त जे मन परे गोदी के बालकवा हो;

रोवत होइहैं घरवा गोदी के बालकवा हो॥”

—दुर्गाशंकर सिंह : भोजपुरी लोकगीत में करुण रस, पृष्ठ १७४।

२. रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम गीत, पृष्ठ ३२।

३. वही।



## (४) अनुच्छेद—भसुर और भवहि

भोजपुरी भाषा में पति के बड़े भाई को 'भसुर' कहा जाता है और छोटे भाई (अनुज) की पत्नी 'भवहि' के नाम से प्रसिद्ध है। भोजपुरी समाज में भसुर और भवहि का सम्बन्ध बड़ा ही पवित्र माना जाता है। भसुर के द्वारा अपनी भवहि को स्पर्श करने की तो कथा ही दूर रही, उसके ऊपर दृष्टिपात करना भी उसके लिए उचित नहीं समझा जाता। पति के अग्रज होने के कारण भसुर पूज्य तथा आदरणीय व्यक्ति माना जाता है। अतः उसके छोटे भाई की पत्नी का उसके समक्ष आना, उससे वार्तालाप करना अथवा उसके शरीर को स्पर्श करना अत्यन्त निषिद्ध है। हिन्दू-समाज में ज्येष्ठ भ्राता पिता तुल्य है। चूँकि पर्दा की कुत्सित प्रथा के कारण भसुर का अपनी पुत्रवधू से वार्तालाप करना वर्जित है, सम्भवतः इसीलिए भसुर के लिए भी अपनी भवहि से बोलना निषिद्ध है। हाँ, भसुर अपनी भवहि के अंगों का केवल एक अवसर पर ही स्पर्श कर सकता है और वह अवसर है विवाह के समय 'कन्या निरीक्षण'। उस समय वैवाहिक मण्डप में, भसुर भावी वधू के लिए लाये गये आभूषणों को लेकर भवहि के अंगों से स्पर्श कराकर रख देता है। यही उसका भवहि के अंगों का प्रथम तथा अन्तिम स्पर्श है।

## भसुर की कामुकता

भोजपुरी लोकगीतों में भसुर और भवहि का जो सम्बन्ध चित्रित किया गया है, वह अत्यन्त अशोभनीय और अनुचित है। उसे किसी भी प्रकार शालीन तथा सुन्दर नहीं कहा जा सकता। प्रत्युत यह सम्बन्ध कामुक, कुत्सित और गहिर्त है।

इन्द्रसिंह नामक कोई पुरुष टिकुली नामक अपनी भवहि के रूप-सौन्दर्य पर मोहित हो जाता है। वह अपने छोटे भाई को जंगल में ले जाकर जान से मार डालता है। वह घर लौटकर अपनी भवहि (टिकुली) से अनुचित प्रस्ताव करता है, परन्तु टिकुली सती और साध्वी होने के साथ ही बहुत चतुर स्त्री है। वह अपने भसुर को प्रेम का झूठा आश्वासन देती है और अपने पति की लाश को जला देने की उससे प्रार्थना करती है। कामुक इन्द्रसिंह उसकी बातों पर विश्वास करके, जब भाई के शव को जलाने के लिए आग लाने के लिए जाता है, इतने में ही वह अपने पति के शव के साथ जलकर सती हो जाती है। लौटकर आने पर नीच इन्द्रसिंह यह दृश्य देखकर हाथ मलता हुआ पछताता रह जाता है। गीत है—<sup>१</sup>

“जब लगि भसुर अगिया ले आवे गइलनि रे ना।  
रामा फुफुतिनि अगिया धधकवली हो राम॥  
रामा दुनो रे बेकति जरिछरवा भइले हो ना।  
जहँ हम जनिती 'टिकुली' मोरि बुधि छोरबू रे ना।  
ए रामा डँड़िया पइसि सतवा नसिती हो राम॥”

इस गीत की अन्तिम दो पंक्तियों में जहाँ भसुर की कामुकता, निर्दयता और नीचता की पराकाष्ठा दिखलाई पड़ती है, वहाँ इसके साथ ही 'टिकुली' नामक भवहि का दिव्य सतीत्व और आदर्श चरित्र चित्रित किया गया है।

एक अन्य भोजपुरी लोकगीत में कोई भसुर अपने अनुज की स्त्री से छेड़खानी करता है। भवहि पानी भरने के लिए कुएँ पर गयी हुई है। भसुर उसका रास्ता रोक लेता है। जब वह उससे मार्ग देने के लिए कहती है और निवेदन करती है कि मेरी चुनरी भीग रही है, अतः तुम मेरे रास्ते से हट जाओ, तब वह कामुक भसुर उसे पहिने के लिए अपनी चादर देता है। परन्तु वह सती, मनस्विनी 'जिरवा' नामक स्त्री (भवहि) उसकी चादर को लेने से अस्वीकार करती है और कहती है कि रे दुष्ट! मैं तेरी चादर में आग लगा दूंगी। मेरे लिए यह भोगी चुनरी ही अच्छी है। उस मनस्विनी 'जिरवा' की ये पंक्तियाँ कितनी ओजपूर्ण हैं।<sup>२</sup>

“पानी के पियासल जिरवा, गइली पनिघटवा रे।  
घर के भसुरवा, बटिया रोके ले नु रे जी॥१॥

१. दुर्गाशंकर सिंह : भोजपुरी लोकगीत में करुण रस, पृष्ठ ८५।

२. वही, पृष्ठ १००।



छोड़, छोड़ भसुरा रे! मोर पनिघटवा रे।  
 बरसेला पनिया भीजेला मोर चुनरिया नु रे जी॥२॥  
 जउं तोरा 'जिरवा' रे भीजेले चुनरिया रे;  
 हमरो दुपटवा ओढ़ि लेवहु रे जी॥३॥  
 तोहरा दुपटवा भसुर! आगि लगाइबि,  
 हमरी चुनरिया सीतल बयरिया नु रे जी॥४॥

रोपनी के एक गीत में भसुर की दुष्टता, निर्दयता तथा कामुकता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई दिखलाई पड़ती है। कोई भवहि चित्रकला में प्रवीण है। उसने घर की भीत पर जो सुन्दर चित्रकारी की है, उसे देखकर उसका भसुर उसके प्रेम-जाल में फँस जाता है। वह इतना मूर्ख है कि अपनी इस काम-वासना को अपनी माता के सामने प्रकट कर देता है। इस पर माता निषेध करती हुई उससे कहती है कि मेरी 'लहुरी पतोहिया' (छोटी पुत्र-वधू) तुम्हारी 'भवहि' लगेगी। वह 'तिलंगाना' नामक मेरे पुत्र की स्त्री है। परन्तु यह दुष्ट ज्येष्ठ पुत्र अपनी माता के निषेध करने से अपनी नीच वासना की पूर्ति न देखकर, अपने छोट भाई तिलंगाना को छलपूर्वक जंगल में ले जाता है और वहाँ विश्वासघात करके, उसकी निर्मम हत्या कर देता है। फिर भी 'सतवन्ती' वह विधवा तथा दुःखी भवहि अपने भसुर के गृहित काम-प्रस्ताव का अत्यन्त तिरस्कार करती हुई, अपने मृत पति के शव के साथ जलकर सती होकर दिव्य लोक को प्राप्त कर लेती है। इधर कामपीडित, पशु-तुल्य भसुर पछताता ही रह जाता है।<sup>१</sup>

#### (५) अनुच्छेद—ससुर और पतोहू

ससुर शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'श्वसुर' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ होता है किसी स्त्री के पति का पिता। इसी प्रकार 'पतोहू' शब्द संस्कृत 'पुत्रवधू' का अपभ्रंश रूप है, जिसका आशय है पुत्र की स्त्री। भोजपुरी समाज में ससुर पिता के समान सन्मान का अधिकारी माना जाता है और पतोहू बेटी के समान समझी जाती है।

लोकगीतों में पिता और पुत्र के बीच में बड़ा ही मधुर सम्बन्ध पाया जाता है। अतः स्वाभाविक रूप से ससुर तथा पुत्र की वधू में भी मधुर तथा सुन्दर सम्बन्ध होना चाहिए था। परन्तु लोकगीतों में इन सम्बन्धों का जो चित्रण हुआ है, वह अनुचित और असुन्दर है।

एक गीत में ससुर और पतोहू के बीच में अनुचित प्रेम-सम्बन्ध का वर्णन उपलब्ध होता है। पतोहू लोक-लज्जा का परित्याग कर, अपने ससुर से, गर्मी में प्रयोग करने के लिए पंखा माँग रही है। एक दूसरे गीत में पुत्रवधू की बाहों पर गोदे गये गोदना को, ससुर के द्वारा, कामुकताभरी दृष्टि से देखने का उल्लेख पाया जाता है। ससुर जब भोजन करने के लिए घर में आता है, तब वह वासनापूर्ण दृष्टि से अपनी पतोहू के गोदने को ही देखता रहता है। भोजन के काज से वह अपनी पुत्रवधू की सुन्दरता को ही निहारता है। चतुर पतोहू ससुर के कुत्सित आशय को ताड़ जाती है और कहने लगती है कि यदि मैं यह जानती कि ससुर मेरे गोदना को देखकर मुझपर अनुरक्त हो जायेगा, तो मैं गोदना ही नहीं गोदवाती। गीत है:—<sup>२</sup>

“ससु दाँत के बतीसी, बहू का बाँही गोदना।  
 ससुर जँवना ना जेवँले, नीहारे मोरे गोदना॥  
 जाहु हम जनितीं ससुर, नीहरबस तू गोदना।  
 ससुर नाहीं रे गोदइतीं, आपन बाँही गोदना॥”

१. रामा जो हम होइतीं सतवन्ती हो ना।

मोरे अँचरा भभकि उठे अगिया हो ना।

बरे लगली लकड़ी, भसम भइली छोटका हो ना।

रामा जेठवा मले दूनो हाथावा हो ना॥

दुर्गाशंकर सिंह—भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस, पृष्ठ ३४६।

२. डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत, भाग १ पृष्ठ, ३३५।



इसी प्रकार एक झूमर के गीत में, पानी में खोई हुई पतोह की झूलनी को उसका बूढ़ा ससुर बड़ी तन्मयता के साथ खोजता हुआ चित्रित किया गया है। इस कार्य में उसकी कर्तव्य-परायणता का अंश कम और कामुक भावना का आशय ही प्रबल पाया जाता है।

### (६) अनुच्छेद—सौत और सौत

#### सौतों का पारस्परिक सम्बन्ध

प्राचीन भारत में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। एक ही पुरुष अनेक पत्नियों से विवाह कर सकता था, जो आपस में सह-पत्नी (साथ की स्त्री) कहलाती थीं। 'सपत्नी' शब्द की निरुक्ति इसी 'सह-पत्नी' शब्द से ज्ञात होती है। भोजपुरी में सपत्नी को 'सवति' या 'सौत' कहते हैं, जो सपत्नी शब्द का ही अपभ्रंश रूप है। एक ही पति की समान पत्नियाँ होने के कारण, इन स्त्रियों में आपस में प्रेम-भाव तथा सौहार्द की भावना रहनी चाहिए; परन्तु पति के द्वारा सभी पत्नियों के साथ एक समान व्यवहार न रखने के कारण, तथा पति के प्रेम की समान रूप से अधिकारिणी न होने के कारण, इन सपत्नियों में द्वेष की चरम सीमा का उल्लेख पाया जाता है। यह सीमा यहाँ तक पहुँच गयी है कि आपस में सपत्नियों का कलह—जिसे भोजपुरी में 'सौतियाडाह' कहते हैं—द्वेष का उपमान बन गया है।

लोकगीतों में इस सौतियाडाह का इतना कटु, भीषण, वीभत्स तथा कलहपूर्ण एवं भयंकर रूप का वर्णन किया गया है, जो लेखनी से परे है। भोजपुरी सौतों में केवल वाक्-युद्ध ही नहीं होता, बल्कि झोंटा-झोंटी तथा मार-पीट की भी नौबत आये दिन आयी ही रहती है।

भोजपुरी में एक कहावत प्रसिद्ध है कि "लकड़ी या चून के भी सवति ना भावेले" अर्थात् रुधिर और मांस से निर्मित मानव सौत की तो कथा ही दूर रही, लकड़ी अथवा आटा जैसे निर्जीव पदार्थ की बनी हुई सौत भी अच्छी नहीं लगती। इसी लोकोक्ति से कुछ अनुमान किया जा सकता है कि सपत्नी-द्वेष कितना भयंकर होता है।

प्रथम स्त्री की मृत्यु के पश्चात् यदि पुरुष किसी दूसरी स्त्री से विवाह कर लेता है, तब प्रथम स्त्री की प्रेतात्मा उसकी द्वितीय पत्नी के शरीर पर आकर उसे सताती है। उसे अनेक प्रकार का कष्ट देती है। इस प्रकार भोजपुरी 'सवति' अपनी जीवितावस्था में तो आपस में भयंकर झगड़ा करती ही है, मर जाने पर भी अपनी सौत का पीछा नहीं छोड़ती और स्वप्न में अपने विकट रूप का प्रदर्शन करती हुई अपनी जीवित सौत को अनेक प्रकार का दुःख पहुँचाती है। इसीलिए भोजपुरी प्रदेश में जब कोई पुरुष अपना दूसरा विवाह करने के लिए जाता है, तब अपनी प्रथम मृत पत्नी की सुवर्णमयी छोटी-सी प्रतिमा बनाकर ले जाता है। प्रथम पत्नी (सौत) की दुष्ट प्रेतात्मा के दुःखों से त्राण पाने के लिए द्वितीय पत्नी के लिए उस प्रतिमा की पूजा करना अत्यन्त आवश्यक है। कहने का आशय यह है कि भोजपुरी सौत अपने जीवन में तथा मृत्यु के बाद भी अपनी जीवित 'सवति' का पिण्ड नहीं छोड़ती।

#### सौत का भय

कोई पति अपनी स्त्री से 'मधुपीपरि' (एक प्रकार का कटु पेय द्रव) पीने के लिए कहता है। परन्तु पत्नी उसके प्रस्ताव को, उसके दूषित परिणाम के कारण, अस्वीकार करती है। इस छोटे-से अपराध के कारण पति अपना दूसरा विवाह कर लेने की, उसे घमकी देता है। इस घमकी से भयभीत होकर उसकी स्त्री कहती है कि कटु होने पर भी मैं 'मधुपीपरि' भले ही पी लूँ, परन्तु सौत का दुःख ('जार' या 'झार') मुझसे नहीं सहा जायेगा।

"सवति के जार हम ना सहबि,  
पियबि मधु पीपरि हो।"

#### परदेस से सौत को ले आना

कोई पुरुष जीविकोपार्जन के लिए परदेस गया हुआ है। जहाँ वह लगातार बारह वर्षों तक नौकरी करता रहता है। इस बीच वह अपनी पत्नी के पास न तो खाने के लिए रुपया भेजता है और न अपने कुशल वृत्तान्त का पत्र। उसकी पति-परायणा स्त्री इतने दीर्घ वर्षों तक उसके आगमन की प्रतीक्षा करती रहती है। परन्तु अन्त में जब वह घर लौटकर आता है, तब वह अपने साथ एक सौत को भी लिये आता है। इस पर उसकी विरहिणी तथा दुःखिया स्त्री कहती है कि "तुम मेरे हृदय के दुःखों को क्या समझ सकते हो? आज तुम बारह वर्षों के बाद तो घर पर लौट कर आये हो और उस पर भी मानों मेरी छाती पर कोदो दलने के लिए एक सवति (सौत) भी लेते आये हो।"



“आरे बारहो बरिस पर आना,  
सवतिन लिये साथ  
दिल का दरद ना जाना।”

एक झूमर के गीत में सौत की कटु वाणी का उल्लेख हुआ है। कोई स्त्री अपने पति से पूछती है कि तुम्हारी आँखें मेरे ऊपर लाल क्यों हो रही हैं? तुम जो परदेश से मेरी सौत लाये हो, यह घटना मेरे कलेजे को बेध रही है और तिसके ऊपर तुम्हारा क्रोध। इससे मेरा हृदय काँप रहा है। ऐसा मैंने कौन-सा अपराध किया है, जिसके कारण तुम मुझसे इतने नाराज हो?

“कदन गुनहिए चुकलों ए बालम;  
तोर नयना रतनार।  
सधती के बतिया करेजवा में साले;  
काँपेला जियरा हमार॥”

बहुविवाह की दूषित प्रथा के कारण, पति को अनेक विवाह करने का स्वच्छन्द अधिकार प्राप्त है। भोजपुरी प्रदेश के लोग नौकरी की खोज में ‘पुरुब देस’ की ओर जाते हैं। वहाँ की किसी सुन्दरी के प्रेम-जाल में फँसकर वे उससे विवाह कर उस कुलटा को अपने घर लेकर आते हैं। ऐसे ही किसी पति से उसकी पहिली पाणिगृहीती भार्या कहती है कि “ए पति! यदि मैं ‘बाँझ’ (बन्ध्या) होती, अथवा लँगड़ी-लूली होती, या कोयल के समान काली होती, तब तो किसी अर्थ में तुम्हारे द्वारा इस सौत का लाना कुछ अंश में उचित कहा जा सकता था। परन्तु मैं तो पुत्रवती हूँ और इसके अतिरिक्त सर्वाङ्ग सुन्दरी हूँ, फिर तुम यह सौत क्यों ले आये? तुम तो मुझे अपने गले के हार के समान मानते थे, फिर तुमने यह अनुचित आचरण क्यों किया?” इस गीत में किसी रूप-गविता स्त्री की, सौत के आने पर, कितनी मार्मिक वेदना अन्तर्निहित है, जिसका वर्णन करना कठिन है। अपने पति को उसने जो उपालम्भ दिया है, वह कितना हृदय-स्पर्शी है।

वंशी में सपत्नी-साध—

सौत की कल्पनामात्र से ही स्त्रियों को इतनी चिढ़ (द्वेष) हो जाती है कि पति का मनोविनोद करनेवाली, परन्तु उसके अधर को चूमनेवाली (स्पर्श करनेवाली) वंशी भी उन्हें सौत के प्रतीक के रूप में ही दिखाई पड़ने लगती है। कोई पुरुष पलंग पर बैठकर वंशी बजा रहा है। इतने में उसकी स्त्री उससे आकर कहती है कि मैं सौत बनकर आपके वंशी-वादन को सुनूँगी। वह गोपियों की भाँति वंशी को भी अपनी सौत समझ रही है।

“राजा के बंसी सेजरिया पर बाजे,  
सवतिया हो के सुनबि राउर बंसी।”

झूमर के एक गीत में अपनी सौत की सत्ता के कारण किसी स्त्री को रात में नींद नहीं आती। उसकी सौत उसके पति के साथ सो रही है, अतः चिन्ता एवं दुःख के कारण उसकी नींद हराम हो गयी है।<sup>१</sup>

१. “मैं तो तोरे गले का हार रजवा,  
काहे को लायो सवतिया।  
जाहु हम रहितैं बाँझ बझिनिया;  
तब आइति सवतिनिया॥१॥  
जब हम रहितैं काली कोईलिया;  
तब आइति सवतिनिया।  
रजवा हमरो सोटा अइसन बेह;  
काहे को लायो सवतिया॥२॥”

डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत, भाग १, पृष्ठ ३०३।

२. लेखक का निजी संग्रह।

१०



“लागति नाहीं निनिया ए राजा जी।  
 बायें सूतलि बा सबतिया ए राजा जी।  
 लागति नाहीं निनिया ए राजा जी॥”

### सौतियाडाह का उग्र रूप

सौतियाडाह कभी-कभी उग्र रूप भी धारण कर लेता है। जब वाणी का व्यापार समाप्त हो जाता है अथवा उससे जब काम नहीं चलता, तब हाथा-पायी तथा झोंटा-झोंटी की भी नौबत आ जाती है। निरवाही के एक गीत में दो सौतों के आपस में झोंटा-झोंटी करने—अर्थात् एक-दूसरे के बालों को पकड़कर खींचने का वर्णन कितना सजीव बन पड़ा है। इन दोनों के भयंकर संग्राम को देखकर इनका अभागा पति द्वार पर बैठकर रो रहा है।<sup>१</sup>

“उढ़री, बियही दूनो करे, झोंटा झोंटवलि हो ना।  
 रामा राजा बइठि डेहरी पर झंखे हो ना॥”

सौत का ‘जार’ (द्वेष) इतना असह्य हो उठता है कि कभी-कभी स्त्रियाँ आत्महत्या तक कर डालती हैं। पति के साथ सोई हुई अपनी सौत को देखकर कोई स्त्री सास से आत्महत्या करने के लिए कटारी और छूरी माँग रही है, क्योंकि सपत्नी का द्वेष उसके लिए असह्य हो रहा है।<sup>२</sup>

“देहु ना सासु हो छुरिया कटरिया।  
 कि हति हो घलबों ना हम आपन सबतिया॥”

इस प्रकार भोजपुरी लोकगीतों में सौतों का आपसी सम्बन्ध अत्यन्त कटु, विषाक्त, भयंकर और आत्मघाती पाया जाता है। भोजपुरी परिवार के सदस्यों में जितना कटु और विषम सम्बन्ध इन सपत्नियों में उपलब्ध होता है, उतना अन्य किसी में नहीं। इसीलिए किसी विषम तथा अत्यन्त कटु सम्बन्ध की उपमा ‘सौतियाडाह’ से दी जाती है। भोजपुरी ‘सवति’ एक ऐसी निरीह, दुःखिया और उपेक्षित प्राणी है, जिसका उपमान संसार में खोज पाना अत्यन्त कठिन है। परन्तु जब उसका कष्ट उपेक्षा तथा अपमान की पराकाष्ठा की कोटि पर पहुँच जाता है, तब वह भयंकर और खूँखार प्राणी हो जाती है और वह आत्महत्या अथवा सौत की हत्या पर भी उतारू हो जाती है।

लोकगीतों में सौतियाडाह का जो चित्रण किया गया है, वह सजीव, सटीक और नितान्त सत्य है। इसकी पुष्टि आज भी गाँवों में होनेवाली ‘आत्महत्या’ से की जा सकती है। ‘सौतियाडाह’ वह विष है, जिसका परिणाम बड़ा ही भयंकर होता है।

### (३) परिच्छेद दिव्य की प्रथा

प्राचीन भारत में दिव्य की प्रथा समधिक रूप में प्रचलित थी। चोरी करना, ऋण लेना, सीमा-विवाद-निर्णय, भूमि-हरण तथा पशुहरण आदि मामलों में अपराधी का निर्णय करने के लिए ‘दिव्य’ का प्रयोग किया जाता था। जब अपराधी का पता लगाने में साक्ष्य, लिखित प्रमाण आदि साधारण साधन असफल हो जाते थे, तब असाधारण और अलौकिक साधनों से काम लिया जाता था। इन साधनों के अलौकिक होने के कारण ही इस प्रथा को ‘दिव्य’ कहा जाता था।

भोजपुरी लोकगीतों में ‘दिव्य’ के लिए ‘किरिया लेना’ शब्द का प्रयोग किया गया है। विष्णुधर्मसूत्र में अलौकिक प्रमाण को ‘दैविकी क्रिया’ कहा गया है।<sup>३</sup> अतः ‘किरिया लेना’ शब्द इसी ‘दैविकी क्रिया’ का अपभ्रंश रूप ज्ञात होता है। धीरे-धीरे ‘दैविकी’ शब्द का लोप हो गया और ‘क्रिया’ शब्द ‘किरिया’ के रूप में परिवर्तित हो गया। भोजपुरी में शपथ

१. लेखक का निजी संग्रह।

२. दुर्गाशंकर सिंह : भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस, पृष्ठ १७७।

३. विष्णुधर्मसूत्र ६/१।



खाने को 'किरिया खाना' या 'किरिया लेना' कहा जाता है। अतः 'किरिया लेना' शब्द शपथ लेना अथवा 'दिव्य' के लिए प्रयुक्त होता है। कहीं-कहीं 'किरिया लेना' के लिए 'विचरवा लेना' का भी प्रयोग पाया जाता है।<sup>१</sup>

### दिव्य का प्रयोग

'दिव्य' का प्रयोग न्याय-सम्बन्धी विषयों के अतिरिक्त साधारण परिस्थितियों में अपनी बात को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए तथा अपने आचरण की विशुद्धता को सत्य सिद्ध करने के लिए भी किया जाता था। स्मृतिकार नारद ने लिखा है कि दिव्य का उपयोग उस समय भी किया जा सकता है, जब किसी स्त्री के सतीत्व के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न हो जाय।<sup>२</sup> परन्तु इस स्मृतिकार ने साधारणतया स्त्रियों के द्वारा दिव्य का प्रयोग निषिद्ध बतलाया है।<sup>३</sup> केवल विशेष अवस्थाओं में ही स्त्रियों के द्वारा 'दिव्य' का प्रयोग किया जा सकता है।

भोजपुरी लोकगीतों में 'दिव्य' की जो बहुशः चर्चा उपलब्ध होती है, वह केवल स्त्रियों के लिए ही है और वह भी केवल उनके चरित्र की विशुद्धता की परीक्षा के लिए ही। यद्यपि पुरुषों में भी चरित्र-सम्बन्धी दोष पाया जाता है और अनेक दुश्चरित्र पुरुषों का वर्णन भी इन गीतों में उपलब्ध होता है; परन्तु शास्त्रकारों ने दिव्य का विधान केवल अबला जाति के लिए ही किया है, शक्ति-सम्पन्न पुरुष वर्ग के लिए नहीं। आगे के उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

किसी स्त्री का पति परदेश गया है। वह अपनी स्त्री के भरण-पोषण के लिए घन भेजने की बात तो दूर रही, पत्र द्वारा अपना समाचार भी नहीं भेजता है। वह परदेस में ही अपना दूसरा विवाह करके आनन्द की वंशी बजाता है। परन्तु बारह वर्षों की दीर्घकालीन अवधि के पश्चात् जब वह घर लौटकर आता है, तब उसे अपनी पति-परायणा स्त्री के विशुद्ध चरित्र में सन्देह उत्पन्न हो जाता है और वह उससे अपने चरित्र को शुद्ध प्रमाणित करने के लिए कहता है। अन्त में वह दुःखिया अबला स्त्री 'दिव्य-प्रयोग' के द्वारा अपने आचरण को विशुद्ध प्रमाणित करती है; तभी वह उसे ग्रहण करता है, अन्यथा नहीं।

लोकगीतों में स्त्री के अपने पिता और माई तथा अन्य कुटुम्बियों के समक्ष दिव्य लेने का उल्लेख पाया जाता है। चन्दा नामक किसी स्त्री के सतीत्व पर उसका पति, सास एवं ससुर अकारण सन्देह प्रकट करते हैं। तब चन्दा अपने पिता तथा भाई को बुलाती है एवं ससुराल के सभी लोगों के सामने 'अग्नि-दिव्य' को लेती है। वह कड़ाही में खौलते हुए तेल के पास खड़ी होकर अपने सतीत्व की परीक्षा देती है।<sup>४</sup>

### गीतों में दिव्य के भेद

लोकगीतों में छह प्रकार के 'दिव्यों' का उल्लेख पाया जाता है:—(१) अग्नि; (२) आदित्य, (३) गंगा (जल), (४) तुलसी, (५) तेल, और (६) सर्प-दिव्य। इनमें से आदित्य (सूर्य), तुलसी और सर्प-दिव्य बिल्कुल नये तथा मौलिक हैं। इनका उल्लेख स्मृतिकारों ने नहीं किया है। गंगा-दिव्य—जिसे लोकगीतों में 'गंगा-विचार' कहा गया है—जल-दिव्य का ही दूसरा नाम है। गीतों में वर्णित तैल-दिव्य धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित 'तप्तमाष दिव्य' में अन्तर्भुक्त किया जा सकता है। सर्प-दिव्य को स्मृतिकारों ने 'घट-सर्प-दिव्य' बतलाया है।<sup>५</sup> परन्तु इसका विशेष उल्लेख नहीं मिलता। तुलसी-दिव्य और आदित्य-दिव्य का विधान स्मृतियों में उपलब्ध नहीं होता।

१. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोकगीत, भाग १, पृष्ठ १६७।

२. नारदस्मृति ४/२४२।

३. वही ४/२५६।

४. "रामा ऊँचे ऊँचे बइठे; मोरा ससुरा के लोगवा रे ना।

रामा खालावा बइठे, मोर भइया, बाबा रे ना॥

रामा बड़े बड़े पागा बान्धे, ससुरा के लोगवा रे ना।

रामा भइया, बाबा बान्धे; अँगवछिया रे ना॥

रामा तेहि बीच चढ़िहे करहिया रे ना।

रामा तेहि ढिग खाड़ा सती चन्दा रे ना॥"

—रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम गीत, पृष्ठ ३३४।

५. व्यवहार-तत्त्व, पृष्ठ ५७६।



## दिव्य का अवसर

लोकगीतों में दिव्य का वर्णन केवल एक ही अवसर पर पाया जाता है और वह है परदेसी पति के घर लौटने पर। मध्यकाल में जब यातायात का साधन नहीं था, जब न रेलगाड़ी थी और न पक्की सड़कें, उस समय लोग अपनी जीविका के उपार्जन के लिए परदेस जाते थे और दस-बारह वर्षों के पश्चात् ही घर लौटते थे। इतने अधिक वर्षों तक उनकी पति-परायणा स्त्रियाँ, अपने 'सतीत्व' की रक्षा कर सकी हैं या नहीं, इसकी परीक्षा ये परदेशी पति लिया करते थे। इसी अवसर पर वे अपनी स्त्री को अपने सतीत्व को प्रमाणित करने के लिए 'दिव्य' के लिए बाध्य करते थे।

कोई पति बारह वर्षों के पश्चात् परदेश से घर लौटता है। उसकी चुगलखोर बहिन, उससे अपने भावज के आचरण की निन्दा करती है। अतएव वह अपनी बहिन की बातों पर विश्वास कर, अपनी स्त्री के आचरण की शुद्धता की परीक्षा करना चाहता है। बहिन अपने भाई से चुगली लगाती हुई कहती है कि भइया! तुम भावज के सतीत्व की परीक्षा ले लो। वह दुःखिया स्त्री बड़ई से प्रार्थना करके लकड़ी, लोहार से कड़ाही, तेली से तेल और कुम्भकार से मिट्टी का घड़ा मँगवाती है। वह खोलते हुए तेल से भरी कड़ाही में खड़ी होकर सूर्य से प्रार्थना करती है कि हे भगवान्! यदि मैं पतिव्रता होऊँ, तो तुम मेरी प्रतिष्ठा की रक्षा करना।<sup>१</sup> जब वह स्त्री 'गंगा किरिया' लेने के लिए चलती है तब घड़े का पानी सूख जाता है। 'सुरुज-किरिया' लेते समय भगवान् सूर्य बादलों में छिप जाते हैं। इसी प्रकार 'अग्नि-किरिया' लेने की बेला पर कड़ाही का खौलता हुआ तेल पानी के समान ठण्डा पड़ जाता है। इस तरह से वह पतिव्रता स्त्री सतीत्व की अग्निपरीक्षा में उत्तीर्ण होती जाती है।<sup>२</sup>

उपर्युक्त गीत में तैल-दिव्य का सुन्दर चित्रण किया गया है। कोई स्त्री खोलते हुए तेल में हाथ डालती है, परन्तु उसके सतीत्व के प्रताप से वह गर्म तेल पानी की भाँति शीतल हो जाता है। स्मृतियों में जल-दिव्य के वर्णन में जल के भीतर कुछ देर तक तैरने का विधान बतलाया गया है। परन्तु इस गीत में गंगा जी की शपथ खाने से घड़े के जल का सूखने का उल्लेख पाया जाता है। सूर्य-दिव्य में सती के प्रताप से सूर्य के अस्त हो जाने अथवा छिप जाने का उल्लेख यहाँ किया गया है।<sup>३</sup>

भगवान् रामचन्द्र ने लंका की अशोक-वाटिका में अनेक वर्षों तक निवास करनेवाली सती, साध्वी सीता की जिस प्रकार अग्नि-परीक्षा ली थी, उसी प्रकार कोई राजा अपनी स्त्री के सतीत्व पर सन्देह करता हुआ, उसकी अग्नि-परीक्षा ले रहा है। पति-परायणा वह रानी घघकती हुई आग के बीच में खड़ी होकर कहती है कि हे अग्निदेव! यदि मुझमें 'सत' (सतीत्व) हो, तो मेरी देह तनिक भी न जले। यह सुनते ही आग शान्त हो जाती है।<sup>४</sup>

१. "गोड़ावा धोवत बहिनी लागेली चुगुलिया,  
भइया भऊजी से लेहु किरिया हो राम॥"

—डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोकगीत, भाग १।

२. "बरि गइली अगिया, ओ भभकी करहिया रे,  
बहिनी खड़ी किरिया देह हो राम।  
हे मोर सुरुज! हमार पति राखेऊ,  
जो हम होई सतवन्ती हो राम॥"

—दुर्गाशंकर सिंह : भो० लो० गी० क० २०, पृ० १४२-४३।

३. "जब बहिनी गइली अग्नि किरिया हो।  
खोलल तेल भइल जुड़ पनिया हो राम॥  
एक दाँई डारें, दोसर दाँई डारें।  
तीसरे उतरि गइली पारवा हो राम॥"

—वही, पृष्ठ १४२-४३।

४. "जब बहिनी गइली गंगा किरिया हो;  
तब गगरी गइली झुराई हो राम।  
जब बहिनी गइली सुरुज किरिया हो,  
उगल सुरुज गइले छिपाइ हो राम॥"

—दुर्गाशंकर सिंह : भो० लो० गी० क० २०, पृष्ठ १४२-४३।

५. "जहुँ तहुँ अगिया सत के होइबू रे ना।  
आग! तिल नाही जरे मोर देहिया रे ना॥  
लहकल अगिया जुड़ाइल रे ना।  
आ रे ताही बिच ठाढ़ी सती रनिया रे ना॥"

—रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम गीत, पृ० २५६।



केवल मनुष्य ही नहीं, देवतागण भी अपनी स्त्रियों की सतीत्व की परीक्षा करने में संलग्न दिखाई पड़ते हैं। भोले-बाबा शिव जी भी पार्वती के विशुद्ध आचरण की परीक्षा करते हुए पाये जाते हैं। शिव के सतत आग्रह करने पर पार्वती गंगा, अग्नि तथा सर्प-दिव्य के द्वारा अपनी निर्दोषता प्रमाणित करती हैं। जब पार्वती जलती हुई अग्नि में अपना हाथ डालती हैं, तब आग ठण्डी पड़ जाती है। जब वे गंगा में डूबने जाती हैं, तब गंगा जी का जल सूख जाता है। सर्प-दिव्य के अवसर पर जब वे सर्प को अपने हाथ से स्पर्श करती हैं, तब काटने के स्थान पर वह शान्त होकर बैठ जाता है।<sup>१</sup> एक अन्य गीत में 'तुलसी-जी सूख गयीं और इस प्रकार पार्वती का सतीत्व प्रमाणित हो गया।

इन दिव्यों की आवृत्ति अनेक गीतों में बराबर हुई है। इनके उल्लेख से हमें भारतीय नारी के अलौकिक सतीत्व का परिचय प्राप्त होता है। अपने पातिव्रत-धर्म को प्रमाणित करने के लिए हँसते-हँसते अग्नि का आलिंगन करना—आग में कूद पड़ना—भारतीय ललनाओं का ही काम है।

### दिव्य लेने का समय

याज्ञवल्क्य<sup>२</sup> तथा नारद<sup>३</sup> आदि स्मृतिकारों का मत है कि प्रधान न्यायाधीश के द्वारा सभी प्रकार के दिव्य प्रातःकाल, सूर्योदय के समय अथवा पूर्वाह्न में ही लेना चाहिए। याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका मिताक्षरा के अनुसार रविवार का दिन इस कार्य के लिए शुभ एवं उचित है।<sup>४</sup> विभिन्न दिव्यों के लिए विभिन्न ऋतुओं और मासों को उचित बतलाया गया है। लोकगीतों में दिव्य अथवा 'किरिया लेने' के लिए किसी विशेष ऋतु, मास अथवा दिन का उल्लेख नहीं मिलता। हाँ, एक गीत में त्रयोदशी तिथि की चर्चा अवश्य उपलब्ध होती है। कोई स्त्री कहती है कि आज एकादशी है, कल द्वादशी तिथि होगी। अतः मैं परसों त्रयोदशी के दिन 'किरिया' लूंगी।<sup>५</sup> शास्त्रकारों ने लिखा है कि दिव्य लेनेवाले व्यक्ति को व्रती होना चाहिए। सम्भवतः इसीलिए एकादशी और द्वादशी को व्रत रखकर त्रयोदशी के दिन दिव्य लेने का उल्लेख इस गीत में किया गया है।

### दिव्य लेने की विधि

लोकगीतों में दिव्य लेने के समय किसी विशेष शास्त्रीय विधि-विधान का उल्लेख नहीं पाया जाता। एक लोकगीत में दिव्य लेने के पहिले कोई स्त्री सूर्य भगवान् से प्रार्थना करती है कि ए भगवान्! यदि मैं सती होऊँ, तो तुम मेरी प्रतिष्ठा को वचा लो अर्थात् मुझे निर्दोष प्रमाणित कर दो।<sup>६</sup> इसके अतिरिक्त किसी अन्य विधि-विधान का उल्लेख उपलब्ध नहीं होता।

१. "जब रे गउरा अगिनि हाथ लवली;

अगिनि गइली निझाई॥

जब रे गउरा गंगा बीचे पइठली;

गंगा जी गइली सुखाई॥

जब रे गउरा सरप हाथ लवली;

सरप बइठे फेंटा मारि॥"

—डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोकगीत, भाग १।

२. याज्ञवल्क्यस्मृति २/६७।

३. नारदस्मृति ४/२६८, ३१०।

४. याज्ञवल्क्यस्मृति २/६७ की टीका में मिताक्षरा का उल्लेख।

५. "आजु एकादसिया, बिहान दुआदसिया;

तेरसिया के लेइबों किरियवा रे ना।"

—रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम गीत, पृष्ठ २८७।

६. रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम गीत, पृष्ठ २८७।



## संस्कार



### संस्कार के भेद

हिन्दू धर्मशास्त्रकारों ने षोडश संस्कारों का विधान किया है, जिनमें कुछ—पुंसवन आदि का विधान सन्तति के जन्म के पहिले किया जाता है और कुछ संस्कारों का सम्पादन जन्म के बाद होता है। भोजपुरी प्रदेश में प्रधानतया छह संस्कार ही प्रसिद्ध हैं:—(१) पुत्र-जन्म, (२) मुण्डन, (३) यज्ञोपवीत, (४) विवाह, (५) गवना, (६) मृत्यु। इन छह संस्कारों में से केवल तीन ही संस्कार अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, जिनको सभी जाति के लोग निश्चित रूप से करते हैं:—(१) जन्म (२) विवाह, और (३) मृत्यु। ये तीन संस्कार ऐसे हैं, जिनकी सत्ता संसार की समस्त सभ्य तथा असभ्य जातियों में पायी जाती है। सम्भवतः संसार की कोई भी ऐसी जाति नहीं होगी, जिनमें इन उपर्युक्त अवसरों पर कोई संस्कार न किया जाता हो।

धर्मशास्त्रकारों द्वारा जन्म के पूर्व जिन संस्कारों का वर्णन किया गया है, उनमें गर्भाधान और पुंसवन प्रधान हैं। भोजपुरी क्षेत्र में पर्दे की प्रथा अत्यन्त भयंकर रूप में प्रचलित है। जैसा कि पहिले अन्यत्र लिखा जा चुका है, पति अपनी पत्नी से केवल रात्रि में ही चोर की भाँति चुपके से आकर मिल सकता है, जिससे घर के अन्य सदस्य इस बात को किसी प्रकार जानने न पावें। ऐसी परिस्थिति में गर्भाधान संस्कार के विधान की कल्पना ही असम्भव है। सच तो यह है कि गर्भाधान हो जाने के अनेक महीनों बाद तक स्त्रियाँ इस रहस्य को छिपाये रहती हैं कि उनको बच्चा होनेवाला है। यदि उनके शारीरिक लक्षणों को देखकर कोई स्त्री उनसे इस बात की चर्चा करती है, तो उल्टे उसे वे बुरा-भला कहने लगती हैं, मानों उस स्त्री ने किसी अपराध का उद्घाटन कर दिया हो। गर्भवती स्त्री इस बात को अन्त तक छिपाये रहती है कि वह किसी बच्चे की माता बननेवाली है। सन्तति के जन्म तक 'श्रुत' में गोपाय' की भाँति उनका एकमात्र 'मोटो' रहता है "गर्म में गोपाय।" बच्चे का पिता भी—यदि उसकी अवस्था छोटी है, तो इस बात को किसी से कहने में लज्जा का अनुभव करता है।<sup>१</sup> कहने का आशय यह है कि पर्दे की प्रथा की कठोरता, लज्जा की अतिशयता और गोपनीयता के कारण इस क्षेत्र में गर्भाधान संस्कार का अत्यन्त अभाव है। शहरों में—विशेषकर काशी नगरी में, गर्भ के आठवें मास में 'अठमासा' अवश्य मनाया जाता है, जिस दिन स्त्रियाँ नाच और गान का आयोजन करती हैं।

प्राचीनकाल में 'पुंसवन' संस्कार का विधान किया जाता था, जिसका उद्देश्य यह था कि जो सन्तति उत्पन्न हो, वह पुत्र हो, कन्या नहीं। परन्तु गर्भाधान की गोपनीयता के कारण पुंसवन-संस्कार का विधान सम्भावना की परिधि के बाहर की बात है। परन्तु जिन स्त्रियों को कोई पुत्र पैदा नहीं होता, वे कार्तिक मास में 'षष्ठी' का व्रत करती हैं और भगवान् सूर्य की उपासना करके पुत्र-प्राप्ति की याचना करती हैं।

### (१) परिच्छेद

#### पुत्र-जन्म

भोजपुरी-क्षेत्र में सर्वप्रथम संस्कार, जिसका सम्पादन विधिवत् किया जाता है, पुत्र-जन्म है। यह अवसर बड़े ही उछाह और उत्साह का माना जाता है। भोजपुरी घर में एक कक्ष बच्चा जनने के लिए 'रिजर्व' रहता

१. मेरे एक परिचित मित्र—जिनकी अवस्था अभी छोटी ही थी—को पुत्र पैदा हुआ। उनकी स्त्री अपने मायके में थी। अतः घर के किसी व्यक्ति को इसकी सूचना नहीं दी गयी। जब उनका पुत्र छह मास का हो गया और उसके अन्नप्राशन संस्कार करने की तैयारी होने लगी, तब इस रहस्य का उद्घाटन उन्होंने अपने पिता-माता से किया। उन लोगों को यह जान-कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनके पौत्र का जन्म आज से छह मास पहिले हो गया था, परन्तु उनको इस घटना की सूचना तक नहीं दी गयी।



है। घर की स्त्रियों का विश्वास है कि उस घर में बच्चा पैदा होना शुभ होगा। अतः जब किसी स्त्री को बच्चा पैदा होने-वाला होता है, तब उसी घर में रखा जाता है। गाँवों में न तो 'मेटर्निटी हास्पिटल' होता है और न कोई 'ट्रेण्ड नर्स' ही उपलब्ध होती है। अतः ऐसी स्थिति में गाँव की चमाइन—चमार की स्त्री—ही नर्स या धाय का काम करती है। बच्चा पैदा हो जाने के पश्चात्, घर का कोई व्यक्ति चमाइन को बुलाने के लिए जाता है। जब चमाइन को यह मालूम हो जाता है कि पुत्र पैदा हुआ है, तब तो वह आने में शीघ्रता करती है; परन्तु पुत्री-जन्म का नाम सुनते ही उसकी गति में मन्थरता आ जाती है। इसका कारण यह है—कि पुत्र-जन्म के अवसर पर उसे 'नेग' अर्थात् दक्षिणा अधिक मिलती है, परन्तु पुत्री-जन्म पर दक्षिणा की मात्रा में कमी हो जाती है।

जब गर्भवती स्त्री को प्रसव-पीड़ा होने लगती है, तब गाँव की बूढ़ी स्त्रियाँ बुलायी जाती हैं। वे समझ जाती हैं कि अब प्रसव-काल समीप आ गया है और वे इस पीड़ा को सहन करने के लिए उसे धैर्य प्रदान करती हैं। बच्चा पैदा हो जाने के पश्चात् चमाइन बुलायी जाती है। वह बालक के नाल को काटने के लिए नेग में सोने की छुरी माँगती है। यदि घर में साधारण छुरी उपलब्ध हो गयी तो ठीक, अन्यथा शाक चीरने के हँसुए से ही यह कार्य सम्पादित किया जाता है। चाकू या हँसुए के 'भोथर' होने के कारण कभी-कभी नाल ठीक से नहीं कटता, अतः उसमें विकार उत्पन्न हो जाता है। यदि चमाइन इस कार्य में अनुभवी नहीं हुई, तो नाल को 'जियतार' काट देने के कारण खून निकलने लगता है। इस नाल (प्लेसेन्टा) तथा अन्य गन्दी वस्तुओं को लेकर वह किसी बाँस के झुमट अथवा झाड़ी में फेंक देती है। इस प्रक्रिया को 'खेदी सेराना' कहते हैं। चमाइन गर्भवती के शरीर को दबाती है तथा अन्य आवश्यक कार्यों का सम्पादन करती है। आज से लगभग तीस-चालीस वर्ष पहिले इस कार्य के लिए इस ग्रामीण धाय को एक आना (आधुनिक छह पैसे) नेग के रूप में दिया जाता था; परन्तु पुत्री के जन्म पर यह दक्षिणा आधी ही दी जाती थी अर्थात् उसे केवल एक टका—दो पैसे—ही मिलता था।

### सूतिका-गृह

जिस घर में बच्चा पैदा होता है, उसे 'सूतिका-गृह' कहते हैं। भोजपुरी में इसे 'सउरि' कहा जाता है। इस गृह में चमाइन को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति का प्रवेश निषिद्ध माना जाता है। चमाइन भी जब घर में प्रवेश करती है, तब अपने पैरों को सदा धोती है, जिससे किसी प्रकार की गन्दगी भीतर न चली जाय। इस सूतिका-गृह के आगे दरवाजे पर मिट्टी की बनी अँगोठी, जिसे 'बोरसी' कहते हैं—में निरन्तर आग जला करती है, जिससे बुरी प्रेतात्माएँ (Evil spiits) घर में प्रवेश कर नवजात शिशु को किसी प्रकार से हानि न पहुँचा सकें। इस बोरसी में गोँडा (उपला), लकड़ी तथा धान की भूसी जलायी जाती है, जिससे कभी बुझने न पाये। आग में जलाने के लिए जो वस्तुएँ डाली जाती हैं, उसे 'पाँसधि' कहते हैं। लोकगीतों में चन्दन की लकड़ी को 'पाँसधि' में जलाने का उल्लेख पाया जाता है। इससे ज्ञात होता है कि धनी लोगों के घरों में सूतिका-गृह के द्वार पर उत्तम तथा सुगन्धित लकड़ी जलाई जाती थी, जिसके कारण सारा वातावरण सुगन्धित हो जाता था। कहीं-कहीं इस सूतिका-गृह के द्वार के ऊपरी भाग में कोई पुराना जूता, सेहूँड़ा का काँट आदि टाँग दिया जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि ये वस्तुएँ भूत-दूतों के लिए प्रतिबन्धक का कार्य करती हैं।

भोजपुरी में जच्चा को 'अलवाँति' कहा जाता है। वह जब तक सूतिका-गृह में रहती है, तब तक उसके स्वास्थ्य तथा भोजन पर बड़ा ध्यान रखा जाता है। उसे प्रतिदिन दूध में पिसी हल्दी को मिलाकर पीने के लिए दिया जाता है, जिससे उसके शरीर का दर्द दूर हो जाय। अलवाँति को खाने के लिए प्रायः हलुआ दिया जाता है, जिसे 'काँची' कहते हैं। यह काँची, कड़ाही में आटे को भूनकर और उसमें गुड़ डालकर तैयार की जाती है, जो स्वाद में बहुत अच्छी नहीं होती। पुत्र उत्पन्न होने पर जच्चा का बड़ा आदर किया जाता है। उसके लिए दूध, घी तथा फल खाने का भी प्रबन्ध किया जाता है। परन्तु पुत्री उत्पन्न होने पर उसके भोजन-प्रबन्ध में कुछ शिथिलता आ जाती है। जंगल की जड़ी-बूटियों को पीसकर उसे 'काँची' में मिलाकर जच्चा को दिया जाता है, जिसे 'ओछवानी' की संज्ञा प्राप्त है। धनी लोग काजू, किशमिश डालकर स्वादिष्ट लड्डू भी इसके लिए तैयार करवाते हैं। काँची यद्यपि गरिष्ठ भोजन है, फिर भी प्रधानतया जच्चा को यही खाने के लिए दिया जाता है।

जच्चा और बच्चा की रक्षा के लिए सूतिका-गृह के बाहर—द्वार पर—एक बूढ़ी औरत दिन-रात निगरानी करती रहती है। पहरेदार की भाँति वह चौबीस घण्टे वहीं पड़ी रहती है। इसे 'सउरी अगोरना' कहा जाता है। बूढ़ी औरतों के द्वारा सदा चौकन्ना रहकर सूतिका-गृह की रक्षा करने के कारण ही 'सउरि अगोरना' भोजपुरी में मुहावरे के रूप में प्रचलित हो गया है; जिसका अर्थ है सतत सावधान रहते हुए, सतर्कता के साथ किसी वस्तु की रक्षा करना। सूतिका-गृह में बिल्ली न घुसने पावे, इस बात का बड़ा ही ध्यान रखा जाता है। स्त्रियों का ऐसा विश्वास है कि कहीं बिल्ली के रूप में यमराज ही सूतिका-गृह



में प्रवेश कर बच्चे को न छू दें। यदि बच्चों की किसी कारण से 'सउरि' में ही मृत्यु हो गयी, तो उसे 'जम छूना' कहते हैं अर्थात् यमराज ने उसके शरीर को स्पर्श कर उसे मार डाला। कहने की आवश्यकता नहीं कि गन्दगी ही, जिसकी सूतिका-गृह में प्रधानता रहती है, वह यमराज है, जिसके कारण बच्चे अकाल में ही काल-कवलित हो जाते हैं। जच्चा जितने दिनों तक सूतिका-गृह में रहती है, उतने समय तक उसके शरीर का प्रसाधन तथा अलंकरण नहीं होता। किम्बहुना वह उतने दिनों तक स्नान भी नहीं करती। उसके लम्बे बाल खुले रहते हैं, जिनमें तेल लगाना भी वर्जित है।

बच्चा के पैदा होने के दूसरे दिन पुरोहित जी, ज्योतिषी या कुल के पण्डित जी बुलाये जाते हैं, जिनसे जच्चा के स्नान का शुभ मुहूर्त पूछा जाता है। यह दिन रविवार अथवा मंगलवार ही होना चाहिए। इस प्रकार जच्चा को कम-से-कम एक सप्ताह तक 'सउरि' में रहना पड़ता है। शुभ दिन को वह सूतिका-गृह से बाहर निकलती है और स्नान करती है। इस दिन वह नवीन वस्त्र को धारण करती और अपने शरीर का प्रसाधन करती है। वह घर की सास, जेठानी तथा अन्य बूढ़ी स्त्रियों को, अपने आंचल को उनके पैरों पर रखकर प्रणाम करती है। वे उसके माँग में सिन्दूर लगाकर उसे 'अहिवातिनि' (सौभाग्य-वती) होने का आशीर्वाद देती हैं। इस प्रकार जच्चा को सूतिका-गृह से मुक्ति मिलती है।

भोजपुरी घरों में जब पुत्र पैदा होता है, तब उसके जन्म की प्रसन्नता में 'छीपा' (थाली) बजाया जाता है, जो प्रायः पीतल का होता है। गाँवों में किसी अन्य वाद्य-यन्त्र की तत्काल उपलब्धि के अभाव में थाली ही बजाने की प्रथा है, जो प्राचीन-काल में इस अवसर पर गायन, वादन तथा नृत्य के रूप में किया जाता था। 'छीपा' बजाने से नवजात शिशु के कानों में शब्द प्रवेश करता है, जिससे उसकी श्रवण-शक्ति जागृत हो जाती है। इस कारण थाली बजाने का यह वैज्ञानिक रहस्य समझना चाहिए। इस प्रथा के कारण 'छीपा बजाना' आजकल भोजपुरी में मुहावरा के रूप में प्रचलित हो गया है, जिसका अर्थ है किसी अवसर पर अपनी हृद्गत प्रसन्नता को प्रकट करना।

बालक जब 'सतइसा' में 'पड़ जाता' है, तब यह बुरा माना जाता है। पिता सत्ताइस दिनों तक उसका मुँह नहीं देख सकता। ठीक सत्ताइसवें दिन सत्ताइस वृक्षों की लकड़ी मँगायी जाती है। इसी लकड़ी से हवन सम्पन्न होता है। पण्डित लोग आवश्यक पूजा का विधान करते हैं। इसके उपरान्त बालक का पिता, अपने बच्चे के प्रतिबिम्ब को, थाली में रखे गये तेल में देखता है। इस प्रक्रिया के बाद ही वह अपने पुत्र के मुख को साक्षात् देखने में समर्थ होता है। यदि किसी विशेष कारणवश सत्ताइसवें दिन पूजा-पाठ का विधान न हो सका, तो दूसरे या तीसरे सत्ताइसवें दिन इस कार्य को सम्पादित किया जाता है।

परन्तु यदि बालक का जन्म अभुक्त मूल नक्षत्र<sup>१</sup> में हो, तो यह अत्यन्त अशुभ माना जाता है। लोगों का यह दृढ़ विश्वास है कि ऐसी स्थिति में माता या पिता की अवश्य मृत्यु हो जाती है; अथवा बालक ही स्वयं मर जाता है। इसी कारण मूल नक्षत्र में उत्पन्न बालक को अमंगलकारक मानकर, उसका परित्याग कर दिया जाता है। गोस्वामी तुलसीदास के सम्बन्ध में यह किम्बदन्ती प्रसिद्ध है कि उनका जन्म इसी मूल नक्षत्र में हुआ था। अतः इनके माता-पिता ने इनको छोड़ दिया था। इनका लालन-पालन इनके गुरु नरहरिदास ने किया था। मूल नक्षत्र में उत्पन्न बालक की अशुभ ग्रहों की शान्ति के लिए विशेष पूजा-पाठ का विधान पाया जाता है। यदि ग्रह-शान्ति के लिए उचित उपचार नहीं किया गया, तो माता-पिता—दोनों में किसी एक की मृत्यु निश्चित ही समझनी चाहिए।

### (१) अनुच्छेद—गायन, वादन तथा नृत्य

लड़का पैदा होने पर घर की स्त्रियाँ एकत्रित होकर पुत्र-जन्म के सम्बन्ध में गीत गाती हैं, जिन्हें 'सोहर' कहा जाता है। इन सोहर के गीतों में आनन्द और उछाह का वर्णन पाया जाता है। इन गीतों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है:—  
(१) पूर्व पीठिका, और (२) उत्तर पीठिका। प्रथम प्रकार के गीतों में जहाँ गर्भिणी स्त्री की शरीर यष्टि का वर्णन होता है, वहाँ उत्तर पीठिका के गीतों में माता-पिता के आनन्द का उल्लेख होता है। सोहर गाने का यह क्रम दस-बारह दिनों तक चलता रहता है। चूँकि पुत्री का जन्म अभिनन्दनीय नहीं समझा जाता, अतः इस अवसर पर 'सोहर' के गीत नहीं गाये जाते।

१. सत्त इसा।

२. मूल नक्षत्र।



धनी तथा समृद्ध लोग पुत्र-जन्म के शुभ अवसर पर नाच-गान का आयोजन करते हैं। उनके घर 'पौरियाँ' आकर नाचते हैं। ये 'पौरियाँ' लोग प्रायः मुसलमान होते हैं, जो ऐसे अवसरों पर नाचने का काम करते हैं। ये एक गीत भी गाते हैं, जिसकी पहिली कड़ी है:—

“सिरि रामचन्द्र जनम लिहले चहत रामनवमी।”

ये नृत्य करते समय ढोल और झाल भी बजाते जाते हैं। इस प्रकार पौरियों का यह नाच गायन, वादन और नृत्य की वह त्रिवेणी है, जिसमें अवगाहन कर मन को बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। वाल्मीकीय रामायण में भगवान् रामचन्द्र के जन्म के शुभ अवसर पर नृत्य और गायन का वर्णन पाया जाता है।<sup>१</sup> अतः भोजपुरी प्रदेश में प्रचलित यह प्रथा प्राचीन परम्परा की कड़ी समझनी चाहिए।

## (२) अनुच्छेद—छठी और बरही-संस्कार

जच्चा को प्रायः छह दिनों के पश्चात् सूतिका-गृह से मुक्ति मिलती है। उस समय जो विधि-विधान किया जाता है, उसे 'छठी' कहते हैं। परन्तु यह 'छठियार' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। जब नवजात शिशु बारह दिनों का हो जाता है, उस दिन जो संस्कार किया जाता है, उसको 'बरही' की संज्ञा प्रदान की गयी है। इस दिन पुरोहित या गुरु जी आकर बालक का नामकरण-संस्कार सम्पादित करते हैं, उसकी जन्म-कुण्डली बनाते और घर के बड़े-बूढ़े उस शिशु के दीर्घ आयुष्य की कामना करते हैं। इस दिन ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है और गरीबों में अन्न और धन का वितरण होता है।

## (३) अनुच्छेद—गर्भिणी स्त्री के लिए विहित तथा निषिद्ध कर्म

गाँवों में गर्भिणी स्त्रियों के लिए अनेक विधि-निषेधों का प्रतिपादन किया गया है। घर के लोगों का यह कर्तव्य है कि गर्भिणी को उन सभी भोज्य-पदार्थों को देवें, जिसको खाने की वह इच्छा प्रकट करे। ऐसा नहीं करने से नवजात शिशु के मुँह से लार सदा टपकता रहता है, जो उसकी माता की भोजन-सम्बन्धी इच्छा की पूर्ति न करने का प्रतीक समझा जाता है। गर्भिणी जिस गृह में शयन करे, उसको देवी-देवताओं के चित्रों से सजाना आवश्यक है; क्योंकि इन देवताओं का प्रभाव गर्भस्थ शिशु के जीवन पर पड़ता है।

परन्तु विधि की अपेक्षा निषेधों की संख्या कहीं अधिक है। गर्भिणी स्त्री के लिए ग्रहण देखना निषिद्ध है। उसे वर्षा ऋतु में बिजली की चमक तथा बादलों की गड़गड़ाहट नहीं सुननी चाहिए; क्योंकि इससे गर्भपात का भय बना रहता है। इसी प्रकार से उसे किसी नदी, नाले को पार नहीं करना चाहिए; क्योंकि इससे डूबने का भय रहता है। प्राचीनकाल में पति की मृत्यु के पश्चात् सती होना धर्म समझा जाता था। परन्तु गर्भवती स्त्री के लिए सह-मरण शास्त्रकारों ने भी निषिद्ध बतलाया था। यद्यपि वर्तमानकाल में सती-प्रथा का लोप हो गया है, फिर भी पति के निधन के पश्चात् दुःख की अतिशयता से अथवा निर्धनता के कष्ट से गर्भिणी स्त्री का सह-मरण समाज के द्वारा वर्जित है। ऐसी स्त्री को ऊँचे पहाड़ पर नहीं चढ़ना चाहिए और न नीचे किसी गर्त में ही उतरना चाहिए; क्योंकि इससे गर्भपात का भय बना रहता है।

गर्भिणी स्त्री को बरें नहीं खाना चाहिए। क्योंकि स्त्रियों का यह विश्वास है कि जो लड़का पैदा होगा, वह अधिक बड़बड़ायेगा अर्थात् व्यर्थ में बकवास करेगा। इसलिए जो लड़का अधिक बरबराता है, उसके सम्बन्ध में घर की स्त्रियाँ कहती हैं कि इसकी माँ ने अपनी गर्भावस्था में बरें अधिक खाया होगा। इसी प्रकार से सूरन खाना भी उनके लिए वर्जित है, क्योंकि ऐसा करने से खुजली उत्पन्न होती है। ऐसी स्त्री के लिए किसी कठोर, अपाच्य वस्तु का भोजन निषिद्ध है, जो आयुर्वेद की दृष्टि से सर्वथा उचित है।

## (२) परिच्छेद

### मुण्डन-संस्कार

बालक जब कुछ बड़ा हो जाता है, तब उसके बालों को काटा जाता है। इस प्रकार इस प्रथम बार केश-कर्तन के कार्य को मुण्डन-संस्कार कहते हैं। संस्कृत में इसे 'चूडाकर्म' संस्कार कहा जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस



में गुरु वशिष्ठ के द्वारा राम के चूड़ाकर्म-संस्कार करने का उल्लेख किया है।<sup>१</sup> यह हमारे षोडश संस्कारों में से एक संस्कार है। इस संस्कार के पहिले बालक के बालों को काटना निषिद्ध समझा जाता है। गाँवों में तो इसके पूर्व बालों को साफ करने के लिए कंधी का भी प्रयोग नहीं किया जाता। इस प्रकार बच्चों के बालों में 'लटियाय' जाने के कारण, जटा बन जाती है, जो उनके लिए बड़ी ही कष्टदायक होती है।

मुण्डन-संस्कार बालक के जन्म के प्रथम, तृतीय, पंचम या सप्तम अर्थात् विषम वर्षों में सम्पादित किया जाता है। इससे अधिक वर्षों तक इस संस्कार को टालना अनुचित है। कोई स्त्री, जिसके पुत्र का मुण्डन बारह वर्षों तक नहीं हुआ है, अपने पति से इस कार्य के अनौचित्य के प्रति संकेत करती हुई कहती है कि:—<sup>२</sup>

“आरे आरे स्वामी कवन राजा,  
कहल कुछ मानहु हो।  
बारह बरिस के लाल भये,  
तुहु मुण्डन करावहु हो॥”

अर्थात् हे पति ! मेरा कहना मानो। मेरा बालक बारह वर्ष का हो गया है। अब तो इसका मुण्डन कराओ।

भोजपुरी स्त्रियाँ पुत्र की प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न देवी और देवताओं की मनौती मानती हैं और उनसे प्रार्थना करती हैं कि यदि मुझे पुत्र उत्पन्न होगा, तो हे देव ! मैं तुम्हारे ही स्थान पर उसका मुण्डन-संस्कार सम्पादित कराऊँगी। इस प्रकार बालक का मुण्डन किसी पवित्र देव-स्थान अथवा तीर्थ-स्थान में होता है। इस कार्य के लिए भोजपुरी प्रदेश के अधिकांश लोग मिर्जापुर जिले में स्थित विन्ध्याचल जाते हैं और वहाँ विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर में अपनी मनौती को पूरा करते हैं। परन्तु साधारणतया लोग किसी स्थानीय मन्दिर अथवा किसी पवित्र नदी के किनारे इस संस्कार का विधान करते हैं। आश्विन—कुवार और नवरात्र के दिनों में विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर के प्राङ्गण में ऐसे बालकों की भीड़ देखी जा सकती है, जो इसी कार्य के लिए वहाँ आते हैं। एक ही पंक्ति में वहाँ बीसियों बालक एक साथ बैठा दिये जाते हैं और हजाम—नाई—बारी-बारी से प्रत्येक बालक को मूड़ता जाता है। भोजपुरी प्रदेश के बलिया और आरा (अब भोजपुर) जिलों में यह प्रथा है कि बालक का जब तक यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हो जाता, तब तक उसके बालों को छूरे (उस्तरा) से काटना निषिद्ध है; परन्तु अन्य जिलों में इस प्रथा का पालन नहीं किया जाता।

कुछ स्त्रियाँ इस अवसर पर गंगा जी को नाव से आर-पार करने की भी मनौती मानती हैं, जिसे 'गंगा ओहारना' कहा जाता है। गाँव की बड़ी तथा बूढ़ी स्त्रियाँ बालक की माता के साथ गंगा के किनारे पहुँचती हैं। उनके साथ रास्ते में बाजा बजता चलता है। बालक की माता गंगा में स्नान करके, अपने गीले कपड़े के साथ गंगा के इस पार बैठी रहती है और दूसरी स्त्रियाँ बालक को नाव पर बैठाकर गंगा के दूसरे पार ले जाती हैं। इस पार एक खूँटा गाड़कर उसमें नयी मूँज की रस्सी बाँध देते हैं, जिसमें बीच-बीच में आम के पत्ते लगे रहते हैं। इस रस्सी—जो बहुत लम्बी होती है—को पकड़कर नाव पर बैठी स्त्रियाँ गंगा के उस पार तक ले जाती हैं। इस प्रकार वे गंगा की पूरी चौड़ाई को रस्सी से नापती हैं। यह प्रक्रिया 'गंगा ओहारने' के नाम से प्रसिद्ध है। जब स्त्रियाँ बालक को लेकर उस पार से लौटकर आती हैं, तब नाई उस बालक के बालों को कैंची से काटने की तैयारी करता है। वह इसके लिए 'नेग' मांगता है, जिसकी प्राप्ति होने पर ही वह इस कार्य को करने में संलग्न होता है। जब हजाम बाल काटने लगता है, तब बालक की बहिन अथवा उसकी फूआ (बुआ) उन बालों को अपने फाँड़ (आँचल) में 'ओड़ती' (रोपती) जाती है। इस कार्य को 'झालर परीछना' कहते हैं। इसके लिए वह अपना नेग—दक्षिणा—मांगती है। लड़के का पिता प्रसन्न होकर उसे समुचित दक्षिणा प्रदान करता है।

चूँकि बालक के बाल पवित्र माने जाते हैं, अतः उनका जमीन पर गिरना अनुचित है। इसीलिए उसकी बहिन उन बालों को अपने आँचर में एकत्रित करती है। मुण्डन-संस्कार सम्पादित हो जाने के बाद ब्राह्मणों को भोज दिया जाता है, जो आनन्दपूर्वक भोजन करके, बालक को आशीर्वाद प्रदान करते हैं।

#### १. 'चूड़ा कर्म कीन्ह गुरु आई।'

—रामचरितमानस, बालकाण्ड।

#### २. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ १६७।



मुण्डन-सम्बन्धी जो लोकगीत उपलब्ध होते हैं, उनमें इस अवसर पर किये जानेवाले अनेक विधि-विधानों का उल्लेख पाया जाता है। उदाहरण के लिए 'झालर परीछने' का उल्लेख इस गीत में हुआ है।<sup>१</sup>

“दादी के जनमल कवन फुआ,  
फुआ झालरि परीछहु हो।  
आजु हमार मुण्डन नेग रउरा मांगहु हो।”

### (३) परिच्छेद

### यज्ञोपवीत-संस्कार

भोजपुरी समाज में जनेऊ और विवाह दो प्रधान संस्कार समझे जाते हैं। जनेऊ शब्द यज्ञोपवीत का अपभ्रंश रूप है। इसे 'उपनयन' भी कहते हैं। उपनयन शब्द का अर्थ है वह संस्कार या विधि, जिसके द्वारा शिष्य गुरु के समीप लाया जाता है। 'उपनीयते गुरोः समीपं प्राप्यते अनेनेति [उपनयनम्]' प्राचीनकाल में यज्ञोपवीत-संस्कार के पश्चात् ब्रह्मचारी बालक को गुरु के आश्रम अथवा गुरुकुल में पढ़ने के लिए भेज दिया जाता था। इसलिए इस संस्कार को उपनयन कहते थे। यज्ञोपवीत धारण करने के समय ब्रह्मचारी को कुछ व्रतों तथा नियमों का पालन करना पड़ता है। अतः इसे 'व्रतबन्ध' भी कहा जाता है। जिस ब्रह्मचारी का उपनयन-संस्कार सम्पन्न हो जाता है, उसे 'उपवीती' कहते हैं। प्राचीन समय में यज्ञोपवीत-संस्कार के समय ही 'अक्षरारम्भ' संस्कार भी सम्पादित किया जाता था। इसीलिए इसका यथाशीघ्र विधान आवश्यक माना जाता था।

द्विजातियों—अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—के लिए उपनयन-संस्कार अत्यन्त आवश्यक है। मनु ने लिखा है कि जन्म से मनुष्य शूद्र उत्पन्न होता है; परन्तु संस्कार के द्वारा ही द्विजत्व को प्राप्त करता है :—

“जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते।”

मनु के आदेशानुसार ब्राह्मण ब्रह्मचारी का यज्ञोपवीत उसके जन्म के आठवें वर्ष में, क्षत्रिय बालक का ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य के पुत्र का जनेऊ बारहवें वर्ष में होना चाहिए।<sup>२</sup> उपनयन-संस्कार के लिए उचित समय के सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण का यह मत है कि ब्राह्मण का यज्ञोपवीत-संस्कार वसन्त-ऋतु में, क्षत्रिय का ग्रीष्म-ऋतु में और वैश्य का शरद-ऋतु में करना समुचित है।<sup>३</sup> इसीलिए ब्राह्मणों के बालकों का यज्ञोपवीत फाल्गुन और चैत्र के महीनों में किया जाता है।

गाँवों में यज्ञोपवीत-संस्कार का सम्पादन कुल के गुरु अथवा पुरोहित करते हैं। धनी-मानी लोग काशी के किसी कर्मकाण्डी अथवा वैदिक को इस कार्य के लिए आमन्त्रित करते हैं, जिसे 'बेदुआ' कहते हैं। यही 'बेदुआ' इस कार्य को विधिवत् कराता है। जनेऊ होने के एक दिन पहिले बालक के अभ्यास के लिए उसे कच्चे सूत का धागा इसलिए पहिना दिया जाता है, जिससे वह शौचादि के समय जनेऊ को प्रयोग में लाना सीख जाय। इस सूत्र को 'गोबर जनेऊ' कहा जाता है। यज्ञोपवीत-संस्कार की पूर्व-रात्रि को बालक को व्रत रखना पड़ता है। दूसरे दिन पुरोहित अथवा वैदिक जी आते हैं तथा संस्कार-कार्य प्रारम्भ कर दिया जाता है।

यज्ञस्थान के पास एक वेदी बनायी जाती है। इस वेदी पर कच्ची मिट्टी के बने हुए सोलह पुरवों अथवा चुक्कड़ों में चने की दाल भर देते हैं और प्रत्येक 'पुरवा' के ऊपर एक जोड़ा जनेऊ रख दिया जाता है। अनेक प्रारम्भिक विधि-विधानों को सम्पादित करने के पश्चात् ब्रह्मचारी की शिखा को तीन भागों में 'साही' के काँटे से विभक्त कर देते हैं। प्रत्येक भाग में कुश का एक छोटा टुकड़ा बाँध दिया जाता है। इसके पश्चात् गाँव का 'हजाम' (नाई) बालक के बालों को छूरे से प्रथम-बार काटने की तैयारी करता है। वह इस कार्य को सम्पादित करने के पूर्व नयी कटोरी अथवा कटोरा तथा नया छूरा पाने की माँग करता है। इसके लिए यथोचित धन प्राप्त होने के बाद, वह बाल काटना प्रारम्भ करता है। ब्रह्मचारी बालक की बहिन अथवा फूआ—मुण्डन-संस्कार की ही भाँति इन कटे हुए बालों को अपने फाँड़ (आँचल) में 'ओड़ती' है, जिसके लिए

१. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, पृष्ठ, १३७।

२. “अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्, गर्भाष्टमे वा।

एकादशे क्षत्रियं, द्वादशे वैश्यम्॥”

३. “वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत्। ग्रीष्मे राजन्यम्।

शरदि वैश्यम्। सर्व कालमेके॥”

—शतपथ ब्राह्मण



उसे प्रचुर 'नेग' दिया जाता है। नाई की दक्षिणा सवा रुपये (एक रुपया पचीस पैसा) से कम नहीं होनी चाहिए। परन्तु बहिन अथवा फूआ को नेग के रूप में स्वर्ण-आभूषण तथा साड़ी दी जाती है। भोजपुरी बालक के बालों को यज्ञोपवीत के अवसर पर ही सर्वप्रथम बार छूरे से मूँड़ा जाता है। अतः इस संस्कार का विशेष महत्त्व है। इसके पश्चात् बालक के शरीर में हल्दी लगाकर 'हरिस' पर खड़ा करके स्नान कराया जाता है। इस समय घर की स्त्रियाँ अपने कलकण्ठ से निम्नांकित गीत गाती हैं:—

“पाँच सखी आहो मीलिके  
हरदी चढ़ावहु हमरा लाल के।  
बारहो बाजन बजाई के  
हरदी चढ़ावहु हमरा लाल के॥”

स्नान करने के पश्चात् बालक का यज्ञोपवीत-संस्कार प्रारम्भ होता है। पहिले उसे मूँज की बनी करधनी (डाँड़ा) पहिनायी जाती है, फिर मृगचर्म का वस्त्र और पलाश का दण्ड धारण करने के लिए दिया जाता है। जहाँ मृगचर्म पहिने के लिए उपलब्ध नहीं होता, वहाँ मृग के चर्म से बना यज्ञोपवीत ही पहिनाया पड़ता है। इसके बाद अनेक विधि-विधानों को करके ब्रह्मचारी को सूत का असली जनेऊ पहिनाया जाता है।

यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् बालक का अक्षरारम्भ-संस्कार प्रारम्भ होता है। आम की लकड़ी से बनी हुई 'पटरी' पर गुरु जी लाल स्याही अथवा खड़िया से निम्नांकित वाक्य लिखते हैं—

‘राम गति देहु सुमति’

और इस वाक्य के प्रत्येक अक्षर का उच्चारण बालक से कराते हैं। गुरु जी इसके स्थान पर 'श्री गणेशाय नमः' भी पटरी पर लिखकर पढ़ाते हैं। कमी-कमी हिन्दी वर्णमाला भी पढ़ायी जाती है। इस प्रकार अक्षरारम्भ-संस्कार समाप्त होता है।

प्राचीनकाल में यह प्रथा थी कि यज्ञोपवीत-संस्कार के पश्चात् ब्रह्मचारी गुरुकुल में विद्या-अध्ययन करने के लिए चला जाता था। इस परम्परा का अनुसरण आज भी किया जाता है। परन्तु यह केवल अनुकरण मात्र है, वास्तविक नहीं। गुरुकुल में जाने के पहिले ब्रह्मचारी द्रव्य की याचना करता है, जिसे 'भीख माँगना' कहते हैं। बालक तीन बार भिक्षा माँगता है। वह भिक्षा की झोली को लेकर अपने कुटुम्बियों, सम्बन्धियों और घरवालों से धन की याचना करता है। वह पहिली भिक्षा गुरु को, दूसरी पुरोहित को और तीसरी बार की भिक्षा के धन को माता के चरणों में समर्पित करता है। जिस बालक को जितनी ही अधिक धनराशि भिक्षा में प्राप्त होती है, उसका पिता उतना ही प्रतिष्ठित तथा धनी माना जाता है। धनी घरानों में ब्रह्मचारी को हजारों रुपये भिक्षा में मिलते हैं, जो आदर और प्रतिष्ठा का सूचक माना-समझा जाता है। यह प्रथा उस प्राचीन परम्परा का स्मरण दिलाती है, जब प्रत्येक गृहस्थ का पुत्र ब्रह्मचारी बनकर गुरुकुल में रहता था और भिक्षा की याचना कर, अपना निर्वाह करता था।

भिक्षा माँगने की विधि की समाप्ति के पश्चात् ब्रह्मचारी अपने हाथ में पलाश का दण्ड, कटि में कौपीन और पैरों में खड़ाऊँ धारण करके विद्या-अध्ययन के लिए काशी अथवा कश्मीर जाने का अभिनय करता है। वह घर के आँगन में ज्योंही दो-चार पग आगे चलता है, त्योंही घरवाले उसे वापस बुला लेते हैं और कहते हैं कि अब तुम्हारा विद्याध्ययन समाप्त हो गया, घर चले आओ। लौटि आ बऽ बबुआ। इस प्रकार ब्रह्मचारी रहकर पन्द्रह-सोलह वर्षों तक विद्याध्ययन का कार्य, केवल पाँच-सात मिनटों में समाप्त हो जाता है।

प्राचीन भारत में गुरुकुल से लौटने के पश्चात् ब्रह्मचारी का समावर्तन-संस्कार सम्पन्न होता था। वह ब्रह्मचारी के वेश का परित्याग कर, गृहस्थ की वेश-भूषा को धारण करता था। वह पादुका, कौपीन और मृगचर्म को तिलाञ्जलि देकर गृहस्थाश्रम के उचित परिधान को पहिनता था। वह अपने शरीर का प्रसाधन और अलंकरण करता था। जब भोजपुरी प्रदेश का ब्रह्मचारी काशी से विद्या पढ़कर घर लौटता है, तब उसका समावर्तन-संस्कार उसी प्रकार से सम्पन्न किया जाता है। वह ब्रह्मचारी की वेशभूषा को हटाकर नूतन वस्त्रों से अपने शरीर को सुसज्जित करता है। उसे नयी धोती, नया कुर्ता, नयी पगड़ी, चादर तथा जूता पहिनाया जाता है। वह नवीन छत्र को धारण करता है। उसके शरीर में सुगन्धित तैल, इत्र आदि लगाया जाता है। इसके बाद वह अपने माता-पिता, गुरु, पुरोहित तथा अन्य वरिष्ठ लोगों का विनयपूर्वक पाद-स्पर्श करता है। इस प्रकार इस समावर्तन-संस्कार की समाप्ति होती है।



प्राचीनकाल में चूड़ा-कर्म, यज्ञोपवीत, अक्षरारम्भ, समावर्तन ये पृथक्-पृथक् संस्कार थे और इनका विधान अलग-अलग समय पर किया जाता था। परन्तु आजकल ये सभी संस्कार केवल चार-पाँच घण्टों के भीतर समाप्त कर दिये जाते हैं। परन्तु इस प्रथा से—चाहे वह अब अनुकृतिमात्र ही क्यों न रह गयी हो—हमें प्राचीन परम्परा तथा संस्कृति की झाँकी देखने को मिलती है। अतः इस दृष्टि से आज भी इस प्रथा का कुछ कम मूल्य नहीं है।

### (४) परिच्छेद

#### विवाह

विवाह हमारा सबसे प्रधान तथा प्रसिद्ध संस्कार है। भोजपुरी समाज में, जहाँ मुण्डन और यज्ञोपवीत-संस्कारों का विधान नहीं किया जाता, वहाँ भी विवाह-संस्कार बड़े धूम-धाम से होता है। मनु ने आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन किया है—(१) ब्राह्म, (२) दैव, (३) आर्ष, (४) प्राजापत्य, (५) आसुर, (६) गान्धर्व, (७) राक्षस, तथा (८) पैशाच। इनमें से प्रथम चार प्रशस्त तथा अन्तिम चार अप्रशस्त विवाह माने जाते हैं। भोजपुरी में जो विवाह सम्पन्न होते हैं, उन्हें ब्राह्म और दैव का मिश्रण कहा जा सकता है।

### (१) अनुच्छेद—वर की खोज

भोजपुरी समाज में लड़कियों का विवाह एक विषम समस्या बन गयी है, जिसका प्रधान कारण तिलक और दहेज की कुत्सित प्रथा है। इस क्षेत्र में बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित होने के कारण, जब कन्या दस अथवा ग्यारह वर्ष की हो जाती है, तभी उसका पिता विवाह के लिए वर की खोज में लग जाता है। उसे जहाँ इस बात का पता लगता है कि अमुक गाँव में कोई कुँवारा लड़का है, वहाँ वह पहुँच जाता है। धनी-मानी लोगों के यहाँ वर के अन्वेषण का कार्य नाई और ब्राह्मण करते हैं; परन्तु साधारण व्यक्ति स्वयं इस कार्य को करता है। वर को खोजने के लिए जानेवाले व्यक्ति को 'तिलक-कहरू' कहते हैं। चूँकि भोजपुरी क्षेत्र में विवाह प्रायः गर्मियों के दिनों में हुआ करता है, अतः ग्रीष्मऋतु विवाह का 'सीजन' माना जाता है।

#### वर की खोज

जब कन्या का पिता, भाई अथवा अमिभावक वर खोजने के लिए किसी के घर पहुँचता है, तब उसका बड़ा आदर-सत्कार किया जाता है। उसे गुड़ का शर्बत पिलाया जाता है अथवा मिष्ठान्न दिया जाता है। पुरानी परम्परा के लोग वर के घर जलपान करना निषिद्ध मानते हैं। वे वर के पिता से अपने आने का प्रयोजन बतलाते हुए, सबसे पहिले उससे बालक की जन्म-कुण्डली माँगते हैं, जिसे 'टीपन' कहा जाता है। वर का पिता पहिले 'टीपन' देने में बड़ा हीला-हवाला करता है, परन्तु बहुत प्रार्थना करने पर उसकी इच्छा की पूर्ति करता है। लड़की का पिता इस जन्म-कुण्डली को लेकर अपनी पुत्री की कुण्डली का मिलान करवाता है। इस कार्य को गाँव का ज्योतिषी करता है। वर-कन्या की कुण्डली के मिलान में तीन वस्तुओं का विशेष ध्यान रखा जाता है। (१) वर्ण, (२) नाड़ी, और (३) गुण। वर और कन्या का वर्ण और नाड़ी समान ही होनी चाहिए। गुणों की संख्या चालीस होती है। यदि बीस गुण भी मिल जायँ, तो विवाह प्रशस्त होता है। इससे अधिक गुण मिल जायँ, तो बहुत ही अच्छा माना जाता है। यदि कन्या 'मंगली' होती है, तो उसके लिए मंगला लड़का खोजना पड़ता है; अन्यथा वैधव्य योग की सम्भावना होती है। अतएव 'मंगली' लड़की के लिए वर खोजना बड़ा ही कठिन तथा दुष्कर कार्य माना जाता है। यदि दोनों की कुण्डली का मिलान ठीक हो गया, तब विवाह निश्चित हो जाता है। कन्या पक्षवाले कुछ लोग वर की कुण्डली से ठीक मिलान करने के लिए लड़की की 'बोगस' कुण्डली भी बनवा लेते हैं। सगोत्र में विवाह करना निषिद्ध है। अतः वर और कन्यावालों की एक उपाधि (दुबे, पाण्डेय, तिवारी आदि) होने पर भी उनके गोत्रों का भिन्न-भिन्न होना नितान्त आवश्यक है। जन्म-कुण्डली के मिल जाने पर विवाह की सम्भावना बढ़ जाती है और कन्या का पिता चैन की नींद सोत है। भोजपुरी के एक गीत में कहा गया है कि जिसके घर में कन्या कुँवारी पड़ी है, उसका पिता निश्चित कैसे सो सकता है?

१. 'विवाह में ज्योतिष का स्थान' के विशेष विवरण के लिए देखिए—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : हिन्दू विवाह की उत्पत्ति तथा विकास।



“जाही घर कनिया हो कुंवारी।  
से कइसे सोवे निरभेद हो॥”

### तिलक-दहेज की प्रथा

कुण्डली के ठीक ‘मिल’ जाने पर अब लेन-देन की बात शुरू होती है। वर का पिता कन्या के अभिभावक से विवाह करने के लिए मनमाना तिलक माँगता है। भोजपुरी में एक कहावत प्रचलित है कि “बिना हजारा के बजारा ना लागी।” अर्थात् बिना एक हजार रुपये के विवाह का बाजार नहीं लग सकता। इससे वर वालों की मनोवृत्ति का पता लगता है। कहने की यह आवश्यकता नहीं कि आजकल दस हजार रुपये से कम में साधारण व्यक्ति की भी कन्या का विवाह सम्भव नहीं है। आजकल विवाह के बाजार में वर का ‘रेट’ क्या है, इसका उल्लेख तिलक-दहेज की प्रथा के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक अन्यत्र किया जा चुका है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि तिलक की राशि की संख्या पाँच हजार रुपयों से एक लाख बल्कि और अधिक तक की हो सकती है।

तिलक की देय राशि को तय करने में बड़ा झंझट उठाना पड़ता है। कन्यावाला अपने अनेक सम्बन्धियों, मित्रों तथा परिचितों के द्वारा वर के पिता पर दबाव डलवाता है, अनेक लोगों से सिफारिश करवाता है, जिससे तिलक की धनराशि में कुछ कमी हो जाय। परन्तु वरवाला टस-से-मस नहीं होता। अंगद के पाँव की तरह वह अपनी बात पर अटल रहता है। वह कन्या के पिता से कुछ इस तरह की बातें भोजपुरी में करता है—

“हमार लरिका बड़ा पढ़ले बा। ई मिण्डिल पहिला दरजा में पास कइले बा। एकरा बाद इटरेस, इण्टर में भी फस्ट आइल बा। अब ई विसविदालय में पढ़े जाई। इसन तेज लरिका रउरा के ना मिली। हम एकरा पढ़ाई में बाड़ा रोपेया खरचा कइले बानी। आपन खेत बेंचि के एकरा के कासी जी में पढ़वले बानी। जब रउरा अपना लड़की खातिर अइसन जोग्य लरिका चाहत बानी, त कुछ खरचा करीं। मुफुती में काम ना फरिआई। दिल खोलि के रउरा खरचा करीं। मुठी खोलीं। बादी अवर सादी में खरचा करहीं के परेला। एसे हम जतना तिलका माँगत बानी, ओताना रुपेया देवे के परी। एमें हम रचिको भरि कमी ना करबि। मन माने त आताना रुपेया दिल खोलि के दीहीं, ना त आपाना घर के रासता लिहीं।” कन्या का पिता इस रूखी-सूखी बात को सुनकर दुःखी हो जाता है और वह उससे प्रार्थना करता हुआ अत्यन्त विनम्र भाव से कहता है कि :—

“हमार धियबा बड़ा बड़ हो गइ बिया। एह साल ओकर विवाह हम जरूर कर देवे के चाहत बानीं। रउरा पास हम आपन जानि के आइल बानी। रउरा हमार कवनो तरे से उधार करीं। हम आताना रुपेया ना दे सकीं ले। हमार आताना बड़ा अवकात नइखे, ना त हम आताना रोपेया जरूर दे दिहतीं। हमरा पर कुछ किरिपा करीं, जवना से हमार उधार होई जाय। लड़की के विवाह से हम बड़ा चिन्ता में पड़ल बानी। एहि से रउरा से बिनती करत बानी कि कवनो तरह से एह पाप से हमार उधार करीं। हमरा जाताना सकति होई, ओताना देवे में हम पीछे ना हटबि। हमरा त रउरा के जिनिगी भरि देवही के बाटे। एह से तिलक में कुछ कमी करीं, अवर, हमार अब उधार करीं।”

कन्या का पिता वर के पिता के सामने अपने को पापी समझता है और एक अभियुक्त की भाँति उससे बातें करता है, मानो अपनी कन्या के विवाह के प्रस्ताव के रूप में उसने कोई बड़ा अपराध किया हो। चाहे वरवाला तीन कौड़ी का आदमी हो और ‘विद्या विहीनः पशुः’ क्यों न हो, फिर भी कन्यावाला उसके सामने गिड़गिड़ाता रहता है। वह अपने उद्धार करने की बात बार-बार कहता है, जैसे उसने कोई बहुत बड़ा पाप किया हो। वरवाला अपने को महान्, विद्वान्, धनवान् तथा ऐश्वर्यवान् समझता है और कन्या के पिता को पापी, नीच, निर्धन और गँवार मानता है। यही कारण है कि वह बड़ी ऐंठ, शान तथा आन के साथ उससे बातें करता है।

### वर-रक्षा तथा तिलक

किसी प्रकार से, बड़े प्रयत्न के पश्चात् तिलक के रूप में देय द्रव्य की राशि निश्चित हो जाने पर ‘वर-रक्षा’ का दिन तय किया जाता है। इसे भोजपुरी में ‘वरइछा’ कहा जाता है। वर का चुनाव हो जाने पर लड़की का पिता ‘वर-रक्षा’ के दिन वर के हाथों में कुछ रुपया, फल और एक जोड़ा जनेऊ देता है। इस विधि के द्वारा वर की रक्षा हो जाती है अर्थात् वर का पिता अब किसी दूसरे व्यक्ति से विवाह की चर्चा नहीं करता और जिसने यह ‘वर-रक्षा’ दी है, उसके लिए वह वर ‘रिजर्व’ समझा जाता है। कहीं-कहीं इस विधि को ‘फलदान’ भी कहते हैं।



वर-रक्षा के दिन ही तिलक की तिथि भी निश्चित की जाती है। इस दिन कन्या का पिता, उसका भाई तथा कुटुम्ब के अन्य सदस्य—जिनकी संख्या दस-पन्द्रह से कम नहीं होती—वर के घर जाते हैं। वे अपने साथ तिलक के लिए निश्चित धन, फल, मिष्ठान्न, वर्तन तथा वस्त्र आदि ले जाते हैं। इस दिन वर-पक्ष वाले के घर बड़ा उत्सव मनाया जाता है। धनी लोगों के यहाँ नाच-गान का भी प्रबन्ध होता है। निश्चित समय पर वर को किसी पवित्र आसन पर बिठाया जाता है। लड़की का भाई अथवा उसके अभाव में उसका पिता वर के हाथों में तिलक का द्रव्य, फल, मिष्ठान्न, सुपारी और एक जोड़ा जनेऊ प्रदान करता है। इसके पश्चात् वह विभिन्न वस्त्रों—घोती, रेशम का थान, मलमल का कपड़ा आदि—को तथा गृहस्थी के समस्त वर्तनों को उसके हाथों से स्पर्श कराकर रख देता है। कन्या का भाई वर के ललाट में तिलक या टीका लगाता है। तिलक लगाने की इसी प्रथा के कारण इस विधि को 'तिलक चढ़ाना' कहा जाता है। तिलक चढ़ाते समय स्त्रियाँ अपने कलकण्ठ से सुन्दर गीत गाती हैं, जिनमें आनन्द और उछाह का वर्णन होता है। तिलक में आये हुए व्यक्तियों को रात्रि में सुस्वादु भोजन कराया जाता है, जिसमें पूड़ी, कचौड़ी, पापड़ और मिष्ठान्न की प्रधानता होती है।

तिलक के दूसरे दिन कन्या का पिता वर-पक्ष से 'लगन-पत्री' माँगता है। इस 'लगन-पत्री' में विवाह की तिथि तथा समय का निर्देश रहता है। यदि तिलक में चढ़ाया गया धन तथा अन्य सामग्री सन्तोषजनक होती है, तब तो 'लगन-पत्री' शीघ्र ही दे दी जाती है, परन्तु तिलक की निश्चित धनराशि में यदि किसी प्रकार की कमी हुई, तो तिलक लौटा दिया जाता है और फल-स्वरूप 'लगन-पत्री' नहीं दी जाती। कुछ चालाक वर-पक्षवाले तिलक के उत्सव में खर्च हुए रुपयों को काटकर अर्थात् घटाकर शेष धन को ही लौटाते हैं। तिलक के लौटाये जाने पर कन्या का पिता बड़े चक्कर में पड़ जाता है। वह तिलक की धनराशि में जितनी कमी होती है, उसे शीघ्र ही किसी-न-किसी प्रकार से पूरा करता है अथवा विवाह के अवसर पर उस कमी की पूर्ति का वादा करता है। कुछ काँड़ियाँ कन्या-पक्षवाले जानबूझकर निश्चित धनराशि से बहुत कम रुपया तिलक में चढ़ाते हैं। अतः इस धोखा से बचने के लिए वर का चतुर पिता तिलक की राशि को तिलक चढ़ाने के एक सप्ताह पूर्व ही अपने पास मँगाकर रख लेता है। इस प्रकार वह धोखा की सम्भावना को समूल नष्ट कर देता है।

### मण्डप की तैयारी

अब कन्या-पक्ष की ओर आइये। जिस दिन से तिलक चढ़ जाता है, उसी दिन से लड़की के घर में 'सगुन' गाया जाने लगता है। यह शब्द संस्कृत 'शकुन' का अपभ्रंश रूप है, जिसका अर्थ है शुभ लक्षण। विवाह की निश्चित तिथि से एक-दो दिन पूर्व 'मण्डप' बनाने की तैयारी की जाती है जिसे 'माँड़ो' कहते हैं। यह मण्डप घर के प्रांगण के बीच में हरे तथा कच्चे बाँसों से तैयार किया जाता है, जिनकी संख्या आठ अथवा नौ होती है। मण्डप का निर्माण वर्गाकार रूप में किया जाता है, जिसकी लम्बाई कन्या के हाथ से सात हाथ की होती है। गाँव के लोगों को मण्डप बनाने के लिए आमन्त्रित किया जाता है, जिसको 'माँड़ो गाड़ना' कहा जाता है। बिरादरी के लोग आकर बाँसों को जमीन में गड़वा खोदकर गाड़ते हैं। फिर इसे 'फूस' से छाया जाता है, जो 'माँड़ो छवाना' के नाम से प्रसिद्ध है। 'माँड़ो' शब्द 'मण्डप' का ही अपभ्रंश रूप है। इस समय कुछ गीत गाये जाते हैं, जो 'माँड़ो के गीत' कहलाते हैं।

मण्डप-निर्माण के लिए जितने बाँसों की आवश्यकता पड़ती है, उसे गाँव के लोग अपनी 'बँसवारि' से काट करके प्रदान करते हैं। इससे ग्रामीण जनता में सहकारिता की भावना सूचित होती है। 'माँड़ो छाने' की समाप्ति हो जाने के पश्चात् सभी आये हुए गाँव वालों को गुड़ का शरबत पिलाया जाता है। सभी लोग भरपेट इस शरबत को पीते हैं। आजकल धनी लोग चीनी का शरबत पीने के लिए देते हैं। इस प्रकार मण्डप-निर्माण का कार्य समाप्त हो जाता है।

### (२) अनुच्छेद—बारात का प्रस्थान

तिलक की समाप्ति के पश्चात् बारात की तैयारी की जाती है। बारात में चलने के लिए गाँव-जवार, सगे सम्बन्धियों, रिश्तेदारों तथा कुटुम्बियों को निमन्त्रण भेजा जाता है, जिसे 'नेवता' कहते हैं। उस दिन सभी रिश्तेदार तथा गाँव के लोग वर के घर पर उपस्थित होते हैं। बारात की यात्रा की पूर्व-रात्रि को, इन सभी लोगों को भात खिलाने की प्रथा है, जिसे 'मत-वानि' कहा जाता है। जो लोग इस 'मतवानि' में सम्मिलित होकर भात खाते हैं, उनके लिए बारात में चलना आवश्यक माना जाता है। 'मतवानि' के गीतों में विभिन्न भोज्य-पदार्थों का उल्लेख पाया जाता है। मतवानि के दूसरे दिन बारात के प्रस्थान होने के कुछ देर पूर्व 'मातृपूजा' होती है, जो ग्रामीण लोगों में 'मन्त्रिपूजा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें गाँव तथा परिवार के सभी वृद्ध तथा ज्येष्ठ स्त्री और पुरुषों की पैर-पूजा होती, साड़ी तथा नकद रुपया देकर की जाती है। इसके पश्चात्



गाँव तथा परिवार की कुछ स्त्रियाँ पवित्र स्थान से मिट्टी खोदने के लिए जाती हैं, जिसे 'माटी कोड़ाई', कहते हैं। वे किसी भड़भूजे की भाड़ में धान की खील भुनवाती हैं, जो 'लावा भुजाई' कहा जाता है। इसके पश्चात् 'इमली घोंटाई' की विधि सम्पादित की जाती है। इस अवसर पर लड़के का मामा अपनी बहिन को जल पिलाता है। उसकी बहिन आम की पत्तियों के डण्डल को अपने दाँतों से काटकर फेंकती जाती है। उसका भाई लोटे से जल गिराता है और बहिन अपने दोनों अँगुलियों से जल पीती है। इस विधि में इमली का प्रयोग बिलकुल नहीं किया जाता; फिर भी इस क्रिया को इमली घोंटाई का नाम क्यों दिया जाता है, इसका कारण ज्ञात नहीं है। इस अवसर पर वर के मामा की उपस्थिति आवश्यक समझी जाती है। गाँव की स्त्रियाँ इस मामा के मुँह में काजल लपेट देती हैं, उसके गालों में दही लगा देती हैं तथा उसके सिर पर फटा-पुराना कपड़ा डाल देती हैं। कहने का आशय यह है कि उससे अनेक प्रकार का हास-परिहास करती हैं। मामा अपने भानजे तथा बहिन को नवीन वस्त्र देता है। इस प्रकार 'इमली घोंटाई' की मनोरंजक विधि समाप्त होती है।

इन सभी विधि-विधानों के बाद गाँव तथा परिवार की स्त्रियाँ वर के आँखों में काजल लगाती हैं और उसके ललाट में दही, अक्षत तथा रोरी से युक्त तिलक लगाती हैं। यह सम्भवतः वर की मंगलमय यात्रा के लिए किया जाता है। बारात के प्रस्थान के समय जब वर पालकी में बैठा है, तब सभी स्त्रियाँ बारी-बारी से उसके सिर के चारों ओर लोढ़ा घुमाती हैं और अपने कलकण्ठ से यह गीत गाती जाती हैं :—

**“परीछिना लेहु मोरे राम रे ललनवा।”**

इस विधि को 'परिछावन' की संज्ञा दी गयी है। यदि वर की अवस्था छोटी हुई, तो इस अवसर पर उसकी माता अपना स्तनपान भी कराती है और अपने लाड़िले को सचेत करती हुई कहती है कि तुम मेरे दूध की 'नीरिव' देना। कभी मुझे भूल मत जाना। इस प्रकार गाजे-बाजे के साथ, घर की बड़ी स्त्रियों का आशीर्वाद प्राप्त कर वर विवाह के लिए बारात के साथ प्रस्थान करता है।

### (३) अनुच्छेद—वर की वेश-भूषा

भोजपुरी वर की वेश-भूषा बड़ी सुन्दर होती है। धोती के स्थान पर वह एक वस्त्र को अपनी कमर में बाँधता है, जिसे 'जामा' कहते हैं। यह जामा 'घाघरा' नुमा होता है, जो उसकी कमर के चारों ओर लटकता रहता है। उसके शरीर में कुर्ता का स्थान 'अँगरखा' लेता है, जो सुन्दर कपड़े का बना हुआ होता है। 'अँगरखा' शब्द संस्कृत के 'अंगरक्षा' का अपभ्रंश रूप है, जिसे प्रायः पण्डित लोग पहिना करते हैं। यह अपने पैरों में लाल जूता पहिनता है, जो 'सलेमसाही जूता' के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ लोग कामदार जूता भी पहिनते हैं, जिसमें जरी का काम किया गया रहता है। वर के सिर पर कामदार गोल टोपी होती है, जिसमें सलमे-सितारे जड़े रहते हैं। छोटी अवस्थावाले वर अपने कानों में कुण्डल—जिसे 'बाला' कहते हैं, हाथ में 'बेरा' और पैर में 'गोड़ाउ' पहिनते हैं। वे अपने गले में हार भी लगाते हैं। गाँव के धनी तथा समृद्ध लोग विवाह के लिए जामा, जोड़ा, टोपी बनवाकर अपने घर रखते हैं और गाँव के सर्वसाधारण लोग विवाह के समय उनसे 'मँगनी' (उधार) माँगकर इन वस्तुओं को लाते हैं।

वर विवाह के लिए जाते समय सिर पर मोर या 'मईउरि' पहिनता है, जिसे सेहरा भी कहा जाता है। इस 'मईउरि' को गाँव का माली बनाता है, जिसके लिए वह मुंहमांगा 'नेग' लेता है। भोजपुरी में वर को 'दूलहा' कहा जाता है। इसकी दूसरी सज्ञा 'नौशे' भी है, जिसका अर्थ 'नया बादशाह' होता है।

### (४) अनुच्छेद—बारात का प्रस्थान

भोजपुरी बारात का दृश्य बड़ा ही भव्य तथा सुन्दर होता है। बारात के आगे हाथियों की पंक्तियाँ चलती हैं, जिन पर वर-पक्ष के प्रतिष्ठित लोग बैठते हैं। इन हाथियों के ललाट पर अनेक प्रकार की चित्रकारी की गयी रहती है, जो नेत्राकर्षक होती है। उनकी पीठ पर लम्बे-लम्बे झूल; दोनों ओर लटकते रहते हैं। कुछ वर्ष पहिले बारात में हाथियों का आना अत्यन्त आवश्यक माना जाता था। किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा तथा वैवाहिक ऐश्वर्य का



मापदण्ड बारात में आये हुए हाथियों की संख्या समझी जाती थी। हाथियों के पश्चात् घोड़ों की पंक्तियाँ चलती हैं, जिनकी पीठ पर बैठे हुए घुड़सवार बड़ी अदा के साथ 'मुरेठा' (पगड़ी) बाँधकर अपने घोड़ों को 'कदम' की चाल से 'जमाते' उन्हें ले चलते हैं। घोड़ों के पीछे समधी (वर का पिता) की 'पालकी' और उसके पश्चात् वर की 'नालकी' चलती है। इस नालकी में चार से लेकर सोलह कहार तक लगे रहते हैं। इस नालकी में कहारों की संख्या जितनी अधिक होगी, वर के वैभव तथा प्रतिष्ठा की मात्रा उतनी अधिक मानी जाती है। नालकी के पीछे लट्ठधारी भोजपुरियों की जमात चलती है, जो अपनी ऊँचाई को भी अतिक्रमण करनेवाली लम्बी लाठियों को हाथ में लिये रहते हैं। बारात के रक्षक अहीर आदि लोग अपने हाथों में भाला, बरछा और गड़ासा लेकर चलते हैं, जिससे आवश्यकता पड़ने पर इन अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग किया जा सके। बारात के बीच में कहीं 'बैण्ड' बाजा बजता है, तो कहीं 'रोसन चौकी' की मधुर आवाज सुनाई पड़ती है। परन्तु भोजपुरी बारात का सबसे प्रसिद्ध और विशिष्ट बाजा 'सींगा' है, जो 'धुत्तुक' के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है। यह सींग के आकार का टेढ़ा तथा लम्बा होता है, जिससे 'धूत्-धूत्' की आवाज निकलती है। इसीलिए सम्भवतः इसे 'धुत्तुक' की संज्ञा प्राप्त है।

लड़कीवालों का मनोरंजन करने के लिए बारात में नाच का भी आयोजन आवश्यक समझा जाता है। आज से तीस-चालीस वर्ष पहिले बारात में 'वेश्या' का नाच अत्यन्त आवश्यक समझा जाता था। अतः साधारण लोग भी बहुत खर्च करके 'रण्डी' का नाच ले जाया करते थे। परन्तु अब बाजारू 'लौंडों' ने रण्डी का स्थान ले लिया है। ये 'लौंडे' नाचते भी हैं और गाते भी हैं। ये अपनी नाटकीय कला तथा अभिनेयता से जन-मन का अनुरंजन करने में अत्यन्त सफल होते हैं। भोजपुरी क्षेत्र में भिखरिया का नाच बड़ा प्रसिद्ध था। जिस बारात में भिखरिया जाता था, वहाँ उसके नाच को देखने के लिए जन-समुद्र उमड़ पड़ता था। अतः बारात में नाच ले जाना आवश्यकीय है। कहीं-कहीं इसके अभाव में झगड़ा भी हो जाता है और कन्या-पक्ष के देहाती लोग बारातियों पर पथराव भी करने लगते हैं।

इस प्रकार भोजपुरी बारात चतुरंगिणी सेना का दृश्य उपस्थित करती है, जिसमें 'हाथी', 'घोड़े', 'पदाति', 'लठैत', 'शस्त्रधारी' सभी लोग सम्मिलित रहते हैं। आजकल कुछ लोग बन्दूक लेकर बारात में चलते हैं। अतः इस प्रकार आग्नेयास्त्रों की कमी की भी पूर्ति हो जाती है।

जब यह बारात अपने निदिष्ट पर पहुँचती है, तब कन्या-पक्षवाले लोग बारातियों के स्वागत के लिए आगे आते हैं, जिसे 'अगवानी' कहते हैं। फिर बारात कन्या के घर पर पहुँचती है। इसे 'बारात का लगना' कहा जाता है। कन्या का पिता अपने निवास के प्रधान द्वार के आगे जमीन को गोबर से लिपवाकर उस पर अल्पना की डिजाइन बनवाता है, जिसे 'चौक पूरना' की संज्ञा प्राप्त है। यह कार्य गाँव की 'नाइन' करती है, जो सूखे आटे तथा पिसे हुए चावल के द्रव से चौका पूरने की प्रक्रिया का सम्पादन करती है। इसी चौके पर आसन बिछाकर वर को बैठाया जाता है। यहाँ कन्या का पिता शास्त्रीय विधियों से वर की पूजा करता है। यह विधि 'द्वार-पूजा' के नाम से प्रसिद्ध है। इधर वर की पूजा का विधान होता है और उधर पण्डित तथा विद्वान् लोग द्वार-पूजा शब्द में कौन समास है, इस विषय को लेकर आपस में उलझ पड़ते हैं। "द्वारपूजा इत्यत्र कः समासः। द्वारस्य पूजा अथवा द्वारस्थानां जनानां पूजा। उच्यताम्।" इस प्रकार तार स्वर से वे शास्त्रार्थ करने लगते हैं तथा एक पण्डित दूसरे पक्षवालों को निरुत्तर करने के लिए प्रयास करता है। प्रत्येक बारात में पण्डितों के शास्त्रार्थ का यही विषय रहता है। पता नहीं 'द्वारपूजा' में समास का कौन सा रहस्य छिपा है, जिसका उद्घाटन पण्डित लोग आज तक नहीं कर पाये। द्वारपूजा के समय कन्या का पिता वर के ललाट में तिलक लगाता है। इस समय पर घर की स्त्रियाँ गीत गाती हैं, जो बड़े ही मनोरम होते हैं। द्वारपूजा पर हाथी और घोड़ावाले भी अपना नेग माँगते हैं, जिसे देना आवश्यक होता है। गाँवों में बारात प्रायः किसी खेत अथवा मैदान में शामियाने के नीचे ठहरायी जाती है। इस स्थान को 'जनवासा' कहते हैं, जो 'जनावास' शब्द का अपभ्रंश रूप है। इस 'जनवासे' में आने पर बारातियों को जलपान कराया जाता है। कुछ वर्षों पूर्व बारातियों का जलपान पूड़ी का आधा टुकड़ा और चीनी थी। परन्तु अब चाय, नमकीन और मिष्ठान्न भी मिलने लगा है। जलपान करने के पश्चात्, 'मैदान' से निवृत्त होकर, बाराती अपनी 'धराऊ' पगड़ी, चादर और 'अँगरखा' पहिनकर शामियाने के तीन ओर, पंक्तिबद्ध रूप में, 'पालथी' मारकर और कुछ लोग अपने दोनों घुटनों को मोड़कर बड़ी अदा से, बड़े ठाट से बैठते हैं। इस समय प्रत्येक बाराती की शान देखते ही बनती है। वर शामियाने के नीचे तने हुए 'चँदवा' के नीचे बैठता है और 'समधी' जी उसकी बगल में स्थान ग्रहण करते हैं। इस प्रकार बैठने को 'महफिल लगना' कहते हैं। यही महफिल भोजपुरी में 'मोहफिल' के नाम से जाना जाता है। जब बारातियों की सारी सभा अपना-अपना आसन ग्रहण कर लेती है, तब कन्या-पक्ष के कुछ व्यक्ति 'अइगा माँगने' की रस्म को पूरा करने के लिए जनवासा में आते हैं। लड़की का भाई लोटा लेकर समधी के पास जाता है, जिसे समधी अपने कर-कमलों से स्पर्श कर देता है। इस प्रकार वह रात्रि-भोजन का निमन्त्रण स्वीकार करता है। इसी प्रकार से सभी बाराती उस पात्र को



स्पर्शकर अपनी स्वीकृति प्रदान करते हैं। भोजन के निमन्त्रण के लिए समधी को कुछ दक्षिणा भी देनी पड़ती है। इस प्रकार 'अइगा मांगने' की विधि सम्पन्न की जाती है।

## (५) अनुच्छेद—विभिन्न वैवाहिक विधि-विधान

### (१) कन्या-निरीक्षण

भोजन के निमन्त्रण के पश्चात् वर का बड़ा भाई (भसुर) मण्डप में जाकर वधू को अलंकार तथा वस्त्र प्रदान करता है। वह वधू के हाथ से इन वस्त्रों तथा गहनों को स्पर्श कराकर उसे कन्या के अभिभावकों को दे देता है। इस विधि को 'कन्या निरीक्षण' कहते हैं। भोजपुरी में इसे 'गुरुहत्थी' कहा जाता है। इस अवसर पर जो आभूषण दिया जाता है, वह वर-पक्षवालों के वैभव, धन तथा प्रतिष्ठा का मापदण्ड है। इसीलिए कुछ निर्धन व्यक्ति परिवार तथा गाँववालों से 'मँगनी' (उधार) के रूप में गहना मांगकर 'गुरुहत्थी' के लिए ले जाते हैं जिससे वे कन्या-पक्षवालों पर अपने धन का झूठा गौरव दिखला सकें। वर के पिता ने तिलक में जितना रुपया लिया है, यदि उसके अनुसार आभूषण उसने गुरुहत्थी में नहीं दिया, तब झगड़ा भी हो जाता है। कन्या के घरवाले वर-पक्षवालों को भला-बुरा कहने लगते हैं और कभी-कभी तो बारात को लौटा देने का भी अवसर उपस्थित हो जाता है। भोजपुरी विवाह में झगड़े के तीन अवसर होते हैं:—

(१) कन्या-पक्षवालों के द्वारा निश्चित धनराशि से तिलक कम देना।

(२) गुरुहत्थी के अवसर पर वर-पक्षवालों के द्वारा बहुत कम आभूषण लाना।

(३) कन्या के पिता के द्वारा दिदाई अथवा गवना के समय उचित मात्रा में दहेज का न देना।

इनमें से दूसरा अवसर बड़ा महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि इस समय कन्या के पिता को भी वरवालों के अनौचित्य को प्रदर्शित करने का मौका मिलता है।

### (२) कन्यादान

गुरुहत्थी के पश्चात् वर विवाह-मण्डप में लाया जाता है। यहाँ पर वैदिक जी वैदिक मन्त्रों द्वारा विवाह का सम्पादन कराना प्रारम्भ करते हैं। इस अवसर पर अनेक वैदिक तथा लौकिक विधि-विधान किये जाते हैं। स्थानभेद से लौकिक विधियों में बड़ी विभिन्नता पायी जाती है। धर्मशास्त्रकारों ने लिखा है कि इस अवसर पर वृद्ध स्त्रियों के कथन तथा 'ग्रामवचन' को करना चाहिए। विवाह के अवसर पर जो भिन्न-भिन्न क्रियाकलाप किये जाते हैं, उनमें 'कन्यादान' प्रधान है। हिन्दू धर्म-शास्त्रकारों ने कन्या को दान की वस्तु माना है। अतः विवाह के अवसर पर उसका पिता उसे दान में वर को समर्पित कर देता है। इस विधि को करते समय पिता अपनी पुत्री को गोदी में बैठाता है। वह वर के पैर की पूजा करता है और इसके पश्चात् अपनी कन्या को दान के रूप में उसे देता है। इसी को 'कन्यादान' कहते हैं, जो गाँवों में 'कनिया-दान' कहा जाता है। चूँकि दान की गयी वस्तु का पुनः ग्रहण नहीं किया जाता, अतः पिता आजीवन अपनी पुत्री के द्वारा दी गयी किसी वस्तु को नहीं लेता। वह विवाह के पश्चात् पुत्री के घर जाने पर भी उसके घर भोजन नहीं करता। किम्बहुना, कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो उस गाँव का जल भी नहीं पीते, जिस गाँव में उनकी कन्या का विवाह हुआ है। पिता के अभाव में यदि बड़े भाई ने कन्यादान किया है, तो वह भी अपनी बहन के घर में भोजन नहीं करता और न उसकी किसी वस्तु को ही लेता है।

### (३) सुमंगली तथा सप्तपदी

कन्यादान के पश्चात् वर कन्या के माँग में सिन्दूर लगाता है, जिसे 'सुमंगली' कहा जाता है। पर्दे की प्रथा के कारण वर अपनी भावी पत्नी के मुख को देखने में असमर्थ होता है। अतः गाँव की नाइन वर के हाथ को पकड़कर इस कार्य का सम्पादन कराती है। इस समय जो वैदिक मन्त्र पढ़े जाते हैं, उनमें सुमंगली शब्द का प्रयोग किया गया है।

“सुमंगलीरियंव धूः समेत पश्यत।”

इसके पश्चात् 'लाजा होम' का विधान किया जाता है, अर्थात् अग्नि को प्रज्ज्वलित करके उसमें हवन होता है। चूँकि इस अवसर पर लाजा—धान की खील—का भी प्रयोग विहित है, अतः इस विधि को 'लाजाहोम' कहते हैं।

अन्त में विवाह की सबसे प्रधान तथा महत्वपूर्ण विधि सम्पादित की जाती है, जिसे 'सप्तपदी' कहते हैं। विवाह होने



के पश्चात् वर और वधू दोनों एक साथ प्रज्ज्वलित अग्नि की सात बार प्रदक्षिणा करते हैं और प्रत्येक प्रदक्षिणा के अवसर पर वे बारी-बारी से सात बातों की प्रतिज्ञा करते हैं।

सप्तपदी को भोजपुरी में 'भाँवर पड़ना' या 'भाँवर घूमना' कहते हैं। 'भाँवर घूमना' मुहावरा के रूप में भी प्रयुक्त होता है। जब कोई दो व्यक्ति साथ-ही-साथ किसी देवमन्दिर की प्रदक्षिणा करते हैं, तब कहा जाता है ये 'भाँवर घूम' रहे हैं। सप्तपदी के बाद विवाह पक्का माना जाता है, अर्थात् इस विधि के पश्चात् कन्या वर के घर की हो जाती है। मनु ने लिखा है कि सप्तपदी के बाद कन्या अपने पिता के कुल से स्खलित होकर दूसरे कुल में चली जाती है। इसलिए सप्तपदी विवाह की अन्तिम तथा सबसे महत्वपूर्ण विधि है।

इसके पश्चात् परिवार की स्त्रियाँ वर को चूमने के लिए आती हैं, जिसे 'वर चुमावन' कहा जाता है। प्रत्येक स्त्री चावल के कुछ दानों को अपने हाथों में लेकर वर के शरीर के पाँच अंगों का स्पर्श करती हैं। इस समय वे गीत भी गाती रहती हैं। यहाँ चूमने का अर्थ स्पर्श करना समझना चाहिए।

#### (४) कोहबर

इसके बाद स्त्रियाँ वर को एक सुसज्जित घर में ले जाती हैं, जिसे 'कोहबर' कहते हैं। घर तथा गाँव की स्त्रियाँ वर से यहाँ पर अनेक प्रकार से हँसी-मजाक करती हैं। वे हास-परिहास के अनेक प्रसंगों की उद्भावना करके वर को प्रसन्न करने का प्रयास करती हैं। जब वर 'कोहबर' में घुसने लगता है, तब वे उसे दरवाजे पर रोक लेती हैं और वे उसे कुछ कविता या श्लोक कहने के लिए बाध्य करती हैं, जिसे 'रोका पढ़ना' अथवा 'दुआरि पढ़ना' कहा जाता है। यह विधि वर की बुद्धि की परीक्षा के लिए की जाती है। यदि वर पढ़नेवाला लड़का हुआ, तो वह हिन्दी की कोई कविता पढ़कर घर के भीतर प्रवेश प्राप्त कर लेता है।<sup>१</sup> परन्तु वर यदि 'निरक्षर भट्टाचार्य' हुआ, तो मौन धारण करता है, अथवा किसी निन्दित शब्दावली को कहता है। किसी मूर्ख तथा गँवार वर के 'रोका पढ़ने' का एक उदाहरण इस प्रकार है :—

“एह घरे गोंडठा, ओह घरे काठी।  
छोड़ऽ दुआरि नातऽ करबि लाठी॥”

यहाँ रातभर हँसी-मजाक का वातावरण रहता है। विचारा वर स्त्रियों के मजाक का उत्तर देते-देते परेशान हो जाता है और उसे रात भर जागरण करना पड़ता है।

#### (५) भात खाना, खिचड़ी खाना तथा 'माँड़ो हिलाई'

साधारणतया जिस दिन बारात आती है, उसके दूसरे ही दिन बारातियों की बिदाई कर दी जाती है। परन्तु जो लोग धनी और वैभव-सम्पन्न हैं, वे लोग दो-तीन दिनों तक बारातियों को ठहराते हैं; जिसे 'मरजाद रखना' कहा जाता है। यह 'मरजाद' शब्द मर्यादा का अपभ्रंश रूप है, जिसका अर्थ प्रतिष्ठा है। वास्तव में बारात को 'मरजाद रखना' प्रतिष्ठा तथा वैभव का कारण माना जाता है। विवाह के दूसरे दिन वर के पिता द्वारा मण्डप में भात खाना बड़ी आवश्यक विधि मानी जाती है। जब तक 'समधी' इस मण्डप में भोजन नहीं करता, तब तक माँड़ो पवित्र नहीं माना जाता। समधी (वर का पिता) इस मण्डप में भात खाने के लिए बड़ी लम्बी दक्षिणा माँगता है, जिसे कन्या के पिता को देना ही पड़ता है। सामान्यतया समधी के भात खाने की फीस पूड़ी खाने की 'फीस' से प्रायः दुगुना हुआ करती है। इसके बाद ही वह मण्डप में दहेज अलग

१. प्रस्तुत लेखक को विवाह के अवसर पर कोहबर में जाने के पहिले स्त्रियों ने रोककर 'रोका पढ़ने' के लिए कहा। मैं इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं था। समझ में नहीं आया कि क्या कहूँ। मुझे कालिदास के मेघदूत के प्रथम श्लोक—“कश्चित् कान्ता विरह गुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः” याद था, जिसे मैंने प्रथमा परीक्षा में पढ़ा था। मैंने उसी श्लोक को पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। इसकी समाप्ति पर जब दूसरा श्लोक पढ़ना प्रारम्भ किया ही था कि स्त्रियों ने कहा कि “बस, बस, बस अब रहे द बबुआ।” उन्होंने समझा कि वर बहुत बड़ा 'विद्वान्' (विद्वान) है, यद्यपि मैंने अभी प्रथमा परीक्षा भी उत्तीर्ण नहीं की थी। परन्तु मैं स्त्रियों द्वारा ली गयी इस मौखिक परीक्षा से उत्तीर्ण हो गया और कोहबर के भीतर प्रवेश पाने में सफलता प्राप्त कर लिया। परन्तु आज पचास वर्षों के बाद जब यह सोचता हूँ कि अपने ही विवाह में आनन्द के अवसर पर मुझे विरह का गीत (श्लोक) नहीं सुनाना चाहिए था, तब मुझे अपनी मूर्खता पर हँसी आती है और उन स्त्रियों की बुद्धि पर तरस खाता हूँ, जिन्होंने मुझे 'पढ़निहार वर' समझ लिया था।



से माँगता है। इस माँड़ो में भात खानेवाले वर के सभी परिवारवालों को थाली में ही भोजन कराया जाता है, जिसे बाद में लोटा तथा गिलास के साथ उन्हें दे दिया जाता है। भोजपुरी क्षेत्र में कुछ जिलों में वर के द्वारा खिचड़ी खाने की भी प्रथा प्रचलित है। उस समय वर को सुस्वादु भोजन तथा मिष्ठान्न खाने के लिए दिया जाता है। वर इस समय अपने लिए साइकिल, घड़ी और अँगूठी आदि नेग के रूप में माँगता है। मण्डप के कार्यों की समाप्ति के पहिले समधी माँड़ो में बाँधी गयी रस्सी को खोलता है, जिसे 'माँड़ो खोलाई' कहते हैं। इसके लिए भी वह अपना नेग माँगता है।

### (६) बारात की विदाई

'मरजाद' के दूसरे या तीसरे दिन बारात की विदाई होती है। इस समय कन्या-पक्ष के प्रायः सभी लोग 'जनवासा' में आते हैं और वर-पक्षवालों से मिलते हैं। इस विधि को 'मिलनी' कहा जाता है। कन्या का पिता वर के पिता के चरणों पर नयी पीली धोती और कुछ रुपयों को अर्पितकर उसे आलिङ्गन करता है, उसके गले मिलता है, जिसे 'अँकार-मेंट' कहते हैं। इसी प्रकार से वर को भी पीली धोती दी जाती है, जो 'कन्हावर' के नाम से प्रसिद्ध है। परिवार के अन्य लोगों—वर के चाचा, बड़े भाई, मामा आदि—को भी धोती और रुपया दिया जाता है। इस 'मिलनी' में समधी कन्या के पिता से अधिक-से-अधिक रुपया ऐंठना चाहता है और न देने पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करता है।

मिलनी के पश्चात् बारात विदा होती है। इस समय कन्या का पिता बारातियों के पाथेय के निमित्त कुछ पूड़ी, मिठाई, बुनिया और लकठो आदि देता है, जिसे 'कलेवा' कहते हैं। यदि गन्तव्य स्थल दूर हुआ, तो बारात के नीची जाति के लोगों के लिए सत्तू भी दिया जाता है। इस प्रकार 'कलेवा' लेकर बारात चली जाती है। यदि कन्या-पक्षवाले वर-पक्ष-वालों के व्यवहार से प्रसन्न रहते हैं, तब तो उन्हें पहुँचाने के लिए उनके साथ कुछ दूर तक जाते हैं, परन्तु यदि वे अप्रसन्न रहे, तो 'जनवासा' में उन्हें हरी झण्डी दिखा देते हैं और बाराती अपना रास्ता नापने लगते हैं। इस प्रकार भोजपुरी विवाह-संस्कार की समाप्ति होती है।

भोजपुरी विवाह के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि :—

"तीन टेढ़े टेढ़े, नालकी टेढ़, धुत्तुक टेढ़ अवरु समधी टेढ़।" अर्थात् भोजपुरी बारात में तीन वस्तुएँ टेढ़ी होती हैं। वर के चलने की नालकी—पालकी का ही एक रूप, जिसमें टेढ़े बाँस लगाये गये रहते हैं—और बजानेवाला वाजा सींगा (धुत्तुक) टेढ़ा होता है। इन दोनों के साथ समधी—वर का पिता—भी टेढ़ा होता है। इस प्रकार समधी के दुष्ट तथा लालची होने की कल्पना पहिले से कर ली जाती है। यह समधी बात-बात पर रुष्ट हो जाता है। उससे जितनी ही नम्रता से बातें की जाय, उसका पारा उतना ही चढ़ता जाता है। यदि बारात के स्वागत-सत्कार में तनिक भी कमी आ गयी, यदि 'अङ्गा माँगने' तथा 'भात खाने' के समय उसे भूयसी-दक्षिणा नहीं दी गयी, यदि उसकी 'मरकटही' घोड़ी को खाने के लिए चना नहीं दिया गया, यदि उसके 'बजनिया' और 'नचनिया' के सामने धिक्की पूड़ी नहीं परोसी गयी, किम्बहुना यदि कटहल की तरकारी में थोड़ा नमक अधिक हो गया, तब उसके क्रोध का पारा १२५ डिग्री सेण्टीग्रेड तक पहुँच जाता है। वह अपने क्रोध का प्रदर्शन दो रूपों में करता है :—(१) भोजन न करना, (२) बारात को लौटा ले जाने की धमकी देना। यही कारण है कि शायद ही कोई भोजपुरी बारात हो, जिसमें झगड़ा न होता हो। छोटी-सी बात पर भी झगड़ा करने के लिए उतारू हो जाना, ऊटपटाँग वस्तुओं को देने के लिए 'फर्माइश' करना भोजपुरी समधी की प्रकृति है, जिसके कारण झगड़ा होना स्वाभाविक है। इसीलिए बारात के विदा हो जाने पर कन्या का पिता राहत की साँस लेता है और महर्षि कण्व की भाँति वह भी "परायी धरोहर" को लौटाकर चैन की नींद सोता है।

### (५) परिच्छेद

#### गवना

'गवना' शब्द संस्कृत के 'गमन' का अपभ्रंश रूप है, जिसका अर्थ 'जाना' है। विवाह के पश्चात् यह संस्कार सम्पादित किया जाता है। संस्कृत में इसे 'द्विरागमन' कहते हैं, जिसका आशय है दूसरी बार आना। बहुत-से लोग विवाह के पश्चात् ही वधू की विदाई कराकर उसे अपने घर लिवा लाते हैं, परन्तु कुछ लोगों के यहाँ विवाह के साथ ही कन्या की विदाई नहीं 'सहती'। अतः वे गवना करना या कराना ही उचित समझते हैं।

गवना का समय—गवना विवाह के प्रथम, तृतीय, पंचम अथवा सप्तम वर्ष में होता है, अर्थात् इसका विधान विषम वर्षों में किया जाता है। जब बाल-विवाह की दूषित प्रथा अपनी पराकाष्ठा पर थी, जब पाँच और सात वर्ष के बच्चों तथा बन्धियों का विवाह करना आवश्यक समझा जाता था, उस समय गवना पाँच अथवा सात वर्षों के बाद किया जाता था। विवाह के इतने वर्षों के बाद इस संस्कार के सम्पादन करने का एक अभिप्राय यह भी था कि इस सुदीर्घ अन्तराल में विवा-



हित बच्चों की आयु में थोड़ी वृद्धि हो जाती थी और वे इस संस्कार के महत्व को समझने लग जाते थे। परन्तु आजकल अब जवान बालक और बालिकाओं का विवाह होने लगा है, अतः अब गवना प्रायः एक वर्ष के भीतर ही होता है।

गवना के लिए शुभ मास अगहन और चैत्र है। इनमें भी प्रधानतया दसन्त मास में ही इस शुभ संस्कार का सम्पादन किया जाता है। चैत्र के महीने में 'वायुहृद्' पालकी में बैठी हुई किसी कन्या की रोने की आवाज सुनाई पड़े, तो यह समझ लेना चाहिए कि इसकी विदाई हो गयी है और यह अपनी ससुराल जा रही है।

गवना कराने के लिए वर का आना अत्यन्त आवश्यक है। उसके साथ उसके छोटे, बड़े भाई, और बन्धु-बान्धव भी जाते हैं, जिनकी संख्या प्रायः बीस-पच्चीस से अधिक नहीं है। वर का पिता इस अवसर पर नहीं जाता क्योंकि अपनी पुत्र-वधू का रोदन सुनना उसके लिए निषिद्ध है। गवना के समय भी गाजा-बाजा, नालकी-पालकी आदि सभी जाता है, परन्तु इनकी संख्या थोड़ी होती है।

वर का पिता कन्या के अभिभावक के पास गवना का दिन, गाँव के 'नाई' के द्वारा, चिट्ठी लिखकर भिजवाता है, जिसे 'नियार' कहते हैं। यह शब्द संस्कृत के 'निमन्त्रण' का अपभ्रंश रूप जान पड़ता है। गाँवों में 'नियार आना' का अर्थ होता है, कन्या की विदाई का सन्देश आना। एक गीत में इसका उल्लेख इस प्रकार से हुआ है :—

“खेलत रहलीं हम सुपुली मउनियाँ, कि आइ रे गइले ना,  
मोरा गवना का नियारवा कि आइ रे गइले ना।”

कोई बच्ची कहती है कि मैं अपनी सखियों के साथ 'सुपुली-मउनी' का खेल खेल रही थी; इतने ही में मेरे गवने का सन्देश आ पहुँचा। गाँवों में यह प्रथा है कि गवना करने के सन्देश या सूचना को तीन बार लौटा देना चाहिए। किसी पिता ने प्रथम बार गवना की तिथि की सूचना मिलते ही यदि उसे स्वीकार कर लिया, तो यह कार्य निन्दनीय समझा जाता है। चौथी बार सूचना आने पर ही पुत्री का पिता गवने की तिथि को स्वीकार करता है। जिस दिन पुत्री को यह सूचना मिलती है कि उसकी विदाई का दिन तय हो गया है, उसी दिन से वह रोना-पीटना शुरू कर देती है। जो लड़की जितना ही अधिक इस अवसर पर रोती है, उसकी उतनी ही अधिक प्रशंसा की जाती है। लड़की के रोने का यदि कोई कारण पूछता है, तो उसकी माँ अथवा घर की अन्य स्त्रियाँ कहती हैं कि :—

“रउरा नइखीं जानत, हमरा बबुनी के निआर नु आइल बा, एही से आताना रोअत बाड़ी। का कहीं, अब तीन चार दिन में बबुनी के बिदाई होइ जाई।”

गवना की निश्चित तिथि पर वर तथा उसके कुटुम्बी आते हैं। इनके स्वागत-सत्कार तथा भोजन के लिए बड़ा प्रबन्ध किया जाता है। दूसरे दिन पिता अपनी पुत्री के लिए दहेज के रूप में चारपाई (पलँग), तोसक, तकिया, रजाई, भोजन पकाने तथा खाने के सभी वस्त्र, तेल, मसाला, सूखा फल तथा मिष्ठान्न देता है। वह अपने दामाद के लिए अपनी शक्ति के अनुसार साइकिल, घड़ी, अँगूठी उसके व्यक्तिगत उपभोग के लिए प्रदान करता है। अब के दामाद तो 'रेडियो', 'ट्रांजिस्टर' तथा 'मोटर साइकिल' की भी माँग करने लगे हैं। कहने का आशय यह है कि अपनी पुत्री तथा दामाद के लिए जो उपयोगी तथा आवश्यक वस्तुएँ हैं, उन सभी को इस 'दशमोग्रहः' की प्रसन्नता के लिए समर्पित करता है।

### (१) अनुच्छेद—पुत्री की विदाई

भोजपुरी समाज में पुत्री की विदाई का दृश्य बड़ा ही कारुणिक होता है। इस अवसर पर गाँव भर की स्त्रियाँ कन्या के घर एकत्रित होती हैं। इन सभी स्त्रियों से बारी-बारी से उस कन्या को 'भेंट करना' पड़ता है, अर्थात् उनसे गले मिलकर रोना पड़ता है। फिर घर की स्त्रियों से 'भेंट करने' की बारी आती है। उनका आलिङ्गनकर—जिसे 'भेंट-अँकार' देना कहा जाता है—वह कन्या फिर रोना प्रारम्भ करती है। जब माता से 'भेंट करने' की बारी आती है, तब पुत्री का 'करुण-क्रन्दन' अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। वह बड़े ही हृदय-विदारक शब्दों में करुण-क्रन्दन करने लगती है। दोनों एक-दूसरे को पकड़कर लिपट जाती हैं और कारुणिक प्रलाप करने लगती हैं। पुत्री, प्रलाप करने के साथ ही नये स्थान में वह कैसे रहेगी, इसे रो-रोकर कहती है। उसकी माता उसके वियोग से उत्पन्न कष्टों का उल्लेख आँसुओं के ताना-बाना में करती है। सर्वत्र रोना-ही-रोना सुनाई पड़ता है। घर का वातावरण इस करुण-क्रन्दन से गूँज उठता है और सर्वत्र विषाद-ही-विषाद दृष्टिगोचर होता है।

“कन्या की विदाई की बेला बड़ी हृदय-विदारक होती है। जहाँ वर-पक्षवालों में आनन्द और उल्लास छाया रहता



है, वहाँ कन्या-पक्ष के लोगों में विषाद की अमिट रेखा दिखाई पड़ती है। इस अवसर पर माता, पिता, भाई, बहिन कुटुम्बी और सम्बन्धी तथा गाँव की स्त्रियों का करुण-क्रन्दन सुनकर बड़े-बड़े धैर्यशालियों का भी धीरज छूट जाता है। कहीं कन्या की माता अपनी प्राणप्यारी पुत्री को गले से लगाकर रोती दीख पड़ती है, तो कहीं पिता अश्रुपात करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। कहीं कन्या के छोटे-छोटे भाई और बहिन 'पूका फार' कर रोते हैं, तो कहीं गाँव की स्त्रियों की आँखों से आँसुओं की झड़ी झड़ती रहती है। कहीं कुटुम्बियों के नेत्रों में आँसू छलक रहे हैं, तो सम्बन्धी शोकमुद्रा में खड़े हैं। माता का रोना तो पत्थर को भी पिघलाये देता है।<sup>१</sup> सम्भवतः भवभूति की यह सूक्ति इसी अवसर को लक्षितकर लिखी जान पड़ती है :—

“अपि ग्रावा रोदति, अपि दलति वज्रस्य हृदयम्।”<sup>२</sup>

भोजपुरी के गवना के एक गीत में माता, पिता तथा भाई के रोने का बड़ा ही कारुणिक तथा सजीव वर्णन पाया जाता है।<sup>३</sup>

“बाबा के रोवले गंगा बड़ि भइली,  
आमा के रोवले अनोर।  
भइया के रोवले चरन धोती भीजे,  
भउजी नयनबो ना लोर॥”

पुत्री की वास्तविक विदाई की बेला तथा उसे पालकी में बैठाकर विदा करने का समय बड़ा करुणोत्पादक तथा हृदय-द्रावक होता है। उधर वर-पक्षवाले वधू को पालकी में बिठाने के लिए जल्दी मचाते रहते हैं, उधर पुत्री की माता, उसकी भावज उससे चिपटकर रोती रहती हैं और उसे छोड़ने का नाम ही नहीं लेतीं। उस समय आबाल-वृद्ध-बनिता सभी के धैर्य की सीमा नष्ट हो जाती है और सब लोग फूट-फूटकर रोने लगते हैं। दिलाप और करुण-क्रन्दन का ऐसा कुहराम घर में मचता है, जिसका वर्णन करना कठिन है।<sup>४</sup>

अन्त में गाँव की नाइन कन्या को पालकी में लाकर बिठा देती है। वर-पक्षवाले पालकी के फाटक को तत्काल बन्द कर देते हैं और उस पर 'ओहार' भी डाल देते हैं, जिससे कोई पुरुष नयी वधू को देख न सके। रोती-कलपती कन्या, पालकी में बैठी हुई, अनजान स्थान के लिए चली जाती है। पालकी के पीछे नाइन अथवा कन्या का भाई उसका अनुगमन करता है। जब वर वधू को लेकर अपने घर पहुँच जाता है, तब घर तथा गाँव की स्त्रियाँ वर का 'परिछावन' करती हैं। इसके पश्चात् वर तथा वधू दोनों को जमीन पर पैर न रखकर, बाँस की बनी छबड़ी में पैर रखना पड़ता है। इस विधि को 'दौरा में डेग डालना' कहते हैं। दोनों ही बारी-बारी से 'दौरा' में पैर रखकर धीरे-धीरे चलते हैं। अतः 'दौरा में डेग डालना' भोजपुरी में मुहावरे के रूप में प्रचलित हो गया है, जिसका अर्थ है अत्यन्त धीरे-धीरे चलना। बाँस वंश का प्रतीक माना जाता है; अतः दौरा में पैर रखने का आशय है भविष्य में सन्तान की प्राप्ति। घर के भीतर कन्या के पहुँचने पर उसके हाथों से अन्न के भाण्डार को स्पर्श कराते हैं, जिसका अर्थ धन-धान्य की प्राप्ति है। कुछ देर के पश्चात् उसकी गोदी में एक बालक रख दिया जाता है, जो उसकी मावी पुत्रोत्पत्ति का प्रतीक समझा जाता है।

दूसरे दिन गाँव की स्त्रियाँ नयी वधू का मुख देखने के लिए आती हैं और उसका मुख देखकर नेग के रूप में उसे रुपया अथवा गहना देती हैं, जिसे 'मुँह देखाई' कहते हैं। सम्भवतः यह प्रथा महाकवि बिहारीलाल के समय में भी प्रचलित थी। उन्होंने इस प्रथा का उल्लेख नीचे के दोहे में किया है:—

“मानहुँ मुख दिखरावनी...करि अनुराग।  
सास सदन, मन ललन हूँ, सौतिन दियो सुहाग॥”

भोजपुरी क्षेत्र में पर्दे की प्रथा कठोर रूप में होने के कारण 'बहू' की 'सास' अथवा उसकी 'जेठानी' उसके सारे शरीर को ढँककर उसके घूँघट को खोलकर उसका मुँह दिखलाती है। इस समय नवेली बहू अपनी आँखों को बन्द किये रहती है।

१. डॉ० कृष्णबेख उपाध्याय : भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, पृष्ठ १८१-८२।

२. उत्तररामचरित।

३. डॉ० कृष्णबेख उपाध्याय : भोजपुरी लोकगीत भाग १।

४. इस सम्बन्ध में लेखक का निजी अनुभव है।



इस प्रकार 'नेग' देने के पश्चात् यह विधि समाप्त हो जाती है; परन्तु मुंह देखनेवाली स्त्रियों का ताँता कुछ दिनों तक लगा ही रहता है।

कुछ दिनों तक बहू को पूर्ण विश्राम दिया जाता है। उससे कोई भी काम करने के लिए नहीं कहा जाता। जितने दिनों अथवा महीनों तक वह काम नहीं करती, उतने दिनों को 'बैठाना' कहा जाता है। फिर किसी दिन शुभ मुहूर्त में उसे प्रथम बार भोजन बनाने के लिए कहा जाता है, जिसे 'रसोई छुआना' कहते हैं। इस दिन बहू स्वयं भोजन बनाती है और बड़े प्रेम से वह अपने 'ससुर' तथा 'जेठ' को भोजन करने के लिए परोसती है। वह अपनी सास के माध्यम से इसके लिए अपना नेग माँगती है, जिसे उसका ससुर रुपये अथवा गहने के रूप में उसे प्रदान करता है। विवाह के चौथे दिन 'चौथारी' का कृत्य सम्पन्न किया जाता है। इस दिन घर तथा गाँव की स्त्रियाँ वर के साथ किसी नदी के किनारे जाती हैं और उसके हाथ में बाँधे गये 'कंकण' को खोलकर फेंक देती हैं। इसके उपलक्ष्य में रात्रि में समस्त कुटुम्बियों को दाल-भरी पूरी, कोहड़ा की तरकारी और 'रसियाव' (देहाती खीर) खिलाया जाता है। इस प्रकार तिलक के दिन विवाह-सम्बन्धी जो विधि-विधान प्रारम्भ होता है, उसकी समाप्ति 'चौथारी' के साथ हो जाती है।

## (६) परिच्छेद

### मृत्यु-संस्कार

मृत्यु मानव-जीवन का स्वाभाविक पर्यवसान है। महाकवि 'कालिदास' ने लिखा है कि मृत्यु मनुष्य की प्रकृति है और जीवन को विकृति समझना चाहिए।

“मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्।  
विकृतिः जीवनमुच्यते बुधैः॥”

इस प्रकार मृत्यु मानव का धर्म है। यह उसके जीवन की अवश्यभावी परिणति है।

संसार के सभी देशों में मृत्यु के अवसर पर संस्कार सम्पादित किये जाते हैं। भारत में षोडश संस्कारों में अन्त्येष्टि—जो किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद की जाती है—अन्तिम संस्कार माना जाता है। अतः इस अवसर पर विभिन्न विधि-विधानों का सम्पादन करना स्वाभाविक है।

## (१) अनुच्छेद

भोजपुरी क्षेत्र में भी इस समय अनेक क्रिया-कलापों को किया जाता है। इस क्षेत्र में जब किसी व्यक्ति की मृत्यु आसन्न मालूम होने लगती है, तब उसके घरवाले उसके मुँह में गंगाजल और तुलसीदल डालते हैं। चूँकि ये दोनों वस्तुएँ पवित्र मानी जाती हैं, अतः लोगों का यह विश्वास है कि ऐसा करने से मृतात्मा को सद्गति प्राप्त होती है। जब रोगी के जीवित रहने की आशा समाप्त हो जाती है, तब लोग उसे 'गोदान' कराते हैं, जिसे 'बाछी छुआना' कहा जाता है। धनी लोग किसी दुधारू गाय को ही दान में देते हैं, परन्तु निर्धन व्यक्ति गाय की बछिया या बाछी दान कराके ही सन्तोष लाम करते हैं। हिन्दुओं का यह विश्वास है कि मृतात्मा के मार्ग में वैतरणी नामक नदी पड़ती है, जिसे पार करना अत्यन्त कठिन होता है। दान में दी गयी यह गाय, उस वैतरणी को पार कराने में सहायक होती है। इसीलिए मरनेवाले व्यक्ति के द्वारा 'गोदान' अथवा 'बछिया-दान' कराना अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। इस अवसर पर अन्न तथा वस्त्र का भी दान किया जाता है, जिससे रोगी के कष्टों का शमन हो सके।

**भू-सेज देना**—जब यह आशंका होने लगती है कि रोगी अब कुछ ही घण्टे का अतिथि है, तब उसके परिवारवाले जमीन पर कुश की 'आसनी' बिछा देते हैं और रोगी को चारपाई पर से उठाकर इसी आसन पर जमीन पर 'लिटा' (सुला) देते हैं। इस प्रक्रिया को 'भुँड सेज देना' कहते हैं। 'भुँड सेज' का अर्थ है 'भूमि शय्या'। चूँकि मनुष्य पैदा होने पर जमीन पर ही 'गिरता' (आता) है; अतः मृत्यु के समय भी उसे पृथ्वी माता की शरण में ही रहना या जाना चाहिए। इसी भावना से प्रेरित होकर उसे 'भुँड सेज' दिया जाता है। इसके पश्चात् उसके परिवार के लोग तथा निकट-कुटुम्बी उसके चारों ओर बैठ जाते हैं और तुलसीकृत रामायण तथा गीता का पाठ करने लगते हैं। कुछ लोग 'रामधुन' करने में प्रवृत्त हो जाते हैं। ऐसा विश्वास है कि राम का नाम कानों में पड़ने से प्रेतात्मा को सद्गति प्राप्त होती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि :—

“कोटि कोटि मुनि जतन कराहों।  
अन्त राम कहि आवत नाही॥”



अर्थात् मुनि लोग भी करोड़ों प्रयास करते हैं, परन्तु अन्त समय में राम का नाम उनके मुँह से नहीं निकलता। इसी लिए घरवाले, रोगी से राम-नाम का उच्चारण करने के लिए बार-बार आग्रह करते हैं। परन्तु यदि किसी कारण वह राम, राम के उच्चारण में समर्थ नहीं है, तब अन्य लोग राम-धुन लगाकर उसके कर्ण-कुहरो में राम के नाम की ध्वनि को पहुँचाने का प्रयास करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि मनुष्य अन्त में जिस भावना से भावित होकर अपने शरीर को छोड़ता है, वह उसी भाव को प्राप्त करता है :—

“यं यं वापि स्मरन् भावं, त्यजन्त्ये ते कलेवरम्।

तं तमेवेति कोन्तेय ! सदा तद् भाव भावितः॥”

इसी भावना से प्रेरित होकर मृत्यु को प्राप्त होनेवाले उस व्यक्ति को राम-नाम की भावना से भावित कराया जाता है।

कुछ लोगों का विश्वास है कि रामायण का पाठ रोगी को आयुष्य प्रदान करता है और इसके ठीक विपरीत गीता का पाठ उसके जीवन का अवसान करने में सहायक होता है। अतः किसी वृद्ध की बीमारी में गीता का पाठ ही उचित समझा जाता है।<sup>१</sup>

मृत व्यक्ति यदि युवक और ‘कमासुत’ हुआ, तो उसके निधन पर घर के लोग रोना-पीटना शुरू करते हैं। वे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगते हैं, जिससे घर में कुहराम मच जाता है। रोने-धोने और चिल्लाने का यह क्रम कई दिनों तक चलता रहता है। दुर्भाग्यवश मृतात्मा यदि विवाहित हुआ, तो यह करुण-क्रन्दन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। उसकी तरुण पत्नी का रोना सुनकर पाषाण-हृदय भी टूक-टूक हो जाता है। उस विधवा का आर्तनाद बड़ा ही कारुणिक तथा हृदय-विदारक होता है। वह रोती नहीं, बल्कि ‘धिधियाती’ है। कुटुम्ब तथा गाँव की नयी तथा बूढ़ी सभी स्त्रियाँ वहाँ एकत्रित हो जाती हैं और उस विधवा को इस दारुण दुःख को सहने के लिए धीरज बँधाती हैं। इस सम्बन्ध में यह सूक्ति प्रसिद्ध है कि :—

“नयी राड़ रोवेली, पुरानी समुझावेली।

कठिन करऽ जियरा ए मोरी.....॥”

गाँव की स्त्रियाँ भी उसकी सहानुभूति में अनवरत अश्रुपात करती हैं और उसके भाग्य पर तरस खाती और विधाता को कोसती हैं। कितनी युवती स्त्रियाँ अपने सिर को जमीन पर पटककर अपना प्राण देने लगती हैं।<sup>२</sup>

पति के मरने के कुछ घण्टों के भीतर ही गाँव तथा पड़ोस की स्त्रियाँ उस विधवा के माँग का सिन्दूर पानी से धोने लगती हैं अथवा तेल लगाकर उसे मिटाना प्रारम्भ कर देती हैं। वे उसके हाथ की काँच की चूड़ियाँ—जो सौभाग्य का प्रतीक समझी जाती हैं—अतिशीघ्र फोड़ने में तत्पर हो जाती हैं और कुछ ही मिनटों में उस युवती की कोमल कलाई सौभाग्य के चिह्न से सूनी और उदासीन हो जाती है। इतना ही नहीं, बल्कि उस विधवा को अपनी रंगीन साड़ी का परित्यागकर, सफेद मारकीन का ‘लूगा’ (सारी) पहिनने के लिए बाध्य किया जाता है। इसके माथे की लाल बिन्दी—जो सौभाग्य का

१. एक सज्जन ने लेखक को बताया कि उनके पिता की आयु एक शताब्दी की सीमा का स्पर्श कर रही थी। सीढ़ी से गिर जाने से उनकी हड्डी टूट गयी थी, जिससे उनको अत्यन्त कष्ट था। इस कष्ट से मुक्ति के लिए उन्होंने गीता का पाठ करना प्रारम्भ किया। ज्योंही उन्होंने गीता के पारायण की समाप्ति की, ठीक उसी समय उनके पिता की जीवन-लीला भी समाप्त हो गयी।

२. प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने अपने बचपन में एक ऐसे ही कारुणिक दृश्य को देखा था। उसके पड़ोस की एक युवती स्त्री का पति, जो ‘कमासुत’ था और घर का एकमात्र भरण-पोषण करनेवाला था, की मृत्यु हो गयी थी। उसकी पत्नी उसके वियोग को न सहकर अपनी छाती को पत्थर से पीटने लगी। जब घर के लोगों ने उसके हाथ से पत्थर को छीन लिया, तब वह जमीन पर अपने सिर को पटकने लगी, जिससे उसके सिर से खून की धारा बहने लगी। बहुत समझाने पर भी वह किसी का कहना नहीं सुनती थी। अन्त में घर की दो-तीन स्त्रियों ने उसके हाथ तथा सिर को पकड़ लिया, जिससे वह उसे जमीन पर न पटक सके। कई दिनों तक यह क्रम चलता रहा। आज भी उस हृदय विदारक दृश्य को स्मरणकर मेरा हृदय काँप उठता है और उस विधवा की दुर्दशा को देखकर आँखों से आँसुओं की धारा अनायास प्रवाहित होने लगती है।



तिलक है—और टिकुली भी मिटाकर नष्ट कर दी जाती है। यदि कहीं उसने महावर अथवा किसी रंग का प्रयोग अपने शरीर के प्रसाधन के लिए किया हो, तो उसे भी धोकर साफ कर दिया जाता है। इस प्रकार पति की मृत्यु के कुछ मिनटों के भीतर ही वह सधवा विधवा हो जाती है और उसका कोमल कलेवर तथा काञ्चन काया उस ठूँठ (स्थानु) पेड़ के समान दिखाई पड़ने लगती है, जो पत्र-पुष्प से विरहित होने के साथ ही नीरस तथा शुष्क खड़ा होता है। इस प्रकार भोजपुरी प्रदेश की बाल अथवा युवती विधवा संसार की सबसे दयनीय, दुःखी तथा अभिशप्त प्राणी है, जिसका मुख देखना भी पाप समझा जाता है। वह ऐसा लावारिस जानवर है, जिसको पूछनेवाला कोई नहीं है और न जिसकी किसी को चिन्ता ही रहती है।

परन्तु यदि किसी वृद्ध-वरिष्ठ की मृत्यु होती है, यदि कोई बूढ़ा-ठूढ़ा मर जाता है, तब उसके परिवार वालों को कोई कष्ट नहीं होता। यदि वह बूढ़ा रोग से पीड़ित हो, पीड़ा तथा कष्ट पा रहा हो, तो घरवाले यही मनाते हैं कि उसकी जल्दी मृत्यु हो जाय और उस बूढ़े की सेवा करने से उनका पिण्ड छूट जाय। अतः ऐसे बूढ़े के मरने से दुःख के बदले सुख ही होता है? इच्छा न रहने पर भी बूढ़े के मरने पर भी घरवालों को लोक-लज्जा के कारण रोना ही पड़ता है। भोजपुरी समाज में ऐसे व्यक्ति को निन्दित समझा जाता है, जिसके मरने पर कोई रोनेवाला न हो। लोग घृणा की दृष्टि से यह कहते हैं कि “ए बूढ़वा के मरला पर केहू रोवे वाला भी नइखे”, अर्थात् इस वृद्ध के मरने पर कोई रोनेवाला भी नहीं है। अतः औपचारिक रूप से सही, बूढ़े व्यक्ति के भी मरने पर उसके परिवारवाले रोना अपना धर्म समझते हैं और अनिच्छया आँसू के दो-चार कतरे बहाते ही हैं।

अरथी—वृद्ध व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् हरे तथा कच्चे बाँस को मँगाकर उसकी ‘अरथी’ बनायी जाती है। इसे ‘टिकठी’ भी कहते हैं। इस अरथी पर मृतात्मा को लिटा दिया जाता है। परन्तु उस अरथी पर सुलाने के पूर्व उसके शरीर को नहलाया जाता है और उसे नवीन वस्त्र पहनाया जाता है, जो ‘कफन’ के नाम से प्रसिद्ध है। ‘कफन’ का कपड़ा सभी दूकानों पर नहीं मिलता। शहरों में इसके लिए एक निश्चित दूकान होती है, वहीं यह कपड़ा उपलब्ध होता है। कफन का कपड़ा ‘खस्ता’ और पतला सूती वस्त्र है, जो बड़ा सस्ता बिकता है। इसीलिए भोजपुरी समाज में गरीब तथा निर्धन व्यक्ति के लिए कहा जाता है कि “एकरा मरला पर कफनो ना जूरी”, अर्थात् इसके मर जाने पर इसे कफन भी नहीं मिलेगा। धनी तथा समृद्ध लोग कफन के ऊपर शाल-दुशाला ओढ़ाते हैं तथा उस अरथी को फूल-माला से सजाते हैं। जब अरथी तैयार हो जाती है, तब मृत व्यक्ति के चार पुत्र उस अरथी को अपने कंधों पर उठाकर उसे श्मशान घाट ले चलते हैं। यदि उस व्यक्ति के चार पुत्र न हों, तो घर के निकटतम सदस्य—भाई, भतीजा-आदि—उस अरथी में अपना कन्धा लगाते हैं। इसके साथ ही गाजा-बाजा का भी प्रबन्ध रहता है। अरथी के आगे बैण्ड बाजा बजता चलता है। परन्तु इसके अभाव में ‘चमरुआ’ बाजा भी प्रयोग में लाया जाता है। इसके पश्चात् अरथी चलती है, जिसे चार व्यक्ति अपने कंधों पर ढोते हैं। अरथी का ढोना पुण्य का कार्य समझा जाता है। अतः परिवार के, कुटुम्ब के तथा गाँव के सभी लोग बारी-बारी से इसमें कन्धा लगाते हैं।

इस श्मशान-यात्रा में पैसा लुटाया जाता है। परिवार का कोई व्यक्ति खील, मखाना, कौड़ी तथा पैसा, सबको मिलाकर, इन्हें एक झोला में रखकर अरथी के ऊपर फेंकता जाता है। मार्ग में गिरी हुई वस्तुओं को गरीब लोग लूटते हैं। इस प्रकार ‘पैसा लुटाना’ बड़ा ही सम्मान और आदर की वस्तु समझी जाती है। धनी लोग रुपयों को भी लुटाते हैं, जिनके लूटने-वालों की संख्या बहुत अधिक होती है।

अरथी को कन्धे पर ढोनेवाले लोग ‘राम नाम सत्त है, राम नाम सत्त है’ का उच्चारण करते जाते हैं और उनके बाद समस्त श्मशान-यात्री इसी की पुनरावृत्ति करते हैं। यद्यपि इस मन्त्र का अर्थ बड़ा सुन्दर है तथा यह एक शाश्वतिक सत्य का प्रतिपादन करता है; परन्तु श्मशान-यात्रा के अतिरिक्त इस मन्त्र का उच्चारण करना बुरा तथा अशुभ माना जाता है। रास्ते में शव को पाँच स्थानों पर जमीन पर रखना आवश्यक माना जाता है और इस समय पिण्डदान भी किया जाता है। इस श्मशान-यात्रा में भाग लेनेवाले सभी व्यक्तियों को नंगे सिर और नंगे पैर होना चाहिए। अरथी को ढोनेवाले व्यक्तियों के लिए तो जूता पहिनना अत्यन्त निषिद्ध है। चाहे कितनी भी ‘भूभुरि’ क्यों न हो, परन्तु इस यात्रा के यात्री पदाति और नंगे पैर ही चलते हैं।<sup>१</sup>

१. इस सम्बन्ध में एक निजी अनुभूत घटना का उल्लेख करना कुछ अनुचित न होगा। राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ज्ञानपुर (वाराणसी) के एक प्राध्यापक की स्त्री का देहावसान हो गया था, जिनकी अरथी को कन्धे पर उठाकर रामघाट ले जाने का सौभाग्य इस लेखक को भी प्राप्त हुआ था। गर्म के दिन थे। सूर्य की प्रखर किरणें ऊपर से पड़ रही थीं, जिससे सड़क की तारकोल भी पिघलने लगी थी। ऐसी सड़क पर अरथी लेकर चलना बड़ा ही कठिन कार्य था। पैरों में गर्म तारकोल चिपक जाती थी, जिससे बड़ा कष्ट होता था। सड़क का मार्ग समाप्त होने पर भूभूरि (गर्म बालू) से पाला पड़ा। ऐसा मालूम



श्मशान घाट पहुँचने पर शव को जलाने के लिए चिता बनायी जाती है। चन्दन की चिता प्रशस्त-पवित्र मानी जाती है, अतः धनी तथा समृद्ध लोग चन्दन की पावन लकड़ी से ही चिता को सजाते हैं। परन्तु साधारण व्यक्ति जो ऐसा करने में असमर्थ हैं, इस कार्य के लिए बेल, पलाश अथवा आम की लकड़ी का ही प्रयोग करते हैं; परन्तु वे भी पवित्रता की भावना से चिता के निर्माण में चन्दन के एक-आध टुकड़ों को अवश्य ही काम में लाते हैं। निर्धन मनुष्य आम के अभाव में किसी भी लकड़ी तथा उपले (गोंडठा) की सहायता से इस कार्य का सम्पादन करते हैं। चिता तैयार हो जाने पर शव को उस पर सुला दिया जाता है। परन्तु इस बात का ध्यान रखा जाता है कि शव का पैर दक्षिण दिशा की ही ओर हो, क्योंकि यही यमराज की दिशा है।

अब दाह-संस्कार का कार्य प्रारम्भ किया जाता है, जिसे 'मुँह में आग देना' कहते हैं। काशी में इस कार्य के लिए अग्नि स्थानीय डोम से माँगी जाती है, जो इसके लिए मनमानी फीस वसूल करता है। गाँवों में जहाँ ऐसी व्यवस्था नहीं है, घरवाले ही आग को प्रज्ज्वलित करते हैं। वृद्ध व्यक्ति का पुत्र या पौत्र अथवा उसके परिवार का कोई निकट व्यक्ति दाह-संस्कार का कार्य करता है। वह जलती हुई आग को लेकर चिता की तीन या पाँच बार प्रदक्षिणा करता है और प्रत्येक उस अग्नि का मृत व्यक्ति के सिर से स्पर्श कराता है। इसी प्रक्रिया को 'मुँह में आग देना' कहा जाता है।

### दाह-संस्कार

पिता की मृत्यु पर दाह-संस्कार का अधिकार उसके ज्येष्ठ पुत्र को प्राप्त है, परन्तु उसकी अनुपस्थिति में छोटा पुत्र भी इस कार्य को कर सकता है। भोजपुरी प्रदेश के कुछ जिलों में 'दाही'—दाह-संस्कार करनेवाला व्यक्ति—के लिए मुँह में आग देने के पहिले ही सिर के बालों को श्मशान में ही मुँडवाना आवश्यक है, परन्तु कुछ जिलों में यह कार्य 'दशाह' के दिन किया जाता है। चिता में आग लगाने के पहिले पिण्डदान आदि की विधि का सम्पादन होता है। फिर उसमें आग लगा दी जाती है। जब चिता धाँय-धाँयकर जलने लगती है, तब सभी श्मशान-यात्री चिता से कुछ दूरी पर बैठ जाते हैं। कुछ देर में 'दाही' एक लम्बा सा बाँस लेकर जलते हुए शव के सिर पर उससे प्रहार करता है। इस विधि को 'कपाल-क्रिया' कहते हैं। आजकल यह शब्द हिन्दी में मुहावरे के रूप में प्रयुक्त होने लगा है, जिसका अर्थ है, लाठी से किसी का सिर फोड़ना। सभी लोग श्मशान में तब तक बैठे रहते हैं, जब तक लाश अच्छी तरह से जल न जाय। अन्त में घरवाले चिता में से मृतात्मा की अस्थि का चयन करते हैं, जिसे 'फूला' कहा जाता है। इस 'फूला' को वे मिट्टी के किसी नवीन पात्र में रखते हैं और काशी, प्रयाग अथवा हरिद्वार में उसे ले जाकर गंगा की पावन धारा में प्रवाहित कर देते हैं। शव के जल जाने पर उसकी राख को नदी में फेंक देते हैं। चिता के स्थान को जल से धोकर वहाँ ३६ (छत्तीस) का अंक लिख दिया जाता है, जिसका भाव यह है कि इस व्यक्ति का अब इस संसार से सदा के लिए नाता टूट गया। इसके बाद सभी लोग घर लौट आते हैं। परन्तु अपने गृह के भीतर प्रवेश करने के पहिले वे पैरों को धोते हैं, पत्थर को छूते और नीम की पत्तियों को स्पर्श करते हैं, जिससे प्रेत व्यक्ति की आत्मा घर के भीतर घुसने न पाये।

दूसरे दिन प्रातःकाल नाई और ब्राह्मण (पुरोहित) बुलाये जाते हैं। 'दाही' उनके साथ जाकर किसी पीपल के पेड़ की शाखा में मिट्टी के घड़े (घण्ट) को बाँधता है, जिसे 'घण्ट बाँधना' कहते हैं। स्नान करने के पश्चात् 'दाही' इसी 'घण्ट' में तिल और कुश से युक्त जलाञ्जलि देता है और उस पीपल की पाँच बार प्रदक्षिणाकर उस वृक्ष की जड़ में भी जल 'चढ़ाता' है। लोगों का यह विश्वास है कि 'घण्ट' में दिया गया जल परलोक में प्रेतात्मा को प्राप्त होता है। सन्ध्याकाल में भी पुनः इसी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति की जाती है। घण्ट टाँगने या बाँधने के दिन कुटुम्ब के सभी व्यक्तियों को भोजन के लिए निमन्त्रित किया जाता है। इस दिन दाल में हल्दी नहीं डाली जाती और न भोजन के लिए शाक ही बनाया जाता है। अन्य लोगों के लिए तो पत्तल में भात और दाल परोसी जाती है, परन्तु 'दाही' मिट्टी की नयी कड़ाही अथवा मिट्टी के ही किसी दूसरे पात्र में भोजन करता है। भोजन के पहिले थोड़ा-सा कच्चा दूध पीना सभी के लिए आवश्यक माना जाता है। इस विधि-विधान को 'दूध लगाना' की संज्ञा प्राप्त है। भोजपुरी प्रदेश की कर्कशा स्त्रियाँ किसी को गाली देते समय चिल्ला-चिल्ला कर कहती हैं "तोहार दूध लगावों", इस गाली में उसी प्रथा की ओर संकेत किया गया है, जो अशुभ मानी जाती है।

होता या कि पैर जलकर 'बुझुना' हो जायेगा। किसी प्रकार 'राम नाम सत्त है' कहते हुए रामघाट पहुँचे। उन श्मशान-यात्रियों में कितने ही अध्यापक नंगे पैर—वह भी भूमर में—चलने के बिल्कुल ही अभ्यासी नहीं थे। अतः उनके पैरों में फफोले पड़ गये, जिसके कारण उन्हें 'कँजुअल लीव' लेनी पड़ी। परन्तु रामघाट जाकर भी राम की कृपा से अपने राम आराम से घर लौट आये।



भोजन के पश्चात् 'दाही' उस भोजन-पात्र को किसी खेत में ले जाकर रख देता है। इस प्रकार 'दूध-लगाना' की विधि समाप्त हो जाती है।

दाही सन्ध्या के समय पुनः पीपल के 'घण्ट' में जलाञ्जलि प्रदान करता है, तथा पुनः इस वृक्ष की प्रदक्षिणा करता है। घर लौटकर आने पर उसे कुछ विधि-विधान करना पड़ता है। वह सरकण्डे की तीन पतली लकड़ी, जो 'टिकठी' कहलाती है, के ऊपर एक दोना रखता है। फिर इसी दोने में वह तिल और जल को स्थापित करता है। पुरोहित जी मन्त्रों द्वारा कुछ पूजा कराते हैं। इसके पश्चात् 'टिकठी' तथा 'दोने' को उठाकर फेंक देते हैं।

## (२) अनुच्छेद—दाही की वेश-भूषा, दैनिक चर्या तथा विधि-निषेध

जो व्यक्ति शव का दाह-संस्कार करता है, उसे 'दाही' कहा जाता है। दाह-संस्कार को सम्पादित करने के पहिले ही वह अपने पुराने वस्त्रों का परित्याग कर नवीन वस्त्रों को धारण करता है। वह अपने कमर में दो हाथ की लुंगी पहिनता है और शरीर के ऊपरी भाग को डेढ़ या दो हाथ की गम्छी (तौलिया) से आच्छादित किये रहता है। श्राद्ध-काल के अन्त तक उसके लिए निम्नांकित वस्तुओं को धारण करना अथवा उन्हें उपयोग में लाना निषिद्ध है:—

### निषेध

- (१) उसे जूता नहीं पहिनना चाहिए।
- (२) सिर पर छाता नहीं लगाना चाहिए।
- (३) किसी सिले हुए वस्त्र को पहिनना उसके लिए निषिद्ध है।
- (४) उसे किसी प्रकार का प्रसाधन करना मना है।
- (५) तेल लगाना वर्जित है।
- (६) न तो दाही किसी अन्य व्यक्ति को स्पर्श करे और न दूसरे व्यक्ति ही उसे छुवें।
- (७) दाही पलंग, चारपाई या खाट पर कदापि शयन न करे।
- (८) वह किसी को प्रणाम न करे और न किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा प्रणाम किये जाने पर उसका कोई उत्तर दे।
- (९) वह मिट्टी के पात्र को छोड़कर किसी अन्य पात्र में भोजन न करे।
- (१०) ग्राम की सीमा को छोड़कर कहीं अन्यत्र कदापि न जाय।

## (३) अनुच्छेद—विधि

दाही के लिए अनेक विधियों का भी विधान किया गया है, जिनको पालन करना उसका परम कर्तव्य है:—

- (१) दाही को सदा जमीन अथवा काठ की बनी चौकी (तखत) पर सोना चाहिए।
- (२) उसे अपने साथ बाँस की छड़ी, जिसमें लोहा बाँधा गया हो, रखना चाहिए।
- (३) उसे दिन में प्रातः तथा सन्ध्या-काल—दो बार—स्नान करना चाहिए।
- (४) नियमित रूप से 'गरुड़-पुराण' की कथा सुनना उसके लिए आवश्यक है।
- (५) श्राद्ध-काल में उसे जितेन्द्रिय, सदाचारी, तथा आचार-विचार से रहना चाहिए।
- (६) उसे केवल कम्बल ही बिछाना और उसी को ही ओढ़ना चाहिए। क्योंकि अन्य आच्छादन अशुद्ध होने के कारण उसके लिए वर्जित हैं।

दाही प्रातः तथा सायं—दो बार स्नान कर घट में तिलाञ्जलि देता है। शाम को कुछ पूजा-पाठ भी करता है। वह दोनों 'जून' (समय) मिट्टी के पात्र में भोजन करता है। दिन में गुरु अथवा पुरोहित जी उसे 'गरुड़-पुराण' पढ़कर सुनाते हैं, जिसमें स्वर्ग और नरक का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। मृत्यु के पश्चात् प्रेत मनुष्य की आत्मा कहाँ-कहाँ विचरती है, इसका भी इसमें विशेष विवरण है। दाही अपने घर या गाँव की सीमा का अतिक्रमण नहीं कर सकता। अतः लगभग १३ दिनों तक वह घर पर ही रहता और दैनिक कार्यों का सम्पादन करता है।

## (४) अनुच्छेद—महाब्राह्मण को दान-दक्षिणा

घण्ट में प्रतिदिन तिलाञ्जलि देने की यह प्रक्रिया लगातार नौ दिनों तक चलती रहती है। दसवें दिन—जिसे 'दशाह' कहा जाता है—दाही अपने सिर, दाढ़ी और मूँह के बालों को उस्तरे (छुरे) से मुँड़वाता है। इसके पश्चात् परिवार, कुटुम्ब



तथा गाँव के अन्य व्यक्ति क्षौर-कर्म करवाते हैं। इस दिन पिण्डदान भी किया जाता है। चावल को दूध में पकाकर उसमें चीनी या गुड़, घी तथा मधु डालते हैं। इस प्रकार जो 'हविष्य' तैयार होता है, उसी को गोल-गोल आकृति में बनाकर पिण्ड के रूप में उसका दान करते हैं। गाँव के पुरोहित या कुल-गुरु वैदिक रीति से 'दशाह' के दिन पिण्डदान की समस्त प्रक्रिया को विधिवत् सम्पादित कराते हैं।

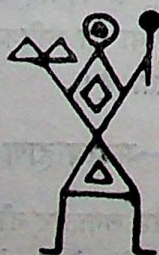
इसी दिन दान देने के लिए महाब्राह्मण बुलाया जाता है। इस जाति के लोग भी ब्राह्मण ही होते हैं, परन्तु प्रेत का दान लेने के कारण ये कुछ अपमान तथा घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं। पिण्डदान की विधि के पश्चात् एक कटोरी में कच्चा दूध रखा रहता है, जिसको महाब्राह्मण—जो 'महापात्र' के नाम से भी प्रसिद्ध है—के लिए पीना आवश्यक है। इस दुग्धपान को 'तियाग पीना' कहा जाता है। इस थोड़े-से दूध को पीने के लिए ये मनमानी दक्षिणा माँगते हैं, जो पाँच रुपये से लेकर पाँच सौ रुपयों तक हो सकती है। धनी तथा समृद्ध लोगों से ये इस काम के लिए हजारों रुपये वसूल करते हैं। मृत व्यक्ति जितना ही अधिक 'कमासुत' होता है, इनकी माँग उतनी ही अधिक होती है। ये लोग बड़े ही कठोर हृदय, निर्मम, हृदयहीन तथा निर्दयी होते हैं। किसी के घर एकमात्र कमासुत व्यक्ति की मृत्यु हो गयी है, इस घटना से इन्हें तनिक भी दुःख नहीं होता और सहानुभूति दिखलाने के ठीक विपरीत ये लोग अनार्य आचरण करते हैं। लोगों की यह धारणा है कि जब तक महाब्राह्मण 'तियाग' नहीं पीता, तब तक श्राद्ध का कार्य समाप्त नहीं समझा जाता। जनता के इस अन्धविश्वास का ये लोग नाजायज फायदा उठाते हैं और गरीब तथा धनी सभी लोगों को समान रूप से परेशान करते हैं और उन्हें चूसते हैं। मुंहमागी फीस मिलने पर ही ये 'तियाग' पीने के लिए तैयार होते हैं। यदि ले-देकर किसी प्रकार यह कार्य पूरा भी हो गया, तो 'घण्ट' फोड़ने के लिए भी ये दक्षिणा चाहते हैं। इसके लिए भी अधिक रुपयों का 'डिमाण्ड' करते हैं। अपनी मुंहमागी फीस मिलने पर ही ये घण्ट को फोड़ने के लिए तैयार होते हैं।

इन दोनों कृत्यों की समाप्ति के पश्चात् महाब्राह्मण को भी भोजन कराया जाता है, तथा शय्या-दान दिया जाता है, जिसे 'सेजिया-दान' कहते हैं। शय्या-दान में चारपाई, तोसक, तकिया, रजाई, कम्बल आदि सभी वस्तुएँ होती हैं। महाब्राह्मण जब जाने लगते हैं, तब उनके पीछे आग की 'लुकाड़ी' माँजी जाती है, जिसका अभिप्राय यह है कि इन महापात्रों को पुनः आने का न अवसर मिले।

### (५) अनुच्छेद—तेरही तथा ब्रह्मभोज

दाह-संस्कार के तेरहवें दिन श्राद्ध-सम्बन्धी अन्तिम कृत्य सम्पादित किया जाता है, जिसे 'तेरही' कहते हैं। इस दिन ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है। श्राद्ध में उड़द (माव) का खिलाना आवश्यक माना जाता है। अतः उड़द की दाल का 'फुलवरा' ब्रह्मभोज का एक आवश्यक अंग है। निमन्त्रित ब्राह्मणों के अतिरिक्त इस दिन कुछ अनिमन्त्रित ब्राह्मण भी भोजन के लिए आ घमकते हैं, जिन्हें 'करन्न' कहा जाता है। ये बड़े ही भोजनभट्ट होते हैं। इन्हें प्रायः दही-चिउड़ा अथवा माट्टा और दही खिलाया जाता है। इन करन्नों के अतिरिक्त कुछ तथाकथित अस्पृश्य जाति के लोग—जिनमें डोम प्रधान है—भी भोजन के लिए बिना बुलाये ही आ जाते हैं, जिन्हें खिलाना ही पड़ता है। जनता की यह दृढ़ धारणा है कि जब तक ये लोग गले भर तक भोजन करके 'जय हो', 'जय हो' न चिल्लाने लगे, तब तक इनकी तृप्ति नहीं समझनी चाहिए। अतः इनको ठूस-ठूसकर खिलाया जाता है।

ब्रह्मभोज के दिन जितने ही अधिक ब्राह्मणों को भोजन कराया जाय, उतना ही अधिक गौरव तथा सम्मान की बात समझी जाती है। अतएव कुछ लोग अपनी शक्ति से भी अधिक द्रव्य इस कार्य में खर्च करते हैं। श्राद्ध-संस्कार का अन्तिम 'आइटम' यही ब्रह्मभोज है, जिसकी तेरही के दिन समाप्ति के साथ श्राद्ध-कर्म भी समाप्त समझा जाता है।





## अध्याय-६

### प्रथाएँ

० ०

भोजपुरी क्षेत्र में ऐसी अनेक प्रथाएँ प्रचलित हैं, जिनका अन्य राज्यों में प्रायः अभाव है। इन प्रथाओं में प्रधानतया निम्नलिखित की गणना की जा सकती है:—

- |                        |                        |
|------------------------|------------------------|
| (१) परदा की प्रथा      | (२) छुआछूत की प्रथा    |
| (३) तिलक-दहेज की प्रथा | (४) बाल-विवाह          |
| (५) वृद्ध-विवाह        | (६) अनमेल विवाह        |
| (७) विधवा-विवाह        | (८) बहुविवाह           |
| (९) मृत्यु-भोज तथा     | (१०) गायद्वार की प्रथा |

यदि उपर्युक्त प्रथाओं को कुप्रथा की संज्ञा दी जाय, तो कुछ अनुचित न होगा, क्योंकि इन प्रथाओं के प्रचलन के कारण भोजपुरी समाज का नैतिक पतन तथा सामूहिक ह्रास हो रहा है। इन प्रथाओं के कारण जन-जीवन कितना दुःखी, अव्यवस्थित तथा विशीर्ण हो गया है, इसके वर्णन की आवश्यकता नहीं है। इन प्रथाओं का जितना ही शीघ्र नाश हो जाय, समाज के लिए उतना ही कल्याणकारी होगा।

#### (१) अनुच्छेद—परदा की प्रथा

भोजपुरी क्षेत्र को यदि पर्दे की प्रथा का गढ़ कहें, तो कुछ अनुचित नहीं होगा। भारतवर्ष के किसी भी राज्य में पर्दे की प्रथा नहीं पायी जाती। बंगाल, असम, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र किम्बहुना तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल राज्यों में इस प्रथा का अत्यन्तभाव है। वहाँ की स्त्रियाँ स्वतन्त्र रूप से पर-पुरुषों से बातचीत कर सकती हैं और जहाँ चाहें, वहाँ आ-जा सकती हैं। अधिक तो क्या, उत्तरप्रदेश के भी उत्तरी, पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों में इस प्रथा को 'अदर्शन लोपः' की संज्ञा दी जा सकती है। इस राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों (गढ़वाल और कुमायूँ) की स्त्रियाँ खेतों में जाकर काम करती हैं। मेरठ जनपद की जाट स्त्रियाँ भी पुरुषों के कन्धे-से-कन्धा मिलाकर काम करती हैं। बुन्देलखण्ड तथा बघेलखण्ड में भी इस प्रथा का सर्वत्र अभाव है। परन्तु यह बड़े कुतूहल तथा आश्चर्य का विषय है कि उत्तरप्रदेश के पूर्वी भागों तथा बिहार राज्य के पश्चिमी जिलों में यह प्रथा अब तक कैसे सुरक्षित बच गयी। समाजशास्त्रियों के लिए निश्चय ही यह उनके अध्ययन का विषय है। जिस प्रथा का अस्तित्व भारत में ही नहीं, संसार के किसी भी भू-भाग में नहीं पाया जाता, उसका एकच्छत्र साम्राज्य भोजपुरी क्षेत्र में आज भी किस प्रकार बना हुआ है, यह कुछ कम आश्चर्य का विषय नहीं है।

भोजपुरी क्षेत्र की स्त्रियाँ पर्दे की प्रथा का बड़ी कठोरता के साथ पालन करती हैं। पर-पुरुष से बातें करना उनके लिए निषिद्ध है। वे अपने घर के भी भसुर, ससुर और अन्य पुरुषों से बात-चीत नहीं कर सकतीं। किम्बहुना, पुरुष की बात तो दूर रही, स्त्रियाँ अन्य स्त्रियों से भी पर्दा करती हैं। नव-विवाहिता वधू पर्दे की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। वह अपने सिर के ऊपर से एक हाथ लम्बा 'धूँघट' निकालकर चलती है, जिससे उसके मुख को कोई देख न ले। इसीलिए भोजपुरी लोकगीतों की नायिका 'साँवर-गोरिया' के चन्द्रवदन का दर्शन करना कोई हँसी-खेल नहीं है। किसी-किसी पुण्यात्मा पुरुष को ही उसका दर्शन प्राप्त होता है। नवेली वधू अपनी सास, जेठानी तथा घर की अन्य स्त्रियों से भी धूँघट काढ़ कर ही बातें करती है।

भोजपुरी स्त्रियाँ अपने पति से भी पर्दा करती हैं। वे दिन में अपने प्राणनाथ से, सास और ननद के सामने बात नहीं कर सकती हैं। संयुक्त परिवार में पति के लिए दिन में अपनी पत्नी का दर्शन करना असम्भव ही समझना चाहिए।



रात्रि में भी वह चोर की भाँति ही उसके शयनकक्ष में धीरे-धीरे प्रवेश करता है, जिससे घर के अन्य सदस्य कहीं जाग न जायें।<sup>१</sup>

भोजपुरी क्षेत्र में पर्दे की इस प्रथा ने अपनी सीमा का अतिक्रमण कर दिया है; जिससे अनेक हानियाँ हो रही हैं। भीषण गर्मी के दिनों में भी पालकी में बैठकर अपनी ससुराल जानेवाली वधू को कोई देख न ले, इसीलिए उसकी पालकी के दरवाजे अच्छी तरह से बन्द कर दिये जाते हैं। इतना ही नहीं, उस पालकी को एक कपड़े से ढक दिया जाता है जिसे 'ओहार' कहते हैं। इस प्रकार उस बन्द पालकी के बन्द कमरे में हवा का भी प्रवेश होना कठिन है। ऐसी परिस्थिति में गर्मी में तड़फड़ाती हुई बेचारी वधू के प्राण पखेरू उड़ जाते हैं और इस प्रकार वह पर्दे की प्रथा पर अपने प्राणों का बलिदान कर देती हैं।

विवाह के दिनों में रेलगाड़ियों में चलनेवाली वधुओं का खो जाना अथवा भ्रम से किसी दूसरी वधू के साथ बदल जाने की भी घटनाएँ प्रायः सुनने में आती हैं।<sup>२</sup> यह पर्दे की कुप्रथा का ही परिणाम समझना चाहिए।

भोजपुरी लोक-साहित्य में भी पर्दे की प्रतिध्वनि सुनायी पड़ती है। इस प्रथा के अनुसार बहू अपने भसुर (पति के बड़े भाई) से बातें नहीं कर सकतीं। कोई भसुर काम-वासना से पीड़ित होकर अपनी भवहि (छोटे भाई की स्त्री) से सुरत-सम्भोग करने लगता है। भवहि लज्जा के आधिक्य से अपने भसुर से इस अनौचित्य के प्रति अपना विरोध प्रकट करने में असमर्थ है। इसी भाव को द्योतित करनेवाली यह लोकोक्ति समाज में प्रचलित है।

“लाजे भवहि बोलसु ना।

सवादे भसुर छोड़सु ना॥”

यह अनुचित तथा अनर्थ कार्य केवल पर्दा-प्रथा तथा लज्जा के कारण ही सम्भव है। अन्यथा ऐसे कामी भसुर की 'कपालक्रिया' करने में भी कोई दोष नहीं है। लोकगीतों में भी पर्दे की प्रथा का उल्लेख पाया जाता है। नवेली बहू के पालकी में बैठकर जाने का उल्लेख अनेक गीतों में पाया जाता है।

## (२) अनुच्छेद—छुआछूत की प्रथा

स्पृश्यास्पृश्य की प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। यों तो सम्पूर्ण देश में छुआछूत की प्रथा किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है, परन्तु इस क्षेत्र में इसका अखण्ड साम्राज्य पाया जाता है। भोजपुरी क्षेत्र के उच्चवर्ग के लोग शूद्रों के हाथ का छुआ हुआ जल ग्रहण नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त कुछ पेशेवाली ऐसी जातियाँ (Occupational Castes) भी हैं, जिनके द्वारा प्रदत्त भोजन तथा जल स्वीकार नहीं किया जाता।

स्पृश्यास्पृश्य की आधारशिला भोजन है। भोजपुरी क्षेत्र में यह (भोजन) दो प्रकार का माना जाता है। (१) पक्का भोजन तथा (२) कच्चा भोजन। घी में पकायी गयी पूड़ी और कचौड़ी पक्का भोजन माना जाता है। इसे ब्राह्मणलोग क्षत्रिय तथा वैश्य के घर में कर सकते हैं। शास्त्रों के अनुसार केवल घी, दूध और आग के पकाये गये भोजन में किसी प्रकार का दोष नहीं होता।

“घृत पक्वं, पयः पक्वं, पक्वं केवल वह्निना।

..... तत्र दोषो न विद्यते॥”

१. भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने अपनी 'आत्मकथा' में भोजपुरी क्षेत्र में प्रचलित पर्दे की प्रथा के सम्बन्ध में अपनी आप-बीती का बड़ा सजीव तथा रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है। अतः इस विषय के लिए उस पुस्तक को पढ़ना चाहिए।

२. प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक अपने मित्र के गवने में बंगाल गया था। गवना के बाद बहू को विदा कराकर के सभी बाराती सोनपुर आये, जहाँ गाड़ी बदलनी थी। वहाँ नयी बहू को एक स्थान पर बैठा दिया गया और अन्य पुरुष भोजनादि के लिए अन्यत्र चले गये। लौटकर आने पर देखा गया कि बहू अपने स्थान पर नहीं है। यह देखते ही सब के होश हिरन हो गये। बहू की खोज होने लगी। पति को अपनी बहू को पहिचानने के लिए कहा गया, परन्तु उन्होंने अपनी स्त्री को पहिले कभी देखा ही नहीं था, अतः उन्होंने उसे पहिचानने में अपनी असमर्थता प्रकट की। हम लोगों के लिए वधू का पता लगाना एक समस्या बन गयी। इतने में ही हम लोगों ने देखा कि एक स्थान पर कुछ स्त्रियाँ घूँघट काढ़े हुए बैठी हुई हैं, जिसमें एक स्त्री के पैर में महावर लगाया गया है। फिर हम लोगों ने एक अन्य स्त्री के माध्यम से उसका नाव-गाँव पूछा। जब उसने बताया कि मेरा गाँव अमुक है, तब हम लोगों की जान-में-जान आयी, अन्यथा हम लोगों की सारी चतुराई उस दिन मिट्टी में मिल जाती।



चूँकि पूड़ी और कचौड़ी, घी में पकायी जाती है, खीर दूध में बनायी जाती है और चना तथा मक्का के बुझना को भाड़ में (आग में) भूना जाता है। अतः इन पदार्थों के खाने में दोष नहीं माना जाता। अतएव पुराणपन्थी पण्डित भी पक्का भोजन करने से कभी इन्कार नहीं करते। कुछ विशिष्ट पाखण्डी लोग दूध (जल में नहीं) में साने गये आटे से घी में पकायी गयी पूड़ी को ही पवित्र मानते हैं।

स्पृश्यास्पृश्य का विशाल प्रासाद कच्चे भोजन की कच्ची नींव पर ही निर्मित है। कच्चा भोजन में भात और रोटी—दोनों ही की गणना की जाती है। उत्तरप्रदेश के पर्वतीय जिलों में किसी दूसरे के घर रोटी खाना अपवित्र नहीं माना जाता, परन्तु भात खाना अत्यन्त निषिद्ध है। भोजपुरी क्षेत्र में ब्राह्मण भी आपस में एक-दूसरे का छुआ हुआ भोजन ग्रहण नहीं कर सकते। किसी सरयूपारीण ब्राह्मण का कान्यकुब्ज ब्राह्मण के घर 'कच्चा भोजन' करने की बात तो दूर रही, सरयूपारीण भी एक-दूसरे का पकाया हुआ भोजन ग्रहण नहीं करते। कान्यकुब्जों की भी यही दशा है। इसी लिए उनके विषय में यह कहावत प्रसिद्ध हो गयी है कि "तीन कनौजिया तेरह चूल्हा"। सरयू के पार रहनेवाले ब्राह्मणों की भी यही दशा समझनी चाहिए। इन ब्राह्मणों में भी "तीन और तेरह" का बड़ा विचार किया जाता है। गर्ग, गौतम और शाण्डिल्य गोत्रवाले ब्राह्मण अपने को श्रेष्ठ समझते हैं और वे अपने गोत्र से इतर ब्राह्मणों को, भोजन के विषय में, अस्पृश्यवत् मानते हैं। ग्रामीण लोगों की यह दृढ़ धारणा है कि चूँकि छुआछूत का आधार कच्चा भोजन, विशेषकर भात, है। अतः भात खाने के लिए ब्राह्मण की भी उपजाति का जानना आवश्यक है। इस भात का इतना महत्त्व है कि पुत्री के विवाह के अवसर पर वर का पिता जब तक विवाह-मण्डप में भात नहीं खाता, तब तक वैवाहिक विधि-विधान सम्पूर्ण नहीं माना जाता। विवाह-सम्बन्ध भी उसी व्यक्ति से स्थापित किया जाता है, जिसके यहाँ भात खाने में कोई आपत्ति नहीं ज्ञात होती।

इस प्रदेश में उच्चवर्ग के लोग तथाकथित अस्पृश्यों को अछूत समझते हैं। वे उनके स्पर्श से ही अपवित्र हो जाने की मिथ्या भावना को अपने हृदय में सँजोये रहते हैं। इसलिए अस्पृश्यों का गाँव के बीच में रहना इनके लिए अभीष्ट नहीं है। हरिजन लोग अपना घर गाँव के बाहर बनाते हैं और उसी के आसपास स्थित कुओं से ही पानी ले सकते हैं; अन्य से नहीं। यद्यपि ये अस्पृश्य जातियाँ उच्चवर्ग के लोगों की सेवा पर तत्पर रहती हैं, फिर भी ये लोग इनके साथ मानवोचित व्यवहार नहीं करते।

स्पृश्यास्पृश्य की यह भावना इतनी अधिक व्याप्त हो गयी है कि अछूत जातियों में भी ऊँच-नीच की भावना विद्यमान है और एक अस्पृश्य जाति का सदस्य दूसरे से अपने को श्रेष्ठ समझता है, तथा उसके हाथ का भोजन ग्रहण नहीं कर सकता।

कुछ ब्राह्मण ऐसे भी पाये जाते हैं, जो अपने को छोड़कर किसी भी दूसरे ब्राह्मण—चाहे वह अपने परिवार ही का सदस्य क्यों न हो—के हाथ का छुआ भोजन कदापि ग्रहण नहीं कर सकते। ये 'स्वयंपाकी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। सम्भवतः ये लोग अपनी स्त्री के द्वारा पकाये गये भोजन को भी अशुद्ध मानते हैं। इसे स्पृश्यास्पृश्य की भावना की चरम सीमा ही समझना चाहिए।

रामानुजाचार्य के अनुयायी रामानुजी वैष्णव तब तक किसी ब्राह्मण के द्वारा स्पृष्ट भोजन नहीं कर सकते, जब तक उसने अपने शरीर को तप्त मुद्रा—अर्थात् विष्णु के चिह्न—शंख और चक्र—से अंकित न कराया हो। इस सम्प्रदाय के अनुयायी दृष्टिदोष को भी मानते हैं। अर्थात् किसी व्यक्ति ने उनके भोजन को केवल देख लिया, तो वह दृष्टिदोष से दूषित हो जाता है और वह उनके लिए उच्छिष्ट भोजन के समान है।<sup>१</sup> अतः त्याज्य है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह पाखण्ड और ढोंग की पराकाष्ठा है। इन ब्राह्मणों ने भोजन में स्पृश्यास्पृश्य की भावना को ही अपना परम धर्म समझ लिया। चाहे उनका चरित्र कितना भी पतित क्यों न हो, आचरण कितना भी भ्रष्ट क्यों न हो; परन्तु वे इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं करते। उन्हें केवल एक बात की ही चिन्ता रहती है कि "मुझे छुओ मत।"

### (३) अनुच्छेद—तिलक-दहेज की प्रथा

प्राचीन भारत में धर्मशास्त्रकारों के द्वारा कन्या-शुल्क का उल्लेख पाया जाता है। अर्थात् वर-पक्ष के द्वारा कन्या के

१. प्रस्तुत लेखक को एक रामानुजी वैष्णव की एक बारात में सम्मिलित होने का सौभाग्य या दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है, जो दृष्टिदोष के अनुयायी हैं। विवाह के मण्डप में केवल उनके सम्बन्धी ही भात खाने के लिए बैठे थे। परन्तु उन लोगों की दृष्टि से उनका भोजन दूषित न हो जाय, अतः वे लोग दूर एक धिरे हुए स्थान में भोजन के लिए बैठे, जहाँ दूसरों की दृष्टि नहीं जा सकती थी। इस प्रकार उन्होंने अपने धर्म की रक्षा की।



पिता को धन तथा आमूषण देने की प्रथा थी। परन्तु आजकल भी भोजपुरी क्षेत्र में एक ऐसी कुत्सित प्रथा प्रचलित है, जो तिलक-दहेज के नाम से प्रसिद्ध है। इसे वर-शुल्क की संज्ञा दी जाय, तो कुछ अनुचित न होगा। इस क्षेत्र में जब कन्या विवाह की अवस्था को प्राप्त हो जाती है, तब उसका पिता किसी योग्य वर की खोज में निकलता है। वह उस व्यक्ति के घर जाता है, जिसका पुत्र विवाह करने के योग्य है। वर का पिता कन्या के पिता से तिलक के रूप में धन का 'डिमाण्ड' करता है। यदि कन्या का पिता इस अभीष्ट धनराशि को देने में समर्थ होता है, तभी यह विवाह सम्पन्न हो सकता है, अन्यथा नहीं।

तिलक की धनराशि जिन आवश्यक तत्वों (Factors) पर आश्रित रहती है, उनमें प्रधानतया निम्नांकित हैं।

- (१) वर के पिता की अचल सम्पत्ति।
- (२) वर के पिता का पद तथा आमदनी।
- (३) चल सम्पत्ति तथा वैभव।
- (४) कुल और वंश की उच्चता।
- (५) वर की शिक्षा, योग्यता, रूप-रंग तथा आय।

इन पाँचों तत्वों के कारण वर का बाजारू मूल्य (Market value) बहुत अधिक बढ़ जाता है।

(१) वर का पिता अपने पुत्र के विवाह में जब तिलक का डिमाण्ड करता है, तब उसे अपनी अचल सम्पत्ति का गर्व रहता है। इस सम्पत्ति के अन्तर्गत खेत और मकान की गणना की जाती है। जिस व्यक्ति के पास जितना ही अधिक खेत होगा, वह उतना ही अधिक तिलक माँगता है। लोग यह बड़े गर्व से कहते हैं कि मेरे पास १०० बीघा अथवा २०० बीघा खेत है और मेरे घर हजारों मन अन्न की राशि उत्पन्न होती है। इन लोगों को अपने मकान का भी कुछ कम अहंकार नहीं होता। यदि मकान मिट्टी का बना हुआ है, तो ये लोग उसमें बाहर से आधे ईंटे की 'छल्ली' जोड़वा देते हैं, जिससे नये आगन्तुक को कच्चा मकान भी पक्का के रूप में दिखायी पड़े। परन्तु वास्तव में ईंटे का बना हुआ पक्का मकान है, तो फिर क्या पूछना। इसे सोने में सुगन्ध ही समझना चाहिए। जिसके पास सौ-दो सौ 'बिगहा' खेत हो और संयोग से मकान भी पक्का हो, तो उसकी सम्पत्ति की प्रशंसा करते हुए लोग नहीं अघाते।

गाँवों में किसी की अचल सम्पत्ति—खेती—का अनुमान उसके घर चलनेवाले हलों की संख्या से की जाती है। यदि किसी के यहाँ एक-दो हल चलता हो, तो साधारण गृहस्थ माना जाता है। परन्तु जिसके यहाँ दस या पन्द्रह हल चलते हैं, उसकी खेती सैकड़ों बीघों से अधिक की समझनी चाहिए। इस प्रकार घर के बाहर बाँधे गये गाय, बैल और भैसों की संख्या से भी किसी व्यक्ति की सम्पत्ति का कुछ अन्दाजा लगाया जा सकता है।

(२) दूसरा तत्व वर के पिता का पद और उसकी आय है। यदि वर का पिता किसी ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित है और उसकी आमदनी भी साधारणतया अधिक है, तब वह अपने पुत्र का तिलक बहुत अधिक माँगता है और अपने डिमाण्ड के समर्थन में अपनी अचल सम्पत्ति, अपने उच्च पद और आय की राशि का प्रमाण प्रस्तुत करता है। उसका उच्च पद उसकी श्रेष्ठता का द्योतक होता है।

(३) इस कार्य में चल सम्पत्ति और सांसारिक वैभव भी कुछ कम योगदान नहीं करते। चल सम्पत्ति का अभि-प्राय यहाँ 'बैंक बैलेन्स' से समझना चाहिए। जिसका मोटा वेतन होता है, उसकी बैंक में जमा की गयी धनराशि भी उसी अनुपात में अधिक होती है। बाहरी वैभव में घोड़ा गाड़ी, फिटिन, मोटरकार का अन्तर्भाव किया जा सकता है। यदि किसी के पास खेत और मकान के रूप में अचल सम्पत्ति हो और उसकी मासिक आय भी अच्छी हो, तथा इसके साथ ही बाहरी वैभव और ठाट-बाट भी हो, तो इसे सोने में सुगन्ध ही समझना चाहिए।

(४) कुछ लोगों को अपने उच्च वंश और कुल का भी बड़ा अभिमान होता है। सरयूपारीण ब्राह्मणों में तीन और तेरह की क्रमिक उच्चता और नीचता का उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। गर्ग, गौतम और शाण्डिल्य गोत्रवाले तीन के ब्राह्मण अपने को उत्तम तथा श्रेष्ठ मानते हैं और दूसरे ब्राह्मणों को हीन दृष्टि से देखते हैं। इसी प्रकार से गोरखपुर तथा देवरिया जिले में पाये जाने वाले तथाकथित 'पंक्तिपावन' ब्राह्मण अपने को पावन तथा पवित्र मानते हैं। इनकी पवित्रता अब इनके केवल इसी कार्य में सीमित रह गयी है कि स्वयं मांस-मक्षण में दोष न मानते हुए भी वे किसी ब्राह्मण के हाथ का छुआ हुआ भोजन ग्रहण करने में पाप समझते हैं।

कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में श्रेष्ठता का मापदण्ड 'बिस्वा' माना जाता है। ये ब्राह्मण आठ से लेकर बीस 'बिस्वा' तक वाले होते हैं। आठ बिस्वावाला कान्यकुब्ज धनी होते हुए भी जाति वालों की दृष्टि में नीच और बीस बिस्वा वाला निर्धन



होते हुए भी अपने को उत्तम तथा श्रेष्ठ समझता है। क्षत्रियों में उज्जैनवंशी, सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी, शिशोदियावंशी अपने को उत्तम मानते हैं।

कभी जमाना था, जब सरयूपारीण ब्राह्मण पंक्तिपावनों के यहाँ अपनी कन्याओं का विवाह करना अपना सीभाग्य समझते थे। तीन गोत्र वाले ब्राह्मण 'तेरह' वालों के यहाँ विवाह करने के लिए अत्यधिक तिलक का 'माँग' करते हैं। इसी प्रकार से कान्यकुब्जों में निर्धन 'बीसबिस्वा' वाला भी 'एक बिस्वा' वाले से विवाह के लिए अधिक धनराशि माँगता है। कहने का आशय केवल इतना ही है कि वंश की उच्चता और कुलीनता भी तिलक के 'ऊँची दर' का प्रधान कारण है।

#### (५) वर की योग्यता, शिक्षा तथा आय

तिलक की राशि का निर्णायक तत्त्व वर की शिक्षा, योग्यता और आय भी मानी जाती है। आज से चालीस और पचास वर्ष पहिले वर की योग्यता पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता था। उन दिनों तिलक तथा विवाह के निर्णायक तत्त्व वर के पिता की अचल सम्पत्ति, पिता का पद और उसकी आय समझी जाती थी। उन दिनों विवाह, वर की योग्यता को न देखकर पिता के पद और उसकी योग्यता का ध्यान रखकर किया जाता था। आशय यह है कि उन दिनों विवाह वर के पिता को देखकर किया जाता था न कि वर को।

परन्तु अब समय के परिवर्तन के साथ इस मापदण्ड में भी परिवर्तन हो गया है। पिता के स्थान पर अब उसका पुत्र ही विवाह का केन्द्रबिन्दु हो गया है। अब कन्या का पिता अपनी पुत्री के विवाह के लिए वर की शिक्षा, उसकी योग्यता, उसकी आमदनी पर ही विशेष ध्यान देता है। इस प्रकार पिता की सम्पत्ति और उसके पद की महत्ता अब कम हो गयी और उसके स्थान पर वर की योग्यता को ही प्रधान स्थान दिया जाने लगा है, जो उचित ही है। अब लोग निर्धन पिता के भी होनहार तथा तीक्ष्ण बुद्धिवाले पुत्र से विवाह करना उचित समझते हैं। पहिले विवाह के समय लोग पूछते थे, वर का पिता क्या करता है? अब लोग पूछते हैं, वर की योग्यता क्या है? इन्हीं दोनों प्रश्नों से इन लोगों के मनोभावों का अन्तर समझा जा सकता है।

आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व तिलक-दहेज की प्रथा अधिक नहीं थी। उन दिनों में तिलक की माँग गत पृष्ठ में परिगणित प्रथम चार तत्त्वों के ऊपर ही की जाती थी। किसान लोग—जिनके यहाँ खेती अच्छी होती थी और रुपयों का लेन-देन भी किया करते थे—वे भी अपने लड़कों का तिलक पाँच सौ से एक हजार रुपयों तक लेते थे। भोजपुरी में एक कहावत प्रचलित है कि :—

“बिना हजारा के बाजारा ना लागी।”

अर्थात् एक हजार रूपया तिलक में बिना दिये हुए विवाहरूपी बाजार नहीं लग सकता। इस लोकोक्ति से ज्ञात होता है कि उन दिनों साधारण गृहस्थ का तिलक लेने का स्तर एक हजार रुपये था। कोई भी लड़की का पिता अपनी लड़की का विवाह एक-डेढ़ हजार रुपये खर्च करके आसानी से कर सकता था। उन दिनों कुलीनता तथा वंश की श्रेष्ठता पर भी ध्यान दिया जाता था। यम ने लिखा है कि विवाह के समय कन्या के पिता को निम्नांकित सात बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए :—

“कुलं च शीलं च वपुर्यशश्च,  
विद्यां च वित्तं च सनाथतां च।

एतान् गुणान् सप्त परीक्ष्य देया,  
कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम्॥”

परन्तु तिलक की इस दूषित प्रथा के प्रचार के कारण कन्या का पिता वर के पिता की आर्थिक माँग को पूरा करने में ही परेशान रहता है। उसे अन्य गुणों को सोचने की न तो चिन्ता ही रहती है और न अवकाश ही।

#### तिलक का बाजार-भाव

जब से विवाह-सम्बन्ध की स्थापना में पिता के स्थान में उसका पुत्र अर्थात् वर केन्द्रबिन्दु बन गया है, तब से तिलक का 'भाव' बढ़ने लगा है। वर की शिक्षा, योग्यता तथा वेतन के अनुसार उसके तिलक के 'भाव' में भी वृद्धि हो चली है। यदि पिता साधारण वित्त का व्यक्ति हो, तो उसके पुत्र की योग्यता के अनुसार तिलक का 'भाव' साधारणतया अग्रांकित है :—



वर की योग्यता	तिलक के धन की राशि
(१) आठवीं कक्षा उत्तीर्ण	५०००) रुपये
(२) हाई स्कूल उत्तीर्ण	१०,०००) ,,
(३) इण्टर उत्तीर्ण	१५,०००) ,,
(४) बी० ए० उत्तीर्ण	२०,०००) ,,
(५) ओवरसियर	२५,०००) ,,
(६) एम० ए० उत्तीर्ण	३०,०००) ,,
(७) पी० सी० एस०	३५,०००) ,,
(८) डॉक्टर	४०,०००) ,,
(९) इंजीनियर	५०,०००) ,,
(१०) आई० पी० एस०	६०,०००) ,,
(११) आई० ए० एस०	७०,०००) से १,००,०००) (रुपयों तक)

तिलक की धन-राशि का जो विवरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है, उसे लगभग ही समझना चाहिए। इस राशि में दो-चार हजार रुपये कम भी हो सकते हैं तथा अधिक भी। विवाह-योग्य वरों का जो इस समय (सन् १९७४ ई० में) 'बाजार-भाव' है, वही यहाँ दिया गया है। आधुनिक कमरतोड़ मँहगाई के साथ इस 'दर' में, भविष्य में, अवश्य ही वृद्धि होगी ऐसी सम्भावना है।

### विवाह के दो अन्य निर्णायक तत्त्व

प्राचीन काल में कन्याओं की सुन्दरता पर बल दिया जाता था। परन्तु बाह्यसौन्दर्य की अपेक्षा उनका आन्तरिक सौन्दर्य—शील, गुण—ही विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता था। परन्तु आजकल उदीयमान युवा पीढ़ी रूप-सौन्दर्य पर अत्यधिक जोर देने लगा है। वर स्वयं रंग में 'तारकोल' को भी चुनौती देने की क्षमता भले ही रखता हो, परन्तु वह भी अपनी पत्नी के रूप में स्वर्ग की अप्सरा 'मेनका' और 'रति' को ही चाहता है। जहाँ वर का पिता रुपये का लालची है, वहाँ उसका पुत्र रूप का लोभी है। ऐसी विषम परिस्थिति में कन्या के पिता का कर्तव्य बड़ा कठिन हो जाता है। यदि उसकी कन्या रूप-सौन्दर्य की प्रतियोगिता में पुरस्कार पाने की अधिकारिणी नहीं है, तब उसका हाथ पीला होना कठिन ही समझना चाहिए। ऐसी श्यामवर्ण कन्या के विवाह के लिए उसके पिता को मुँहमांगा तिलक देना पड़ता है अथवा वह किसी अयोग्य वर से अपनी कन्या का गठबन्धन करने के लिए बाध्य हो जाता है।

पहिले कन्या का पिता वर के पिता के कुल, सम्पत्ति और वैभव को देखकर उसके पुत्र से विवाह कर देता था। परन्तु अब वह वर की शिक्षा-दीक्षा और उसकी नौकरी पर विशेष ध्यान देता है। वह चाहता है कि मेरी कन्या का पति 'कमासुत' हो, जिससे उसे ससुराल में किसी प्रकार का कष्ट न होने पाये। इस प्रकार योग्य तथा अर्जनकर्ता 'जामाता' को प्राप्त करने के लिए उसे 'उच्चदर' पर तिलक देना पड़ता है। वर तथा कन्या-पक्षवालों के वैवाहिक दृष्टिकोण में परिवर्तन होने के कारण तिलक का 'भाव' दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता चला जा रहा है।

### इस प्रथा के कुछ दोष

तिलक और दहेज की प्रथा से हिन्दू-समाज में अनेक बुराइयाँ उत्पन्न हो गयी हैं। (१) इस कुत्सित प्रथा के कारण पुत्री का जन्म भारभूत हो गया है। जिस पिता की एक-दो पुत्रियाँ हों, वह उनका विवाह भले ही अच्छी तरह से कर ले, परन्तु जो पिता 'सप्त पुत्रिका' से सम्पन्न है, उसका भगवान् ही मालिक है। उसका समस्त जीवन अपनी पुत्रियों के विवाह की परेशानी में ही बीत जायेगा।

(२) इस प्रथा की दूसरी बुराई है निर्धन कन्याओं के विवाह का न होना। जब इस घातक प्रथा का प्रचार नहीं था, तब कुलीन वंश में उत्पन्न निर्धन मनुष्य भी उच्चकुल के योग्य वरों से अपनी कन्या का विवाह कर सकता था। परन्तु अब यह सम्भव नहीं है। अब निर्धन मनुष्यों के लिए सुयोग्य वरों से विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने का द्वार बन्द हो गया है। इसका विषम परिणाम यह हो रहा है कि उच्च कुलों की कन्या धनाभाव के कारण नीच कुल के अयोग्य वरों से ब्याही जा रही हैं। निर्धन पिता लाचार होकर अपनी कन्या का विवाह गुणहीन तथा मूर्ख वर से करने के लिए बाध्य हो जाता है।



(३) विवाह के बाजार में कन्या के रूप, शील, गुण आदि का कुछ भी मूल्य नहीं है। रुपये की माया ने सबको मोहित कर लिया है। वर-पक्षवालों के लिए टका ही धर्म है, टका ही उनका कर्म बन गया है। अतः जिस कन्या के पिता के पास टका नहीं है, वह विवाह के इस बाजार में टकटकी लगाकर देखता ही रह जाता है।

“टका धर्मः, टका कर्मः, टकैव परमं सुखम्।  
यस्य पार्श्वे टका नास्ति, हा टके टकटकायते ॥”

संस्कृत के कवि की यह उक्ति विवाह के सन्दर्भ में भी पूर्णतया चरितार्थ होती है।

### (४) अनुच्छेद—बाल-विवाह

भोजपुरी क्षेत्र में आज से लगभग पचास वर्ष पहिले बाल-विवाह की प्रथा का अत्यधिक प्रचार था। यद्यपि आज-कल अनेक आर्थिक तथा सामाजिक कारणों से इस प्रथा का ह्रास होने लगा है, परन्तु इसके समूल नष्ट होने के लिए अभी अनेक दशक अपेक्षित हैं। लड़कपन में बच्चों का विवाह कर देना धनिक वर्ग के लोगों के वैभव का मापदण्ड माना जाता है। जो जितना ही सम्पन्न है, उसके पुत्र का विवाह-सम्बन्ध उतनी ही अल्प आयु में सम्पादित करना गौरव की वस्तु मानी जाती है। इसी भावना से भावित होकर समृद्ध व्यक्ति अपने बच्चों की शादी उनके लड़कपन में ही कर देते हैं।

गाँवों में यदि किसी बालक का विवाह पन्द्रह-बीस वर्षों तक नहीं हो सका, तो लोग उसके पिता की कुलीनता के सम्बन्ध में संशय करने लगते हैं और उसकी साधन-सम्पन्नता की ओर अँगुली उठाते हैं। यदि उनकी पुत्री का विवाह इतने वर्षों तक कदाचित् सम्पन्न न हो सका, तो यह समाज में उसके लिए अपवाद का विषय बन जाता है। अतः धनी-मानी लोग कुछ तो अपनी समृद्धि का मापदण्ड होने के कारण और कुछ “लोकापवादाद्भयम्” के हेतु अपने-अपने पुत्र तथा पुत्रियों का विवाह बचपन में ही कर देते हैं।

कभी-कभी तो दो-दो और तीन-तीन वर्ष के दुधमुहे बच्चों तथा बच्चियों को भी विवाह के इस नागपाश में बांध दिया जाता है, जिसका दुःपरिणाम उन्हें आजीवन भुगतना पड़ता है। भोजपुरी लोक-साहित्य में भी बाल-विवाह की प्रति-ध्वनि सुनाई पड़ती है। भोजपुरी समाज में यह प्रथा है कि जब लड़का विवाह करने के लिए जाने लगता है, तब माँ उसे अपना दूध पिलाती है और उससे यह बिनती करती है कि तुम मेरे दूध को भुला मत देना और इसकी ‘भीख’ (निष्क्रय) अवश्य चुकाना।<sup>१</sup>

माता का दूध पीकर बच्चा बड़ी प्रसन्नता से विवाह करने के लिए जाता है। परन्तु ससुराल में माता का दूध पीने के लिए न मिलने के कारण वह बुभुक्षित और दुःखी हो जाता है तथा उदासीन होकर वहाँ से घर लौटता है। माता उसके उदासीन मुँह को देखकर कहती है कि :—<sup>२</sup>

“हँसत खेलत मोर बाबू गइले,  
मन बेदिल काहें अइले।  
सासु छिनरिया जोग गइलसि,  
मन बेदिल ओहि अइले ॥”

बच्चे की माता कहती है, सासु ने मेरे बच्चे को ‘जोग-टोन’ कर दिया है, इसीलिए उदासीन होकर लौटा है। इस उल्लेख से भी वर के बालक होने का संकेत मिलता है, क्योंकि छोटे बच्चों पर ही ‘जोग-टोन’ का प्रभाव अधिक पड़ता है।

कोई तरुणी स्त्री, जिसका विवाह किसी बालक पति से हो गया है, अपने हार्दिक दुःखों का वर्णन करती हुई मोले बाबा (शिव जी) को उलाहना देती हुई कहती है कि :—<sup>३</sup>

“सब के त देलऽ मोला अन, धन, सोनवा,  
बनवारी हो, हमरा के लरिका भतार।

१. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोकगीत, भाग १।

२. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : वही।

३. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २३४।



“लरिका भतार लेके सूतली ओसरावा,  
 बनवारी हो, जरि गइले एड़ी से कपार।  
 खेतवा में सुनल जब सियरा के बोलिया,  
 बनवारी हो, रोवे लागल, लरिका भतार।  
 चुप होखु, चुप होखु ननदी के भइया,  
 बनवारी हो, रहरी में बोलेला हुँडार॥”

कहने की यह आवश्यकता नहीं कि जो बालक खेत में गीदड़ की बोली सुनकर डर के मारे रोने लगता है, वह कितना छोटा बच्चा होगा? गाँवों में ऐसे दुधमुहे बच्चों के विवाह के अनेक प्रत्यक्ष उदाहरण दिये जा सकते हैं कि जिन्हें यह भी याद नहीं है कि उनका विवाह हुआ भी है या नहीं।

### (५) अनुच्छेद—वृद्ध-विवाह

इस क्षेत्र में वृद्ध-विवाह की प्रथा थी, जिसका बड़ी द्रुतगति से नाश हो रहा है। फिर भी विवाह के ‘मौसम’ में दो-चार ऐसे बूढ़े पालकी में बैठकर विवाह में जाते दिखाई पड़ते हैं, जिनके मुँह में न तो दाँत हैं और न आँखों में ज्योति। जिनके पोपले मुँह से ठीक से बात भी नहीं निकलती, जिनके कमर में सीधे खड़े होने की भी शक्ति नहीं है, जो कब्र में अपना दोनों पैर लटकाकर बैठे हुए हैं, वे भी युवतियों से विवाह करने के लिए लालायित दिखाई पड़ते हैं। इन बूढ़ों की बुद्धि पर तरस आती है और उनके कुकृत्य से घृणा उत्पन्न हो जाती है। ये अपने विवाह के द्वारा समाज में अनाचार का प्रचार करते हैं। भोजपुरी की एक कहावत है कि :—

“बूढ़न के वियाह में जवनकन के खुसी।”

अर्थात् वृद्ध लोगों के विवाह के कारण गाँव के मनचले युवकों को प्रसन्नता होती है, क्योंकि वे जानते हैं कि बूढ़े बाबा के चल बसने पर उनकी सामग्री का उपयोग हम लोग मजे में कर सकते हैं।

संस्कृत में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि :—

“वृद्धस्य तरुणी भार्या प्राणभ्योऽपि गरीयसी।”

अर्थात् बूढ़े दादा की जवान स्त्री उसके लिए प्राणों से भी अधिक प्रिय होती है। अपनी युवती पुत्रवधू के घर में रहते हुए भी ये बूढ़े कभी-कभी दुधमुही बच्चियों से भी विवाह करने से बाज नहीं आते। इस प्रकार वे गृह में कलह का बीजारोपण करते हैं और घर की शान्ति को नष्ट कर देते हैं।

भोजपुरी के लोक-कवि मिखारी ठाकुर ने विवाह करने के लिए जानेवाले इन बूढ़ों की हुलिया का बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है।

बाल-विवाह तथा वृद्ध-विवाह ये दोनों ही भोजपुरी समाज के महान् कलंक तथा पाप हैं। कुछ क्षणों के लिए बाल-विवाह को क्षन्तव्य भी मान लिया जाय, तो वृद्ध-विवाह के लिए तो कोई भी ‘न्याय’ नहीं है। इन दोनों ही कुत्सित प्रथाओं से विधवाओं की संख्या बढ़ती जा रही है। और इस प्रकार समाज में अनाचार तथा व्यभिचार की वृद्धि हो रही है। समाज का नैतिक स्तर पतन की ओर उन्मुख है। अतः यदि नयी पीढ़ी के युवकों ने इन कुप्रथाओं के विरुद्ध विद्रोह नहीं कर दिया, तो इस समाज की रक्षा करना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। यह शुभ लक्षण है कि समय की गति के परिवर्तन के साथ ही इन प्रथाओं का ह्रास होने लगा है, परन्तु अभी भी ‘दिल्ली दूर है।’

### (६) अनुच्छेद—अनमेल विवाह

अनमेल विवाह उस विवाह-सम्बन्ध को कहते हैं, जिसमें पति और पत्नी की आयु, स्वभाव और योग्यता में बड़ा अन्तर पाया जाता है। जहाँ दो दुधमुहे बच्चे और बच्चियों का विवाह हो, उसे बाल-विवाह की संज्ञा दी जाती है; परन्तु जहाँ किसी बच्चे का तरुणी से अथवा किसी वृद्ध का छोटी लड़की से विवाह सम्पन्न हो, उसे अनमेल विवाह कहा जा सकता है। इसी

१. प्रस्तुत लेखक को उनके एक परिचित व्यक्ति ने बतलाया कि मुझे अपने विवाह का स्मरण कुछ भी नहीं है। हाँ गवना की याद कुछ अवश्य है, जो विवाह के पाँच वर्षों के बाद हुआ था।



प्रकार से किसी धनी पिता की पुत्री का निर्धन वर से अथवा इसके विपरीत विवाह अनमेल की कोटि में ही गिना जाता है। बौद्धिक स्तर में विभिन्नता होने पर भी दोनों दम्पति में मेल नहीं खा सकता। यदि पति पण्डित तथा विद्वान् हो और पत्नी मूर्खा है अथवा धर्मपत्नी विदुषी हो और उसके पतिदेव 'निरक्षर भट्टाचार्य' हों, तो इसे भी अनमेल विवाह ही समझना चाहिए। भोजपुरी क्षेत्र में पण्डितों की स्त्रियाँ प्रायः मूर्खा हुआ करती हैं, जिसका संकेत निम्नांकित लोकोक्ति में किया गया है :—

“पण्डित के घर मिली करकसा।  
मूर्ख के घर नारि॥”

यहाँ पर नारि का अर्थ चतुर स्त्री है और करकसा से तात्पर्य मूर्ख तथा झगड़ालू पत्नी है। एक दूसरी लोकोक्ति में इसी विषमता की ओर संकेत किया गया है :—

“सुन्दर नारि पुरुष बिनु झुरवे,  
फुहरिनि के एहवात॥”

अर्थात् सुन्दर स्त्री पति के मर जाने अथवा परदेश चले जाने के कारण उसके वियोग में सूखकर काँटा हो रही है, परन्तु फूहड़ स्त्री आनन्द से गुलछरें उड़ा रही है।

बाल-विवाह के प्रसंग में जिस “बनवारी हो हमरा के लरिका भतार” गीत का उल्लेख किया गया है, उसे अनमेल विवाह का भी उदाहरण समझना चाहिए। शिव जी अपने गले में साँपों की माला पहिनकर विवाह करने के लिए जाते हैं। पार्वती की माता जब शिव के ललाट में तीन आँखें, गले में फुफकारते हुए सर्पों के समूह और मुण्डों की माला को धारण किये हुए उनके भीषण तथा भयंकर वेष को देखती हैं, तो वे घबरा उठती हैं। वे कहती हैं कि अपनी कोमल पुत्री गौरा को लेकर मैं पाताल में भागकर चली जाऊँगी, परन्तु इस पागल वर (शिव) से विवाह कदापि नहीं करूँगी।<sup>१</sup>

“धिया लेके उड़बों धिया लेके बूड़बों।  
धिया लेके खिलबों पाताल॥  
अइसन बउराह बर से गउरा ना बिअहबयों।  
बलु गउरा रहिहें कुँआर॥”

‘बउराह’ (पागल) तथा कुरूप शिव से कोमल कलेवरा पार्वती का विवाह अनमेल गठबन्धन का ज्वलन्त उदाहरण है। लोक-गीतों में ऐसे विवाहों के अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं। लोक-कवि मिखारी ठाकुर ने ऐसे ही एक मूर्ख, कुरूप तथा अनाड़ी वर के विवाह का वर्णन किया है :—<sup>२</sup>

“चलनी के चालल दुलहा सूप के फटकारल हे।  
दिअका के लागल बर, दुआरे बाजा बाजल हे।  
आम लेखा पाकल दुलहा, गाँव के निकालल हे।  
अइसन बगलोल बर, चटक देवा के भावल हे॥”

कहने का भाव यह है कि अनमेल विवाह का ऐसा दृष्टान्त समाज तथा साहित्य में प्रचुर परिमाण में पाया जाता है।

### (७) अनुच्छेद—बहु-विवाह

इस समाज में जो दूसरी बुराई प्रचलित है, वह बहु-विवाह है। बहुत से लोग प्रथम स्त्री की मृत्यु हो जाने पर अपना दूसरा विवाह रचाते हैं और दूसरी के परलोक सिधारने पर तीसरे विवाह की तैयारी करते हैं। तीसरी के बाद चौथा और पाँचवाँ विवाह करने में भी वे नहीं हिचकते। इस प्रकार एक ही पुरुष सात-आठ स्त्रियों से बारी-बारी से विवाह करता जाता है। कालिदास ने विवाह का उद्देश्य “प्रजायै गृहमेधिनाम्” बतलाया है। परन्तु इन बूढ़ों के विवाह का उद्देश्य अपनी घषकती हुई

१. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोकगीत, भाग १।

२. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २३४।



काम-वासना की अग्नि में युवतियों के कोमल कलेवर को झोंककर अपनी तृप्ति करना है। अनेक गाँवों में यह भी देखा गया है कि अनेक पुत्रों और पौत्रों के जीवित रहते हुए ये 'बेहया' बूढ़े अपना चौथा या पाँचवाँ विवाह करने में भी शर्मिन्दा नहीं होते और धर्म की ध्वजा फहराने का अपने को अधिकारी मानते हैं।<sup>१</sup>

कुछ लोग अपनी प्रथम स्त्री के जीवित रहते हुए भी अपना दूसरा, तीसरा और चौथा विवाह तक करते जाते हैं। अपने इस कुकृत्य के समर्थन में वे राजा दशरथ का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उनके इस कथन के सम्बन्ध में अंग्रेजी की यह कहावत प्रस्तुत की जा सकती है कि :—

“The devil can quote scriptures.”

अर्थात् शैतान भी अपने पक्ष के समर्थन में शास्त्रों के वचन को उद्धृत कर सकता है। अनेक पुत्रियों के रहते हुए भी प्रथम पत्नी से जब कोई पुत्र उत्पन्न नहीं होता, तब ये लोग दूसरा विवाह करते हैं; जब दूसरे विवाह से भी पुत्रोत्पत्ति की सम्भावना नहीं दिखाई पड़ती, तब ये तीसरे विवाह की तैयारी करते हैं। इस प्रकार इनके इस कर्म की परम्परा बढ़ती जाती है।

भोजपुरी की एक कहावत है कि “काठ की सौत भी नहीं सुहाती।” फिर जहाँ एक, दो नहीं चार या पाँच सौतें एक साथ हों, वहाँ गृहकलह की प्रचण्डता का कुछ अनुमान सहज में ही किया जा सकता है। बहुविवाह की इस कुत्सित प्रथा से समाज का नैतिक स्तर गिरता जा रहा है, घरेलू झगड़ों की वृद्धि होती जा रही है और स्त्रियों का जीवन नारकीय बन गया है।

यह शुभ लक्षण है कि हमारी केन्द्रीय सरकार ने बहुविवाह की प्रथा की बुराइयों को समझकर इसे बन्द कर देने के लिए कानून बनाया है। परन्तु विशेष अवस्थाओं में इसके लिए छूट दे दिये जाने के कारण इस कानून के उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो रही है। इस प्रथा को बन्द करने के लिए जन-मत को जाग्रत करने की आवश्यकता है। बहुविवाह की प्रथा स्त्री-समाज के लिए अन्याय है। यह स्त्रीत्व का अपमान है, अतः इसका परित्याग आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

### (८) अनुच्छेद—विधवा-विवाह

भोजपुरी क्षेत्र में जहाँ बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल विवाह की प्रथा की सत्ता पायी जाती है, वहाँ विधवा-विवाह का अत्यन्त अभाव उपलब्ध होता है। शास्त्रों के अनुशीलन से पता चलता है कि प्राचीन काल में विधवा-विवाह की प्रथा विद्यमान थी।<sup>२</sup> भारत के राजनैतिक इतिहास से भी इस प्रथा का समर्थन होता है। ऐतिहासिकों से यह बात अविदित नहीं है कि गुप्तवंशीय सम्राट् रामगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उसके छोटे भाई चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने बड़े भाई की विधवा पत्नी से विवाह कर लिया था।<sup>३</sup> पराशर ने पाँच अवस्थाओं में स्त्री के लिए पुनर्विवाह की आज्ञा प्रदान की है। इस प्रकार धर्म-शास्त्रों के द्वारा विधवा-विवाह का समर्थन किया गया है तथा इतिहास भी इसका साक्षी है।

परन्तु यह आश्चर्य का विषय है कि इस समाज में विधवाओं के विवाह का अत्यन्त अभाव है। इनका विवाह समाज में निन्दनीय और घृणित समझा जाता है। ऐसी अनेक अक्षतयोनि बाल-विधवाएँ लाखों की संख्या में विद्यमान हैं, जिन्होंने अपने पति का मुँह भी नहीं देखा और उनका सौभाग्य-सूर्य सदा के लिए अस्त हो गया। ये बाल-विधवाएँ घर में नारकीय जीवन व्यतीत करती हैं। समाज इनके साथ किस प्रकार कुत्सित व्यवहार करता है, इसका उल्लेख पिछले प्रकरण में किया जा चुका है। न्याय का यह तकाजा है, औचित्य का यही विधान है कि ऐसी अक्षतयोनि बाल-विधवाओं को पुनर्विवाह की आज्ञा प्रदान की जाय, जिससे समाज में वे भी सम्मानपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें। परन्तु भोजपुरी-समाज उनको यह अधि-

१. प्रस्तुत लेखक की बलिया जिले के एक प्रसिद्ध पण्डित की जीवन-गाथा ज्ञात है, जिन्होंने अपने पहिले की तीन स्त्रियों से अनेक पुत्रों और पौत्रों के जीवित रहते हुए भी बुढ़ापे में अपना चौथा विवाह रचाया था। उनके पुत्रों ने बुढ़ौती के इस विवाह का बड़ा विरोध किया, परन्तु उस 'बेहया' ने उनकी बातों पर कान तक नहीं किया। फलस्वरूप घर में कलह होने लगा और उनके लड़कों ने पिता को छोड़ दिया। पण्डित जी अपनी नवेली बधू को लेकर गाँव को छोड़कर शहर में रहने लगे थे। चौथी पत्नी से चौथी पुत्री उत्पन्न होने के बाद उनके प्राण पखेरू उड़ गये। उनकी तरुणी पत्नी अब गाँव में रहती है और अब नारकीय जीवन व्यतीत कर रही है।

२. इस विषय के विस्तृत विवरण के लिए देखिए डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : हिन्दू विवाह की उत्पत्ति और विकास।

३. डॉ० वासुदेव उपाध्याय : गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग।



कार प्रदान न करके अन्याय का पोषण कर रहा है। सबसे बड़ी आश्चर्य की बात यह है कि सनातन धर्म के ठेकेदार पण्डित-मन्य, धर्मशास्त्री विद्वान् पुरुषों के बहुविवाह का मुक्तकण्ठ से समर्थन ही नहीं करते, बल्कि अवसर मिलने पर स्वयं भी उसका आचरण करते हैं, ऐसे धर्मधुरीण भी विधवा-विवाह का विरोध बड़े जोश तथा उत्साह से करते हैं और इस प्रथा को अनिष्टकारी तथा अधार्मिक बतलाते हैं। परन्तु इस विवाह का अभाव केवल ऊँची जातियों तक ही सीमित है। निम्नवर्ग के लोग बड़े भाई की मृत्यु हो जाने पर उसकी विधवा पत्नी (अपनी भावज) से विवाह कर लेते हैं। परन्तु उच्चवर्ण के लोगों में प्रचलित इस प्रथा के अभाव का अनुकरण अब वे भी धीरे-धीरे करने लगे हैं। ये लोग ब्राह्मण-क्षत्रियों में प्रचलित सभी कुप्रथाओं का अनुसरण करने लगे हैं। यह चिन्ता का विषय है। यद्यपि सरकार ने विधवा-विवाह को वैध स्वीकार कर लिया है तथा इसके लिए उपयुक्त कानून भी पास किया है, परन्तु समाज की स्वीकृति न मिलने के कारण विधवा-विवाह का प्रचार यथोचित रूप में नहीं हो रहा है।

विधवा-विवाह की प्रथा के अभाव के कारण समाज में अनेक बुराईयाँ उत्पन्न हो गयी हैं। सबसे बड़ा दुष्परिणाम विधवाओं की दुर्दशा है। भोजपुरी-विधवा संसार का सबसे दयनीय और दुर्दशाग्रस्त जीव है। उसका मुह देखना भी पाप समझा जाता है और उसकी सत्ता अमंगल का मूल मानी जाती है। दूसरी बुराई समाज में व्यभिचार का प्रचार है। जब वृद्ध व शिष्ट लोग, किम्बहुना हमारे देवता भी काम-वासना के वेग को रोकने में असमर्थ हैं, तब विधवा तरुणी स्त्रियों से इसकी आशा करना आकाश-पुष्प के समान ही असम्भव है। ऐसी दशा में अनाचार और व्यभिचार में लिप्त होने के अतिरिक्त उनके लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है। कभी-कभी अवैध बच्चों को जन्म देने के लिए वे बाध्य हो जाती हैं, जिसके फलस्वरूप उन्हें समाज की ताड़ना और निन्दा सहनी पड़ती है। अपने दुःखी जीवन से ऊबकर या तो वे आत्महत्या कर लेती हैं अथवा दूसरे धर्म को ग्रहणकर हिन्दू-समाज के क्रमिक ह्रास का कारण बनती हैं।

भगवान् मनु ने लिखा है कि :—

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।” ३।५७

अर्थात् जिस कुल की बहू-बेटियाँ क्लेश भोगती हैं, उस कुल का शीघ्र नाश हो जाता है। हिन्दू-समाज में विधवाएँ नारकीय जीवन व्यतीत कर रही हैं अतः मनु की भविष्यवाणी के चरितार्थ होने में कुछ भी सन्देह नहीं है। यदि देश के नेता, हिन्दू-समाज के उद्धारक, और सनातन धर्म के धुरंधर विद्वान् बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह तथा विधवा-विवाह की कुप्रथाओं को दूर नहीं किया, तो यह समाज प्रशान्त महासागर की गहराई में दबकर रसातल में पहुँच जायेगा, जहाँ से इसका उद्धार होना असम्भव है।

### (९) अनुच्छेद—मृत्यु-भोज

भोजपुरी क्षेत्र में ‘मृत्यु-भोज’ की भी प्रथा प्रचलित है। ‘मृत्यु-भोज’ से यहाँ तात्पर्य उस ‘ब्राह्मण-भोजन’ अथवा ‘ब्रह्म-भोज’ से है, जो मृत व्यक्ति की ‘तेरही’ के दिन कराया जाता है। जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, तब उसके दाह-संस्कार से लेकर ‘तेरही’ तक अनेक क्रिया-कलाप करने पड़ते हैं। इन विधि-विधानों की शृंखला में अन्तिम विधान ‘ब्रह्म-भोज’ है। यदि किसी निर्धन अथवा युवा व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, तो उसकी तेरही पर भी ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है। परन्तु इनकी संख्या कम होती है। परन्तु गाँवों में यदि कोई धनी व्यक्ति का ‘गंगालाभ’ हो गया और संयोग से यदि वह वृद्ध भी हो, तो फिर क्या पूछना? जो जितना ही धनी होता है, उसकी तेरही पर ‘ब्रह्म-भोज’ उतना ही बड़ा किया जाता है। यदि मृत व्यक्ति के पुत्र ‘कमासुत’ हों, तो यह ब्रह्म-भोज अपना विशाल रूप धारण कर लेता है।

इस तेरही के दिन आसपास के गाँवों के सभी ब्राह्मण भोजन के लिए आमन्त्रित किये जाते हैं, जिनकी संख्या हजारों तक पहुँच जाती है। गाँव का नाई एक दिन पहिले ही इन ब्राह्मणों को भोजन करने के लिए ‘बुलाहट’ दे आता है, जिसे ‘अइगा’ कहते हैं। निश्चित तिथि को ये ‘भोजनभट्ट’ ब्राह्मण पानी पीने के लिए अपना जलपात्र (लोटा) लेकर पहुँच जाते हैं। और अपने आतिथेय के घर आकर आसन ग्रहण कर लेते हैं।

उधर घर के भीतर ब्रह्मभोज के लिए पूरियाँ बनाने के लिए हलुवाई लगे रहते हैं। जब पूड़ी और शाक—जो प्रायः कोहड़ा और कटहल का होता है—बनकर तैयार हो जाता है, तब इन ब्राह्मणों को बैठाकर इनके सामने पत्तल परोस दी जाती है। इन्हीं पत्तलों में इन्हें पूड़ी, कचौड़ी और शाक भोजन के लिए दिया जाता है। ये लोग बड़े प्रेम से ‘शष्कुली’ का भोजन करते हैं। भोजन की समाप्ति की सूचक दही और चीनी इन्हें अन्त में दी जाती है। जब सभी लोग भरपेट भोजन कर लेते हैं, तब सब लोग एक साथ उठ जाते हैं। भोजनोपरान्त इन्हें पान तथा दक्षिणा दी जाती है और इस प्रकार यह ‘ब्रह्म-भोज’ समाप्त हो जाता है।



चाहे कोई पुत्र अपने पिता की जीवितावस्था में प्रतिदिन 'कपाल-क्रिया' ही क्यों न करता हो, परन्तु उनकी मृत्यु के उपरान्त वह उनकी तेरही के अवसर पर विशाल ब्रह्मभोज करता है। वह प्रेम-वश भले ही ऐसा न करे, परन्तु समाज के लाज से, लोक-लज्जा के भय से उसे ऐसा करना ही पड़ता है। अन्यथा समाज के व्यक्ति उसे धिक्कारते हैं तथा उसे कपूत उपाधि से सुशोभित करते हैं। हिन्दी में एक लोकोक्ति प्रचलित है "आगे नाग न पूजिये वामी पूजन जाय" यह कहावत ब्रह्मभोज की इस प्रथा पर भी चरितार्थ होती है। पिता की जीवितावस्था में चाहे पिता-पुत्र में वैमनस्य क्यों न हो, परन्तु उनकी तेरही के दिन वह ब्रह्मभोज अवश्य करता है।

यह प्रथा अब कुप्रथा के रूप में परिणत हो गयी है। प्रथम तो यह प्रेम-वश नहीं, बल्कि समाज के भय से की जाती है और दूसरी यह कि इसमें आवश्यकता से अधिक धन खर्च किया जाता है। अतएव यह प्रथा अब भारभूत बन गयी है।

### (१०) अनुच्छेद—गायड़ार की प्रथा

दीपावली के एक दिन पहिले एक विचित्र प्रथा का सम्पादन किया जाता है, जो 'गायड़ार' के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन गाँव के दुसाध जाति के किसी सूअर को पकड़ लाते हैं। वे उसके चारों पैर तथा मुँह को रस्सी से बाँध देते हैं और जमीन पर उसे घसीटते हैं। किसान लोग अपनी गायों और भैंसों को वहाँ लाते हैं, जो अपनी सींगों से उस सूअर को मारकर अध-मरा या मृतप्राय कर देती हैं। यदि उसका जीवन अभी कुछ शेष बचा रहता है, तब गाँव के लोग उसे लाठी से पीटकर दूसरे लोक में पहुँचा देते हैं।

'गायड़ार' की प्रथा का क्या रहस्य है, इसका उद्देश्य क्या है, इस पहली को सुलझाना बड़ा कठिन है। इस प्रथा की उत्पत्ति क्यों और कैसे हुई, यह भी रहस्य के गर्भ में छिपी हुई है। इस सम्बन्ध में एक किम्बदन्ती प्रसिद्ध है कि पुराणों के अनुसार कोई ऋषि अथवा देवता जंगल में गायों की रक्षा कर रहे थे। इतने ही में कोई राक्षस सूअर का रूप धारणकर वहाँ आया और उसने गायों को क्षति पहुँचाना प्रारम्भ कर दिया। उसके इस कुकृत्य से ऋषि क्रोधित हो गये और उन्होंने उसे शाप दिया कि तुम्हारी मृत्यु अथवा नाश इन्हीं गायों के द्वारा प्रतिवर्ष हुआ करेगा। तभी से 'गायड़ार' की प्रथा प्रचलित हो गयी।

बहुत-से विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में लोगों का यह अन्धविश्वास था कि बलिदान से जमीन की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है, पृथ्वी की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है। अतः वे सूअर का बलिदान इसलिए किया करते थे, क्योंकि इससे खेती की उपज अधिक होने की सम्भावना थी। आज भी बिहार के छोटा नागपुर की सन्थाल जातियों में यह विश्वास प्रचलित है कि नर-बलि के देने से खेतों में उपज बढ़ जाती है। सम्भवतः इसी भावना से प्रेरित होकर 'गायड़ार' की प्रथा प्रचलित की गयी हो। परन्तु दीपावली के त्यौहार के अवसर पर ही इसे क्यों मनाया जाता है, इसका सन्तोषजनक उत्तर देना कठिन है। समाज-शास्त्रियों को इस प्रथा के सम्बन्ध में अनुसन्धान करना चाहिए।

परन्तु प्रस्तुत लेखक का अभिमत इससे कुछ भिन्न है। लेखक की विनम्र सम्मति में सूअर गन्दगी का प्रतीक है। अतः दीपावली के अवसर पर इस प्रतीक को नष्ट करने का अभिप्राय हुआ स्वच्छता की स्थापना। चूँकि इस त्यौहार के समय घर की तथा गाँव की गन्दगी को दूरकर सफाई की जाती है, अतः 'गायड़ार' में सूअर के बध का अर्थ हुआ गन्दगी का विनाश। सम्भवतः इसीलिए इस प्रथा का विधान दीपावली के समय किया जाता है। परन्तु सबल प्रमाणों के अभाव में इस प्रथा के सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से कहना बड़ा कठिन है।

गायों के द्वारा सूअर के मारे जाने के पश्चात् दुसाध लोग उसके मांस को खाते हैं अथवा अपने कुटुम्बियों में बाँट देते हैं। इस प्रथा के सम्बन्ध में अनेक लोकगीत बिहार राज्य के शाहाबाद (आधुनिक भोजपुर) जिले में पाये जाते हैं।

इस प्रकार 'गायड़ार' की यह प्रथा बड़ी मनोरञ्जक है, जिसका सर्वांगीण अध्ययन समाजशास्त्रियों तथा मानव-विज्ञान-शास्त्रियों के शोध का विषय बन सकता है।





## खान-पान



### महत्ता

मानव-जीवन के लिए भोजन अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना प्राण धारण करना कठिन है। किसी भी जाति के जीवन में उसके भोजन की वस्तुओं का बड़ा महत्त्व है। उपनिषदों में लिखा है कि—“अन्नमयं हि सौम्य मनः।” अर्थात् मनुष्य जिस प्रकार का भोजन करता है, उसका मन भी उसी प्रकार का हो जाता है। तामसिक पदार्थों का भोजन करनेवाले व्यक्ति की बुद्धि कभी सात्विक नहीं हो सकती। इसीलिए हमारे प्राचीन ऋषि-महर्षियों ने भोजन के ऊपर बड़ा जोर दिया है। जिस प्रकार से भोज्य पदार्थों का प्रभाव हमारे शरीर की वृद्धि आदि पर पड़ता है, उसी प्रकार से हमारी बुद्धि के निर्माण पर उसका प्रभाव परिलक्षित होता है।

भोजन से किसी जातिविशेष की संस्कृति का भी पता चलता है। जो जाति कन्द, मूल, फल को खानेवाली तथा सात्विक भोजन करनेवाली होगी, निश्चय ही उसकी बुद्धि निर्मल और विचारधारा पवित्र होगी। परन्तु जो जाति मद्यपायी तथा मांसाहारी होगी, उसके विचार उन्नत नहीं हो सकते।

भोज्य पदार्थों के अध्ययन से किसी जाति के आचार-विचार का भी पता लगता है, उसके रीति-रिवाज पर भी प्रकाश पड़ता है। भोजन-सम्बन्धी अनेक कहावतों के द्वारा इस विषय को अच्छी तरह से समझाया जा सकता है। अतः किसी जाति के भोज्य पदार्थों का अध्ययन अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

### भोज्य पदार्थों के प्रकार अथवा श्रेणी-विभाजन

भोज्य पदार्थों का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में आहार अर्थात् भोजन को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है—(१) सात्विक, (२) राजसिक और (३) तामसिक। इस विभाजन के अनुसार आयु, सत्त्व, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ानेवाला भोजन सात्विक कहलाता है। यह रस तथा स्नेह (घी-दूध) आदि से युक्त और मन को स्वादिष्ट या अच्छा लगनेवाला होता है। इसी प्रकार से उन्होंने राजसिक और तामसिक भोजन की भी व्याख्या की है। भगवान् श्रीकृष्ण का यह वर्गीकरण भोज्य पदार्थों के गुण और प्रकृति के आधार पर किया गया है।<sup>१</sup>

धर्मशास्त्र तथा वैद्यक ग्रन्थों में भोजन का श्रेणी-विभाजन निम्नांकित रूप से किया गया है :—

- (१) भोज्य
- (२) चर्व्य
- (३) चोष्य
- (४) पेय्य
- (५) लेह्य

इस विभाजन के अनुसार भोज्य वे पदार्थ हैं, जो खाये जाते हैं; जैसे भात, रोटी आदि। चोष्य वे हैं, जो चूसे जाते हैं; जैसे ईख, आम आदि। पेय के अन्तर्गत वे पदार्थ आते हैं, जो पीये जाते हैं; जैसे दूध, दही, शर्बत आदि। लेह्य उन पदार्थों की संज्ञा है, जो जीभ से चाटे जाते हैं; जैसे मधु या शहद। निश्चय ही यह वर्गीकरण किसी पदार्थ को खाने की विधि के ऊपर आश्रित है और उपर्युक्त विभाजन से सर्वथा भिन्न है।

### १. भगवद्गीता ?

मो०-१५



भोजपुरी खाद्य पदार्थों के वर्गीकरण में उपर्युक्त श्रेणी-विभाजन की पद्धतियों का सर्वथा परित्याग कर एक दूसरी प्रणाली को अपनाया गया है, जो बहुत वैज्ञानिक तो नहीं कही जा सकती, परन्तु सुविधाजनक अवश्य है। भोजपुरी क्षेत्र में साधारण-तया जो पदार्थ खाने-पीने में प्रयोग में लाये जाते हैं, उनका विभाजन स्थूल रूप से निम्नांकित रीति से किया जा सकता है :—

(क) प्रधान भोज्य पदार्थ (दाल, भात, रोटी आदि)

(ख) शाक (आलू, कोहड़ा आदि)

(ग) { अचार (आम, नीबू आदि)  
चटनी (आम, इमली आदि)

(घ) मिठाई (टिकरी, गुलाबजामुन आदि)

(ङ) फल (आम, केला आदि)

(च) पेय पदार्थ (शरबत, अमझोरा आदि)।

प्रधान भोजन के अन्तर्गत भात, दाल, रोटी आदि के अतिरिक्त बीसियों प्रकार के भोज्य पदार्थ हैं, जिनका व्यवहार दैनिक जीवन में किया जाता है। इन विविध भोज्य पदार्थों के वर्णन में वर्गीकरण के किसी क्रम का अभाव होने के कारण केवल उनकी प्रधानता तथा व्यापक व्यवहार या प्रचार को ही ध्यान में रखा गया है। मिठाई, तरकारी, अचार, चटनी आदि का विवरण उपस्थित करते हुए भी यही क्रम अपनाया गया है। प्रत्येक भोज्य पदार्थ का वर्णन—जहाँ तक सम्भव है—निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है :—

(१) विभिन्न प्रकार (श्रेणी-विभाजन)

(२) बनाने की विधि

(३) खाने की विधि

## (१) परिच्छेद

### प्रधान भोज्य पदार्थ

#### (१) अनुच्छेद—भात

##### महत्त्व

यदि भात को भोजपुरी भोज्य पदार्थों का राजा कहें, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। यह सर्वश्रेष्ठ और सबसे अधिक प्रचलित भोजन की सामग्री है। यदि किसी विशिष्ट व्यक्ति या अतिथि को भात न खिलाया जाय, तो वह अपना अपमान समझता है। विवाह-संस्कार के अवसर पर समधी को भात खिलाना अत्यन्त आवश्यक होता है। यदि समधी किसी कारण से रुष्ट होकर भात खाये बिना ही अपने घर लौट गया, तब विवाह की सकुशल समाप्ति नहीं समझी जाती। 'माँड़ो' (विवाह-मण्डप) में समधी का भात खाना वैवाहिक सफलता का सूचक है। समधी से भात खाने की कृपा करने के लिए बड़ी प्रार्थना करनी पड़ती है और इसके लिए उसको न्यूँता (निमन्त्रण) के रूप में अधिक रुपया भी देना पड़ता है। इसी से समधी द्वारा भात खाने की महत्ता का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

विवाह के लिए बारात के प्रस्थान की पूर्वरात्रि को लड़केवाले के घर 'भतवानि' नामक 'भोज' (दावत) किया जाता है, जिसमें कुटुम्ब के भाई-बन्धु सभी उपस्थित होते हैं। इस 'भतवानि' के अवसर पर जो लोग भात खाते हैं, उनका बारात में जाना आवश्यक माना जाता है। लड़की के घर विवाह-मण्डप में भात खाने के लिए वे ही लोग आमन्त्रित किये जाते हैं, जो विशिष्ट व्यक्ति होते हैं अथवा जो सगे-सम्बन्धी या निकट-कुटुम्बी होते हैं।

भात वैवाहिक सम्बन्ध का मेरुदण्ड है अर्थात् विवाह-सम्बन्ध उसी व्यक्ति से स्थापित किया जाता है, जिसके यहाँ भात खाने में कोई आपत्ति न हो। अत्यन्त निकट-कुटुम्बियों तथा दायदों के घर ही भात का प्रसाद पाया जाता है, दूसरे के यहाँ नहीं। अतः वैवाहिक सम्बन्ध को करने में भात का खाना एक निर्णयात्मक वस्तु (deciding factor) है।

भात स्पर्शास्पर्श की दृढ़ 'आधारशिला' है। इसी की मजबूत नींव पर 'छुआछूत' का विशाल प्रासाद खड़ा है। यदि किसी व्यक्ति के यहाँ यह 'महाप्रासाद' ग्रहण कर लिया गया, तो अस्पृश्यता का 'प्रासाद' स्वतः धराशायी हो जाता है। अतः भात खाने में बड़े विचार से काम लिया जाता है।

भोजपुरी समाज में साधारणतया भोजन के दो भेद हैं :—(१) कच्चा और (२) पक्का। घी में पकायी गयी



पूड़ी पक्की मानी जाती है और पानी में बनाया गया भात कच्चे भोजन की संज्ञा प्राप्त करता है। पक्का भोजन तो बिना विशेष विचार किये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य किसी के घर खाया जा सकता है, परन्तु कच्चा भोजन अर्थात् भात खाने में बड़े विवेक से काम लेना पड़ता है। किसी व्यक्ति की जाति, कुल, गोत्र, कुटुम्ब आदि को ठीक से जाने बिना उसके घर का भात कदापि नहीं खाया जा सकता। “तीन कन्नौजिया, तेरह चूल्हा” की लोकोक्ति इसी प्रथा के ऊपर आश्रित है। पर्वतीय क्षेत्र (अल्मोड़ा, नैनीताल आदि) में इस भात ने ही स्पर्शस्पर्श की परम्परा को अविच्छिन्न रूप से सुरक्षित रखा है, अन्यथा वहाँ पूड़ी के अतिरिक्त किसी के यहाँ रोटी को भी खाने में कोई आपत्ति नहीं मानी जाती।

### चावलों के प्रधान भेद

एक कहावत है कि क्षत्रिय और चावल की जाति अनन्त है। वास्तव में चावलों के विभिन्न प्रकारों (Varieties) की गणना करना कठिन काम है। भिन्न-भिन्न गाँवों, कस्बों, शहरों और प्रान्तों में चावल के विभिन्न प्रकार उपलब्ध होते हैं। खुट्टी से लेकर देहरादूनी चावल (बासमती) तक इसके अनन्त भेद हैं। फिर भी इसको दो प्रधान श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) अरवा और (२) उसिना। धान को ढेकी में कूटा जाता है, जिससे उसके ऊपर की भूसी हट जाती है। इस प्रकार जो चावल तैयार किया जाता है, उसे ‘अरवा’ कहते हैं। परन्तु ‘उसिना’ चावल को बनाने की प्रक्रिया कुछ कठिन है। पहिले धान को २४ घण्टों तक पानी में भिगो देते हैं। फिर इसे पानी में से छानकर कड़ाही में इस धान को धीमी आँच में भूतते हैं। जब यह धान अघपका-सा हो जाता है, तब इसे ओखली या ढेंकी में कूटते हैं। भूसी के छूट जाने पर, इस प्रकार से जो चावल तैयार होता है, उसे ‘उसिना’ कहते हैं। भोजपुरी में किसी वस्तु को उबालने के लिए ‘उसीनना’ क्रिया का प्रयोग किया जाता है। चूँकि यह चावल ‘उसीना’ हुआ रहता है, अतः इसे ‘उसिना’ कहा जाता है। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में इसे ‘भुजिया’ चावल का नाम प्राप्त है, जिसका अर्थ है भूना (या भूँजा) गया चावल। इसीलिए पण्डित लोग इसे अपवित्र या अशुद्ध मानते हैं और अपने चौके में इसे नहीं आने देते। इसके विपरीत ‘अरवा’ चावल पवित्र और शुद्ध समझा जाता है। भगवान् का भोग इसी चावल को पकाकर लगाया जाता है और किसी विशिष्ट तथा सम्मानित अतिथि के आने पर उसकी थाली में इसी को भोजन के लिए परोसते हैं।

भोजपुरी क्षेत्र में चावल का भात खाना या खिलाना बड़े गौरव की बात समझी जाती है। यदि किसी किसान के लड़के से पूछिये कि तुमने आज क्या खाया है? तो वह गर्व और गौरव के साथ उत्तर देगा कि “आजु हम धाने के भात खइनी हँ।” अर्थात् आज धान (चावल) का भात खाया है।

इस क्षेत्र में ‘उसिना’ चावल का भात खाने की बड़ी प्रथा है तथा इसका प्रचार है। यद्यपि ‘अरवा’ चावल भी आसानी से मिल जाता है, फिर भी ‘उसिना’ चावल ही लोग अधिक क्यों खाते हैं, यह बात कुछ समझ में नहीं आती। सम्भवतः ‘उसिना’ का सस्ता होना ही इसके प्रचुर-व्यवहार का प्रधान कारण है। गाँवों में चावल और गेहूँ प्रायः बराबर मात्रा में पैदा होता है, फिर भी अधिकांश लोग चावल—फिर उसमें भी ‘उसिना’—ही के प्रति इतना अटूट अनुराग क्यों दिखलाते हैं, इसका कारण अभी तक बुद्धि की सीमा के भीतर प्रवेश नहीं कर सका। आरा (बिहार) जिले में रेलवे लाइन के दक्षिणी भाग को ‘घनहा’ देश कहा जाता है, जिसका अर्थ है वह प्रदेश (क्षेत्र) जहाँ धान अधिक मात्रा में पैदा होता हो। वहाँ दोनों समय—सुबह और शाम—प्रायः भात ही खाते हैं। जिस प्रकार से बंगाली लोग ‘मत्स्यप्रिय’ हैं, उसी प्रकार भोजपुरिया लोग ‘भातप्रिय’ हैं।

### भात बनाने का प्रकार

भात बनाने के दो प्रकार हैं:—(१) पसोआ और (२) बइठोआ। जिस चावल में काफी पानी डालकर उसे पकाया जाता है और अन्त में उसके ‘माँड़’ को पसा (गिरा) दिया जाता है, उसे ‘पसोआ’ भात कहते हैं। अच्छे और बारीक चावलों का ‘माँड़’ बिना निकाले वे ‘फरहर’ (अलग-अलग) नहीं होते, अतः इनको ‘पसाना’ अत्यन्त आवश्यक होता है। यदि किसी विशिष्ट व्यक्ति के भोजन के लिए यह भात बनाया जा रहा हो, तो उसमें थोड़ा-सा घी भी छोड़ देते हैं, जिससे वह स्वादिष्ट

१. जब लेखक नैनीताल में तीन-चार वर्षों तक रहा, तब अपनी आदत के अनुसार घोर जाड़े के बर्फीले दिनों में भी भात खाया करता था। मित्रों ने बहुत समझाया कि पहाड़ में भात का खाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। परन्तु उनके उपदेश पर ध्यान न देकर अपने नियम पर डटा रहा। उसे ‘भातप्रिय’ होने से कोई भी शारीरिक क्षति नहीं उठानी पड़ी।



और सुगन्धित हो जाय। अच्छे चावलों को पकाने पर उनमें से स्वाभाविक सुगन्ध निकलती है। इसीलिए सम्भवतः देहरादूनी चावल को 'बासमती' (या वासमती) कहा जाता है, जिसका अर्थ होता है सुगन्ध से युक्त।

'बड़ौआ' भात उसे कहते हैं, जिसमें से 'माँड़' नहीं निकाला जाता और जो चूल्हे पर रखे-रखे ही पक जाता है। यह भात 'गीला' न होने पाये, इसके लिए अन्दाज से ही चावल में पानी दिया जाता है। साधारणतया चावल के ऊपर चार अंगुल ऊँचा पानी होना चाहिए, तब भात के गीले होने का डर नहीं रहता और चावल अच्छी तरह से पक (चुर) जाता है। चूँकि इसमें पानी का अन्दाजा ठीक होना चाहिए, अतः इसको बनाने में झंझट होता है। इसीलिए प्रायः स्त्रियाँ 'पसौआ' भात ही बनाती हैं।

चावल से पसाये गये जल को 'माँड़' कहा जाता है। गरीब लोग इसी 'माँड़' की सहायता से भात खाते हैं, जिसे 'माँड़ भात' खाना कहा जाता है। आश्विन कृष्ण नवमी—जिसे मातृ नवमी कहते हैं—के दिन स्त्रियाँ अपनी मृत सास को माँड़ पीने को देती हैं या उन्हें चढ़ाती हैं।

### भात को परोसने का प्रकार

थाली में भात को परोसने का एक विशेष प्रकार होता है। जब समधी या कोई विशिष्ट व्यक्ति भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया जाता है, तो थाली में भात को परोसकर उसमें थोड़ा घी डाल देते हैं। फिर उसको दोनों हाथों से दबाकर पर्वत के शिखर के रूप में, या 'पिरामिड' की शक्ल में उसको बनाते हैं। स्त्रियाँ इस बात का सदा प्रयास करती हैं कि भात को 'जाँत' (दबा) कर छोटी-से-छोटी शिखराकृति बनावें। इसी कारण "तातल भात की तरह जाँतना" अर्थात् गर्म चावल की भाँति दबाना, भोजपुरी में एक मुहावरा बन गया है, जिसका अर्थ है किसी व्यक्ति को दबाना या नियन्त्रित रखना। समधी को भात खिलाते समय परिहास करने के लिए, इस शिखराकृति भात के भीतर रुपया अथवा रूई आदि भी रख दी जाती है। यह तो हुई भात परोसने की विशिष्ट विधि। परन्तु साधारण लोगों के भोजन के लिए भात के आधे भाग को थाली में चौड़ाई तथा लम्बाई में फैला देते हैं और आधा स्थान दाल परोसने के लिए रख छोड़ते हैं।

विवाह आदि अवसरों पर बारातियों को भात पत्तल में खिलाया जाता है। अतः पत्तल में भात को डालकर उसकी वृत्ताकार (Circular) आकृति बनाते हैं। बीच में भात को दबाकर थोड़ा गड्ढा बना देते हैं। इसी गड्ढे में दाल परोसी जाती है, जिसके चारों ओर भात की ऊँची कगार होने के कारण वह पत्तल के बाहर गिरने नहीं पाती।

### खाने की विधि

साधारणतया भात को दाल के साथ खाया जाता है। भोजपुरी क्षेत्र में भात के साथ अरहर की दाल खाने की प्रचुर प्रथा है, परन्तु समधी को खिलाने के लिए (भात के साथ) चने की दाल बनायी जाती है। यह उसके लिए विशिष्ट आदर की वस्तु है। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलों में भात में घी और शक्कर डालकर उसे बड़े चाव से खाते हैं, परन्तु पूर्वी जिलों में इस प्रथा का नितान्त अभाव है।

कुछ लोग भात को 'कढ़ी' के साथ भी खाते हैं। बच्चे दूध-भात खाना अधिक पसन्द करते हैं। प्रिय व्यक्ति के शुभ समाचार की सूचना देनेवाले कौवे को दूध-भात ही खाने को देते हैं। कुछ व्यक्ति दही-भात खाना अधिक पसन्द करते हैं। छोटे बच्चे 'बासी' भात को दही के साथ बड़े प्रेम से ग्रहण करते हैं। गरीब लोगों को दाल के अभाव में सत्तू की 'लिबरी' (गीला सत्तू) के साथ भात खाना पड़ता है। जो लोग सौभाग्यशाली हैं, उन्हें ही 'घी-भात' खाने को मिलता है। निर्धनता से पीड़ित किसान या मजदूर 'नून-भात' (नमक के साथ भात) खाकर ही अपना गुजारा किसी प्रकार कर लेता है। कुछ लोग मसालेदार चने के साथ 'चना-भात' खाकर के अपने उदरदरी की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार विभिन्न वस्तुओं के साथ भात खाया जाता है।

### खुदी का चावल

चावल के टूटे हुए छोटे-छोटे अंशों को 'टूटन' या 'खुदी' कहते हैं। गरीब आदमियों के खाने के लिए यही चावल का 'टूटन' सस्ते दाम पर बाजार में बिकता है। इसी को 'खुदी का चावल' कहते हैं। इसमें चावल का एक भी खड़ा दाना आपको देखने को नहीं मिलेगा। खुदी का भात बड़ा गीला होता है। और यदि नये चावल की खुदी हुई, तो उसके भात के गीलापन का क्या कहना? "एक तो तितलौकी दूसरे नीम चढ़ी।" बटुली का पूरा भात एक बड़े पिण्ड के समान हो जाता है।



खुद्दी के भात को दाल या दही के साथ खाया जाता है। इसके स्वाद का मजा पोपले मुँहवाले बुड्ढे भी ले सकते हैं। वच्चे बड़े शौक से इसे खाते हैं, स्त्रियाँ बड़े प्रेम से इसका प्रसाद ग्रहण करती हैं। चने के 'साग' (शाक) के साथ भी खुद्दी के भात का उपयोग किया जाता है।

### चावल के द्वारा निर्मित अन्य भोज्य पदार्थ

जिस प्रकार शहरों में भोजन की कला में प्रवीण स्त्रियाँ मीठा चावल और नमकीन चावल (तहरी) आदि अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बनाती हैं, उसी प्रकार भोजपुरी क्षेत्र में चावल से अन्य भोज्य पदार्थ भी बनाये जाते हैं, जिनमें निम्नांकित तीन अधिक प्रसिद्ध हैं :—

(१) नून-जाउरि, (२) दहि-जाउरि और (३) लौकी-जाउरि।

(१) भात जब पकने लगता है, तब उसमें थोड़ी हल्दी और नमक डाल देते हैं। फिर भात के पक जाने पर उतारकर उसे घी, जीरा और मिर्चा से छौंक देते हैं। इस प्रकार जो भात तैयार होता है, उसे 'नून-जाउरि' कहते हैं। इसकी तुलना शहरी नमकीन चावल से की जा सकती है। (२) जब इसी भात को दही डालकर पकाते हैं, तब यह 'दहि-जाउरि' के नाम से पुकारा जाता है। (३) कभी-कभी भात में लौकी को चीरकर डाल देते हैं और दोनों को एक साथ पकाते हैं। फिर अन्त में भात को घी, जीरा, मिर्चा आदि से छौंक देते हैं। इस विधि से जो भात तैयार होता है, वह 'लौकी-जाउरि' की संज्ञा को प्राप्त करता है। यह खाने में बड़ा स्वादिष्ट लगता है। कुछ लोग इसमें दही भी डाल देते हैं, जिससे इसका स्वाद और अधिक बढ़ जाता है। यद्यपि ये सब गरीबों के ही भोजन हैं, परन्तु यदि धनी व्यक्ति भी इनका एक बार आस्वाद लें, तो इन्हें फिर से खाने के लिए उनका जी मचल उठे।

### विभिन्न अन्नों के भात

भोजपुरी लोक-जीवन में 'धाने के भात' भोज्य पदार्थों में श्रेष्ठ समझा जाता है। परन्तु चावल (धान) के अतिरिक्त दूसरे अन्नों को भी भात के रूप में पकाकर खाया जाता है, जिसमें निम्नलिखित प्रसिद्ध हैं :—

(१) जौ, (२) जनेरा (मकाई), (३) सावाँ, (४) कोदो, (५) बाजरा और (६) जोन्हरी आदि।

कुछ लोग जौ—जिसे भोजपुरी में 'जव' कहा जाता है—का भात बड़े चाव से खाते हैं। जौ को कम-से-कम २४ घण्टे तक पानी में भिगो दिया जाता है। फिर इसे पानी में से छानकर, ओखल में डालकर, मूसल की घमाघम चोट देकर कूटा जाता है, जिससे इसका ऊपरी छिलका या भूसी छूट जाय। फिर इसे सूप से फटककर, इसकी भूसी को अलग कर दिया जाता है। बाद में चावल की ही भाँति इसे पानी में पकाया जाता है। फिर दाल या दही की सहायता से इसे खाते हैं। जौ का भात बड़ा गरिष्ठ होता है और कभी-कभी इसके खाने के कारण पेट में दर्द होने लगता है।

'कोदो' का भात चावल की ही भाँति सफेद होता है। यह खाने में स्वादिष्ट लगता है। इसका भात प्रायः गीला होता है, जिसे विशेषकर मट्ठा की सहायता से खाते हैं। 'साँवा' कोदो की ही भाँति कदन्न (बुरा अन्न) की श्रेणी में गिना जाता है, जिसे निम्नवर्ग के लोग व्यवहार में लाते हैं। सुदामा की स्त्री ने उनसे बड़े ही करुणापूर्ण शब्दों में कहा था कि यदि मुझे 'कोदो' और 'सावाँ' भी खाने को मिलता, तो दूध और मिष्ठान्न की कामना मैं नहीं करती।'

“कोदो सावाँ जुरतौ भरि पेट तौ।

चाहति ना दधि-दूध मिठौती॥”

'सावाँ' को कूटकर तथा फटककर ही इसका भात बनाया जाता है, परन्तु स्वरूप और स्वाद में यह कोदो का मुकाबिला नहीं कर सकता। कोदो के चावल की खीर भी बनायी जाती है, परन्तु सम्भवतः सावाँ प्रायः इस काम में प्रयुक्त नहीं होता। कुछ लोग बाजरा का भी भात पकाकर खाते हैं, जो स्वाद में सम्भवतः अच्छा नहीं लगता। जहाँ उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलों—बिजनौर, सहारनपुर, मेरठ आदि—में ज्वार, बाजरा, जौ और मक्की की रोटी खाने की अधिक प्रथा है, वहाँ हमारे यहाँ इनका भात ही बनाकर खाते हैं। जौ और ज्वार की रोटी भी बनायी जाती है, परन्तु बहुत कम। ज्वार को भोजपुरी क्षेत्र में 'जोन्हरी' कहा जाता है। इसका पौधा बड़ा लम्बा होता है और इसकी बाल पौधे के सबसे ऊपरी भाग (सिर) पर लगती है। इसका दाना सफेद होता है। पहिले इसको ओखली में खूब कूटते हैं, जिससे इसके ऊपर की भूसी छूट जाती है। फिर उसका भात



पकाया जाता है। जोन्हरी को जाँत में दलकर—उसके टुकड़े करके भी—उसका भात बनता है, परन्तु भात बनाने की अपेक्षा इसकी रोटी ही अधिक बनायी जाती है।

### जनेरा का भात

चावल के अनन्तर भोजपुरियों का प्रधान भोजन मक्का का भात है। मक्का को भोजपुरी में 'जनेरा' कहा जाता है। इसे 'मकई' या 'मकइया' भी कहते हैं। जिस प्रकार से चावल का भात धनीवर्ग का भोजन है, उसी प्रकार से जनेरा का भात निर्धनवर्ग के लोगों के प्रधान भोज्य पदार्थ का प्रतिनिधित्व करता है।

यह अन्न मादों मास में तैयार होता है, अतः इसे 'भदई' के नाम से भी पुकारते हैं। 'चइती' के बाद इस 'भदई' की फसल पर ही गरीब किसान अपनी आशा लगाये रहता है। यदि भदई की फसल अच्छी हो गयी, तब तो उसका घर अन्न का अनन्त भाण्डार हो जाता है, परन्तु यदि भदई बाढ़ के कारण बह गयी, तो इसके साथ ही किसान का घर भी बह जाता, अर्थात् बर्बाद हो जाता है।

मकई के पौधे में कई 'बालें' लगती हैं, जो 'भुट्टा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कच्चे भुट्टे को आग में भूनकर खाया जाता है, जो बड़ा स्वादिष्ट लगता है। कुछ शौकीन लोग भुट्टे के कच्चे दानों को पीसकर उसका हलुआ भी बनाते हैं। जब मक्का पक जाता है, तब उसे घर की स्त्रियाँ जाँत में पीसती हैं। फिर सूप से उसे फटक (पछोर) कर छोटे तथा बड़े टुकड़ों को अलग-अलग कर देती हैं। मक्का के इन्हीं बड़े-बड़े टुकड़ों या खण्डों से इसका भात बनाया जाता है, जिसे 'जनेरा का भात' कहते हैं।

### पकाने की विधि

मक्का या जनेरा के भात को पकाने का काम घर की चतुर तथा अनुभवी स्त्री ही करती है। नयी 'रँगरूट' बहुएँ इस काम को करने में असमर्थ होती हैं; क्योंकि इसमें जलने का डर रहता है। जाँत से पीसे गये मक्के के खण्डित दानों को गर्म पानी में डाल दिया जाता है। 'बटुली' (पतीली) की तलहटी (निचले भाग) में यह 'बैठ' न जाय, इसलिए इसे बार-बार मोटी लकड़ी या कलछुल से 'चलाते' रहते हैं। अधिक 'आँच' लगने से यह 'फट, फट, फट,' की आवाज करता हुआ पकने लगता है। इसी 'फट-फट' की ध्वनि करने से इस मक्के के भात को 'फँफोर' भी कहते हैं। 'फँफोर चाटना' भोजपुरी का मुहावरा ही बन गया है, जो किसी व्यक्ति की निर्धनता की सूचना देता है।

जनेरा का भात बनानेवाली स्त्री चूल्हा से थोड़ी दूर पर बैठती है; क्योंकि बटुली से 'फट-फट' की मधुर ध्वनि करते हुए मक्के के जलते हुए भात के अंश, यदि उसकी देह पर पड़ जायँ, तो उसे इसके उपचार के लिए किसी अस्पताल की ही शरण लेनी पड़ती है। जनेरा का भात सदा गीला ही बनता है, अतः इसे पकाने में किसी कौशल की आवश्यकता नहीं होती। इसमें किसी 'गिह्थान' की जरूरत नहीं। यह भात बहुत ही देर से पकता है, क्योंकि मक्का के कड़े दानों को गलने में देर लगती है।

भात के बन जाने पर उसे थाली में फैला देते हैं, जिससे थोड़ी ही देर में वह जमकर 'थक्का' हो जाता है। फिर उसे बड़ी थाली में से काटकर या निकालकर थोड़ा-थोड़ा भात घर के लोगों की थाली में परोसा जाता है।

### खाने की विधि

गरीब लोग जनेरा के 'तातल' (गर्म) भात पर नमक छिड़ककर उसे बड़े प्रेम से खाते हैं। परन्तु इसके खाने का सबसे श्रेष्ठ साधन है दही या मट्ठा। मक्का का ताजा भात स्वादिष्ट होता है, अतः उसे नमक की सहायता से भले ही खा लिया जाय, परन्तु इसके ठण्डे या बासी हो जाने पर बिना दही की सहायता से इसे खाना अस्वादकर है। गाँव की गरीब स्त्रियाँ तथा बच्चे बड़े प्रेम से 'फफोर' में दही मिलाकर खाते हैं। कुछ लोग अरहर की दाल के साथ भी इसका भोग लगाते हैं। परन्तु इन दोनों का मेल इतना ही बेमेल है, जितना सत्तू के साथ पूड़ी खाना।

'जनेरा' के भात का रंग सोने के समान पीला होता है। अतः व्यंग्य में इसे 'सोनहुला भात' भी कहते हैं। यदि भोजपुरी क्षेत्र में किसी व्यक्ति की निर्धनता की व्यञ्जना करनी होगी, तो यह कहेंगे कि "इनकरा घरे सोनहुला भात खाइल जाला।" अर्थात् इसके घर में सोने के रंग का भात खाया जाता है। यह जीवन का कितना बड़ा व्यंग्य है कि 'सोने के रूप' का



भात खानेवाला व्यक्ति नितान्त दरिद्र हो। इस 'सोने के भात' को कुछ लोग 'पियरकी' भी कहते हैं और किसी गरीब पर बोली बोलते हुए "इनकरा घर से अबहुओं पियरकी ना गइल" इस शब्दावली का व्यवहार करते हैं।

जनेरा का मात पकाने पर बहुत बढ़ जाता है। अतः यह निर्धनों की पेट की ज्वाला को शान्त करने में सहायक है। यह भोजपुरियों का अन्नदाता है, प्राणदाता है, जीवनदाता है और उनकी रिक्त उदरदरी की पूर्ति करनेवाला है।

जाँत में पीसे गये मक्के के छोटे-छोटे खण्डित दानों को 'दरिया' कहते हैं, जो 'दलिया' का अपभ्रंश रूप है। 'दरिया' में गुड़ मिलाकर इसे खाया जाता है। यह जलपान या नाश्ता का उत्तम साधन है। बच्चे इसे बड़े चाव से 'फाँकते' या खाते हैं।

मक्के की फसल जब होती है, तब प्रचुर मात्रा में होती है। इसे 'बम्पर क्राप' कह सकते हैं। इसके एक ही पौधे में चार-चार और पाँच-पाँच तक बालें लगती हैं। अतः इसके अन्न से घर अन्नपूर्णा का भाण्डार बन जाता है। यदि 'चइती' किसी प्रकार से नष्ट हो गयी, तो 'मदई' ही किसान के 'बुढ़ापे की लकड़ी' का काम करती है, उसके प्राणधारण में सहायक होती है। सस्ती होने के कारण इसे सभी लोग आसानी से खरीद सकते हैं।<sup>१</sup> अतः इन विभिन्न गुणों से विभूषित होने के कारण यदि भोजपुरी जनता इसकी गुणावली के गीत गाये, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भोजपुरी के लोक-कवि श्री भिखारी ठाकुर ने जो 'मकई-प्रशस्ति' लिखी है, वह हरिषेण के द्वारा निर्मित समुद्रगुप्त की प्रयाग वाली प्रशस्ति से कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। जिस प्रकार से हरिषेण ने अपनी 'प्रशस्ति' में समुद्रगुप्त के व्यक्तिगत गुणों और उसके दिग्विजय का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है, उसी प्रकार से भिखारी ठाकुर ने 'मकई' के गुण (एचीवमेण्ट्स) का विस्तृत विवरण अपनी प्रशस्ति में प्रस्तुत किया है। इस प्रशस्ति की प्रथम पंक्ति है—'मकइया रे तोर गुनवा गूथवि माला।'

## (२) अनुच्छेद—दाल

भोजपुरी क्षेत्र में जिस प्रकार चावलों में 'उसिना' या 'भुजिया' चावल खाने की अधिक प्रथा है, उसी प्रकार दालों में अरहर की दाल सबसे अधिक व्यवहार में लायी जाती है। दैनिक भोजन में, विवाह के अवसर पर दावतों में 'भतवानि' के समय सभी जगह अरहर की दाल का अखण्ड साम्राज्य दिखाई पड़ता है। इसके इतने अधिक प्रचार का कारण इसकी अधिक पैदावार है। प्रायः प्रत्येक किसान अपने खेतों में अरहर बोता है। अरहर की फसल के तैयार होने में पूरे साल भर लगते हैं। इसकी खेती पूरे बारह महीनों तक खेत में खड़ी रहती है। इसी कारण यह रीतिकाल में प्रेम में पागल प्रेमी और प्रेमिकाओं के लिए संकेत स्थल (मिलने का स्थान) रहा है। बिहारी ने किसी प्रेमिका को सान्त्वना प्रदान करते हुए अरहर को अभिलक्षित कर लिखा है:—<sup>२</sup>

“सन सूख्यौ, बीत्यो बनौ, ऊखौ लई उपायि।  
अजौ खड़ी अरहर हरी, धर धीरज हिय नारि॥”

अरहर की दाल बड़े आसानी से पक जाती है। यह पतली बनायी जाती है, जिससे चावल के साथ आसानी से खायी जा सके। यदि इसे घी और जीरा से छाँक दिया जाय, तो फिर इसके स्वाद का क्या कहना है? आम के दिनों में कच्चे आम के टुकड़ों को काटकर इसमें डाल दिया जाता है, जिससे इसके स्वाद में वृद्धि हो जाती है। कुछ लोग इसमें गुड़ डालकर मीठी दाल का स्वाद लेते हैं।

अरहर की दाल के अतिरिक्त निम्नांकित दालों को भी व्यवहार में लाया जाता है। परन्तु इनका उपयोग बड़ा सीमित है:—

- (१) चना, (२) मूँग, (३) उड़द,  
(४) मसूर, (५) मटर और (६) लेतरी (खेसारी)

यद्यपि चना इस क्षेत्र में बहुत पैदा होता है, परन्तु इसकी दाल खाने का आम रिवाज नहीं है। हाँ, विशिष्ट अवसरों पर इसकी दाल अवश्य बनायी जाती है। विवाह के अवसर पर जब समधी (वर का पिता) मण्डप में भात खाने के लिए आता है, उस समय निश्चित रूप से चने की दाल ही उसको खाने ('जेंवने') के लिए परोसी जाती है। इस दाल को घी, जीरा, हींग और मिर्चा से छाँकते हैं, जिससे इसका स्वाद बहुत अधिक बढ़ जाता है। किसी अन्य विशिष्ट व्यक्ति के आने पर उसके

१. परन्तु आजकल के इस भीषण अन्न-संकट में मक्का भी एक सेर का बिकने लगा है।

२. बिहारी सतसई।



स्वागत के लिए भी, चने की दाल बनायी जाती है। जिस प्रकार उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलों में, किसी विशिष्ट व्यक्ति के सम्मान में उड़द की दाल खिलायी जाती है, उसी प्रकार इस क्षेत्र में चने की दाल का व्यवहार किया जाता है।

मूंग की दाल आलोच्य क्षेत्र में बहुत कम पैदा होती है। अतः भोजन के दैनिक व्यवहार में इसे नहीं लाया जाता है। समूचे गाँव में खोज आइये, शायद ही किसी के घर मूंग की दाल मिले। रोगी को 'पन्थ' (पथ्य) देने के लिए वैद्य लोग मूंग की दाल खाने को बतलाते हैं। रोगी को पहिले इसकी दाल का पानी पीने को दिया जाता है। बाद में दाल दी जाती है। पाचनक्रिया में यह बड़ी सरल होती है। इसीलिए इसका विशेष प्रयोग रोगी के भोजन के लिए ही किया जाता है।

उड़द का प्रयोग दाल के रूप में बहुत ही कम होता है। पश्चिमी जिलों में जितना ही इसका अधिक प्रचार है, पूर्वी जिलों में उतना ही कम है। इसका उपयोग 'बारा' (बड़ा या बरा) और 'फुलवरा' बनाने में अवश्य किया जाता है, जिसका उल्लेख अन्यत्र किया जायेगा। उड़द की दाल बड़ी देर से पकती ('गलती') है। मसूर की दाल लाल-लाल होती है। इसे निम्न श्रेणी के लोग खाते हैं।<sup>१</sup> अरहर की दाल में मिलाकर पकाने से इसका स्वाद द्विगुणित हो जाता है। मटर की दाल आकृति में चने की दाल के समान होती है। यह बड़े देर से 'गलती' है और खाने पर वायु पैदा करती है, इसीलिए इसे लोग प्रायः नहीं खाते।

'लेतरी' की दाल सबसे निकृष्ट समझी जाती है। परन्तु सस्ती होने के कारण गरीब लोग इसे बड़े प्रेम से खाते हैं। यह भी वायुकारक होती है। चपटी होने के कारण इसे पश्चिमी जिलों में 'चपटी मटर' भी कहते हैं। बिहार के आरा जिले में यह 'खेसारी' के नाम से पुकारी जाती है। धनी व्यक्ति इसकी दाल के बेसन को गाय और भैंस को पिलाते हैं, जिससे वे अधिक दूध दे सकें। जिस प्रकार से दालों में अरहर और चना उच्चवर्ग का भोज्य पदार्थ है, उसी प्रकार से 'लेतरी' निर्धनों का भोजन है।

### खिचड़ी

खिचड़ी भोजपुरी लोगों का प्रधान भोजन है। ग्रामीण जनता में इसके खाने का बड़ा प्रचार है। इसकी लोकप्रियता का प्रधान कारण यह है कि यह बड़ी आसानी से तैयार किया जाता है। यात्रा में जहाँ भोजन बनाने का पात्र उपलब्ध नहीं होता, वहाँ उपले को जलाकर उस पर मिट्टी की हाँड़ी में चावल-दाल एक ही साथ मिलाकर रख देते हैं। फिर इसमें थोड़ी हल्दी और नमक डालकर किसी लकड़ी के टुकड़े अथवा सरकण्डे से इसे चलाते रहते हैं। थोड़ी ही देर में खिचड़ी पककर तैयार हो जाती है। फिर इसी हाँड़ी में खिचड़ी खाकर बाद में इसे फोड़ देते हैं।

खिचड़ी को स्वादपूर्वक खाने के लिए अन्य चार पदार्थों—दही, पापड़, घी और अचार—की आवश्यकता पड़ती है; जैसा निम्नांकित लोकोक्ति से स्पष्ट प्रतीत होता है :—

“खिचड़ी के चार इयार।  
दही, पापड़, घी, अचार॥”

नये चावल की खिचड़ी बड़ी स्वादिष्ट होती है। चावल के साथ प्रायः अरहर की दाल पकाकर खिचड़ी बनायी जाती है। परन्तु मूंग के दाल की खिचड़ी बड़ी स्वादिष्ट, हल्की तथा पाचक होती है। इसीलिए डॉक्टर लोग रोगी के पथ्य के लिए मूंग की खिचड़ी ही खाने को बतलाते हैं। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलों में उड़द के दाल की खिचड़ी खाने की प्रथा है, जो कुछ कम स्वादिष्ट नहीं होती। माघ के महीने में घी के साथ खिचड़ी का खाना स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। माघ मास (१४ जनवरी) में होनेवाली संक्रान्ति के दिन खिचड़ी खाने का बड़ा महत्त्व है। इस दिन प्रायः सभी लोग खिचड़ी खाते हैं।

### (३) अनुच्छेद—रोटी

यों तो रोटी कई अन्नो को पीसकर बनायी जाती है, परन्तु गेहूँ की रोटी सबसे अधिक मुलायम, स्वादिष्ट और स्वास्थ्यकर होती है। गेहूँ की रोटी खाना बड़े गर्व तथा सम्मान का विषय माना जाता है। भोजपुरी में एक कहावत प्रसिद्ध है:—“खाइबि गेहूँ ना त रहबि एहूँ।” अर्थात् यदि मैं खाऊँगा तो गेहूँ की ही रोटी खाऊँगा, अन्यथा बिना खाये भूखा ही रह जाऊँगा। यह है गेहूँ की रोटी का महत्त्व। किसी व्यक्ति के धन का मूल्यांकन तथा उसके खान-पान की 'महीनी' (श्रेष्ठता) का पता

१. आजकल मसूर की दाल का प्रयोग 'दालमोट' बनाने के काम में प्रचुर मात्रा में किया जा रहा है, जिसे फैशनेबुल लोग भी बड़े ही चाव से खाते हैं।



गेहूँ की रोटी खाने से लगता है। लोग आपस में कहते हैं—‘उनुकरा घरे गेहूँ के रोटी खाइल जाला’, अर्थात् उसके घर में गेहूँ की रोटी खायी जाती है। आशय यह है कि वह धनी व्यक्ति है।

गेहूँ को चौबीस घण्टे तक पानी में भिगो देते हैं। फिर उसे पानी में से छानकर धूप में सुखा देते हैं। अच्छी तरह से सूख जाने पर उसे सूप से ‘फटकते’ हैं, जिससे उसकी भूसी, तिनका आदि निकल जाय। फिर इसे घर की चक्की में खूब बारीक पीसते हैं। इस प्रकार जो आटा तैयार होता है, उसकी रोटी बड़ी मुलायम और स्वादिष्ट होती है। आजकल मशीनों में गेहूँ को बिना धोये ही पीसवा देते हैं। परन्तु उसकी रोटी उतनी मुलायम नहीं होती। आटे को जितना ही अधिक देर तक गूँथा (साना) जाय, जितना ही अधिक ‘माँड़ा’ जाय, उसकी रोटी उतनी ही अधिक मुलायम होती है। आटे को गूँथने का मापदण्ड (standard) यह है कि वह थाली में इतने जोरों से चिपक जाय कि गूँथे गये आटे को ऊपर उठाने पर थाली भी उसके साथ ही ऊपर उठ जाय। रोटी जितनी ही पतली होगी, वह उतनी ही अधिक स्वादिष्ट होगी। कुछ स्त्रियाँ आटे को हाथ से ‘बेल’ कर रोटी पकाती हैं, परन्तु अधिकांश स्त्रियाँ इसके लिए चकला (चौका या होरसा) और बेलना का प्रयोग करती हैं। रोटी को पतला और गोलाकार बेलना ‘गिहिधिन’ (पाक में चतुर) स्त्रियों का लक्षण माना जाता है। कुछ स्त्रियाँ रोटी को तवे पर ही ‘फुलाती’ हैं। परन्तु ‘खरी’ रोटी चूल्हे के नीचे आग पर ही सेंकी जाती है। रोटी की विशेषता उसके पतली होने में है। दाल में डालते ही जो रोटी ‘गल’ जाय, तो समझना चाहिए कि यह बड़ी मुलायम होगी।

स्त्रियाँ रोटी में घी लगाकर, उन्हें ‘जोड़ियाकर’, अर्थात् दो रोटियों को एक साथ एक के भीतर एक रखकर थाल में परोसती हैं। रोटी अधिकतर शाक के साथ खायी जाती है, परन्तु इसके साथ यदि दाल भी हो, तो फिर क्या कहना? और यदि उस थाल को परोसनेवाली स्त्री प्रिया, तथा ‘प्रियवादिनी’ और सुन्दरी हो, तो फिर उसके आगे स्वर्ग भी तुच्छ है। घाघ ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में इसका वर्णन किया है<sup>१</sup>—

“कहे घाघ तब सबही झूठा।  
उहाँ छाड़ि इहँवे बैकुण्ठा॥”

गेहूँ के अतिरिक्त अन्य अन्नों की भी रोटियाँ बनती हैं, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं:—

(१) जौ, (२) चना, (३) मक्का, (४) बाजरा, (५) ज्वार, और (६) मड़ुआ आदि।

जौ के आटे को तैयार करने में बड़ी लम्बी (अनेक) प्रक्रियाओं का पालन करना पड़ता है:—पानी में भिगोना, ओखली में कूटना, फिर धूप में सुखाना, फिर उसे सूप से फटकना। और अन्त में जब उसे जाँत में पीसा जाता है, तब कहीं जौ का आटा तैयार होता है। इस प्रकार इसे बनाने में कई दिन नष्ट होते हैं और अथक परिश्रम करना पड़ता है। चूँकि जौ का आटा स्वयं कष्ट सहनकर बनता है, अतः यह खानेवालों को भी बड़ा कष्ट देता है। जो व्यक्ति अभ्यस्त नहीं है, यदि वे जौ की रोटी खा लें, तो उनके पेट में दर्द पैदा हो जाता है। अतः इसे प्रायः गेहूँ के आटे के साथ मिलाकर खाते हैं, अन्यथा केवल जौ की रोटी को पचाना बड़ा मुश्किल है। यद्यपि आजकल डॉक्टर लोग रोगियों को ‘बारली’ खाने को कहते हैं; परन्तु जौ के आटे और ‘बारी पाउडर’ में बड़ा अन्तर है।

कच्चे चने को पीसकर चने का आटा तैयार किया जाता है। इसका आटा खाने पर रेचक (दस्तावर) होता है। अतः बहुत-से शौकीन लोग गेहूँ के आटे के साथ चने के आटे को मिलाकर बड़े प्रेम से खाते हैं। गेहूँ में चने का अनुपात ३ : १ का होना चाहिए, अन्यथा चने की अधिकता होने से गेहूँ का स्वाद नष्ट हो जाता है। कुछ लोग चने के आटे में नमक और गर्म-मसाला मिलवाकर केवल इसी की रोटियाँ पकवाते हैं, जो गरम-गरम और ताजी बड़ी स्वादिष्ट लगती है।

मक्के को पीसकर उसकी रोटियाँ बनायी जाती हैं, परन्तु पूर्वी जिलों में इसके खाने की विशेष प्रथा नहीं है। मक्के का भात तो लोग बड़े शौक से खाते हैं, परन्तु इसकी रोटी शायद ही कोई खाता है। पश्चिमी जिलों में इसके ठीक विपरीत प्रथा प्रचलित है।

बाजरे के आटे की रोटी बड़ी स्वादिष्ट होती है। परन्तु इसको बनाने में बड़ी चतुरता की आवश्यकता है। चूँकि इस आटे में ‘लस्सी’ (सरसता) बहुत कम होती है, अतः इसको गर्म पानी से ‘सानते’ हैं। इसके आटे की ‘लोइया’ बनाकर उसे हाथों पर पीटकर बड़ा बनाते हैं और उसे तवे पर डालकर पकाते हैं। बाजरे के आटे की रोटी कुछ काली और मोटी होती है, अतः वह आग पर विशेष नहीं ‘फूलती’। शौक से बाजरे की रोटी खानेवाले धनी लोग इसमें खूब घी लगाते या ‘सोखाते’ हैं। जब रोटी घी को खूब ‘सोख’ लेती है, तब उसे गुड़ की सहायता से खाते हैं। गरीब जनता इसकी मोटी और सूखी रोटी को

१. पं० रामनरेश त्रिपाठी : घाघ और भड्डरी।

मो०—१६



शाक या गुड़ के साथ खाकर अपना पेट भरती है। बाजरा बहुत गर्म होता है, अतः प्रधानतया यह जाड़े के दिनों में ही खाया जाता है।

ज्वार को भोजपुरी में 'जोन्हरी' कहते हैं। इसकी रोटी बड़ी सफेद परन्तु बहुत ही सख्त होती है। इसीलिए इसके आटे को गेहूँ के आटे में मिलाकर रोटी पकायी जाती है, जिससे इसकी 'कड़ाई' कुछ कम हो जाय। निम्नवर्ग के लोग मङ्गा की भी रोटी खाते हैं।

### आम की गुठली की रोटी

गांवों में आम को खाकर उसकी गुठली को प्रायः घूरे पर फेंक देते हैं। बरसात में जब गुठलियों पर काफी पानी पड़ जाता है, तब गांव की चमाइनें (चमार की स्त्रियाँ) आकर इन घूरों पर से आम की गुठलियों को बीनकर ले जाती हैं। फिर ये उन गुठलियों, जिसे भोजपुरी में 'अँठिली' कहते हैं—को फोड़कर उसके भीतर की गरी निकालती हैं, फिर इसे जाँत में पीसकर आटे की तरह महीन कर लेती हैं। इसके पश्चात् गुठली की गरी के इस आटे में वे गेहूँ या जौ का थोड़ा आटा मिला देती हैं। फिर वे दोनों को मिलाकर तथा इसे सानकर रोटियाँ बनाती हैं और इससे अपने पेट की ज्वाला को बुझाती हैं।

आम की गुठली की रोटी निम्नवर्ग (चमार, दुःसाध) के अत्यन्त निर्धन घर के लोग—विशेषकर स्त्रियाँ—ही खाते हैं। ये रोटियाँ स्वाद में कैसी होती होंगी, यह कहना कठिन है। परन्तु इनका स्वाद से क्या काम? ये तो उदरदरी की पूर्ति के लिए खायी जाती हैं।

### (४) अनुच्छेद—गेहूँ के आटे से बननेवाले अन्य भोज्य पदार्थ

गेहूँ के आटे से अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ तैयार किये जाते हैं, जिनमें से कुछ प्रसिद्ध इस प्रकार हैं :—(१) पूड़ी (२) कचौड़ी, (३) पूरी, (४) पराठा, (५) मकुनी, (६) फुटेहरी, (७) बाटी, (८) पूआ, (९) ठेकुआ, (१०) चोंथा, (११) दहिरवरी, (१२) महुँअरि, (१३) दोहथी, (१४) पिठौरी, (१५) गोझा, (१६) हलुआ, (१७) काँची, (१८) लपसी, (१९) अघरवटा, (२०) लाडू।

इन भोज्य पदार्थों का कोई श्रेणी-विभाजन करना बड़ा कठिन है। वास्तव में इनका कोई वर्गीकरण हो भी नहीं सकता। परन्तु इनको अलग-अलग श्रेणियों में बाँटना ही चाहें, तो निम्न चार प्रकार से विभाजित कर सकते हैं :—

(१) केवल आटे से बने हुए पदार्थ—जैसे पूड़ी, पराठा, दोहथी आदि।

(२) आटे के भीतर दाल या सत्तू भरकर बनाये गये पदार्थ—जैसे पूरी, मकुनी, फुटेहरी, बाटी, कचौड़ी, गोझा आदि।

(३) आटे में गुड़ या चीनी डालकर घी में पकाये गये भोज्य पदार्थ—जैसे पूआ, दहिरवरी, ठेकुआ, चोंथा आदि।

(४) स्वतन्त्र रीति से बनाये गये पदार्थ—जैसे पिठौरी, महुँअरि।

परन्तु यहाँ पर किसी क्रम का पालन न करके स्वतन्त्र रीति से ही इनका विवेचन किया जाता है।

### (१) पूड़ी

भोजपुरी में पूरी को 'पूड़ी' कहा जाता है। परन्तु इन दोनों भोज्य पदार्थों में बड़ा अन्तर है। पूड़ी उसे कहते हैं, जब गूँथा हुआ आटा कड़ाही में डालकर घी में पकाया जाता है, परन्तु जब आटे के भीतर उबालकर पीसी हुई चने की दाल डाली जाती है और जब उसे तवे पर पकाया जाता है, तब भोजपुरी में उसको 'पूरी' कहा जाता है। अतः भोजपुरी 'पूरी' और 'पूड़ी' में बहुत अन्तर समझ लेना चाहिए।

पूड़ी दो प्रकार की होती है—(१) छोटी और (२) बड़ी। दैनिक भोजन के लिए जो पूड़ी बनायी जाती है, वह बहुत पतली और छोटी होती है। इसे छोटे से चकले पर 'बेलने' से 'बेल' कर पकाते हैं। किसी विशिष्ट व्यक्ति या अतिथि के घर आने पर उसके भोजन के लिए आटे में खूब घी मिलाकर या मलकर जो पूड़ी पकायी जाती है, वह बड़ी मुलायम होती है। यह 'खस्ता पूड़ी' कहलाती है।

परन्तु, विवाह आदि अवसरों पर 'भोज' (दावत) करने के लिए जो पूड़ी पकायी जाती है, वह बहुत बड़ी और लम्बी-चौड़ी होती है। यदि पुरइन के पत्ते या हाथी के कान से उसकी उपमा दें, तो कुछ अनुचित न होगा। यह एक पूड़ी तौल में एक पाव (१।४ सेर) से भी अधिक होती है। इसे हलुवाई काठ के पीढ़े या लम्बे-चौड़े तख्ते पर बेलना से बेलकर पकाते हैं। कुछ अपने दोनों हाथों से 'लोइया' को हाथों पर पटक-पटककर बड़ा बना देते हैं। परन्तु काठ पर बेली गयी पूड़ी बड़ी



सुडौल और सुन्दर होती है। इन पूड़ियों को 'जोड़ियाकर' एक साथ रखते जाते हैं और इसी तरह से उन्हें पत्तल में भी परोसते हैं। साधारणतया दो से अधिक पूड़ी कोई नहीं खा सकता। पुरइन के पत्ते के समान लम्बी-चौड़ी तथा मोटी इन पूड़ियों को देखकर बड़े-बड़े भोजन-भट्टों के भी छक्के छूट जाते हैं। ये पूड़ियाँ देखने में तो भद्दी और मोटी अवश्य लगती हैं, परन्तु ये कई दिनों तक मुलायम बनी रहती हैं और खराब नहीं होतीं।

'भोज' खानेवाले ब्राह्मण लोग इन पूड़ियों पर बहुत 'चोट करते' हैं, अर्थात् बड़े प्रेम से खाते हैं। वे इससे अपने पेट की पूर्ति करने के लिए यदि किसी दूर स्थित गाँव से भी निमन्त्रण आता है, तो वहाँ भी पहुँच जाते हैं। इस सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है कि :—

“चिउड़ा दही बारह कोस।  
लुचुई अठारह कोस॥”

अर्थात् ब्राह्मण चिउड़ा-दही खाने के लिए बारह कोस, अर्थात् चौबीस मील तक जाते हैं। और यदि कहीं पूड़ी खाने का निमन्त्रण मिल गया, तो अठारह कोस, अर्थात् छत्तीस मील भी पैदल चले जाना उनके लिए कोई कठिन काम नहीं है। आजकल भी पाँच-सात मील तक पूड़ी खाने के लिए जानेवाले ब्राह्मण अक्सर पाये जाते हैं।

भोजपुरी में पूड़ी को 'लुचुई' कहा जाता है। इसे 'सकुली' भी कहते हैं, जो संस्कृत के 'शष्कुली' का अपभ्रंश रूप है। तुलसीदास ने 'सकुली' शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया है :—

“एक दिन तुलसी वे रहे, माँगत मिले न चून।  
एक दिन तुलसी वे भये, सकुली दूनो जून॥”

बँगला में भी पूड़ी को लुचुई ही कहा जाता है। अतिथि का सम्मान प्रायः पूड़ी खिलाकर किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति को अपने घर पर दावत देनी है, तो प्रायः उसे पूड़ी ही खिलायी जाती है। भोजपुरी क्षेत्र में चूँकि पूड़ी को पक्का खाना माना जाता है, अतः ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य, किसी के भी घर निःसंकोच रूप से इसे खा सकते हैं तथा उन्हें खिलाया जा सकता है। पक्का भोजन होने के कारण किसी के घर पूड़ी खाने में कोई विशेष विचार या स्पृश्यास्पृश्य का तर्क नहीं करना पड़ता।

परन्तु, पुराणपन्थी पण्डित लोग पानी से 'साने' गये आटे की पूड़ी को अवश्य ही अशुद्ध मानते हैं। अतः वे इस प्रकार की पूड़ी को नहीं खाते। वे दूध से आटे को सानकर घी में पकायी गयी पूड़ी को ही पवित्र समझते हैं। यदि दूध का अभाव हो, तो दही ही सही, उसी से आटा साना जाना चाहिए, तभी वह उनके लिए ग्राह्य होती है।<sup>१</sup>

घी के अतिरिक्त सरसों, तिल, बरें और 'कोइना' के तेल में भी पूड़ी पकायी जाती है। परन्तु डालडा और वनसदा के आगे इन तेलों को इस काम के लिए अब कोई नहीं पूछता।

## (२) कचौड़ी

पक्के भोज्य पदार्थों में पूड़ी के बाद दूसरा स्थान कचौड़ी का है। दावतों में पूड़ी के साथ कचौड़ी भी खाने के लिए परोसी जाती है। कुछ लोग कचौड़ी के बड़े प्रिय होते हैं और दर्जनों की संख्या में इसे खाते हैं। गर्मागर्म कचौड़ी बड़ी स्वादिष्ट लगती है। घी की कड़ाही में जब पककर कचौड़ी वादामी रंग की हो जाय, खिलकर छोटे गेंद की आकृति धारण कर ले, तब समझना चाहिए कि यह अच्छी तरह से पक गयी है।

साधारणतया कचौड़ी उड़द की दाल को पीसकर बनायी जाती है। सिल पर पीसी गयी इस दाल को 'पिट्ठी' कहा जाता है। इस पिट्ठी को कड़ाही में घी, मिर्चा और जीरा डालकर भूना जाता है। फिर इसे आटे के भीतर डालकर उसका लोइया बनाते हैं और घी की कड़ाही में डालकर पकाते हैं। कमी-कमी उड़द की सूखी दाल को जाँत में पीस लेते हैं। यह पीसा गया चूर्ण 'घुआँस' कहलाता है। फिर इसे पानी से सानकर आटे में भर देते हैं।

१. मेरी भतीजी के विवाह में कुछ पाखण्डी पण्डित ६-१० बजे रात को आये। उनके लिए क्या भोजन बनाया जाय, यह बड़ी समस्या उत्पन्न हुई। उन्होंने बताया कि दूध में सनी और घी में पकायी गयी आटे की पूड़ी को ही वे खा सकते हैं। परन्तु, गाँव में दस बजे रात को दूध कहाँ मिलता, अतः दही में आटे को सानकर पूड़ी पकायी गयी। पण्डितों ने डटकर खाय़ा, परन्तु कहा कि पूड़ी का स्वाद खट्टा है। पता लगाने पर मालूम हुआ कि जिस दही से आटे को साना गया था, वह कई दिन की बासी और बहुत ही खट्टी थी। परन्तु अब लाचारी थी।



उड़द की दाल के अतिरिक्त आलू, मटर, बथुआ का साग आदि की भी कचौड़ी बनायी जाती है। कच्चे मटर को सिल पर पीसकर उसमें नमक, गर्म-मसाला आदि मिलाकर फिर उसे आटे में भरकर कचौड़ी पकाते हैं। आलू और बथुआ के साग को इसी प्रकार आग पर उबालकर, मसाला डालकर, कचौड़ी बनाते हैं। जो गरीब व्यक्ति हैं, वे घी से भरी कड़ाही में कचौड़ी नहीं 'छानते', बल्कि उसे तवे पर पकाते हैं और 'चिरकुट' (कपड़ा) या चम्मच से तवे पर पड़ी कचौड़ी में थोड़ा घी लगा देते हैं। यही गरीबों की कचौड़ी है।

### (३) पूरी

पूरी को 'दालभरी पूरी' भी कहा जाता है। यह पूरी से बिल्कुल भिन्न होती है, जिसका उल्लेख पहिले किया जा चुका है। पूरी खाने में बड़ी स्वादिष्ट होती है। खासकर बासी पूरी तो और भी अच्छी लगती है। यदि खाते समय दही भी मिल जाय, तब इसके स्वाद का क्या कहना। जब कोई नयी बहू मायके से ससुराल आने वाली होती है, उस दिन विशेष करके पूरी बनायी जाती है। स्त्रियों का विश्वास है कि जिस प्रकार पूरी भरी-पूरी रहती है, उसी प्रकार से बहू भी भरी-पूरी रहे, इसीलिए उसके स्वागत में पूरी का पकाना आवश्यक समझा जाता है। विवाह के पश्चात् वर और कन्या के घर में चौथे दिन जो 'चौथारी' होती है, उस दिन कुटुम्ब के भाई-बन्धुओं को पूरी का ही 'भोज' दिया जाता है। उस दिन सबको पूरी खिलाने का ही 'मेधा' (प्रथा) है। इसके अतिरिक्त कुछ त्यौहारों के अवसर पर भी पूरी बनाने की प्रथा है। रामनवमी के दिन 'माता दाई' को तेल में बनायी गयी पूरी 'चढ़ायी' जाती है। बिना किसी अवसर के भी, यों ही खाने के लिए भी पूरी पकायी जाती है। पूरी को पकाकर उसमें घी 'चमोर' (चुपड़) देने से वह मुलायम और स्वादिष्ट हो जाती है। बच्चों के एक लोरी-गीत से ज्ञात होता है कि पूरी में घी खूब लगाया जाता है और ऐसी पूरी को खाने के लिए बच्चे निश्चय ही मचल उठते हैं। गीत इस प्रकार है:—

“ताई ताई पुरिया, घी में चमोरिया।

हम खाई कि भउजी खाई,

भउजी

पतरंगिया॥”

सचमुच घी में 'चमोरी' गयी पूरी को बच्चे अपनी भावज को खाने के लिए क्यों देने लगे?

चने की दाल को पानी में डालकर पहिले आग पर उबालते हैं। इसके अधपके हो जाने पर इसे सिल पर पीसते हैं। फिर इसमें नमक, मिर्चा, खटाई, गर्म-मसाला आदि डालते हैं। इसको आटे में भरकर लोइया बनाकर, चकले पर बेलते हैं। फिर घी से भरी कड़ाही में इसे डालकर 'छानते' या पकाते हैं। पूरी पकाने के प्रधान तीन तरीके हैं:—

(१) तवे पर पकाना।

(२) कुछ देर तवा पर, फिर कड़ाही में पकाना।

(३) केवल कड़ाही में ही पकाना।

निर्धन व्यक्ति पूरी को तवे पर ही पकाते हैं। जब पूरी पक जाती है, तब उस पर चिरकुट (मैला तथा छोटा कपड़ा) या चम्मच से थोड़ा घी लगा देते हैं। इस प्रकार पूरी तैयार हो जाती है। दूसरे लोग पहिले तवे पर ही पूरी रखकर पकाते हैं, और जब वह प्रायः पूरी पक चुकती है, तब उसे घी की कड़ाही में डाल देते हैं, जिससे वह घी से सिक्त हो जाती है। पूरी को पकाकर फिर कड़ाही में डालने से घी कम खर्च होता है। यह पूरी बनाने का मध्यम मार्ग है। परन्तु शौकीन या धनी लोग पहिले पूरी को सीधे घी से भरी हुई कड़ाही में डाल देते हैं और उसी में उसे पकने देते हैं। कड़ाही के घी में तैराकर पकायी गयी पूरी इतनी मुलायम होती है कि इसे बुढ़े भी अपने पोपले मुँह से खा सकते हैं। इस भोजपुरी पूरी के आगे शहरी लोगों के पराठे, पूरियाँ सब बेकार हैं। पूरी के दिन 'रसियाव' भी पकाया जाता है, क्योंकि दोनों का बड़ा मेल है। कोहड़े की तरकारी इसके स्वाद को और भी बढ़ा देती है। यदि पूरी, रसियाव और कोहड़े के शाक का संयोग एकत्र मिल जाय, तो कौन बिना पेटभर खाये उसे छोड़ सकता है?

### (४) पराठा

पश्चिमी जिलों में पराठे को 'परावँठे' कहते हैं, जिसे खाने का वहाँ आम रिवाज है। साधारण स्थिति का व्यक्ति भी शामको 'परावँठे' ही खाता है, चाहे घी से उसका सम्पर्क शून्य ही क्यों न हो। पूर्वी क्षेत्रों में 'पराठे' को नियमपूर्वक प्रति-दिन खाया जाता हो, ऐसी बात नहीं है। परन्तु, शौक से कभी-कभी इसे बनाया जाता है। 'लोइया' को बेलकर, उसे तीन-



चार बार उलट-पुलटकर मोड़ते हैं। इसके प्रत्येक पत में घी लगाते हैं। फिर इसकी तिकोनी आकृति बनाकर तवे पर डाल देते हैं। फिर उस पर घी डालकर इसे धीरे-धीरे पकाते हैं। जब पककर 'पराठा' वादामी रंग का हो जाता है, तब उसे उतार लेते हैं। कुछ स्त्रियाँ तिकोने के स्थान पर गोल, वृत्ताकार पराठा पकाती हैं। परन्तु किसी भी रूप में पकाया जाय, पराठे का स्वाद बड़ा ललचाने वाला होता है। दिल्ली का पराठा बड़ा प्रसिद्ध है, जहाँ चाँदनी चौक की 'परावँठे वाली' गली में विशेषकर यही विक्रता है।

कुछ लोग आटे में थोड़ा नमक, अजवाइन, मगरैल आदि डालकर पराठा पकवाकर खाते हैं। नमकीन होने से इसका स्वाद और अधिक हो जाता है। घी में पकायी गयी पूरी से पराठे का स्वाद कहीं अधिक होता है। इसीलिए यह बड़ा लोकप्रिय भोजन हो गया है।

### (५) मकुनी

यह विशेषकर जाड़े के दिनों में खायी जाती है, क्योंकि इसकी तासीर गर्म होती है। 'मकुनी', 'फुटेहरी' और 'बाटी' ये तीनों ही एक ही श्रेणी के भोजन हैं। चने के निखालिस सत्तू—जिसे 'सतुई' कहा जाता है—में नमक, मिर्चा, खटाई, अजवाइन, मगरैल आदि को डालकर उसको पानी से कड़ा सानते हैं। फिर उसमें सरसों का तेल डालकर उस 'सतुई' को हाथों से 'मीस' कर 'भुरभुरा' बना लेते हैं। इस सत्तू को आटे की लोइया के भीतर भर देते हैं और फिर चकले पर बेलकर तवा के ऊपर डाल देते हैं। पक जाने पर आग पर रोटी की ही भाँति सेंकते हैं। सेंकने पर यह गेंद की तरह 'फूल' (खिल) जाती है। फिर इसमें घी लगाकर खाते हैं।

कुछ स्त्रियाँ तवे पर ही घी लगाकर मकुनी को 'फुलाती' हैं, परन्तु वह उतनी नहीं 'फूलती', जितना आग पर सेंकी गयी मकुनी। मकुनी जितनी छोटी और मोटी पकायी जाती है, वह उतनी ही अधिक 'फूलती' है। यह गरीबों की कचौड़ी है।

### (६) फुटेहरी

साधारण जनता में इसे खाने की बड़ी प्रथा है; बड़ा प्रचार है। फुटेहरी भोजपुरी जनता के मार्ग का पाथेय है। यह उनकी यात्रा का अनन्यतम साधन और सामग्री है। फुटेहरी भी मकुनी की ही भाँति बनायी जाती है; परन्तु थोड़ा अन्तर है। फुटेहरी के सत्तू में नमक, मिर्चा, खटाई, अजवाइन आदि डालकर आटे की लोइया बनाकर इसके भीतर इस सत्तू को भर देते हैं। फिर उस लोइया की गोल आकृति बनाकर उसे दहकते हुए उपले—जिसे भोजपुरी में 'गोंइठा' कहा जाता है—के आँच पर रख देते हैं। धीरे-धीरे आँच के लगने से जब यह फुटेहरी बीच से फट जाती है, तब समझा जाता है कि अब यह अच्छी तरह से पक गयी। फिर उसकी राख को झाड़कर, उसमें घी लगाकर खाते हैं। इसको पकाने के लिए न तो किसी बर्तन की आवश्यकता पड़ती है और न खाने के लिए किसी पात्र की। रास्ते में जहाँ-कहीं पड़ाव डाला, वहीं बिना किसी झंझट के फुटेहरी बना लिया। इसीलिए इसका प्रचार अधिक है।

### (७) बाटी

कुछ लोग आटे में सत्तू के स्थान में गुड़ भरकर पकाते हैं। जहाँ गुड़ भी उपलब्ध नहीं है, वहाँ केवल आटे की मोटी-मोटी लोइया बनाकर उपले पर रखकर पकाते हैं। इसे 'बाटी' कहा जाता है। इसे दाल के साथ खाने में आनन्द आता है। कुछ लोग हाथों से पीटकर मोटी रोटी को उपले पर पकाते हैं, जिसे 'लिट्टी' कहते हैं। फुटेहरी, बाटी, लिट्टी ये सभी भोजन यात्रा में बड़े उपयोगी होते हैं; क्योंकि इन्हें बड़ी आसानी से बनाया जा सकता है।

### (८) पूआ

भोजपुरी जनता का सर्वोत्कृष्ट, सर्वश्रेष्ठ और सबसे अधिक सुस्वादु भोजन 'पूआ' है। इसे संस्कृत में 'अपूप' कहते हैं। प्राचीन भारत में कुछ ऐसे पर्वों का उल्लेख मिलता है, जिस दिन केवल पूआ ही खाया जाता था। ऐसे पर्वों को 'अपूपमयं पर्व' कहते थे। इससे ज्ञात होता है, पूआ खाने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। पूर्वी जिलों में आज भी अनेक पर्वों के दिन, जिसमें 'अनन्त चतुर्दशी' प्रधान है, प्रधानतया केवल पूआ ही भोजन के व्यवहार में लाया जाता है। इस सम्बन्ध में एक कहावत प्रसिद्ध है कि:—

“कि पेट भरे छठिया माय।

कि पेट भरे अनतवा माय॥”



अर्थात् या तो छोटी माता के दिन ही पेट भरता है अथवा अनन्त भाई (अनन्त चतुर्दशी) के ही दिन डटकर पेटभर खाने को मिलता है। भोजपुरी लोगों का यह इतना प्रिय भोजन है कि इसकी प्रतिध्वनि लोक-गीतों में भी सुनाई पड़ती है। बच्चों के एक गीत में इसका उल्लेख इस प्रकार से पाया जाता है:—

“अरर बरर पूआ पाके ला।  
चीलर खोंइछा नाचे ला॥” आदि

### पूआ को बनाने की विधि

पहिले आटे में, अन्दाज से, थोड़ा पानी डालते हैं। फिर उसमें चीनी को पानी में घोलकर मिला देते हैं। तब उस आटे को हाथ से बहुत देर तक ‘फेंटा’ (मिलाया) जाता है। जब आटा काफी द्रव-रूप में हो जाता है, तब उसमें किसमिस, गरी, छुहारा, पिस्ता, चिरौंजी आदि मेवा डाल दिया जाता है। कुछ लोग पानी की जगह पर आटे में दूध मिलाकर, उसे ‘फेंटते’ हैं। इस प्रकार आटा, चीनी, दूध, पानी, मेवा आदि को एक साथ मिलाकर और उन्हें ‘फेंटकर’ जो गाढ़ा द्रव-पदार्थ तैयार किया जाता है, उसे ‘लोरी’ कहते हैं। यह ‘लोरी’ न तो बहुत पतली होनी चाहिए और न तो बहुत गाढ़ी ही। दोनों ही दशाओं में पूआ अच्छा नहीं बनेगा।

घी से भरी कड़ाही में इस लोरी को बड़ी ‘कलछुल’ या कटोरी से डाला जाता है। फिर इसे मन्द-मन्द आँच पर पकाया जाता है। ‘छनवटे’ से इसे कड़ाही में उलटते-पुलटते भी रहते हैं, जिससे यह जलने न पाये। जब यह कुछ ललाई लिये हुए दिखाई पड़े, तब समझना चाहिए कि पक गया और उसे कड़ाही में से निकाल लेना चाहिए।

पूआ बनाना बड़ी चतुरता का तथा कुशलता का काम है। ‘गिहिथिन’ (भोजन पकाने में प्रवीण) स्त्रियाँ ही इसे पका सकती हैं। यह फूहड़ स्त्री के वश की बात नहीं है। इसीलिए गाँवों में पूआ पकाने का काम घर की बूढ़ी और अनुभवी स्त्रियाँ ही करती हैं। ‘पूआ पर चीनी खाना’ भोजपुरी का एक मुहावरा है, जिसका अर्थ है सुख में और अधिक सुख की वृद्धि होना। इसीसे पूआ की श्रेष्ठता तथा उत्कृष्टता का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। पूआ वास्तव में भोजपुरियों का राजसी भोजन है, उनका सर्वोत्कृष्ट भोज्य पदार्थ है।

### (६) ठेकुआ

‘ठेकुआ’ को भोजपुरियों का पाथेय कहें, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। यह वह भोज्य पदार्थ है, जिसे यात्रा में साथ लेकर जा सकते हैं, क्योंकि दो-तीन दिन बीत जाने पर भी यह खराब नहीं हो सकता। पक्वान्नों (पकवानों) में जहाँ पूआ अपनी उत्तम सुस्वादुता के लिए प्रसिद्ध है, वहाँ ‘ठेकुआ’ टिकाऊपन (अधिक दिन तक भी खराब न होना) के लिए विख्यात है। किसी सम्बन्धी अथवा बन्धु-बान्धव के घर यदि पक्वान्न भेजना होता है, उस समय ठेकुआ की ही शरण में जाना पड़ता है।

आटे में गुड़ या चीनी का रस डालकर उसे खूब कड़ा सानते हैं। फिर उसे ‘माँड़’ कर उसकी मोटी-मोटी लोइया बनाते हैं और फिर उसे चकले पर बेलकर घी की कड़ाही में डाल देते हैं। जब यह खूब अच्छी तरह से कड़ाही में ‘फूल’ जाता है, तब इसे निकाल लेते हैं। ठेकुआ को पकाने के लिए मन्द आँच और धैर्य की आवश्यकता होती है। कुछ लोग दूध में आटे और चीनी को सानकर ठेकुआ पकाते हैं, जो बड़ा स्वादिष्ट होता है।

### (१०) चोंथा

इसके पकाने का तरीका बड़ा आसान है। आटे में चीनी और पानी डालकर उसे खूब फेंटते हैं। जब इसकी पतली ‘लोरी’ तैयार हो जाती है, तब तवे पर घी लगाकर उस पर इसे फैला देते हैं। जब यह थोड़ा पक जाता है, तब छनवटे की सहायता से इसे तवे पर ही दूसरी ओर उलट देते हैं। फिर घी डालकर इसे अच्छी तरह से पकाते हैं। पश्चिमी जिलों में इसे ‘चौले’ कहते हैं।

### (११) दहिरवरी

यह वह पक्वान्न है, जो सगे-सम्बन्धियों के घर भेजा जाता है। अपनी विवाहिता पुत्री के पास उसकी माता किसी व्रत

१. पूआ को गरीब आदमी तेल में पकाते हैं, जिसका वर्णन लोक-गीतों में अनेक स्थानों में पाया जाता है।



या त्यौहार के अवसर पर दहिरवरी पकाकर भेजती है। आटे को गुड़ के रस में मिला देते हैं। फिर उसे एक-दो दिन तक यों ही पड़ा रहने देते हैं। जब वह 'बजबजाने' लगता है, तब उस आटे को फिर खूब फेंटते हैं। जब इसकी लोरी गाढ़ी तैयार हो जाती है, तब इसे घी की कड़ाही में डाल देते हैं। थोड़ी देर में गोल-गोल दहिरवरी उस कड़ाही में खिलती हुई नजर आती है। दहिरवरी की विशेषता यह है कि इसका आटा एक-दो दिन सानने के बाद बनाया जाता है। जितना ही सने हुए आटे में 'खमीर' पैदा किया जाता है, दहिरवरी उतनी ही अधिक फूलती है। इसकी आकृति टेनिस के गेंद की तरह गोली तथा बड़ी होती है। परन्तु होती है यह बहुत मुलायम। बूढ़े भी इसे बड़ी आसानी से खा सकते हैं। यह भोजपुरी भाइयों का बड़ा ही 'विशेष' पक्वान्न है, जो सम्भवतः अन्य प्रदेशों में नहीं पाया जाता।

### (१२) महुँअरि

यह आटे और महुआ को मिलाकर पकाया जाता है, इसीलिए इसे 'महुँअरि' कहते हैं। हरे महुआ को सिल पर खूब बारीक पीसते हैं। फिर उसे आटे में मिलाकर दोनों को खूब गूँथते (सानते) हैं, जिससे दोनों बिल्कुल मिल जायें। फिर आटे को कड़ा 'सान' कर के लोइया बनाते हैं और फिर उसे तवे पर डालकर रोटी की तरह पकाते हैं। कुछ स्त्रियाँ तवे पर महुँअरि को आधा पकाकर फिर उसे कड़ाही में डालकर तेल (घी में नहीं) में पकाती हैं। तेल में पकायी गयी महुँअरि पहिली की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट होती है।

यदि हरा महुआ उपलब्ध नहीं होता, तो सूखे महुए को पानी में भिगो दिया जाता है। जब यह खूब भीगकर 'फूल' जाता है, तब इसे सिल पर पीसते हैं और इसे आटे में सानकर इसकी 'महुँअरि' पकाते हैं। कुछ स्त्रियाँ महुआ को सिल पर खूब पीसकर उसे कपड़े में निचोड़कर केवल उसका रस निकाल लेती हैं और इसी रस की सहायता से आटे को सानकर 'महुँअरि' बनाती हैं। जिन लोगों के घर में गुड़ और चीनी का नितान्त अभाव है, परन्तु घर के 'कोठिला' में महुआ भरा पड़ा है, वे ही लोग 'महुँअरि' बनाकर खाते हैं। यह प्रधानतया गरीब लोगों का, निम्नवर्ग के व्यक्तियों का भोजन है। साधारण जनता का यह विश्वास है कि महुआ में यदि गुड़ मिला दिया जाय, तो वह मदिरा बन जाता है अथवा मद्य की भाँति अपवित्र माना जाता है। इस सम्बन्ध में एक मूर्खा पण्डितानी की कथा प्रसिद्ध है, जिसने अपनी चतुराई दिखाने के लिए महुए में गुड़ डालकर 'महुँअरि' पकाया था। जब पण्डित जी को 'महुँअरि' खाते समय उसके अत्यधिक मीठी होने के कारण का पता चला, तो उन्होंने अपनी स्त्री को बहुत डाँटा-फटकारा।

### (१३) दोहथी

ऐसा ज्ञात होता है कि इस पदार्थ को दोनों हाथों से पीटकर, उसे बड़ा बनाकर पकाते हैं, अतः इसका नामकरण 'दोहथी' हो गया। इसके पकाने का प्रकार यह है कि आटे की दो लोइयों को लेकर उनमें घी लगाकर एक को दूसरे से चिपका देते हैं। फिर इन दोनों से सम्मिलित लोइया को चकले पर बेलने से खूब पतला और बड़ा बेलते हैं। जितना बड़ा तवा होता है, उतनी ही बड़ी 'दोहथी' बेली जाती है। रोटी की ही भाँति इसे तवे पर पकाते हैं। परन्तु इसे आग में नहीं फुलाते। यह तवे पर ही 'फूल' जाती है। फिर इसके पतों (पपरा) को अलग-अलग कर देते हैं और इसमें घी चुपड़कर खाते हैं। दोहथी बड़ी मुलायम और पतली होती है, अतः रोटी से इसका स्वाद कुछ अधिक अच्छा होता है।

### (१४) पिठौरी

आटे को पानी में 'सान' कर अंगुलि के बराबर मोटी और लम्बी उसकी पिण्डी या आकृति बनायी जाती है। जब दाल आधी 'चुर' (पक) जाती है, तब आटे की बनायी गयी इन पिण्डियों को दाल में छोड़ देते हैं। ये दाल में ही अच्छी तरह से पकती हैं। जब दाल गाढ़ी हो जाती है और आटे की ये पिण्डियाँ अच्छी तरह से पक जाती हैं, तब इन्हें थाली में परोसकर उसी दाल की सहायता से खाया जाता है। इसी को 'पिठौरी' कहते हैं। जहाँ रोटी पकाने का कोई साधन—तवा, चकला, बेलना आदि उपलब्ध नहीं होता, वहाँ दाल में ही पिठौरी पकाकर पेट को भरा जाता है।

### (१५) गोझा

गोझा की आकृति सेमल के फल की तरह लम्बी और मोटी होती है। सम्भवतः 'ओझा' उपाधिधारी ब्राह्मणों को यह भोजन बहुत प्रिय है, जिसका उल्लेख बालकों के निम्नांकित गीत में पाया जाता है:—

“ओझा खाले गोझा, ओझाइन खाली पूरी।  
ओझा के लड़कवा, जनम के ठूरी॥”



एक त्यौहार के अवसर पर गोझा खाने के लिए विशिष्ट रूप से बनाया जाता है। गोझा दो प्रकार का होता है—

(१) चने की—उबालकर पीसी हुई—दाल को भरकर बनाया गया।

(२) खँडदरा।

पहिले चने की दाल को उबालकर सिल पर पीस लेते हैं। फिर उसमें नमक, मिर्चा, पीसी हुई घनिया, जीरा और गर्म-मसाला डालते हैं। आटे की 'लोइया' के भीतर इस पीसी हुई दाल को भर देते हैं। फिर उस लोइया की आकृति को सेमल के फल की भाँति बनाते हैं। फिर उसे बटुली में रखकर पानी में उबालते हैं। जब वह पक जाता है, तब पानी में से बाहर निकाल लेते हैं। इस प्रकार 'गोझा' तैयार हो जाता है। यदि 'गोझे' की आकृति छोटी हुई, तो इसे माप की सहायता से ही पकाया जाता है।

'खँडदरा' 'गोझा' वह है, जिसमें चने की उबाली गयी दाल पीसकर नहीं भरी जाती। बल्कि उबाली गयी खड़ी दाल को ही लोइया के भीतर भर देते हैं। परन्तु दोनों प्रकार के गोझा को पकाने की विधि एक ही है। इनमें से कौन अधिक स्वादिष्ट होता है, यह भी बताना कठिन है। सम्भवतः पीसी हुई दाल से बना गोझा स्वाद की प्रतियोगिता में बाजी मार ले जाय। यह गोझा भी 'विशेष' भोजपुरी भोजन है।

### (१६) हलुआ

हलुआ वह भोजन है, जिसे पोपले मुँहवाले बूढ़े भी बड़े शौक से खाते हैं। इसको बनाने के लिए कड़ाही में थोड़ा घी डालकर आटे को मन्द-मन्द आँच पर भूना जाता है। जब आटे में सोंधई आ जाती है, तब उसमें अन्दाज से चीनी और पानी डाल दिया जाता है। फिर 'कलछुल' या 'पल्टा' से बार बार आटे को चलाते रहते हैं। आँच लगने पर जब पानी जल जाता है और हलुआ कड़ा हो जाता है, तो उसे चूल्हे से उतार लेते हैं। कुछ स्त्रियाँ हलुआ बनाते समय उसमें गरी और छुहारा भी डाल देती हैं, परन्तु इससे स्वाद में कोई वृद्धि नहीं होती। गाँवों में सूजी का हलुआ बहुत कम बनता है और इसके खाने-वाले शौकीन व्यक्ति ही होते हैं। पानी की जगह दूध डालकर बनाया गया हलुआ बड़ा स्वादिष्ट होता है।

### (१७) काँची

यह गरीब स्त्रियों का भोजन है। यह भी हलुआ की ही भाँति बनाया जाता है। परन्तु, इसके आटे को घी में नहीं भूना जाता। सूखी कड़ाही में आटा डालकर उसे भूनते हैं। फिर चीनी के स्थान पर गुड़ का रस इसमें डाल दिया जाता है। फिर कलछुल से आटे को बराबर चलाते रहते हैं। कड़े हो जाने पर इसे कड़ाही में से निकाल लेते हैं। यदि एक वाक्य में कहना चाहें, तो कह सकते हैं कि घी और चीनी से रहित हलुआ का ही दूसरा नाम काँची है। यह मीठा जरूर लगता है, परन्तु इसमें सुस्वाद का अभाव रहता है। सद्यः प्रसूता स्त्रियों को काँची खाने के लिए दी जाती है, परन्तु इसमें 'ओछवानी' भी पड़ी रहती है। यह पचने में गरिष्ठ होता है, फिर भी नव प्रसूता स्त्री (जच्चा) को इसे विशेष रूप से क्यों खिलते हैं, यह बात समझ में नहीं आती।

### (१८) लपसी

काँची और लपसी में कोई विशेष अन्तर नहीं है। यह भी काँची की ही भाँति आटे में गुड़ और पानी डालकर बनायी जाती है। काँची कड़ी होती है, परन्तु लपसी पतली और गीली रहती है। जब चावल अधिक पक जाने के कारण अधिक गीला हो जाता है, तो यह कहा जाता है कि यह भात क्या है लपसी है (इ भात का हऽ लपसी हऽ)। इस वाक्य में लपसी के गीलेपन की ओर संकेत किया गया है। काँची और लपसी—ये दोनों ही निर्धन तथा निम्नवर्ग के लोगों के भोजन हैं। जौ के आटे की भी लपसी बनायी जाती है, जिसे संस्कृत में 'यवागू' कहते हैं।

### (१९) अघरवटा

'अघरवटा' भी ठेकुआ की भाँति ही पकाया जाता है तथा दोनों के स्वरूप तथा आकृति में कोई अन्तर नहीं होता। दोनों में पार्थक्य केवल इतना ही है कि जब गुड़ से मिश्रित कड़े आटे को एक विशेष प्रकार के साँचे—जिस पर सूर्य के रथ के चक्र की आकृति बनी रहती है—से अंकित कर, घी में पकाते हैं, तब उसे अघरवटा कहा जाता है; परन्तु 'ठेकुआ' में कोई आकृति अंकित नहीं की जाती। कार्तिक शुक्ल षष्ठी—जिसे सूर्यषष्ठी भी कहते हैं—के दिन छठी माता की पूजा अघरवटा से की जाती है।



## (२०) लाड़

आटे को कड़ा सानकर इसकी गोल-गोल, छोटी-छोटी पिण्डियाँ बनाकर घी में पकायी जाती हैं। फिर गुड़ का 'पाग' बनाकर उसमें इन पिण्डियों को डाल देते हैं। रविवार व्रत के उद्यापन में लाड़ का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। यह खाने में मीठा होता है।

## (५) अनुच्छेद—चना

भोजपुरी खाद्य पदार्थों में चना का महत्वपूर्ण स्थान है। इसका उपयोग अनेक प्रकार से किया जाता है। इसी चने का सत्तू बनाया जाता है, जिसका इस क्षेत्र में बड़ा प्रचार है। इसी सत्तू से 'मकुनी', 'फुटेहरी' आदि भोज्य पदार्थ तैयार किये जाते हैं। कुछ लोग चने को पानी में भिगोकर प्रातःकाल जलपान करते हैं। दूसरे लोग इसे तेल में तलकर इसकी 'घुघुनी' बनाते हैं, जो बड़ी स्वादिष्ट होती है। चने को 'चकरी' में दलकर इसकी दाल तैयार की जाती है, जो प्रायः विवाह के अवसर पर 'समधी' को विशेष रूप से खिलायी जाती है। इसकी दाल को उबालकर 'गोश्ता', 'दलपूरी' आदि बनाया जाता है।

चने की दाल को जब चक्की में पीस दिया जाता है, तब उसे 'बेसन' कहते हैं। इस 'बेसन' के द्वारा अनेक प्रकार की सुस्वादु वस्तुएँ बनायी जाती हैं। 'पपरा' इसी से बनता है। इसके अतिरिक्त 'सेव', 'पकौड़ी', 'बचका', 'बरी' आदि अनेक नमकीन सुस्वादु पदार्थ इससे तैयार किये जाते हैं। अनेक प्रकार की मिठाइयाँ भी बेसन से निर्मित की जाती हैं। 'मोतीचूर', 'बुनिया' और 'बेसन का लड्डू' इसी के प्रसाद-रूप हैं। चने के द्वारा जितने अधिक खाद्य पदार्थ तैयार किये जाते हैं, उतना अन्य किसी अन्न से नहीं। यह भोजन, जलपान, मिठाई, 'पकौड़ी' आदि अनेक रूपों में प्रयुक्त होता है। यही कारण है कि चावल और गेहूँ के पश्चात् चना ही अन्नों में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करता है।

## सत्तू

## महत्त्व तथा विशेषता

यदि 'सत्तू' को भोजपुरी जनता का राष्ट्रीय भोजन कहें, तो कुछ उत्पुक्ति न होगी। शायद ही ऐसा कोई गाँव में रहने-वाला भोजपुरिया हो, जिसने सत्तू का स्वाद न लिया हो। यह इतना प्रचलित और प्रसिद्ध भोजन है कि सभी इससे अच्छी तरह से परिचित हैं। गर्मी की दुपहरी में अपने खेतों में काम करनेवाले किसान की 'उदरदरी' की यह पूर्ति करता है। घुंआ-धार फैक्ट्रियों में काम करनेवाले 'मइयालोग' कहे जानेवाले 'भोजपुरियों' की पेट की ज्वाला इसी के द्वारा शान्त होती है। दिन भर लकड़ी चीरनेवाला मजदूर और पालकी ढोनेवाले कहार इसी को भरपेट खाकर चैन की वंशी बजाते हैं। अपनी सुदूर और वीहड़ यात्रा के मार्ग पर जानेवाला भोजपुरिया जवान इसी को खाकर थकान का अनुभव नहीं करता। अतः जहाँ भी देखिए 'सतुआ बाबा' का अखण्ड साम्राज्य है, विस्तृत प्रचार है।

सत्तू सच्चे अर्थ में भोजपुरी जनता का पाथेय है। यही उनका बल और सम्बल है। जहाँ भोजन बनाने का कोई साधन न हो—'लोटा' 'थाली' 'बटुआ' 'कलछुल' तथा 'तवा' सभी वस्तुओं का अभाव हो—जहाँ कोई भी भोजन की सामग्री न मिलती हो, वहाँ ऐसे गाढ़े दिनों में 'सतुआ' ही काम आता है। इसको बनाने में न तो किसी बर्तन की आवश्यकता होती है और न चूल्हा-चौका की जरूरत। यह वह 'रेडीमेड' भोजन है, जिसका उपयोग जब चाहें और जहाँ चाहें कर सकते हैं।

सत्तू—जिसे भोजपुरी में 'सतुआ' कहते हैं—खाने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। वैदिक आर्य सत्तू खाते थे या नहीं, यह तो मुझे नहीं मालूम, परन्तु इतना निश्चित है कि पतञ्जलि के समय (ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी) में सत्तू खाने की प्रथा अवश्य प्रचलित थी। उन्होंने महाभाष्य में इसका उल्लेख "सत्तून् पिब देवदत्त!" लिखकर किया है। महाकवि श्रीहर्ष ने लिखा है कि जाँत में पीसे जाते हुए सत्तू की सोंधी-सोंधी गन्ध पथिकों को अपनी ओर आकर्षित करती थीः—

“प्रतिहृदये घट्टजात्  
पथिकाह्वानदसक्तुसोरभैः।”

इसी प्रकार से संस्कृत के अन्य ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख पाया जाता है।

भोजपुरी समाज में भोजन के रूप में अत्यधिक प्रचलित होने के कारण इसकी प्रतिध्वनि लोक-गीतों में भी सुनाई



पड़ती है। अपने मामा को बुलाने के लिए परदेश जानेवाला कोई भानजा अपनी मामी से कहता है कि आज मुझे दूर देश की यात्रा पर जाना है, अतः मेरे लिए बारीक सत्तू पीस दो। गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—<sup>१</sup>

“पीसहु आबहु ऐ मामी, आरे जीरवा रे सतुइया।

हम जइबों मामा के लियाबनु रे की॥”

ससुराल के कष्टों का वर्णन करती हुई कोई स्त्री कहती है कि ससुराल में ‘साग’ और सत्तू खाने को मिलता है; परन्तु मायके में भात। अतः अब मायके में ही रहूँगी :—<sup>२</sup>

“ससुरा में मिलेला साग, सतुइया, नइहरवा में धाने के भात।”

### बनाने की विधि

यों तो सत्तू अनेक अन्नों से बनाया जाता है; परन्तु चने और जौ का सत्तू ही सबसे अधिक प्रसिद्ध है। पहिले चने को भाड़ में भुनवा लेते हैं। फिर इसे सूप से फटककर इसकी राख और भूसी को हटा देते हैं। इसके बाद इसे चक्की में पीसा जाता है। फिर चलनी से इसको चालते या छानते हैं और उसकी मोटी भूसी या छाजन को अलग रख देते हैं। फिर इसमें थोड़ा जौ का सत्तू—जो इसी प्रकार से बनाया जाता है—मिला देते हैं। इस प्रकार चना और जौ का मिला हुआ सत्तू भोजन का उपयोगी पदार्थ हो जाता है। केवल चने का जो बारीक सत्तू होता है, उसे ‘सतुई’ कहते हैं, जिसे ‘मकुनी’ तथा ‘फुटेहरी’ बनाने में प्रयुक्त किया जाता है।

### खाने की विधि

सत्तू में नमक मिलाकर उसे खाया जाता है। इसे और अधिक स्वादिष्ट बनाने के लिए कुछ लोग इसमें भूनकर पीसा हुआ जीरा भी डालते हैं। आधी थाली में सत्तू को रखकर उसकी एक ऊँची मेड़ बना दी जाती है। फिर थाली के आधे भाग में पानी डालकर सत्तू को उसमें घोलते हैं तथा थोड़ा नमक मिला देते हैं। पानी में पतले घोले गये इस सत्तू को ‘लिबरी’ कहते हैं। सत्तू खाते समय लाल या हरे मिर्चों का होना अत्यन्त आवश्यक है। नमक और लाल मिर्चा सत्तू के अनन्य साथी हैं; जैसा कि इस उक्ति से स्पष्ट प्रकट होता है :—

“सीतल<sup>३</sup> प्रसाद, रामरस,<sup>४</sup> लंका।<sup>५</sup>

भोजन करहु छाँड़ि सब संका॥”

‘लिबरी’ चूँकि पतली होती है, अतः इसे लोग पीते हैं। फिर सत्तू में अन्दाज से पानी डालकर उसे कड़ा ‘साना’ जाता है। इस कड़े सत्तू के छोटे-छोटे टुकड़े बनाये जाते हैं, जिन्हें ‘पिण्डी’ कहते हैं। इस पिण्डी को लोग चटनी के सहारे या लाल मिर्चों की मदद से खाते हैं। सत्तू खाने के लिए यदि आम की अथवा इमली की चटनी मिल जाय, तो फिर क्या कहना है? सचमुच लाल मिर्चा और आम की चटनी—ये दोनों ही सत्तू के अमिन्न सहायक हैं।

सत्तू खाते समय गिलास अथवा लोटा से पानी नहीं पीया जाता। भोजन के बाद थाली में ही पानी डालकर उसे पीते हैं। यही प्रथा है। यात्रा के मध्य में, जहाँ सत्तू ‘सानने’ के लिए थाली उपलब्ध न हो, वहाँ थाली का प्रतिनिधित्व तौलिया करती है, जिसे गाँवों में ‘गमछी’ कहते हैं। किसी तालाब या नदी के किनारे बैठकर इसी ‘गमछी’ में लोग सत्तू सानकर खाते हैं और खाने के पश्चात् उसे नदी में धोकर साफ कर लेते हैं।

सत्तू एक ऐसा भोजन है, जो तुरन्त ही तैयार हो जाता है। अतः इसे ‘तुरन्ता’ भी कहा जाता है। बलिया (उत्तर प्रदेश) में ऐसी अनेक दूकानें दिखाई पड़ेंगी, जिनके आगे लम्बे-चौड़े ‘नाम पट्ट’ पर लिखा हुआ है—‘तुरन्ता भोजनालय।’ इससे समझ लीजिए यहाँ सत्तू का बाजार गर्म है। इस भोजनालय के भीतर जाते ही थाली में रखा सत्तू—जिसके साथ लाल मिर्चा और चटनी भी रहेगी—आपको भोजन करने के लिए मिलेगा। आरा और छपरा जिलों में भी सत्तू का प्रचार है। चूँकि सत्तू में नमक मिला रहता है, अतः व्यंग्य में इसे ‘नमकीन हलुआ’ के नाम से भी पुकारते हैं।

१. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोकगीत, भाग १ (द्वितीय संस्करण), पृष्ठ ३२३।

२. वही, पृष्ठ ३७६।

३. सत्तू, ४. नमक, ५. लाल-हरा मिर्चा।



### विभिन्न अन्नों के सत्तू

चने का सत्तू सबसे अधिक प्रचलित है, परन्तु इसके अतिरिक्त दूसरे भी अनेक अन्न हैं, जिनका सत्तू खाया जाता है; जैसे (१) जौ, (२) मटर, (३) मक्का, (४) लेतरी, और (५) जोन्हरी। इनमें से सभी अन्नों से सत्तू बनाने की प्रक्रिया यही है कि पहिले इनको भाड़ में भुनवा लिया जाता है, फिर उसे जाँत या चक्की में पीसते हैं। जौ का सत्तू स्वतन्त्र रूप से अकेले नहीं खाया जाता, बल्कि इसे चने के साथ मिलाकर खाते हैं।

मटर का सत्तू बहुत 'वादी' (वायुकारक) होता है। अतः इसे केवल निम्नवर्ग के गरीब लोग ही खाते हैं। 'लेतरी' और 'जोन्हरी' के सत्तू के सम्बन्ध में भी यही बात समझनी चाहिए। लोगों का यह विश्वास है कि लेतरी का सत्तू खाने से आदमी लँगड़ा हो जाता है। मक्का का सत्तू बड़ा स्वादिष्ट होता है। इसमें घी और चीनी मिलाकर तथा पानी से सानकर लोग इसे बड़े शौक से खाते हैं। गरीब लोग नमक की सहायता से इसका भोग लगाते हैं। मक्का बड़ा उपयोगी अन्न है। इसका सत्तू भी बनता है और आटा भी। इसके अतिरिक्त इसे भाड़ में भुनवाकर 'भुजुना' के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। इसका भात भी बनता है, जिसकी चर्चा पहिले की जा चुकी है।

### (६) अनुच्छेद—चना से बनाये जानेवाले अन्य भोज्य पदार्थ

#### पकौड़ी

जलपान के लिए अनेक प्रकार की 'पकौड़ियाँ' पकायी जाती हैं, जिनमें आलू, शाक, प्याज, चना आदि की पकौड़ियाँ अधिक व्यवहृत होती हैं। पहिले बेसन को पानी में गाढ़ा घोलते हैं, फिर उसमें मिर्चा, खटाई, गर्म-मसाला तथा नमक डालते हैं। इसके पश्चात् आलू को छीलकर उसे चाकू से गोला तथा पतला काटकर अथवा कद्दूकस में पतले-पतले टुकड़े कसकर बेसन में डाल देते हैं। फिर बेसन से ओत-प्रोत आलू के इन टुकड़ों को कड़ाही में थोड़ा तेल डालकर 'छानते' हैं। पककर पीला तथा कुछ लाल हो जाने पर इसे निकाल लेते हैं। यही आलू की पकौड़ी है। चने के शाक की पकौड़ी अच्छी बनती है। 'अगस्त' (वृक्ष-विशेष) तथा 'कोहड़ा' के फूलों की भी पकौड़ी बनायी जाती है, जिनमें पहिली अपने उत्तम स्वाद के द्वारा चित्त को प्रसन्न करनेवाली होती है।

चने को पानी में भिगोकर फिर उसे थोड़ा-सा 'कूँच' कर पकौड़ी बनाते हैं। कच्चा हरा चना और कच्चे मटर की पकौड़ी स्वाद में अपना सानी नहीं रखती। 'लोनी' के साग की भी पकौड़ी अच्छी बनती है। प्याज खानेवाले इसके लिए प्याज का भी प्रयोग करते हैं।

प्रचुर मात्रा में तेल के अभाव में कड़ाही के स्थान में तवे पर भी पकौड़ी पकायी जाती है। इसमें तेल बहुत थोड़ा लगता है और कामचलाऊ पकौड़ी तैयार हो जाती है। पकौड़ी खाने का प्रचार बढ़ता जा रहा है और अब शहरों में भी इसका साम्राज्य स्थापित हो गया है।

#### बजका, बरी, फुलौरा

कच्ची रसोई के ये तीनों ही अत्यन्त आवश्यक अंग हैं। इनके बिना कच्चा भोजन पूर्ण नहीं समझा जाता। अब भी। किसी विशेष अतिथि या अभ्यागत को दाल-भात खिलाना होगा, तो उसके लिए इन उपर्युक्त वस्तुओं को भी बनाना पड़ेगा लड़की के विवाह में समधी को भात खिलाते समय उसे 'फुलौरा' खिलाना वैवाहिक रीति-रिवाज का एक अनिवार्य अवयव है। अतः कच्चे भोजन के साथ इनका अटूट सम्बन्ध है।

(१) बजका—इसको बनाने की विधि प्रायः वही है, जो पकौड़ी बनाने की है। लौकी का 'बजका' अधिक स्वादिष्ट होता है। लौकी को छीलकर, उसको गोलाई में बहुत ही पतला काटते हैं। फिर उसे बेसन में डालकर तेल में पकाते हैं। इसी उत्पाद को 'बजका' कहा जाता है। लौकी के अतिरिक्त यह आलू का भी बनता है। आलू को गोलाई और थोड़ा-सा मोटा काट लेते हैं। फिर इसे पानी में उबालते हैं। पूरा उबलने के पहिले ही इसे लेकर बेसन में डालकर 'बजका' बनाते हैं। यह कच्चे आलू का भी बनाया जाता है; परन्तु वह उतना स्वादिष्ट नहीं होता। समधी से मजाक करने के लिए रुई को बेसन में लपेटकर बजका बनाने की प्रथा है, जो 'चीमर' होने के कारण दाँत से टूटता ही नहीं। इस प्रकार अपनी शान में 'चूर' समधी जी 'बेवकूफ' बनाये जाते हैं।

(२) बरी—यह बेसन से बनायी जाती है। यह दो प्रकार से तैयार की जाती है—(१) बेसन और (२) चने की दाल को तुरन्त पीसकर। पहिले बेसन में थोड़ा-सा पानी डालकर इसे हाथ से खूब 'फेंटते' हैं। जब फेंटते-फेंटते इसमें बुलबुले निकलने लगते हैं, तब यह समझना चाहिए कि यह तैयार हो गया। फिर इसमें गर्म-मसाला पीसकर डाल दिया जाता है। गढ़



में उस गाढ़े बेसन की गोल आकृति बनाते हुए उसे तेल से भरी कड़ाही में पकने के लिए डाल देते हैं। पककर 'बरी' तेल के ऊपर आ जाती है। फिर इसे 'छनवटे' से निकाल लिया जाता है। ताजी बरी बड़ी स्वादिष्ट होती है।

इसके पश्चात् इस गर्म बरी को पानी में 'फूलने' के लिए डाल देते हैं। जब यह काफी फूल जाती है, तब इसे पतली दही में—जिसमें पीसा हुआ नमक और जीरा डाला गया रहता है—डाल देते हैं। घण्टे-दो-घण्टे में यह बरी दही को अच्छी तरह से 'पी' लेती है। ऐसी बरी बड़ी मुलायम होती है।

दूसरे प्रकार की बरी चने की दाल को भिगोकर, फिर उसे सिल पर पीसकर बनाते हैं। इस प्रकार सद्यः पीसी गयी दाल से बनायी गयी बरी, बेसन से बनायी गयी बरी की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट होती है। परन्तु जहाँ सौ-दो-सौ आदमियों को खिलाने के लिए बरी बनानी पड़े, वहाँ दाल पीसकर इसे बनाना सम्भव नहीं है; अतः बेसन की ही बरी ऐसे अवसरों पर तैयार की जाती है।

### छनौरी, तिलौरी और पापड़

(१) **छनौरी**—कच्चे भोजन के तीन और साथी हैं। यद्यपि ये इसके आवश्यक अंग नहीं हैं, परन्तु इनकी उपस्थिति से भोजन की सुस्वादुता अधिक बढ़ जाती है। बेसन की छोटी-छोटी 'बुनिया' बनाकर पहिले इसे गर्म पानी और बाद में दही में डाल दिया जाता है। जब यह दही के रस को पी लेती है, तब इसका उपयोग भोजन में किया जाता है। कुछ लोग सूखी नम-कीन 'बुनिया' को भी खाते हैं। इसी को 'छनौरी' कहते हैं; क्योंकि यह कड़ाही में से छानकर निकाली जाती है।

(२) **तिलौरी**—यह सम्भवतः उड़द की दाल की बनायी जाती है। उड़द की दाल को भिगोकर, फिर उसे सिल पर पीसकर उसमें गर्म-मसाला डाल देते हैं। इसकी छोटी-छोटी गोली आकृति बनाकर धूप में सुखाकर इसे रख दिया जाता है। फिर इसी को घी में छानकर अतिथियों को खाने के लिए परोसा जाता है। घी में पकाये जाने पर यह बहुत कड़ी हो जाती है, अतः खाने में कमजोर दाँतवालों के 'दाँत खट्टे' कर देती है। यदि उड़द की पीसी दाल में थोड़ा पेठा—भतुआ—का गूदा काटकर डाल दिया जाय, तो उसे 'अदवरी' कहते हैं। उड़द से बनने के कारण यह 'उड़िदी' के नाम से भी प्रसिद्ध है।

(३) **पापड़**—यह प्रधानतया उड़द, मूँग और आलू का बनाया जाता है। उड़द का पापड़ अधिक स्वादिष्ट होता है अतः दावतों में इसी को खिलाया जाता है। मूँग का भी पापड़ बनता है, परन्तु उड़द के समान उसमें स्वाद नहीं होता।

(४) **कढ़ी**—बेसन से बनाये गये भोज्य पदार्थों में कढ़ी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। पहिले बेसन में पानी डालकर इसे द्रव रूप में तैयार करते हैं। फिर कड़ाही में तेल या घी डालकर उसमें मिर्चा और जीरा का 'फोरन' देते हैं। इसके बाद पतले बेसन के द्रव को कड़ाही में डालकर उसमें हल्दी और नमक छोड़ देते हैं। फिर उसमें धीमी-धीमी आँच देकर कलछल से उसे चलाते रहते हैं। जब यह गाढ़ा हो जाता है, तब इसे उतारकर रख देते हैं। इस प्रकार 'कढ़ी' तैयार हो जाती है। इसे भोजपुरी में 'परेह' कहा जाता है।

खाने के पहिले इस कढ़ी में थोड़ी-सी दही डाल दी जाती है, जिससे इसका स्वाद कई गुना अधिक हो जाता है। दही के अभाव की अवस्था में इसमें कच्चा आम का टुकड़ा अथवा सूखी खटाई डाल दी जाती है, जिससे कढ़ी में 'खटास' उत्पन्न हो जाय। दही जितनी ही खट्टी होती है, उसकी कढ़ी उतनी ही अच्छी बनती है। इसीलिए कढ़ी बनाने के लिए खट्टी दही की बड़ी आवश्यकता होती है।

कढ़ी के बनाने में समय बहुत कम लगता है। इसके बनाने में किसी विशेष कौशल की भी जरूरत नहीं होती। यह स्वादिष्ट भी होती है। इस कारण भोजपुरी क्षेत्र में मात के साथ कढ़ी खाने की प्रथा है। विवाह के अवसर पर समझी को जो भात खिलाया जाता है, उसमें कढ़ी का भी होना अनिवार्य है। कच्चे भोजन के साथ कढ़ी का अटूट सम्बन्ध है। कुछ लोग रोटी के साथ भी इसे खाते हैं। कढ़ी में यदि 'छनौरी' और 'अदवरी' भी डाल दी जाय, तो उसका स्वाद शताधिक हो जाता है।

(५) **पपरा**—बेसन के द्वारा बनाये गये अनेक भोज्य पदार्थों में से 'पपरा' प्रसिद्ध है। बेसन में पानी मिलाकर पहिले इसे हाथ से खूब फेंटते हैं। फिर इसमें नमक, मिर्चा, खटाई और गर्म-मसाला पीसकर डालते हैं। इसके पश्चात् इस गीले परन्तु गाढ़े बेसन को तवे पर डालकर चारों ओर फैला दिया जाता है, जिससे इसकी रोटी की शकल बन जाती है। फिर तवे पर घी लगाकर इसे कई बार उलटते-पुलटते रहते हैं, जिससे यह जलने न पाये। जब यह पक जाता है, तब उतारकर थाली में रख लेते हैं। इस प्रकार बनी हुई वस्तु को 'पपरा' कहते हैं।

'पपरा' बनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यह तवे के ऊपर टूटने या बिखरने न पाये। अतः इसे उलटते समय बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। 'चोंथा' और 'पपरा' के बनाने की विधि एक ही है, परन्तु पहिला स्वाद में मीठा



होता है, तो दूसरा नमकीन। पपरा जलपान और भोजन दोनों में समान रूप से व्यवहृत होता है। सुप्रसिद्ध मद्रासी भोजन 'डोसा' भोजपुरी 'पपरा' का ही दूसरा रूप है, जो चावल और उड़द की दाल को पीसकर बनाया जाता है। उबाला हुआ मसालेदार आलू और प्याज तथा हरी धनिया आदि को इसके भीतर डालने से यह 'पपरा' की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट होता है।

### (७) अनुच्छेद—उड़द से बननेवाले भोज्य पदार्थ

भोजपुरी क्षेत्र में उड़द का प्रयोग बड़ा सीमित है। विवाह तथा मृत्यु के अवसर पर 'फुलवरा' बनाने के लिए ही इसका विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। इसकी दाल भी बनायी जाती है, परन्तु इस क्षेत्र में इसका अधिक प्रचार नहीं है। उड़द से प्रधानतया निम्नांकित भोज्य पदार्थ बनाये जाते हैं:—

(१) अदवरी, (२) दही-बड़ा, (३) फुलवरा और (४) पापड़।

यहाँ क्रमपूर्वक इनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

#### (१) अदवरी

पहिले उड़द की दाल को पानी में भिगो दिया जाता है। फिर करीब चौबीस घण्टों के बाद इसके छिलके को धोकर अलग कर देते हैं। इसके पश्चात् दाल को सिल पर अच्छी तरह से पीसते हैं। फिर इसमें पेठा—जिसे भोजपुरी में 'भतुआ' कहते हैं—के भीतरी भाग अर्थात् गूदा को काटकर इस पीसी हुई दाल में अच्छी तरह से मिला देते हैं। फिर इसमें नमक, मिर्चा, खटाई तथा अन्य गर्म-मसाला डालते हैं। इसके पश्चात् किसी कपड़े पर इसकी छोटी-छोटी पिण्डियाँ बनाकर घूप में रखकर इसे सुखाते हैं। जब ये पिण्डियाँ सूख जाती हैं, तब कपड़े पर से उनको हटाकर रख देते हैं। फिर इन सूखी पिण्डियों को कड़ाही में तेल डालकर भूनते हैं। बाद में इसमें नमक तथा मसाला डालकर पकाते हैं। इस प्रकार 'अदवरी' की तरकारी तैयार हो जाती है। अदवरी कोई स्वतन्त्र शाक नहीं है। प्रायः इसे आलू के साथ ही पकाया जाता है। जब घर में कोई शाक नहीं होता, तो उन गाढ़े दिनों में 'अदवरी' ही काम में आती है।

#### (२) दही-बड़ा

उड़द की दाल को पीसकर उसमें नमक, मिर्चा तथा गर्म-मसाला आदि वस्तुएँ डालते हैं। फिर इसकी गोली तथा चपटी आकृति बनाकर तेल या घी में इसे पकाते हैं। इसके बाद इसे गर्म पानी में डाल देते हैं, जिससे वह फूलकर काफी मुलायम हो जाय। फिर इसको पतली दही में डुबो देते हैं। जब इसमें दही का रस समाविष्ट हो जाता है, तब इसे बड़े प्रेमपूर्वक खाया जाता है।

#### (३) फुलवरा

चूँकि समधी को 'फुलवरा' खिलाने की विधि है, अतः विवाह में ही यह विशेषकर बनाया जाता है। जिस प्रकार जाँत में पीसी गयी चने की दाल को 'बेसन' कहते हैं, उसी प्रकार उड़द की पीसी गयी दाल 'धुआँस' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी 'धुआँस' से फुलवरा तैयार किया जाता है। बेसन की ही भाँति 'धुआँस' में पानी डालकर इसे खूब गाढ़ा फेंटते हैं। फिर इसमें गर्म-मसाला, विशेषकर काली मिर्च और हींग आदि, डालते हैं। इसके पश्चात् तेल से भरी कड़ाही में इसकी गोल आकृति बनाकर डाल देते हैं, जो आकार-प्रकार में प्रायः टेनिस के गेंद के बराबर होती है। इसे अच्छी तरह से पकाने के लिए लकड़ी से इसके बीच में छेद कर देते हैं। पक जाने पर इसकी आकृति कुछ लाल-सी पड़ जाती है। लम्बी-चौड़ी कड़ाही में गोले-गोले बीसियों फुलवरों का, तेल के ऊपर तैरने का दृश्य, अजीब-सा लगता है। पक जाने पर फुलवरा को पहिले गर्म पानी में भिगोते हैं, फिर उसे दही से भरे हुए 'नाद' में डुबो देते हैं। तीन-चार घण्टों में यह दही के रस को पी लेता है और खाने-योग्य हो जाता है। उड़द की दाल को सिल पर पीसकर 'फुलवरा' बनाया जाता है।

बढ़िया फुलवरे की पहिचान यह है कि यह इतना मुलायम हो कि थाली या पत्तल में डालते ही चूर-चूर हो जाय। बासी या 'बसिया' फुलवरा ही खाने में अच्छा लगता है। बाराती लोग इसे खूब प्रेम से खाते हैं। इसे स्वादिष्ट तथा मुलायम बनाना गुणी स्त्रियों का ही काम है।

#### (८) अनुच्छेद—चिउड़ा-दही

चिउड़ा और दही दोनों का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। चिउड़ा धान से बनाया जाता है। सूखे धान को दो-तीन दिन तक



पानी में भिगो देते हैं। फिर उसे पानी में से छानकर कड़ाही में 'कल्हारते' हैं। जब करीब-करीब वह आधा पक जाता है, तब उस धान को ओखली में (या ढेकी में) डालकर 'मूसलों' से घमाघम, घमाघम कूटते हैं। कूटने के पश्चात् सूप से उसे फटकते हैं, जिससे मूसी अलग हो जाती है और चिउड़ा अलग। चिउड़ा जितना ही अधिक कूटा जाता है, वह उतना ही चपटा और पतला होता है। गर्म दूध में डालते ही जो चिउड़ा गल जाय, तो समझना चाहिए कि वह अच्छी किस्म का है।

'सुरुका' चिउड़ा सबसे अच्छा और स्वादिष्ट माना जाता है। खेत में खड़े धान की कच्ची बालियों को तोड़कर या 'सुरुक' कर लाया जाता है और इसे ओखली में कूटकर चिउड़ा तैयार किया जाता है। सुरुक (तोड़) कर लाये जाने के कारण ही इसका नाम 'सुरुका' पड़ गया है। कच्चे धान से बनाये जाने के कारण यह बहुत मुलायम, पतला और हल्का होता है।

भोजपुरी क्षेत्र में—विशेषकर गोरखपुर और देवरिया जिलों में—चिउड़ा-दही खाने की बड़ी प्रथा है। निमन्त्रण मिलने पर इसे खाने के लिए लोग कोसों दूर तक के गाँवों में भी जाने में तनिक नहीं हिचकते हैं। इस कथन की पूर्ति निम्नांकित कहावत से होती है:—

“चिउड़ा दही बारह कोस।

लुचुई अठारह कोस॥”

सरवार (गोरखपुर, बस्ती, देवरिया जिला) में चिउड़ा-दही खाने का प्रचुर प्रचार है। इसके अतिरिक्त इसका महत्त्व भी अधिक है। यहाँ के पंक्तिपावन ब्राह्मण किसी भी ब्राह्मण के हाथ का पकाया हुआ अन्न ग्रहण नहीं करते हैं। वे पूड़ी को भी अशुद्ध मानते हैं। ऐसी दशा में, यात्रा में चिउड़ा-दही उनके लिए अनन्य सहायक ही नहीं, बल्कि प्राणरक्षक भी है। सरवरियों में विवाह के अवसर पर चिउड़ा-दही भोजन का प्रधान अंग माना जाता है। यदि लड़कीवाले ने इसे नहीं खिलाया, तो उसकी कुशल नहीं। वर-पक्ष के बारातीलोग इसे अपना बड़ा अपमान समझते हैं। इन विवाहों में बारातियों को जाड़े की रात में भी पहिले भरपेट चिउड़ा-दही खिलाया जाता है, फिर बाद में थोड़ी-सी पूड़ी खाने को दी जाती है।

साधारणतया चिउड़ा-दही खाने की विधि यह है कि चिउड़ा को पहिले दही में सान लेते हैं, फिर उसमें गुड़ मिलाकर खाते हैं। परन्तु शौकीन लोग पहिले चिउड़ा को पानी से धोते हैं, जिससे उसकी गन्दगी निकल जाती है। फिर उसमें खौलता हुआ गर्म दूध डाल देते हैं। जब गर्म दूध के कारण चिउड़ा मुलायम हो जाता है, तब उसे 'सजाव' दही में 'सानते' हैं और फिर उसमें गुड़ या चीनी मिलाकर डटकर खाते हैं। इस चिउड़ा-दही का स्वाद बड़ा अपूर्व होता है।

मकर संक्रान्ति के दिन—जिसे खिचड़ी भी कहते हैं—चिउड़ा-दही खाने का विशेष महत्त्व माना जाता है। जो लोग इसके अभ्यस्त नहीं हैं, वे भी इस दिन चिउड़ा-दही अवश्य खाते हैं। चिउड़ा—जिसे 'चिउरा' भी कहा जाता है—परदेश जाने-वाले पति का पाथेय है। यह उसका 'नाश्ता' (जलपान) भी है और भोजन भी। इसीलिए कोई परदेश की यात्रा करने-वाला प्रियतम अपनी प्रियतमा से निवेदन करता है कि तुम जल्दी-जल्दी चिउड़ा कूटो, जिसे मैं लेकर प्रस्थान कर सकूँ। गीत की कुछ कड़ियाँ इस प्रकार हैं:—

“चिउरा कुटु चिउरा कुटु सँवरो तिरियवा रे।

आरे हम जइबों सँवरो मगहरे देसवा रे॥१॥

रोइ रोइ सँवरो रे चीउरा रे कूटेली।

आरे हँसि हँसि उमर बान्हावले रे॥२॥”

चिउड़ा को माड़ में भूनकर उसमें घी और थोड़ा नमक मिलाकर खाने में बड़ा स्वादिष्ट लगता है। शहरों में—विशेषकर वाराणसी में—इससे 'मटरा-चिउड़ा' और 'फरुही' बनायी जाती है। 'फरुही' को 'फोरनी दाना' भी कहते हैं। परन्तु गाँवों में ये चीजें नहीं बनती; अतः इनकी चर्चा करना व्यर्थ ही होगा।

**मार्हा**

मार्हा 'चीना' से पैदा होता है, जो पूर्वी जिलों में बहुत बोया जाता है। इसकी फसल दो-तीन महीने में ही तैयार हो जाती है। चिउड़ा की ही भाँति मार्हा को भी दही और गुड़ की सहायता से खाया जाता है। मजदूरों को जलपान के रूप



में देने के लिए 'मार्हा' प्रयोग में लाया जाता है। किसी व्यक्ति की मृत्यु के तेरही के दिन भिखमंगों, गरीबों और करन (एक जाति विशेष) को जो भोजन दिया जाता है, उसमें मार्हा और दही विशेष रूप से खिलाया जाता है। ये 'मुक्खड़' कई सेर तक मार्हा खा जाते हैं, फिर भी इनके पेट की पूर्ति नहीं होती।

मार्हा को दूध में मिगोकर चीनी के साथ खाने की भी विधि है। साधारण गृहस्थ के लिए 'चिउरा' और 'मार्हा' दो बड़ी उपयोगी वस्तुएँ हैं, जो किसी भी व्यक्ति के स्वागत में सदा तैयार रहती हैं। गाँवों में जहाँ मिठाई नहीं मिलती, वहाँ चिउड़ा-गुड़ या मार्हा-गुड़ ही अतिथि को जलपान करने के लिए दिया जाता है। सुदूर यात्रा में जानेवाले भोजपुरी पथिक के लिए मार्हा पाथेय का काम करता है। यह भोजपुरी जनता का जलपान (नाश्ता) भी है और भोजन भी। यह बहुत हल्का होता है और जल्दी ही पच जाता है। इसीलिए लोग इसे बड़े प्रेम से खाते हैं।

## (२) परिच्छेद

### जलपान

भोजपुरी क्षेत्र में अपने खेतों पर काम करनेवाला किसान, लकड़ी चीरने और हल जोतनेवाला मजदूर, मकान बनानेवाला 'राज' और अपने कर्घे पर पालकी ढोनेवाला 'कहार' ये सभी मध्याह्नकालीन भोजन के पहिले जलपान करते हैं। मजदूरों को मजदूरी करने के लिए काम पर लगाते समय यह पहिले ही से निश्चित कर लेना पड़ता है कि उन्हें जलपान भी देना पड़ेगा अथवा नहीं। यह उनकी मजदूरी का अंग है।

कुछ लोगों की यह आदत होती है कि यदि वे प्रातःकाल कुछ जलपान न करें, तो उन्हें 'खराई' मार देती है, अर्थात् उनकी तबीयत कुछ खराब हो जाती है। अतः इस 'खराई' को मिटाने के लिए वे कुछ चना-चबेना अवश्य खा लेते हैं। इसे 'खरमिटाव' कहा जाता है। भोजपुरी की बनारसी बोली में, अपने काव्य 'वदमाश-दर्पण' की रचना करनेवाले श्री 'तेगअली' ने रहिला अर्थात् चना चबाकर 'खरमिटाव' करने का उल्लेख किया है:—

“हम खरमिटाव कइली हाँ रहिला चबाइ के।

भैवल धइल बा दूध में राजा खाजा तोरे बदे॥”

भोजपुरी में 'जलपान' का अभिधेय अर्थ ग्रहण नहीं किया जाता। बल्कि व्यञ्जना के द्वारा इसका अर्थ होता है, जल पीने के साथ ही किसी अन्य वस्तु—मिठाई, भुजुना, घुघुनी आदि को भी खाने के लिए देना। यदि केवल पानी पीना ही अभिप्रेत रहेगा, तब कहेंगे “पानी पीये के ले आवऽ।” लोक-भाषा में जलपान को 'पनपियाउ' के नाम से पुकारते हैं। इसे 'जल खावा' भी कहा जाता है।

## (१) अनुच्छेद—जलपान के विभिन्न प्रकार

जलपान के अन्तर्गत विभिन्न वस्तुओं का समावेश होता है:—

'मार्हा', 'चिउड़ा', 'भुजुना', 'घुघुनी', 'मिठाई', 'कसार', 'ढोढ़ी', 'तीसी के लड्डू', 'तिलवा', 'तिलकुट', 'तिल के लड्डू', 'मेथी', 'लाटा' आदि-आदि।

मार्हा और चिउड़ा को दही के साथ भोजन के रूप में व्यवहार में लाते हैं, जिसकी चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है। परन्तु यह जलपान के रूप में भी प्रयुक्त होता है। मजदूर और किसान प्रातःकाल गुड़ के साथ इसको खाते हैं। यह बड़ा 'गम्भीर जलपान' माना जाता है। धनी लोग चिउड़ा में घी और चीनी मिलाकर बड़े शौक से उसे खाते हैं।

### १. भुजुना

'भुजुना' भोजपुरी भाइयों का प्रधान जलपान है। किसी भी गाँव में चले जाइये, वहाँ आपको सुबह और शाम 'भन-सारि' (भाड़) जलती हुई मिलेगी, जिसके सामने बच्चे और औरतों की कुछ भीड़ भी दिखाई पड़ेगी। भुजुना को 'चबेना' भी कहते हैं, जैसा कि किसी कवि की नीचे की पंक्तियों से स्पष्ट है:—

“चना-चबेना, गंगाजल, जो देव करता।

काशी कबहुँ न छोड़िये, बाबा विश्वनाथ दरबार॥”

भाड़ में भूने जाने के कारण ही इसका नाम 'भुजुना' पड़ गया है।

इसी भाड़ में भुजुना 'भूजा' या 'भूना', जाता है। भुजुना के अनेक प्रकार हैं। जैसे:—

(१) चने का भुजुना, (२) चावल का भुजुना, (३) जनेरा (मक्का) का भुजुना, (४) ज्वार का भुजुना,



- (५) जौ का भुजुना, (६) चिउड़ा का भुजुना, (७) महुआ का भुजुना,  
(८) बरें का भुजुना, और (९) धान का भुजुना

चना, चावल, जौ, मक्का आदि किसी भी अन्न को जब भाड़ में भून दिया जाता है, तब उसे भुजुना कहते हैं, जिसका अर्थ है भूनी गयी वस्तु। यदि सुस्वादुता और उत्तमता की दृष्टि से इसका श्रेणी-विभाजन किया जाय, तो चना, चावल और मक्का को क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी, बिना किसी संकोच के प्रदान की जा सकती है।

### (१) चने का भुजुना

चने का भुजुना दो प्रकार का होता है—(१) नमकीन और (२) साधारण। सूखे चने को भाड़ में भुने जाने से जो 'भुजुना' होगा, उसे साधारण भुजुना कहते हैं। परन्तु नमकीन चने का भुजुना तैयार करने के लिए चने में थोड़ा पानी डालकर उसे केवल थोड़ा भिगो देते हैं, जिसे भोजपुरी में 'करमोय देना' कहते हैं। फिर उसमें थोड़ा नमक मिलाकर उसे घूप में सुखा देते हैं। इस प्रकार जब नमक चने में प्रविष्ट कर जाता है, तब उसे भाड़ में भुनाते हैं। यह चने का भुजुना नमकीन होता है और खाने में बड़ा स्वादिष्ट लगता है। कुछ लोग सरसों का थोड़ा तेल इसमें मिलाकर खाते हैं। जो चने का भुजुना नमकीन नहीं होता, उसमें ऊपर से तेल और नमक मिला दिया जाता है। इसके पश्चात् ही उसे खाते हैं। चने के भुजुना में चावल का भुजुना मिलाकर भी खाने की प्रथा है। ऐसा करने से दोनों का आनन्द एक ही साथ मिल जाता है। सम्भवतः चना और चावल की नाम-राशि एक ही होने के कारण दोनों में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है। काशी में प्रायः चने के भुजुने को दलकर, उसके ऊपर का छिलका फटककर निकाल देते हैं। यद्यपि इससे इसका स्वाद तो अवश्य ही अधिक बढ़ जाता है, परन्तु इसके छिलके का होना स्वास्थ्य के लिए अधिक लाभदायक है। काशी में "चना जोर गरम" बेचनेवाले सड़कों पर बहुत पाये जाते हैं, जो अपनी झोली में गरमागरम चना लेकर बेचते फिरते हैं। ये चना बेचते समय बड़े ही सुन्दर गीत गाते हैं। घासीराम नामक व्यक्ति इस चने को बेचता हुआ आशु कविता भी चने की प्रशंसा में करता जाता था, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

“चना बनावै घासीराम, जिसकी झोली में दूकान।  
मेरा चनवा चुरमुर बोलै, बाबू जी के मनवा डोलै।  
जो मेरा चनवा ना खावै, वह पीछे मन में पछतावै।  
खा लो बाबूजी, चना जोर गरम॥”

### (२) चावल का भुजुना

यद्यपि 'अरवा' और 'उसिना'—इन दोनों प्रकार के चावलों का भुजुना बनता है, परन्तु 'भुजिया' चावल का ही भुजुना अच्छा होता है। भाड़ में भूनने पर इसके दाने बड़े-बड़े हो जाते हैं। भुजिया चावल में भी एक खास प्रकार का चावल होता है—जिसके धान को सम्भवतः अधिक उबालकर चावल बनाते हैं—जो भुजुना के लिए बड़ा उपयोगी होता है, क्योंकि इसके दाने बड़े फूटते हैं। काशी में 'फरुही' के नाम से यह प्रसिद्ध है। इस 'फरुही' में गुड़ का पाग डालकर इसे गोल आकृति में छोटे लड्डू के समान बनाते हैं, जिसे 'लाई' कहते हैं। बच्चे 'लाई-चना' बड़े प्रेम से खाते हैं।

चावल के भुजुना में नमक और सरसों का तेल मिलाकर खाने से यह अधिक स्वादिष्ट लगता है। इसमें चने का भुजुना मिलाकर खाने की अधिक प्रथा है। दोनों का संयोग एक-दूसरे के स्वाद को बढ़ा देता है। भोजपुरी क्षेत्र में भुजुना शब्द से चना, चावल और जनेरा के भुजुना का ही अर्थ गृहीत होता है।

### (३) जनेरा (मक्का) का भुजुना

चना और चावल के बाद जनेरा का स्थान आता है। मक्का के भुजुना की विशेषता यह है कि वह भाड़ में भूने जाने पर काफी बड़ा-बड़ा हो जाता है। इसके खिले हुए बड़े-बड़े सफेद दानों को 'लावा' और नहीं खिले छोटे-छोटे दानों को 'ठूरी' कहते हैं। 'लावा' खाने में जितना ही मुलायम होता है, 'ठूरी' उतनी ही सख्त और कठोर होती है। इसीलिए निर्दयी और कठोर हृदयवाले व्यक्तियों की तुलना 'ठूरी' से की जाती है। निम्नांकित लोकोक्ति में इसी की गम्भीर व्यञ्जना की गयी है:—

“ओझा खाले गोझा, ओझाइन खाली पूरी।  
ओझा के लड़िकवा जनम के ठूरी॥”

१. काशी में "चना जोर गरम" बेचनेवाले चने को भिगोकर, उसमें थोड़ा नमक डालकर, उसे कुचलकर चपटा बना देते हैं। इसी को आग पर गर्म कर के बेचते फिरते हैं। यह नमकीन चना बड़ा ही स्वादिष्ट होता है।



मक्का का भुजुना देखने में सफेद और सुन्दर होता है। पहिले तो इसे 'निरघन, निरखल, निरगुन' गाँव के 'गँवार' ही खाया करते थे, परन्तु अब बड़े-बड़े 'अप-टु-डेट' और 'फैशनेबुल जैण्टिलमैन' भी इसके स्वाद का मजा लेते हैं। बम्बई और कलकत्ते की बड़ी-बड़ी दूकानों पर 'पुट्टोचिप्स' की तरह मक्के का भुजुना पैकेट में बन्द होकर अब बिकने लगा है। यह गरीबों का जलपान, अब विसकुट और 'चिप्स' की तुलना करने लगा है।

जनेरा के भुजुना को नमक और लाल मिर्चा की सहायता से खाया जाता है। मजदूरों को जलपान के रूप में प्रायः इसी को दिया जाता है। गरीब किसान तथा मजदूर दोपहर को भोजन के रूप में इसी को खाकर अपना पेट भरता है।

(४) ज्वार को 'जोन्हरी' कहा जाता है। चूँकि इसका 'दाना' सफेद होता है, अतः इसके भुजुने का 'दाना' भी इसी रंग का होता है। यह खाने में कुछ विशिष्ट स्वादिष्ट नहीं होता।

(५) जौ को पानी में भिगोकर, ओखली में छाँटकर, सुखाकर और फटककर जब तैयार कर लेते हैं, तब इसे भाड़ में ले जाकर भुनवाते हैं। तब कहीं इसका भुजुना तैयार होता है। चने के भुजुने के साथ मिलाकर लोग प्रायः इसे खाते हैं।

(६) चिउड़ा का भुजुना बड़ा हल्का और स्वादिष्ट होता है। बहुत लोग इसमें घी और थोड़ा नमक 'मीस' (मिला) कर बड़े प्रेम से इसे ग्रहण करते हैं। यदि काली मिर्च को पीसकर थोड़ा इसमें डाल दिया जाय, तो इसका स्वाद और अधिक बढ़ जाता है। परन्तु चावल के आगे चिउड़ा के भुजुने का विशेष प्रचार नहीं है।

(७) बरें को भाड़ में भूनने पर इसका रंग सफेद हो जाता है। प्रायः गुड़ के साथ इसके भुजुने को खाया जाता है।

(८) धान का लावा—'दिवाली' (दीपावली) के अवसर पर धान को भाड़ में भूनकर उसका लावा—जिसे 'खील' कहते हैं—खाने की प्रथा है। बहुत लोग इस लावे में गर्म दूध डालकर चीनी या गुड़ के साथ खाते हैं। अन्यथा साधारण लोग बताशा या गुड़ के साथ इसका उपयोग करते हैं। धान का लावा बड़ा हल्का होता है। अतः इसे बीमार आदमी को भी खाने के लिए दिया जाता है।

(९) महुआ का भुजुना—महुआ गरीबों का भोजन भी है और जलपान भी। घर की निर्धनता के बोझ से दबी हुई किसान की स्त्री अपने भूखे पति की पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए उसे 'महुआरि' पकाकर खिलाती है और क्षुधा के मारे विलबिलाते हुए अपने बच्चों को महुआ का भुजुना देकर फुसलाती है। सचमुच यदि यह महुआ न हो, तो गरीबों का दिवाला निकल जाय, उनकी जान के लाले पड़ जायें। निश्चय ही यह निर्धन व्यक्तियों का भोजन ही नहीं, बल्कि उनके लिए यह किसमिस, मेवा और बादाम है। श्री मोती बी० ए० ने ठीक ही लिखा है कि :—

“इ गरीबन के किसमिस, अनार सजनी।”

सूखे महुआ को भाड़ में भूनकर इसका भुजुना तैयार किया जाता है, जो कुछ लाल और कुछ बादामी रंग का होता है। इसके साथ बरें का भुजुना मिलाकर लोग आनन्द के साथ खाया करते हैं। महुआ और बरें के भुजुना में गुड़ मिलाकर उसे ओखली में खूब कूटा जाता है। कूटने से दोनों एक में मिल जाते हैं और उनके प्रत्येक अंश या अंग में गुड़ समाविष्ट हो जाता है। इस प्रकार जो वस्तु तैयार होती है, उसे 'लाटा' कहते हैं। यह 'लाटा' लड़कों का प्रधान जलपान है। विद्यालय के सुदूर मार्ग में जानेवाले भोजपुरी बालकों का यह पाथेय है। गाँवों में सन्ध्या समय बालकगण अपनी गमछी (तौलिया) की झोली बनाकर चना अथवा चावल का भुजुना या लाटा खाते हुए दिखाई पड़ते हैं।

## (२) अनुच्छेद—घुघुनी

जलपान का दूसरा अनन्य साधन घुघुनी है। घुघुनी दो प्रकार की होती है—(१) चने की घुघुनी और (२) मटर की घुघुनी। फिर चने की घुघुनी के भी दो भेद हैं—(१) हरे चने की तथा (२) सूखे चने या पके चने की घुघुनी। चने के पौधे में जब फल लग जाते हैं और जब ये काफी बड़े—जिसे भोजपुरी में 'गोटार' कहते हैं—हो जाते हैं, तो इन्हें 'कचरी' की संज्ञा प्राप्त होती है। इसी कचरी में से चने के हरे फलों (बीज) को निकाल लेते हैं और इसे कड़ाही में घी, जीरा, मिर्चा आदि डाल कर छाँक देते हैं। फिर थोड़ा-सा नमक अन्दाज से डालकर, इसे तलकर उतार लेते हैं। हरे चने की यह घुघुनी बड़ी स्वादिष्ट होती है।

दूसरे प्रकार की घुघुनी सूखे चने की होती है। पहिले चने को कम-से-कम २४ घण्टे पहिले पानी में भिगो देते हैं। जब यह काफी 'फूल' जाता है, तब कड़ाही में तेल, मिर्चा, जीरा आदि डालकर इसे छाँक देते हैं। जब यह काफी तल जाता है, तब इसे उतारकर प्रेम से खाते हैं। चने की यह घुघुनी बड़ी प्रसिद्ध है तथा भोजपुरी भाइयों का प्रधान जलपान है।



कच्चे मटर की फलियों को 'छीमी' या 'छेमी' कहा जाता है। यह भोजपुरी में 'ढेढ़ी' के नाम से प्रसिद्ध है। 'ढेढ़ी' के भीतर के दाने को 'गादा' के नाम से पुकारते हैं। इस गादे को घी, मिर्चा और जीरा से कड़ाही में तल देने से मटर की घुघुनी तैयार हो जाती है। आलू के छोटे-छोटे टुकड़े काटकर इसके साथ तल दिये जायँ, तो इसका स्वाद शताधिक हो जाता है।

### (३) होरहा

हरे चने या मटर के पौधे को उनकी फलियों के साथ जब आग में भून देते हैं, तब इन भूनी हुई फलियों को 'होरहा' कहा जाता है। यह दो प्रकार का होता है—(१) चने का होरहा और (२) मटर का होरहा। किसी बगीचे में तालाब के किनारे अथवा अन्य किसी एकान्त स्थान में पेड़ की सूखी पत्तियों को लाकर इकट्ठा किया जाता है। फिर खेत में से चने के उन पौधों को उखाड़ कर लाते हैं, जिनके दाने तो काफी पुष्ट और बड़े (गोटार) हो गये हैं, परन्तु अभी बिल्कुल पके नहीं हैं। इन पौधों को फलियों के साथ इसी पत्ती की आग पर भूनते हैं। अच्छी तरह से फलियों के 'भुन' जाने पर उन्हें एकत्रित कर लेते हैं। यही 'होरहा' कहलाता है। फिर इसे नमक, मिर्चा या अचार की सहायता से खाते हैं।

मटर का होरहा तैयार करने की भी यही पद्धति है। यद्यपि यह भी खाने में कुछ कम स्वादिष्ट नहीं लगता, परन्तु चने का 'होरहा' खाने की ही अधिक प्रथा है। ताजा 'होरहा' बड़ा स्वादिष्ट होता है। कुछ लोग इसे भूनकर रख लेते हैं और कई दिनों—प्रायः महीनों—तक खाते रहते हैं।

'होरहा लगाना' भोजपुरी का एक मुहावरा है, जिसका अर्थ है सर्वनाश या सत्यानाश कर देना। इसे 'होरहा झोलना' भी कहते हैं। 'घर में होरहा झोलना' का व्यंग्यार्थ है—उसमें आग लगाकर नष्ट कर देना।

### (४) तिलवा

तिलवा भी जलपान का एक साधन है। यह निम्न प्रकार का होता है:—

- (१) धान का तिलवा
- (२) जनेरा का तिलवा
- (३) जोन्हरी का तिलवा
- (४) बाजरा का तिलवा
- (५) तिल का तिलवा

पहिले चिउड़ा को भाड़ में भूना जाता है। फिर कड़ाही में गुड़ का कुछ कड़ा 'पाग' बनाकर इस भूने हुए चिउड़े में डाल देते हैं। फिर चिउड़ा में पाग को अच्छी तरह से मिलाते हैं और उसके बाद इसका 'टेनिस बाल' के आकार का गोला बना लेते हैं। सूख जाने पर यह कड़ा हो जाता है, जिसे लोग बड़े प्रेम से खाते हैं। इसी को 'तिलवा' कहा जाता है। यद्यपि यह अन्य अन्नो से भी बनाया जाता है; परन्तु धान (चिउड़ा) का तिलवा अधिक स्वादिष्ट होता है। यह जलपान के अतिरिक्त सगे-सम्बन्धियों के यहाँ 'करनी' (भोज्य पदार्थ) के रूप में भी भेजा जाता है। कुछ लोग तिलवा-दही को खाकर अपने पेट की पूजा करते हैं। 'खिचड़ी' (मकर संक्रान्ति) नामक पर्व के दिन दही के साथ तिलवा खाना आवश्यक समझा जाता है।

जनेरा, जोन्हरी और बाजरे का तिलवा बनाने को भी यही पद्धति है। जनेरे के लावे के बड़े होने के कारण इसका तिलवा आकृति में बड़ा होता है। बाजरे का तिलवा अपेक्षाकृत बहुत छोटा बनाया जाता है।

### (५) कसार

विवाह आदि में इसका उपयोग अधिक होता है। विवाह अथवा गवना के पश्चात् जब लड़की पहिली बार ससुराल जाती है, तब 'झपोली' में भरकर 'कसार' देने की प्रथा है। यों भी व्रत या त्यौहार के अवसर पर सम्बन्धियों—विशेषकर पुत्री—के यहाँ कसार भेजा जाता है। इस प्रकार जलपान के रूप में इसका विशेष प्रयोग न होकर 'करनी' के रूप में ही यह प्रधानतया व्यवहृत होता है।

### बनाने की विधि

कड़ाही में बहुत थोड़ा घी डालकर आटे को घीमी-घीमी आँच पर भूना जाता है। जब उसमें से सोंधी-सोंधी सुगन्ध आने लगती है, तब उसे उतारकर रख देते हैं। फिर इसमें गरी, लुहाड़ा, किसमिस आदि मेवा डालते हैं। इसके पश्चात् कड़ाही में गुड़ घोलकर उसका 'पाग' तैयार करते हैं। जब 'पाग' में कुछ गाढ़ापन आने लगता है, तब इसे भूने गये आटे में



डाल देते हैं। फिर दोनों को खूब मिलाते हैं। बाद में पाव-पाव भर तौल के एक-एक लड्डू बनाते हैं। इसी को भोजपुरी में 'कसार' कहा जाता है। सूख जाने पर 'कसार' बड़ा सख्त और कड़ा हो जाता है। फिर दाँतों का इनके ऊपर कोई बस नहीं चलता। ऐसी दशा में इन्हें फोड़कर खाने के लिए किसी पाषाण-खण्ड की शरण लेने की आवश्यकता पड़ती है। कसार आकृति में गोला, देखने में सफेद और भोजन में स्वादयुक्त होता है। ताजा बना हुआ 'कसार' खाने में उतना ही मुलायम लगता है, जितना सूख जाने पर सख्त। यह अपनी कठोरता के कारण युवती स्त्रियों के उमरते हुए उरोजों का उपमान माना जाता है।

### (६) मेंथी

मेंथी के भी बनाने की विधि वही है, जो कसार की है। अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ कसार में घी बहुत थोड़ा लगाकर आटा भूना जाता है, वहाँ मेंथी में घी की मात्रा अधिक होती है। फिर उसमें मेवा आदि अधिक मात्रा में डाला जाता है। इसके अतिरिक्त इसको सुस्वादु और पौष्टिक बनाने के लिए इसमें थोड़ी-सी 'सोंठि' (सोंठ) भी डाल देते हैं। कसार की आकृति की अपेक्षा मेंथी प्रायः आधी होती है। जहाँ कसार का प्रधानतया प्रयोग सगे-सम्बन्धियों के यहाँ 'करनी' भेजने में किया जाता है, वहाँ इसके ठीक विपरीत मेंथी दैनिक जलपान के रूप में व्यवहृत होती है। लोग इसे बड़े शौक से खाते हैं। सम्भवतः बड़ी आकृतिवाली मेंथी को 'मेथौरा' कहा जाता है, अन्यथा इन दोनों की बनावट में कोई अन्तर नहीं है।

### (७) सठौरा

जब किसी स्त्री को बच्चा पैदा होता है, तब उसके जलपान के लिए 'सठौरा' बनाया जाता है, जो बड़ा पुष्टिकारक होता है। चावल का आटा पीसकर उसमें सोंठ, गोंद, चिरौंजी, गरी, किसमिस आदि मिलाते हैं। फिर गुड़ का गाढ़ा पाग बनाकर इसमें मिला देते हैं। फिर इसकी गोल-गोल छोटी-छोटी पिण्डियाँ बना ली जाती हैं। यही गाँव का 'सठौरा' है। शहरों में आटा भूनकर इसे बनाया जाता है, जो अधिक स्वादयुक्त होता है।

### (८) खाजा (खाझा)

विवाह के पश्चात् गवना के अवसर पर पुत्री के प्रथमवार ससुराल जाते समय 'खाजा' बनवाकर झपोलियों में भरकर भेजने की प्रथा है। जो पिता खाजा की जितनी ही अधिक झपोलियाँ भेजता है, उसकी उतनी ही अधिक प्रशंसा होती है। अतः झपोलियों के आधे भाग में आम का केवल पत्ता भरकर इन झपोलियों की संख्या बढ़ाने का प्रयास किया जाता है। खाजा 'गवने' के विधि-विधानों तथा प्रथाओं का एक आवश्यक अंग है। इसको बनवाकर बिना भेजे पुत्री की 'करनी' की सम्पूर्णता नहीं समझी जाती।

खाजा एक उत्तम भोज्य पदार्थ तथा जलपान है। इसकी इसी उत्तमता की ओर परिलक्षित करते हुए भारतेन्दु जी ने अन्धेर नगरी में लिखा है कि:—

“अन्धेर नगरी, चौपट राजा।

टके सेर भानी, टके सेर खाझा॥”

### बनाने की विधि

खाजा बनाने के लिए विशेष कौशल की आवश्यकता होती है। इसे अनाड़ी हलवाई नहीं बना सकते। खाजा गेहूँ के मैदे से बनाया जाता है, आटे से नहीं। पहिले मैदा को पानी लगाकर खूब सानते हैं। जब वह अच्छी तरह से गूँथे जाने के कारण मुलायम हो जाता है, तब उसकी 'लोइया' बनाते हैं। इस लोइया को चकले पर बेलकर इसमें खूब घी लगाते हैं। फिर उसे मोड़कर बेलते हैं और फिर घी लगाते हैं। यह क्रम पाँच या छह बार तक चलता रहता है। इस प्रकार लोइया के प्रत्येक पत में घी अच्छी तरह से समाविष्ट हो जाता है।

अन्त में उस लोइया को लम्बा बेलकर घी से भरी कड़ाही में डाल देते हैं। इसमें बहुत मन्द आँच लगाने की आवश्यकता होती है। जब यह घी में पकने लगता है, तब हलवाई दो लकड़ियों की सहायता से इसके विभिन्न पतों को अलग-अलग कर देता है। पक जाने पर इसे बाहर निकाल लिया जाता है। फिर कड़ाही में चीनी का गाढ़ा पाग तैयार किया जाता है और उसे धीरे-धीरे छनवटा की सहायता से खाजा के प्रायः प्रत्येक पत पर गिराया जाता है। पाग के सूख जाने पर खाजा बिल्कुल खानेयोग्य हो जाता है।



घी में पकाकर, चीनी का पाग देकर सिक्त किया गया खाजा बड़ा स्वच्छ और सफेद होता है। इसकी लम्बाई प्रायः छह इञ्च और चौड़ाई २-३ इञ्च होती है। परन्तु जो खाजा बहुत छोटा होता है, उसे 'खजुली' कहते हैं। बाजार की दूकानों पर प्रायः 'खजुली' विकती है। जलपान के रूप में खाजा का उपयोग किया जाता है; परन्तु कुछ शौकीन लोग इसे खोलते हुए दूध में डालकर इसका भरपेट भोग लगाते हैं। गर्म दूध में डालने से यह और अधिक मुलायम तथा स्वादिष्ट हो जाता है।

खाजा बारहों महीने नहीं बनाया जाता। इसके बनाने का उचित समय पुत्रियों की विदाई है। शहरों में खाजा बनाने की चाल नहीं है। चूँकि इसके बनाने में बड़ा झंझट होता है, अतः गाँवों में भी धीरे-धीरे इसका प्रचलन कम होता जा रहा है। खाजा भोजपुरी जनता का एक विशिष्ट खाद्य पदार्थ है, जिसका प्रचार उत्तरप्रदेश के अन्य जिलों में नहीं पाया जाता। चूँकि यह बहुत ही हल्का होता है, अतः हल्की वस्तुओं के उपमान के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है।

#### (६) ओछवानी

नव-प्रसूता वधू को जलपान के लिए जो वस्तु दी जाती है, उसे 'ओछवानी' कहा जाता है। इसमें छत्तीस प्रकार की काष्ठ-ओषधियाँ मिलायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त इसमें हरे, बहेरा, पीपरि, सोंठ, ममोरा, मँगरइल, अजवाइन, छुहाड़ा, मखाना का लावा, किसमिस, गरी आदि पदार्थ भी डाले जाते हैं। पहिले आटा को घी में खूब भून लिया जाता है। फिर उपर्युक्त काष्ठ-ओषधियों को पानी में पीसकर घी में खूब पकाया जाता है। जब इसमें सोंधी गन्ध आने लगती है, तब भूने गये आटा को इसमें डाल देते हैं। फिर दोनों को आपस में अच्छी तरह से मिला देते हैं। इस प्रकार जो हलुआ तैयार होता है, उसे 'ओछवानी' कहते हैं। चूँकि इसमें घी, गुड़, सूखा मेवा आदि अनेक पौष्टिक पदार्थ होते हैं, अतः यह बड़ा ही स्वास्थ्यवर्धक तथा पुष्टिकारक होता है। यह जच्चा को प्रतिदिन नाश्ता के रूप में खिलाया जाता है, जिससे उसका स्वास्थ्य ठीक बना रहे। इसके खाने से जच्चा को शक्ति प्राप्त होती है।

ओछवानी को बनाने तथा खाने की प्रथा गाँवों में ही सीमित है। शहर की स्त्रियाँ प्रायः इसे व्यवहार में नहीं लातीं। इसे 'मसाला' भी कहा जाता है। यह केवल नव-प्रसूता स्त्रियों को ही खिलाया जाता है।

#### (३) परिच्छेद

##### शाक

आयुर्वेद के जन्मदाता तथा प्रतिष्ठापक महर्षि धन्वन्तरि किसी एकान्त स्थान में बैठे हुए थे। उसी के पास वृक्ष की डाल के ऊपर बैठी हुई कोई चिड़िया कह रही थी—कोऽरुक् कोऽरुक्, कोऽरुक् अर्थात् इस संसार में नीरोग कौन व्यक्ति है। आचार्य धन्वन्तरि ने चटपट इसका उत्तर दिया—हितमुक्, मितमुक्, अशाक मुक्। अर्थात् जो व्यक्ति थोड़ा खाता है, लाभदायक वस्तुओं को खाता है और जो शाक का व्यवहार नहीं करता, वही नीरोग रहता है।

परन्तु भोजपुरी जनता धन्वन्तरि महाराज के इस सिद्धान्त में तनिक भी विश्वास नहीं करती। यह शाक खाती है और खूब खाती है। यदि कोई शाक उपलब्ध न हो सका, तो चने का ही साग सही। पूर्वी क्षेत्र में जिन शाकों को भोजन के कार्य में प्रयुक्त करते हैं, उनकी संख्या काफी लम्बी है। अतः इनमें से जो प्रधान शाक हैं, उन्हीं की संक्षिप्त चर्चा यहाँ की जाती है। प्रधानतया निम्नांकित शाक विशेष रूप से प्रयोग में लाये जाते हैं:—

(१) आलू, (२) कोहड़ा, (३) कटहल, (४) करैला, (५) लउकी, (६) तरौई, (७) रामतरौई, (८) नेनुआ, (९) सतपुतिया, (१०) अरुई, (११) अरुआ, (१२) सूरन, (१३) गोभी, (१४) सेमि, (१५) साग, (१६) बोरो, (१७) कुँदरू, (१८) चिंचिडा, (१९) सहिजन, (२०) मूली, (२१) परवल, (२२) टमाटर, (२३) भण्टा, (२४) केला, (२५) गिरवैछ।

भोजपुरी क्षेत्र में शाक को तरकारी कहते हैं। यद्यपि शाक शब्द के अन्तर्गत सभी प्रकार के व्यञ्जन अन्तर्भुक्त हो जाते हैं, परन्तु भोजपुरी में साग—जो शाक का ही अपभ्रंश है—उस तरकारी के लिए प्रयुक्त होता है, जो पत्तियों वाली है—जैसे, चँवलाई, पालक और बथुआ आदि। तरकारी शब्द का प्रयोग सभी प्रकार के व्यञ्जनों के लिए किया जाता है। परन्तु 'साग' शब्द का व्यवहार सीमित अर्थ में ही होता है।

(१) आलू—यह सबसे अधिक सुलभ, प्रसिद्ध तथा सर्वसाधारण जनता द्वारा प्रयोग में लाये जानेवाला शाक है। उत्तरप्रदेश के पूर्वी क्षेत्र में यह बहुत पैदा होता है और गरीब किसान की आमदनी का अनन्य साधन है। आलू प्रायः बारहों महीने उपलब्ध होता है और गर्मी के दिनों में तो बहुत सस्ता विकता है। इसकी सुलभता और सस्तापन ही इसके समधिक प्रचार का कारण है। फिर यह महीनों घर में पड़ा रहे, तो भी खराब नहीं होता। दैनिक भोजन में तथा विवाह आदि में, भोज के अवसर पर इसका प्रचुर प्रयोग किया जाता है।



### बनाने की विधि

आलू का शाक दो प्रकार से बनाया जाता है—(१) सूखा और (२) रसेदार। सूखे साग को 'मुजिया' कहते हैं। कुछ लोग 'झूरी' के नाम से भी इसे पुकारते हैं। आलू को छीलकर उसको छोटे-छोटे पतले टुकड़ों में काट लिया जाता है। फिर घी या तेल में मिर्चा, जीरा, मेथी आदि का 'फोरन' देकर इसे छौंक देते हैं। फिर घीमी-घीमी आँच पर नमक डालकर इसको भूनते हैं। जब यह कुछ-कुछ लाल होने लगता है, तब इसे उतार लेते हैं। इसी को आलू की 'मुजिया' कहते हैं।

रसेदार आलू को बनाने की विधि यह है कि पहिले आलू को उबाल देते हैं। फिर उसका छिलका निकाल देते हैं। बाद में इसे बड़ा-बड़ा काटकर तेल में मिर्चा, जीरा, मेथी आदि का 'फोरन' डालकर छौंक देते हैं। फिर इसमें गर्म-मसाला पीसकर, डालकर पकाते हैं। थोड़ा पानी रहने पर इसे उतारकर रख देते हैं।

आलू का एक दूसरे प्रकार से भी रसेदार शाक बनाया जाता है, जिसे 'आलूदम' कहते हैं। बड़े-बड़े आलू को लेकर उसके छिलके को चाकू से छील देते हैं। फिर इस आलू को चाकू की नोक से 'गोमते' हैं। फिर कड़ाही में प्रचुर मात्रा में तेल डालकर पहिले पीसे गये गर्म-मसाला को उसमें खूब भूनते हैं। इसके बाद उस 'साबुत' (सम्पूर्ण) आलू को बिना चीरे हुए, मसाले में डाल देते हैं। फिर थोड़ा-सा पानी डालकर उसे खूब घीमी-घीमी आँच में पकाते हैं। जब थोड़ा-सा पानी शेष रह जाता है, तब उसे उतार लेते हैं। यही 'आलू का दम' कहलाता है, जो खाने में बड़ा स्वादिष्ट होता है।

यह तो आलू की अकेलेपन की कहानी है। परन्तु अन्य शाकों के साथ मिलाकर भी आलू की तरकारी बनायी जाती है, जैसे आलू-गोभी, आलू-टमाटर, आलू-मटर, आलू-बैंगन, आदि। आलू में गर्म-मसाले के साथ थोड़ी दही भी डालते हैं। फिर इसे पकाते हैं, जिसमें दही के रस को वह 'सोख' ले। दधि-मिश्रित आलू का यह शाक बड़ा ही स्वादिष्ट होता है।

### (२) कोहड़ा

कोहड़ा प्रचुर मात्रा में पैदा होता है। इसकी बेल को बाँस का 'ठट्टर' बाँधकर अथवा किसी छप्पर पर चढ़ा देते हैं। फिर यह बेल फैलती जाती है। कोहड़े के फूल की पकौड़ी या 'बजका' बनाया जाता है। कोहड़ा खूब फलता है। शाकों में सम्भवतः कटहल को छोड़कर इसका फल सबसे बड़ा होता है। एक-एक कोहड़े का वजन तीन-तीन चार-चार पसेरी या आधा मन के करीब होता है।

कोहड़ा का छिलका बड़ा मोटा होता है। अतः उसे पहिले चाकू से छीलते हैं। फिर उसे छोटा-छोटा काटकर तेल में छौंक देते हैं। जब यह प्रायः पकने को हो जाता है, तब इसमें आम की थोड़ी खटाई डाल देते हैं। बिना खटाई के कोहड़े की तरकारी अच्छी नहीं बनती; जैसा कि निम्नांकित लोकोक्ति से स्पष्ट पता चलता है:—

“खटाई बिनु कोहड़ा कइसे बनी।”

कच्चे कोहड़े की तरकारी में मसाला डालकर अथवा बिना मसाले के भी बनाया जाता है। पके कोहड़े का शाक बनाते समय उसमें गुड़ और खटाई दोनों ही डालते हैं, जिससे इसका स्वाद बहुत अच्छा हो जाता है।

विवाह आदि अवसरों पर जहाँ सैकड़ों आदमियों के लिए कोहड़े की तरकारी बनानी पड़ती है, वहाँ इसके छिलके को 'छीला' नहीं जाता। इसकी तरकारी बनाते समय इसको इतना अधिक पका देते हैं कि छिलका भी आपसे-आप 'गल' जाता है। बारात में खिलाने के लिए बड़े-बड़े कड़ाहों में बनते हुए कोहड़े के शाक का दृश्य देखने ही लायक होता है।

### (३) कटहल

यह गाँवों में बड़ी आसानी से सुलभ होने वाला शाक है। प्रायः प्रत्येक किसान के बगीचे में कटहल के पेड़ होते हैं, जिनके ऊपर यह बड़ी प्रचुरता के साथ फलता है। एक-एक पेड़ में पचास-पचास सौ-सौ कटहल लटकते हुए दिखाई देते हैं। कटहल का फल सम्भवतः कोहड़े को छोड़कर सबसे बड़ा होता है, जिसमें किसी-किसी का वजन बीस-पचीस सेर तक होता है।

कटहल का शाक बनाने के पहिले इसके छिलके को—जो बड़ा कड़ा और मोटा होता है—'छील' कर निकाल देते हैं। फिर शेष अंश को काटकर तेल में छौंक देते हैं। इसके बाद पीसकर इसमें गर्म-मसाला डाल देते हैं। धीरे-धीरे इसे पकाकर उतार लेते हैं।

कटहल का शाक यदि ठीक से पका हुआ न हो और उसे अधिक खा लिया जाय, तो पेट में दर्द पैदा हो जाता है। इसी-लिए इसे व्यंग्य में 'कष्टकर' (कष्ट देनेवाला) भी कहा जाता है।

इसके शाक को एक दूसरे प्रकार से भी बनाते हैं। पहिले कटहल को छीलकर बड़े-बड़े टुकड़ों में काटकर इसे पानी



में उबालते हैं। जब यह प्रायः उबल जाता है, तब इसे घी में छौंक देते हैं। फिर बाद में इसमें गर्म-मसाला पीसकर प्रचुर मात्रा में डालते हैं। फिर घीमी-घीमी आँच पर इसको पकाते हैं। इस प्रकार जो शाक तैयार होता है, उसे 'कटहल-दम' कहा जाता है। इस शाक में घी की मात्रा अधिक होनी चाहिए, तभी यह स्वादिष्ट होता है। और इसको पचाने में भी आसानी होती है।

भोजपुरी बारात को भोजन कराने के लिए कटहल और कोंहड़े की तरकारी अवश्य ही बनायी जाती है। इस शाक की विशेषता यह है कि अन्य शाकों की भाँति यह पकाने पर कम नहीं होता—बल्कि और अधिक बढ़ जाता है। विवाह के अवसर पर कटहल के शाक को घर की स्त्रियाँ न तो छीलती हैं और न चीरती हैं। क्योंकि यह उनके बूते की बात नहीं है। इस समय गाँव का बड़ई बुलाया जाता है और वह इन कटहलों की ढेर को अपने 'बसूले' से छीलता है तथा इसी से काटकर इसे छोटे-छोटे टुकड़ों में कर देता है। फिर इस शाक को बहुत बड़े कड़ाह में तेल में छौंकते हैं और नमक तथा गर्म-मसाला डालकर इसे पकाते हैं। निश्चित ही इस प्रकार प्रचुर परिमाण (Mass scale) में पकाया गया यह शाक खानेवालों की जिह्वा को विशेष स्वाद प्रदान नहीं करता।

कच्चे कटहल की ही तरकारी बनायी जाती है। पक जाने पर इसे शाक के काम में कदापि नहीं लाया जा सकता। पके हुए कटहल के भीतर प्रायः गोल-गोल और कुछ लम्बी, पीली-पीली, पिण्डियाँ होती हैं, जिसे 'कोवा' कहा जाता है। इसे भोजपुरी भाई बड़े शौक से खाते हैं। 'कोवा' को अधिक मात्रा में खाना हानिकारक है। इससे पेट में दर्द पैदा हो जाता है। 'कोवा' से उत्पन्न बुरे प्रभाव को नष्ट करनेवाला (एण्टीडोट) घी होता है। अतः शौकीन लोग 'कोवा' को घी में डुबोकर खाते हैं अथवा इसके खाने के पश्चात् थोड़ा घी पी लेते हैं, जिससे इसका बुरा प्रभाव नष्ट हो जाय। 'कोवा' खाने के पश्चात् ताम्बूल मक्षण नहीं करना चाहिए, अन्यथा ऐसा करने से पेट 'फूलने' लगता है।

#### (४) लौकी

भोजपुरी गाँवों में जहाँ भी चले जाइये, वहाँ वाँस के ठट्टरों पर अथवा घर के छप्परों पर लौकी लटकती हुई दिखाई पड़ेगी। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने गाँवों का वर्णन करते हुए ठीक ही लिखा है:—

“काशी-फल कुष्माण्ड कहीं हैं।  
कहीं लौकियाँ लटक रही हैं।”

प्रायः प्रत्येक ग्रामीण अपने घर में लौकी बोता है। उसकी बेल को फैलने के लिए अवकाश प्रदान करता है। जाड़े के दिनों में लौकी—जिसे भोजपुरी में 'लउका' कहते हैं—खूब ही फलती है। एक ही बेल में बीस-बीस, तीस-तीस, लौकियाँ लटकती हुई दिखाई पड़ती हैं।

लौकी का शाक बनाने के पहिले इसके छिलके को चाकू या 'सुतुही' से छील लेते हैं। फिर इसे लम्बा और पतला काटते हैं। जहाँ सभी शाक तेल में छौंके जाते हैं, वहाँ लौकी को घी में जीरा के साथ छौंका जाता है। इसमें बहुत थोड़ा नमक डालते हैं और जब इसका पानी खूब अच्छी तरह से जल जाता है, तब इसे चूल्हे से उतार लेते हैं। लौकी के शाक में मसाला नहीं डाला जाता और इसे केवल सूखा बनाया जाता है। गर्मी के दिनों में इसका शाक विशेष चाव से खाया जाता है; क्योंकि इसकी 'तासीर' (असर) ठण्डी होती है।

लौकी को 'कद्दूकस' में कसकर, इसे उबालकर तथा नमक और गर्म-मसाला डालकर इसका 'रायता' भी बनाया जाता है, जो बड़ा स्वादिष्ट होता है।

#### (५) करंला

इसे भोजपुरी में 'करइला' कहते हैं। यह शाक भी बहुत पैदा होता है। करंला का शाक दो प्रकार से बनाया जाता है—(१) भुजिया और (२) कलौंजी। करंला को पहिले पतली और गोल आकृति में काटते हैं। फिर इसे कड़ाही में तेल और जीरा (मिर्चा से नहीं) से छौंकते हैं। इसके बाद इसे मन्द-मन्द आँच पर पकाते हैं। यही करंला की भुजिया है।

कलौंजी बनाने के लिए कुछ अधिक कुशलता की जरूरत होती है। पहिले करंला के छिलके को चाकू से छील लेते हैं। फिर उसमें थोड़ा नमक मलकर घूप में सुखा देते हैं, जिससे उसकी 'तिताई' नष्ट हो जाय। फिर उस करंला के भीतर गर्म-मसाला भरते हैं। तब उसे कड़ाही में प्रचुर तेल डालकर मन्द-मन्द आँच पर पकाते हैं। इस प्रकार पकाये गये शाक को 'करंले की कलौंजी' कहते हैं। यह 'करंले का मुश्ता' भी कहा जाता है। लोग इसे कई दिनों तक खाते रहते हैं; क्योंकि पूर्ण-



तया तेल में ही पके होने के कारण यह जल्दी खराब नहीं होता। इस 'भुस्ते' में करैले की स्वाभाविक 'तिताई' का अभाव पाया जाता है।

करैले का 'चोखा' भी बनाया जाता है। पहिले इसे पानी में उबाल देते हैं। फिर इसे हाथ से 'मीसकर' इसमें नमक, तेल, खटाई आदि डालते हैं। इस प्रकार तैयार किये गये करैले का 'चोखा' स्वादिष्ट होता है। करैले को गोल-गोल छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर आलू के साथ इसे तेल में भूना जाता है। इस प्रकार बनायी गयी आलू और करैले की भुजिया खाने में बड़ी अच्छी लगती है।

### (६) राम तरोई

भिण्डी को भोजपुरी में 'राम तरोई' कहा जाता है। यह लम्बी और पतली होती है, सम्भवतः इसीलिए इसे अंग्रेजी में 'लेडीज फिंगर' कहते हैं। इसे काटने के पहिले ही पानी से धो लिया जाता है। अन्यथा बाद में 'चिपक' होने के कारण इसे धोना बड़ा कठिन होता है। इसे फिर तेल में खूब भूनते हैं। भिण्डी बहुत जल्दी ही पक जाती है। अतः इसे अधिक 'आँच' की आवश्यकता नहीं होती। पक जाने पर भिण्डी की भुजिया तैयार हो जाती है।

कुछ स्त्रियाँ इसकी कलौंजी भी बनाती हैं। वे भिण्डी को लम्बा लम्बा काटकर उसमें गर्म-मसाला भर देती हैं। फिर उसमें थोड़ा पानी डालकर पकाती हैं। परन्तु इसकी कलौंजी अच्छी नहीं बनती। राम तरोई की भुजिया इसकी कलौंजी की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट होती है।

### (७) तरोई

यह नेनुआ की ही भाँति लम्बी और बड़ी होती है, परन्तु इसका छिलका बड़ा कड़ा होता है। इसके छिलके को छीलकर इसका शाक बनाया जाता है। इसे आग पर रखकर धीरे-धीरे इसके पानी को जलाते हैं, तब कहीं यह शाक बनकर तैयार होता है। इसमें मसाला नहीं डाला जाता। तरोई की आकृति लम्बी और कुछ मोटी होती है।

### (८) नेनुआ

नेनुआ भी लम्बा और कुछ मोटा होता है। परन्तु तरोई की भाँति इसका छिलका मोटा नहीं होता। अतएव कुछ स्त्रियाँ इसके छिलके को बिना छीले ही इसकी तरकारी बनाती हैं। इसे कुछ लोग 'धेंवड़ा' भी कहते हैं। इसे भी पकाते समय इसमें से पानी बहुत निकलता है। इसमें मसाला डालने की जरूरत नहीं होती। जब इसका पानी सूख जाय, तब समझना चाहिए कि यह अच्छी तरह से तैयार हो गया। जिनके पिता की मृत्यु हो गयी है, ऐसे व्यक्तियों के लिए पितृपक्ष के दिनों में इसका खाना निषिद्ध माना जाता है। इसीलिए आश्विन मास के कृष्ण पक्ष—जिसे पितृपक्ष भी कहा जाता है—में यह शाक काशी में बड़ा सस्ता विकता है, क्योंकि पितरों को तिलाञ्जलि देनेवाला कोई भी व्यक्ति इसका उपयोग नहीं करता है।

### (९) सतपुतिया

यह नेनुआ की ही श्रेणी का शाक है। अन्तर केवल इतना ही है कि नेनुआ लम्बा और मोटा होता है, परन्तु यह पतली और छोटी होती है। यह 'झोंप' में फलती है, अर्थात् एक ही साथ इसकी अनेक फलियाँ लगी हुई रहती हैं। इसको भी पकाने पर पानी बहुत निकलता है, अतः इसमें भी मसाले की कोई जरूरत नहीं होती है। घर के छप्पर पर 'सतपुतिया' की बेल में सैकड़ों फलियाँ लगी हुई दिखाई पड़ती हैं। नेनुआ, तरोई, और सतपुतिया ये तीनों ही एक ही वर्ग के शाक हैं और इनके बनाने की विधि भी एक ही है।

### (१०) अरई

यह शाक दो-तीन इंच लम्बा होता है। इसे 'घुइयाँ' भी कहा जाता है। आलू की भाँति यह भी जमीन के नीचे पैदा होता है। पहिले इसे पानी में उबालते हैं, फिर इसके छिलके को निकाल देते हैं। बाद में इसे गोल तथा छोटा-छोटा काटकर तेल, मिर्चा, जीरा आदि में छौंक देते हैं। इसके पश्चात् थोड़ा नमक और आग में भूनकर पीसा गया सूखा मसाला इसमें डाल देते हैं। इस प्रकार भूनी गयी अरई की तरकारी बड़ी सोंधी और स्वादिष्ट होती है। इसका शाक बनाने की दूसरी विधि यह है कि कच्ची अरई का छिलका हटाकर इसे चीरकर छौंक देते हैं, फिर इसमें पीसकर गर्म-मसाला डालते हैं। इस प्रकार रसदार 'अरई' का शाक तैयार हो जाता है। परन्तु भूनी गयी अरई में स्वाद अधिक होता है।



## (११) अरुआ

यह कन्द या शकरकन्द के समान लम्बा और उससे दुगुना तथा तिगुना मोटा होता है। इस शाक को छूने तथा खाने से हाथ और मुंह में खुजलाहट-सी मालूम होने लगती है। अतः इसको पकाने में सरसों के तेल तथा खटाई का अधिक प्रयोग किया जाता है। इसके भी बनाने की विधि वही है, जो अरुई की भुजिया या सूखे शाक की है। अन्तर केवल इतना ही है कि इसमें तेल और खटाई की मात्रा अधिक होनी चाहिए। गरीब लोग अरुआ को उबालकर उसमें नमक, मिर्चा डालकर इसका 'चोखा' बनाकर खाते हैं। अरुआ निकृष्ट शाकों में माना जाता है। यह रसदार भी बनाया जाता है।

## (१२) सूरन

सूरन आकृति में गोल और कुछ ललाई लिये हुए होता है। इसका वजन आठ-दस सेर तक होता है। साधारणतया इसकी उपमा गुड़ की छोटी 'चकरी' से की जा सकती है। अरुआ की ही भाँति यह भी खाने पर गले में खुजली पैदा कर देता है। अतः इस शाक को बनाने में तेल, मिर्चा और 'अमचूर' (खटाई) प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त किया जाता है, जिससे उत्पन्न होनेवाली खुजलाहट नष्ट हो जाय।<sup>१</sup> इसे भी अरुई की ही भाँति बनाया जाता है। ववासीर के रोगियों के लिए यह शाक बड़ा लाभदायक होता है। गरीब लोग इसका चोखा बनाकर खाते हैं।

## (१३) सेमि

इसकी बेल होती है, जिसे लौकी की बेल की भाँति 'ठट्टर' पर फैला दिया जाता है। इसकी फलियाँ लम्बी और चपटी होती हैं। ये एक साथ 'झोंप' (ग्रूप) में फलती हैं। सेमि को काटकर तेल में छौंक देते हैं। फिर इसमें गर्म-मसाला डालकर धीरे-धीरे पकाते हैं। जब पानी प्रायः सूख जाता है, तब इसे उतार लेते हैं। आलू के साथ भी सेमि के शाक को बनाया जाता है। इसका अँचार भी डाला जाता है।

## (१४) गोभी

गोभी दो प्रकार की होती है—(१) फूलगोभी और (२) पातगोभी। फूलगोभी उसे कहते हैं, जिसके मध्य में प्रायः सफेद फूल दिखाई पड़ता है। परन्तु पात-गोभी में केवल पत्ते-ही-पत्ते दृष्टिगोचर होते हैं। गोभी कोई स्वतन्त्र शाक नहीं है। यह सदा आलू के साथ ही बनाया जाता है, तभी इसमें असली स्वाद का अनुभव होता है। कच्चे आलू के साथ ही फूल या पातगोभी बनायी जाती है। आलू के साथ इसमें गर्म-मसाला डालकर पकाया जाता है। जब थोड़ा पानी 'बाकी' रह जाता है, तब इसे उतार लेते हैं। फूलगोभी रसदार बनायी जाती है और पातगोभी सूखी। दोनों का अपना अलग-अलग स्वाद है। जाड़े के दिनों में आलू-गोभी का शाक खूब खाया जाता है। यदि इसमें पका टमाटर और मटर की फली डाल दी जाय, तब इसका स्वाद सैकड़ों गुना अधिक हो जाता है।

## (१५) बोरो

यह करीब ६ से १२ इंच तक लम्बा और पतला होता है। इसकी भी बेल होती है, जो खूब फलती है। इसके छोटे-छोटे टुकड़ों को काटकर उन्हें मसाले के साथ बनाया जाता है। विदेशी बीज की 'बोरो' बड़ी मुलायम होती है और इसके दाने बड़े-बड़े होते हैं। इसको 'बोड़ो' तथा बरवटा भी कहते हैं।

## (१६) परवल

परवल को भोजपुरी में 'परोरा' कहा जाता है। बंगाल में इसे 'पटल' के नाम से पुकारते हैं। यह सभी शाकों में श्रेष्ठ, गुणकारी और स्वादिष्ट होता है। किसी अतिथि को, किसी विशिष्ट व्यक्ति को परवल का शाक खिलाना गौरव का विषय माना जाता है। बनी-मानी व्यक्ति ही विवाह आदि अवसरों पर दावतों में लोगों को आलू-परवल का शाक खिलाते हैं। जिस प्रकार भोज्य पदार्थों में पूड़ी और पूआ श्रेष्ठ समझा जाता है, उसी प्रकार शाकों में आलू और परवल की तरकारी उत्तम मानी जाती है।

१. हिन्दी के महाकवि बिहारी ने श्लेषालंकार के द्वारा सूरन की खुजलाहट और इसमें तेल और खटाई डालने पर इसके शाक या अँचार की सुस्वादुता की ओर संकेत किया है।



परवल का शाक स्वादिष्ट होने के अतिरिक्त लाभदायक भी होता है और आसानी से पच जाता है। इसीलिए वैद्य और डॉक्टर बहुत दिनों से उपवास करनेवाले रोगी को परवल के शाक का 'जूस' या 'रस' 'पथ्य' के रूप में खाने को बताते हैं।

परोरा का शाक दो प्रकार से बनाया जाता है—(१) भुजिया, (२) रसदार। परोरा को पतला-पतला चीरकर उसे तेल में छौंक देते हैं। फिर धीमी-धीमी आँच लगाकर उसे पकाते हैं। खूब 'भून' जाने पर वह सोंघा हो जाता है। यह 'भुजिया-परवल' है। 'रसदार-परवल' बनाने के लिए उसके केवल दो टुकड़े करते हैं। फिर तेल में छौंककर उसमें पर्याप्त पानी में पीसा हुआ गर्म-मसाला डालते हैं। फिर पक जाने पर थोड़ा-सा पानी रहते ही इसे उतार लेते हैं। यही रसदार परोरा का शाक है। परवल में सूखा गर्म-मसाला डालकर भी इसे बनाते हैं। आलू के साथ बनाया गया रसदार 'परोरा' स्वाद में अपना सानी नहीं रखता।

### (१७) कुँदरू

इसकी आकृति परवल से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। बहुत-से कुँजड़े इसी रूप-साम्य के कारण इसे परवल में मिलाकर मँहगे दाम में बँचते हैं। इसका शाक बुद्धि को नष्ट करनेवाला माना जाता है।<sup>१</sup> अतः पण्डित लोग इसे नहीं खाते। परवल के समान ही यह भी बनाया जाता है।

### (१८) बैंगन

इसे भोजपुरी में 'भण्टा' कहते हैं। इसकी आकृति गोल भी होती है और लम्बी भी। आधुनिक प्रणाली से खाद आदि देकर पैदा किया गया गोल बैंगन, अपने वृहत् आकार के कारण, गोलाकार लौकी को भी चुनौती देता है।

गोल बैंगन विशेष रूप से 'भुस्ता' बनाने के काम में लाया जाता है, जिसे भोजपुरी में 'चोखा' कहते हैं। इसे लकड़ी अथवा 'गोइँठा' (उपले) की आँच में पकाते हैं। फिर इसका छिलका छीलकर फेंक देते हैं और इसमें नमक, मिर्चा, खटाई और सरसों का तेल डालकर इसे खूब 'मीसते' हैं। इस प्रकार बैंगन का 'चोखा' तैयार हो जाता है।

लम्बे तथा पतले बैंगन की 'कलौंजी' बनायी जाती है। बैंगन को दो टुकड़ों में काटकर उसमें गर्म-मसाला भर दिया जाता है, फिर तेल में उसे छौंक देते हैं और अन्दाज से थोड़ा पानी और नमक डाल देते हैं। धीमी-धीमी आँच पर इसे पकाया जाता है। कुछ लोग केवल तेल में ही इसे पकाते हैं। इस प्रकार बनायी गयी बैंगन की यह 'कलौंजी' किस शौकीन खानेवाले को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर लेती?

बैंगन वायुकारक होता है। इसी कारण वायु-रोग से पीड़ित लोग इसके शाक को नहीं खाते। यों भी, खाने पर यह वायु पैदा करता है। किसी-किसी व्यक्ति के पित्त को भी यह कुपित कर देता है। इसी तथ्य की ओर किसी कवि ने निम्नांकित पंक्तियों में उल्लेख किया है:—

“भंटा एक को पित्त करे।  
करे एक को बाय ॥”

### (१९) टमाटर

टमाटर शब्द अंग्रेजी के 'टोमैटो' का अपभ्रंश रूप है। गाँवों में इसे 'बिलायती भण्टा' कहा जाता है। आज से लगभग तीस वर्ष पहिले गाँवों में इसका प्रयोग अपवित्र माना जाता था और 'बिलायती भण्टा' कहकर यह हेय दृष्टि से देखा जाता था। परन्तु आजकल, क्या शहर और क्या गाँव, सर्वत्र इसका प्रचार समान रूप से उपलब्ध होता है। इसमें 'विटामिन' अधिक होने के कारण लाल टमाटर को लोग नमक के साथ बड़े शौक से खाते हैं।

टमाटर कोई स्वतन्त्र शाक नहीं है। इसकी तरकारी सदा आलू या मटर के साथ मिलाकर ही बनायी जाती है। तभी यह स्वादिष्ट लगता है। डॉक्टर लोग रोगियों को टमाटर का 'जूस' पीने के लिए बताते हैं। कुछ लोग टमाटर को पानी में डालकर, उसका छिलका हटाकर उसे 'मीस' देते हैं। फिर इसे घी में जीरा डालकर छौंक देते हैं। इस प्रकार बनाया गया टमाटर का जूस स्वादिष्ट होता है। आजकल टमाटर का प्रयोग अनेक रूपों में किया जा रहा है; परन्तु उसकी चर्चा मेरे क्षेत्र से बाहर की वस्तु है।

१. “सद्यः प्रज्ञा हरी तुण्डी, सद्यः प्रज्ञा करी बचा।”



## (२०) सहिजन

इसकी आकृति लम्बी और पतली होती है। इसे चीरकर तथा मसाला डालकर बनाया जाता है, परन्तु इसका स्वाद कुछ अच्छा नहीं होता। इसके शाक को खाया नहीं जाता; बल्कि 'चूसा' जाता है। यह गरीब लोगों का कामचलाऊ शाक है, अधिक सख्त हो जाने पर इस शाक को पकाना भी एक टेढ़ी खीर है।

## (२१) केला

केला का शाक खाने की प्रथा बहुत कम है। इसे केवल शौकीन लोग ही खाते हैं, अथवा अपच के रोगी को इसका शाक पथ्य के रूप में दिया जाता है। मिण्डी के ही समान केला का शाक बहुत जल्दी बनकर तैयार हो जाता है। पहिले कच्चे केले के छिलके को चाकू से छीलकर अलग कर देते हैं। फिर इसे गोल-गोल रूप में काटते हैं। इसके बाद घी में जीरा, मिर्चा आदि 'फोरन' देकर इसको 'छोंकते' हैं। फिर पानी में पीसा हुआ गर्म मसाला इसमें डालकर बहुत धीमी आँच पर पकाते हैं। जब मसाले का पानी सूख जाता है, तब इसे उतारकर रख देते हैं, इसमें घी की मात्रा अधिक होने से इसका स्वाद द्विगुणित हो जाता है। एक तो केला मँहगा विकता है, दूसरे इसका शाक पककर थोड़ा हो जाता है, तीसरे बिना घी तथा गर्म-मसाला के इसका शाक नहीं बनाया जा सकता। इन्हीं कारणों से इसकी तरकारी बहुत ही कम लोग खाते हैं।

## (२२) चिचिडा

इस शाक की आकृति बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी और बहुत लम्बी होती है। कहीं-कहीं यह छह-सात फीट से भी अधिक लम्बा पाया जाता है। इसकी बेल 'ठट्टर' या पेड़ पर चढ़ा दी जाती है। चिचिडा के शाक को लटकते हुए देखकर सर्प की आकृति की आशंका होती है। इसे मसाला डालकर पकाया जाता है। इसका स्वाद कुछ विशेष रुचिकर नहीं होता।

## (२३) मूली

साधारणतया मूली छोटी और पतली होती है। परन्तु जौनपुर की मूली बड़ी ही मोटी और लम्बी होती है, जिसका वजन आठ-दस किलो से कम नहीं होता। मूली की पत्तियों का शाक बनाया जाता है, तथा मूली की कलौंजी पकायी जाती है। इसकी कलौंजी बनाने का प्रकार वही है, जिसका उल्लेख बैंगन की कलौंजी के प्रसंग में किया जा चुका है। 'नेनुआ' के साथ मूली की तरकारी अच्छी बनती है। इन दोनों का बड़ा मेल है।

इसके अतिरिक्त सत्तू खाते समय मिर्चा की भाँति मूली भी खायी जाती है। भात-दाल या रोटी के साथ भी नमक में बोरकर मूली को खाते हैं। जैसे सत्तू भोजपुरी पथिकों का पाथेय है, वैसे ही मूली उनका 'एन्'रेडी' शाक है, जिसे पकाने की जरूरत नहीं पड़ती। इसीलिए सत्तू के साथ मूली और हरा मिर्चा अवश्य खाया जाता है।

मूली को तिल पर पीसकर इसकी चटनी भी बनायी जाती है। 'कद्दूकस' में कस कर इसका रायता भी तैयार किया जाता है। इसका अचार स्वाद में बड़ा अच्छा लगता है। इस प्रकार मूली का उपयोग तरकारी, चटनी और अचार इन तीनों में किया जाता है। यह भोजपुरी किसान का अत्यावश्यक शाक है, जिसका प्रयोग वह नित्यप्रति करता है। यह खेतों में प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होती है। अतएव सुलभ होने के कारण इसका बड़ा व्यापक प्रचार है।

## (२४) साग

भोजपुरी 'साग' का अभिप्राय इन तरकारियों से होता है, जो पत्तेदार (लिफ़ी) होती हैं। अतः खड़ीबोली के 'शाक' और भोजपुरी 'साग' में बड़ा अन्तर है। साग कई प्रकार का होता है:—

- (१) चँवरई का साग
- (२) पालक का साग
- (३) करेमू का साग
- (४) बथुआ का साग
- (५) गुल्फा का साग
- (६) चने का साग
- (७) मटर का साग
- (८) मेथी का साग



(९) सरसों का साग और

(१०) नोनी (लोनी) का साग।

इन सागों में चँवरई और पालक का साग सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। पालक के साग को पकाते समय इसमें थोड़ा 'सोआ' भी डाल दिया जाता है, जिससे इसमें सुगन्ध आ जाती है और स्वाद में भी वृद्धि हो जाती है। दैनिक व्यवहार में आने के अतिरिक्त चँवरई और पालक का साग दावतों में भी अतिथियों को खाने के लिए दिया जाता है। इनके बनाने की विधि यह है कि इन्हें पहिले (बिना पानी डाले) उबालते हैं। फिर साग को छानकर शेष जल को फेंक देते हैं। इसके बाद तेल में 'फोरन' देकर इसे धीमी-धीमी आँच पर भूनते हैं। जब इसका पानी बिल्कुल सूख जाता है, तब इसे बड़े प्रेम से खाते हैं।

'करेमू' का साग सम्भवतः पानी में पैदा होता है। अतः इसे बहुत पवित्र मानते हैं। ऋषिपंचमीव्रत के दिन 'तीना' के चावल के साथ इसी शाक को खाते हैं। 'बथुआ' का साग बड़ा स्वादिष्ट होता है। इसे 'चने के साग' के साथ मिलाकर पकाते हैं। आलू के साथ भी इसको बनाया जाता है। इसके साग को उबालकर, आटे में डालकर इसकी कचौड़ी भी पकायी जाती है। 'गुल्फा' (कुल्फा) कोई स्वतन्त्र तरकारी नहीं है। अर्थात् इसे बिना आलू में डाले अलग नहीं पकाया जा सकता। यह कुछ खट्टा होता है, अतः आलू के साथ पकाने से आलू का स्वाद और भी अच्छा हो जाता है। 'मेथी का साग' कुछ तीता होता है। इसे भी आलू के साथ ही मिलकर पकाते हैं। 'सरसों के साग' को खाने की विशेष प्रथा नहीं है, परन्तु कुछ लोग इसे बड़े शौक से खाते हैं। 'मटर का साग' प्रायः वायुकारक (वादी) होता है, अतः इसका प्रयोग अपेक्षाकृत कम किया जाता है।

परन्तु भोजपुरी क्षेत्र में 'चना के साग' का अधिक प्रचार है। यह गरीबों का साग ही नहीं, बल्कि उनका भोजन भी है। कितने ही निर्धन व्यक्ति इसके शाक को ही पेटभर खाकर अपनी भूख को शान्त करते हैं। चने के पौवे की 'फुनगी' (ऊपरी भाग) को तोड़कर, उसमें पानी डालकर उबालते हैं। उबल जाने पर इसके पानी को निकाल देते हैं। फिर कड़ाही में तेल, मिर्चा, मेथी डालकर इसे छौंक दिया जाता है। पानी के सूख जाने पर और अच्छी तरह से भून जाने पर इसे उतार लिया जाता है। गरीब आदमी इसे तेल में भूनते नहीं। बल्कि उबले हुए साग में थोड़ा तेल और मिर्चा डालकर उसे खूब मींसते हैं और फिर भात या रोटी के साथ इसे खाते हैं। यह मुफ्त में मिलनेवाला गरीबों का साग है।

'नोनी के साग' की पत्तियाँ बड़ी ही छोटी-छोटी होती हैं। यह साग बोया नहीं जाता, बल्कि आप-से-आप खेत अथवा मैदान में उत्पन्न होता है। इसको तेल में छौंककर इसका साग बनाया जाता है, जो खाने में कुछ खटास लिये हुए रहता है। चूँकि यह बिना मोल का ही मिलता है, अतः गरीब लोग इसे बड़े चाव से खाते हैं।

## (२५) गिरवँछ

'अरुआ' के पत्तियों से 'गिरवँछ' की तरकारी बनायी जाती है, जिसके पकाने की प्रक्रिया बड़ी कठिन है। पहिले अरुआ की छोटी, नयी तथा मुलायम पत्तियों को इसके लिए चुना जाता है। बेसन में नमक, मिर्चा, खटाई और गर्म-मसाला डालकर उसे थोड़े-से पानी में घोलते हैं, जिससे वह गाढ़ा रहे। अरुआ की पत्तियों को फैलाकर उसमें यह गाढ़ा बेसन लगा दिया जाता है। फिर उस पत्ती को चारों ओर से लपेट कर उसकी चौकोर आकृति बना लेते हैं। पत्तियों के पर्त कहीं खुल न जायें इसलिए इन्हें अरुआ की पत्ती के डण्ठल से निकाले गये तन्तु से अच्छी तरह से बाँध देते हैं। फिर बटुली में थोड़ा पानी डालकर इसे उबालते हैं। अच्छी तरह से उबल जाने पर इसे तेल में डालकर 'छान' लेते हैं। इस प्रकार बनाया गया 'गिरवँछ' जिसे 'रिक्वँछ' भी कहा जाता है—जिह्वा को बड़ा आनन्द देता है। गरीब लोग उबाले गये 'गिरवँछ' को तेल में नहीं 'छानते' बल्कि उसे यों ही तवे पर रखकर सोंधा बना लेते हैं। 'गिरवँछ' में भी अरुआ के शाक की माँति तेल और खटाई का अंश अधिक होना चाहिए, अन्यथा यह खाने के पश्चात् गले में खुजली उत्पन्न कर देता है। 'गिरवँछ' 'विशेष' भोजपुरी भोज्य पदार्थ (शाक) है, जो सम्भवतः अन्य क्षेत्रों में नहीं बनाया जाता।

## (४) परिच्छेद

### (क) अचार

यह भोजन का एक आवश्यक अंग है। यह भोजन के स्वाद में वृद्धि उत्पन्न करता है और खाने की इच्छा को अधिक उत्तेजित कर देता है। खिचड़ी के सम्बन्ध में तो यहाँ तक कहा गया है कि इसके चार आवश्यक मित्रों, अर्थात् उपादानों में से एक अचार भी है :—

“खिचड़ी के चार इयार।

दही, पापड़, घी, अचार॥”



कहने का आशय यह है कि भोजन में सहायक होने के कारण भोज्य पदार्थों में अचार की स्थिति आवश्यक है।

चतुर तथा 'मिहिथिनि' स्त्रियाँ मिट्टी के मटकों में अचार लगाकर (बनाकर) कई वर्षों तक सुरक्षित रखती हैं और किसी विशेष अतिथि या सम्बन्धी के आने पर ही इसका प्रयोग करती हैं। यों तो अचार अनेक प्रकार के होते हैं, परन्तु निम्नलिखित ही अधिक प्रचलित और व्यवहृत होते हैं। जिन फलों से अचार बनाये जाते हैं, उनकी सूची इस प्रकार है:—

(१) आम, (२) कटहल, (३) बड़हल, (४) मिर्चा, (५) अमड़ा, (६) आँवला, (७) करौना, (८) नीबू, (९) आलू, (१०) करैला, (११) सेमि, (१२) इमिली, (१३) कदम्ब, (१४) अदरक, (१५) मूली, (१६) सूरन और (१७) गोभी।

### (१) अनुच्छेद—अचार

#### (१) आम

जिस प्रकार से फलों में आम सबसे अधिक प्रिय तथा प्रचलित है, उसी प्रकार से इसका अचार अपनी श्रेणी में सर्व-प्रथम स्थान का अधिकारी है। प्रत्येक भोजपुरी घर में आम का अचार प्रतिवर्ष ही थोड़ा-बहुत 'लगाया' (बनाया) जाता है, जिसका कारण उसकी सुलभता ही समझनी चाहिए। इस अचार को लगाने (बनाने) की विधि यह है कि पहिले इसके लिए 'गूदेदार' आम को चुना जाता है। फिर इसे चार टुकड़ों में काटकर इसमें नमक और थोड़ी हल्दी लगाकर एक-दो दिन के लिए छोड़ देते हैं। जब नमक आम के टुकड़ों के अन्दर अच्छी तरह से प्रवेश कर जाता है, तब इन टुकड़ों में गर्म-मसाला भरा जाता है। आम के अचार के प्रधान मसाले ये हैं:—

मिर्चा, अजवाइन, मँगरैल, सरसों, खटाई, राई, पिसी हुई धनिया आदि।

इन सभी वस्तुओं में सरसों का तेल डालकर इन्हें सानते हैं और इस मसाले को आम के इन टुकड़ों में भर देते हैं, फिर इन्हें घूप में एक दिन सुखाते हैं। इसके पश्चात् मिट्टी के किसी मटके में इन्हें रखकर इनमें इतना अधिक सरसों का तेल डालते हैं कि ये उसमें डूब जायें। इस प्रकार कुछ दिनों के बाद आम का अचार तैयार हो जाता है। यदि तेल में यह डुबाया गया रहे, तो दो-तीन साल तक खराब नहीं होता।

कच्चे आम को छीलकर, उसके गूदे को काटकर उसे सिल पर थोड़ा 'कूँच' देते हैं। फिर इसमें नमक, मिर्चा, तेल आदि मिलाकर घूप में रख देते हैं। कूँच या 'कूट' कर बनाये जाने के कारण यह 'कूँचा' कहलाता है। इसका भी अपना एक विशेष स्वाद होता है।

#### (२) कटहल

इसका अचार भी बड़ा स्वादिष्ट होता है। यह दो प्रकार से बनाया जाता है—(१) कच्चा और (२) उबालकर। पहिले कच्चे कटहल का छिलका हटा देते हैं। फिर उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर उसमें अचार का मसाला लगाते हैं। बाद में यह घूप में सूखने के लिए रख दिया जाता है। कुछ सूख जाने पर इसमें तेल डालते हैं। कच्चा कटहल का अचार यद्यपि टिकाऊ तो होता है, परन्तु यह बहुत दिनों में बनकर तैयार होता है और स्वाद में भी उतना अच्छा नहीं होता।

दूसरी पद्धति के अनुसार पहिले कटहल को बड़े-बड़े टुकड़ों में काटकर उन्हें पानी में उबाला जाता है। आधे से अधिक उबल जाने पर इन्हें घूप में थोड़ा सुखा दिया जाता है, जिससे इसका पानी सूख जाय। फिर इसमें अचार का मसाला डालकर फिर थोड़ा घूप में सुखाते हैं। बाद में प्रचुर परिमाण में इसमें तेल डालकर रख देते हैं। इस प्रकार से बनाया गया अचार यद्यपि अधिक दिनों तक नहीं रह सकता, परन्तु स्वाद में यह पहिले की अपेक्षा अधिक उत्तम होता है।

#### (३) बड़हर

इसका अचार प्रायः कच्चे रूप में ही बनाया जाता है। कटहल की ही भाँति इसमें भी मसाला और तेल डाला जाता है। 'सिरके' में भी डालकर इसका अचार तैयार किया जाता है।

#### (४) मिर्चा

इसे भोजपुरी में 'मिरिचा' कहते हैं। मिर्चा दो प्रकार का होता है—(१) हरा मिर्चा और (२) लाल मिर्चा। इस मिर्चा के भी दो भेद होते हैं—(१) 'मिरिचाई' और (२) मिरिचा। मिरिचाई छोटी और पतली होती है, परन्तु स्वाद में यह बड़ी तीती होती है। मिरिचा आकृति में उसकी अपेक्षा बड़ा होने पर भी स्वाद में उससे कम तीता होता है। लाल मिर्चा करीब तीन-चार इञ्च लम्बा और बड़ा तथा मोटा होता है। इसी का अचार बनाया जाता है।



इस मिर्चे को सिरे की ओर से थोड़ा तोड़ करके इसके पेट के भीतर लकड़ी या सींक की सहायता से अचार का सूखा मसाला अच्छी तरह से ठूस-ठूस कर मरा जाता है। इसके पश्चात् इसे घूप में थोड़ा सुखा देते हैं। फिर बाद में इसे तेल में डुबोकर रख देते हैं। यदा-कदा इसे घूप भी दिखाया जाता है, जिसकी गर्मी से यह अच्छी तरह से पक जाता है। आम और कटहल के बाद अचार में इसी का नम्बर आता है। सत्तू के साथ मिर्चे का अचार खूब खाया जाता है।

#### (५) अमड़ा

जब अमड़ा पूर्ण वृद्धि को प्राप्त कर बड़ा हो जाता है, तब इसके भीतर 'जाली' पड़ जाती है। अतः इसके पहिले ही अमड़े को अचार के लिए तोड़ लेना चाहिए। फिर इसे दो टुकड़ों में काटकर उबाल देना चाहिए। बाद में अचार का मसाला डालकर इसे घूप में थोड़ा सुखाया जाता है। फिर इसमें काफी तेल डालकर समय-समय पर घूप में रखते रहते हैं। अमड़ा जितना ही छोटा और बिना जाली का होगा, उसका अचार उतना ही अच्छा होगा।

#### (६) आँवला

यह दो प्रकार का होता है—(१) बड़ा और (२) छोटा। बड़ा आँवला मुरब्बा बनाने के काम में लाया जाता है और छोटे आँवले का अचार बनाया जाता है। पहिले आँवले को पानी में उबाल लेते हैं। फिर इसमें अचार का मसाला, तेल और नमक डालकर खूब मिला देते हैं। बाद में थोड़ी घूप में इसे सुखाते हैं। इसमें सरसों का तेल अधिक नहीं डाला जाता। कुछ स्त्रियाँ उबाले गये आँवले का बीज निकाल देती हैं। शेष बचे हुए आँवले के गूदे में मसाला डालकर इसकी पिण्डी बनाकर सुखा देती हैं और बाद में इसमें काफी तेल डालती हैं। आँवले की यह पिण्डी बहुत दिनों तक खराब नहीं होती।

#### (७) करौना

इसका फल छोटा और गोल होता है। पक जाने पर यह लाल हो जाता है। कच्चे करौने को दो टुकड़ों में काटकर उसमें अचार का मसाला डालते हैं। फिर इसे घूप में सुखाते और तेल डालकर रख देते हैं। घूप में अचार को रखने का केवल यही आशय होता है कि उसका मसाला पक जाय। करौना 'झोंप' में पैदा होता है और छोटे लड़के इसे कच्चा ही तोड़कर खूब खाते हैं। इसकी चटनी भी बनायी जाती है, जो बड़ी स्वादिष्ट होती है।

#### (८) नीबू

इसके अचार को भोजपुरी में 'निमकी' कहा जाता है। नीबू भी दो प्रकार का होता है—(१) कागदी और (२) साधारण। कागदी नीबू में रस बहुत अधिक होता है। इसीलिए लोग इसका अचार 'लगाते' (बनाते) हैं और इसके रस को दाल में 'गारकर' खाते हैं। यह अपेक्षाकृत बड़ा होता है और पकने पर पीला पड़ जाता है। साधारण नीबू छोटा तथा रस-हीन होता है। यह विशेष उपयोगी नहीं होता।

नीबू का अचार दो प्रकार से डाला जाता है। पहिले नीबू को पानी में डुबो देते हैं। चौबीस घण्टे के बाद इसे निकालते हैं। फिर इसके छिलके को किसी पत्थर पर इतना रगड़ते हैं कि वह बिल्कुल घिस जाय। किसी मटके में रखकर, ऊपर से पीसा हुआ नमक डालकर फिर इसे घूप में रख देते हैं। इस प्रकार नमक तथा घूप की गर्मी से नीबू धीरे-धीरे पकने या 'गलने' लगता है। इसके बाद इसमें 'गलगल' नीबू का रस, 'अदरक' (आदी) के टुकड़े तथा हरे मिर्चे को काटकर डाल दिया जाता है। कुछ दिनों के पश्चात् नीबू का स्वादिष्ट अचार तैयार हो जाता है।

कुछ लोग इसके छिलके को पत्थर पर बिना रगड़े ही, इसे चार 'फाँक' (टुकड़े) करके इसमें मसाला डाल देते हैं और धीरे-धीरे घूप में 'पकाते' हैं। परन्तु यह अचार स्वादिष्ट नहीं होता, क्योंकि इसका ऊपरी छिलका अन्त तक नहीं 'गलता'। यही एक ऐसा अचार है, जिसमें तेल की आवश्यकता बिल्कुल नहीं पड़ती। यह बहुत स्वादिष्ट तथा लाभदायक होता है, इसीलिए वैद्य या डॉक्टर रोगी के लिए नीबू का अचार (निमकी) खाने का आदेश देते हैं। यह सस्ते में बिना किसी झंझट के बनाया जा सकता है।

#### (९) आलू

आलू की तरकारी तो बनती ही है। इसका अचार भी बनाया जाता है। यह अधिक दिनों तक टिकाऊ नहीं होता। इसीलिए विवाह आदि अवसरों पर बारातियों को खिलाने के लिए इसे तत्काल तैयार कर लिया जाता है। पहिले बड़े-बड़े



आलुओं को उबालकर उनका छिलका छुड़ा लिया जाता है। फिर उन्हें दो टुकड़ों में काटकर उनमें मसाला, तेल, नमक आदि मिलाया जाता है। इसके बाद इसे धूप में रखकर थोड़ा सुखा देते हैं। फिर तेल डालकर मजे में खाते हैं।

### (१०) करैला

करैला को भी उबालकर ही इसका अचार बनाया जाता है। इसके भी बनाने की वही प्रक्रिया है, जो आलू के अचार की है।

### (११) सेमि

सेमि को करैला की भाँति उबालकर ही इसका अचार बनता है, जिसे तैयार करने की प्रक्रिया ठीक आलू के ही समान है। उपर्युक्त तीनों ही शाकों का अचार अधिक दिनों तक नहीं टिक सकता। अतः भोज आदि के अवसर पर ही इन्हें बनाया जाता है, जो दो-तीन दिनों में ही समाप्त हो जाता है।

### (१२) इमली

पेड़ पर पकी हुई इमली के 'फहुओं' को लेकर, उसमें नमक, मिर्चा और तेल डाल देते हैं। इस प्रकार इसका अचार तैयार हो जाता है। इसमें किसी भी मसाले की आवश्यकता नहीं होती। कभी-कभी इसकी फली में से बीजों को निकालकर आँवले की भाँति इसकी भी पिण्डी बनाते हैं, जिसे तेल में डालकर बहुत दिनों तक सुरक्षित रखते हैं।

### (१३) कदम्ब

अघकचरे कदम्ब के फल को काटकर, इसमें मसाला डालकर अचार बनाया जाता है। इस अचार का विशेष प्रचार नहीं है, क्योंकि यह लघु परिमाण में पाया जाता है।

### (१४) सूरन

इसका अचार बड़ा ही स्वादिष्ट होता है और इसका स्वाद तो मुँह से नहीं छूटता। सूरन का अचार दो प्रकार से बनाया जाता है—(१) कच्चा, और (२) उबालकर। पहिली प्रणाली से अचार बनाते समय सूरन को ओखली में खूब कूटा जाता है। फिर इसमें खटाई, नमक, मिर्चा आदि मसाला डाला जाता है। इसके अचार में सरसों का तेल तथा खटाई प्रचुर मात्रा में होनी चाहिए, अन्यथा खाते समय यह मुँह में खुजलाहट उत्पन्न कर देता है।

दूसरा तरीका सूरन को उबालकर अचार बनाने का है। सूरन को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेते हैं, फिर उन्हें पानी में उबालते हैं। थोड़ी देर तक धूप में सुखाने के पश्चात् इनमें पूर्ववत् उन्हीं मसालों तथा तेल-नमक को डाल देते हैं। पहिले तरीके से बनाया गया अचार अधिक टिकाऊ तथा दूसरे प्रकार का अचार अधिक स्वादिष्ट होता है।

### (१५) अदरख

आदी को ही भोजपुरी में 'अदरख' कहा जाता है। इसका अचार अत्यन्त स्वादिष्ट और स्वास्थ्यकर होता है। इसमें न तो तेल की ही आवश्यकता होती है और न मसाले की ही। यह बिना किसी झंझट के ही एक-दो घण्टे में तैयार हो जाता है।

अदरख को पहिले छीलते हैं। फिर इसे छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर किसी शीशे के बरतन अथवा अमृतधान में रख देते हैं। फिर इसमें 'गलगल' नामक रसदार नीबू का रस निचोड़कर डालते हैं। इसके अतिरिक्त हरे मिर्चों के कुछ टुकड़े तथा मूली को काटकर इसमें थोड़े नमक के साथ छोड़ देते हैं। फिर इस बरतन को धूप में रख देते हैं। दो-तीन घण्टों के अन्दर ही इसका अचार तैयार हो जाता है। तीन-चार दिनों के पश्चात् नीबू के रस में पककर अदरख लाल हो जाता है और इसका स्वाद अत्यधिक बढ़ जाता है।

### (१६) मूली

मूली दो प्रकार की होती है—(१) छोटी और (२) बड़ी। छोटी तथा कच्ची मूली भोजन के साथ खायी जाती है, परन्तु बड़ी मूली का उपयोग अचार के लिए ही किया जाता है। पहिले मूली को कद्दूकस में अच्छी तरह से कसते हैं। फिर इसमें



अचार का मसाला, नमक और तेल डालकर घूप में रख दिया जाता है। मसाला के पकते ही मूली का अचार तैयार हो जाता है, जो खाने में जिह्वा को बड़ा आनन्द देता है। अदरक की ही भाँति यह भी जल्दी ही तैयार हो जाता है।

## (२) अनुच्छेद—चटनी

जिस प्रकार से जीवन में हास्य (humour) का होना आवश्यक है, उसी प्रकार से भोजन में चटनी की स्थिति उपादेय है। चटनी के द्वारा बुभुक्षा को तीव्रगति प्राप्त होती है और मनुष्य भोजन को अधिक मात्रा में करने में समर्थ होता है। कुछ लोग चटनी के बड़े शौकीन होते हैं, तथा भोजन के समय नियमित रूप से इसे खाते हैं। जिस प्रकार चतुरंगिणी सेना के चार अंग होते हैं, उसी प्रकार भोजन के भी चार आवश्यक अवयव हैं—(१) तरकारी, (२) अचार, (३) चटनी (४) और 'गोरस'। बहुत-सी स्त्रियाँ चटनी के बिना प्रेम-पूर्वक भोजन ग्रहण नहीं करतीं। इसकी प्रतिध्वनि लोकगीतों में भी सुनाई पड़ती है!—

“दाल खइली, भात खइली, पुड़ी पर तरकारी।

चटनी बिना रुसल बाड़ी, बिन्दू के महतारी॥”

चटनी अनेक प्रकार की वस्तुओं से बनायी जाती है, जिनमें से प्रधान निम्नांकित हैं:—

(१) आम, (२) इमली, (३) कोइता (कैथा), (४) टमाटर, (५) अमरस, (६) करौना, (७) अमड़ा, (८) अमचुर, (९) मूली और (१०) घनिया।

### (१) आम की चटनी

जिस प्रकार आम का अचार बड़ा स्वादिष्ट होता है, उसी प्रकार इसकी चटनी भी जायकेदार होती है। आम की चटनी दो प्रकार की होती है—(१) कच्चे आम की बनायी गयी और (२) खटाई से तैयार की गयी। कच्चे आम को लाकर पहिले उसके छिलके को छीलकर गूदा को चाकू से काट लेते हैं। फिर इसके साथ पुदीने की थोड़ी-सी पत्तियाँ, हरा मिर्चा और नमक को लेकर सिल पर खूब पीसते हैं। इसके पश्चात् इसमें थोड़ा-सा सरसों का तेल छोड़ देते हैं। बस, आम की चटनी तैयार हो जाती है।

यदि कच्चा आम उपलब्ध न हो, तो सूखी खटाई को पहिले थोड़े-से पानी में भिगो देते हैं। फिर इसे सिल पर मिर्चा, पुदीने के साथ पीसते हैं। फिर इसमें थोड़ा पीसा नमक और तेल डाल देते हैं। यदि खटाई भी प्राप्त न हो सके, तो अमचुर को पीसकर इसकी चटनी बनायी जा सकती है। आम के कच्चे टुकड़ों को दाल में डाल देते हैं और वह जब पक जाता है, तब उसको मीसकर तथा उसमें नमक, मिर्चा और तेल डालकर चटनी बनाकर खाते हैं।

### (२) कोइता

इसे 'आलू बोखारा' भी कहा जाता है। कोयता के फल को, जो बड़ा सख्त होता है—को फोड़कर उसका गूदा निकाल लेते हैं। फिर उसमें नमक, मिर्चा डालकर पीसते हैं। कोयता चूँकि स्वयं खट्टा होता है, अतः इसकी चटनी अच्छी बनती है। परन्तु यह अपेक्षाकृत कम उपलब्ध होता है।

### (३) इमली

आम के पश्चात् दूसरा स्थान इमली की ही चटनी का है। कच्ची तथा पककर सूखी हुई—दोनों प्रकार की इमली से चटनी बनायी जाती है। पहिले इमली का बीज निकाल लेते हैं। फिर शेष इमली को मिर्चा के साथ सिल पर पीसते हैं। जो सूखी इमली होती है, उसे पीसने की आवश्यकता नहीं होती। पहिले उसे पानी में घण्टों तक भिगो देते हैं। जब वह काफी 'फूल' जाती है, तब उसे हाथ से मीसकर उसके बीज को निकाल देते हैं। फिर उसमें पीसा नमक, मिर्चा, तेल आदि डालते हैं। इस प्रकार इसकी चटनी तैयार हो जाती है। यह चटनी पतली होती है। ग्रामीण किसान सत्तू के साथ इसे बड़े शौक से खाते हैं।

### (४) टमाटर

कच्चे तथा पके टमाटर की चटनी बनती है, टमाटर को मिर्चा, पुदीना आदि के साथ पीसकर इसमें थोड़ा-सा सरसों का तेल छोड़ देते हैं। बस, यही टमाटर की चटनी है।



## (५) अमरस

कच्चा अमरस बड़ा ही खट्टा होता है। अतः इसे पीसकर चटनी के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है।

## (६) करौना

यह भी 'खटास' में अपना सानी नहीं रखता। कच्ची तथा पक्की दोनों ही अवस्थाओं में यह खट्टा बना रहता है अतः इसकी चटनी खट्टी होने के कारण अच्छी होती है।

## (७) अमड़ा

जब अमड़ा अभी छोटा हो और 'जाली' न पड़ने पायी हो तभी उसकी चटनी अच्छी बनती है। इसे मिर्चा के साथ सिल पर पीसते हैं और नमक, तेल डालकर इसकी चटनी बनाते हैं।

## (८) अमचुर

अमचुर शब्द 'आम्रचूर्ण' का अपभ्रंश रूप है। कच्चे आम का छिलका उतारकर, उसके छोटे-छोटे टुकड़े काटकर उन्हें घूप में सुखा देते हैं। बिल्कुल सूख जाने पर खटाई के इन टुकड़ों को 'ओखली' में कूटकर अथवा 'जाँत' में पीसकर इसका चूर्ण बना लेते हैं, जिसे 'अमचुर' कहा जाता है। इसी अमचुर में पानी डालकर इसे नमक और मिर्चा के साथ सिल पर पीसते हैं। बाद में इसमें सरसों का तेल डालते हैं। इस प्रकार अमचुर की चटनी तैयार हो जाती है। कभी-कभी अमचुर को पीसने की भी आवश्यकता नहीं होती। इसमें तेल, मिर्चा और नमक डालकर शीघ्र ही चटनी बना ली जाती है।

## (९) मूली

मूली और इसकी पत्ती दोनों की चटनी बनायी जाती है। मूली के साथ नमक तथा मिर्चा को सिल पर पीसकर चटनी तैयार की जाती है। परन्तु इसकी पत्तियों के साथ खटाई भी पीसनी पड़ती है। तभी यह स्वादिष्ट बनती है अन्यथा नहीं।

## (१०) घनिया

घनिया की हरी पत्तियों को सिल पर पीसते हैं। फिर इसमें अमचुर, नमक और मिर्चा तथा थोड़ा सरसों का तेल डाल देते हैं। इस प्रकार जो चटनी तैयार होती है, वह बड़ी स्वादिष्ट होती है।

## (३) अनुच्छेद—रायता

भोजन के सहायक उपादानों में अचार और चटनी के बाद रायता का स्थान है। अचार की भाँति रायता अधिक दिनों तक 'टिकाऊ' नहीं होता। यह दो-तीन दिन से अधिक नहीं रखा जा सकता, क्योंकि दही के कारण इसमें अधिक खटास उत्पन्न हो जाती है और बुरी गन्ध आने लगती है। इसीलिए शौकीन लोग प्रतिदिन ताजा रायता बनाते और खाते हैं। रायता साधारणतया निम्नांकित वस्तुओं से बनाया जाता है:—

(१) लौकी, (२) खीरा, (३) बथुआ, (४) प्याज और (५) केला।

## (१) लौकी का रायता

पहिले लौकी को 'हँसुआ' से खूब 'महीन' या पतला चीरते हैं अथवा कद्दूकस में कसते हैं। फिर इसे उबालते हैं। जब यह पक जाता है, तब इसे नीचे उतारकर इसको 'मीस' कर पानी निकाल देते हैं। इसके पश्चात् इसमें खट्टी दही, मूना हुआ गर्म-मसाला, नमक, पीसा हुआ लाल मिर्चा आदि डालते हैं। फिर इसे घूप में थोड़ी देर के लिए रख देते हैं। इस प्रकार तैयार किया गया लौकी का रायता बड़ा स्वादिष्ट होता है। इसके लिए खट्टी दही का होना अत्यन्त आवश्यक है। यह रायता तीन-चार दिन से अधिक नहीं रखा जा सकता।

## (२) खीरा का रायता

इसका रायता बड़ी जल्दी ही तैयार हो जाता है। पहिले खीरा को कद्दूकस में कसकर खूब पतला बना लेते हैं। फिर इसमें खट्टी दही, मूना हुआ गर्म-मसाला, पीसा हुआ मिर्चा और नमक डालते हैं। इस प्रकार यह तैयार किया जाता है।



लौकी के रायते की भाँति इसे उबालने की आवश्यकता नहीं पड़ती। खीरा का रायता बड़ा स्वादिष्ट होता है और कुछ मिनटों में ही तैयार किया जा सकता है।

### (३) बथुआ का रायता

बथुआ के शाक को पहिले अच्छी तरह से उबालते हैं। जब यह पक जाता है, तब इसके पानी को निकाल देते हैं। फिर इसमें पूर्वोक्त मसालों और दही तथा नमक को डालकर रायता तैयार करते हैं।

### (४) प्याज का रायता

प्याज को कद्दूकस से कसकर पतला कर लेते हैं। फिर इसमें दही, नमक, मसाला आदि मिलते हैं। इसमें मिर्चा नहीं डाला जाता; क्योंकि यह स्वयं कुछ तीता और कुछ कड़ुआ होता है। इसे उबालने की आवश्यकता नहीं होती।

### (५) केला का रायता

पूर्वोक्त रायते की भाँति केला का रायता नमकीन न होकर मीठा होता है। पके हुए केले की फली को लेकर उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में काटते हैं। फिर इसमें मीठी (खट्टी नहीं) दही और थोड़ी-सी चीनी डाल देते हैं। फिर तीनों को एक-दूसरे के साथ अच्छी तरह से मिलते हैं। इस प्रकार केले का मीठा रायता बनकर तैयार हो जाता है। परन्तु इसे सर्वसाधारण जनता नहीं खाती। धनी तथा शौकीन लोग ही इसे व्यवहार में लाते हैं।

## (४) अनुच्छेद—खटमिट्ठी

यह भी एक प्रकार की चटनी ही है, परन्तु इसमें गुड़ या चीनी डालने के कारण खट्टी के साथ ही यह मीठी भी लगती है। इसीलिए इसे 'खटमिट्ठी' नाम से पुकारा जाता है। यह प्रधानतया तीन चीजों से बनायी जाती है:—

(१) आम, (२) इमली और (३) टमाटर

(१) आम की खटाई को पहिले पानी में भिगो देते हैं। जब यह काफी फूलकर मुलायम हो जाती है, तब इसे हाथों से मलते हैं। फिर चीनी या गुड़ का पाग बनाकर इसमें छोड़ देते हैं। इसके बाद मिर्चा तथा अन्य आवश्यक मसाला इसमें डालते हैं। कुछ लोग किसमिस तथा छुहारे के टुकड़ों को इसमें छोड़ देते हैं। दो-चार दिन तक धूप में रख देने के पश्चात् इसे प्रेमपूर्वक खाया जा सकता है।

(२) इमली को पहिले पानी में भिगो देते हैं। इसके फूल जाने पर हाथ से मलकर इसके बीज को निकालकर फेंक देते हैं। फिर कड़ाही में तेल, मिर्चा, जीरा डालकर इसे छौंक देते हैं। तत् पश्चात् इसमें गुड़ या चीनी का 'पाग' डालकर दोनों को खूब आग पर पकाते हैं। यही इमली की खटमिट्ठी है।

(३) टमाटर—पहिले इसे पानी में उबालते हैं, फिर इसका छिलका छुड़ाकर फेंक देते हैं। बाद में इसे हाथ से खूब मलकर घी में जीरा, मिर्चा डालकर छौंकते हैं। फिर इसमें चीनी डालकर इसे खूब आग पर पकाते हैं। जब चीनी टमाटर में अच्छी तरह से समाविष्ट हो जाती है, तब इसे उतार लेते हैं। इस प्रकार टमाटर की खटमिट्ठी तैयार हो जाती है।

### मुरब्बा

इसको विशेष रूप से जलपान के लिए बनाया जाता है। आंवला और 'श्रीफल' के 'मुरब्बे' में पहिला अधिक प्रिय तथा प्रचलित है। मुरब्बा कहने से आंवले के मुरब्बे का ही बोध होता है। मुरब्बा बनाने के लिए बिना रेशेवाले बड़े-बड़े आंवले ही उपयोगी होते हैं। इन मुरब्बों को लेकर चाकू या काँटेदार चम्मच से इनको 'गोमते' हैं। जिससे चीनी का रस इसके भीतर तक प्रविष्ट हो जाय। फिर उस आंवले को पानी में उबालते हैं। इसके पश्चात् चीनी का गाढ़ा 'पाग' बनाकर उसमें इनको डुबो दिया जाता है। कुछ दिनों के पश्चात् आंवला, चीनी के रस को अच्छी तरह से 'पी' लेता है। फिर इस मुरब्बे का उपयोग शौक से जलपान के लिए किया जाता है। इसकी 'तासीर' बड़ी ठण्डी होती है, अतः गर्मियों में इसका प्रयोग विशेष रूप से लाभदायक तथा प्रिय होता है।

'श्रीफल' का मुरब्बा 'आंव' से पीड़ित व्यक्तियों के लिए विशेष गुणकारी होता है। कच्चे श्रीफल को कई टुकड़ों में काटकर उसे उबालते हैं। जब वह अच्छी तरह से उबल जाता है, तब उसमें चीनी का गाढ़ा पाग बनाकर डाल देते हैं। कुछ दिनों के बाद यह मुरब्बा तैयार हो जाता है।



## (५). परिच्छेद--मिष्ठान्न

भोजपुरी में मिष्ठान्न को 'मिठाई' कहते हैं। यों तो मिठाई सभी को अच्छी लगती है, परन्तु बच्चे इसके बड़े प्रेमी होते हैं। परदेश से आनेवाला पिता अपने बच्चों के लिए मिठाई लेकर घर आता है। भाई अपनी बहिन से मिलने जाते समय झपोली में भरकर मिठाइयाँ ले जाता है। घर में अतिथि-अभ्यागत के आ जाने पर मिठाई से उसको जलपान कराया जाता है। विवाह के अवसर पर बारात में आनेवाले बारातियों को भरपेट मिठाई खाने को दी जाती है। इस प्रकार प्रत्येक अवसर पर स्वागत-सत्कार तथा बालकों के मनोरञ्जन के लिए मिठाई की आवश्यकता पद-पद पर प्रतीत होती है।

भोजपुरी मिठाइयाँ आटा, बेसन, चावल, चीनी, और गुण आदि के सम्मिश्रण से बनायी जाती है। यों तो इनकी संख्या बहुत है, परन्तु यहाँ केवल प्रधान-प्रधान मिठाइयों का ही संक्षिप्त वर्णन किया जाता है, जो निम्नांकित है:—

(१) टिकरी, (२) जलेबी, (३) पटउरा, (४) बतासा, (५) लकठो, (६) बुनिया, (७) खुरुमा, (८) अनरसा, (९) मनरसा, (१०) गाटा, (११) कुटकी, (१२) लड्डू, (१३) पेड़ा, (१४) खजुली, (१५) गुलाबजामुन।

## (१) टिकरी

भोजपुरी मिठाइयों में 'टिकरी' और 'जलेबी' बहुत प्रसिद्ध हैं। जिस दूकान पर जाइये ये दोनों मिठाइयाँ अवश्य ही उपलब्ध होंगी। टिकरी बनाने की विधि यह कि आटे को सानकर घी में खूब भूना जाता है। फिर एक रुपये के बराबर बड़ी उनकी लोइयाँ बनाकर घी में उसे पकाते हैं। फिर चीनी का गाढ़ा पाग बनाकर उसमें टिकरी को डुबो देते हैं। पाग के सूख जाने पर टिकरी तैयार हो जाती है। टिकरी का आटा जितना ही अधिक घी में भूना जाता है, वह उतना ही अधिक स्वादिष्ट होता है। यह दस-पन्द्रह दिन तक रखी रहने पर भी खराब नहीं होती। अतः अतिथियों के जलपान कराने में इसका उपयोग विशेष रूप से किया जाता है।

## (२) जलेबी

यह बड़ी ही स्वादिष्ट मिठाई है। बच्चे इसे खाने के लिए बड़े लालायित रहते हैं। जलेबी के आटे को सानकर दो-तीन दिन तक उसे यों ही छोड़ देते हैं। फिर उसे हाथ से खूब 'फेंटते' हैं। जब उसमें 'तार' बँधने लगता है, तो उस गाढ़े द्रवीभूत पदार्थ को किसी चुक्कड़ या पुरवा में रखकर उसके नीचे छेद कर देते हैं। इसी छेद के द्वारा घी से भरी कड़ाही में उस द्रव को अनेक गोली आकृतियों को बनाते हुए गिराते हैं। इसके पक जाने पर चीनी के बनाये गये 'पाग' की कड़ाही में इसे डुबो देते हैं और लगभग आधे घंटे तक इसे यों ही रहने देते हैं। फिर उसे छनौटे से निकाल लेते हैं। इस प्रकार रस से भरी हुई जलेबी तैयार हो जाती है।

ताजी-ताजी जलेबियों को ही खाने में आनन्द आता है। बासी हो जाने पर इनका रस सूख जाता है, अतः इनमें कोई स्वाद नहीं रहता। इसी कारण जलपान करने के लिए इन्हें टिकरी की भाँति सुरक्षित नहीं रखा जा सकता।

## (३) बतासा

यह चीनी से बनाया जाता है। इसे महीनों तक रखा जाय, तो भी यह खराब नहीं होता। अतः यह जलपान के लिए बड़ा उपयोगी होता है। चीनी को पानी में घोलकर उसे आग पर खौलाते हैं। जब वह काफी गाढ़ा हो जाता है, तब उसका थोड़ा-थोड़ा अंश लेकर नीचे बिछी हुई चादर अथवा किसी कपड़े पर डाल देते हैं। जब यह सूख जाता है, तब इसके छोटे-छोटे बताशे बन जाते हैं। बड़े-बड़े बताशे भी बनाये जाते हैं, जिन्हें सगे-सम्बन्धियों के यहाँ 'करनी' के रूप में भेजा जाता है। गाँवों में जहाँ हलुवाई की दूकानें नहीं होती, वहाँ बताशे को मिट्टी की हंडियों में रखकर अतिथियों के जलपान के लिए सुरक्षित रखते हैं।

## (४) लकठो

बेसन में थोड़ा घी 'मींसकर' उसे सानते हैं। फिर उसे बेलकर उसके छोटे-छोटे लम्बे टुकड़े काट लेते हैं। फिर इसे घी में पकाते हैं। इसके पश्चात् चीनी के गाढ़े पाग में इसे डाल देते हैं। जब पाग सूख जाता है, तब 'लकठो' तैयार हो जाता है। बारातियों को 'मार्ही' और 'लकठों' जलपान करने के लिए दिया जाता है।



## (५) बुनियाँ

यह बेसन की बनायी जाती है। बेसन को गीला सानकर इसे छनवटे के ऊपर रखकर हाथ से मलते या रगड़ते हैं। ऐसा करने से उसके छेदों में से छोटे-छोटे बेसन के दाने घी से भरी हुई कड़ाही में गिरकर पकने लगते हैं। फिर इन्हें कड़ाही में से छनौट से छानकर चीनी के गाढ़े पाग से भरी हुई दूसरी कड़ाही में डाल देते हैं। इसके पश्चात् इन्हें छानकर अलग रख देते हैं। रस से भरी हुई यह बुनियाँ बड़ी स्वादिष्ट होती है।

बारातों में जलपान के लिए बनायी जानेवाली बुनिया बहुत बड़ी-बड़ी होती है। इसे चीनी की पाग में नहीं डालते बल्कि थोड़ा-सा 'पाग' इसके ऊपर छिड़क देते हैं। इस प्रकार थोड़ी सी मिठास इसमें आ जाती है।

## (६) पटउरा

यह सफेद होता है और चीनी से बनाया जाता है। इसकी आकृति कुछ गोली और चपटी होती है। यह बहुत कड़ा होता है। इसमें सफेद तिल अथवा इसके अभाव में कालातिल डाला जाता है। पटउरा के बनाने की विधि कुछ सरल नहीं है। पटउरा जितना ही मुलायम होगा, वह उतना ही अच्छा समझा जाता है। टिकरी की ही भाँति पटउरा अनेक महीनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। यह अतिथियों को जलपान कराने का सुन्दर साधन है। बलिया का पटउरा बड़ा प्रसिद्ध माना जाता है।

## (७) खुरुमा

आटे में थोड़ा घी मलकर उसे कड़ा सानते हैं। फिर उसे बेलकर, चाकू से उसके लम्बे, परन्तु छोटे-छोटे टुकड़े काट लेते हैं। फिर इन टुकड़ों को घी में पकाते हैं। इसके पश्चात् चीनी का गाढ़ा पाग बनाकर इनको उसमें डाल देते हैं। फिर पाग के सूख जाने पर इसे निकाल लेते हैं। इसी को 'खुरुमा' या 'खुर्मा' कहा जाता है। यह अधिक दिनों तक रखने पर भी खराब नहीं होता।

## (८) कुटकी

जिस पद्धति से 'पटउरा' बनाया जाता है, 'कुटकी' भी उसी रीति से बनायी जाती है। कुटकी की आकृति छोटी और गोली होती है। यह बच्चों के मनोरंजन के लिए अच्छी मिठाई है।

## (९) गाटा

गाटा गुड़ से बनाया जाता है, इसीलिए इसका रंग कुछ लाल होता है। यह मिठाई क्या है, बच्चों के मन को बहलाने का एक साधन मात्र है। यह इतनी चिपकनेवाली और 'चीमर' मिठाई होती है कि सरकण्डे के ऊपर इसे लपेटकर लड़के इसको धीरे-धीरे खाते नहीं, बल्कि चाटते रहते हैं। यह बड़ा सस्ता बिकता है।

## (१०) अनरसा

यह चावल से बनाया जाता है। जहाँ अन्य मिठाइयाँ बेसन या आटे से तैयार की जाती हैं, वहाँ 'अनरसा' और 'मनरसा' चावल के द्वारा तैयार किया जाता है। अनरसा को बनाने की सम्भवतः विधि यह है कि चावल को पीसकर आटा बना लेते हैं। फिर इसमें चीनी डालकर इसे सानते हैं। इसके पश्चात् इसे हाथ की हथेली के बराबर गोल और पतला बेलते हैं। बाद में इसे घी में डालकर पका लेते हैं। यही अनरसा है। यह सफेद और स्वच्छ होता है।

इसे सस्ते भाव में बेचने के लिए हलुवाई चावल के आटे में चीनी के स्थान में गुड़ डाल देते हैं और इसे घी में न पकाकर तेल में पकाता है। ऐसे अनरसे का रंग लाल होता है। यह देखने में मद्दा और खाने में स्वादहीन होता है।

## (११) मनरसा

यह भी चावल से बनाया जाता है। इसकी भी बनाने की प्रक्रिया सम्भवतः वही है, जो अनरसा की है; परन्तु दोनों की आकृति में कुछ अन्तर होता है।

## (१२) लड्डू

लड्डू मोजपुरियों की बड़ी प्रिय मिठाई है। 'मोजनमट्ट' लोगों का यह प्राण है। संस्कृत में इसे 'मोदक' कहते हैं। हिन्दी में 'मनमोदक खाना' जो मुहावरा है, वह इसी मोदक की श्रेष्ठता को द्योतित करता है। सम्भवतः ब्राह्मणों को यह



मिठाई बड़ी प्रिय होती है, जैसा कि 'मोदकप्रियाः हि ब्राह्मणाः' उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है। परन्तु ब्राह्मणों को ही नहीं, देवताओं को भी यह लड्डू बहुत पसन्द है। हनुमान् जी को बेसन का लड्डू अच्छा लगता है, तो गणेश जी को मोतीचूर का। सम्भवतः गणेश जी इन्हीं लड्डूओं के खाने से इतने तुन्दिल (तोदइल) हो गये हैं। मंगल के दिन हनुमान् जी को लड्डू चढ़ाया जाता है।

यदि अतिथि-अभ्यागत को जलपान करने के लिए लड्डू दिया जाय, तो इसे वह अपना बड़ा गौरव समझता है। बारातों में तथा अन्य दावतों में भी लड्डू प्रचुर परिमाण में खिलाया जाता है। कहने का आशय यह है कि इस मिष्ठान्न का समधिक गौरव और प्रचार है, एवं यह मानव तथा देवता—दोनों को समान रूप से आनन्द देनेवाली वस्तु है।

लड्डू अनेक प्रकार का होता है; जैसे—

- (१) मोतीचूर का लड्डू
- (२) महीनदाने का लड्डू
- (३) बेसन का लड्डू
- (४) संकर लड्डू
- (५) आटे का लड्डू
- (६) तीसी का लड्डू
- (७) खोवे का लड्डू।

### (१) मोतीचूर का लड्डू

यह लड्डू विशेष रूप से प्रचलित है। यह बेसन से बनाया जाता है। पहिले बेसन को पानी में गाढ़ा घोलते हैं। फिर छनवटे में द्रवरूप गाढ़े बेसन को रख देते हैं। उसके नीचे घी की कड़ाही रहती है। बेसन छनवटे के छोटे-छोटे छिद्रों में से होकर कड़ाही में गिरने लगता है, फिर 'बुनिया' को कड़ाही में से निकाल लेते हैं। इसके बाद इस बुनिया में चीनी का गाढ़ा पाग या सीरा इस अन्दाज से डालते हैं कि बुनिया सारे सीरे को सोख ले। फिर इसमें इलायची, पतला काटा गया पिस्ता आदि डालकर लड्डू बनाते हैं। यही 'मोतीचूर' का लड्डू कहलाता है। जब बुनिया के दाने छोटे-छोट होते हैं और चीनी अपेक्षाकृत कम डाली जाती है, तब इसे 'महीनदाने' का लड्डू कहते हैं। यह अधिक स्वादिष्ट होता है।

कभी कभी हलुवाई बहुत बड़ी-बड़ी बुनिया बनाते हैं और उसमें जानबूझकर आवश्यकता से अधिक चीनी डाल देते हैं। इस प्रकार जो लड्डू बनाया जाता है, वह भी लड्डू ही है; परन्तु घटिया किस्म का है। विवाह के पश्चात् लड़की की विदाई के अवसर पर 'करनी' के रूप में पाव-पाव भर वजन के बड़े-बड़े लड्डू बनवाये जाते हैं, जिनमें बुनिया और चीनी का अनुपात उचित परिमाण में नहीं होता। ब्रह्मभोज में, विवाह के अवसर पर तथा अन्य प्रकार की दावतों में महीनदानेवाला मोतीचूर का लड्डू ही व्यवहार में लाया जाता है। लोग इसे बड़प्रेम से खाते हैं।

### (२) बेसन का लड्डू

मोतीचूर के लड्डू से बेसन के लड्डू का स्वाद बिल्कुल भिन्न होता है, यद्यपि दोनों बेसन से ही बनाये जाते हैं। पहिले कड़ाही में प्रचुर मात्रा में घी डालकर उसमें बेसन को भूना जाता है। भूनते-भूनते जब उसमें से सोंधी गन्ध आने लगती है, तब खूब बारीक चीनी उसमें अन्दाज से डालते हैं। फिर बेसन और चीनी दोनों को खूब अच्छी तरह से एक में मिलाते हैं। फिर पानी तथा घी की सहायता से बेसन का गोल-गोल लड्डू बनाते हैं। यह लड्डू हनुमान जी को बहुत प्रिय है।

### (३) संकर-लड्डू

भोजपुरी 'संकर' शब्द शक्कर का अपभ्रंश रूप है, अतः 'संकर-लड्डू' से अभिप्राय शक्कर अर्थात् चीनी का बना हुआ लड्डू है। यह केवल चीनी से बना हुआ होता है। बेसन की बुनिया से इसका तनिक भी सम्बन्ध नहीं होता। 'मेला-ठेला' तथा 'हाट-बाजार' में इस संकर-लड्डू की बड़ी 'माँग' रहती है। गरीब लोग इसी से जलपान करते हैं और इसे ही देवी-देवताओं पर चढ़ाते हैं। लोक-गीतों में इसका अनेक बार उल्लेख पाया जाता है। कोई बहिन अपने भाई से कह रही है कि 'ए भइया'! तुम मेला अथवा परदेश को जा रहे हो, अतः मेरे लिए संकर का लड्डू जरूर लेते आना। गीत की एक कड़ी इस प्रकार है:—

“ले अइह; ए भइया ! संकर लड्डुइया हो।”



#### (४) आटे का लड्डू

इसे बड़ी आसानी से बनाया जा सकता है, क्योंकि इसमें विशेष चतुरता की आवश्यकता नहीं होती। पहिले आटे को घी में खूब भूनते हैं। फिर उसमें किसमिस, गरी, पिस्ता आदि मेवा डालते हैं। बाद में अन्दाज से चीनी डालकर दोनों को खूब मिलाने हैं। इसके पश्चात् इसमें थोड़ा दूध या पानी डालकर इसका लड्डू बनाया जाता है।

#### (५) तीसी का लड्डू

पहिले तीसी को जाँत में पीसा जाता है। फिर इसे घी में डालकर खूब भूनते हैं। बाद में चीनी और थोड़ा पानी डालकर इसका लड्डू तैयार किया जाता है। तीसी की 'तासीर' चूँकि ठण्डी होती है, अतः इसके लड्डू को विशेषकर गर्मियों के दिनों में खाने की प्रथा है।

#### (६) खोवा का लड्डू

पहिले 'खोवा' को घी में भूनते हैं। फिर जब उसमें सोंधई आ जाती है, तब उसमें अन्दाज से चीनी डाल देते हैं। फिर 'पल्टा' या कलछुल से दोनों को खूब मिलाने हैं। तत्पश्चात् इसके छोटे-छोटे लड्डू बना लेते हैं। शहरों में हरे कच्चे चने का लड्डू बनाते हैं, जिसको 'कचरी' का लड्डू कहते हैं। गाँवों में इसके बनाने की प्रथा नहीं है।

#### (१३) पेड़ा

गाँवों में जो पेड़ा बनाया जाता है, वह उतना स्वादिष्ट नहीं होता, जितना शहर में बनाया गया पेड़ा। इसका कारण यह है कि जहाँ शहरी पेड़े में 'खोवा' की अधिकता रहती है, वहाँ ग्रामीण पेड़ा में चीनी की ही प्रधानता रहती है। फिर गाँवों में 'खोवा' को अच्छी तरह से भूनते भी नहीं हैं। इसमें चीनी की प्रचुरता होने के कारण खोवा का स्वाद नष्ट हो जाता है। किसी अतिथि को 'पेड़ा' खिलाना बड़े ही सम्मान की वस्तु मानी जाती है।

#### (१४) खजुली

इसे खाजा का छोटा रूप समझना चाहिए। इसके बनाने की विधि वही है, जो खाजा की है। खजुली बड़ी मुलायम और मीठी होती है। बच्चे इसे प्रेम से खाते हैं।

#### (१५) गुलाबजामुन

इसे गाँवों में 'रसगुल्ला' भी कहा जाता है। चूँकि इस मिठाई में रस भरा रहता है। अतः इसका 'रसगुल्ला' नामकरण सार्थक है। यह जामुन के समान लम्बी और रंग में गुलाबी होती है। अतः इसका 'गुलाबजामुन' नाम उचित ही है। मिठाई मैदा और खोवा को एक साथ मिलाकर और घी में पकाकर बनायी जाती है। फिर इसे चीनी के पाग में डाल देते हैं। जब यह चीनी के रस को सोख लेती है, तब इसे खाया जाता है। यह बहुत मीठी और स्वादिष्ट होती है।

### (६) परिच्छेद

#### फल

भोजपुरी क्षेत्र में अनेक प्रकार के फल उपलब्ध होते हैं। आम तथा अमरूद के बड़े-बड़े बगीचे, फलवारी में लगाये गये नीबू, अनार और बेर के पेड़, कुटियों को सुशोभित करनेवाले कदली के वन और वर्षा में अपनी बहार दिखलानेवाली कदम्ब की गाँछ भोजपुरियों की फल-प्रियता के प्रमाण हैं। बिहार के छपरा जिले में सोनपुर के आस-पास केला की अनन्त पंक्तियों तथा लीची एवं आम के पेड़ों को देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि सारी पृथ्वी फलवती हो गयी है, इस प्रदेश में व्यवहार में लाये जानेवाले फलों की संख्या बहुत अधिक है, जिनमें कुछ प्रसिद्ध फल निम्नांकित हैं:—

(१) आम, (२) जामुन, (३) कटहल, (४) बड़हल, (५) नीबू, (६) नारंगी (७) अनार, (८) केला, (९) इमली, (१०) बेर, (११) कदम्ब, (१२) पपीता, (१३) लीची, (१४) फालसा, (१५) शहतूत, (१६) मकोई, (१७) बेल, (१८) शरीफा, (१९) ककड़ी, (२०) फूट, (२१) खरबूजा, (२२) तरबूजा, (२३) खीरा, (२४) कन्द, (२५) सुथनी, (२६) गाजर, (२७) सिंघाड़ा, (२८) भटकोआ, (२९) खजूर, (३०) तरकुल, (३१) गोदा, (३२) कोइता, (३३) गूलरि, (३४) अमरूद, (३५) अमरस, (३६) अमड़ा, (३७) बरगद, (३८) आँवला, (३९) कोइना।



भोजपुरी क्षेत्र में जितने फल पैदा होते हैं, उनको साधारणतया चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। यद्यपि यह वर्गीकरण बहुत वैज्ञानिक नहीं है, परन्तु सुविधा की दृष्टि से इनको निम्नांकित श्रेणियों में विभाजित करना उचित होगा। :—

- (१) पेड़ में लगनेवाले फल—जैसे—आम, जामुन, कटहल, बेर आदि।
- (२) जमीन की सतह पर बेल में फलनेवाले—जैसे—ककड़ी, खरबूजा, तरबूजा आदि।
- (३) जमीन के नीचे पैदा होनेवाले—जैसे—कन्द, सुथनी, गाजर आदि।
- (४) पानी में पैदा होनेवाले—जैसे—सिंघाड़ा।

इन उपर्युक्त श्रेणियों के फलों में प्रथम वर्ग में उपलब्ध फलों की संख्या सबसे अधिक है और अन्तिम वर्ग में केवल एक ही फल प्राप्त होता है।

### (१) आम

यदि आम को भोजपुरी क्षेत्र के फलों का राजा कहें, तो यह उक्ति सत्य से दूर नहीं होगी। वास्तव में आम अधिका, सुलभता और सुस्वादुता की दृष्टि से सभी फलों का सिरमौर है। भोजपुरी क्षेत्र के किसी भी गाँव में चले जाइये वहाँ आपको आम के बड़े-बड़े बगीचे दिखलाई पड़ेंगे, जिन्हें 'लखराँव' कहते हैं। यह संस्कृत के 'लक्षाराम' (एक लाख पेड़) का अपभ्रंश रूप है। आम के बगीचे को 'अमराई' भी कहते हैं, जिसकी निरुक्ति संस्कृत के 'आम्रराजि' (आम के वृक्षों का समुदाय या पंक्ति) से की जा सकती है।

आम का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इसकी एक-एक शाखाएँ छोटे-मोटे वृक्ष के बराबर होती है। इसके पत्ते को 'पल्लो' कहा जाता है, परन्तु बनारस की बोली में इसकी संज्ञा 'टल्लो' है। आम गर्मियों में फलता है। इसमें जो फूल लगते हैं, इसे 'मोजर' कहते हैं, जो 'मञ्जरी' का ही अपभ्रंश रूप है। जब इसमें छोटे-छोटे फल निकलते हैं, तो वे 'टिकोरा' के नाम से पुकारे जाते हैं, लोकभाषा में इनको 'सरिसई' का अभिधान प्राप्त है। एक लोक-गीत में इसका उल्लेख इस प्रकार से किया गया है :—

“जब आमवाँ में लागेला सरिसई हो रामा।  
तब पियवा करेला लरिकई हो रामा॥”

कुछ अधिक बड़े हो जाने पर इस 'टिकोरे' में गुठली पड़ जाती है। तभी इसकी पूर्ण वृद्धि समझनी चाहिए।

आकृति, रंग और स्वाद के आधार पर आमों के अनेक भेद होते हैं और इनका नामकरण भी इसी आधार पर किया जाता है :—

### आम के भेद

#### (१) आकृति के आधार पर आमों के नाम

गोलियवा (गोल), लमकोइयवा (लम्बा), चिपुटहवा (चिपटा)।

#### (२) रंग के आधार पर नाम

करियवा (काला आम), सिन्होरियवा (लाल आम), पियरका (पीला आम)।

#### (३) स्वाद के आधार पर नाम

चेफुग्रहवा—जिस आम में केवल रेशे होते हैं और खाने में अच्छा नहीं होता, उसकी उपर्युक्त संज्ञा है।

करिहअहना—इस आम में 'चोप' अधिक होता है और यह खाने में कुछ खट्टा और स्वादहीन होता है।

यों तो आमों के अनन्त प्रकार हैं, जिनका वर्गीकरण करना बड़ा कठिन है, फिर भी इनको दो प्रधान श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—(१) देशी और (२) कलमी। देशी आम छोटे होते हैं। इनमें रस की प्रचुरता होती है और पकने पर पीले पड़ जाते हैं। इनके खाने की विधि यह है कि पहिले इनको रातभर पानी में भिगो दिया जाता है। जिससे इनकी गर्मी निकल जाय। फिर इनके मुख के अग्रभाग को साफ करके उसके 'चोप' को धो देते हैं। आम को पुनः अँगुलियों से दबा-दबाकर उसे 'पुलपुला' बना देते हैं। पश्चात् इसके रस को चूसते हैं।

देशी आम का रस बड़ा पतला और स्वादिष्ट होता है। इसमें पाचन का गुण होने के कारण लोग इसे प्रायः भोजन के उपरान्त चूसते हैं। इसके रस को चूस लेने के पश्चात् इसकी गुठली—जिसे भोजपुरी में 'अँठिली' कहा जाता है—को फेंक देते हैं।

यदि यह देशी आम प्रचुरता के कारण खाने से बच जाता है, तो इसे अँगोखल में कूटते हैं और इसके रस को निकाल-



कर किसी कपड़े पर फैलाकर उसे धूप में सुखाते हैं। इसके सूख जाने पर रस की दूसरी पर्त फिर इस पर फैला देते हैं। इस प्रकार जब यह पर्त मोटी हो जाती है, तब उसे कपड़े पर से हटा लेते हैं। इस प्रकार जो वस्तु तैयार की जाती है, उसे 'अमा-वट' कहते हैं। इसे पानी में भिगोकर प्रायः रोटी के साथ खाते हैं।

कलमी आम बड़ा होता है। इसमें गूदा-ही-गूदा होता है। इसमें गुठली अवश्य रहती है परन्तु बहुत चिपटी, पतली और छोटी। पहिले इसके छिलके को चाकू से छीलकर अलग कर देते हैं। फिर इसके गूदे को चाकू से छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर खाते हैं। यह बड़ा ही स्वादिष्ट और मीठा होता है। कलमी आम को भोजपुरी में 'पेवनी' कहते हैं। बनारस का 'लँगड़ा' लखनऊ का 'दशहरी' और 'सफेदा' प्रसिद्ध कलमी आम हैं।

आम का अचार, चटनी और 'कूँचा' भी बनाया जाता है। कच्चे तथा पके दोनों रूपों में इसका बड़ा महत्त्व है और समानरूप से इसका उपयोग किया जाता है। सचमुच उपयोगिता की दृष्टि से यही हमारा सबसे श्रेष्ठ फल है।

## (२) जामुन

फलों में आम के बाद जामुन का ही स्थान है। इसका पेड़ बड़ा, लम्बा और मोटा होता है, परन्तु इसकी डाली बड़ी कमजोर होती हैं। जामुन का कच्चा फल कुछ सफेद और लाल होता है, परन्तु पक जाने पर यह बिल्कुल काला हो जाता है। जामुन का फल जितना ही काला होगा वह उतना ही अच्छा तथा स्वादिष्ट माना जाता है। इसीलिए भोजपुरी में काली वस्तुओं की उपमा जामुन से दिया करते हैं। जामुन को नमक में 'बोर' कर खाया जाता है। यह बहुत 'पाचक' मानी जाती है। अतः भोजन के पश्चात् इसे लोग, बड़े प्रेम से खाते हैं। जिस जामुन में कुछ रस तथा गुदा नहीं होता, उसे 'कठ जामुन' कहा जाता है। यह निम्नकोटि की होती है। जामुन का सिरका भी बनाया जाता है, जिसे लोग बड़े चाव से पीते हैं। यह पेट के दर्द की अच्छी दवा है।

## (३) कटहल

कटहल के कच्चे फल की तरकारी या अचार बनता है। इसके पके फल को 'कोवा' कहा जाता है, जो पीला-पीला होता है। यह खाने में बड़ा मीठा लगता है। कुछ लोग आम की तरह इसे भर पेट खाते हैं। चूँकि यह पाचन में बड़ा गरिष्ठ होता है, अतः ठीक से पचाने के लिए इसे घी में बोर या लपेटकर खाना चाहिए अथवा इसे खाने के पश्चात् थोड़ा घी पी लेना चाहिए। परन्तु गरीबों की 'उदरदरी' में यह आप-ही-आप पच जाता है। कटहल प्रायः बरसात में ही पकता है, अतः 'कोवा' इन्हीं दिनों में मिलता है।

## (४) बड़हल

इसका वृक्ष और फल—दोनों ही कटहल की अपेक्षा छोटा होता है। बड़हल का फल छोटा और प्रायः गोल होता है। पक जाने पर यह पीला हो जाता है। इसके छिलके में कुछ तुर्शी होती है, परन्तु भीतर का गूदा मीठा होता है। बच्चे बड़हर तोड़कर खूब खाते हैं।

## (५) नीबू

नीबू तीन प्रकार का होता है—(१) कागदी नीबू, (२) गलगल और (३) चकोतरा। कागदी नीबू खट्टा होता है। इसे काटकर इसके रस को दाल में निचोड़कर लोग बड़े प्रेम से खाते हैं। इसका अचार भी डाला जाता है, जिसका उल्लेख यथास्थान किया जायेगा। 'गलगल' नामक नीबू बहुत बड़ा होता है। इसमें प्रचुर मात्रा में रस भरा रहता है। इसलिए नीबू, मूली आदि के अचारों में इसका रस निचोड़कर डाला जाता है। इसका अन्य कोई दूसरा उपयोग नहीं है।

तीसरे प्रकार का नीबू चकोतरा है। यह गलगल की ही भाँति बड़ा होता है, परन्तु उसके ठीक विपरीत इसका रस मीठा होता है। इसको लोग चाव से खाते हैं। पक जाने पर इसका भीतरी भाग लाल हो जाता है। फुलवारी में फले हुए चकोतरे को तोड़कर लड़के खूब खाते हैं। अनन्तचतुर्दशी व्रत के अवसर पर पूजा के साथ मीठे चकोतरे का भी रसास्वादन किया जाता है। कागदी खट्टा नीबू पित्तनाशक है। अतः क्वार (आश्विन) के महीने में इसे विशेष रूप से प्रयोग में लाया जाता है।

## (६) नारंगी

भोजपुरी क्षेत्र में जो नारंगी पैदा होती है, वह साधारण किस्म की होती है। उसमें विशेष रस नहीं पाया जाता।



वह फल के प्रेमी बालकों का मनोरंजन भले ही कर ले, परन्तु अर्थोपार्जन का साधन नहीं हो सकती। यह आकार में छोटी और हरी होती है। यों बूटवल (नैपाल) और सिलहट की नारंगी बड़ी प्रसिद्ध होती है।

### (७) अनार

बगीचों में अनार की शोभा देखते ही बनती है। पक जाने पर इसका रंग लाल हो जाता है और यह आप-ही-आप बीच से फट जाता है। पूर्वी जिलों में जो अनार पैदा होता है, वह साधारण किस्म का होता है। इसके दाने लाल, छोटे तथा रस से रहित दिखाई पड़ते हैं। 'बेदाना' नामक अनार बहुत बढ़िया होता है, जिसके दाने सफेद और बड़े-बड़े होते हैं।

### (८) केला

यह व्यावसायिक रूप में बेंचने के लिए नहीं लगाया जाता, बल्कि शौक से बगीचों में खाने के लिए लगाया जाता है, बम्बई के आस-पास खेतों में केले को रोपते हैं और इसकी खेती की जाती है। इसे प्रचुर परिमाण में पैदाकर बाजार में बेचा जाता है। यह मोटा और लम्बा होता है। पक जाने पर भी 'बम्बईया' केला का रंग हरा ही बना रहता है। परन्तु भोजपुरी केला बहुत छोटा और पतला होता है और पक जाने पर इसका रंग पीला पड़ जाता है। यह स्वाद में चीनी के समान मीठा होता है। अतः इसे 'चीनिया केला' भी कहा जाता है। केले के जिस डण्ठल में हजार फलियाँ होती हैं, वह 'हजारा' कहलाता है।

### (९) इमली

इसका पेड़ बहुत बड़ा होता है। इसीलिए इसमें फल भी अनेक वर्षों के बाद लगते हैं। एक भोजपुरी कहावत से ज्ञात होता है कि तीस वर्षों के पश्चात् इमली के वृक्ष में फल दिखाई पड़ते हैं:—

“पाँचे आम, पचीसे महुआ।  
तीस बरिस पर इमली के फहुआ॥”

इमली का फल सम्भवतः चार-पाँच इञ्च लम्बा होता है। कच्चे रहने पर यह बड़ा खट्टा होता है, परन्तु पक जाने पर इसकी खटास कुछ कम हो जाती है। यह इतने प्रचुर परिमाण में फलता है कि इसके तोड़नेवालों के लिए कोई रोक टोक नहीं होती। नटखट लड़के बगीचे में जाकर इस फल को 'डण्डे' से मारकर खाया करते हैं। इसका फल 'फहुआ' के नाम से पुकारा जाता है। इसकी चटनी, खटमिट्ठी और अचार बड़ा अच्छा बनता है।

### (१०) बेर

इसे भोजपुरी में 'बइरि' कहते हैं। इसका फल छोटा और गोल या थोड़ा लम्बा होता है, जो पकने पर पीला पड़ जाता है। बेर के कुछ फल पकने पर ललाई धारण कर लेते हैं। यह स्वाद में मीठा होता है। अच्छी किस्म के बेर में 'गूदा' होता है, परन्तु जो घटिया बेर है, उसमें इसका नितान्त अभाव पाया जाता है। ऐसे बेर को 'बनबइरि' कहते हैं, जो जंगलों में बहुतायत से पैदा होती है। बेर का पेड़ साधारण ऊँचाई का होता है। परन्तु तीन-चार फीट की ऊँचाईवाली झाड़ियों में एक प्रकार की बहुत छोटी बेर पैदा होती है जिसे 'झरबेरी' कहा जाता है। यह बहुत खट्टी होती है। अतः इसे सुखाकर और कूट करके खटाई (अमचुर) के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है।

### (११) कदम्ब

आम की ही भाँति इसका पेड़ बड़ा होता है। यह बरसात के दिनों में फूलता-फलता है। 'कदम्ब' का फल बिल्कुल गोला होता है। कच्चा रहने पर हरा और पकने पर यह पीला पड़ जाता है। यह खाने में कुछ मीठा और कुछ खट्टा होता है। इसका अचार भी डाला जाता है। बच्चे इसे बड़े प्रेम से खाते हैं। भोजपुरी लोग इसे 'कदम' के नाम से पुकारते हैं।

### (१२) पपीता

इसे भोजपुरी में 'रणमेवा' कहा जाता है। इसका फल थोड़ा लम्बा और बड़ा होता है। यह भी पकने पर पीला पड़ जाता है। कच्चे पपीते का शाक बनाया जाता है। बहुत अधिक पक जाने पर इसका स्वाद नष्ट समझना चाहिए।



अतएव पकने पर कुछ कड़ा रहने पर ही इसे खाना चाहिए। पपीता का पौधा लगाने के एक वर्ष के अन्दर ही इसमें फल आने लगते हैं। यह पाचक तथा पेट को साफ रखता है। अतः लोग इसे बड़े शौक से खाते हैं।

### (१३) लीची

बिहार के छपरा तथा मुजफ्फरपुर जिलों में लीची प्रचुरता से पैदा होती है। इसका पेड़ अपेक्षाकृत छोटा होता है। लीची पकने पर लाल हो जाती है? पहिले इसके छिलके को छुड़ाकर फिर इसका गूदा खाया जाता है। इसमें 'बीया' (बीज) का अंश बड़ा होता है और गूदा का अंश बहुत कम।

### (१४) फालसा

इसका फल मटर के समान छोटा होता है, जो पकने पर काला पड़ जाता है। जामुन के समान फालसा जितना ही काला हो, समझना चाहिए कि वह उतना ही अधिक पका हुआ और स्वादिष्ट है। फालसा का पेड़ छोटा होता है, जिस पर चढ़कर लड़के इसे तोड़-तोड़कर खाते हैं। यह स्वाद में बहुत खट्टा, कुछ 'तुर्श' होता है।

### (१५) शहतूत

इसे भोजपुरी में 'सहतोति' कहा जाता है। फालसा की भाँति इसका भी फल पक जाने पर काला पड़ जाता है? इसके फल की आकृति अँगुलियों के बराबर लम्बी और पतली होती है, जिनमें मिठास और तुर्शी दोनों पायी जाती है। इसकी सस्ती पत्तियों को खाकर जीनेवाले कीड़े बहुमूल्य रेशम का निर्माण करते हैं।

### (१६) मकोइ

इसका फल सुपारी के समान छोटा और गोला होता है, पक जाने पर पीला पड़ जाता है। यह बड़ा मुलायम और रसदार होता है। अतः लड़के इसे बड़े प्रेम से खाते हैं। इसका फल पत्तियों से आवृत रहता है, जिसे हटाकर ही इसे खाया जा सकता है। इसमें बीज होते हैं, परन्तु बहुत ही छोटे-छोटे।

### (१७) अमरूद

भोजपुरी फलों में आम और जामुन के पश्चात् अमरूद का ही नम्बर आता है। यदि आम के बाद इसे दूसरा स्थान प्रदान करें, तो भी कुछ अनुचित न होगा। बगीचों में आम की ही भाँति अमरूद भी प्रचुर परिमाण में पाया जाता है। भोजपुरी क्षेत्र के किसी भी गाँव में चले जाइये, वहाँ आम के साथ अमरूद के भी दो-चार पेड़ आपको अवश्य ही दिखाई पड़ेंगे।

अमरूद दो प्रकार का होता है—(१) कलमी और (२) देशी। कलमी अमरूद का पेड़ बहुत ही छोटा होता है; परन्तु उसके फल बड़े-बड़े होते हैं। कुछ तो वजन में दो-दो सेर तक के होते हैं। इलाहाबाद का अमरूद बड़ा प्रसिद्ध है, जिसमें गूदा अधिक और बीज बहुत कम होता है। यह खाने में सेब की तरह मीठा और स्वादिष्ट लगता है। इसका छिलका बड़ा मुलायम होता है।

देशी अमरूद छोटा होता है। इसमें 'बीया' अधिक और 'गूदा' बहुत कम होता है। इसके छिलके के मोटे होने के कारण इसमें विशेष स्वाद नहीं पाया जाता। यह देशी अमरूद ही अधिक उपलब्ध होता है, अमरूद जब अधपका हो, तभी उसके खाने में आनन्द आता है। अधिक पककर 'गल' जाने पर इसका स्वाद नष्ट हो जाता है।

कुछ अमरूदों का भीतरी भाग (गूदा) लाल होता है और कुछ का सफेद। लाल गूदावाला अमरूद अधिक स्वाद से युक्त होता है। जिस अमरूद के छिलके के ऊपर लाल-लाल धब्बे दिखाई पड़ें, तो समझना चाहिए कि यह उत्तम कोटि का अमरूद है।

### (१८) बेल

इसे भोजपुरी में 'सिरिफल' कहा जाता है, जो संस्कृत के 'श्रीफल' का अपभ्रंश रूप है। बेल का वृक्ष बड़ा विशाल तथा काँटेदार होता है। इसका फल लोटे के समान गोल, कड़ा तथा बड़ा होता है। यह पकने पर पीला पड़ जाता है। बेल के ऊपर का छिलका बड़ा कड़ा होता है, अतः उसे हटाकर भीतर का 'गूदा' खाया जाता है। इसके बीज तथा गूदे में बड़ी चिपक



होती है। गर्मी के दिनों में इसके गूदे का शरबत बनाकर पिया जाता है, जो बड़ा ठण्डा होता है। बेल का मुरब्बा भी बनाया जाता है, जो आँव से पीड़ित रोगी की दवा है।

### (१९) शरीफा

भोजपुरी में यह 'शरीफा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसका पेड़ बहुत छोटा होता है; जिस पर चढ़कर लड़के इसके फल का स्वाद लिया करते हैं। पक जाने पर इसका ऊपरी भाग तो हरा ही बना रहता है, परन्तु भीतरी भाग सफेद हो जाता है। इसमें काले-काले बड़े-बड़े बीज होते हैं। शरीफे का छिलका कड़ा होता है, अतः उसे हटा करके ही भीतर का गूदा खाया जाता है।

### (२०) गोदा

पीपल का पेड़ बड़ा विशाल होता है। इसके पके फल को 'गोदा' कहा जाता है। इसमें कुछ स्वाद नहीं होता है, परन्तु गरीब आदमी अपने पेट की पूजा के लिए इसे बीन-बीनकर खाते हैं। भोजपुरी माताएँ अपने नटखट तथा नालायक लड़कों को शाप देती हुई कहती हैं कि जाओ, गोदा बीन-बीनकर तुम्हें खाना पड़ेगा। "जा गोदा बिनि-बिनि खइव," जिसका आशय यह है कि तुम्हें बेहद गरीबी के दिन बिताने पड़ेंगे। 'गोदा' खाना गरीबी का प्रतीक है। गोदा गोल और कुछ पीला होता है।

### (२१) गूलर

इसका फल 'गोदा' के ही समान छोटा और गोल होता है। पक जाने पर इसमें कुछ लालिमा आ जाती है। इसके भीतर बहुत छोटे-छोटे बीज होते हैं। गूलर का फल खाने में स्वादिष्ट लगता है। पके गूलर में छोटे-छोटे 'मसे' होते हैं। इसी लिए कभी-कभी चिढ़ाने के लिए लड़के कहते हैं। गुलरी में मसा, तिवारी बाबा हँसा यह पक जाने पर प्रचुर मात्रा में नीचे गिरता रहता है, जिसे बीन-बीनकर लोग खाया करते हैं।

### (२२) बरगद का फल

इसके फल को भी 'गोदा' कहते हैं। यह पीपल के फल की अपेक्षा बड़ा होता है। पक जाने पर यह पीला हो जाता है और प्रचुर मात्रा में जमीन पर गिरता रहता है। निर्धन जनता तथा लड़के इसे बीनकर खाते हैं।

### (२३) अमरस

इसका पेड़ बड़ा होता है। पक जाने पर यह भी कुछ पीला पड़ जाता है। यह स्वाद में खट्टा होता है। अतः नमक की सहायता से ही इसे थोड़ा खाया जा सकता है, अन्यथा नहीं। कच्चे अमरस की चटनी बनती है और इसका अचार भी बनाया जाता है। अमरस वह फल है, जो सबके दाँत खट्टे कर देता है।

### (२४) अमड़ा

इसका पेड़ बड़ा होता है, परन्तु फल छोटा और गोल होता है। पक जाने पर भी इसके हरापन में कोई विशेष अन्तर नहीं आता। नमक के साथ 'बोर' कर अमड़ा खाते हैं, जिसका स्वाद बड़ा खट्टा होता है। यह विशेष रूप से अचार डालने के काम में ही लाया जाता है।

### (२५) आँवला

इसका फल गोल और चिकना होता है। इसका स्वाद बड़ा 'कसैला' होता है। परन्तु इसको खाने के बाद पानी पीने पर बड़ा मीठा स्वाद आता है। आँवला विशेषकर मुरब्बा डालने तथा अचार बनाने के काम में आता है। आँवला दो प्रकार का होता है—(१) कलमी और (२) देशी। कलमी आँवला बहुत बड़ा तथा सुन्दर आकृति का होता है। इसका बीज बहुत छोटा तथा इसमें रेशे का अभाव पाया जाता है। इसी आँवले का मुरब्बा बनता है। देशी आँवला छोटा और रेशेदार होता है तथा इसमें गूदा भी अधिक नहीं होता।

### (२६) खजूर

इसका पेड़ ताड़ की अपेक्षा छोटा होता है। इसके सर्वोपरि भाग में, पत्तियों के किनारे इसका फल लगता है, जो प्रचुर



मात्रा में फलता है। इसके फल को खाने का आजकल बड़ा फैशन हो गया है और यह पैकेट में बन्द होकर बाजारों में बिकता है। अब यह गरीबों का नहीं, बल्कि फैशनेबुल तथा धनी व्यक्तियों का फल हो गया है।

### (२७) तरकुल

ताड़-वृक्ष को भोजपुरी में 'तरकुल' कहा जाता है, जो संस्कृत के 'तालीकुल' (ताड़ों का समुदाय) का अपभ्रंश रूप है। तरकुल का वृक्ष प्रायः सभी वृक्षों से लम्बा और पतला होता है। इसके सिरे के केवल ऊपरी भाग में ही पत्तियाँ होती हैं, जो बहुत बड़ी-बड़ी होती हैं। वहीं पर इसका फल भी लगता है। तरकुल का फल बेल से दुगुना-तिगुना बड़ा और गोल होता है। ऊँचाई के कारण इस फल को तोड़ना कठिन है। अतः यह पक जाने पर आप-ही-आप पृथ्वी पर गिर पड़ता है। इसका गूदा बड़ा रसदार होता है, परन्तु उसमें बहुत ही अधिक रेशे होते हैं, जिसके कारण उसके रस को निकालना कठिन होता है। अतः लड़के इसके गूदा में एक छोटी लकड़ी डालकर इसको खूब 'पेरते' हैं और जब पेरने से रस निकलने लगता है, तब उसे जीभ से चाटते हैं। इस फल का आनन्द इसी तरह से लिया जाता है।

### (२८) कौयता

इसे भोजपुरी में 'कँइति' कहते हैं। संस्कृत में इसे 'कपित्थ' कहा जाता है। इसका पेड़ बड़ा होता है तथा इसका फल 'हाकी' के गेंद के समान कड़ा और गोल होता है। कच्चे में भी इसे खाया जाता है, जो स्वाद में खट्टा लगता है। पकने पर इसका स्वाद 'खट मिट्ठा' हो जाता है। इसी लिए विशेष रूप से इसकी चटनी ही बनायी जाती है। कभी-कभी 'अमचुर' भी बनाते हैं।

### (२९) कोइना

महुआ-वृक्ष का फूल महुआ तथा इसका फल 'कोइना' कहलाता है। यह बरसात के दिनों में पकता है और पककर आप-से-आप टूटकर नीचे गिर पड़ता है। पकने पर भी इसका रंग हरा ही बना रहता है। इसके छिलके में जो थोड़ा-सा गूदा चिपका रहता है, उसे गरीब लोग खाते हैं, जो मीठा लगता है। इसका बीज बहुत बड़ा होता है, जिसे फोड़कर, उसकी गरी निकालकर तेल बनाया जाता है, जो 'कोइना का तेल' के नाम से अभिहित किया जाता है।

### (३०) भटकोंआ

यह झाड़ियों में पैदा होनेवाला फल है, जो फालसा के समान बड़ा और गोल होता है। पकने पर यह काला पड़ जाता है। फालसा के स्वाद की अपेक्षा इसका स्वाद घटिया होता है। छोटे-छोटे लड़के इसे कच्चा ही तोड़कर खा डालते हैं। इसमें बीज नाममात्र के लिए ही होता है।

### (३१) ककड़ी

ऊपर जिन फलों का वर्णन किया गया है, वे या तो पेड़ों पर अथवा झाड़ियों में फलते हैं। आगे उन फलों का विवरण उपस्थित किया जा रहा है, जो बेलों (लताओं) में लगते हैं और पृथ्वी की सतह पर रहते हुए फूलते, फलते और पकते हैं। जमीन की सतह पर पैदा होनेवाले इन फलों में ककड़ी और खरबूजा प्रधान हैं।

ककड़ी पतली और लम्बी होती है। ककड़ी जितनी ही अधिक पतली और छोटी होगी, वह उतनी ही अधिक मुलायम होने के कारण स्वादिष्ट होती है। उर्दू के मनचले कवियों ने इसकी उपमा लैला की अँगुलियों और मजनू की पसलियों से दी है।<sup>१</sup> कहने का आशय यह है कि पतलापन ही ककड़ी की विशेषता है।

ककड़ी नमक और काली मिर्च के साथ खायी जाती है। बड़ी और मोटी ककड़ी के छिलके को छीलकर फिर उसे काटकर खाते हैं। बहुत मोटी ककड़ी को छीलकर तरकारी भी बनायी जाती है, जो स्वाद में लौकी के शाक की तरह लगती है।

सत्यनारायण बाबा की कथा में ककड़ी का प्रसाद बाँटा जाता है और व्रत के दिन फल के रूप में इसे खाने के काम में लाते हैं। गरीब आदमी ककड़ी को खाकर अपना पेट भरते हैं और किसी प्रकार अपनी जीवन-यात्रा को चालू रखते हैं।

१. "हैं कौसी प्यारी प्यारी ये आगरे की ककड़ी।

लैला की अँगुलियाँ हैं, मजनू की पसलियाँ हैं।

खाने में हैं मुलायम, ये आगरे की ककड़ी॥"



## (३२) खरबूजा

ककड़ी के समान ही खरबूजा की भी बेल होती है और यह जमीन की सतह पर फैलती है। खरबूजे की आकृति गोल और छोटी होती है। इसका ऊपरी भाग (छिलका) जितना सफेद और धारीदार हो, उतना ही वह अच्छा और स्वादिष्ट समझा जाता है। लखनऊ का खरबूजा बड़ा प्रसिद्ध है, जो खाने में बड़ा मीठा होता है। इसे 'मनेरिया' भी कहा जाता है। खरबूजा को छीलकर, छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर चीनी के साथ इसे शौकीन लोग खाते हैं।

## (३३) फूट

यह भी ककड़ी का ही एक प्रकार है, जो निकृष्ट कोटि का होता है। यह बहुत लम्बा, मोटा और बड़ा होता है। पक जाने पर यह आप-ही-आप बीच में से फट जाता है। यही इसके पकने की सहज पहिचान है। यह खाने में स्वादहीन और मुंह में 'भस-भस'-सा लगता है। मिठास इसमें बहुत ही कम होती है। इसे अधिक खाने से आदमी बीमार पड़ जाता है। यदि 'मनेरिया' उच्चकोटि का खरबूजा है, तो 'फूट' ककड़ी का निकृष्टतम रूप है।

## (३४) तरबूजा

इसे भोजपुरी में 'हिन्दुआना' की संज्ञा प्राप्त है। यह बहुत बड़ा और गोल होता है। इसका वजन कभी-कभी १०-१५ किलो से भी अधिक होता है। ऊपर से इसका रंग हरा दिखाई पड़ता है, परन्तु पक जाने पर इसका भीतरी भाग बिल्कुल लाल होता है। अतः इसके पकने की परीक्षा करने के लिए, खरीदते समय, इसके थोड़े-से अंश को काटकर देख लेते हैं कि अभी इसमें लालिमा आ गयी है या नहीं। इसका फल बड़ा ही रसदार होता है। इसे काटते समय इसमें से पानी चूने लगता है। रेगिस्तान में, जल के अभाव में, तृषित व्यक्तियों के लिए यह फल जीवनदायक सिद्ध होता है। वहाँ इसे 'मतीरा' के नाम से पुकारते हैं।<sup>१</sup> यह खाने में बड़ा मीठा होता है। नदियों की बालूदार तलहटी में ककड़ी, खरबूजा और तरबूजा खूब पैदा होता है।

## (३५) खीरा

इसका फल १०-१२ इंच लम्बा और थोड़ा मोटा होता है। बरसात के दिनों में यह खूब फलता है। इसकी तिताई को मिटाने के लिए इसके ऊपरी भाग को थोड़ा काटकर, इसमें नमक लगाकर इसे खूब मलते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि इससे इसकी तिक्तता लुप्त हो जाती है।<sup>२</sup> इसको छीलकर, टुकड़े में काटकर तथा उसमें नमक और पीसी हुई काली मिर्च मिलाकर खाते हैं, जिससे इसके स्वाद में थोड़ी वृद्धि हो जाती है। इसका रायता भी बनाया जाता है, जो बड़ा स्वादिष्ट होता है।

## (३६) कन्द

तीसरी कोटि के वे फल हैं, जो जमीन के अन्दर पैदा होते हैं, जैसे कन्द, सुथनी और गाजर। इनमें कन्द सबसे अधिक प्रचलित है तथा इसका प्रयोग अधिक किया जाता है। व्रत के अवसर पर कन्द और सुथनी का विशेष रूप से प्रयोग होता है।

कन्द को भोजपुरी में 'कन' कहते हैं। वर्ण के आधार पर यह दो प्रकार का होता है—(१) लाल और (२) सफेद। पहिली प्रकार का कन्द अधिक स्वादिष्ट होता है। कन्द को कच्चा तथा उबालकर—दोनों प्रकार से खाते हैं। परन्तु कच्चे कन्द में विशेष स्वाद नहीं होता। किसी व्रत के दिन कन्द को थोड़े पानी में उबालते हैं। जब यह पक जाता है, तब इसके छिलके को छुड़ाकर या हटाकर प्रेम से खाते हैं। कुछ लोग इसे दूध में 'मीसकर' और इसमें चीनी मिलाकर इसका प्रयोग करते हैं, जिससे यह बहुत मीठा हो जाता है। परन्तु भाड़ में भूना गया कन्द सबसे अधिक स्वादिष्ट, सोंधा और मीठा लगता है। गरीब आदमी कन्द को भोजन के रूप में प्रयोग में लाते हैं। अकाल के समय में कन्द ही इन दुःखिया तथा धनहीन व्यक्तियों का एकमात्र प्राणरक्षक होता है।

१. महाकवि बिहारी ने 'मतीरा' या 'मतीरन' शब्द का प्रयोग अपनी सतसई में करते हुए रेगिस्तान में इसकी उपयोगिता का उल्लेख किया है।

२. हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि रहीम ने इस कथन की ओर निम्नांकित पंक्तियों में संकेत किया है:—

“खीरा सिर से काटिये, मलिये नमक लगाय।

रहिमन करये मुखन को, चाहियत यही सजाय॥”



कन्द का हलुआ भी बनाया जाता है। पहिले इसे पानी में उबाल लेते हैं। फिर इसके छिलके को छुड़ाकर कड़ाही में घी डालकर इसे खूब भूनते हैं। थोड़ी देर के बाद इसमें चीनी डालकर मिलाते हैं। इस प्रकार कन्द का हलुआ तैयार हो जाता है।

### (३७) सुथनी

यह भी कन्द की ही भाँति जमीन के अन्दर पैदा होती है। जहाँ कन्द लम्बा होता है, वहाँ इसकी आकृति गोल होती है। इसके छिलके के ऊपर बड़े-बड़े रेशे रहते हैं, जो इसकी पहचान तुरन्त करा देते हैं। 'सुथनी' विशेष रूप से कार्तिक शुक्ल एकादशी—जिसे देवोत्थान एकादशी कहा जाता है—के दिन खायी जाती है। कन्द के साथ ब्रती के लिए इसका फलाहार करना भी आवश्यक होता है।

सुथनी को उबालकर खाया जाता है। यह बहुत कड़ी होती है, अतः इसके उबालने में बड़ा समय लगता है। उबालने के पश्चात् इसके छिलके को हटा देते हैं, फिर इसे खाते हैं। इसमें कोई स्वाद नहीं होता, अतः चीनी के साथ प्रायः इसे खाया जाता है। उबालकर छिलका हटा देने पर इसका रंग सफेद होता है, जो नेत्र-सुखद होने पर भी जिह्वा को आनन्द नहीं देता।

### (३८) गाजर

इसे भोजपुरी में 'गजरा' कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है—(१) काला और (२) पीला (गेरुअ)। काला गाजर लम्बा और मोटा होता है, परन्तु पीला गाजर छोटा और पतला होता है। दूसरे प्रकार का गाजर देखने में तो सुन्दर अवश्य लगता है, परन्तु इसमें काले गाजर के समान 'मिठास' नहीं होती। अतः गाँवों में काले गाजर को ही खाने का अधिक प्रचार है। गाजर को कच्चा और उबालकर दोनों प्रकार से खाते हैं। इसे भाड़ में भी भूनकर खाने की विधि है। गाजर का हलुआ और खीर दोनों बनाया जाता है, जिसके बनाने की प्रक्रिया व्ययसाध्य तथा श्रमसाध्य है।

### (३९) सिंघाड़ा

सिंघाड़ा ही ऐसा अकेला फल है, जो पानी में पैदा होता है। इसकी बेल को पानी में लगा देते हैं, जो स्वयं आपसे-आप धीरे-धीरे फैलती जाती है। इसका फल छोटा, हरा, नोकीला और कुछ गोला होता है। जब तालाब में यह खूब फलने लगता है, तब छोटी-छोटी डेगियों पर बैठकर कुँजड़े इसे तोड़ते हैं।

सिंघाड़ा कच्चा और उबालकर दोनों ही प्रकार से खाया जाता है। पहिले इसके छिलके को—जो हरा और कुछ मोटा होता है—चाकू से काटकर हटा देते हैं, फिर इसके सफेद अंश को बड़े प्रेम से खाते हैं। यह ब्रती व्यक्तियों का, कन्द की ही भाँति, आवश्यक फलाहार है। इसे पानी में डालकर उबालते हैं, फिर इसके छिलके को छुड़ा देते हैं। इसके पश्चात् चीनी की सहायता से इसका फलाहार करते हैं। कच्चे सिंघाड़े का भुजिया शाक भी बनाया जाता है, जो बड़ा स्वादिष्ट होता है। यह गरीबों का जलपान भी है और भोजन भी।

इसका हलुआ भी बनाया जाता है, जो ब्रत की पारणा के रूप में प्रयुक्त होता है। इसके छिलके को हटाकर इसे खूब धूप में सुखाया जाता है। सूख जाने पर इसे जाँत में पीसकर आटा तैयार करते हैं। फिर सूजी की भाँति इसका हलुआ बनाया जाता है, जो रंग में थोड़ा लाल होता है। गीले हलुए को थाली में फैला देने पर यह जम जाता है। फिर चाकू से काटकर, इसके छोटे-छोटे टुकड़े बना लेते हैं और उन्हें बड़े प्रेम से खाते हैं।

## (७) परिच्छेद

### पेय पदार्थ

भोजपुरी क्षेत्र में किसी व्यक्ति के स्वागतार्थ या तो जलपान करने के लिए कोई वस्तु उसे खाने को दी जाती है अथवा उसके सामने कोई पेय पदार्थ पीने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। इन पेय पदार्थों की गणना निम्नांकित रूप में की जा सकती है :—

(१) शरबत, (२) सीरा, राब, ठोपारी, महिया, (३) कचरस, (४) देहाती लस्सी, (५) अमझोर, (६) श्रीफल का शरबत, (७) दूध, (८) दही, (९) मट्ठा, (१०) ठंडई।

### (१) शरबत

जिस प्रकार आजकल पेय पदार्थों में चाय सबसे अधिक प्रिय और प्रचलित है, उसी प्रकार से भोजपुरी क्षेत्र में



शरबत—जिसे वहाँ की लोक-भाषा में 'सरबत' कहा जाता है—सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यदि कोई अतिथि आये अथवा कोई अत्यन्त निकट का सम्बन्धी ही आने की कृपा करे, तो उसे बिना किसी संकोच के 'सरबत' पिलाया जाता है। तिलक, विवाह आदि के अवसर पर गर्मी के कारण परेशान (क्योंकि इस क्षेत्र में विवाह प्रायः गर्मियों में ही हुआ करते हैं) बारातियों को ठण्डा शरबत पिलाकर शान्त किया जाता है। शरबत द्वारा सत्कार करने का कार्यक्रम बारहों महीने चलता रहता है। यदि कोई अभ्यागत जाड़ों के दिनों में ही आ धमके, तो उसका भी आतिथ्य इसी के द्वारा किया जाता है, यदि यह कहें कि शरबत भोजपुरियों का राष्ट्रीय पेय है, तो इसमें कुछ अत्युक्ति न होगी।

यह शरबत अनेक वस्तुओं से बनाया जाता है—जैसे गुड़, चीनी, बतासा, शक्कर आदि। गुड़ का शरबत सबसे अधिक प्रचलित है। गुड़ को फोड़ कर पानी में डाल देते हैं; फिर उसके 'गल' जाने पर उसे किसी कपड़े से छानकर उसे दो-चार बार एक बर्तन से दूसरे बर्तन में उड़ेलते हैं। फिर गिलास में रखकर अतिथि को पीने के लिए दिया जाता है। गुड़ का शरबत, पुत्री के विवाह में मण्डप 'छाने' के दिन विशेष रूप से पिलाया जाता है। अपनी पुत्री के लिए भावी वर की खोज में घूमनेवाले 'तिलकहरुओं' को भी गुड़ का शरबत पिलाकर, उनका सत्कार किया जाता है।

परन्तु समृद्ध व्यक्ति चीनी का ही शरबत पीते तथा पिलाते हैं। गुड़ का शरबत कुछ काला होता है, परन्तु चीनी का शरबत सफेद, स्वच्छ और स्वादिष्ट होता है। अब चीनी और गुड़ के 'दामों' में विशेष अन्तर न होने के कारण गुड़ का स्थान चीनी लेती जा रही है। देशी चीनी को 'खाँड़' या 'सक्कर' कहते हैं, जो मशीन से न बनाकर हाथ से ही बनायी जाती है। यह पूर्वी क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में तैयार की जाती है। अतः चीनी के स्थान पर प्रधानतया 'खाँड़' का ही शरबत बनाया जाता है। यह तासीर में ठण्डा होता है। यदि घर में 'खाँड़' या 'सक्कर' उपलब्ध न रहा, तो बतासा का ही शरबत बनाकर काम चलाते हैं। सीरा, ठोपारी और राब—जो शक्कर के ही विभिन्न साथी हैं—का भी 'अभावे शालिचूर्ण वा' के सिद्धान्त के अनुसार शरबत बनाकर अतिथि-सत्कार का कर्तव्य निभाया जाता है।

## (२) सीरा, राब, ठोपारी और महिया

ईख के रस को जब बड़े कड़ाहे में डालकर आग पर गर्म करके, गुड़ बनाने का उपक्रम किया जाता है, तब उसकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओं पर सीरा, राब और महिया आदि का निर्माण होता है।

आग में ईख के रस को जब गर्म करते हैं, तब उसकी गंदगी ऊपर आने लगती है। इस गन्दे गाज को छनवटा से हटाकर किसी बर्तन में रख देते हैं और उसे पशुओं को पिला देते हैं। रस की गन्दगी के हट जाने पर फिर उसे गर्म किया जाता है। अब रस कुछ गाढ़ा होने लगता है। इस समय रस के ऊपरी भाग (गाज) को छनवटा से उठाकर किसी बर्तन में रख देते हैं। यही गाढ़ा रस 'महिया' कहलाता है।

इसी रस को फिर और अधिक गर्म किया जाता है। जब वह गुड़ बनने के योग्य हो जाता है, तब उसके पहिले ही इस अधिक गाढ़े ईख के रस को निकालकर किसी बर्तन में रख देते हैं। इसी को 'राब' कहते हैं। 'महिया और राब' दोनों ही ईख के रस से बनाये जाते हैं। इनमें पहिला अपेक्षाकृत कुछ पतला होता है और दूसरा (राब) बहुत गाढ़ा होता है।

गुड़ से जब चीनी बनाने लगते हैं, तब 'ठोपारी' की सृष्टि होती है। पहिले गुड़ के रस को आग में गर्म किया जाता है। जब इसमें गाढ़ापन आने लगता है, तब इसे किसी मिट्टी के नाद में रख देते हैं। इस नाद में एक छोटा-सा छेद करके उसके नीचे कोई पात्र रख देते हैं। इसी छिद्र के मार्ग से गुड़ का गाढ़ा रस ठोप-ठोप (बिन्दु-बिन्दु) करके धीरे-धीरे नीचे के पात्र पर चूता है। ठोप-ठोप चूने के कारण ही इसे 'ठोपारी' कहा जाता है। जिस प्रकार से 'राब' गुड़ की पूर्ववस्था है, उसी प्रकार से 'ठोपारी' को चीनी की पूर्व-अवस्था समझनी चाहिए। 'सीरा' गुड़ का ही द्रवीभूत निकृष्ट रूप है, जिसका आजकल अनेक प्रकार से उपयोग किया जाता है।

भोजपुरी क्षेत्र में 'राब' और 'महिया' को विशेष रूप से खाने की प्रथा है। जब घर में गुड़ अथवा चीनी का अभाव हो जाता है, तब इसका उपयोग शरबत बनाने में भी किया जाता है।

## (३) कचरस

भोजपुरी क्षेत्र में ईख बहुत पैदा होती है। अतः इसके रस को पीने का बड़ा प्रचलन है। गरीब किसान दिन में खेना खाकर तथा ईख के रस को पेटभर पीकर अपनी जीवन-यात्रा को चालू रखता है। ईख को 'पेर' कर सद्यः निकाले गये इसके रस को 'कचरस' कहा जाता है, जो बहुत ही स्वादिष्ट होता है। यदि कचरस में थोड़ा गर्म दूध मिलाकर उसको



पीया जाय, तो उसके स्वाद में और भी वृद्धि हो जाती है। अब तो ईख के ताजे रस को पीने का फैशन शहरों में भी दिखाई पड़ने लगा है। जाड़े के दिनों में जब ईख खूब पैदा होती है—कचरस का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया जाता है।

#### (४) देहाती लस्सी

शहरों में जो लस्सी बनायी जाती है, उसमें चीनी, दही और बर्फ होता है। पहिले चीनी और दही को मथानी से मथकर उसमें बर्फ तोड़कर डाला जाता है। परन्तु देहाती लस्सी में न तो बर्फ होता है—क्योंकि गावों में इसका मिलना कठिन है—और न दही को मथानी से मथने की ही आवश्यकता समझी जाती है। पहिले गुड़ अथवा चीनी का शर्बत तैयार कर लेते हैं। फिर इसमें थोड़ी दही डाल देते हैं। बाद में इसे एक बर्तन से दूसरे में उड़ेलकर खूब मिलते हैं। दही से युक्त इस शर्बत को इसीलिए 'देहाती लस्सी' का नाम दिया गया है। कुछ लोग दही के स्थान पर शर्बत में दूध डालकर भी पीते हैं, जो स्वादिष्ट होता है।

#### (५) अमझोर

यह कच्चे आम से बनाया जाता है। कच्चे आम को पहिले आग में पकाते या उबालते हैं। फिर इसके छिलके को निकाल कर फेंक देते हैं। बाद में गूदे को हाथ से मीसकर 'अँठिली' या गुठली से उसे पृथक् कर लेते हैं। फिर इसमें पानी, थोड़ा नमक और पीसा गया जीरा डालकर इसे पेय के रूप में पतला बना लेते हैं। इसी को 'अमझोर' कहा जाता है। यह स्वाद में बड़ा अच्छा होता है। लू से पीड़ित व्यक्तियों के लिए यह अच्छा दवा है। 'अमझोर' को शहरों में बिकनेवाले 'जलजीरा' के समान ही समझना चाहिए जिसमें पुदीना आदि भी पड़ा रहता है।

#### (६) श्रीफल का शर्बत

श्रीफल जब खूब पक जाता है, तब उसके गूदे को निकालकर पानी में धोले हैं। फिर इसके बीज को निकालकर फेंक देते हैं। बाद में इसे कपड़े से छानते हैं, जिससे उसका 'खूझा' आदि निकल जाता है। फिर इसमें थोड़ी चीनी या शक्कर डालकर इसे धोल लेते हैं, इस प्रकार श्रीफल का मीठा शर्बत तैयार हो जाता है। इसकी 'तासीर' बड़ी ठण्डी होती है। अतः गर्मी के दिनों में लोग इसे बड़े शौक से पीते हैं।

#### (७) दूध

भोजपुरी जनता का सर्वश्रेष्ठ पेय पदार्थ दूध है, इस कथन में कुछ भी अत्युक्ति नहीं समझनी चाहिए। भोजपुरिया जवान गायों और भैंसों को चराता है और उनके दूध को पीकर मस्ती का आनन्द लेता है। दूध दो रूपों में पीया जाता है—(१) धारोष्ण, (२) गर्म किया गया। जब गाय या भैंस दुही जाती है, उस समय उसका दूध बड़ा गर्म होता है। इसी को 'धारोष्ण' दूध कहा जाता है। यह बड़ा पुष्टिकारक और स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। कुछ लोग इसी 'धारोष्ण' दूध को पीते हैं।

दूसरे प्रकार का दूध वह है, जो मिट्टी के किसी छोटे-से पात्र—हँडिया—में रखकर उपले की मन्द-मन्द आँच पर अधिक देर तक गर्म किया जाता है। इस क्रिया को भोजपुरी में 'अँठना' कहते हैं। जब गर्म किये गये दूध में मलाई—जिसे 'साही' कहा जाता है—की मोटी तह पड़ जाती है, तब इसे आग पर से उतार लेते हैं और उसे कटोरा अथवा गिलास में रखकर पीते हैं। कुछ लोग दूध में चीनी मिलाकर इसका प्रयोग करते हैं। परन्तु यह 'अँठा' हुआ दूध इतना मीठा और स्वादिष्ट होता है कि इसमें चीनी की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

भोजपुरी लोक-गीतों में गाय के दूध पीने का उल्लेख प्रचुर रूप में पाया जाता है। विरहा का एक उदाहरण लीजिए—

“हती मुठी रहनी त गइया चरवनी।

पियनी बकेनवा के दूध॥”

प्रायः गाय और भैंस का दूध ही पीने के लिए व्यवहृत होता है। अपनी माता का दूध न पीनेवाले बच्चों को बकरी का दूध पिलाया जाता है, जो गुण में माता के दूध के समान ही गुणकारी तथा हितकारी होता है।

#### गोरस

भोजन में गोरस का एक विशेष स्थान है, जिसके अन्तर्गत दूध, दही और घी है। प्रत्येक किसान के घर



में गाय या भैंस पा ली जाती है, जिसका दूध पीकर भोजपुरिया जवान अपनी जवानी के आगे किसी को कुछ नहीं समझता।

गाय का दूध अधिक पौष्टिक और बुद्धिवर्धक है। भैंस के दूध में घी अधिक होता है, अतः वह शक्तिवर्धक होता है। घर के बच्चे गाय का दूध पीते हैं और जवान भैंस के दूध का उपयोग करते हैं। पहिला दूध पतला होता है और दूसरा गाढ़ा।

### (८) दही

भैंस के दूध को गर्म करके उसकी दही जमायी जाती है। यों गाय के दूध की भी दही जमती है, परन्तु भैंस की दही अधिक स्वादिष्ट और मीठी होती है। यह दही तीन प्रकार की होती है:—

(१) सजाव, (२) छिनुई और (३) मट्ठा। दूध को गर्मकर जो दही जमायी जाती है और जिसमें मलाई ज्यों-की-त्यों रहती है, उसे 'सजाव' कहा जाता है। यह सबसे अधिक मीठी होती है। जब सजाव दही की मलाई 'छीन' लेते हैं अथवा निकाल लेते हैं, तो उसी को 'छिनुई' कहते हैं, अर्थात् मलाई रहित दही। इसी को आजकल शहरों में 'सेपरेटा' कहने लगे हैं। यह दही बहुत सस्ती विकती है और गांवों में विशेषतया इसी का प्रयोग किया जाता है। मलाई निकालने के पश्चात् इसे मथानी से अच्छी तरह से मथते हैं और फिर उसमें थोड़ा पानी डाल देते हैं। जिससे यह पतली हो जाय। इसी के बल पर भोजपुरिया किसान जनेरा और जौ के भात को बड़े मजे में खाता है। घर के बच्चे इसी के सहारे बासी भात 'चटपट' उड़ा डालते हैं।

### (६) मट्ठा

तीसरा दही का प्रकार 'मट्ठा' है, जिसे संस्कृत में 'तक्र' कहते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह बहुत लाभदायक और दीर्घ आयुष्य प्रदान करनेवाला है। इसीलिए कहा गया है कि तक्र (मट्ठा) शक्र (इन्द्र) के लिए भी दुर्लभ पदार्थ है:—

“तक्रं शक्रस्य दुर्लभम्।”

सजाव दही को उसकी मलाई बिना निकाले ही मथानी से खूब मथते हैं। फिर इसमें थोड़ा पानी डाल देते हैं, जिससे यह दही पीने के योग्य पतले द्रव के रूप में हो जाय। इसीलिए दही तो खायी जाती है, परन्तु मट्ठा पिया जाता है। नमक और भूनकर पीसा गया जीरा डालकर पीने से यह बड़ा स्वादिष्ट लगता है।

घी का उपयोग भी भोजपुरिया अपने भोजन में करता है। सजाव दही, को पहिले मथनी से खूब ही मथते हैं, इसके बाद उसमें थोड़ा ठण्डा पानी डालते हैं, जिससे दही के ऊपर तैरता हुआ मक्खन—जिसे भोजपुरी में 'लयनू' कहते हैं—एकत्रित हो जाता है। इस 'लयनू' को बाहर निकालकर किसी बर्तन में रख देते हैं। फिर इसे कड़ाही में डालजब आग पर गर्म करते हैं, तब इसका मट्ठा जल जाता है, और जो शेष बच जाता है, वही घी कहलाता है। विवाह में समधी के लिए पूड़ियाँ इसी घी में बनायी जाती हैं और भात खिलाते समय उनकी दाल में यही घी दिया जाता है।

### (१०) ठण्डई

धनी तथा समृद्ध लोग गर्मी के दिनों में ठण्डई को बड़े चाव से पीते हैं। ठण्डई में गुलाब की सूखी हुई पत्ती, सौफ, खरबूजा का बीज, काली मिर्च आदि पदार्थ होते हैं। इन सब को पहिले पानी में भिगो देते हैं। कुछ फूल जाने पर इनको सिल पर अच्छी तरह से पीसते हैं। फिर इसको चीनी के रस में डालकर कपड़े से छानते हैं। इस प्रकार 'ठण्डई' तैयार हो जाती है। बनारसी लोग इसके साथ भाँग पीसकर इसमें घोल देते हैं और उसे आकण्ठमग्न होकर पीते हैं। परन्तु जो लोग भाँग खाने के अभ्यस्त नहीं हैं, वे केवल ठण्डई को पीकर ही स्वर्गीय सुख का अनुभव करते हैं। जिस प्रकार गुड़ का शर्बत सामान्य लोगों का पेय है, उसी प्रकार ठण्डई उच्चवर्ग के लोगों के पीने की वस्तु है।

### खीर

दूध में चावल को पकाकर उसमें चीनी, किसमिश, इलायची, चिरौंजी, पिश्ता आदि मेवा डालकर जो पदार्थ तैयार किया जाता है, उसे 'खीर' कहते हैं। संस्कृत में इसे 'तस्मै' कहा जाता है। खीर पतला बनाया जाता है, जिससे



चम्मच के द्वारा उसे उठाकर खाया अथवा पीया जा सके। परन्तु यह धनी लोगों का भोजन है और बहुत महंगा सौदा है।

### रसियाव

यदि 'रसियाव' को सर्वसाधारण जनता का खीर कहें, तो कुछ अनुचित न होगा। परन्तु इन दोनों के आकार-प्रकार, रंग-रूप तथा स्वाद में बड़ा अन्तर है। जहाँ खीर में दूध और चीनी का होना अत्यन्त आवश्यक है, वहाँ रसियाव में इन दोनों का अत्यन्त अभाव होता है। रसियाव बनाने की विधि यह है कि गर्म पानी में चावल—वह भी मोटा और उसिना—को डाल देते हैं। जब चावल करीब आधा पक जाता है, तब इसमें गुड़ की 'भेली' को कूटकर डाल देते हैं। जब चावल अच्छी तरह से पक जाता है और सब पानी सूख जाता है, तब इसे 'चूल्हे' पर से उतार लेते हैं। इसी को 'रसियाव' कहते हैं। खीर जितनी पतली होती है, रसियाव उतना ही कड़ा होता है। गुड़ में पकने के कारण इसका रूप काला पड़ जाता है। विवाह के चौथे (चौथारी) दिन दाल की पूरी के साथ रसियाव खाने की बड़ी प्रथा है। ये दोनों अभिन्न सहचर हैं। रसियाव यद्यपि अधिक सुस्वादु भोज्य पदार्थ नहीं है, परन्तु प्रचलित प्रथा के कारण इसे खाना ही पड़ता है।

### उपसंहार

गत पृष्ठों में भोजपुरी जनता के भोजन का संक्षेप में वर्णन उपस्थित किया गया है। भोजपुरी लोगों के प्रधान खाद्य पदार्थ क्या हैं, जलपान के लिए वे किन वस्तुओं का प्रयोग करते हैं, वे किन फलों को खाते और किन तरकारियों को ये दैनिक व्यवहार में लाते हैं, इसका विवरण यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त अपने भोजन को अधिकसुस्वादु तथा रुचिकर बनाने के लिए वे किन साधनों को काम में लाते हैं, इसकी एक झाँकी दिखलायी गयी है। इस प्रकार उनके भोज्य तथा पेय पदार्थों का एक सर्वाङ्गीण विहंगम दृश्य पाठकों के सामने प्रस्तुत किया गया है।

भोजपुरी में यह कहावत प्रसिद्ध है कि भोजन ५६ (छप्पन) प्रकार का होता है। गत पृष्ठों में भोजन के जिन विभिन्न प्रकारों का उल्लेख किया गया है, उनके जोड़ने से यह संख्या ५६ से बहुत आगे निकल जायेगी। इस प्रकार जहाँ तक भोजन की विविधता का प्रश्न है, वहाँ भोजपुरियों का भोजन समृद्ध है। यह बिना किसी संकोच के कहा जा सकता है कि यहाँ की जनता शाकाहारी है और इनके भोजन में वह सादगी, स्वच्छता और पवित्रता है, जो मनुष्य के हृदय में सात्विक भावों का सञ्चार करती है। भगवान् कृष्ण ने ऐसे ही भोजन को सात्विक की संज्ञा प्रदान की है। इसी सात्विक भोजन के कारण भोजपुरी लोग सत्त्व सम्पन्न हैं।

## (८) परिच्छेद

### (१) अनुच्छेद—मादक द्रव्य

भोजपुरी क्षेत्र के निवासी अनेक प्रकार के मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं, जिसमें निम्नलिखित प्रधान हैं:—

- |          |          |           |
|----------|----------|-----------|
| १. शराब  | २. ताड़ी | ३. भाँग   |
| ४. गाँजा | ५. अफीम  | ६. संखिया |

#### (१) शराब

इस समाज के प्रायः निम्नवर्ग के लोग शराब पीते हैं। किसी भी बाजार अथवा कस्बे में 'देशी शराब' की दूकान देखी जा सकती है, जहाँ 'पियक्कड़ों' की भीड़ लगी रहती है। यह शराब प्रायः महुआ को सड़ाकर बनायी जाती है, जिसको 'ठर्रा' कहा जाता है। चावल से भी शराब का निर्माण किया जाता है। परन्तु महुआ की शराब सस्ती और सुलभ होने के कारण इसी का प्रचार अधिक है। उच्चवर्ग के कुछ लोग भी इसका सेवन करते हैं; परन्तु इनकी संख्या गिनी-चुनी है। समाज में मद्यपान निन्दित समझा जाता है। अतः इसका उपयोग लोक-लज्जा के कारण नहीं किया जाता।

#### (२) ताड़ी

भोजपुरी क्षेत्र में 'ताड़ी' का प्रचुर प्रचार उपलब्ध होता है। यों तो ताड़ी सभी स्थानों में प्राप्त होती है, परन्तु बिहार राज्य के शाहाबाद (आधुनिक भोजपुर) जिले में इसके पीने की प्रथा बहुत ही अधिक है। वहाँ तरकुल (तालीकुल) के वृक्ष, जिनसे ताड़ी चुआयी जाती है—लाखों की संख्या में पाये जाते हैं। पासी लोग प्रातःकाल इन २२—मो०



वृक्षां पर चढ़कर ताड़ी की हँडिया उतारकर 'ताड़ीखाना' में ले जाते हैं और वहाँ इन्हें बेंचते हैं। साधारणतया निम्नवर्ग के सदस्यों और तथाकथित अस्पृश्य जातियों के द्वारा इसका प्रयोग अधिक किया जाता है। गाँव में चमार, दुःसाध तथा डोम लोग इसे आनन्द से पीते हैं और इसकी मस्ती में अपने जीवन की कठोरता भुलाये रहते हैं। मुसहर जाति के लोग ताड़ी को भरपेट पीकर बीसियों कोस तक पालकी को ढोते हुए भी थकान का अनुभव नहीं करते। ताड़ी वह मादक पेय पदार्थ है, जिसका सेवन करने से इन लोगों को शक्ति प्राप्त होती है। यह गरीबों का बल और सम्बल है। शराब की अपेक्षा सस्ता, स्वादिष्ट और सुलभ होने के कारण ताड़ी का प्रचार मद्य की अपेक्षा बहुत ही अधिक है।

### (३) भाँग

इस मादक द्रव्य का प्रचार भी कुछ कम नहीं है। चूँकि भाँग मँहगा है और इसके निर्माण करने की प्रक्रिया में बड़ा झंझट है, अतः इसका प्रयोग प्रायः उच्चवर्ग के धनी लोग ही किया करते हैं। यों तो भोजपुरी क्षेत्र में भाँग पीने की प्रथा सर्वत्र पायी जाती है, परन्तु वाराणसी में इसका प्रचार बहुत ही अधिक है। काशी के निवासी सन्ध्या समय गंगा के उस पार अथवा 'बहरी तरफ' चले जाते हैं, जहाँ भाँग बनाकर वे बड़े प्रेम से पीते हैं। बनारसी बोली में इसे 'छानना' कहा जाता है। 'का रजा! आज कहवाँ छनी' का अर्थ है, आज भाँग कहाँ पी जायेगी। जो लोग भाँग की निन्दा करते हैं, उन्हें बनारसी अभिशाप देते हुए कहता है कि:—

“जो विजया की करें बुराई।  
ताहि खायेंगी कालिका माई॥”

कुछ लोग भाँग को सिल पर पीसकर उसका एक गोला बना लेते हैं और उसे ही निगल जाते हैं। चूँकि भोला बाबा (शिवजी) भी इसके शौकीन हैं, अतः उनको आवाहन करते हुए भाँग पीनेवाले कहते हैं:—

“बम भोला लगावऽ गोला।”

इस मादक द्रव्य को पीनेवाले 'भँगेड़ी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। जो अभ्यस्त तथा अनुभवी 'भँगेड़ी' है, वह भाँग का गोला ही निगल जाता है; परन्तु जो शौकीन लोग हैं, वे भाँग को शरबत के रूप में पीते हैं, जिसमें काली मिर्च, इलायची और बादाम आदि भी डाला जाता है। सच तो यह है कि भाँग पीने का मजा इसी आपानक रस में है, जो बड़ा सुमधुर और सुस्वादु होता है।

### (४) गाँजा

कुछ लोग 'गाँजा' पीने के आदी होते हैं। उन्हें जब तक गाँजा पीने को नहीं मिलता, तब तक वे चैन से नहीं रहते हैं। गाँजा को चिलम में आग के ऊपर रखकर पीते हैं। 'गँजेड़ी' गाँजा पीते समय इतने जोरों से 'दम लगाता' है कि आग में लपट उत्पन्न हो जाती है। वह दो-तीन बार स्वयं दम लगाने के पश्चात् दूसरों को पीने के लिए दे देता है। इस प्रकार इसे पीने का क्रम तब तक जारी रहता है, जब तक गाँजा आग में जलकर राख नहीं बन जाता। साधु लोग गाँजा को बड़ी मस्ती के साथ पीते हैं। आजकल हिप्पियों के आगमन के पश्चात् इसके पीने की प्रथा का प्रचुर प्रचार हो गया है। अब तो 'हरे कृष्ण हरेराम' नामक फिल्म में भी इसे स्थान मिल गया है। इस फिल्म के एक गीत की एक कड़ी इस प्रकार है:—

“दम मारो दम, मिट जाये गम।  
बोलो सुबह शाम, हरे कृष्ण हरे राम॥”

गाँजा को 'सुलफा' भी कहा जाता है। ऐसा शायद ही कोई 'उदासी', 'बैरागी', 'नागा' और 'अवधूत' हो, जिसने गाँजा का एक बार दम नहीं लगाया हो। गाँजा बड़ा महँगा बिकता है, अतः निर्धन मनुष्यों के लिए यह सुलभ नहीं है।

इस मादक द्रव्य का प्रयोग 'ओझा', 'सोखा' आदि के द्वारा भूतों को भगाने में विशेष रूप से किया जाता है। भूत-प्रेत आदि की पूजा में प्रेतात्माओं को प्रसन्न करने के लिए इसे प्रदान किया जाता है। त्रिलोकी बाबा की पूजा में गाँजा की प्रधानता रहती है। इस प्रकार इसका उपयोग मनुष्य तथा देवता दोनों के लिए समान रूप से होता है।



## (५) अफीम

इसका प्रयोग बहुत कम लोग करते हैं। अफीम खानेवाले को 'अफीमची' कहा जाता है। जो लोग इसके खाने के अभ्यासी हैं, उन्हें इसे खाये बिना पेट में अन्न नहीं पचता। 'अफीमची' प्रायः निष्क्रिय होते हैं और चारपायी पर पड़े हुए दिन में भी आकाश के तारे गिना करते हैं। गाजीपुर जिले में अफीम की खेती होती है। परन्तु इसकी खेती गवर्नमेण्ट की 'मोनोपोली' है।

## (६) संखिया

यह एक मँहगा मादक पदार्थ है, जिसे प्रायः पान में खाया जाता है। अफीम की ही भाँति यह भी विष है, जिसे थोड़ी भी अधिक मात्रा में खा लेने पर मृत्यु हो सकती है। इसका प्रयोग बहुत कम लोग करते हैं।

## (२) अनुच्छेद—धूम्रपान

### (१) बीड़ी

गाँवों में धूम्रपान की बड़ी प्रथा है। सर्वसाधारण जनता—मजदूर और किसान—प्रायः 'बीड़ी' पीती है, जो 'जंगल में उत्पन्न होनेवाले तेन्दू वृक्ष की पत्तियों से बनाया जाता है। बीस-पच्चीस बीड़ियों को एक साथ बाँधकर बेंचा जाता है, जिसे 'बण्डल' कहा जाता है। चूँकि बीड़ी बड़ी सस्ती और सुलभ है, अतः इसका प्रयोग विशेष रूप से होता है। इस धूम्रपान का इतना अधिक प्रचार है कि पान की छोटी-छोटी दूकानों पर भी बीड़ी को जलाने के लिए एक छोटा दीपक जलता रहता है।

### (२) सिगरेट

गाँवों में इसका उपयोग प्रायः नहीं के बराबर है। अंग्रेजी शिक्षा में दीक्षित प्रायः 'जैण्टिलमैन' ही इसका प्रयोग करते हैं। नौकरी पेशावाले धनिक वर्ग के लोग सिगरेट के बड़े शौकीन होते हैं। वे एक सिगरेट के समाप्त होते ही दूसरे क्षण पुनः नयी सिगरेट जलाकर पीने लगते हैं। ऐसे लोगों को 'चेन स्मोकर' (लगातार सिगरेट पीनेवाला) कहा जाता है। सिगरेट अनेक प्रकार की होती है, जिसमें घटिया तथा बढ़िया दोनों पायी जाती हैं। सिगरेट को जलाने के लिए दियासलाई के अतिरिक्त 'लाइटर' का भी प्रयोग किया जाता है।

### (३) तम्बाकू

यह 'मौलेशेज' से तैयार किया जाता है। यह आकृति में काला होता है। 'हुक्का' पर 'चिलम' चढ़ाकर उसमें थोड़ी आग रख दी जाती है। उसी आग में तम्बाकू को डालकर हुक्का को पीते हैं। हुक्का पीने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन ज्ञात होती है। प्राचीन काल में इन्द्र ने ब्रह्मा जी से पूछा कि पृथ्वी पर सारभूत वस्तु कौन-सी है। इस पर ब्रह्मा जी ने अपने चारों मुखों से चिल्लाकर कहा कि तम्बाकू, तम्बाकू, तम्बाकू, तम्बाकू।

“बिडौजा पुरा पृष्ठवान् पद्मयोनिं।  
धरित्रीतले सारभूतं किमस्ति॥  
चतुर्भिर्मुखैः इत्यबोचत् विधाता।  
तमाखुः, तमाखुः, तमाखुः, तमाखुः॥”

जब विधाता ने ही स्वयं यह घोषणा कर दी है, तब गाँव के लोग इसे पीयें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलों में हुक्का पीने की बड़ी प्रथा है। किसी अतिथि के आने पर उसे हुक्का पीने के लिए देना सम्मान की वस्तु समझी जाती है। गाँवों में यह 'पियनी' के नाम से प्रसिद्ध है।

### (४) खईनी

'खईनी' एक प्रकार के पौधे की पत्ती है। खेत में लगे हुए खईनी के पत्तों को 'गदहा' भी नहीं 'चरता' परन्तु आदमी बड़े शौक से इसका प्रयोग करते हैं। यह 'सुखती' के नाम से भी प्रसिद्ध है। खईनी की सूखी हुई पत्ती में



चूना मिलाकर उसे हथेली पर कुछ देर तक मसलते हैं। फिर थपड़ी से उसे पीटकर उसका चूना प्रायः उड़ा या हटा दिया जाता है। इसके पश्चात् उसे दाँतों और नीचे के होंठ के बीच में स्थापित किया जाता है। गाँव के किसान लोग प्रायः सभी खईनी खाते हैं।

### (३) अनुच्छेद—मुखशुद्धि

#### (१) पान

भोजन के उपरान्त मुख-शुद्धि के लिए लोग पान खाते हैं। अतिथि के आने पर उसे. पान का बीड़ा देना सम्मान तथा आदर का सूचक माना जाता है। वाराणसी में पान खाने की प्रथा अत्यधिक है। बहुत से लोग दोनों गालों के भीतर पान रखकर उसे धीरे-धीरे खाते रहते हैं। संस्कृत के किसी कवि ने—

“ताम्बूलमृक्षगल्लोऽयं, भल्लो जल्पति मानुषः”

लिखकर सम्भवतः किसी पान चाभनेवाले बनारसी का ही वर्णन किया है। यद्यपि ‘मगहिया’ पान प्रसिद्ध है; परन्तु ‘बनारसी पान’ भी सुस्वादु में किसी से कम नहीं होता। शहरी लोग पान में सुरुती डालकर खाते हैं, जो अपनी उत्तमता के कारण बड़ी ही मँहगी होती है।

#### (२) सुपारी

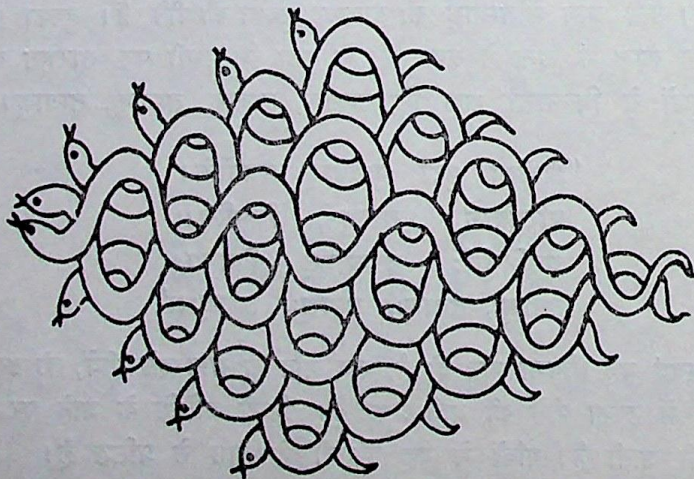
जो लोग पान खाना पसन्द नहीं करते, वे मुखशुद्धि के रूप में ‘सुपारी’ (सुपाड़ी) का टुकड़ा काटकर खाते हैं। वे इन टुकड़ों को मुँह में रखकर धीरे-धीरे ‘चुभुलाते’ रहते हैं।

#### (३) गरी

कुछ शौकीन लोग नारियल की गरी को कद्दूकस में कसकर उसके छोटे-छोटे टुकड़ों का स्वाद लेते हैं। गरी खाने में मीठी लगती है। पान में भी गरी को खाने की प्रथा है।

#### (४) सौंफ

लखनऊ का सौंफ बड़ा छोटा तथा जीरा के समान पतला होता है। भोजन के पश्चात् इसे भी कुछ लोग खाते हैं। परन्तु गरी और सौंफ का प्रयोग सर्वसाधारण जनता नहीं करती। इसे शौकीनों का शौक समझना चाहिए।





## अध्याय ८

# वेश-भूषा

० ०

### (१) अनुच्छेद—पुरुषों के वस्त्र

मनुष्य के गुह्य अंगों के गोपन के लिए वस्त्र का धारण करना अत्यन्त आवश्यक है। जब कपास तथा ऊन से बने वस्त्रों का आविष्कार नहीं हुआ था, उस प्राचीन काल में भी आदिम जातियाँ अपने अंगों को ढकने के लिए पत्तियों तथा वृक्षों की छाल (त्वचा) का प्रयोग किया करती थीं। ज्यों-ज्यों सभ्यता का उत्तरोत्तर विकास होता गया, त्यों-त्यों हमारे परिधान में भी परिवर्तन की आवश्यकता ज्ञात होने लगी।

#### वस्त्रों का महत्त्व

आज आधुनिक सभ्यता के युग में वस्त्रों को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है। परन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिए कि प्राचीन आर्य इसकी महत्ता से अपरिचित थे। मनुष्य को गौरव प्रदान करनेवाली वस्तुओं की सूची में वस्त्रों को भी स्थान दिया गया है।

“विद्यया वपुषा वाचा, वस्त्रेण विभवेन च।

वकारैः पञ्चभिर्युक्तैः नरः प्राप्नोति गौरवम्॥”

वस्त्रों को मानव की योग्यता का प्रधान कारण माना गया है। ऐसा कहा जाता है कि समुद्र ने अपनी कन्या (लक्ष्मी) को विष्णु भगवान् को जो समर्पित कर दिया वह उनके सुन्दर पीताम्बर के कारण ही था।

“किं वाससा नैव विचारणीयं,

वासः प्रधानं खलु योग्यतायाः।

पीताम्बरं वीक्ष्य ददौ तनूजां,

दिगम्बरं वीक्ष्य विषं समुद्रः॥”

इस प्रकार मनुष्य के जीवन में वस्त्रों का स्थान बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

भोजपुरी क्षेत्र के लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्रों को धारण करते हैं, जिन्हें वर्णन की सुविधा के लिए हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(क) पुरुषों के वस्त्र,

(ख) स्त्रियों के वस्त्र और

(ग) बालकों के वस्त्र।

अतः यहाँ सर्व पुरुषों के द्वारा धारण किये जानेवाले वस्त्रों का विवरण पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जाता है।

#### (क) सिर के वस्त्र

##### (१) पगड़ी

साधारणतया भोजपुरी जनता सिर पर कोई वस्त्र धारण नहीं करती। परन्तु विवाह आदि विशेष अवसर पर कुछ लोग ‘पगड़ी’ अवश्य बाँधते हैं। पगड़ी सामान्यतया एक मीटर चौड़ी तथा आठ-दस मीटर या गज लम्बी



होती है, जो प्रायः सफेद कपड़े की बनी होती है। सम्भवतः साफ (स्वच्छ सफेद) कपड़े की बनी होने के कारण ही इसे 'साफा' भी कहा जाता है। पण्डित लोग जो पगड़ी सिर पर बाँधते हैं, वह बहुत बड़ी होती है। इसीलिए व्यंग्य रूप में उन पर कटाक्ष करते हुए कहा गया है कि:—

“बड़ा धोता, बड़ा पोथा।  
पण्डिता पगड़ा बड़ा॥”

अर्थात् पण्डित लोगों की धोती, पोथी और पगड़ी सभी बड़ी होती है। पण्डितों के लिए पगड़ी एक आवश्यक शिरोवस्त्र है। इसके बिना उनका विशाल व्यक्तित्व पूर्णतया प्रस्फुटित नहीं होता। एक लोकगीत में रामचन्द्र के विवाह के अवसर पर राजा दशरथ हाथी पर पगड़ी बाँधकर बैठे हुए चित्रित किये गये हैं।<sup>१</sup>

पगड़ी के ही समान सिर पर धारण के लिए एक दूसरा वस्त्र 'मुरेठा' होता है। सम्भवतः मूँड़—सिर-पर बाँधने के कारण ही इसे 'मुरेठा' की संज्ञा दी गयी है। यद्यपि 'पगड़ी' और 'मुरेठा' में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है; परन्तु आकार-प्रकार की दृष्टि से दोनों में किञ्चित् पार्थक्य अवश्य है। पगड़ी प्रायः सफेद कपड़े की होती है; परन्तु मुरेठा प्रायः पतला (महीन) तथा रंगीन कपड़े का बना होता है।

भोजपुरी वारात में घोड़े की पीठपर चढ़कर बड़ी अदा के साथ अपने घोड़े को 'कदम' की चाल से चलाने-वाले नवयुवक वाराती 'मुरेठा' बाँधकर बड़ी शान के साथ चलते हैं। उनका मुरेठा प्रायः रेशम का होता है, जो रंगीन होने के कारण और भी सुन्दर लगता है। मुरेठा का एक छोर सिर के ऊपर कुछ उठा (खड़ा)-सा रहता है और उसकी दूसरी छोर पीठ पर लटकती रहती है। परन्तु पगड़ी के दोनों छोर बाहर निकले न होने के कारण दिखलाई नहीं पड़ते हैं। सिर पर पगड़ी की बँधवाई कुछ ढीली-ढाली-सी होती है; परन्तु मुरेठा को बड़े ढंग से कसकर सिर पर बाँधा जाता है, जो देखने में बड़ा सुन्दर तथा सुडौल लगता है।

अपनी पुत्री के विवाह के दिन पिता द्वार-पूजा के अवसर पर पीले कपड़े—जो हलदी या पीले रंग में रँगी होती है—की पगड़ी बाँधता है। मिथिला के निवासी मैथिली लोग लाल पगड़ी बाँधते हैं। यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन ज्ञात होती है। पुरातन समय में पुरोहितों द्वारा यज्ञ में लाल पगड़ी बाँधने का वर्णन उपलब्ध होता है। “लोहितोष्णीयाः ऋत्विजः संचरन्ति।”

विवाह करने के लिए जानेवाला वर या दूल्हा भी अपने सिर पर पगड़ी बाँधता है। इसकी पगड़ी का कपड़ा लम्बा तो अवश्य होता है, परन्तु इसकी चौड़ाई प्रायः एक बालिस्त (१२ इञ्च) से अधिक नहीं होती। दूल्हे की पगड़ी का रंगीन होना आवश्यक है। अतएव यह प्रायः पीली या लाल होती है। अतएव यह प्रायः पीली या लाल होती है।

भोजपुरी लोकगीतों में पगड़ी बाँधने का उल्लेख अनेक स्थानों में किया गया है। पगड़ी के सुन्दर ढंग से सिर पर बाँधना भी एक कला है। सभी लोग इसे कलात्मक रीति से नहीं बाँध सकते। पगड़ी कभी-कभी ही सुन्दर रीति से सिर पर बाँधी जाती है। इस सम्बन्ध में यह लोकोक्ति बहुत प्रसिद्ध है:—

“राग, रसोइया, पागरी कभी-कभी बन जाय।”

अर्थात् गाना, रसोई और पगड़ी कभी-कभी ही (सदा नहीं) सुन्दर बन पड़ती है।

भोजपुरी क्षेत्र में आज भी पगड़ी का बड़ा महत्त्व है। यह किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा का प्रतीक समझी जाती है। किसी व्यक्ति के पैरों पर अपनी पगड़ी रखना विनम्रता तथा आत्मसमर्पण का सूचक है। अपनी दीनता की ओर किसी व्यक्ति को द्रवित करके आकर्षित करने का यह अमोघ अस्त्र है। जहाँ पगड़ी बाँधकर चलना प्रतिष्ठा तथा सम्मान का परिचायक है, वहाँ पगड़ी उतारकर किसी के पैरों पर रख देना अपनी दयनीयता को सूचित करता है।

## (२) टोपी

जहाँ पगड़ी वयस्क तथा बूढ़े लोग बाँधते हैं, वहाँ टोपी का प्रयोग लड़कों तथा नवयुवकों के द्वारा किया जाता है। शौकीन नवयुवक सफेद तथा पतले मलमल की बनी हुई टोपी से अपने सिर को सुशोभित करते हैं। चूँकि यह

१. “देवता लोग बरिअतिया जाहू हे; फूल बरिसावत हे।

हथिया पर राजा दसरथ बइठल, बँधले पगड़िया हे॥”



टोपी दो पल्लों (भागों) को सीकर बनायी जाती है, अतः इसे 'दुपलिया' कहते हैं। इसकी चौड़ाई (ऊँचाई) एक इञ्च से अधिक नहीं होती। होली के अवसर पर वारात के समय तथा अन्य उत्सवों पर इसका प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। परन्तु अब गांधी-टोपी के बहुल प्रचार के कारण इसका प्रचलन धीरे-धीरे उठता जा रहा है।

कुछ समय पूर्व छात्रों तथा नवयुवकों के द्वारा गोली तथा काली टोपी का प्रयोग किया जाता था; परन्तु गांधी-टोपी की आँधी ने उसे भी सदा के लिए हवा में उड़ा दिया। जिस प्रकार आजकल 'नेता' का अर्थ होता है खदरधारी कांग्रेसी, उसी प्रकार से अब गांधी-टोपी की ही व्यञ्जना होती है।

अपनी प्रेयसी की प्राप्ति के लिए सज-धजकर जानेवाला दूल्हा एक विशेष प्रकार की टोपी पहिनता है, जो गोली और अधिक ऊँची होती है। यह टोपी वेशकीमती होती है, क्योंकि इसमें जरी का काम किया गया रहता है। इसके साथ ही इसमें बहुमूल्य पत्थर या रत्न जड़े रहते हैं। सारे गाँव में किसी एक ही धनी व्यक्ति के पास यह टोपी होती है और जब किसी के यहाँ लड़के का विवाह होता है, तब उसी व्यक्ति के यहाँ से यह टोपी 'मँगनी' माँगकर लायी जाती है। एक लोक गीत में इस टोपी का उल्लेख पाया जाता है।<sup>१</sup>

### (३) कनटोप

'कनटोप' जाड़े के दिनों में सिर पर लगाया जाता है। इसका प्रयोग प्रायः बड़े बूढ़े और बच्चे किया करते हैं। यह प्रायः ऊनी कपड़े का बनाया जाता है। सिर को ढकता हुआ यह कानों तक लटकता रहता है। सम्भवतः इसीलिए इसे 'कनटोप' (कान+टोप अर्थात् कान की टोपी) कहा जाता है। कान के नीचे तक लटकनेवाले इसके दोनों छोरों में 'बन्द' लगा रहता है। जिन्हें गले के पास लाकर बाँध देते हैं। इस कारण यह कनटोप सिर से नीचे गिरने नहीं पाता। निर्धन मनुष्य सूती कपड़े का ही 'कनटोप' बनाकर पहिनते हैं, जिससे शीत से उनके सिर की रक्षा होती है।

बालकों के लिए कनटोप बड़ा ही उपयोगी है। छोटे-छोटे बच्चों को सर्दी से बचाने के लिए इसे नियमित रूप से उन्हें जाड़ों में पहिनाया जाता है। परन्तु आजकल ऊनी टोपी—जिसे 'मंकी कैप' कहते हैं—प्रचार से कनटोप का व्यवहार धीरे-धीरे कम होने लगा है। परन्तु निर्धन ग्रामीण जनता आज भी इसी का प्रयोग करती है।

### (ख) गले के वस्त्र

#### (१) चादर

पण्डित लोग गले में चादर धारण करते हैं। यह प्रायः सूती तथा सफेद होती है। कुछ विशिष्ट पण्डित रेशमी चादर का भी प्रयोग करते हैं। यह दो प्रकार से प्रयोग में लायी जाती है। इसका प्रधान प्रयोग गले में धारण करना है। कुछ धार्मिक व्यक्ति, जो सिले हुए वस्त्रों को पहिनकर भोजन नहीं करते, वे उर्ध्ववस्त्र के रूप में इसका व्यवहार करते हैं। इसे 'दुपट्टा' भी कहा जाता है। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि पहिले दो पट या वस्त्रों को सीकर इसे तैयार किया जाता था। इसी कारण इसका नाम दुपट्टा (द्वि+पट) अर्थात् दो वस्त्र पड़ गया है। आजकल भी कुछ लोग कपड़े के दो टुकड़ों को एक में सिलाकर इसे बनवाते हैं। परन्तु अब 'मिल' की बनी हुई चादरों के आने के कारण इन सिले हुए दुपट्टों का प्रचार कम हो रहा है। संस्कृत में चादर को 'उत्तरीय' कहते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ है, शरीर के उत्तर अर्थात् ऊर्ध्व भाग में धारण किया जानेवाला वस्त्र।

#### (२) गमछा

साधारण जनता अपने कंधे पर सूती वस्त्र का एक टुकड़ा धारण करती है, जिसे 'अँगोछा' कहते हैं। इस वस्त्र का प्रधान उपयोग स्नान के पश्चात् गीले अंगों को पोंछने (सुखाने) में किया जाता है। शरीर के विभिन्न अंगों

१. "सब सखि परिछसु, दुलहा अलबेला हो।

दुलहा के देखे खातिर लागल बा झमेला हो।

सुन्दर जोड़ाजामा बाटे; टोपी अलबेला हो।"



को पोंछने के कारण ही इस वस्त्र का नाम 'अँगोछा' पड़ गया है, जो 'अंग पोछा' (अंगों को पोंछनेवाला) का अपभ्रंश रूप ज्ञात होता है। यह प्रायः दो-तीन मीटर (गज) लम्बा होता है और पहिनने के प्रयोग में भी लाया जाता है। इसे 'गमछी' या 'गमछा' भी कहते हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति निश्चित रूप से नहीं बतलायी जा सकती। गमछी अँगोछा की अपेक्षा प्रायः छोटी और पतली होती है। देशी करघे पर हाथ से बुना हुआ—हैण्डलूम का अँगोछा बड़ा मजबूत और टिकाऊ होता है। यह गरीबों के लिए धोती और गमछी दोनों का काम देता है। गमछा प्रायः रंगीन (लाल या हरा) होने के कारण यह जल्दी मैला भी नहीं होता। इस प्रकार यह किसानों के लिए बड़े काम का वस्त्र है। अब धीरे-धीरे 'मिल' का बना हुआ रंगीन तौलिया भी गाँवों में प्रवेश करने लगा है। परन्तु अपनी महर्घता और अनुपयोगिता के कारण यह ग्रामीण समाज में समादर प्राप्त नहीं कर सकता। एक लोकगीत में कोई पति अपनी प्रेमिका से कहता है कि धोती तथा गमछा के मैला होने के कारण मैं तुम्हारे पास नहीं आया।<sup>१</sup>

### (ग) शरीर में पहिने जानेवाले वस्त्र

#### (१) कुर्ता

भोजपुरी जनता अपने शरीर में जिस वस्त्र को प्रायः धारण करती है, उसे 'कुर्ता' कहा जाता है। सम्भवतः ६५ प्रतिशत ग्रामीण लोग इसी का व्यवहार करते हैं। यह ग्रामीण जनता का बहुप्रचलित तथा लोकप्रिय वस्त्र है। खेत-खलिहान में, विवाह-शादी के अवसर पर, मांगलिक उत्सवों पर, तथा पर्व और त्यौहार के समय जनता इसी वस्त्र को पहनकर अपना जीवन-यापन करती है। रेशमी, सूती तथा ऊनी सभी प्रकार के वस्त्रों से कुर्ता बनाया जाता है, परन्तु गरीब लोग सूती कपड़े—जो हाथ से बुना हुआ होता है—का ही कुर्ता पहिनते हैं। इस कपड़े को 'मोटिया' या 'गाढ़ा' कहते हैं। इस कपड़े का सूत अपेक्षाकृत मोटा होता है और इसकी बुनाई ढनी या 'गाढ़ी' होती है। इसीलिए इसे उपर्युक्त दोनों संज्ञाएँ प्राप्त हैं। 'मोटिया' का बना कुर्ता बड़ा मजबूत होता है, जो कई वर्षों तक प्रयोग में लाया जा सकता है। साधारणतया कुर्ते का बटन बीच में लगाया जाता है, परन्तु कुछ बूढ़े ग्रामीण लोग बीच में बटन न लगवाकर कंधे के दाहिनी या बायीं ओर लगवाते हैं। कभी-कभी बटन के स्थान पर कपड़े की गोली तथा छोटी आकृति बनाकर—जिसे 'भूँड़ी या मुद्धी' कहते हैं—प्रयोग किया जाता है।

#### कुर्तों के विभिन्न प्रकार

सिलाई की दृष्टि से कुर्ता के अनेक प्रकार होते हैं। जैसे—चूड़ीदार कुर्ता, पंजाबी कुर्ता और छवकलिया कुर्ता। चूड़ीदार कुर्ते में बाँह की आस्तीन क्रमशः कम चौड़ी होती जाती है और हाथों के पास उसकी चौड़ाई बहुत कम हो जाती है। कमीज की भाँति इसमें दो या तीन बटन लगाया जाता है। पंजाबी कुर्ता ढीला-ढाला होता है। इसमें हाथों की आस्तीन में बटन नहीं लगाया जाता। जिस कुर्ते की बगल में प्रत्येक ओर कपड़े के तीन-तीन टुकड़ों को जोड़कर कुर्ता सीया जाता है, उसे 'छवकलिया' कहते हैं। कुर्ते की प्रत्येक 'सीयन' को 'कली' कहते हैं। चूँकि इसमें छह टुकड़े लगे रहते हैं, अतः इसका नाम 'छवकलिया' पड़ गया है। शौकीन लोग 'मलमल', 'अद्धी' और 'तनजेव' के पतले तथा सुन्दर कपड़े के कुर्ते पहिनते हैं। आजकल खहर के कुर्ते का प्रचार अधिक है, जो धोये जाने पर बहुत स्वच्छ दिखाई पड़ता है। विवाह के गीतों में धोती तथा कुर्ता को वर एवं देवर को देने का उल्लेख पाया जाता है। कोई स्त्री अपने देवर को कुर्ता देने का लालच देती है।

#### (२) बगलबन्दी

पण्डित लोग तथा प्राचीन परम्परा के उपासक कुछ वृद्ध व्यक्ति 'बगलबन्दी' पहिनते हैं। चूँकि इस वस्त्र में बगल के दोनों ओर बटन के स्थान पर कपड़े के बने हुए 'बन्द' लगे रहते हैं; अतः यह 'बगलबन्दी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह 'डबल ब्रेस्ट' कोट के समान होता है, जिसकी सिलाई बड़ी सरल है। इसकी लम्बाई कमर तक होती है। जाड़े के दिनों में यह वस्त्र बड़ा उपयोगी होता है और पहिननेवाले व्यक्ति की शीत से रक्षा करता है।

१. "मइल धोतिया, धूमिल अँगवछिया;  
तोहरा लाजे ना अइलीं आहो धनिया।"

—लेखक का निजी संग्रह



## (३) मिरजई

इसी प्रकार का एक वस्त्र 'मिरजई' भी होता है। परन्तु 'बगलबन्दी' से इसमें थोड़ा अन्तर है। 'बगलबन्दी' में दोनों बगलों की ओर बन्द लगे रहते हैं, परन्तु 'मिरजई' में दाहिनी ओर तो बन्द रहता है, परन्तु बायीं ओर कपड़े 'भूड़ी-मुट्ठी' लगी रहती है। मिरजई में इस 'मुट्ठी' को लगाने पर भी बायीं ओर छाती का कुछ भाग खुला रह जाता है।

बगलबन्दी को 'चौबन्दा' भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें चार बन्द लगे होते हैं। 'अंगरखा' भी इसी प्रकार का एक वस्त्र-विशेष होता है। अंगों की रक्षा करने के कारण ही इसका नाम 'अंगरखा' पड़ गया है।

## (४) शेरवानी

पण्डित लोग 'शेरवानी' भी पहनते हैं, परन्तु इसका उपयोग वे लोग विशिष्ट अवसरों पर ही किया करते हैं। मुसलमानी शेरवानी से पण्डितों की 'सिलवानी' में थोड़ा अन्तर होता है। 'सिलवानी' में बटन के साथ बन्द भी लगा रहता है। यह अपेक्षाकृत कुछ ढीलीढाली होती है। परन्तु 'शेरवानी' में यह बात नहीं होती। शेरवानी घुटनों को छूती रहती है। 'मिरजई' तथा इसकी लम्बाई में बहुत अधिक अन्तर है।

## (५) रुईगर्दा

जाड़ों की कठोर शीत से अपने शरीर की रक्षा के लिए जन-साधारण 'रुईगर्दा' का प्रयोग करते हैं। यह वस्त्र मोटे, गर्दखोर (जिस पर धूल का प्रभाव न पड़ सके) कपड़े का बनाया जाता है। इसके भीतर रुई भरी रहती है, जिसके कारण इसके पहनने वाले शीत से भयभीत नहीं होते। पूरे आस्तीन के बने हुए इस वस्त्र की लम्बाई केवल कटि-प्रदेश (कमर) तक होती है। कोई-कोई 'डबल ब्रेस्ट' का 'रुईगर्दा' भी पहनते हैं, जिससे शीत से छाती की रक्षा होती है। छोटे लड़कों के लिए यह बड़ा ही सस्ता एवं उपयोगी वस्त्र है।

कुछ लोग किसी मोटे कपड़े के भीतर रुई डालकर सिलाये गये कोट को भी पहनते हैं, जिसे 'रुई का कोट' कहते हैं। यह भी 'रुईगर्दा' की ही भाँति सिला होता है, परन्तु इसकी लम्बाई कुछ अधिक होती है। अब 'स्वेटर' बुनने का प्रचार गाँवों में भी अधिकाधिक होता जा रहा है, अतः 'रुईगर्दा' और 'रुई का कोट' पहिनने की प्रथा अब धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही है। अंग्रेजी पढ़े-लिखे नवयुवक अब कमीज और कोट का व्यवहार करने लगे हैं, जो अनेक प्रकार के 'कट' और 'फैशन' के होते हैं।

## (६) गंजी

कुर्ता, कमीज और बगलबन्दी को पसीने से बचाने के लिए गंजी का भी प्रयोग किया जाता है, जिसे भोजपुरी में 'बनियाइन' कहते हैं। मोटे कपड़े की सिली हुई गंजी बड़ी मजबूत होती है। मिल की बनी हुई गंजी दो प्रकार की होती है—(१) आधे आस्तीन की गंजी, और (२) 'सैण्डोकट' अर्थात् जिसमें आस्तीन बिल्कुल नहीं होता। आजकल 'सैण्डोकट' का अत्यधिक प्रचार है। कुछ गंजियाँ 'डबल ब्रेस्ट' की भी होती हैं, जिनकी मजबूती प्रसिद्ध है। सफेद रंग की गंजी का ही अधिकांशतः प्रयोग होता है, यद्यपि लाल और हरे रंग की गंजियाँ भी मिलती हैं।

धनीवर्ग के लोग जाड़ों के दिनों में ऊनी गंजी, स्वेटर और पुलोवर का प्रयोग करते हैं। परन्तु निम्नवर्ग के लोगों का 'पुल ओवर' उनका 'मोटिया' का कुर्ता और 'रुईगर्दा' ही है।

## (घ) अधोवस्त्र

## (१) धोती

जिस प्रकार भोजपुरी लोगों के शरीर के ऊपरी भाग का वस्त्र कुर्ता है, उसी प्रकार से उनका अधोवस्त्र धोती है। यह साधारणतया पाँच गज (मीटर) लम्बी और ४५ इंच चौड़ी होती है। अपनी आर्थिक अवस्था के अनुसार विभिन्न वर्गों के लोग धोतियाँ खरीदकर पहनते हैं। किसान, मजदूर तथा साधारण स्थिति के लिए मोटे सूत की बुनी हुई धोती का प्रयोग करते हैं। हैण्डलूम की बनी धोतियाँ अधिक टिकाऊ और मजबूत होती हैं। मिल की बनी हुई धोतियाँ दो प्रकार की होती हैं—(१) कोरी, और (२) धुली हुई। जो धोतियाँ मिल में बुनी



जाकर धुली नहीं जाती, उन्हें 'कोरा' कहते हैं। ये धुली हुई धोतियों से अधिक मजबूत होती हैं, यद्यपि देखने में ये उतनी सुन्दर और आकर्षक नहीं होतीं। कभी समय था—जब यह देश स्वतन्त्र नहीं हुआ था—तब एक साधारण धोती दस या बारह आने में मिला करती थी; परन्तु अब—जबकि अपने देश में अपना राज स्थापित हो गया है—इन धोतियों का मूल्य पचीस-तीस रुपये से कम नहीं है। सुपर फाइन किस्म की धोतियाँ—जिनमें 'परमसुख' तथा 'सेनगुप्ता' का नाम प्रसिद्ध है—आज तो पचास और साठ रुपये से कम में प्राप्त नहीं हो सकतीं।

कुछ धोतियाँ किनारी या कन्नीदार होती हैं और कुछ बिना किनारे की। बिना कन्नी की धोतियों की प्रथा अब धीरे-धीरे उठती जा रही है। पहिले गाँवों में लाल, काले या हरे रंग की चौड़ी कन्नी की धोती लोग बड़े चाव से पहनते थे; परन्तु अब पतली और नाखूनी किनारे की धोतियाँ ही अधिक व्यवहार में आ रही हैं। चौड़े किनारे की धोती अब कोई पसन्द नहीं करता।

नयी तथा कोरी धोती को पहनना अशुभ समझा जाता है। अतः नयी धोती को धारण करने के पहिले उसके एक किनारे को हलदी में रंग दिया जाता है। यद्यपि साधारणतया सफेद धोती ही प्रयोग में लायी जाती है; परन्तु यज्ञोपवीत, विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर हल्दी अथवा पीले रंग में रंगी गयी पीली धोती ही पहनने का शास्त्रीय विधान है। किसी पुत्री का पिता नयी तथा पीली धोती पहनकर ही कन्यादान करता है। दामाद या दूल्हा को इस समय जो धोती दी जाती है, वह भी पीली ही होती है। पीले रंग में रंगे जाने के कारण इसे 'पियरी' भी कहा जाता है। इसी प्रकार से सत्यनारायण की कथा सुनने तथा मन्त्र-दीक्षा ग्रहण करते समय पीली धोती ही पहनी जाती है।

लोकगीतों में विवाह के अवसर पर 'भाट' को पीली धोती देने का उल्लेख पाया जाता है।<sup>१</sup> इसी प्रकार से ब्राह्मणों को भी उपहार में 'पियरी' धोती दी जाती है। तुलसीदास जी ने भी राम के विवाह के समय पीली धोती का उल्लेख किया है।<sup>२</sup>

## (२) लुंगी

लुंगी धोती का ही छोटा रूप है। निर्धन ग्रामीण लोग जो मँहगी के कारण धोती खरीदने में असमर्थ होते हैं, वह लुंगी पहनकर ही अपना दिन काटते हैं। यह ढाई से तीन मीटर (गज) तक लम्बी होती है। तथा इसकी चौड़ाई भी धोती की अपेक्षा कम होती है। पहिले किसान और मजदूर निर्धनता के कारण लुंगी ही पहनते थे और आज भी पहनते हैं। परन्तु अब कुछ शौकीन नवयुवक को भी फैशन के लिए लुंगियों को पहनने का शौक चर्चा रहा है। ये लुंगियाँ रंगीन और बहुमूल्य होती हैं तथा साधारण जनता के काम की नहीं हैं।

## (३) लँगोट

अपनी शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन करनेवाला भोजपुरिया जवान लँगोट पहनकर अखाड़े में उतरता है। ब्रह्मचारी के लिए लँगोट—जिसे संस्कृत में कौपीन कहते हैं—पहनना अत्यन्त आवश्यक है। लँगोट का धारण करना ब्रह्मचर्य की साधना में सहायक होता है। इसीलिए शंकराचार्य ने लिखा है कि—“कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः” अर्थात् लँगोट पहिनेवाला भाग्यवान् होता है।

लँगोट दो प्रकार का होता है—(१) सिला हुआ, और (२) बिना सिला हुआ। सिला हुआ लँगोट प्रत्येक व्यक्ति के शरीर के अनुसार लम्बा और चौड़ा होता है, जिसके दोनों छोरों पर कपड़े की बनी हुई रस्सी लगी रहती है, जिसके द्वारा इसे कमर में बाँधा जाता है। पण्डित लोग बिना सिला लँगोट पहनते हैं, जो १२ इंच चौड़े तथा तीन-चार हाथ लम्बे कपड़े से बनी हुई पट्टी के समान होता है।

१. जब ही रामचनर गोयड़हि गइले हो।

भाटवा लिहलसि बेलमाई। सियाराम से बनी।

तोहरा के देवों भाट पियरी ही धोतिया;

सीता बिआहन हम अइलीं। सियाराम से बनी॥

२. पीत पुनीत मनोहर धोती। रा० च० मा० (बा० का०)।

—लेखक का निजी संग्रह



## (ड) पैर के परिधान

### (१) जूता

ग्रामीण लोग पैर में जिस जूते को पहनते हैं, उसे 'चमरौधा' कहते हैं। चूँकि गाँव का चमार इस जूते को बनाता है, अतः इसको 'चमरौधा' की संज्ञा प्राप्त हो गयी है। चमरौधा जूता विना कमाये गये (untanned) चमड़े (Hide) से बनाया जाता है; अतः यह बड़ा सख्त होता है। इसलिए इसको मुलायम तथा पहनने-योग्य बनाने के लिए पहले इसमें रेड़ी (अरण्डी) का तेल डाला जाता है। जाड़े में रात को छप्पर के ऊपर इसे रखा जाता है, जिससे ओस की बूंदों के पड़ने से यह मुलायम हो जाय। यदि रेड़ी का तेल उपलब्ध नहीं होता, तो सरसों अथवा महुआ का तेल इसमें डालते हैं। जब यह तेल लगाने से काफी मुलायम हो जाता है, तभी यह जूता पहना जा सकता है। अन्यथा यह पैर को दबाकर 'काटने' लगता है। घाघ ने इसी तथ्य की ओर अपनी निम्नांकित सूक्ति में संकेत किया है:—

“मुई चाम सो चाम कटावे,  
सँकरी भुई माँ सोबं।  
घाघ कहे ये तीनो भकुवा,  
सिर बोझा ओ गावै॥”

कहने की आवश्यकता नहीं कि 'मुई चाम' से यहाँ घाघ का तात्पर्य जूता से ही है। अंग्रेजी जूता तो पैर को केवल 'पिञ्च' करता अर्थात् दबाता ही है,<sup>१</sup> परन्तु यदि चमरौधे जूते की तेल आदि से सेवा न की जाय, तो वह पैर को बुरी तरह से 'काट' देता है।

चमरौधे जूते की एड़ी बड़ी नुकीली और कड़ी होती है। वह पहननेवाले के पैर की एड़ी को अपनी कर्कशता के कारण बुरी तरह से क्षत-विक्षत कर देती है। इसलिए इसे पहनना बड़े साहस और वीरता का काम है।

परन्तु है यह चमरौधा जूता किसानों के बड़े ही काम का। न तो इसे साफ करने की आवश्यकता होती है और न ही पालिश लगाने की। यह खेत और खलिहान में, पक्की और कच्ची सड़क पर, काँट-कुश से आच्छादित धरती पर तथा घने जंगल में समान रूप से काम में लाया जाता है। इसके नीचे का तल्ला कंकड़-पत्थर की रगड़ से कभी घिसने न पाये, अतः इसमें एड़ी के तल्ले के नीचे 'लोहे' की बनी 'नाल' लगवा दी जाती है। फिर क्या मजाल कि यह जूता वर्षों तक पहनने पर भी एक तिल-मात्र भी घिस सके।

कुछ पढ़े लिखे लोग 'पम्पशू', 'फ्लैक्स' तथा दयालबाग के बने अंग्रेजी जूते भी पहिनते हैं। कुछ चप्पल, सैण्डल तथा हवाई चप्पल का भी प्रयोग करने लगे हैं, इनकी संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

### (२) खड़ाऊँ

घर में लोग खड़ाऊँ का प्रयोग करते हैं। किसी अतिथि के आने पर पैर धोकर पहिनने के लिए उसे खड़ाऊँ दी जाती है। यह खड़ाऊँ दो प्रकार की होती है—(१) खूँटीदार, और (२) बाध या रस्सी वाला। खूँटीदार खड़ाऊँ सुन्दर होता है। किसी-किसी खड़ाऊँ पर नक्काशी का काम भी किया गया रहता है। परन्तु प्रायः सादे खड़ाऊँ ही प्रयोग में अधिक लाये जाते हैं, जो शीशम की लकड़ी के बने होते हैं।

यज्ञोपवीत के अवसर पर ब्रह्मचारी जो खड़ाऊँ पहनता है, वह आम की लकड़ी का बना हुआ होता है। इसी प्रकार विवाह में दूल्हे के द्वारा प्रयुक्त खड़ाऊँ भी आम से ही बनाया जाता है। खूँटीदार खड़ाऊँ कुछ तो बिल्कुल ही सपाट पाये जाते हैं।

दूसरे प्रकार के खड़ाऊँ में खूँटी नहीं होती। इसके स्थान में यह मूँज की रस्सी का या 'बाध' से बाँधा गया रहता है, इसी कारण इसे 'बधौरा' कहा जाता है। इस खड़ाऊँ की एड़ी लगभग दो-तीन इंच ऊँची होती है। बरसात के दिनों में कीचड़ और गोबर से पैर की रक्षा करने के लिए इसकी एड़ी का ऊँचा होना आवश्यक है। गाँव की बरसात में पंकमयी धरती के लिए यह खड़ाऊँ बड़ा ही उपयोगी है।

१. अंग्रेजी की इस कहावत की ओर ध्यान दीजिए।

The bearer knows where the shoes pinch.



अब काठ की बनी 'चट्टी' या 'चटाकी' का प्रयोग भी प्रचुरता के साथ किया जाने लगा है। इसकी भी आकृति खड़ाऊँ की ही तरह होती है; परन्तु खूँटी के स्थान पर इसमें 'नेवार' या रबर की पट्टी लगी रहती है, जिसे आसानी से पहना जाता है। इसे लगाकर चलते समय 'चट-चट' की आवाज होती है, इसीलिए इसे 'चटाकी' या 'चट्टी' कहते हैं।

अब मोटर के टायर की बनी हुई चप्पलों का प्रचार गाँवों में भी होने लगा है। यह सस्ती और मजबूत होती है, अतएव निर्धन लोगों के लिए यह बहुत ही उपयोगी है।

### वर की वेश-भूषा

#### जोड़ा और जामा

भोजपुरी क्षेत्र में विवाह करने के लिए जानेवाला वर अथवा दूल्हा एक विशेष प्रकार की वेश-भूषा को धारण करता है। वह अपने सिर पर 'कामदार' गोली तथा ऊँची टोपी पहनता है, जिसमें जरी का काम किया हुआ रहता है। उसके शरीर में ढीला-ढाला कुर्ता सुशोभित होता है, जो पीला या हल्के लाल रंग में रंगा हुआ होता है। धोती की जगह पर वह स्त्रियों के घाघरे की तरह का एक गोल घेरेदार वस्त्र को पहनकर विवाह के लिए जाता है, जिसे 'जामा' कहते हैं। यह जामा कुर्ते के रंग के अनुकूल लाल या पीला होता है। 'जामा' का घेरा जितना ही बड़ा, हो उतना ही अच्छा समझा जाता है।

इस 'जामे' को निर्धन लोग विवाह के अवसर पर नहीं बनवाते। गाँव का कोई धनी-मानी व्यक्ति इसे बनवाकर अपने घर में रखे रहता है। जिस व्यक्ति के घर लड़के का विवाह होता है, वह दूल्हे को पहनाने के लिए उसी धनी व्यक्ति से 'जामा' को माँगनी माँगकर लाता है। चूँकि दूल्हों की वैवाहिक आयु प्रायः समान ही होती है और यह जामा काफी ढीला-ढाला होता है, अतः सभी दूल्हे इसका उपयोग बड़ी आसानी से कर लेते हैं। बिना 'जोड़ा और जामा' के वर की वेश-भूषा समुचित तथा पूर्ण नहीं समझी जाती। परन्तु अब 'जामा' के स्थान पर पीली धोती पहिने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है।

एक लोकगीत में ससुराल जाते हुए वर के द्वारा जामा पहिने का वर्णन किया गया है।<sup>१</sup> बारात के अवसर पर महफिल में वेश्यायें जो गीत गाती हैं, उनमें वर के द्वारा 'जामा और जोड़ा' पहिने की चर्चा की गयी है।<sup>२</sup>

#### (२) जूता

दूल्हे का जूता भी एक विशेष प्रकार का होता है, जिसे 'सलेमशाही' कहते हैं। ऐसा अनुमान किया जा सकता है, 'सलीम शाह' नामक कोई नवाब इस प्रकार के जूते को पहनता रहा होगा, जिसके कारण इसका उपर्युक्त नामकरण हो गया है। यह लाल रंग का जूता बड़ा मुलायम होता है। चूँकि विवाह में रंगीन वस्त्र तथा लाल जूता ही धारण करना चाहिए, अतएव इस मांगलिक अवसर पर इसका विशेष महत्त्व माना जाता है। कुछ 'सलेमशाही' जूते 'कामदार' भी होते हैं, अर्थात् उनके ऊपर चाँदी का 'काम' किया गया रहता है। इस समय दूल्हा जूता के साथ लाल मोजा भी पहिनता है, जिसे भोजपुरी में 'पायतावा' कहा जाता है।<sup>३</sup>

#### (३) सेहरा

वर की वेशभूषा में 'मउरि' का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसे 'मौर' भी कहते हैं। वर के लिए सिर पर

१. कलकतवा से छूटल जहाज, नइया तोरे लागलि।  
दुलहा सँवारे जामा ससुरारि, नइया तोरे लागलि।

—लेखक का निजी संग्रह

२. रखे पुर-नूर का सेहरा; मुबारक हो, मुबारक हो।  
नया जोड़ा, नया जामा; मुबारक हो, मुबारक हो॥
३. हाथ रुमाल सोभे, घड़ी सोभे बहियाँ।  
गोड़ पैतामा सोभे, अबर सोभे जूतवा जी॥



‘सेहरा’ को पहनना अत्यन्त आवश्यक है। यह गोलाकार तथा बड़ा ऊँचा बनाया जाता है। इसमें रंग-विरंग के ‘तार’, ‘गोटा’, रंगीन कागज आदि लगे रहते हैं, तथा स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे शीशे भी जड़े होते हैं। पटना में बड़ी सुन्दर तथा आकर्षक ‘भउरि’ बनायी जाती है। भोजपुरी विवाह के अवसर पर सजी-सजायी ‘महफिल’ में ‘बार बनिताएँ’ जो गाना गाती हैं, उसमें ‘सेहरा’ का उल्लेख पाया जाता है।<sup>१</sup>

## (२) अनुच्छेद—वच्चों के वस्त्र

पहले भोजपुरी क्षेत्र में प्रायः तीन-चार वर्षों तक बच्चों को प्रायः कोई कपड़ा नहीं पहनाया जाता था। वे प्रकृति की गोद में पलते थे और अपने शरीर के विकास को वस्त्रों के भीतर नहीं छिपाते थे। कुछ बड़े होने पर वे एक प्रकार की लँगोटी पहिनना प्रारम्भ करते थे, जिसे ‘भगही’ कहा जाता था। इस वस्त्र को उनके कमर में बाँध दिया जाता है, जिससे वह खिसककर गिरने न पाये। यह भोजपुरी ‘भगही’ कुछ-कुछ उस ‘कछोटी’ के समान होती थी, जिसका उल्लेख रसखान ने ‘बाल-कृष्ण’ के वर्णन में किया है।

बालक जब बड़ा होने लगता था, तब वह धोती और कुर्ता पहिनना प्रारम्भ करता था। उसकी यही वेश-भूषा उसके जीवन की चिरसंगिनी हो जाती थी। वह अपने कंधे पर सफेद, लाल, या हरी ‘गम्छी’ (तौलिया) को धारण करता था।

## (१) घुटन्ना

परन्तु आजकल छोटे-छोटे बच्चों को भी कपड़ा पहिनाया जाने लगा है। दो-तीन वर्ष तक बच्चे को जो लँगोटी पहनायी जाती है, उसे ‘चड्डी’ कहते हैं। कुछ बड़े होने पर इनको ‘जाँधिया पहिनाया जाता है, जो घुटने तक का होने के कारण ‘घुटन्ना’ भी कहा जाता है। ‘चड्डी’ या ‘घुटन्ना’ को ‘इजारबन्द’ के द्वारा बच्चों के कमर में बाँध दिया जाता है। इसको पहिनकर चलने में उनको लड़खड़ाने या गिरने का डर नहीं होता है। अतः यह उनके लिए बड़ा उपयोगी होता है।

## (२) गाँती

जाड़े के दिनों में कठोर शीत से बच्चों की रक्षा करने के लिए सिर से लेकर पैर तक उनके शरीर को आच्छादित करनेवाले किसी मोटे कपड़े को उनके गले में बाँध दिया जाता है। इसे ‘गाँती’ कहते हैं।<sup>२</sup> इस शब्द की निरुक्ति को बतलाना कठिन है। सम्भवतः ‘गुपुरक्षणें’ धातु से बने हुए ‘गोप्ता’ (रक्षा करनेवाला) शब्द से इसकी व्युत्पत्ति मानी जा सकती है। इस ‘गाँती’ को बच्चों का ‘ओवरकोट’ समझना चाहिए, जो उनके सिर को भी शीत से बचाता है। इनको जाड़े के दिनों में ‘कनटोप’ भी पहिनाया जाता है, जिसकी चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है।

## (३) जूता

भोजपुरी लड़के प्रायः बारह-तेरह वर्षों तक जूता नहीं पहनते थे। गाँवों में जूनियर हाईस्कूलों में पढ़नेवाले छात्र भी नंगे पैर और नंगे सिर विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाते थे। ‘चमरौघा’ जूता लड़कों के पैरों के उपयुक्त नहीं बनाया जाता था। सच तो यह है कि उनके कोमल पैर ‘चमरौघा’ की कठोरता को सहन नहीं कर सकते थे।

परन्तु अब रबर और कैनवास के छोटे-छोटे जूते चल पड़े हैं। ‘बाटा’ का साम्राज्य अब गाँवों में भी फैलने लगा है। अतः धनी-मानी व्यक्तियों के बच्चे अब इन्हीं जूतों का प्रयोग करने लगे हैं। गरीब घर के लड़के काठ की बनी ‘चटाकी’ से ही जूते का काम लेते हैं।

१. रुखे पुर-नूर का सेहरा; मुबारक हो, मुबारक हो।

२. सुरदास ने इस शब्द का प्रयोग सुरसागर में किया है।



## (३) अनुच्छेद—स्त्रियों के वस्त्र

## (१) ओढ़नी

भोजपुरी समाज में पर्दे की प्रथा बहुत ही अधिक है। अतः कोई भी स्त्री सिर से पैर तक अपने शरीर को बिना ढँके घर के बाहर नहीं निकल सकती। सम्पूर्ण शरीर को आच्छादित करनेवाले इस वस्त्र को 'चादर' या 'ओढ़नी' कहा जाता है। यह प्रायः रंगीन कपड़े की बनी हुई होती है और काफी लम्बी और चौड़ी होती है। नव-विवाहिता वधू जिस ओढ़नी को ओढ़कर अपने ससुराल जाती है, वह लाल, बूँटीदार कपड़े की बनी हुई होती है। रेशमी कपड़े की भी ओढ़नी बनायी जाती है, जो बहुत मूल्यवान् होती है। निर्धन घर की स्त्रियाँ साधारण, परन्तु रंगीन वस्त्र की बनी ओढ़नी ओढ़ती हैं।

## (२) झूला

झूला स्त्रियों का सबसे अधिक प्रिय, और व्यवहार में आनेवाला वस्त्र है। उसकी लम्बाई कमर के ऊपर तक होती है, परन्तु इसमें आस्तीन का बिल्कुल अभाव होता है। ढीला-ढाला होने तथा झूलते रहने के कारण ही इसका नाम 'झूला' पड़ गया है। इसका 'गला' इतना बड़ा होता है, कि इसे आसानी से पहना जा सके। अतः इसमें बटन लगाने की आवश्यकता नहीं होती। झूला की बाँह तथा कमर के पास वाले निचले भाग पर सुन्दरता के लिए किसी दूसरे कपड़े की एक छोटी पट्टी लगा दी जाती है, जिसे 'तोई' कहते हैं। लड़की की विदाई के अवसर पर, ससुराल में ले जाने के लिए जो झूले उसे दिये जाते हैं, उसमें शीशे के छोटे-छोटे टुकड़े भी जड़े रहते हैं। परन्तु ऐसा झूला पहिनने के काम में नहीं लाया जाता। इसका प्रधान उद्देश्य केवल अलंकरण मात्र है। झूले की तुलना आजकल के ब्लाउज से की जा सकती है, जो आकार में प्रायः एकही समान होता है।

## (३) कुस्ती

'कुस्ती' शरीर में पहने जानेवाला वह वस्त्र है, जिसका आस्तीन आधीबाँह तक का होता है और जो कोट की भाँति आगे खुला हुआ रहता है। इसका बटन या 'हुक' लगातार पहना जाता है। बूढ़ी स्त्रियाँ केवल 'झूला' ही पहिनती हैं और 'कुस्ती' युवतियों के शरीर को शोभायमान करती है। आजकल पढ़ी-लिखी लड़कियाँ 'जम्पर' और ब्लाउज का प्रयोग करने लगी हैं।

## (४) चोली

उरोजों की सुरक्षा के लिए जो वस्त्र पहिना जाता है, उसे 'अँगिया' कहते हैं। पहले इसके पहिनने का प्रचलन बहुत ही कम था। हाँ, आजकल की नवयुवतियाँ इसका प्रयोग अवश्य करती हैं। अँगिया अनेक आकार-प्रकार तथा रंग की होती हैं। लोकगीतों में 'चोली' को पहिनने का उल्लेख पाया जाता है, जिनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह बहुत ही 'कसी हुई' (कसमस चोलियाँ) होती थी और इसमें बन्द लगे रहते थे। इसका किनारा लाल रंग का होता था।<sup>१</sup> परदेश जानेवाले पति से उसकी स्त्री पूछती है कि तुम मेरे लिये क्या लाओगे। इस पर वह उत्तर देता है कि तुम्हारे लिए मैं कसी हुई चोली ले आऊँगा।<sup>२</sup>

## (१) अधोवस्त्र 'लूगा'

स्त्रियाँ अपनी कमर में जिस वस्त्र या साड़ी को पहनती हैं, उसे भोजपुरी में 'लूगा' कहा जाता है। यह प्रायः छह गज लम्बा और ४८ इंच चौड़ा होता है। साधारणतया यह सफेद कपड़े का बना हुआ होता है। 'लूगा'

१. चोलिया जरद किनारी।

२. जो तुहँ जइब बालम पुरबी बनिजिया हो।

हमरा के का तू ले अइब रावल मुनिया ॥

तोहरा के लाइबि धनिया, कसमस चोलिया हो।

अपना के सुन्नर बंगालिन रावल मुनिया ॥



और 'साड़ी' में कोई अन्तर नहीं है। दोनों एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं। परन्तु साधारणतया सफेद साड़ी को 'लूगा' कहा जाता है और रंगीन लूगा 'साड़ी' की संज्ञा को प्राप्त करता है।

साड़ी में अनेक प्रकार की कन्नी या किनारा होता है, जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के पशु, पक्षी, वृक्ष, पुरुष आदि बुने हुए होते हैं। कालिदास ने पार्वती की साड़ी के बार्डर में सुन्दर हंस का चित्र चित्रित किये जाने का उल्लेख किया है।<sup>१</sup> जिस प्रकार पुरुषों की धोती का किनारा पतला होना चाहिए, उसके ठीक विपरीत स्त्रियों की साड़ी का बार्डर जितना ही अधिक चौड़ा हो, वह उतना ही अधिक अच्छा तथा सुन्दर माना जाता है। कभी-कभी तो साड़ी के एक-चौथाई भाग में कन्नी ही होती है, जिसमें तरह-तरह के दृश्य अंकित किये गये रहते हैं।

भोजपुरी स्त्रियाँ चूँकि घूँघट काढ़ती हैं। अतः उनकी साड़ी कम-से-कम छह गज लम्बी होनी चाहिए। पड़ी-लिखी नवयुवतियाँ केवल पाँच गज की साड़ी का प्रयोग करती हैं, क्योंकि न तो वे साड़ी को सिर पर ओढ़ती हैं, और न घूँघट ही काढ़ती हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'लूगा' का प्रयोग रामायण में किया है। लोकगीतों में कृष्ण के द्वारा गोपियों की साड़ी को फाड़ने का उल्लेख पाया जाता है।<sup>२</sup>

## (२) लुगरी

निर्धन स्त्रियाँ धन के अभाव में जिस फटे-पुराने तथा मैले-कुचैले 'लूगा' को पहनती हैं, उसे 'लुगरी' कहते हैं। फटी होने के कारण यह कई स्थानों में सिली हुई होती है, तथा इसमें अनेक 'पेंवन' (पेबन्द) लगे रहते हैं। कोई पति अपनी स्त्री से अप्रसन्न हो गया है। पत्नी के लिए यह अत्यन्त चिन्ता का विषय है। अतः एक लोकगीत में कोई सखी उस स्त्री को 'लुगरी' छोड़कर सुन्दर साड़ी पहनकर आकर्षक रूप बनाने का सलाह दे रही है, जिससे उसका पति उसके रूप-सौन्दर्य पर मोहित हो जाय।<sup>३</sup>

## (३) सटुआ तथा (४) साया

जब लूगा या साड़ी का कपड़ा मोटा होता है, तब साधारणतया साड़ी के नीचे कोई कपड़ा नहीं पहना जाता। परन्तु जब साड़ी पतली हो और उसके भीतर से अंगों के दिखलायी पड़ने की आशंका होती है, तब स्त्रियाँ कपड़े का एक या डेढ़ गज लम्बा टुकड़ा साड़ी के नीचे पहनती हैं, जिसे 'सटुआ' कहा जाता है। चूँकि इसे साड़ी के साथ साँटकर या मिलाकर पहना जाता है; अतः इसका नाम 'सटुआ' पड़ गया है। इसे ग्रामीण स्त्रियों का 'पेटीकोट' समझना चाहिए।

'साया' भी 'सटुआ' की ही भाँति साड़ी के भीतर पहना जाता है। परन्तु इन दोनों में थोड़ा अन्तर है। जहाँ 'सटुआ' कपड़े का बिना सिला हुआ टुकड़ा होता है, वहाँ 'साया' घाँघरे की तरह सिला हुआ गोलाकार वस्त्र है, जिसे कमर में बाँधने के लिए 'इजारबन्द' लगा रहता है। यों तो 'साया' किसी भी कपड़े का बनाया जा सकता है, परन्तु आजकल इसके लिए एक विशेष प्रकार का रंगीन कपड़ा मिलता है। सटुआ के दोनों छोरों को पकड़कर गाँठ लगाकर कमर में बाँधते हैं, परन्तु साये में इजारबन्द के द्वारा यह कार्य सम्पादित किया जाता है। 'साया' आजकल 'पेटीकोट' के नाम से अधिक प्रचलित है। एक लोकगीत में साया, साड़ी, चोली और रुमाल का एक ही साथ प्रयोग हुआ है।<sup>४</sup>

१. वधू दुकूलं कलहंस लक्षणम्।

—कुमार संभव : सर्ग ५, श्लोक ६७।

२. जल भरे जात रहली जमुना जी;

बाट मोरे घरेलन कन्हाई।

कंकड़ चुनि चुनि घरिला फोरेले;

फाड़ेले रेसमिया के सारी।

—लेखक का निजी संग्रह

३. खोल धनि लुगरी; पहिर धनि चुनरी;

जेहि से पियवा रहेला लुभाई।

—लेखक का निजी संग्रह

४. आगि लागे साया, साड़ी, आगि लागे चोलिया।

बजर पड़े तोहरो लाली रे कमलिया।।

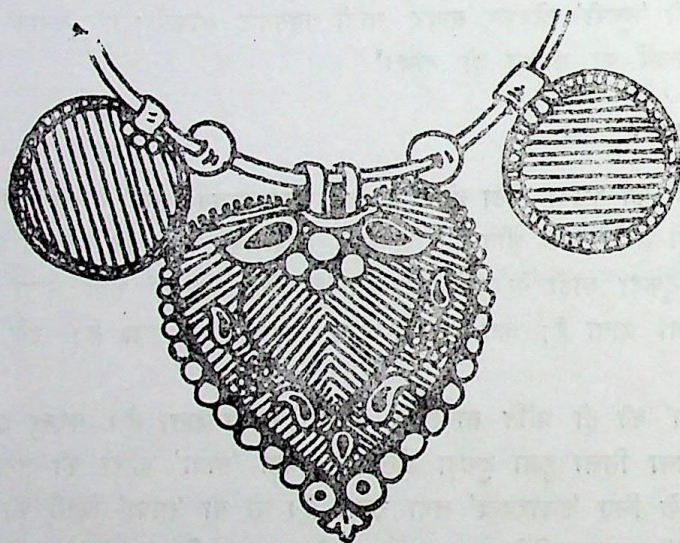
—लेखक का निजी संग्रह



## खरपा

साधारणतया अधिकांश भोजपुरी स्त्रियाँ पैर में चप्पल या जूता नहीं पहनतीं। स्त्रियों के द्वारा जूते का पहनना समाज में कुछ अच्छा भी नहीं समझा जाता। परन्तु बूढ़ी तथा निम्नवर्ग की स्त्रियाँ जलती हुई धूलि (भुभुर) में अपने पैरों की रक्षा करने के लिए एक प्रकार का चप्पल पहनती हैं, जिन्हें 'खरपा' कहा जाता है। यह 'खरपा' गाँव के चमार द्वारा बनाया जाता है, जो बड़ा कड़ा और मजबूत होता है। पढ़ी-लिखी तथा धनीवर्ग के लोगों की स्त्रियाँ अब चप्पल और सैण्डल भी पहनने लगी हैं, जो प्रायः रंगीन होते हैं। नवविवाहिता वधू का चप्पल तो निश्चित रूप से रंगीन होता है।

घर में दैनिक व्यवहार में काठ की बनी चट्टी या चटाकी का प्रयोग होता है। यह सस्ते दामों में मिल जाती है, अतः निर्धन वर्ग की स्त्रियों के लिए यह सुलभ है। आजकल की शिक्षित स्त्रियाँ घर में 'वाटा' का हवाई चप्पल का प्रयोग करने लगी हैं, जो अत्यन्त उपयोगी है।





## अध्याय ९

### आभूषण

० ०

आभूषण स्त्रियों—विशेषकर भोजपुरी स्त्रियों—का परम प्रिय वस्तु है। विवाह के अवसर पर वर पक्ष की समृद्धि का अनुमान उसके द्वारा कन्या के लिए लाये गये गहनों से ही किया जाता है। कितनी ही बारातों में प्रचुर परिमाण में गहना न ले आने के कारण झगड़ा हो जाता है। स्त्रियाँ अपने पहिने के वस्त्रों से भी अधिक गहनों से प्रेम करती हैं। वे अपने घरेलू पति से गहना गढ़ा देने के लिए सतत आग्रह करती हैं और परदेश जानेवाले पति से अपने लिए सुन्दर गहना खरीदकर लाने की प्रार्थना करती हैं।

#### (१) परिच्छेद

**भोजपुरी स्त्रियों का जीवन**—जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक—आभूषण-प्रियता की एक करुण कहानी है। इस सम्बन्ध में यह कथा प्रचलित है कि किसी भोजपुरी स्त्री ने अपने पति से कहा कि “मुझे आभूषण को छोड़कर अन्न तथा वस्त्र किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। अतः मेरे लिये गहना गढ़ा दो।” पति ने स्त्री के आग्रह को स्वीकार कर उसे सिर से पैर तक गहना पहिनाकर नंगे एक घर में रख दिया। दो-तीन दिन बीत जाने पर भूख की प्रचण्ड ज्वाला उसे जलाने लगी। तब उस स्त्री ने पति से प्रार्थना की “मुझे भोजन चाहिए, गहना नहीं।” इस कथा से स्त्रियों की आभूषण-प्रियता का पता चलता है।

भोजपुरी स्त्रियाँ सिर से लेकर पैरों तक अपने शरीर के प्रत्येक अंग में आभूषण पहिनाती हैं जिनकी गूँज लोक-गीतों में भी सुनायी पड़ती है। स्त्रियों द्वारा अपने विभिन्न अंगों में पहिने जानेवाले गहनों की तालिका नीचे दी जाती है, जिससे इनके आभूषणों की प्रचुरता का कुछ अनुमान किया जा सकता है—

#### शरीर के अंग-आभूषण का नाम

- (१) सिर के बाल—सैफटीपिन
- (२) माँग—मँगटीका
- (३) नाक—नथिया, झुलनी आदि
- (४) कान—कनफूल, झूमक, टाप
- (५) गला—कण्ठा, कण्ठेसरि
- (६) कमर—करधनी
- (७) बाहु का मध्य भाग—बाँक, जोसन आदि
- (८) हाथ—पहुँची आदि
- (९) हाथ की अँगुलियाँ—हथसंकर
- (१०) पैर—गोड़ाँव, पायल आदि
- (११) पैर की अँगुलियाँ—बिछिया

#### स्त्रियों के विभिन्न अंगों के आभूषण

##### (क) पैर के आभूषण

- (१) तूपुर, (२) गोड़ाँव, (३) झाँझ, (४) छड़ा, (५) पावजेब, (६) पड़री, (७) चूरा।

##### (ख) पैर की अँगुलियों के आभूषण

- (१) बिछिया, (२) बिच्छुआ।

भो०—२४



## (ग) कटि के आभूषण

(१) करघनी, (२) डण्डा या डंडकसी।

## (घ) हाथ की अँगुली के आभूषण

(१) अँगूठी, (२) हथसंकर।

## (ङ) पहुँचा के आभूषण

(१) कँगना, (२) पहुँची, (३) चूड़ा, (४) बँहलोई और (५) हथउरा।

## (च) बाँह के आभूषण

(१) बाजूबन्द, (२) बाँक, (३) बिजायठ, (४) जोसन और (५) बहरबूँटा।

## (छ) वक्षस्थल के आभूषण

(१) हार, (२) चन्द्रहार, (३) तिलरी, (४) मोहर माला, (५) सिकड़ी और (६) हलका।

## (ज) कण्ठ के आभूषण

(१) कण्ठा, (२) कण्ठसरि और (३) हँसुली।

## (झ) कान के आभूषण

(१) तरिवन, (२) कनफूल-झूमक-सिकड़ी, (३) कुण्डल, (४) बाली और (५) उतरमा।

## (ञ) नाक के आभूषण

(१) झुलनी, (२) नकबूली, (३) बेसर, (४) नथिया, (५) नथुनी, (६) छूँछी, (७) पान और (८) बुलाक।

## (ट) सिर के आभूषण

(१) मँगटीका, (२) सैफटीपिन, (३) मोती, (४) लटकन और (५) झबिया।

## (ठ) वस्त्रों में टाँके जानेवाले आभूषण

(१) मनोरी और (२) पत्ती।

## (ड) बालकों के आभूषण

(१) बाला, (२) बिजायठ, (३) बेरा, (४) डण्डा और (५) गोड़ाँव।

कुल ५७ अलंकारों का वर्णन है।

## गहनों की संख्या

भोजपुरी में आभूषण के लिए प्रायः 'गहना' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ ग्रहण या धारण करना है। कहीं-कहीं अभरन का भी प्रयोग पाया जाता है। एक गीत में 'बारहों आभरन' की चर्चा पायी जाती है, जिनके नाम निम्नांकित हैं—नूपुर, किकिणी, वलय, कंकण, अँगूठी, अंगद, हार, कण्ठश्री, बेसर, विरिया, टीका और सीसफूल। जायसी ने भी पद्मावती के शृंगार-वर्णन में बारह आभूषणों का उल्लेख किया है। यद्यपि इन आभूषणों की परम्परागत संख्या बारह प्रायः रूढ़ि हो गयी है, परन्तु वास्तव में इन गहनों की संख्या अनन्त है। स्त्रियाँ एक-एक अंग में अनेक गहनों को पहिनती हैं, जैसे पैर में वे नूपुर, गोड़ाँव, पावजेब, कड़ा और छड़ा धारण करती हैं। इसी प्रकार से बाँह के मध्य भाग में वे बाँक, जोसन, बहरबूँटा आदि गहनों को पहिनती हैं।

भोजपुरी लोक-गीतों में स्त्रियों के अनेक आभूषणों का वर्णन पाया जाता है, परन्तु वास्तव में उनके द्वारा धारण किये गये गहनों की संख्या अत्यन्त अधिक है। इन गहनों के स्वरूप, आकार-प्रकार आदि का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

## (क) पैर के आभूषण

## (१) नूपुर

इसे पायल भी कहते हैं। यह चाँदी का बना हुआ होता है। इसमें घुँघुरू भी लगे रहते हैं, जिससे चलने पर रुन-झुन की आवाज होती है। कोई भोजपुरी पुत्री ससुराल जाते समय अपने पिता से कहती है कि मेरी माँ मेरे बिदा हो जाने पर घर के आँगन में मुझे न पाकर और मेरे पैरों के नूपुरों की झन्कार को न सुनकर घूम-घूमकर रोयेगी।



“आंगना भूलिए भूलि आमा मोर रोइहें।  
कतहैं ना देखीं ए बेटी ! नूपुरवा झनकार॥”

नूपुर के पहिने की प्रथा प्राचीन ज्ञात होती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने सीता के द्वारा नूपुर पहिने का उल्लेख किया है—

“कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।  
कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥”

नूपुर को ही पायल की भी संज्ञा दी गयी है। एक लोक-गीत में इसका भी उल्लेख पाया जाता है—

“गोरिया धीरे पाँव ढारू ना पायेलवा बाजेला।  
पायेलवा के बाजवा सुनि छयलवा जागेला॥”

हिन्दी के सुप्रसिद्ध शृंगारी कवि विहारीलाल ने भी पायल का उल्लेख अपनी सतसई में इस प्रकार से किया है—

“किय हाइलु चित चाह लागि।  
बजि पायल तुव पाइ॥”

## (२) गोड़ाँव

नूपुर की ही भाँति यह भी पैर का आभूषण है। यह चाँदी का ठोस गहना है, जो स्त्रियों के द्वारा बड़े प्रेम से पहिना जाता है। नीच जाति की स्त्रियाँ दरब (Alloy) नामक धातु से बने गोड़ाँव को पहिनती हैं। जब नूपुर या पायल के प्रयोग का प्रचलन नहीं था, तब ग्रामीण स्त्रियाँ केवल गोड़ाँव को ही धारण करती थीं। यह आभूषण जितना ही मोटा हो उसकी उतनी ही प्रशंसा होती है। यह ग्रामीण स्त्रियों का बड़ा ही लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध आभूषण है। गोड़ाँव को ‘कड़ा’ भी कहते हैं।

## (३) झाँझ

यह भी गोड़ाँव की ही भाँति पैर का एक गहना है। गोड़ाँव से इसमें केवल यही अन्तर है कि गोड़ाँव जहाँ ठोस चाँदी का बना होता है, वहाँ झाँझ भीतर से खोखला तथा पोला होता है। इसके भीतर घुँघुरू लगे रहते हैं जिससे चलने पर झन-झन की आवाज होती है। इसीलिए इसे झाँझ कहा जाता है।

## (४) छड़ा

यह चाँदी के पतले-पतले तारों से बनाया गया एक आभूषण है, जो गोड़ाँव की ही भाँति पैरों में धारण किया जाता है। छड़ा पतला होने के कारण आठ-दस की संख्या में एक साथ पहिना जाता है। कुछ स्त्रियाँ कड़ा (गोड़ाँव) तथा छड़ा दोनों को एक साथ ही पहिनती हैं।

## (५) पावजेब

यह भी पैर का ही गहना है। इसकी बनावट बड़ी ही विचित्र होती है। चाँदी अथवा ‘दरब’ के पतले तारों को मोड़कर इसे बनाया जाता है। इसमें ‘घुँघुरू’ भी लगे रहते हैं, जिससे चलने पर आवाज होती है। यह बजन में बड़ा भारी-भरकम होता है। आजकल इस गहने के पहिने का प्रचलन उठता जा रहा है, परन्तु कुछ वर्षों पूर्व यह बड़े ही आदर से पहिना जाता था।

## (६) पैरी या पड़री

इस आभूषण को प्रायः नीच जाति की स्त्रियाँ ही पहिनती हैं। यह ‘दरब’ (Alloy) नामक धातु से बनाया जाता है। यह काँसा से भी बनता है। इसकी आकृति खोल के समान होती है। वयस्क स्त्रियों की पैरी की ऊँचाई आठ-नौ इंच और इसका व्यास चार-पाँच इंच होता है। दोनों पैरों के पैरी का बजन लगभग पाँच सेर होता है।



लोक-गीतों में पैरी का उल्लेख अनेक स्थलों पर पाया जाता है। एक भोजपुरी सोहर में प्रसव-वेदना से पीड़ित किसी स्त्री के द्वारा पति को 'पैरी' फेंककर मारने का वर्णन उपलब्ध होता है—

“चूरा फेंकि मरलों परिया फेंकि मरलों।”

थारू जाति के लोगों के एक गीत में भी पैरी की चर्चा हुई है—

देव सुन रे देवरा, गोड़े जोगे पइरी

हाय री, साजन री॥”

इस आभूषण का प्रचार अब बिल्कुल नहीं दिखायी पड़ता। पहिले नीच जाति की स्त्रियाँ ही इसे पहिना करती थीं, परन्तु वे भी अब इसे धारण नहीं करतीं।

### (७) चूरा

यह भी पैर का ही आभूषण है। इसे वच्चे तथा स्त्रियाँ पहिना करती हैं। जायसी ने पद्मावती के शृंगार का वर्णन करते हुए लिखा है कि वह अपने पैरों में पायल और चूरा पहिने हुई थी—

“पायन्ह पहिरै पायल चूरा।”

परन्तु ग्रियर्सन ने अपने ग्रन्थ 'बिहार पीजेण्ट लाइफ' में चूर (चूरा नहीं) नामक गहने का उल्लेख किया, जो हाथों में पहिना जाता था। परन्तु जायसी के उपर्युक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि यह पैर का ही गहना था।

भोजपुरी में चूरा और पैरी इन दोनों गहनों का उल्लेख एक साथ ही उपलब्ध होता है। इससे सहज में ही अनुमान किया जा सकता है कि दोनों ही एक ही स्थान में लगाये जानेवाले गहने थे। भोजपुरी में यह कहावत प्रचलित है—

“ना जननीं चूरा पइरी,

ना जननीं उतरना।”

कोई दुःखिया स्त्री कहती है कि मैंने अपने जीवन में चूरा और पइरी का पहिनना नहीं जाना और न कान का आभूषण उतरना ही पहिनने को मिला। इससे ज्ञात होता है चूरा और पइरी दोनों ही साधारण गहने थे, जिन्हें प्रायः सभी स्त्रियाँ पहिना करती थीं।

### (ख) पैर की अँगुलियों के गहने

#### (१) बिछिया

यह पैर के पाँचों अँगुलियों में पहिनने की अँगूठी के समान होती है, जिसे सधवा स्त्रियाँ निश्चित रूप से पहिनती हैं। अनेक बिछियों में घुंघरू भी लगे रहते हैं। अतः चलने पर इनसे रुन-झुन की आवाज होती है। यह सौभाग्य-वती स्त्रियों का परमावश्यक आभूषण है। भोजपुरी लोक-गीतों में बिछिया का प्रचुर वर्णन पाया जाता है। बारात के अवसर पर जेवनार की गालियों में समधिन की बिछिया की रुन-झुन आवाज का उल्लेख हुआ है। लोक-कवि कहता है कि—

“बैठ चले जइसे मयगर हाथी,

बिछिया के झनकारे जी।”

एक दोहरे (दोहा) में सम्भोग-वर्णन में बिछिया के झंकृत होने पर पुत्र को अपनी माता की झिड़कियाँ सुननी पड़ती हैं—

“खटिया करे मचामची, बिछिया के झनकार।

हम तोसे पूछी ले ए पुता ! दुनों में कवन गँवार॥”

#### (२) बिछुआ

यह पैर के अँगूठे में पहिना जानेवाला गहना है। यह बिछिया की अपेक्षा कुछ मोटा और बड़ा होता है। इसके अतिरिक्त दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं है। कुछ स्त्रियाँ बिछुआ के निचले भाग में कपड़ा लपेटकर उसे पहिनती हैं, जिससे वह अँगूठे में गड़ने या चुभने न पाये।



## (ग) कटि के आभूषण

## (१) करधनी

कमर में अनेक प्रकार के आभूषणों को पहिना जाता है, जिसमें करधनी प्रधान है। हिन्दी में इसे किकिणी भी कहा गया है। इसमें छोटी-छोटी घण्टियाँ लगी रहती हैं, जिसके कारण इसे 'क्षुद्र घण्टिका' भी कहते हैं। सूरदास ने बाल-कृष्ण के रूप का वर्णन करते हुए लिखा है कि उनके कमर में क्षुद्रघण्टिका (करधनी) विराजमान थी, जिससे मधुर ध्वनि उत्पन्न हो रही थी—

“क्षुद्रघण्टिका कटि तट राजत।

नूपुर शब्द रसाल॥”

गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसे किकिणी के नाम से अभिहित करते हुए लिखा है कि—

“कटि किकिनी उदर त्रय रेखा।

नाभि गंभीर जान नहि देखा॥”

लोक-गीतों में भी इसकी प्रतिध्वनि सुनायी पड़ती है—

“बाबू का डाँड़े करधनिया, देखत नीक लागेला।

अवर पाँव में बाजे पैजनिया, अजब छबि छाजेला॥”

करधनी प्रायः चाँदी की बनायी जाती है, परन्तु धनी तथा सेठ-साहूकारों की स्त्रियाँ सोने की बनी करधनी भी पहिनती हैं। इसमें प्रायः तीन लड़ें होती हैं।

## (२) डण्डा या डँडकसी

भोजपुरी प्रदेश में छोटे-छोटे बालक अपनी कमर में 'डण्डा' नामक एक गहना पहिनते हैं, जो चाँदी का बना हुआ होता है। इस गहने में जौ की आकृति के समान अनेक लम्बे-लम्बे दाने जोड़े गये रहते हैं।

लोक-गीतों में 'डँडकसी' नामक एक आभूषण का उल्लेख पाया जाता है, डाँड़ अथवा कमर को कसे रहने के कारण यह 'डँडकसी' कहलाता है। गीत की पंक्ति इस प्रकार है—

“गोड़ में नूपुरवा लगावता महाजना के छोकड़ी।

डँडकसिया चढ़ावता महाजना के छोकड़ी॥”

कुछ धनीमानी पुरुष भी अपनी कमर में डण्डा पहिनते हैं, जिसका एकमात्र प्रयोजन श्रृंगार ही समझना चाहिए।

## (घ) हाथ की अँगुली के आभूषण

## (१) अँगूठी

हाथ की अँगुलियों का एकमात्र आभूषण अँगूठी है। इसे स्त्री तथा पुरुष समान रूप से धारण करते हैं। अँगूठी प्रायः सोने की बनायी जाती है, जिसमें हीरा, मूंगा अथवा पन्ना जड़ा हुआ होता है। जो लोग शनि के प्रकोप से पीड़ित रहते हैं, वे प्रायः लोहे की अँगूठी धारण करते हैं। इसी प्रकार से जिन व्यक्तियों पर चन्द्रमा की कुदृष्टि होती है, वे इसके परिहार के लिए चाँदी की अँगूठी पहिनते हैं। अन्य लोग दुष्ट ग्रहों से अपनी सुरक्षा के लिए अष्टधातु से निर्मित अँगूठी को अपनाते हैं। इस प्रकार सोना, चाँदी, ताँबा और लोहा आदि अनेक धातुओं से मुद्रिका का निर्माण किया जाता है।

अँगूठी को प्रायः अनामिका नामक अँगुली में पहिना जाता है। इसीलिए अंग्रेजी में इस अँगुली को 'रिंग फिंगर' (अँगूठीवाली अँगुली) कहा जाता है। ग्रामीण लोग इसे 'मुनरी' के नाम से जानते हैं, जो मुद्रिका का अपभ्रंश जान पड़ता है।



लोक-गीतों में मुनरी या मुनर का उल्लेख अनेक स्थानों में हुआ है। यमुना के तट पर कृष्ण राधा से कहते हैं कि तुम्हें सुन्दर अँगूठी दूंगा। तुम आज यहीं मेरे साथ रहो—

“तोहरा के देबो मुनर मुनर, अबर गजमुक्ता के हार।  
आजु के रहनिया राधे हो बसिजा, भोरे उतारबि पार॥”

## (२) हथसंकर

यह भी हाथ का ही एक आभूषण है, जो हथेली के ऊपरी भाग में पहिना जाता है। इसकी आकृति हथेली के ही समान प्रायः गोल होती है और इसमें पाँच अँगूठियाँ बनी होती हैं, जिन्हें पाँचों अँगुलियों में पहिना जाता है। ऐसा करने से इसके गिरने का डर नहीं रहता। यह चाँदी का गहना होता है, जिसके ऊपरी भाग में अनेक प्रकार के अनेक रंग के रंग-विरंगे शीशे जड़े रहते हैं। आजकल इस गहना का प्रचलन प्रायः बन्द-सा हो गया है।

## (ड) प्रकोष्ठ (पहुँचा) के आभूषण

### (१) कँगना

बाहु (भुजा) के अन्तिम भाग—जो अँगुलियों के पहिले होता है—को संस्कृत में प्रकोष्ठ कहते हैं। हिन्दी में कलाई और भोजपुरी में यह पहुँचा के नाम से प्रसिद्ध है। हाथ के गहनों में कंगन या कँकना (कंकण) सबसे अधिक लोकप्रिय है। यह प्रायः चाँदी का बना हुआ होता है। परन्तु धनी वर्ग की स्त्रियाँ सोने का कँगना पहिनती हैं।

कँगना प्रायः दो प्रकार का होता है—(१) निसण्डी (ठोस) और (२) फुकुवा (खोखला)। ठोस कँगना वह है, जो सालिड (ठोस) चाँदी से बनाया जाता है। सोने के बने हुए ठोस कंगन में पहिले ताँबे का कंकना बनाकर उस पर सोने का पत्तर (पत्र) चढ़ा दिया जाता है। इस प्रकार यह ठोस दिखायी पड़ता है। फुकुवा कँगना वह है, जो भीतर से खोखला होता है। यह ठोस कंगन की अपेक्षा बड़ा तथा मोटा होता है, परन्तु तौल में हल्का। दूसरे प्रकार के कंगन के ऊपर अनेक प्रकार के कटाव बने रहते हैं, जो देखने में सुन्दर लगते हैं। प्रायः सभी स्त्रियाँ अपनी कलाई में कंगन अवश्य पहिनती हैं।

लोक-गीतों में कँगना का नाम बहुशः उपलब्ध होता है। ननद अपनी भावज से उसके पुत्र-जन्म के अवसर पर नेग में कँगना माँगती हैं। कोई स्त्री बाजार में कँगना पहिनकर जा रही है और वह बड़े शान से कहती है कि—

“ककना पहिरि हम चललों बजरिया॥”

पुत्र की प्राप्ति से प्रसन्न भावज अपनी ननद को कँगना देने की प्रतिज्ञा करती है—

“ननदी कँगना जे रतन जड़ाव के,  
तोहे पहिरा के देबों॥”

विरहिणी स्त्रियाँ अपने पति के आगमन की सूचना देनेवाले कौए को सोने की पैजनी और कंगन देने का आश्वासन देती हैं।

संस्कृत साहित्य में कंगन को ‘वलय’ कहा जाता है। ऐसा ज्ञात होता है कि स्त्रियों के समान पुरुष भी अपने हाथों में कंगन अथवा वलय पहिना करते थे। कालिदास ने विरही यक्ष के दुर्बल हाथों से वलय के गिर जाने का उल्लेख मेघदूत में किया है।<sup>१</sup> हिन्दी कवियों ने अपनी कृतियों में तथा लोक-कवियों ने गीतों में कंगन धारण करने का प्रचुर रूप से वर्णन किया है।<sup>२</sup>

१. तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः सकामी।

नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः॥

—मेघदूत : पूर्वार्द्ध, श्लोक २।

२. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोकगीत भाग १, २।



## पहुँची

प्रकोष्ठ अर्थात् पहुँचा में पहिने जाने के कारण इस आभूषण को पहुँची की संज्ञा प्रदान की गयी है। इसे 'पहुँचारी' भी कहा जाता है। पहुँची दो प्रकार की होती है—एक 'साधारण' और दूसरी 'कटउवा'। 'साधारण' पहुँची वह है, जिसमें चाँदी के गोल तथा कुछ चपटे छोट-छोटे दाने होते हैं। इन्हें सूत में 'गूँथ' करके पहुँची बनायी जाती है। 'कटउवा' पहुँची वह है, जिसके छोटे-छोटे दानों की आकृति लम्बी तथा ऊँची होती है और उसके ऊपरी भाग में तीन फाँकें बनी रहती हैं। गाँवों में इन पतले फाँकों की उपमा चूहे के दाँतों से दी जाती है।

लोक-गीतों में पहुँची का उल्लेख पाया जाता है। विवाह संस्कार के अवसर पर बारातियों के जेवनार के समय गायी जानेवाली गाली में रत्नजटित सोने की पहुँची का वर्णन पाया जाता है—

“गोरी गोरी बहियाँ रतन करे पहुँची।  
सोनन करे पहुँची, मोतिन माँग सँवारि॥”

राम के बाल-रूप का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि—

“पग नूपुर ओ पहुँची कर कंजनि।  
मंजु बनी मनि माल हिये॥”

इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि स्त्रियों के अतिरिक्त छोटे बच्चे भी अपने हाथों में पहुँची पहिना करते थे।

## चूड़ा अथवा चूड़ियाँ

भोजपुरी क्षेत्र में सधवा स्त्रियाँ काँच की चूड़ियाँ ही अपनी कलाई में पहिन्ती हैं। परन्तु कुछ धनाढ्य घरों की स्त्रियाँ सोने की बनी हुई चूड़ियों को भी पहिन्ने लगी हैं, जिन्हें 'सुवर्ण वलय' की संज्ञा दी जा सकती है। ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में शंख की बनी हुई चूड़ियों को पहिन्ने की प्रथा विद्यमान थी। लोक-गीतों में इसका उल्लेख पाया जाता है। किसी मालिन में अनुरक्त अपने आचरणहीन पति के कृत्यों से रुष्ट होकर कोई स्त्री कहती है कि—

“फोरबों में संकर चुरिला, मेटबों कजरवा नु रे।  
हतबों में बाला जियरा, रउरे हजुरवा नु रे॥”

परन्तु आजकल सधवा स्त्रियाँ शंख की चूड़ियाँ नहीं पहिन्तीं। सम्भवतः बंगालिन विधवा ही इसे धारण करती हैं।

## बँहलोई

लोक-गीतों में बँहलोई नामक गहने का उल्लेख पाया जाता है। परन्तु इसका आकार-प्रकार कैसा था इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ कहीं कहा जा सकता। अब इस आभूषण का प्रयोग बिल्कुल नहीं किया जाता। डॉ० ग्रियर्सन ने 'बिहार पीजेण्ट लाइफ' नामक अपने ग्रन्थ में 'बँहलोली' नामक कलाई के गहने का उल्लेख किया है। गीतों में अब इसकी स्मृति सुरक्षित रह गयी है—

“गोड़वनि सोभेला रुनमन बिछिया हाथ के बँहलोई।”

## हथउरा

विवाह के एक गीत में 'हठउरा' नामक गहने की चर्चा पायी जाती है। इसके भी आकार-प्रकार के विषय में आज कुछ भी ज्ञात नहीं है। गीत के निम्नांकित पंक्तियों से पता चलता है, कि यह कोई प्रकोष्ठ का गहना रहा होगा।

“हाथ हथउरा प्राभु हे बाबा देलेन, सिकड़ी लछन देवर।”

बँहलोई और हथउरा आज इन दोनों गहनों का कोई पता नहीं है। सम्भवतः ये दोनों ही बहुत पहले ही प्रचार तथा प्रयोग से उठ गये होंगे।



## (च) बाँह के आभूषण

स्त्रियाँ अपनी बाँह के मध्य भाग में अनेक प्रकार के आभूषण पहनती हैं, जिनमें जोसन, बहरबूँटा, बाजूबन्द, बाँक, बिजायठ, अनन्त आदि प्रसिद्ध हैं। परन्तु धीरे-धीरे इन आभूषणों का प्रयोग उठता चला जा रहा है।

## बाजूबन्द

यह गहना बाँह के मध्य भाग में पहिना जाता है। चूँकि यह बाजू या बाँह में बाँधा जाता है, अतः इसका नाम बाजूबन्द पड़ गया है। यह दो प्रकार का होता है—(१) साधारण बाजू और (२) कटुई बाजू। साधारण बाजू वह है, जिसमें रुपये की आकृति के गोल-गोल खण्ड या दाने होते हैं। कटुई बाजू में छोटी तथा पतली आकृति के अनेक टेढ़े टुकड़े होते हैं, जिनको एक साथ मिलाकर यह बाजू बनाया जाता है। चूँकि इसमें अनेक कटाव (या खण्ड) होते हैं, अतः इसे कटुई बाजू कहते हैं।

लोक-गीतों में बाजूबन्द का उल्लेख पाया जाता है। जैसे—

“एक ओर बिकाला राम बाजूबन्द बिछिया,  
एक ओर ए राम झुलनी, तरिवनवा।”

## बाँक

सम्भवतः इस शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के ‘वक्र’ से हुई है, जिसका अर्थ टेढ़ा होता है। बाँक की आकृति भी चूँकी टेढ़ी (वक्र) होती है अतः इसे यथार्थनामा समझना चाहिए। बाँक प्रायः सोने का बना होता है। इसकी आकृति गोलाकार होती है। सोने के पत्तर को तीन बार घुमाकर इसे गोल बनाया जाता है। कुछ लोग बाँक को अनन्त भी कहते हैं, जिसके नामकरण का कारण कुछ स्पष्ट ज्ञात नहीं होता।

## बिजायठ

यह भी बाँह का ही गहना है। बाँक की आकृति जहाँ टेढ़ी और पतली होती है, वहाँ बिजायठ की आकृति चपटी होती है। चाँदी अथवा सोने की गोली और चपटी आकृति बनाकर इस आभूषण का निर्माण किया जाता है। स्त्रियों के अतिरिक्त इसे बच्चे भी पहिना करते हैं। संस्कृत में इसे ‘केयूर’ कहते हैं, जिसका प्रयोग निम्नांकित श्लोक में इस प्रकार किया गया है—

“केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं।  
हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः॥”

## जोसन

यह चाँदी का बना हुआ गहना था। इसे रुपये की आकृति में गोल बनाकर इसमें डाँट जोड़कर तथा सूत में इन खण्डों को गूँथकर पहिना जाता था। प्रत्येक रजत-खण्ड को एक-दूसरे से थोड़ी दूर पर रखकर गूँथा जाता था, जिससे इसको हाथ में पहिनने पर एक-दूसरे की दूरी स्पष्ट दिखाई पड़े।

## बहरबूँटा

चाँदी के खण्डों को गोल तथा पोली आकृति में ढालकर इसे बनाया जाता था। इसके बीच के पोले भाग को राल से अथवा किसी अन्य द्रव्य से भर दिया जाता था। इस प्रकार इसका स्वरूप गोल तथा पोल दिखाई पड़ता था। बहरबूँटा की अनेक गोठियाँ अलग-अलग बनायी जाती थीं और फिर इन्हें सूत या धागे में गूँथकर पहिना जाता था। यह गहना बड़ा भारी होता था, जिसके प्रहार से चोट लगने की सम्भावना बनी रहती थी। बूँट अर्थात् चना की भाँति गोल होने के कारण इसका नाम बहरबूँटा पड़ गया हो, तो इसमें आश्चर्य नहीं।

## (छ) वक्षस्थल के आभूषण

स्त्रियों के वक्षस्थल पर लटकनेवाले अनेक आभूषण हैं, जिनमें हार या चन्द्रहार, तिलरी, मोहरमाला आदि प्रसिद्ध हैं।



### (१) हार

गले से वक्षस्थल पर लटकनेवाले आभूषण को हार कहते हैं। इसके अनेक प्रकार उपलब्ध होते हैं। जैसे—गजमोती का हार। इसे लोक-गीतों में मोतीमाला अथवा गजमुक्ता का हार भी कहा गया है। इस हार में मोती जड़े होते हैं। इसीलिए इसे मोती का हार कहा जाता है। एक गीत में कोई स्त्री कहती है कि—

“आगि लगइबो सँवरो डाला भरि सोनवा।  
बजर परो गलहार ए हरी॥”

कोई स्त्री अपने गले का हार अपनी छोटी ननद को इसलिए दे देती है कि वह प्रियतम के साथ सोने में साजन के हृदय में गड़ जाता है—

“हरवा ना पेन्हों, सँइआ का गड़ि गड़ि जाय।  
गोड़ तोर लागिले छोटकी ननदिया,  
हरवा तू ले ले जाहु॥”

### (२) चन्द्रहार

यह भी हार के समान ही एक आभूषण है, जिसमें तीन से लेकर पाँच-छह लड़ियाँ तक होती हैं। प्राचीन-काल में सम्भवतः इसमें चन्द्रमा की आकृति बनी रहती होगी इसीलिए इसका नाम चन्द्रहार पड़ गया हो। भोजपुरी में यह ‘चन्द्रहार’ के नाम से प्रसिद्ध है।

### (३) तिलरी

तिलरी का अभिप्राय उस हार से है जिसमें तीन ‘लर’ (लड़ियाँ) होते हैं। तिलरी शब्द ‘तीन लरी’ का अपभ्रंश रूप है जिससे स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि इस हार में तीन लड़ियाँ लगी रहती हैं। इसी प्रकार से पाँच ‘लड़’ वाले हार को ‘पचलरी’ या ‘पँचलड़ी’ और सात लरीवाले को ‘सतलरी’ कहा जाता है। परन्तु लोक-गीतों में केवल ‘तिलरी’ की चर्चा पायी जाती है। कोई स्त्री अपने पति से ‘तिलरी’ पहिनने की अभिलाषा प्रकट करती है। इस पंर उसका पति उत्तर देता है कि तुम काली-कलूटी हो। तुम्हें तीन लड़ी का हार शोभा नहीं देगा। गीत की पंक्तियाँ हैं—

“जब तुहुँ काली कलौंजर, दोसरे कोइलि रंग,  
धनिया, तुहके तिलरिआ नाहीं सोभे  
तिलरिआ कहाँ पायेब॥”

तिलरी आज भी स्त्रियों का अत्यन्त लोकप्रिय हार है, जो सुवर्ण से निर्मित किया जाता है।

### (४) मोहरमाला

मुसलमानों के शासन-काल में सोने का एक सिक्का प्रचलित था जिसे ‘मोहर’ कहते थे। इन्हीं सिक्कों को सूत में गुँथकर बनायी गयी माला को मोहरमाला कहते हैं। विवाह के अवसर पर वधू के आभूषणों में मोहरमाला की गणना प्रधान रूप से की जाती है। मोहर के एक गीत में इस गहने का उल्लेख निम्नांकित रूप में हुआ है—

“गोड़ में सोभेला गोरहया,  
गले में मोहरमाला नु हे।  
बाबू दूर खेलन मति जाहु  
खोजन तोहरा के जइहें हो॥”

स्त्रियों के अतिरिक्त पुरुषों के द्वारा भी यह अलंकार धारण किया जाता है। अहीर जाति के पुरुष अपने गले में मोहरमाला पहिनते हैं।



## (५) सिकड़ी

यह एक लर (लड़ी) वाला सोने का गहना है, जिसे पुरुष तथा स्त्रियाँ समान रूप से अपने गले में धारण करती हैं। यह हार की तरह वक्षस्थल तक नहीं लटकता रहता। यही हार और सिकड़ी में अन्तर है।

## (६) हलका

यह भोजपुरी स्त्रियों का उनके वक्षस्थल को सुशोभित करनेवाला प्रधान आभूषण है। यह प्रायः चाँदी का ही बनाया जाता है। हार और हलका में अन्तर यह है कि हार में केवल तीन या चार लम्बी लड़ियाँ होती हैं। परन्तु हलका के उस भाग में जो वक्षस्थल के मध्य में लटकता रहता है एक गोल (ओवल शेप) तथा बड़ी आकृति बनी रहती है। हलका हार की अपेक्षा तौल में बड़ा भारी होता है। आजकल इसका प्रचलन धीरे-धीरे नष्ट होता चला जा रहा है।

## (ज) कण्ठ के आभूषण

स्त्रियों के द्वारा गला अथवा कण्ठ में पहिने जानेवाले आभूषणों में कण्ठा, कण्ठेसरि, हँसुली आदि विशेष महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

## (१) कण्ठा

जैसा कि इसके नाम से ही ज्ञात होता है, यह कण्ठ में पहिने का आभूषण है। यह केवल सोने से ही बनाया जाता है, चाँदी आदि धातुओं से नहीं। कण्ठा में पाँच से लेकर दस तक सोने के बड़े-बड़े आँवले की आकृति के समान दाने होते हैं, जो भीतर से खोखले होते हैं। इस पोले या खोखले भाग में 'राल' भरकर इसे ठोस तथा भारी बनाया जाता है। इन दानों को सूत में गूँथकर गले में पहिना जाता है। यह देखने में सुन्दर तथा आकर्षक आभूषण है। नव विवाहिता वधू का यह परम प्रिय गहना है।

## (२) कण्ठेसरि

कण्ठा की ही भाँति यह भी गले का गहना है। कण्ठेसरि शब्द कण्ठश्री से निकला हुआ ज्ञात होता है। कण्ठा और कण्ठेसरि की आकृति में थोड़ा अन्तर है। जहाँ कण्ठा के दाने गोल तथा बड़े होते हैं वहाँ कण्ठेसरि के दाने चिपटे और छोटे होते हैं। यह आभूषण स्त्रियों के गले में चिपटा हुआ रहता है। कण्ठा की अपेक्षा कण्ठेसरि का प्रचलन बहुत कम है।

## (३) हँसुली

कण्ठ के आभूषणों में सबसे अधिक प्रचलित तथा लोकप्रिय गहना हँसुली है। यह सोने और चाँदी दोनों ही धातुओं से बनायी जाती है परन्तु चाँदी की ही बनी हुई हँसुली का अधिक प्रचार है। इसकी आकृति पतली तथा गोल होती है। इसका अन्तिम भाग खुला रहता है जिसकी सहायता से यह सरलता के साथ गले में पहिनी जाती है।

हँसुली की लोकप्रियता का पता केवल इसी बात से चलता है कि आभूषणों की गणना में 'हँसुली' और 'गोड़ाँव' दो ही सर्वप्रधान माने जाते हैं। जिन स्त्रियों को आभूषणों से विशेष प्रेम नहीं है वे भी गले में हँसुली और पैरों में 'गोड़ाँव' अवश्य ही पहिनती हैं।

लोक-गीतों में हँसुली की चर्चा बहुशः पायी जाती है। पुत्र-जन्म के अवसर पर कोई ननद अपनी भावज से नेग में सोने की हँसुली माँगती है तो कोई प्रियतमा अपने पति से हँसुली गढ़ा देने का आग्रह करती है।

## (झ) कान के आभूषण

कान के गहनों में तड़िवन, कनफूल, कुण्डल और उतरना आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।



### (१) तरिवन

इसे तड़िवन भी कहा जाता है। लोक में इसका प्रचलित नाम 'तरकी' है। संस्कृत में यह ताटंक के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी आकृति कनफूल के ही समान होती है परन्तु इसमें एक लम्बी कील रहती है जो दोनों कपोलों को स्पर्श करती रहती है। लोक-गीतों में वियोगिनी स्त्रियों के तरिवन से रस चूने की चर्चा पायी जाती है।

“मलइत रहलों में सोने के दरपनिया।  
से चुइ रे गइले ना, एक तरिवन के ठोपवा॥  
का तूहँ तरिवन चुवेले अँगनवा।  
मोर हरि रे बिनु सेजिया भइले सपनवा॥”

ऐसा ज्ञात होता है कि हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि बिहारीलाल के समय में भी इस अलंकार को धारण करने की प्रथा प्रचलित थी। इन्होंने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि—

“तरिवन कनक कपोल दुति, बीचाँह बीच बिकान।”

### (२) कनफूल

इसे कर्णफूल भी कहते हैं। संस्कृत में यह 'कर्णावतंस' नाम से प्रसिद्ध है। कनफूल के साथ ही तीन गहनों का परस्पर सम्बन्ध जुड़ा हुआ है जो एक साथ ही पहिने जाते हैं। इनका नाम है—कनफूल-झूमक-सिकड़ी। इस आभूषण का जो भाग कान के निचले भाग (Earlobe) में पहिना जाता है उसे कनफूल कहते हैं। कनफूल से जुड़ा हुआ जो भाग कान के नीचे अधर में लटकता रहता है वह 'झूमक' के नाम से प्रसिद्ध है। दोनों कनफूलों को जोड़नेवाली कुछ लड़ियाँ होती हैं जिसके बीच में एक अंकुश बना रहता है। इसी अंकुश को सिर के बालों अथवा जूड़े में फँसा दिया जाता है। लड़ियों से युक्त इस आभूषण को सिकड़ी कहा जाता है। वास्तव में “कनफूल-झूमक-सिकड़ी” पृथक्-पृथक् तीन आभूषण नहीं हैं। बल्कि यह तीनों आभूषणों का समुदाय है जो समन्वित रूप में एक आभूषण का निर्माण करते हैं।

लोक-गीतों में 'झूमक' का अनेक बार उल्लेख पाया जाता है। जैसे—

“पहिले नैवत ननदोई किहाँ भेजलों,  
से लेइ अइले दुनुकान झूमकवा रे गेनवा।  
झूमका पहिरि ननदोई के जगवलीं,  
से बाड़ा सुनर बाजेल्ला झूमकवा रे गेनवा॥”

### (३) कुण्डल

कानों में कुण्डल पहिने की प्रथा अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही है। गोस्वामी जी ने राम के सौन्दर्य का वर्णन करते समय कुण्डल की भी चर्चा की है। सोने के बने हुए कुण्डल को स्त्री और पुरुष समान रूप से धारण करते हैं। कुण्डल की आकृति गोल होती है जिसके मध्य भाग में रत्न जड़ा रहता है। अतः यह आभूषण बहुमूल्य माना जाता है। लोक-गीतों में इसकी चर्चा पायी जाती है। जैसे—

“कान्हें कुण्डल गले तुलसी के माला सँवरे बरन सिरिराम।”

अनेक गीतों में उपहारस्वरूप दोनों कानों के लिए सोना देने का वर्णन पाया जाता है जिसका अभिप्राय कुण्डल से ही समझना चाहिए।

“अवरु जे देबउ देवरा कान दुनु सोनवा।  
मोर देवरवा हो, टोपिया में रतन जड़ाय॥”

कुण्डल अनेक प्रकार के बनाये जाते थे, जिनमें विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों की आकृति उत्कीर्ण की जाती थी। चिरइया नाम का वह कुण्डल था जिसमें किसी पक्षी को उत्कीर्ण किया जाता था।

“ललना! उनका कोन सोने के चिरइया,  
चिरइया झकमक करे हो॥”



विहारी ने “मकराकृति गोपाल के कुण्डल शोभित कान” लिखकर इसी तथ्य को प्रमाणित किया है।

#### (४) बारी या बाली

प्रायः मुसलमान स्त्रियों के द्वारा कान के ऊपरी भाग में पहने जानेवाली बालियों को ‘बारी’ कहा जाता है। ये अपने कानों में आठ-दस ‘बारी’ को एक साथ पहिनती हैं। जाँत के एक गीत (जैतसार) में इसकी चर्चा पायी जाती है। कोई सिपाही किसी पनिहारिन से पानी पिलाने के लिए अनुरोध करता है परन्तु अपनी जाति जुलाहिन (जोलहा की स्त्री) बताकर वह उसे पानी न पिलाने का बहाना करती है। इस पर सिपाही कहता है कि तुम जुलाहिन हो तो अपनी बालियों को दिखलाओ।

“जब तुहँ बाड़ू ए सँवरो।

जाति के जोलहिनिया।

कान दुनु बरिआ ए सवरों,

मोहि के बतावहु॥”

#### (५) उतरना

जिस प्रकार मुसलमानों की स्त्रियाँ अपने कानों में ‘बालियाँ’ पहिनती हैं, उसी प्रकार हिन्दू स्त्रियाँ कानों में ‘उतरना’ नामक आभूषण धारण करती हैं। ‘बारी’ प्रायः चाँदी की बनी होती है परन्तु ‘उतरना’ सोने से निर्मित होता है। उपर्युक्त दोनों गहनों की आकृति में कुछ विशेष अन्तर नहीं होता। सम्भवतः कानों के ऊपरी (उत्तर) भाग में पहिने के कारण ही इस आभूषण का नाम ‘उतरना’ पड़ गया है।

#### (ज) नाक के आभूषण

##### (१) झुलनी

नाक में पहिने जानेवाले गहनों में झुलनी अत्यन्त प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय है। इसे नाक के निचले भाग में पहिना जाता है। चूँकि यह अधर में लटकती हुई सदा झूलती रहती है अतः इसका नाम ‘झुलनी’ पड़ गया है। लोक-गीतों में झुलनी का उल्लेख बहुशः पाया जाता है। यथा—

“का तुहँ देवरू नजरिया लगवल,

मोरा लेखे झुलनी बेसाहु रे साँवलिया।

झुलनी पहिरि हम सुतलों ओसरवा।

ठोकि देले बजर केवरिया रे साँवलिया॥”

जिस झुलनी में तीन पत्ते जुड़े रहते हैं उसे ‘तीन पतिया झुलनी’ कहते हैं। कोई स्त्री ऐसी झुलनी के भुला जाने के कारण दुःखित होकर कहती है कि—

“हेराइ रे गइले ना,

तीन पतिया मोर झुलनिया, हेराइ रे गइले ना।

सामु मारे हुथुका, ननद पारे गारी,

सँइयाँ मारे बाँसे के कोहनियाँ हो,

तीन पतिया मोर झुलनिया,

हेराइ हो गइले ना॥

झुलनी की चर्चा झूमर के गीतों में अनेकशः उपलब्ध होती है—

“ना जानो यार झुलनी मोर कहवाँ गिरा,

पनिया भरन जाऊँ राजा ना जानों,

यहाँ गिरा ना जानों, वहाँ गिरा ना जानों,

ना जानों यार डोरिये में लिपट गया॥”



## (२) नकबूली

यह भी नाक के निचले भाग में पहिने का एक आभूषण है। नकबूली तथा झुलनी में कोई विशेष अन्तर नहीं है। दोनों ही अधर में झूलते रहते हैं। नकबूली में एक ही कनक-पत्र होता है जब कि 'तीन पतिया झुलनी' में इसकी संख्या तीन होती है। समाज के निम्न वर्ग की स्त्रियाँ इस गहने को विशेष रूप से धारण करती हैं।

## (३) बेसर

यह भी नकबूली की ही तरह नाक में पहिने का गहना है जिसकी चर्चा लोक-गीतों में पायी जाती है। इसकी आकृति क्या थी, यह स्पष्ट नहीं है। किसी प्रियतमा का यह अभियोग है कि उसकी बेसर प्रिय के बालों में फँस जाती है। गीत की पंक्ति है—

“एक त पिया अँगिया के पातर,  
दोसरे रखवले जुलुफिया।  
तोरा जुलुफी में अँटके बेसरिया,  
काहे के पियवा रखवल जुलुफिया॥”

हिन्दी के महाकवि बिहारी ने भी बेसर का उल्लेख अपनी सतसई में किया है—

“अजौ तर्पौना ही रह्यो, श्रुति सेवत इक अंग।  
नाक बास बेसर लह्यो, बसि मुक्तन के संग॥

इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि बेसर में मोती भी जड़े जाते थे।

## (४) नथिया

यह एक स्वर्ण आभूषण है जिसकी आकृति गोल होती है। स्त्रियाँ इसे अपने दक्षिण नासापुर में पहिन्ती हैं। यह गहना इतना बड़ा होता है कि इसकी गोलाई कान तक पहुँचती है। इसके अतिशय भार से पीड़ित होकर स्त्रियाँ इसमें सूत लगाकर इसे अपने दाहिने कान में बाँध देती हैं जिससे इसका भार कुछ हल्का हो जाता है। नथिया को 'नथ' भी कहा जाता है जो विवाहिता वधू का सौभाग्य-चिह्न माना जाता है। इसीलिए लोक-गीतों में स्त्रियाँ अपने पति से 'नथिया' गढ़ाने (बनाने) का आग्रह करती पायी जाती हैं। जब भोजपुरी पति कमाने के लिए परदेश जाता है, सबसे पहिले वह अपनी स्त्री के लिए सोने की नथिया बनवाकर ले आता है।

## (५) नथुनी

इसे नथिया का लघु संस्करण समझना चाहिए। यह आकार में गोल और नथिया की अपेक्षा छोटी और पतली होती है। नथिया पहिने का फैशन अब पुराना पड़ गया है परन्तु नथुनी का फैशन आज भी धूमिल नहीं हुआ है। नथिया का भविष्य अब अन्धकारमय है परन्तु नथुनी अपने नये रूप में आज भी लोकप्रिय है।

## (६) छूँछी

यह नाक के दाहिने नासा-पुट में पहिने का गहना है जो आकृति में गोल और छोटी होती है। कुछ स्त्रियाँ छूँछी के मध्य भाग में रंगीन पत्थर जड़वाकर इसे पहिन्ती हैं जिससे उनके सौन्दर्य में 'चार चाँद' लग जाता है।

## (७) पान

यह भी सोने का आभूषण है जिसकी आकृति पान के पत्ते के समान होती है। यह पतला तथा चिपटा होता है। छूँछी का फैशन अब पुराना पड़ता जा रहा है अतः युवती स्त्रियाँ अब उसके स्थान पर पान को ही धारण करती हैं।

## (८) बुलाक

यह आभूषण भी झुलनी की भाँति नाक के निचले भाग में पहिना जाता है, जो सदा झूलता रहता है। बुलाक की आकृति प्रायः चौकोर होती है जिसकी लम्बाई और चौड़ाई दो इंच के बराबर होती है। इसकी



आकृति बड़ी होने के कारण स्त्रियों को भोजन करने में इससे बड़ा कष्ट होता है। क्योंकि यह उनके मुँह तथा दोनों अधरों को सदा आच्छादित किये रहता है। इसका भारीपन कष्ट का दूसरा कारण बन जाता है। बुलाक के ऊपरी भाग में कहीं-कहीं रंगीन शीशे भी जड़े होते हैं जिससे वह देखने में सुन्दर लगता है। आज से चालीस-पचास वर्ष पहिले बूढ़ी स्त्रियाँ इस आभूषण को बड़े प्रेम से धारण करती थीं। परन्तु इसकी विकट आकृति और कष्टदायक स्वरूप के कारण अब यह पुरातत्त्व-संग्रहालय का विषय बन गया है।

### (ट) सिर के आभूषण

#### (१) मँगटीका

सिर के आभूषणों में मँगटीका का प्रधान स्थान है। यह एक गोला तथा चपटा सोने का गहना है जो माँग पर से होता हुआ ललाट के ऊपर लटकता रहता है। मँगटीका में जोड़ी गयी सोने की जंजीर के अन्तिम छोर पर एक टेढ़ा अंकुश होता है जिसे सिर के बालों अथवा जूड़ा में कस दिया जाता है जिससे यह गहना नीचे न गिरने पावे।

#### (२) सेफटीपिन

आजकल कुछ नवीन युवती स्त्रियाँ अपने बालों को एक स्थान पर समेटकर रखने के लिए उसमें सेफटीपिन लगा देती हैं। जूड़ा के बाँधने में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

#### (३) मोती

कुछ लोक-गीतों में मोती से माँग भरने का उल्लेख पाया जाता है जिससे ज्ञात होता है कि सिर के बालों को सुशोभित करने के लिए मोतियों का प्रयोग किया जाता था।

“गोरी का लट्ठिन, चुयेला गुलाब,  
कि मोतियन माँग भरी॥”

#### (४) लटकन-झबिया

यह भोजपुरी स्त्रियों का प्रधान आभूषण है जो सदा साथ में ही पहिना जाता है। जैसा कि इसके नाम से विदित होता है लटकन स्त्रियों के वक्षस्थल पर लटकनेवाला एक गहना है जिसमें घुँघुरू लगे रहते हैं। इसी कारण चलने पर रुनझुन की मधुर आवाज होती है।

#### (५) झबिया

यह आभूषण बाँह के मध्य भाग में पहिना जाता है। इस गहने की घुँघुरूदार तीन उल्टी हुई कटोरीनुमा आकृति होती है जो सूत के द्वारा आपस में गुंथी हुई रहती है। इसी सूत को स्त्रियाँ अपनी बाँहों में बाँध लेती हैं। झबिया अपेक्षाकृत भारी गहना होता है जिसे पहिनकर चलना कष्टसाध्य कार्य है। सम्भवतः इसीलिए अब लटकन और झबिया का पहिनना ‘आउट आफ फैशन’ हो गया है। अब तो इन गहनों का दर्शन होना भी दुर्लभ है।

### (ठ) वस्त्रों में टाँके जानेवाले आभूषण

कुछ गहने ऐसे भी हैं जो साड़ी के आँचल तथा किनारे पर टाँके जाते हैं। इनमें मनोरी-पत्ती का उल्लेख आवश्यक है।

#### (१) मनोरी

यह अत्यन्त छोटी-छोटी कण्टोरियों के समान होता है जिसे साड़ियों के किनारे पर टाँका जाता है। इसी प्रकार साड़ी के छोर पर घण्टी के आकार की झबिया बाँधी जाती है। नव विवाहिता वधू की पीली साड़ी में ये अलंकार टाँके जाते हैं।



## (२) पत्ती

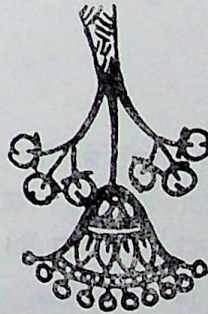
इसे अँचर पल्लो भी कहा जाता है जो संस्कृत 'अंचल-पल्लव' का अपभ्रंश रूप ज्ञात होता है। साड़ी के आँचर के कोने पर चाँदी का त्रिभुजाकार पत्तर टाँका जाता है। यही अँचर-पल्लो अथवा पत्ती कहलाता है। अब विवाह के अवसर पर भी साड़ियों में मनोरी-पत्ती को टाँकने की प्रथा का ह्रास हो रहा है।

## (२) अनुच्छेद—बालकों के आभूषण

भोजपुरी क्षेत्र में कुछ वर्ष पहिले छोटे-छोटे बालक भी गहना पहिना करते थे। यह प्रथा गाँवों में आज भी प्रचलित है। बालक जिस आभूषणों को धारण करते हैं उनकी सूची निम्नांकित है—

अंग	आभूषण का नाम
१. कान	बाला
२. हाथ	बेरा
३. कमर	डण्डा या करधनी
४. बाहु	बिजायठ
५. पैर	गोड़ाँव

लड़के अपने कानों में सोने का बना हुआ एक आभूषण पहिनते हैं जो आकृति में गोल होता है और उनके कानों से लटकता रहता है। इसे बाला कहा जाता है। वे अपने हाथ की कलाई में चाँदी का बना हुआ ठोस वलय का धारण करते हैं जो बेरा के नाम से प्रसिद्ध है। उनके बाहु के मध्य भाग में एक गोल तथा चपटा गहना मुशोभित होता है जो 'बिजायठ' कहलाता है। संस्कृत में इसकी संज्ञा केयूर है। बच्चे अपनी कमर में करधनी पहिनकर घूमते हैं जिसे डण्डा के नाम से अभिहित किया जाता है। उनके पैरों को चाँदी का आभूषण मुशोभित करता है जो 'गोड़ाँव' के नाम से पुकारा जाता है।





## अलंकरण तथा प्रसाधन के साधन

० ०

मानव-जाति में अपने शरीर को अलंकृत तथा सुशोभित करने की प्रथा चिरकाल से पायी जाती है। सभ्यता की आदि अवस्था में वर्तमान जातियाँ भी अपने शरीर को अलंकृत किया करती थीं। यह प्रथा पुरुषों तथा स्त्रियों दोनों में समान रूप से विद्यमान थी। युद्ध में अपने शत्रु को पराजित करने के लिए जानेवाले वीर-बाँकुरे एक विशेष प्रकार की वेशभूषा पहिनते थे जिसे शारीरिक अलंकरण का ही एक रूप समझना चाहिए। सौन्दर्य स्त्रियों की प्रधान विशेषता है। अतः इस सौन्दर्य की प्राप्ति के लिए वे विभिन्न प्रकार से अपने शरीर का अलंकरण करती थीं और आज भी करती हैं। गोदना गोदाने की प्रथा की उत्पत्ति इसी कारण से मानी जाती है। यह प्रथा संसार के सभी प्राचीन देशों में प्रचलित थी और भोजपुरी क्षेत्र में आज भी चली आ रही है। वर्णन की सुविधा के लिए इस परिच्छेद को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—(१) बालों के प्रसाधन (२) केशपाश बालों के गुंथने के प्रकार (३) शरीर के अन्य विभिन्न अंगों का प्रसाधन।

### (१) अनुच्छेद—बालों के प्रसाधन

गाँवों की देहाती दुनिया में सादगी का साम्राज्य विराजता है। वहाँ की स्त्रियाँ न तो 'लिपस्टिक' का प्रयोग करना जानती हैं और न 'नेल पालिश' से ही परिचित होती हैं। बालों में न तो 'कामिनिया आयल' के प्रयोग का नाम उन्होंने सुना है और न 'ब्राह्मी-आँवला' का ही कभी दर्शन किया है। वे दीर्घकालीन परम्परा से चले आते हुए तेलों का व्यवहार करती हैं। इन तेलों में तेज सुगन्ध भले ही न हो परन्तु बालों की दृष्टि से ये तेल बड़े ही लाभप्रद होते हैं।

#### (१) तेल

भोजपुरी स्त्रियाँ अपने लम्बे-लम्बे बालों में सरसों का तेल लगाकर उनका प्रसाधन किया करती हैं। भोजपुरी में इसे 'कड़आ' या 'करआ' तेल कहा जाता है। शुद्ध सरसों को पेरकर बनाया गया यह तेल 'बहुत तेज' होता है इसीलिए सम्भवतः इसका नाम 'कड़आ' (कटु) पड़ गया है। कुछ लोग इसे 'मीठा' तेल भी कहते हैं क्योंकि गरीब लोग इसे खाने के प्रयोग में भी लाते हैं।

#### (अ) सरसों का तेल

भोजपुरी समाज में यह प्रथा प्रचलित है कि जब कोई स्त्री अपने परिवार अथवा कुटुम्ब की किसी दूसरी स्त्री के पास जाती है तब वह उसका स्वागत-सत्कार शरबत अथवा चाय पिलाकर नहीं करती बल्कि उसके रूखे-सूखे बालों में 'कड़वा तेल' लगाती है जिसे 'तेल जाँतना' कहा जाता है। किसी स्त्री के सिर में 'तेल जाँतना' और उसका 'पैर मचसना' (दबाना) बड़े ही आदर का विषय समझा जाता है। इसीलिए विवाह के अवसर पर कन्या और वर के घर में जो 'सगुन' (मांगलिक गीत) गाये जाते हैं उनमें सम्मिलित होने के लिए—सगुन गाने वाली—स्त्रियों को सिर में लगाने के लिए तेल दिया जाता है। कुछ स्त्रियाँ तो अपने सिर में दो-तीन 'पड़री' तेल लगा लेती हैं, जो उनके बालों से चूता रहता है। इस प्रकार स्त्रियाँ 'कड़आ' तेल के द्वारा अपने बालों को चिकना तथा सुन्दर बनाती हैं।



लोक-साहित्य में सरसों का तेल लगाने का अनेक बार उल्लेख पाया जाता है। यज्ञोपवीत, विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर इसी तेल के प्रयोग का विधान पाया जाता है। एक लोक-गीत में इसके लगाने का वर्णन इस प्रकार से उपलब्ध होता है। कोई स्त्री कहती है कि दाल-भात मेरा भोजन है और सरसों के तेल से मैं स्नान करती हूँ।<sup>१</sup> बालों के लम्बे तथा काले होने में ही उनकी सुन्दरता मानी जाती है।<sup>२</sup> जायसी ने भी ऐसे बालों के सौन्दर्य की प्रशंसा की है।<sup>३</sup>

#### (आ) नारियल का तेल

जब अपने बालों को और अधिक लम्बा बढ़ाने की इच्छा होती है तब स्त्रियाँ उन बालों में नारियल का तेल लगाती हैं जिसे 'गरी का तेल' भी कहा जाता है। एक गीत में कोई माता अपनी पुत्री से पूछती है कि तुम कौन-सा तेल लगाती हो और किस कंधी से मचिया पर बैठकर अपने बालों को सँवार रही हो। इस पर पुत्री उत्तर देती है कि मैं नारियल का तेल लगाती हूँ और सोने की कंधी से अपने बालों को सँवारती हूँ।<sup>४</sup>

#### (इ) तीसी का तेल

निर्धन स्त्रियाँ अपने बालों में 'तीसी' (अलसी) का तेल लगाती हैं। यह तेल बालों के लिए उपयुक्त नहीं होता। कोई स्त्री कहती है कि मैंने अपने बालों में तीसी का तेल लगा लिया है अतः मेरे बाल 'लटिया' गये हैं अर्थात् गन्दगी के कारण वे आपस में चिपक गये हैं।<sup>५</sup> भगवती नामक कोई स्त्री सदा अपने बालों में तीसी का ही तेल लगाती है।<sup>६</sup>

#### (ई) रेड़ी का तेल

गर्मी के दिनों में स्त्रियाँ ठण्डे तेल के अभाव में 'रेड़ी' (अरण्डी) का तेल अपने सिर में लगाती हैं। यह तेल बड़ा गाढ़ा होता है परन्तु इसकी 'तासीर' ठण्डी होती है। आजकल जिस 'लाल केस्टर आयल' को लगाकर शौकीन लोग अपने काले बालों को सँवारते हैं वह इसी 'रेड़ी' के तेल का 'रिफाइण्ड' (साफ किया हुआ) रूप है। यह 'रेड़ी' का तेल दीपक जलाने के काम में लाया जाता है।

१. दाल-भात बाबा मोरा रे जेवनारवा,  
करवहि तेल असनान ए।

डॉ० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १।

२. कह्याँ पनिवा ससुर जी, अबरी से ढवरी नाहीं हो  
भीजेले हमार लामी हो केसिया।

३. भँवर केस वह मालति रानी। विसहर लुरे लेहि अरघानी॥

पद्मावत—नख-शिख खण्ड

४. आरे कचि केरा ककही, कथीय केरा तेल।  
आरे कथिका मचियवा हो बेटी; झारेलू लामी केस॥१०॥  
आरे सोना केरी ककही, नरियर केर तेल।  
आरे सोने का मचियवा हो अम्मा; झारीलू लामी केस॥२॥

डॉ० उपाध्याय—भो०लो०सा०अ० पृ० २९८।

५. आरे तिसिया के तेलवा से मथवा रे बन्हवलों  
से बारवा गइले रे लटिआई।

—वही पृ० २९८।

६. तिसिया के तेलवा से भगवती, माथवा से बँधवली।  
आरे तेलवे कचोटवे ए भगवती, पटिया रे बन्हवली॥

—वही, पृ० २९८।



## (उ) कोइना का तेल

महुआ के फल को 'कोयता' या 'कोइना' कहा जाता है। इसकी गुद्दी को कूटकर तेल तैयार किया जाता है जो 'कोइना' का तेल कहलाता है। यह तेल जाड़ों के दिनों में घी की तरह जम जाता है। इसकी आकृति घी की तरह सफेद तथा रवादार होती है। इस तेल को भी स्त्रियाँ अपने बालों में लगाती हैं। यह ठण्डा होता है तथा जलाने के काम में भी लाया जाता है। गरीब लोग इस तेल में पूरियाँ भी बनाते हैं। यह स्वाद में कुछ कड़ुआ (कटु) होता है।

जब स्त्रियों के सिर में जूँ या 'ढील' पड़ जाता है तब उन्हें नष्ट करने के लिए ये नीम का तेल सिर में लगाती हैं। यह तेल कटु होता है अतः जूँ नष्ट हो जाते हैं। लोक-गीतों में रेड़ी और को ना के तेल का उल्लेख पाया जाता है।

## बाल झारने के साधन

## (१) कंधी

स्त्रियाँ अपने बालों को कंधी से 'झारती' (सँवारती) हैं। यह कंधी प्रायः काठ की बनी होती है जिसके आगे 'दाँत' रहते हैं जिससे बालों को साफ किया जाता है। भोजपुरी में कंधी को 'ककही' कहते हैं। एक लोक-गीत में सोने की कंधी से बाल साफ करने का उल्लेख है जिससे तत्कालीन समाज के वैभव का पता चलता है।<sup>१</sup> हाथी दाँत और चन्दन की बनी कंधी तो देखने में आती है परन्तु सोने की कंधी लोक-गीतों की दुनिया में ही पायी जाती है। 'ककहा' को 'ककही' का ही बड़ा रूप समझना चाहिए जो अधिक उलझे हुए बालों की सफाई करता है।

## (२) थकरी

जब स्त्रियों के बाल 'लटिया' जाते हैं अर्थात् मैल एवं गन्दगी के कारण वे एक दूसरे से चिपक कर 'लाटा' बन जाते हैं, तब उनकी सफाई कंधी के द्वारा करनी असम्भव हो जाती है। ऐसी स्थिति में स्त्रियाँ 'थकरी'<sup>२</sup> के द्वारा अपने लम्बे एवं 'लटिआये' बालों को स्वच्छ करती हैं। वे अपने बालों को पकड़कर 'थकरी' से 'झारती' हैं जिसके फलस्वरूप गन्दे बाल टूटकर अलग हो जाते हैं और इस प्रकार सिर के बाल स्वच्छ हो जाते हैं।

## (२) अनुच्छेद—केश-पाश की रचना

## बालों को गुँथने के प्रकार

बालों को गुँथने की परम्परा बड़ी प्राचीन है। अजन्ता की गुफाओं में तथा खजुराहो के मन्दिरों में स्त्रियों के जो चित्र और मूर्तियाँ क्रमशः पायी जाती हैं उनकी कला के अध्ययन से उनके केशपाश के विन्यास पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। डॉ० मोतीचन्द्र ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'प्राचीन भारतीय वेशभूषा' में केशपाशों की रचना का बड़ा ही सुन्दर तथा प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया है।

## (१) जूरा

भोजपुरी स्त्रियाँ अपने समस्त बालों को एकत्रित करके—उन्हें समेटकर सिर के पिछले भाग में एक गोलाकार गाँठ की आकृति बना देती हैं जो 'जूरा' कहा जाता है। प्राचीन भारत में भी स्त्रियों के द्वारा जूरा बाँधने के उदाहरण चित्र तथा मूर्तिकला में पाये जाते हैं। चूँकि जूरा बड़ी सरलता से बाँधा जा सकता है अतः केश-पाश के विन्यास की सबसे प्रचलित पद्धति यही है। जूरा आकृति में गोल होता है। कोई अहीर अपनी मोटी लाठी के हूरा,

१. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भो०लो०गी० भाग १।

२. आरे सोने केरी ककही नरियर केर तेल।

डॉ० उपाध्याय—भो०लो०सा०अ० पृ० २९६।

३. 'थकरी' सूखे खस के छोटे टुकड़ों से बनायी जाती है। इसकी लम्बाई एक 'वित्ता' (१२ इंच) के बराबर होती है खस के टुकड़ों को सुतली से बाँधकर इसे बनाते हैं जिसकी आकृति प्रारम्भ में पतली और अन्त में मोटी होती है।



लाठी का निचला तथा मोटा भाग, की उपमा किसी स्त्री के 'जूरा' से देता हुआ कहता है कि ए गोरिया ! तेरा जूरा मेरे हूरे के समान है और तेरा गाल कोमलता में मालपुआ को भी मात करता है।'

## (२) चोटी

कुछ स्त्रियाँ अपने बालों को गूँथ कर एक वेणी बना लेती हैं। इस वेणी को 'चोटी' कहा जाता है। भोजपुरी में 'चोटी करना' एक मुहावरा के रूप में प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ है बालों को 'गूँह' (गूँथ) कर वेणी के रूप में उसे बनाना। कुछ स्त्रियाँ वेणी के अन्तिम भाग में सूत की बनी हुई काली रस्सी को गूँथ लेती हैं जो 'चोटी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस चोटी के अन्तिम भाग में काला 'फूलगेना' लगाया जाता है जो देखने में सुन्दर लगता है। जिन निर्धन स्त्रियों के पास, बालों में तेल लगाने के लिए धन का अभाव रहता है, वे अपने बालों को यों ही बिखरा हुआ छोड़ देती हैं। उनके अस्त-व्यस्त बाल मानों उसके जीर्ण-शीर्ण जीवन के प्रतीक हों।

## (३) वेणियाँ

आजकल शहरों में रहने वाली स्त्रियाँ तथा कालेज में पढ़ने वाली कुमारियाँ अपने बालों को दो भागों में विभक्त कर उनकी अलग-अलग दो वेणियाँ (चोटियाँ) बनाती हैं। आजकल दो चोटी का ही अधिक फैशन है यद्यपि गाँवों में अहीर की लाठी के 'हूरा' को चुनौती देने वाला 'जूरा' ही अधिक लोकप्रिय है। लोक-गीतों में 'जूरा' और 'चोटी' दोनों का उल्लेख पाया जाता है।

## (३) अनुच्छेद—शरीर के विभिन्न अंगों का प्रसाधन

### (१) अबटन

आजकल शरीर को सुन्दर बनाने के लिए अनेक प्रकार के प्रसाधन प्रचलित हैं। सुगन्धित साबुन, क्रीम, स्नो तथा पाउडर आदि अनेक प्रकार के प्रसाधन आज उपलब्ध हैं जिससे शरीर को अलंकृत किया जा सकता है। परन्तु देहाती दुनिया में जहाँ इन वस्तुओं का नितान्त अभाव होता है वहाँ ग्रामीण स्त्रियाँ शरीर के प्रसाधन के लिए अबटन तथा बुकवा का प्रयोग करती हैं। सरसों को तेल में भूनकर उसे पानी की सहायता से सिल पर पीसा जाता है। इस प्रकार जो 'लेप' तैयार होता है उसे 'अबटन' कहते हैं। भोजपुरी में इसे 'अबटन' की संज्ञा दी जाती है। इस अबटन में थोड़ा सरसों का तेल मिला दिया जाता है। फिर इसका लेप सारे शरीर में किया जाता है। इससे शरीर की मैल दूर होने के साथ ही साथ देह-यष्टि सुन्दर तथा चिकनी भी हो जाती है। भोजपुरी माता अपने पुत्र के शरीर में अबटन लगाती है। विशेषकर, जब वह विवाह करने जानेवाला होता है, उसके दो चार दिन पहिले से ही अबटन का लेप उसके शरीर में लगाना अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। नवागता बधू के शरीर में गाँव की नाईन अबटन लगाती है जिससे वह अधिक सुन्दर और कान्तिमती दिखायी पड़ने लगती है। लोक-गीतों में बहू अपनी सास को अबटन लगाती हुई वर्णित है। अबटन लगाकर सास को जगाने का यह वर्णन कितना सुन्दर है।'

१. हूरवा नियर तोर जूरवा ए गोरिया

पूअबा नियर तोर गाल।

डॉ० उपाध्याय—भो०लो०गी० भाग २।

२. झूला पहिरि हम बन्हवली रे जूरा।

पियवा नाही आवेला; सइयाँ नाही आवेला।

लेखक का निजी संग्रह

मोरी चोटी पर हाथ राजा धीरे से धरऽ।

—लेखक का निजी संग्रह

३. अबटन लाई-लाई सासु के जगवलों

राउर बेटा हो गइले, फकीरवा हो राम॥

—डॉ० उपाध्याय भो०लो०गी० अ० पृ० २९९



## (२) बुकवा

स्त्रियाँ शरीर को एक अन्य साधन से प्रसाधित करती हैं जो 'बुकवा' के नाम से प्रसिद्ध है। आटे में हलदी, सुगन्धित पदार्थ तथा पानी मिलाकर इस घोल को तैयार किया जाता है। इसका शरीर में लेप करने से देह कुछ चिकनी तथा पीली दिखायी पड़ने लगती है। उबटन का प्रयोग बारह महीनों में कभी भी किया जा सकता है परन्तु 'बुकवा' का उपयोग विवाह के समय, वर के लिए ही होता है। अतः इसका प्रयोग एक विशिष्ट अवसर से सम्बन्धित है।

उबटन और बुकवा ये दोनों ही बड़े उपयोगी तथा सस्ते प्रसाधन हैं जिसे किसी भी आर्थिक स्तर के व्यक्ति बड़ी सरलता से प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु अब गाँवों में भी साबुन का प्रवेश होने लगा है अथवा हो गया है। अतः इसके कारण इन दोनों प्रसाधनों का प्रचलन समाज से धीरे-धीरे उठता जा रहा है।<sup>१</sup> इस प्रसंग में यह कहना कुछ अनुचित नहीं होगा कि जहाँ बुकवा लगाना मांगलिक माना जाता है वहाँ यह आदर तथा सम्मान का भी प्रतीक है। भोजपुरी में एक कहावत प्रचलित है जिसमें कोई स्त्री या माता अपने पति या पुत्र से व्यंग्य रूप से कहती है कि तुम कौन-सी बड़ी 'कमायी' (अर्जन) करके घर आये हो जिससे तुम्हारे शरीर में तेल और बुकवा लगाया जाय।<sup>२</sup> भाव यह है कि बुकवा का प्रयोग या तो किसी मांगलिक अवसर पर किया जाता है अथवा किसी व्यक्ति-विशेष का आदर सत्कार करने के लिए।

## माँग

सिन्दूर, माँग का सबसे मांगलिक सुन्दर तथा प्रसिद्ध प्रसाधन है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने माँग में निश्चित रूप से सिन्दूर लगाती हैं क्योंकि यह उनके सौभाग्य का सूचक है। विवाह के अवसर पर 'सुमंगली' नामक विधि का सम्पादन किया जाता है। इस अवसर पर वर-कन्या के माँग में सिन्दूर लगाता है। इस विधि को 'सिन्दूर-दान' भी कहा जाता है। जायसी ने पद्मावती की माँग में लगाये गये सिन्दूर का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है।<sup>३</sup> गोस्वामी जी ने भी विवाह के अवसर पर राम के द्वारा सीता के माँग में सिन्दूर लगाने का उल्लेख किया है।<sup>४</sup> सधवा स्त्रियों के लिए सिन्दूर माँग का अनन्यतम प्रसाधन है। इससे इनके सौन्दर्य की वृद्धि होती है। विधवा स्त्रियाँ माँग में सिन्दूर नहीं लगातीं। एक लोक-गीत में कोई विधवा अपने दुःखों का वर्णन करती हुई कहती है कि मेरा माँग सिन्दूर के बिना रो रहा है।<sup>५</sup> प्रियतम के घर न आने पर सिर के सिन्दूर को धो देने का उल्लेख भी पाया जाता है।<sup>६</sup>

१. इस लेखक की पूजनीया तथा प्रातःस्मरणीया दादी श्रीमती मूर्तिदेवी जी अपने पुत्रों के तीस-चालीस वर्ष की अवस्था प्राप्त कर लेने पर भी उन्हें बड़े प्रेम से उबटन लगाया करती थी और कहती थी कि इससे शरीर सुन्दर, स्वस्थ और सुचिक्कण होता है।

२. बड़ा कमाई पर तेल बुकवा।

—लेखक का निजी संग्रह

३. (क) सिन्दुर अबहि चढ़ा जेहि नाहीं।

(ख) बिनु सिन्दुर अस जानहु दीया।

उजियर पन्थ रैन मँहकीया॥

पद्मावत—नख-शिख वर्णन खण्ड

४. राम सीय सिर सेन्दुर देहीं;

सोभा कहि न जाइ विधि केहीं॥

रा० च० मा० (बा० का०)

५. बाबा माँग मोर रोवेला सिनुर बिनु,

नयना काजरवा बिनु ए रास।

६. धोइ डाल सिर के सेनुरवा, नयनवा के काजर हो।

धोइ डाल सोरहो सिंगार; कन्हैया नाहीं घर अइले हो॥

—लेखक का निजी संग्रह



(क) ललाट

स्त्रियाँ जिस प्रकार अपने माँग की शोभा सिन्दूर लगाकर करती हैं उसी प्रकार ललाट में लाल बिन्दी लगाकर इसे सुशोभित करती हैं। यह बिन्दी या तो सिन्दूर की ही होती है अथवा 'रोरी' की। पुरानी परम्परा का पालन करने वाली स्त्रियाँ अपने ललाट में टिकुली 'साटती' या लगाती हैं जो प्रायः लाल होती है। कुछ स्त्रियाँ बड़ी और गोली टिकुली ललाट पर 'साटती' (लगाती) हैं जिन्हें उनके बड़े आकार के कारण 'टिकुला' कहा जाता है। टिकुली प्रायः गोली तथा चपटी हुआ करती है परन्तु आजकल त्रिकोणी ( $\Delta$ ) तथा पतली और लम्बी  $\uparrow$  टिकुली का प्रचार पाया जाता है। शिक्षित स्त्रियाँ अब टिकुली का व्यवहार न कर केवल एक लाल टीका लगाती हैं जिसे लाल बिन्दी  $\odot$  का प्रतिनिधि मानना चाहिए। स्त्रियों के ललाट में बिन्दी लगा देने पर उनका सौन्दर्य अगणित रूप से बढ़ जाता है। इस बात को रीतिकालीन महाकवि बिहारी ने भी स्वीकार किया है।<sup>१</sup>

लोक-गीतों में 'रस बेनुली टिकुलिया' का वर्णन बहुत पाया जाता है। ग्रामीण स्त्रियाँ परदेस को जाते हुए अपने प्रियतम से लौटने पर सुन्दर टिकुली लाने की प्रार्थना करती हैं।<sup>२</sup> भोजपुरी भाई तीज के अवसर पर अपनी बहिन के लिए साड़ी, सिन्दूर, चूड़ी और टिकुली उपहार में लाता है।

लाल टीका

सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने ललाट पर लाल तिलक या टीका लगाती हैं जो उनके सौभाग्य का सूचक है। यह तिलक लाल रंग के 'इंगुर' का होता है। कुछ स्त्रियाँ लाल तिलक न लगाकर ललाट में केवल बिन्दी धारण करती हैं जो आकृति में टीका से बहुत छोटी होती है। कुछ स्त्रियाँ लाल बिन्दी के स्थान पर काली बिन्दी से अपने ललाट को सुशोभित करती हैं। काली बिन्दी लगाने का उनका अभिप्राय यह होता है कि किसी की कुदृष्टि से उनकी रक्षा होती रहे। किसी की नज़र न उन्हें लग जाय।

आँख—(१) काजल

आँखों को प्रसाधित करने के दो साधन हैं—(१) काजल और (२) अञ्जन। घर की बड़ी और बूढ़ी स्त्रियाँ अपने छोटे बच्चों की आँखों में काजल लगाती हैं। वे सरसों के तेल अथवा घी का दीपक जलाकर उसकी लौ से निकले हुए धूम्र को लोहे के छोटे तथा चपटे पात्र में एकत्रित करती हैं जिसे 'कजरौटा' कहा जाता है। इसी धूम्र से उत्पन्न 'धूलि' में सरसों का तेल मिलाकर 'काजल' बनाया जाता है जिसे 'काजर' भी कहते हैं। आँखों में काजल लगाने से इनकी शोभा बहुत अधिक बढ़ जाती है। कोई माता यशोदा से अपने बच्चे के आँखों में काजल लगाने के लिए प्रार्थना करती है।<sup>३</sup> लोगों का ऐसा विश्वास है कि काजल लगाने से आँखों की ज्योति बढ़ती है। इसीलिए स्त्रियाँ नवजात शिशु की आँखों में काजल अवश्य लगाती हैं। पुरुषों के लिए केवल जनेऊ और विवाह—इन दो अवसरों पर काजल लगाने का विधान पाया जाता है। विवाह के समय वर की आँखों में काजल उसके सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए लगाया जाता है। एक गीत में काजर से हीन वर की बड़ी निन्दा की गयी है।<sup>४</sup>

परन्तु काजल का प्रयोग प्रधानतया स्त्रियाँ ही करती हैं। 'कजरारे नैना' का वर्णन हिन्दी साहित्य में प्रचुर रूप में पाया जाता है। काजल लगाने से आँखों की शोभा और भी बढ़ जाती है। इसीलिए काजल स्त्रियों के प्रसाधन का चिर सहचर हो गया है।

१. यहै कहैं बेंदी दिये, आँक दस गुनो होत।

तिय लिलार बेंदी दिये, अगणित बढ़त उदोत॥

बिहारी—रत्नाकर दोहा

२ हमरा के ले अइह रस बेनुली टिकुलिया।

३. बबुआ के बड़ी-बड़ी अँखिया देखत नीक लागै।

करिँ ना जसोदा मइया काजर अँगुरिया जनि डोलै हो॥

डॉ० श्रीधर मिश्र भो०लो०वि०रू० पृ० ३३

४. आँखि तोर देखीं ए वर कजरो नाहीं।

माई तोर लोहरवा के साथे काहे ना लाये रे बर॥

डॉ० श्रीधर मिश्र—वही पृ० ९०



## (२) अञ्जन

नेत्रों को सुशोभित करने का दूसरा उपकरण अञ्जन है जिसे ग्रामीण बोली में 'आँजन' कहा जाता है। इसका प्रयोग नेत्रों की शोभा को बढ़ाने की अपेक्षा आँखों के रोगों को दूर करने के लिए विशेष रूप से किया जाता है। घर की कोई बूढ़ी तथा अनुभवी स्त्री, पीतल की थाली की पीठ पर मेथी, ताम्बे का पैसा, बेल की पत्ती, लवंग और कपूर को रखकर उसमें किसी स्त्री का दूध थोड़ा डालकर उसे घण्टों रगड़ती है। कुछ समय तक रगड़ते-रगड़ते उसका स्वरूप द्रव के रूप में हो जाता है। इसी गाढ़े द्रव को आँखों में लगाया जाता है जिससे आँखों के रोग—फूली, माँड़ा, रतौंधी दूर हो जाते हैं। यह आँजन रोगों को दूर करने के साथ ही आँखों को सुशोभित भी करता है। गोस्वामी तुलसीदास जी के समय में भी यह परम्परा प्रचलित थी। इसीलिए उन्होंने मीराबाई के पास प्रेषित अपने पत्र में लिखा था कि—

अंजन कहा आँख जो फूटे  
बहुतहि कहौ कहाँ लों॥

लोक-गीतों में भी 'अंजन' का वर्णन पाया जाता है<sup>१</sup>।

## (३) सुरमा

कुछ स्त्री और पुरुष अपनी आँखों में सुरमा भी लगाते हैं। यह प्रधानतया आँखों की ज्योति को बढ़ाने के लिए लगाया जाता है परन्तु कुछ शौकीन लोग आँखों के प्रसाधन के लिए भी इसका प्रयोग करते हैं। बरेली का बना हुआ 'सुरमा' बड़ा प्रसिद्ध है। यह पाउडर के रूप में होता है और सलाई (शलाका) की सहायता से आँखों में लगाया जाता है। एक लोक-गीत से पता चलता है कि किसी नायिका ने आँखों में सुरमा लगाया है जिससे उसकी आँखें इतनी सुन्दर तथा चित्ताकर्षक हो गयी हैं कि नायक का मन लुभा जाता है।<sup>२</sup> आँखों के प्रसाधन के रूप में सुरमा की अपेक्षा काजल और अञ्जन का ही उल्लेख लोक-गीतों में अधिक हुआ है।

## दाँत—मिस्सी

दाँतों की शोभा बढ़ाने का एकमात्र साधन 'मिस्सी' समझा जाता है। इस काले पाउडर का सतत प्रयोग करने से दाँतों की स्वच्छता नष्ट हो जाती है और वे काले पड़ जाते हैं। परन्तु स्त्रियाँ इसी को अपने दाँतों का शृंगार समझती हैं। यों तो साहित्य में सुन्दर तथा सफेद दाँतों की उपमा बिजली, कुड्मल (फूल की 'कोंढी') मोती तथा अन्य स्वच्छ पदार्थों से दी गयी है परन्तु स्त्रियाँ मिस्सी लगाने में ही अपने दाँतों के सौन्दर्य की वृद्धि समझती हैं। सम्भवतः जायसी के समय में भी दाँतों के प्रसाधन की यह प्रथा प्रचलित थी। इसीलिए उन्होंने पद्मावती के 'नख-शिख' वर्णन के प्रसंग में उसके दाँतों में मिस्सी लगाने का उल्लेख किया है।<sup>३</sup>

कुछ धनी मानी पुरुष और स्त्रियाँ अपने अगले दो बड़े-बड़े दाँतों में छेद करवा कर उसमें सोना लगवा लेते हैं। सफेद दाँतों के बीच में यह सोना बड़ा चमकीला तथा सुन्दर लगता है। परन्तु यह प्रथा केवल उच्च तथा धनी वर्ग के कुछ लोगों तक ही सीमित है। लोक-गीतों में मिस्सी लगाने का उल्लेख बहुत ही कम पाया जाता है। केवल एक स्थान पर इसकी चर्चा इस प्रकार हुई है।<sup>४</sup>

१. लेखक का निजी संग्रह।

२. ऊँच-ऊँच लिलरा पर टिकुली रसीली सोभे  
बड़ी-बड़ी आँखियन में; सुरमा नीक लागे हो।

लेखक का निजी संग्रह

३. जायसी—पद्मावत—नख-शिख वर्णन खण्ड

४. गोरिया ह रंगीली ओकरा मिलल पान के खिली।  
दाँतवाँ में मिस्सी लगावेले सँझियाँ के रिझावेले ना।

लेखक का निजी संग्रह



गला—फूलों की माला

किसी व्यक्ति के स्वागत-सत्कार तथा विदाई के अवसर पर उसको फूलों की माला पहिनाना एक साधारण शिष्टाचार समझा जाता है। कन्या पक्ष वालों के घर पर जब वारात आती है तो प्रायः प्रत्येक वाराती—वारात के सदस्य—को फूलों की माला अर्पित की जाती है। स्त्रियाँ फूलों की माला को भी प्रसाधन के रूप में प्रयोग करती हैं। महाराष्ट्र प्रदेश की स्त्रियाँ अपने जूड़ा में पुष्पों की माला धारण करती हैं।

सुगन्धित फूलों—जैसे बेला और चमेली—की मोटी माला को 'गजरा' कहते हैं। इस गजरा को भी भोजपुरी पुरुष तथा स्त्रियाँ बड़े शौक से पहिनती हैं। लोक-गीतों में 'गजरा' का उल्लेख पाया जाता है।<sup>१</sup> फूलों को सेज पर बिखेरने का वर्णन मिलता है जिससे रातभर सुगन्धमय वातावरण हो जाता है।<sup>२</sup> स्त्रियाँ माला को प्रसाधन के रूप में अपने गले में प्रायः पहिनती हैं।

बाँह—गोंदना

यह बाँहों का एकमात्र प्रसाधन है। काजल को दूध में घोलकर और भृंगराज-भेंगरिया की पत्तियों का रस मिलाकर इसे तैयार किया जाता है। नट जाति की स्त्रियाँ—जिसे 'नटुइनि' कहा जाता है—गोंदना गोदने का काम किया करती हैं। वह सुइयों को बाँहों में चुभोती जाती हैं और स्त्रियों के कण्ठ को दूर करने के लिए शृंगार रस भरी गीत भी गाती जाती हैं। गोंदना गोदने के कारण नेटुइनि को 'गोदनहरी' भी कहा जाता है। एक गीत में इसका उल्लेख पाया जाता है।<sup>३</sup> विवाहिता स्त्रियाँ ही गोंदना गोदवाती हैं। कुंवारी लड़कियाँ नहीं। गोंदना से हाथ का सौन्दर्य बहुत अधिक बढ़ जाता है। कोई दुष्ट ससुर भोजन करते समय अपनी पुत्रवधू के हाथों का गोदना देखकर खाना-खाना ही भूल जाता है।<sup>४</sup> कोई स्त्री 'नेटुइनि' से निवेदन करती है कि तुम इस प्रकार गोदना को गोदो जिस प्रकार विभिन्न रंगों के साथ रँगरेज चुनरी रँगता है।<sup>५</sup> गोंदना का काला रंग स्थायी हो जाता है। अतः स्त्रियों का विश्वास है कि मृत्यु के उपरान्त यही परलोक में साथ जाता है। उनकी यह भी धारणा है कि इसके बिना स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती।

हाथ—मेंहदी

सावन के मनभावन महीने में स्त्रियाँ अपने हाथों में मेंहदी लगाती हैं। मेंहदी के पेड़ की पत्तियाँ हरी तथा छोटी होती हैं। इन पत्तियों को सिल (सिलवट) पर लोढ़ा से पीसा जाता है और इसके रंग को स्थायी तथा तेज बनाने के लिए इसमें थोड़ा सरसों का तेल मिला दिया जाता है। इसके पश्चात् स्त्रियाँ पीसी गयी इस मेंहदी को सींक से उठाकर अपने हाथों पर बिन्दी के रूप में स्थान-स्थान पर रखती जाती हैं। इस प्रक्रिया को 'मेंहदी रचाना' कहा जाता है। जब मेंहदी सूख जाती है तब हाथों को पानी से धो देते हैं। फिर हाथों की शोभा अगणित बढ़ जाती है। ये हाथों पर लाल छीट के समान दिखायी पड़ने लगते हैं।

१. इ गजरा केकरा गला में डालो।

२. कलिया चुनि-चुनि सेजिया डसवली।

मोरा सोवन वाला विदेस तरसे।

मोरी बारी उमिरिया नइहर तरसे॥

३. पुरुब पछिमवा से अइली नेटुइनिया रामा।

हरि-हरि केहु साँवरि गोदना,

गोदवइहनि ए हरी।

४. सासु के दाँते बतीसी; बहू के बहियाँ गोदना।

ससुर जेवना ना जेबें; निरखे गोदना॥

५. अइसन गोदना गोद रे गोदनरिया।

जइसे चुनरी रँगेला रँगरेज॥

डॉ० उपाध्याय—भो०लो०गी०भा० १

लेखक का निजी संग्रह

डॉ० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग १, पृ०



आजकल 'मेंहदी रचना' एक कला हो गयी है। स्त्रियाँ इस मेंहदी के द्वारा अपने हाथों पर देवी, देवताओं तथा राष्ट्रीय नेताओं के चित्र भी अंकित करने लगी हैं। हाथों पर मेंहदी से स्वास्तिक तथा ओम् 'ॐ' की आकृत बनाना साधारण बात समझी जाती है।

जब स्त्रियाँ अपने हाथों में मेंहदी लगाती हैं तब वे कोई भी काम नहीं करती हैं जब तक कि मेंहदी अच्छी तरह से सूख न जाय। इसलिए इस सम्बन्ध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध हो गयी है।<sup>१</sup> लोक-गीत में इसका उल्लेख पाया जाता है।<sup>२</sup> हिन्दी के एक आधुनिक कवि ने मेंहदी का सुन्दर वर्णन करते हुए इसके द्वारा बड़ा ही अच्छा उपदेश दिया है।<sup>३</sup>

### पैर—महावर

पैरों का प्रसाधन प्रधानतया महावर से किया जाता है जिसे संस्कृत में 'आलक्तक' कहते हैं। किसी भी मांगलिक कार्य के अवसर पर चाहे वह मुण्डन हो या जनेऊ हो, चाहे विवाह हो या गवना, स्त्रियाँ अपने पैरों में महावर लगाना अत्यन्त आवश्यक समझती हैं। यह कार्य गाँव की नाऊ की स्त्री नाईन करती है। इसके अतिरिक्त सत्यनारायण की कथा, व्रत तथा त्यौहारों के अवसर पर भी स्त्रियाँ महावर का प्रयोग करती हैं।

पैरों में महावर लगाने की प्रथा बहुत प्राचीन ज्ञात होती है। कालिदास ने यह वर्णन किया है जब शकुन्तला राजा दुष्यन्त के यहाँ जा रही थी उस समय किसी वृक्ष ने उसे क्षौम वस्त्र दिया और किसी ने प्रेमवश 'लाक्षारस' प्रदान किया।<sup>४</sup> महाकवि बिहारी ने लिखा है कि किसी नायिका के पैर में महावर लगाने के लिए कोई नाईन आयी। परन्तु नायिका के पैरों की लाली को देखकर वह बड़े असमंजस में पड़ गयी।<sup>५</sup> लोक-साहित्य में भी महावर लगाने के अनेक उल्लेख पाये जाते हैं।<sup>६</sup>

### इत्र

जहाँ निर्धन स्त्रियाँ 'तीसी' के तेल अपने वालों में लगाती हैं वहाँ धनी तथा शौकीन महिलायें अपने शरीर को सुगन्धित रखने के लिए इत्र अथवा सुगन्धित तैलों का प्रयोग करती हैं। इत्र किसी अंग विशेष में नहीं लगाया जाता। शौकीन स्त्री और पुरुष इत्र में भींगा हुआ रूई का 'पाहा' अपने कानों में धारण करते हैं जिससे उसकी सुगन्ध का अनुभव सदा होता रहे। कुछ लोग अपने हाथ की तलहथी के ऊपरी भाग में इत्र लगाते हैं। स्त्रियाँ अपने कपड़ों को इत्र से सुवासित कर देती हैं जिससे वह 'गमकता' रहता है। एक लोक-गीत में कोई स्त्री अपने पति से इत्र लगाने का आग्रह करती है।<sup>७</sup> इसे भोजपुरी में 'अत्तर' कहते हैं जो इत्र का ही विकृत रूप है।



१. का तू अपना हाथ में मेंहदी लगावले बाडू।
२. मेंहदी अइसन जियरा हम दूनो जने के।
३. कुल से छूटी, कूट कर पीसी गई।  
तब तेरे पद छूने पाई मेंहदी॥  
खूनी होते हैं जगत के सबज रंग।  
यह दुहाई दे रही है मेंहदी॥
४. अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक ४,
५. पाँइ महावर दैन को नाइनि बैठी आय।  
फिरि फिरि जानि महावरी, एड़ी मीजति जाय॥
६. गोड़वा महावरि लवले, पहिने सबज रंग चुनरिया।  
देखें साँवरि अपनी सुरतिया, दरपनवा में॥
७. अपना के ले अइह पिया बेला-चमेली।  
हमके ले अइह ५ हो अतरवा, गमके सारी रात॥

—बिहारी-रत्नाकर : दोहा ३५

—लेखक का निजी संग्रह

—लेखक का निजी संग्रह



## भोजपुरी लोक-कला

० ०

लोक-कला उतनी ही प्राचीन है जितनी पुरानी मानव सभ्यता। भारतवासियों का जीवन सदा से कलात्मक रहा है और आज भी है। हमारी प्राचीन ललितकलाएँ तो गौरवशालिनी हैं ही, परन्तु आज जन-जीवन में उपलब्ध लोक-कलाओं का भी कुछ कम महत्त्व नहीं है। ग्रामीण जन जो भी कार्य करते हैं उसे वे कलात्मक रीति से सम्पादित करते हैं। घर बनाने से लेकर बालकों द्वारा घरों का बनाने तक में एक विशेष प्रकार की कला दिखायी पड़ती है। भोजपुरी लोक-कला को सामान्यतया निम्नांकित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है:—

- |                  |               |
|------------------|---------------|
| (१) वास्तुकला    | (२) मूर्तिकला |
| (३) चित्रकला     | (४) अल्पना    |
| (५) थापे         | (६) गोदना     |
| (७) मेंहदी       | (८) महावर     |
| (९) मिष्ठान्न    | (१०) विविध    |
| (११) गृह-निर्माण |               |

इन कलाओं का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। इसके साथ ही भोजपुरी लोक-गीतों में जहाँ इनका उल्लेख हुआ है उसे भी पुष्टि के लिए दिया जाता है।

### (१) परिच्छेद

#### वास्तुकला

भोजपुरी वास्तुकला के अन्तर्गत गृह-निर्माण को प्रमुख स्थान प्राप्त है। भोजपुरी क्षेत्र में प्रायः दो प्रकार के मकान पाये जाते हैं:—(१) कच्चा (२) पक्का। पक्का मकान उसे कहते हैं जो ईंटों से बनाया जाता है। गाँव के धनी तथा समृद्ध व्यक्ति ही पक्के मकानों को बनवाते हैं। परन्तु अधिकांश ग्रामीणों के मकान प्रायः कच्चे होते हैं। कच्चे मकान को भी दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है:—(१) मिट्टी के मकान (२) छप्पर के मकान। मिट्टी से बने हुए मकानों की दीवारें प्रायः मोटी होती हैं और ऊपर से इसे खपड़ा तथा नरिया से छा दिया जाता है।

#### निर्माण का प्रकार

नोनिया जाति के लोग मिट्टी के मकानों को बनाने का कार्य करते हैं। वे किसी गड्ढे में से अथवा खेत में से मिट्टी खोदते हैं। फिर उसमें पानी मिलाकर उसका बड़ा-बड़ा गोला बनाते हैं जिसे 'लोइया' कहा जाता है। मिट्टी के इन गोल पिण्डों को वे एक-दूसरे के ऊपर रखते चले जाते हैं। जब इस दीवाल की ऊँचाई एक हाथ अथवा दो-तीन फीट तक हो जाती है तब उसे सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। प्रथम बार के इस निर्माण को 'रादा' कहा जाता है। जब दीवाल सूख जाती है तब पुनः 'सानी' हुई मिट्टी के गोल पिण्डों (लोइया) को इसके ऊपर रखा जाता है। दीवाल की ऊँचाई दो-तीन फीट हो जाने पर पुनः इसे सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार से एक रादा के ऊपर मिट्टी का दूसरा 'रादा' रखा जाता है। जब मकान की अभीष्ट ऊँचाई तक दीवाल ऊँची हो जाती है तब फिर उसे कुछ दिनों तक सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। किसी व्यक्ति की कुदृष्टि के कारण दीवाल गिर न जाय इसलिए इस पर किसी लकड़ी में लगाकर लाल मिर्चा गाड़ दिया जाता है।



सम्पूर्ण दीवाल के पूर्णतया सूख जाने पर इसके ऊपरी भाग का निर्माण प्रारम्भ किया जाता है। सबसे पहिले लम्बाई में स्थित दोनों ओर की दीwalों के मध्य भाग में एक विशाल तथा मोटी लकड़ी स्थापित की जाती है जिसे 'लरही' कहते हैं। इसके पश्चात् लरही से लेकर दीवाल तक वाँस के अनेक लम्बे खण्डों को रखा जाता है जिसे 'कोरो' कहा जाता है। इस कोरो के ऊपर वाँस को अनेक टुकड़ों में चीरकर रखते हैं जिसे 'फरठा' की संज्ञा प्राप्त है। इस फरठा के ऊपर पूस या रवई रखा जाता है। इसके ऊपर गीली स्थापित की जाती है। उसके ऊपर खपड़ा और इसके पश्चात् 'नरिया' स्थापित किया जाता है। इस प्रकार मिट्टी का कच्चा मकान बनकर तैयार हो जाता है। दीवाल के ऊपर रखे गये 'कोरो' के 'सपोर्ट' (सहायता) के लिए दीवाल के बाहरी भाग में काठ की बनी घोड़े की आकृति वाली लकड़ियाँ लगायी जाती हैं जिन्हें घोड़मुँहा कहा जाता है। मकान के ऊपरी भाग का बरसात का पानी जहाँ से नीचे गिरता है उस अन्तिम भाग को 'ओरी' कहते हैं। मकान के सबसे ऊँचे भाग को 'बड़ेरी' की संज्ञा प्राप्त है। बड़ेरी का पानी ओरी से होकर नीचे गिरता है। इसीलिए किसी प्रतिकूल कार्य को करने की उपाय 'ओरी के पानी बड़ेरी जाला' से दी जाती है। ओरी के पास एक लम्बी नक्काशीदार लकड़ी सुन्दरता के लिए लगा दी जाती है जो 'मुहब्बत' के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ लोग ओरी के पास साधारण नरिया न लगाकर एक ऐसे नरिया को लगाते हैं जिनके अग्रभाग में गोली आकृति बनी रहती है। इसे लोग 'चुकिया' कहते हैं। इसका प्रयोजन केवल सौन्दर्य प्रदान करना है। गृह-निर्माण का कार्य समाप्त हो जाने पर इसके सर्वोपरि भाग (बड़ेरी) के ऊपर मिट्टी की बनी कुछ बड़ी-बड़ी गोली आकृति वाली वस्तुएँ स्थापित की जाती हैं अन्त में घर में निवास करने के लिए आने के पहिले 'गृहप्रवेश' नामक वास्तु संस्कार किया जाता है। इस पूजा के पश्चात् गृह निवास के उपयुक्त माना जाता है।

### कमरों की संख्या

भोजपुरी मकानों की विशेषता यह है कि एक घर में केवल एक ही दरवाजा होता है। यह दरवाजा अपेक्षा-कृत छोटा तथा नीचा होता है जिसमें प्रवेश करते समय सिर को झुकाना पड़ता है। भोजपुरी घरों में खिड़की, जिसे झरोखा कहते हैं, का नितान्त अभाव पाया जाता है। वायु तथा प्रकाश के लिए केवल दरवाजा ही पर्याप्त समझा जाता है। परन्तु आजकल के बने पक्के मकानों में खिड़कियों को स्थान दिया जाने लगा है।

भोजपुरी प्रदेश में पर्दे की प्रथा के कारण स्त्रियों तथा पुरुषों के आवास स्थान अलग-अलग होते हैं। घर के आगे पुरुषों के रहने के लिए 'ओसारा' बनाया जाता है जिसे ढावा अथवा वरामदा भी कहते हैं। धनी तथा समृद्ध व्यक्ति के घर के आगे एक बहुत बड़ा 'हाल' बनाते हैं जिसे 'दालान' की संज्ञा प्राप्त है। इस दालान के आगे ओसारा होता है जिसके दोनों ओर दो कोठरियाँ बनी होती हैं। इस दालान में होली के अवसर पर नाच-गान होता है, 'गवनई' होती है और गाँव में आयी हुई बारात ठहरायी जाती है। गाँवों में दालान का होना प्रतिष्ठा का विषय समझा जाता है। अतः उस व्यक्ति को 'दालानवाले बाबू साहब अथवा बाबा जी' कहकर सम्बोधित किया जाता है।

भोजपुरी गृहों में एक कमरा सोने के लिए होता है जहाँ सभी स्त्रियाँ साथ में सोती हैं। जो नव विवाहिता बधू है वह दूसरे कक्ष में सोती है जहाँ उसका पति रात को चोर की भाँति उसके पास आता है। तीसरा कक्ष रसोईघर होता है जहाँ स्त्रियाँ चूल्हों में लकड़ी जलाकर रसोई बनाती हैं। इस घर को दो भागों में विभक्त किया जाता है, बीच में एक छोटी-सी दीवाल खड़ी कर दी जाती है जिसे 'पाख' कहा जाता है। रसोई बनाकर उसे पुरुषों को खाने के लिए परोसकर नव-बहू इसी 'पाख' के पास बैठी रहती है जिससे उसे पुरुष न देख सकें। रसोईघर में जहाँ चूल्हा रखा जाता है उसे 'चुन्हानी' कहते हैं।

रसोईघर के अतिरिक्त एक 'जाँतघर' होता है जहाँ गेहूँ पीसने के लिए जाँत घर में गाड़ा गया रहता है। घर की स्त्रियाँ यहीं बैठकर जाँत पीसती हैं। इसी घर में ओखरि और भूसल भी रखा रहता है जहाँ हाथ में भूसल लेकर स्त्रियाँ चावल या दाल छाँटती हैं। कहीं-कहीं घर के भीतर भी ओसारा होता है। भोजपुरी गृहों की रचना प्रायः चौकोर होती है। बीच में खुला आँगन होता है और उसके चारों ओर घर बने रहते हैं। इसी आँगन में बैठकर स्त्रियाँ नहाती-धोती हैं।

### छप्पर का घर

दूसरे प्रकार का मकान छप्पर का बना हुआ होता है। इसकी दीवाल अरहर के पौधा—जिसे 'रहरेठा' कहा



जाता है—से बनी हुई होती है। छप्पर के घरों को बनाने की प्रक्रिया निम्नांकित है। लकड़ी के उन मोटे खम्भों को जो छप्पर-रूपी छत को सँभाले रहते हैं 'खम्भा' कहते हैं। यदि छप्पर भारी हो तो उसको नीचे से सहारा देने के लिए छोटी-छोटी लकड़ियाँ लगा दी जाती हैं जो 'थून्ही' के नाम से प्रसिद्ध है। इन मोटे-मोटे लकड़ी के खम्भों के ऊपर एक लम्बी मजबूत लकड़ी अथवा मोटा बाँस रखा जाता है जिसे 'लरही' की संज्ञा प्राप्त है। छप्पर के निर्माण के पहिले लम्बे-लम्बे बाँस के खण्ड जमीन पर रखे जाते हैं जो 'कोरो' कहलाते हैं। इन्हीं 'कोरो' पर बाँस को चीरकर उसके लम्बे तथा पतले टुकड़ों—जो 'वाता' या 'वत्ता' कहा जाता है—को बाँसों पर बिछा दिया जाता है। इन्हीं वत्तों के ऊपर सरकण्डा या खरपत (गर्ह) को बिछा देते हैं। जहाँ सरकण्डा प्राप्त नहीं होता वहाँ उसके छिलके या मूँज से काम लिया जाता है। मूँज की रस्सी को डोरी कहते हैं। इसी डोरी की सहायता से सरकण्डे को 'वत्ता' और 'कोरो' से कसकर बाँध देते हैं। इस प्रकार से जब छप्पर बाँध-छानकर जमीन पर तैयार हो जाता है तब उसे कई लोगों की सहायता से ऊपर उठाकर दोनों खम्भों के ऊपर स्थित लरही के ऊपर स्थापित कर दिया जाता है। इस छप्पर को दोनों ओर थोड़ा झुका देते हैं जिससे बरसात का पानी छप्पर पर से फिसलकर जमीन पर गिर जाय। परन्तु जब छप्पर का बना मकान बनाना अभीष्ट होता है तब उपर्युक्त पद्धति से दो छप्परों को पृथक्-पृथक् बनाया जाता है। इनमें से प्रत्येक छप्पर को 'पल्ला' कहते हैं। फिर दोनों पल्लों को दोनों ओर से उसी लरही पर स्थापित किया जाता है। ये दोनों पल्ले खिसककर कहीं गिर न जायँ इसलिए उनके ऊपरी भाग को मोटी रस्सियों से आपस में बाँध देते हैं। जब छप्पर के ये पल्ले बहुत भारी होते हैं तब उनकी स्थिति को दृढ़ बनाये रखने के लिए सहारे की लकड़ी लगायी जाती है जिसे टेक, ठेंगुनी या 'थून्ही' की संज्ञा दी गयी है। दोनों पल्लों को कसकर मजबूती के साथ बाँधे रखने के लिए उनमें छोटी तथा आड़ी लकड़ियाँ लगायी जाती है जिसे 'कैची' कहते हैं। छप्पर का वह अन्तिम भाग जहाँ से वर्षा का पानी चू-चूकर जमीन पर गिरता है 'ओरी' कहलाता है। जनपदीय भाषा में इस प्रकार से बनाये गये छप्पर को 'पलानी' के नाम से अभिहित किया जाता है। इसमें एक छोटा-सा दरवाजा लगा दिया जाता है। परन्तु कुछ लोग अरहर का बना बेड़ा दरवाजे के स्थान पर लगा देते हैं।

## (२) परिच्छेद

### मूर्तिकला

गाँवों में ग्रामीण कलाकार मूर्तियों के निर्माण में निपुण दिखायी पड़ता है। इन मूर्तियों को साधारणतया चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) प्रस्तर की मूर्तियाँ (२) काष्ठमयी मूर्तियाँ (३) मृण्मयी मूर्तियाँ (४) धातुमयी मूर्तियाँ।

लोक-गीतों में पत्थर के बने देवस्थान तथा पाषाणमयी मूर्तियों का उल्लेख पाया जाता है। ग्रामीण कलाकार पत्थर के द्वारा शिवलिङ्ग का निर्माण करते हैं। वे अपनी छेनी के द्वारा हनुमान् की विशाल पाषाणमयी प्रतिमा को भी बनाते हैं।

काठ की बनी मूर्तियों में 'जगन्नाथ' जी की गणना की जा सकती है। गाँवों के अशिक्षित कारीगर लकड़ी के द्वारा छोटे-छोटे पशु और पक्षियों की भी आकृति बनाते हैं जो देखने में बड़ी सुन्दर लगती है। लकड़ी के विभिन्न प्रकार के खिलौने, द्वार के प्रधान किवाड़-पट्टों पर नक्काशी का काम तथा पलंगों पर विभिन्न आकृतियों का निर्माण इनकी काष्ठ शिल्प कला का अलौकिक उदाहरण है।

मिट्टी की मूर्तियों को बनाने में ग्रामीण कुम्भकार ने परम प्रवीणता प्राप्त की है। प्रतिवर्ष दीवाली के अवसर पर वह गणेश जी, सरस्वती, ब्रह्मा, विष्णु, शिव और हनुमान् की इतनी सुन्दर मूर्तियों का निर्माण करता है कि उनकी सुन्दरता देखते ही बनती है। इसके अतिरिक्त अनेक राष्ट्रीय, राजनीतिक नेताओं की मूर्तियों को बनाता है जो बड़ी सजीव दिखायी पड़ती है। इसके अतिरिक्त मिट्टी के विभिन्न प्रकार के खिलौनों को बनाकर वह बालकों के मन का अनुरंजन करता है। मिट्टी की ये मूर्तियाँ दो प्रकार से बनायी जाती हैं। प्रथम प्रकार तो यह कच्ची मिट्टी की मूर्ति बनाकर उन्हें विभिन्न प्रकार के रंगों से सुशोभित किया जाता है। ये मूर्तियाँ अधिक सुन्दर होती हैं। परन्तु



स्थायिव नहीं होती। इनके टूट जाने का भय सदा बना रहता है। दीवाली के त्यौहार पर जो मूर्तियाँ बनायी जाती हैं वे प्रायः ऐसी ही होती हैं। कुछ मूर्तियों को बनाकर आग में पका दिया जाता है। इससे वे अधिक मजबूत हो जाती हैं। बच्चों के खिलौने—जैसे चक्की, जाँत, घिरिहरी, हाथी और घोड़ा—प्रायः इसी प्रकार से बनाये जाते हैं।

धातुओं—विशेषकर सोना और चाँदी—पर भी मूर्तियों को उत्कीर्ण किया जाता है। चेचक की अधिष्ठाता देवी शीतला की मूर्ति, उनके वाहन—गदहे—के साथ चाँदी पर उत्कीर्ण कर उसकी पूजा की जाती है। सोने की 'सौत' की मूर्ति बनायी जाती है जो किसी पुरुष की मृत पूर्व स्त्री की प्रतिकृति होती है। इसी प्रकार ताँवे के ऊपर अनेक प्रकार के यंत्रों को उत्कीर्ण किया जाता है।

### (३) परिच्छेद

#### चित्रकला

भोजपुरी लोक-गीतों में चित्रकला की चर्चा अनेकशः पायी जाती है। चतुर चित्रकारों के द्वारा की गयी चित्रकला प्रधानतया दो रूपों में उपलब्ध होती है—

(१) भित्ति चित्र (Fresco painting)

(२) पट चित्र (Canvas painting)

इनमें से गाँवों में प्रथम प्रकार की चित्रकला ही अधिक उपलब्ध होती है। भोजपुरी में चित्रांकन के लिए 'उराहना' शब्द का प्रयोग किया जाता है। ये घर की दीवाल के भीतरी तथा बाहरी भागों में भी बनाये जाते हैं।

#### चित्रकला के उपादान—

भोजपुरी चित्रकला के उपादान हैं चूना, सिन्दूर, हल्दी का चूर्ण, काजल, गेरू (गैरिक) और चौरठ अर्थात् चावल का आटा। सर्वप्रथम दीवाल पर चूने से सफेदी कर दी जाती है। परन्तु जहाँ चूना उपलब्ध नहीं होता वहाँ पीली मिट्टी से दीवाल को पोत दिया जाता है। तत्पश्चात् चौरठ में पानी और हल्दी का चूर्ण मिलाकर उसका लेप तैयार किया जाता है। बाँस की पतली शाखा—जिसे लोक-भाषा में 'कोइनि' कहते हैं—के अगले भाग को कूँच (कूट) कर ब्रश के समान पतला बना लिया जाता है। इसी बाँस के बने ब्रश के द्वारा ग्रामीण स्त्रियाँ चौरठ और हल्दी के मिश्रित लेप से भित्ति पर चित्रकर्म सम्पादित करती हैं। जहाँ बाँस के भी ब्रश का अभाव होता है वहाँ तर्जनी अँगुली ही तूलिका का कार्य करती है। उपर्युक्त लेप के अतिरिक्त चित्रों को बनाने में काजल, गेरू तथा सिन्दूर का भी यथास्थान प्रयोग किया जाता है। कोहबर के एक गीत में चावल के आटे से चित्रकर्म का उल्लेख हुआ है। नवग्रह की वेदिका बनाते समय सफेद रंग के लिए गेहूँ का चूर्ण—आटा—, काले रंग के लिए लकड़ी के कोयले का चूरा और लाल रंग के लिए ईंट को पीसकर बनाया गया चूर्ण प्रयोग किया जाता है।

स्त्रियाँ विवाह के अवसर पर 'कोहबर' की भीतरी दीवाल पर चित्रकारी करती हैं। एक गीत में इस घर की भीत पर चार जोड़े चिड़ियों, एक जोड़े हंस को चित्रित करने का उल्लेख मिलता है।<sup>१</sup> एक दूसरे गीत में चन्द्रमा और सूर्य को अंकित करने का वर्णन पाया जाता है।<sup>२</sup> इस गृह में समधिन के द्वारा बनाये गये सुन्दर भित्ति-चित्रों को देखकर समस्त संसार मोहित हो जाता है। सम्भवतः ये चित्र वर-वधू के मनोरञ्जन के लिए बनाये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त कोहबर में कमल का पुष्प, कमल-पत्र, पालकी, घोड़ा, गोपीचन्द, तारिकाएँ तथा पान का पत्ता भी चित्रित किया जाता है। लोक-मानस हाथी, घोड़ा और पालकी को वैभव का गोपीचन्द और पतुरी को वर-वधू का, सूर्य और चन्द्रमा को दीर्घ आयुष्य का, हंस और मोर को मांगलिक जीवन का तथा पान एवं कमल को कला का प्रतीक समझता है। कोहबर में इन वस्तुओं को चित्रित करने का यही रहस्य है।

१. पानन मोरे बाबा मँडवा छवावेले,

फूलवा के बान्ह बन्हाई।

ताही भीतर बाबा पुतरी उरेहेले,

चार चिरइया जोड़ी हंस रे।

२. कोहबर लिखबि चान रे सुरुजवा,

मँगवा लिखबि गोपीचन्द रे। —डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय-मो० लो० गी० भाग-१।




गृह के प्रधान द्वार की बाहरी दीवारों पर भी ग्रामीण कलाकार अनेक चित्रों का निर्माण कर अपनी तुलिका के सौन्दर्य को प्रदर्शित करता है। इन द्वारों पर कहीं तो फाटक के दोनों ओर सिंह की आकृतियाँ बनी रहती हैं और लट्ठ या बन्दूकधारी पहरेदार की। ये चित्र प्रायः गेरु से बनाये जाते हैं। कहीं द्वारों के ऊपरी भाग पर विघ्न-विनाशक गणेश की प्रतिमा उत्कीर्ण की गयी रहती है।

ग्रामीण कलाकार न तो किसी 'कालेज आफ फाइन आर्ट' का स्नातक होता है और न तो राज-दरबार का राजकीय चित्रकार। फिर भी वह अपनी स्वाभाविक प्रतिभा के द्वारा इतनी रमणीय कलाकृतियों का निर्माण करता है जिसे देखकर उसकी तुलिका को बरबस चूम लेने का जी करता है। तर्जनी ही उसकी तुलिका है और ग्रामीण रंग ही चित्रकला के उपादान। फिर भी उसकी कलाकृतियाँ अलौकिक होती हैं।

## (४) परिच्छेद

### अल्पना

मांगलिक अवसरों पर अल्पना बनाने की प्रथा प्रचलित है। विवाह के अवसर पर जब लड़कीवाले के घर बारात आती है उस समय प्रधान द्वार के आगे 'द्वारपूजा' के लिए अल्पना बनायी जाती है। पहिले द्वार के सामने की जमीन को गोबर और मिट्टी से लीप देते हैं। यह काम गाँव की नाइन करती है। फिर वह गेहूँ के आटे को चुटकी से लेकर जमीन पर गिराती हुई वर्गकार आकृति बनाती है। वर्ग के ठीक बीच एक गोलाकार रचना तैयार की जाती है। यहीं पर कलश की स्थापना की जाती है। तिलक, विवाह, यज्ञोपवीत तथा अन्य मांगलिक अवसरों पर अल्पना की विभिन्न 'डिजाइन्' बनायी जाती हैं जिन्हें भोजपुरी में 'चौक पूरना' कहा जाता है। आटे को पानी में घोलकर इस लेप से 'चौक पूरा' जाता है।

काठ के छोटे-से तख्ते अथवा पीड़ा पर चावलों को विभिन्न रंगों—लाल, पीला, हरा आदि—में रँगकर बड़ी सुन्दर अल्पना बनायी जाती है। यह कहीं वर्गकार होती है और कहीं गोलाकार। इन रँगे हुए चावलों के काष्ठ-खण्ड पर 'ओऽम्' अथवा स्वस्तिक  की डिजाइन् बनायी जाती हैं। आजकल 'अल्पना' का फैशन बढ़ता जा रहा है। नयी शिक्षित युवतियाँ विभिन्न रंगों से जमीन पर मनोहर अल्पना बनाने में परम प्रवीण होती हैं।

### थापे

हाथ की अँगुलियों का थापा या ठापा मारकर जो चित्र अंकित किया जाता है उसे 'थापा' कहते हैं। विवाह के समय लड़की के घर जो मण्डप तैयार किया जाता है, उसके बाँसों को गाड़ने के पहिले, उन पर उस कुँवारी लड़की की पाँचों अँगुलियों का 'थापा' लगाया जाता है, जिसका विवाह होने वाला है। यह 'थापा' चावल को पानी में पीसकर अथवा आटा को पानी में घोलकर तैयार किया जाता है। कोहबर की दीवारों पर भी स्त्रियाँ 'थापा' लगाती हैं। भोजपुरी मण्डल में कार्तिक के महीने में कुँवारी लड़कियाँ दीवाल पर चिड़ियाँ 'लगाते' समय उसके आस-पास दीवाल पर थापा भी लगाती हैं। पर्वतीय प्रदेश—विशेषकर नैनीताल जिले—में दीपावली के अवसर पर स्थानीय स्त्रियाँ अपने घर में लक्ष्मी के प्रवेश के लिए मार्ग बनाती हैं। यह मार्ग लाल और सफेद रंगों को मिलाकर मुट्ठी का थापा लगाकर तैयार किया जाता है जो बड़ा ही कलात्मक होता है। अल्पना के समधिक प्रचार के कारण थापे की प्रथा का अब ह्रास हो रहा है।

## (५) परिच्छेद

### मेंहदी

सावन के मनभावन मास में स्त्रियाँ अपने हाथों में मेंहदी लगाती हैं जिसे 'मेंहदी रचना' कहा जाता है। वे मेंहदी के पत्तों को सील पर अच्छी तरह से पीसती हैं। फिर उसमें थोड़ा तेल डाल देती हैं जिससे मेंहदी का रंग अधिक स्थायी तथा पक्का हो जाता है। वे सीक से अपने हाथों पर इस प्रकार मेंहदी लगाती हैं कि त्रिकोणात्मक, चतुष्कोणात्मक और पंचकोणात्मक आकृतियाँ बन जाती हैं। जो इन आकृतियों को नहीं बनाना चाहती वे बराबर दूरी पर मेंहदी की बिन्दियों को अपने हाथों में लगाती हैं। सूख जाने पर यह मेंहदी बूँटीदार छीट की डिजाइन



की तरह सुन्दर लगती हैं। स्त्रियों के हाथ की मेंहदी जब तक सूख नहीं जाती तब तक वे कोई काम नहीं करतीं इसीलिए 'हाथ में मेंहदी लगाना' हिन्दी में एक मुहावरे के रूप में प्रचलित हो गया है जिसका अर्थ है कोई काम नहीं करना।

आजकल मेंहदी के द्वारा अपने हाथ पर स्वस्तिक卐 तथा ओम् की डिजाइनें भी तैयार करती हैं। कुछ स्त्रियाँ आधुनिक राजनैतिक नेताओं का चित्र भी बनाती हैं। चर्खा कातती हुई बुढ़िया और गोमाता का चित्र भी अंकित किया जाता है। कहने का आशय यह है कि मेंहदी के द्वारा अनेक प्रकार की डिजाइनें, नेताओं के चित्र तथा विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ अंकित की जाती हैं।

### महावर

मांगलिक अवसरों पर स्त्रियाँ अपने पैरों में महावर लगाती हैं जिसे भोजपुरी में 'गोड़ रँगना' कहा जाता है। यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन ज्ञात होती है। महाकवि कालिदास ने अपने सुप्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में इसका उल्लेख किया है। संस्कृत में इसे आलक्तक कहा जाता है।

महावर पैर के ऊपरी भाग में लगाया जाता है। गाँव की चतुर नाइन बहू के पैर में महावर लगाने समय प्रायः चतुष्कोणात्मक अथवा वर्गाकार आकृति बनाती है। कभी-कभी केवल गोली आकृति का निर्माण किया जाता है। पैरों में स्वस्तिक का चिह्न नहीं बनाया जाता है क्योंकि यह प्रतीक पवित्र समझा जाता है।

### गोदना

भोजपुरी क्षेत्र में विवाह के पश्चात् प्रत्येक स्त्री के लिए गोदना गोदाना अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है। स्त्रियों में यह धारणा प्रचलित है कि ऐसा न करने से अगले जन्म में हिन्दू परिवार में जन्म नहीं होता। आजकल गोदना के कार्य को सम्पादित करने के लिए अनेक यंत्रों का आविष्कार हो गया है जिसके द्वारा गोदवाने पर तनिक भी कष्ट नहीं होता। परन्तु गाँवों में यह कार्य आज भी अनेक सुइयों को एक साथ चुभाकर किया जाता है जो बड़ा ही कष्टदायक होता है।

गाँवों में गोदना का कार्य नेटुआ नामक जाति की स्त्री करती है। वह धतूरे के दूध में काजल मिलाकर काला रंग तैयार करती है और उसमें अपनी सुइयों को डुबोर नयी वधुओं के कोमल बाँहों में अपनी सुइयों को चुभाती है। इनके दुःख को कम करने के लिए वह गाना भी गाती जाती है।

इन गोदनों की आकृतियाँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। कोई वर्गाकार बनाये जाते हैं तो कोई आयताकार; कोई गोले होते हैं तो कोई त्रिभुजाकार। चतुर गोदना गोदनेवाली गोदना के द्वारा अनेक पशुओं, पक्षियों तथा विभिन्न प्रकार के फूल-पत्तियों को बाँहों पर 'उकेरती' हैं। एक विरहा में शरीर के विभिन्न अंकों में गोदना के द्वारा उसी प्रकार चित्र बनाने का उल्लेख पाया जाता है जैसे रँगरेज चूनरी रँगता है।<sup>१</sup>

### मिष्ठान्न

ग्रामीण कलाकार मिष्ठान्न बनाते समय भी अपनी कला का प्रदर्शन करने में नहीं चूकता। वह अनेक आकृतियों के मिष्ठान्न को तैयार करता है। मिठाइयाँ कोई गोली होती है तो कोई चपटी। कोई आयताकार होती हैं कोई वर्गाकार। मोतीचूर का लड्डू गोला होता है परन्तु वालूशाही की आकृति चपटी होती है। बरफी प्रायः आयताकार बनायी जाती है तो देहाती खुरुमा नामक मिठाई वर्गाकार होती है। गुलाबजामुन एक इंच लम्बी होती है जिसमें मोटाई तो अवश्य पायी जाती है परन्तु चौड़ाई का स्थान बहुत कम होता है। जलेबी और अमिरिती दोनों की आकृति गोली और चपटी होती है फिर भी दोनों की बनावट में थोड़ा अन्तर होता है। अमिरिती का मध्य भाग खाली रहता है परन्तु इसके अन्तिम भाग अर्थात् परिधि के ऊपर गोली-गोली आकृतियाँ बनायी जाती हैं। परन्तु जलेबी में सर्वत्र गोली आकृतियाँ बनी रहती हैं। बड़ी और भारी जलेबी को जलेबा कहते हैं। जलेबी और जलेबा के स्वरूप में ही पार्थक्य पाया जाता है। काशी में बनायी जानेवाली राष्ट्रीय बरफी में राष्ट्रीय झण्डे की तरह तीन

१. अइसन गोदना गोडु रे गोदनरिया,  
जइसन चूनरी रँगला रँगरेज।'



रंग होते हैं जो उसके विभिन्न स्तरों में दृष्टिगोचर होता है। भोजपुरी मिठाई टिकरी जहाँ गोली होती है वहाँ 'पटउरा' चिपटा होता है जिसके ऊपरी भाग पर तीन अँगुलियों के चिह्न बनाये गये रहते हैं।

### चारपाई बुनना

चारपाई के बुनने में भी लोक-कला परिलक्षित होती है। साधारणतया चारपाई मूँज की रस्सी—जिसे बाध कहते हैं—से बुनी जाती है। कुछ लोग धान के पुआल की रस्सी बनाकर चारपाई बुनते हैं। परन्तु धनी लोग इस कार्य के लिए 'सुतली' का प्रयोग करते हैं जो पटुआ अथवा सन से बनायी जाती है। सुतली के द्वारा चारपाई बुनने की कला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई दिखायी पड़ती है। इसके बुनने के विभिन्न प्रकार हैं जिन्हें चार-बधिया, छव-बधिया, अठ-बधिया और बारह-बधिया कहा जाता है। चतुर चारपाई बुननेवाले सुतली के द्वारा इस प्रकार की बुनाई करते हैं जिससे चारपाई में अनेक प्रकार के फूल और पत्तियाँ अंकित या उत्कीर्ण हो जाती हैं। गरुणवान नामक चारपाई उसे कहते हैं जिसमें चारपाई के बुनने पर सर्प की आकृति परिलक्षित होने लगती है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि ऐसी चारपाई पर सर्प नहीं चढ़ सकता। कुछ चारपाइयों की बुनावट में सैकड़ों आयताकार आकृतियाँ निकल आती हैं। परन्तु नेवार के द्वारा चारपाई के बुनने के प्रचार से यह कला अब नष्ट होती जा रही है।

लोक-कला का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। जन-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका दर्शन पाया जाता है। ग्रामीण जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जो लोक-कला से अछूता हो।

## (६) परिच्छेद

### गृह-निर्माण

भोजपुरी लोगों की गृह-रचना उनके स्वभाव की ही भाँति सीधी-सादी होती है। इस क्षेत्र में प्रायः चार प्रकार के मकान पाये जाते हैं—

(१) सिरकी के घर (२) छप्पर के घर (३) मिट्टी के घर और (४) पक्के मकान।

#### (१) सिरकी के घर

भोजपुरी क्षेत्र में निवास करनेवाली खानाबदोश जातियाँ—जैसे नेटुआ, मुसहर आदि—अपने निवास-स्थान का निर्माण सिरकी के द्वारा किया करती हैं। ये सिरकी की बनी चटायी को अपने घर की दीवाल के रूप में प्रयोग में लाते हैं और उसी से उस घर के ऊपरी भाग को आच्छादित कर देते हैं जिससे आतप, वर्षा और शीत से वे अपनी रक्षा कर सकें। चूँकि सिरकी चिकनी होती है अतः वर्षा का जल जब उस पर गिरता है तो वह फिसलकर नीचे गिर पड़ता है। इस प्रकार ये लोग वर्षा से अपनी रक्षा करने में समर्थ होते हैं। ये घर चार-पाँच फीट से ऊँचे नहीं होते। ये अपने वस्त्रों, दही-दूध और भोजन की सामग्री को सिकहर (छींका) पर चढ़ाकर रख देते हैं जिससे कोई जानवर इनके घर में प्रवेश कर इन्हें नष्ट न कर दे। इनके छोटे से घर में कोई दरवाजा नहीं होता अतः ये लोग कपड़ा 'तान' (फैला) कर शीत से अपने को बचाते हैं। नेटुआ लोग प्रायः किसी बाग-बगीचे में अपना घर बनाते हैं अतः इस प्रकार प्रकृति के प्रकोपों से वे अपनी रक्षा के साथ ही वृक्षों की शाखाओं का उपयोग 'वारड्रोब' के रूप में किया करते हैं।

नेटुआ लोगों का सिरका का बना हुआ यह घर प्रायः ८ फीट लम्बा, ६ फीट चौड़ा और ४ या ५ फीट ऊँचा होता है। इसमें केवल एक या दो से अधिक चारपाइयाँ नहीं रखी जा सकती। अतः इस परिवार के अन्य सदस्य प्रायः जमीन पर ही सोते हैं। सिरकी के इन घरों को बनाने में एक-दो घण्टे से अधिक समय नहीं लगता। इसी कारण ये लोग जब चाहें तब अपना घर समेटकर, उसे उठाकर, दूसरे स्थान को लेकर चले जाते हैं। सिरकी का मकान होने के कारण इन्हें अपनी यायावरी वृत्ति में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती। ये जब चाहें तब 'ले लुगरिया, चल डुमरिया' की उक्ति को चरितार्थ करते हैं। नेटुओं के इस घर में केवल एक ही कक्ष या कमरा होता है। इसी संकुचित स्थान में माता, पिता, लड़के, लड़कियाँ सभी एक साथ निवास करते हैं।



## (२) छप्पर के घर

साधारण वित्त के मनुष्य छप्पर का मकान बनाकर उसमें निवास करते हैं। जो लोग नदियों के किनारे रहते हैं जहाँ प्रतिवर्ष बाढ़ आने की आशंका बनी रहती है, वे अपना मकान प्रायः छप्पर का ही बनाते हैं। इन मकानों की दीवाल 'अरहर' के ठट्टर की बनायी जाती है।<sup>१</sup> उसे मजबूत करने के लिए मिट्टी का मोटा लेप लगा दिया जाता है जिससे वह मिट्टी की दीवाल के समान दिखायी पड़ती है। अरहर की दीवालों की मोटाई छह सात इंच से अधिक नहीं होती परन्तु मिट्टी का लेप लग जाने के कारण बाहर की ठण्डी हवा इसमें प्रवेश नहीं कर सकती।

ग्रामीण किसान फूस के छप्पर से इन घरों को छा देता है जिससे वर्षा और शीत से इनकी रक्षा होती है। ये छप्पर 'खई' (कास) नामक घास से बनाये जाते हैं। खई को जमीन पर बिछा जाते हैं और इनके नीचे और ऊपर बाँस की 'फरठी' को रखकर उसे 'बाँधी'—जो मूँज की बनी होती है—से अच्छी तरह से बाँध देते हैं। अरहर की बनी दीवालों के ऊपर मोटे तथा मजबूत बाँस की एक 'धरनि' बाँधी जाती है। इसी 'धरनि' पर इस छप्पर के मध्य भाग को स्थापित कर उसे दोनों ओर झुका दिया जाता है। इस प्रकार छप्पर का घर तैयार कर बनाया जाता है। छप्पर के घरों को बनाने में अरहर और खई की ही केवल आवश्यकता होती है। ये दोनों ही वस्तुएँ किसान के खेतों में उपलब्ध होती हैं। अतः छप्पर का घर बनाने में विशेष धन की आवश्यकता नहीं होती।

छप्पर के मकान में प्रायः दो-तीन कमरों से अधिक स्थान नहीं होता। गरीब किसान इसी संकुचित स्थान में अपने परिवार के साथ रहते हुए अपने जीवन के दिनों को काटता है। वह एक घर में रहता और दूसरे घर में रसोई बनाता है। यही उसका 'किचन' और 'स्टोर रूम' है। घर के आगे वह मिट्टी का एक ऊँचा चबूतरा बनाकर उस पर एक 'पलानी' डाल देता है। यही उसका 'बैठका' है। इस प्रकार किसान का छप्पर का घर ही उसका राजमहल है।

छप्परों के घरों की विशेषता यह है कि इनका निर्माण अल्प धन से ही किया जा सकता है। अतः किसान प्रति दूसरे या तीसरे छप्पर के पुराने पड़ने पर उसे बदलकर मकान का नवीनीकरण कर देता है। दूसरी विशेषता यह है कि बाढ़ के आने पर भी छप्पर का मकान जल-प्लावन के कारण धाराशायी नहीं होता। बाढ़ का पानी अरहर की ठट्टर की बनी दीवालों को छेदकर घर में प्रवेश अवश्य कर सकता है परन्तु बाढ़ के कम हो जाने पर वह पानी उसी रास्ते से चला जाता है। इस प्रकार घर सुरक्षित रहता है। मिट्टी की दीवाल होने पर बाढ़ के कारण मकान के गिरने की आशंका बनी रहती है परन्तु छप्पर के घर में इस बात का तनिक भी भय नहीं होता। यदि कदाचित् कोई मकान गिर भी गया तो उसका निर्माण, बिना किसी विशेष द्रव्य व्यय किये ही, किया जा सकता है। इसी कारण इस प्रकार के मकान किसानों के लिए बड़े ही उपयोगी हैं।

## (३) मिट्टी के घर

गाँवों में प्रायः मिट्टी के ही मकान पाये जाते हैं। किसान लोग अपने खेत की मिट्टी से इन मकानों को बनवाते हैं अतः यह बहुत ही सस्ता पड़ता है। मिट्टी का मकान बनाने का व्यवसाय करनेवाली जाति को 'नोनिया' कहा जाता है। जब किसी किसान को मिट्टी का मकान बनवाना होता है तब वह नोनिया को बुलाता है। नोनिया लोग मिट्टी को पानी में सानकर उससे गोल-गोल पिण्ड बनाते हैं जिसे लोंदा या धोधा कहा जाता है। इन लोंदाओं को एक के ऊपर एक रखकर पहिले लगभग दो या तीन फीट ऊँची दीवाल बनायी जाती है। जब यह मिट्टी सूख जाती है तब फिर उसके ऊपर तीन फीट ऊँची दीवाल बनायी जाती है। इस प्रक्रिया को 'रादा देना' कहते हैं। प्रथम रादा के सूख जाने पर ही उसके ऊपर दूसरा 'रादा' स्थापित किया जाता है। अन्यथा मिट्टी के कच्ची रहने पर दीवाल के गिरने का भय बना रहता है। इस प्रकार एक के ऊपर दूसरा 'रादा' रखते हुए दीवाल को अभिलषित ऊँचाई तक तैयार किया जाता है। दीवालों के पूर्णतया बन जाने पर इसके ऊपर एक लम्बा और मोटा काष्ठ-खण्ड रखा जाता है जिसे 'बल्ली' या 'लरही' कहते हैं। इस बल्ली के 'सपोर्ट' करने के लिए उसके नीचे 'धरनि' लगायी जाती है जो बल्ली को सहारा देती है। धारण करने के कारण ही इसको 'धरनि' कहा जाता है। लरही से दीवाल तक बाँस के अनेक लम्बे टुकड़ों को स्थापित करते हैं जो 'कोरो' के नाम से प्रसिद्ध है। इन 'कोरो' के ऊपर बाँस को चोरकर उनकी पतली 'बत्तियाँ' बनाकर बिछा दी जाती हैं जो 'फरठी' कही जाती हैं। इसी 'फरठी' के ऊपर मिट्टी का लोंदा रखा जाता है। घर के निर्माण बढ़ई के द्वारा लरही, धरनि, कोरो, फरठी आदि को यथास्थान स्थापित

१. 'अरहर की टट्टी, गुजराती ताला' इस लोकोक्ति में इसी की ओर संकेत किया गया है।



करने की प्रक्रिया को 'तारन' कहते हैं। इसके पश्चात् मिट्टी के ऊपर 'खपड़ा' और उसके ऊपर 'नरिया' को रखा जाता है जो 'छाजन' के नाम से अभिहित किया जाता है। इस प्रकार 'तारन' और 'छाजन' के समाप्त होने पर गृह-निर्माण का कार्य पूरा समझा जाता है। धनी वर्ग के लोग अपने मकानों की सुन्दरता के लिए 'ओरी' की ओर 'नरिया' के स्थान पर 'चुकिया' भी लगवाते हैं जो आकृति में गोली होने के कारण देखने में सुन्दर होती है। इस प्रकार वह घर के सौन्दर्य में चार चाँद लगा देती है। 'ओरी' के नीचे काठ का एक लम्बा टुकड़ा—जिसकी चौड़ाई छः इंच से अधिक नहीं होती—लगाया जाता है जिसमें पशु-पक्षियों की आकृतियाँ उत्कीर्ण की गयी रहती हैं। इस काष्ठखण्ड को 'मुहब्बत' कहते हैं।

धनी तथा उच्चवर्ग के लोग अपने मकान के उपरी भाग में ओरी के नीचे 'घोड़मुँहा' भी लगते हैं जिसका एकमात्र उद्देश्य भवन की सौंदर्य-वृद्धि करना है। इस काष्ठखण्ड पर, सम्भवतः अतीत काल में, घोड़े के मुँह की आकृति उत्कीर्ण की जाती थी अतः यह 'घोड़मुँहा' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। घर की 'बड़ेरी' पर मिट्टी की बनी हुई हाथी या घोड़े की आकृति स्थापित की जाती है। इसका उद्देश्य भी केवल शोभा मात्र ही समझना चाहिए। इस प्रकार मिट्टी के बने हुए मकानों—जिन्हें कच्चा मकान कहा जाता है—में मिट्टी, लकड़ी और थोड़ा लोहा का ही विशेष प्रयोग होता है।

मिट्टी के बने मकानों में प्रायः चार या पाँच कमरे होते हैं जिसमें शयन गृह, रसोई घर, भाण्डार आदि आवश्यक हैं। घर के आगे पुरुषों के बैठने के लिए एक बरामदा बना रहता है जिसको 'बैठका' कहते हैं। उस बैठका के पीछे एक विशाल प्रशाल होता है जो 'दालान' कहा जाता है। गाँव में साधारण लोगों के घरों में दालान और बैठका नहीं होता। केवल धनी लोग ही इसका निर्माण करते हैं। इसलिए जब किसी निर्धन व्यक्ति के घर बारात आती है तो उसका 'जनवासा' इसी दालान में रखा जाता है। तिलक अथवा गवना के समय अधिक व्यक्तियों के आने पर उनको भी इसी प्रशाल (हाल) में ठहराया जाता है। निर्धन लोग अपने गाय और बैलों को खुले मैदान अथवा किसी पेड़ की छाया में बाँधकर रखते हैं। परन्तु धनी लोग इन पशुओं को रखने के लिए छप्पर का घर बनाते हैं जो 'बथानि' कही जाती है। इसे सार घर भी कहते हैं।

किसानों के खेत, गाँव से दूर होते हैं। अतः प्रत्येक दिन वहाँ जाना सम्भव नहीं होता। इस कारण गाँव से दूर, जहाँ खेत अधिक हैं, वहाँ धनी लोग एक छोटा-सा मकान बना लेते हैं। इस स्थान पर उनके नौकर-चाकर तथा बैल भी रहते हैं। गाँव से कुछ दूरी पर, खेत में बने हुए ऐसे मकान को 'डैरा' कहा जाता है। यह संज्ञा उन निवास-स्थानों के लिए भी प्रयुक्त की जाती है; जो अस्थायी हैं। इस पर घर और डैरा में थोड़ा अन्तर है। स्थायी निवास-स्थान घर कहलाता है, परन्तु अस्थायी घर को 'डैरा' का अभिधान दिया जाता है।

#### (४) पक्का मकान

मिट्टी से बने हुए मकानों को गाँवों में कच्चा मकान कहा जाता है; परन्तु ईंट के मकानों को 'पक्का मकान' की संज्ञा दी जाती है। पक्का मकान का निर्माण ईंटों के द्वारा किया जाता है। इसमें मिट्टी का गारा लगाकर ईंटों की जोड़ाई की जाती है। कुछ लोग 'झाई' अथवा सुर्खी और चूना इस कार्य के लिए प्रयोग करते हैं। जब ईंटों की दीवाल बनकर तैयार हो जाती है तब छत को पत्थर की पट्टियों से पाट दिया जाता है। कुछ धनी लोग लोहा और सिमेण्ट को लगाकर छत को बनवाते हैं जो बहुत ही मजबूत और पक्की होती है। घर की फर्श तथा छत पर गिट्टी डालकर इसको तैयार किया जाता है। इस प्रकार पक्का मकान के निर्माण में ईंट, लोहा, सिमेण्ट तथा चूना का विशेष रूप से प्रयोग होता है। जहाँ कच्चे मकानों में आम की लकड़ी से घर का दरवाजा बनाया जाता है वहाँ पक्के मकान में शीशम और साखू की लकड़ी इस काम के लिए उपयोग में लायी जाती है। गाँवों के पक्के या कच्चे मकान प्रायः आयताकार बनाये जाते हैं जिनमें लम्बाई अधिक और चौड़ाई कम होती है। 'सूर्यवेध' न हो, इसका भी ध्यान रखा जाता है।

गाँवों के मकानों में चाहे वे पक्के हों या कच्चे—शौचालय के लिए कोई स्थान नहीं होता। अतः सभी लोगों को इस कार्य के लिए मैदान में जाना पड़ता है। पक्के मकान देखने में सुन्दर भले ही लगें, परन्तु कच्चे मकान गर्मी में बड़े ठण्डे रहते हैं। इसीलिए किसी कवि ने ठीक ही लिखा है कि—

“मिट्टी के घर कितने अच्छे हैं।  
लिपे, पुते हैं, स्वच्छ, सुघर हैं।”





## लोक-विश्वास

० ०

भोजपुरी जनता का जीवन लोक-विश्वास से ओत-प्रोत है। सच तो यह है कि इस क्षेत्र की जनता लोक-विश्वास में अटूट आस्था रखती है। किसी स्थान के लिए यात्रा करना, किसी नवीन कार्य का श्रीगणेश करना तथा किसी शुभकार्य का सम्पादन करना—ये सभी कार्य लोगों के विश्वास के अनुसार उचित अवसर तथा शुभमुहूर्त में ही करने चाहिए। यदि किसी कार्य को करने में सफलता की प्राप्ति नहीं हो सकी तो लोग यह विश्वास करने लगते हैं कि इसका श्रीगणेश शुभ-मुहूर्त में नहीं हुआ था।

लोक-विश्वास को प्रधानतया दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) शकुन तथा (२) अपशकुन। यदि किसी कार्य में शुभशकुन दिखायी पड़ता है तो उसमें सफलता निश्चित होती है। परन्तु अपशकुन में ठीक इसके विपरीत होता है। इसी विषय का वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है

### (१) परिच्छेद

#### शकुन तथा अपशकुन

##### शकुन

भोजपुरी जनजीवन में लोक-विश्वास का बड़ा महत्त्व है। सच तो यह है कि सामान्य जनता का जीवन लोक-विश्वासों पर ही आश्रित होता है। इसी के द्वारा उनके अनेक क्रिया-कलाप परिचालित होते हैं। शिष्ट और सम्यक् कहा जाने वाला मानव-समुदाय जिन बातों को ढोंग, आडम्बर तथा अन्धपरम्परा के नाम से अभिहित करता है वे ही साधारण जनता के दैनिक जीवन में पथ-प्रदर्शन के लिए आलोक-स्तम्भ हैं।

##### शकुन का अर्थ तथा उसके भेद

शकुन संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ पक्षी होता है। प्राचीनकाल में पक्षियों के रूप, रंग, आकृति स्थान विशेष में उनके बैठने की अवस्था, उनके उड़ने, फुदकने, कलरव अथवा कर्कश शब्द करने एवं किसी व्यक्ति के बायें या दायें उनकी स्थिति के कारण शुभ अथवा अशुभ कार्यों का निर्णय किया जाता था। पुरातन काल की जनता अपने जीवन के सतत सहचर इन पक्षियों की गति-विधि से ही अपने विभिन्न क्रिया-कलापों के शुभ अथवा अशुभ होने का ज्ञान प्राप्त किया करती थी। शकुन अथवा पक्षियों के सम्बन्ध में लोक-विश्वासों का जो समुदाय कालक्रम से एकत्रित होता गया वही कालान्तर में 'शकुनशास्त्र' के नाम से अभिहित किया जाने लगा। क्रमशः इस शास्त्र में पक्षियों के अतिरिक्त पशुओं और जलचरों—विशेषकर मछली—से सम्बन्धित विश्वासों को भी स्थान दिया जाने लगा। इस प्रकार से शकुनशास्त्र की परिधि का प्रचुर विस्तार हो गया। आजकल 'शकुन-शास्त्र' का अभिप्राय उन समस्त लोक-विश्वासों के समुदाय से है जो नभचर (पक्षियों), थलचर (पशुओं) तथा जलचर (मछली) के सम्बन्ध में लोक-जीवन में प्रतिष्ठित हैं।

**श्रेणी-विभाग**—शकुनों को प्रधानतया निम्नांकित छः श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

- (१) ग्रह तथा उपग्रहों से सम्बन्धित शकुन
- (२) प्राकृतिक तत्त्वों से सम्बन्धित शकुन
- (३) पशु, पक्षियों आदि की गति-विधियों से सम्बन्धित शकुन
- (४) शारीरिक लक्षणों से सम्बन्धित शकुन
- (५) स्वप्न सम्बन्धी शकुन
- (६) विविध शकुन



अन्तिम वर्ग में उन शकुनों का समावेश किया जा सकता है जो इन उपर्युक्त पाँच वर्गों के अन्तर्गत समाविष्ट नहीं हो सकते।

### (१) अनुच्छेद—नभचर सम्बन्धी लोक-विश्वास

अनन्त आकाश में स्वच्छन्द विचरण करने वाले अनेक पक्षी हैं, जिनके सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। इन पक्षियों के दर्शन, पंखों का फड़फड़ाना, कलरव तथा विशेष स्थिति में बैठने की अवस्था से अनेक शुभ तथा अशुभ शकुनों का अनुमान किया जा सकता है।

(१) कौआ—पक्षियों में कौआ यद्यपि बड़ा ही काला-कलूटा जीव है परन्तु अनेक लोक-विश्वासों का समुदाय इसके व्यक्तित्व से जुड़ा हुआ है। कौआ भोजपुरी स्त्रियों का प्रिय पक्षी है जो उनके प्राणप्यारे प्रियतम की सूचना देता है। यदि कौआ घर के मुँडरे पर आकर काँव-काँव करने लगता है तो यह समझा जाता है कि किसी प्रिय व्यक्ति का आगमन होनेवाला है। यदि किसी कारण से प्रियतम सशरीर नहीं आ सका तो उसके कुशल-क्षेम का सूचक पत्र तो अवश्य ही आता है। भोजपुरी में काग के बोलने को “कउवा का उचरना” कहा जाता है। अतः जब कोई कौआ मुँडरे पर बैठकर बोलने लगता है तब भोजपुरी स्त्रियाँ कहती हैं कि “ए कउवा उचरऽऽ, बबुआ के बाबू जी आवत होइहें त हम तोहरा के दूध भात खिआइबि”। इसे कोरी प्रतिज्ञा ही नहीं समझनी चाहिए बल्कि अपने प्रियतम के आने पर भोजपुरी स्त्रियाँ वास्तव में कौए को कटोरे में दूध-भात रखकर उसे खिलाती हैं। हिन्दी साहित्य में ऐसे लोक-विश्वास प्रचुर परिमाण में पाये जाते हैं जिनमें कोई विरहिणी कौए के बोलने से पति के आगमन पर उसे दूध-भात खिलाती है और कोई उसकी चोंच को सोने से मढ़ाने के लिए आश्वासन देती है। विद्यापति ने इसी लोक-विश्वास का निम्नांकित पंक्तियों में अत्यन्त सुन्दर रीति से वर्णन किया है।

“मोरे रे आंगानवाँ चनन के री गँछिया  
ताहि चढ़ि कुरुरे काग रे ।  
सोने के चोंच मढ़इबो तोहि कागा,  
जो पिया आवहु आजु रे ॥”

संस्कृत साहित्य में भी कौए के बोलने को शुभ माना गया है। कोई राजस्थानी विरहिणी कहती है कि जैसे कौए ने अपनी मधुर वाणी से प्रियतम के आने की सूचना दी और जिस ऊँट ने अपनी पीठपर स्थापित करके मेरे प्रियतम को घर पहुँचा दिया तो हे सखि ! तुम्हीं बतलाओ कि इन दोनों में पहिले मैं किसकी पूजा करूँ कौए की अथवा ऊँट की ?

“आयान् सूचितो येन, येनानीतश्च मे प्रियः ।  
प्रथमं सखि ! कः पूज्यः, काकः किवा क्रमेलकः ॥”

इन पंक्तियों के लिखने का आशय केवल इतना ही है कि कौआ केवल भोजपुरी स्त्रियों का ही प्रिय पक्षी नहीं है बल्कि मरुभूमि में निवास करने वाली मारवाड़ी स्त्रियाँ भी इसे समान आदर प्रदान करती हैं। यह हिन्दी के कवियों तथा संस्कृत के सूक्तिकारों का समान रूप से वर्ण्य-विषय है।

(२) नीलकण्ठ—इस पक्षी के गले का रंग नीला होता है अतः इसे ‘नीलकण्ठ’ कहा जाता है। इसीलिए यह शिव का प्रतीक माना जाता है। आश्विन शुक्ल दशमी—जो दशहरा के नाम से अधिक प्रसिद्ध है—के दिन इस पक्षी का दर्शन अत्यन्त शुभ माना जाता है। अतः बहेलिए इस पक्षी को पकड़कर घर-घर घूमते हुए जनता को इसका दर्शन कराते फिरते हैं। इसी विशिष्ट दिन को ही इसका दर्शन शुभ क्यों है यह कहना कठिन है। परन्तु लोक में इसी दिन ही इसके दर्शन का महत्त्व माना जाता है।

(३) खंजन—इस पक्षी को भोजपुरी में ‘खड़लच’ कहा जाता है। सामान्य रूप में भी इसका दर्शन शुभ है परन्तु यदि गोबर के ऊपर सर्प अपना फन फैलाकर बैठा है और उस फन के ऊपर यदि खंजन स्थित हो तो यह दर्शन अत्यन्त मंगल-दायक है। लोगों का विश्वास है कि ऐसे दृश्य को देखने वाले व्यक्ति की कुण्डली में राजयोग होता है फलस्वरूप उसे कालान्तर में राज्य की प्राप्ति होती है।

महाकवि जायसी ने भी इस लोक-विश्वास की पुष्टि की है। उन्होंने पद्मावत में लिखा है कि यदि सर्प अपने मुख में कमल को ग्रहण किये हो और खंजन उसके सिर पर बैठा हो तो इस दृश्य को देखने वाले को सिंहासन, छत्र और राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति होती है।



“पन्नग मुख पंकज गहे,  
खंजन तहाँ बईठ।  
छात सिंहासन, राजधन,  
ता कहँ होई जो डीठ।”

संस्कृत साहित्य से अनेक उदाहरण देकर इस विश्वास का समर्थन किया जा सकता है।

(४) गृध्र—इसे लोक-भाषा में गीध की संज्ञा प्राप्त है। इसकी आकृति बड़ी भयानक होती है। यह मांस खानेवाला पक्षी है। अतः इसे बड़ी घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। यदि गीध किसी मकान के मुँडेर पर बैठ जाय तो यह बड़ा अशुभ माना जाता है। लोगों का विश्वास है कि यह मृत्यु का सूचक है। अतः ऐसे घर को छोड़ देना चाहिए।

गीध की दृष्टि दूर तक देखने वाली होती है। इसीलिए निरीक्षण शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति को ‘गृध्रदृष्टि’ कहा जाता है। गोस्वामी जी ने भी ‘गीधहिं दृष्टि अपार’ लिखकर इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है।

(५) कबूतर—यह बड़ा ही सुन्दर तथा शुभ पक्षी है। इसकी गर्दन कर्बुरित होने के कारण रमणीक होती है। यह बड़ा ‘कामी’ पक्षी है। महाकवि बिहारी ने ‘सदा परेई संग’ लिखकर इसी सत्य का प्रतिपादन किया है। अनेक लोग अपने घर के ऊपरी भाग में कबूतरों के निवास के लिए मचान बना देते हैं और उन्हें प्रतिदिन दाना चुगाते हैं।

कबूतर आजकल शान्ति का प्रतीक माना जाता है। भारतीय गणतंत्र के दिन २६ जनवरी को प्रति वर्ष अनेक कबूतर आकाश में उड़ाकर संसार में शान्ति-स्थापना की कामना की जाती है।

(६) उल्लू—इसे संस्कृत में उलूक की संज्ञा प्राप्त है। यह पक्षी जड़ता, मूर्खता, आलसता और उद्यमहीनता का परम प्रतीक स्वीकार किया गया है। जिन व्यक्तियों की आई क्यू० (उपलब्धि) बहुत ही कम होती है उन्हें ‘उल्लू’ की उपाधि से विभूषित किया जाता है। उल्लू का दूसरा अभिधान घुघु भी है। इसे घोंघा भी कहते हैं। अतः जो लोग बुद्धि से हीन हैं उन्हें ‘घोंघा वसन्त’ के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

जहाँ नीलकण्ठ का दर्शन शुभ है वहाँ ‘उल्लू महाशय’ का कहीं भी दिखायी पड़ जाना अमंगल का कारण माना जाता है। यात्रा पर इस पक्षी का दर्शन अत्यन्त अशुभ है।

उल्लू को दिन में नहीं दिखायी देता। संभवतः उसकी निर्बल आँखें सूर्य की प्रखर ज्योति को नहीं सह सकतीं। इसीलिए केवल रात्रि में अपने घोंसले अथवा निवास-स्थान से बाहर निकलता है। पाश्चात्य देशों में यह ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। इसीलिए दर्शनशास्त्र की पुस्तकों के मुख पृष्ठ पर उल्लू का चित्र दिखायी पड़ता है। परन्तु इस देश में यह जड़ता तथा मूर्खता की साक्षात् मूर्ति है। अतः यह घृणा की दृष्टि से देखा जाता है।

(७) मयूर—इसे भोजपुरी में मोर कहा जाता है। इस पक्षी का रूप, रंग तथा इसकी आकृति बड़ी सुन्दर होती है। इसके पंखों—जिसे ‘पिच्छ’ कहा जाता है—पर चन्द्रमा की आकृति बनी रहती है जो अत्यन्त रमणीय दिखायी पड़ती है। इस पक्षी की अतिशय सुन्दरता तथा मनोरमता के कारण ही इसे भारत का राष्ट्रीय पक्षी स्वीकार किया गया है। यात्रा के समय मोर का दर्शन शुभ माना जाता है। इसका नृत्य मनोरम होने के साथ ही भावी वर्षा के आगम की सूचना देता है। इसकी बोली बड़ी मधुर होती है जिसे ‘केका’ कहते हैं।

(८) क्षेमकरी—इसे ‘सोन चिड़िया’ या शकुन चिरैया भी कहा जाता है। क्षेमकरी शब्द का अर्थ है क्षेम अर्थात् कल्याण करने वाली। महाकवि जायसी ने इसे ‘आकाश की धोबिन’ के नाम से अभिहित किया है।<sup>१</sup> यात्रा के समय बायें भाग में क्षेमकरी पक्षी का दिखायी पड़ना शुभ माना जाता है। दुर्गा सप्तशती में इस पक्षी का मार्ग में रक्षा करनेवाली के रूप में उल्लेख हुआ है।<sup>२</sup> गोस्वामी तुलसीदास ने “क्षेमकरी कह छेम विसेखी” लिखकर मंगलसूचक पक्षी के रूप में इसका वर्णन किया है।<sup>३</sup>

१. बाएँ अकाशी धोबिन आयी।

पद्मावत १३५।६।

२. पन्थानं सुपथा रक्षेत्

मार्ग क्षेमरी तथा।

३. रा० च० मा० (बा० का०) दोहा ३०२।

डु० स०—देवी कवच श्लो० ४१।



(९) कुररी—इसे लोक-भाषा में टिटिहरी पक्षी कहा जाता है। इसका शरीर छोटा परन्तु चोंच अपेक्षाकृत लम्बी होती है। संस्कृत के वसन्तराजीय नामक ग्रन्थ में लिखा है कि यात्रा के समय इस पक्षी के द्वारा बायीं ओर शब्द करना मंगलदायक है।

(१०) गौरैया—यह एक छोटा-सा पक्षी है जो ग्रामीण जनता का बड़ा ही प्रिय पात्र है। यह गाँव की झोपड़ी में अपना घोंसला बनाता है तथा किसानों के घर में परिवार के व्यक्तियों की तरह निवास करता है। यह चावल, गेहूँ, दाल और सरसों के दानों को चुगता है। धार्मिक प्रवृत्ति के लोग इनके निवास के लिए लकड़ी का छोटा-सा सन्दूकनुमा घर भी बनवा देते हैं। इस पक्षी का चहचहाना प्रातःकाल होने का सूचक है। घर में इसका रहना शुभ माना जाता है। इसीलिए इसे अन्न के दानों को चुनाकर स्वच्छन्द रूप से घर में विचरण करने दिया जाता है।

(११) हंस—हंस सरस्वती का वाहन होने के कारण अत्यन्त पवित्र पक्षी माना जाता है। इसीलिए यात्रा के समय हंस का दर्शन अत्यन्त शुभ है। महाकवि श्री हर्ष ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है।<sup>१</sup> हंस के द्वारा अपने पक्षों को फड़फड़ाना किसी कार्य की सिद्धि की सूचना देता है।<sup>२</sup> इस प्रकार से हंस का दर्शन तथा उसके द्वारा पंखों का फड़फड़ाना दोनों ही शुभ तथा मंगलकारक हैं।

## (२) अनुच्छेद—थलचर सम्बन्धी विश्वास

पृथ्वी पर चलने वाले जीवों को थलचर कहा जाता है। परन्तु यहाँ पर हमारा अभिप्राय केवल पशुओं से है जिनके सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं।

(१) गाय—गाय के सम्बन्ध में जितने लोक-विश्वास प्रचलित हैं उतना सम्भवतः किसी भी जानवर के विषय में नहीं है। गाय माता के नाम से पुकारी जाती है। 'गो माता' कहने से ही प्रत्येक हिन्दू श्रद्धा से अवनत हो जाता है। आर्थिक दृष्टि से गाय का जो महत्त्व है उससे कहीं अधिक इसका धार्मिक महत्त्व है।

मृत्यु शय्या पर पड़े हुए व्यक्ति के द्वारा गाय का दान कराया जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि गोदान करने से मृत्यु के पश्चात् वैतरिणी को पार करते समय इसके द्वारा बड़ी सहायता मिलती है। प्रेतात्मा गाय की पूँछ पकड़कर इस नदी को बड़ी सरलता से पार कर जाता है। गाय की सेवा-सुश्रूषा करने से पुत्र-रत्न की प्राप्ति होती है। कालिदास ने रघुवंश नामक महाकाव्य में राजा दिलीप के नन्दिनी गाय की सेवा का उल्लेख किया है जिसके फलस्वरूप उन्होंने राजा रघु के रूप में पुत्र को प्राप्त किया।

ग्रहण के अवसर पर अथवा किसी तीर्थ स्थान पर गोदान की परम्परा चिरकाल से चली आती है। प्रत्येक तीर्थयात्री पवित्र स्थान पर गोदान करना अपना आवश्यक कर्तव्य समझता है। गाय के विभिन्न अंगों में भिन्न-भिन्न देवताओं का निवास माना जाता है। अतः धार्मिक हिन्दू प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर गाय को प्रणाम करते हैं।

गाय की रक्षा करना प्रत्येक हिन्दू का परम कर्तव्य है। प्राचीन काल में गाय और ब्राह्मण की रक्षा के प्रयास में जो व्यक्ति अपने प्राणों को अर्पित कर देते थे वे सूर्यलोक को भेद करके ब्रह्मलोक को प्राप्त करते थे।<sup>३</sup> गाय का दूध परम-पवित्र माना जाता है। सत्यनारायण की कथा में अथवा किसी भी मांगलिक अवसर पर, भगवान् की पूजा में चरणामृत बनाने के लिए गाय के दूध का ही उपयोग किया जाता है। मन्दिर में दीप जलाने के लिए गाय का ही घी प्रयुक्त होता है। अनेक रोगों के लिए गोमूत्र रामबाण ओषधि मानी गयी है। गोबर से लिपे-पुते स्थान को पवित्र माना जाता है। अतएव ऐसे उपयोगी तथा पवित्र पशु की हत्या की गणना पञ्च महापातकों में की जाती है। अन्य पापों से भले ही उद्धार हो जाय परन्तु गोहत्या से कदापि निष्कृति नहीं हो सकती।

१. आह स्म नैवाऽशकुनी भवेन्मे,

भावी प्रियाऽऽवेदक एष हंसः।

नै० चं० सर्ग—

२. अस्तित्वं कार्यसिद्धेः स्फुटमथ कथयन्,

पक्षतेः पक्ष भेदात्।

नै० च०।

३. गवार्थे ब्राह्मणार्थे च प्राणत्यागं करोति यः।

सूर्यस्य मण्डलं भित्वा, ब्रह्मलोकं स गच्छति॥



(२) बैल—भारतीय कृषकों के जीवन में यह अत्यन्त उपयोगी पशु माना जाता है। यह ग्रामीणों के खेत को जोतता है। इसी के द्वारा 'दौबरी' करके किसान अन्न की राशि को प्राप्त करता है। यह भारवाही पशु भी है। व्यापारी बैल पर अपना सामान लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाते हैं। यह बैलगाड़ी में जोता जाता है। इस प्रकार ग्रामीण कृषकों की यातायात समस्या को भी हल करता है। इस प्रकार उपयोगिता की दृष्टि से बैल का कुछ कम महत्त्व नहीं है।

धर्म के क्षेत्र में भी बैल का स्थान महत्त्वपूर्ण है। यह शिव जी का वाहन है। अतः शिव के मन्दिरों में यह नन्दी के रूप में सदा विराजमान रहता है। लोग नन्दी की पूजा करते हैं। इस पर फल-पुष्प तथा जल चढ़ाते हैं। अतः शिव के वाहन के रूप में यह जनता का पूजनीय है। किसी धनाढ्य तथा समृद्ध व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसके श्राद्ध के समय 'वृषोत्सर्ग' करने की प्रथा प्रचलित है। साँड़ के बच्चे को लोहे के गर्म सलाकों से दागकर उसे स्वतन्त्र चरने के लिए छोड़ दिया जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि प्रेतव्यक्ति की आत्मा इसी साँड़ के रूप में संक्रमित हो जाती है। इसलिए ऐसे साँड़ को लोग आदर की दृष्टि से देखते हैं और खड़ी खेती को चरने पर कोई इसे नहीं मारता है।

(३) बिल्ली—यह एक छोटा पालतू जानवर है जो फूहड़ तथा आलसी भोजपुरी स्त्रियों के घर की दूध और दही को चट कर जाती है। बिल्ली को कुछ लोग शौक से पालते हैं और उन्हें दूध पिलाते हैं। कर्बुरित बिल्ली बड़ी सुन्दर दिखायी पड़ती है। इसे भोजपुरी में चितकाबरि अथवा 'चितउर' कहते हैं। 'चितउर' बिल्ली को जान से मारना अत्यन्त निषिद्ध माना जाता है। लोगों की ऐसी धारणा है कि जब तक मारी गयी बिल्ली के वजन के बराबर सोना दान न किया जाय तब तक इस पाप से मुक्ति नहीं मिल सकती।

यदि कोई व्यक्ति किसी यात्रा पर जा रहा है और बिल्ली उसका रास्ता 'काट' दे तो यह अशुभ माना जाता है। अतः इस दोष के परिहार के लिए यात्री अपनी यात्रा को थोड़ी देर के लिए स्थगित कर देता है। बिल्ली का रोना अमंगल-कारक है। अतः रोती हुई बिल्ली को लोग घर से बाहर खदेड़ देते हैं। पाश्चात्य देशों में बिल्ली का रोना अथवा आपस में लड़ना-झगड़ना आगामी वर्षा का सूचक है। अंग्रेजी के मुहावरे It is raining cats and dogs में इसी लोक-विश्वास की ओर संकेत किया गया है।

(४) गीदड़—यह एक छोटा जानवर है। जो गाँव के बाहर खेतों में निवास करते हैं। इसे लोक-भाषा में 'सियार' की संज्ञा दी गयी है। शाम हो जाने पर प्रदोष के समय यह 'हुँआ हुँआ' की आवाज से ग्रामीण वातावरण को भर देता है। गीदड़ प्रायः उन्हीं स्थानों में अधिकतर बोलते हैं जहाँ गाँव उजाड़ होता है। अतः 'गीदड़ बोलना', इस मुहावरे का व्यंग्यार्थ होता है उस स्थान का उजाड़ हो जाना। इस कारण से गीदड़ों का बोलना अशुभ तथा अमंगलकारी माना जाता है। बिल्ली की भाँति गीदड़ के भी द्वारा रास्ता काटना अशुभसूचक है। अतः इस दोष के परिहार के लिए यात्रा को थोड़ी देर के लिए स्थगित कर देना चाहिए। हिन्दी की लोक-कथाओं में गीदड़ 'सियारन पांडे' के रूप में अभिहित किया गया है। यह बहुत ही चतुर, चालाक तथा काइयाँ जानवर माना जाता है जिसकी चालाकी के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं।

संस्कृत में गीदड़ की मादा अर्थात् गीदड़ी को 'शिवा' कहा जाता है। इसकी आवाज गीदड़ से भी अधिक अशुभ मानी जाती है। किरातार्जुनीयम् के रचयिता ने 'जहासि निद्रां अशिवैः शिवारुतैः' लिखकर इसी तथ्य की ओर संकेत किया है जहाँ इसकी लीको 'अशिव' (अमंगल) की संज्ञा दी गयी है।

(५) भैंसा—यह मृत्यु के देवता यमराज का वाहन है। अतः इसे अश्रद्धा तथा निरादर की दृष्टि से देखा जाता है। उत्तर प्रदेश के पहाड़ी जिलों—विशेषकर नैनीताल तथा अलमोड़ा में नन्दाष्टमी उत्सव के अवसर पर तथा विजयदशमी के दिन भैंसा के बलि देने की प्रथा प्रचलित थी जो संभवतः अब बन्द हो गयी है। भैंसा मन्दबुद्धि का प्रतीक माना जाता है। किसी व्यक्ति को 'भैंसा' की उपाधि से अलंकृत करने का तात्पर्य है उसकी मूर्खता और स्वच्छन्द प्रवृत्ति।

### छिपकली का गिरना

छिपकली को संस्कृत में 'पल्ली' कहते हैं। अतः संस्कृत के बृहत् संहिता आदि ग्रन्थों में पल्लीपतन के सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। रविवार और मंगलवार को छिपकली का शरीर पर गिरना अशुभ माना जाता है। तथा इसके प्रायश्चित्तस्वरूप ब्राह्मणों को नमक दान में दिया जाता है। इससे अशुभ की शान्ति हो जाती है। घाघ ने इस सम्बन्ध में कहा है कि:—



“सिर पर गिरें राजसुख पावें,  
औ ललाट ऐश्वर्य लियावें।  
कण्ठ मिलावें पियको लाई,  
काँधे पड़े विजय दरसाई।  
जुगल कान औ जुगल भुजाहू,  
जोधा गिरे होय धन लाहू।  
निश्चय पीठ परें सुख पावें,  
परे काँख प्रियबन्धु मिलावें।”

अर्थात् यदि छिपकली सिर पर गिरे तो राज्य का सुख मिलता है, ललाट पर गिरने से ऐश्वर्य, कन्धे पर गिरने से विजय, कान और भुजा पर गिरने से धन की प्राप्ति, पीठ पर गिरने से सुख और काँख पर गिरने से प्रिय व्यक्ति की प्राप्ति होती है। इस प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों पर छिपकली के गिरने से अनेक प्रकार के शुभ और अशुभ फल होते हैं।

### (३) अनुच्छेद—जलचर सम्बन्धी विश्वास

**मछली**—जलचरों में मछली, कछुआ और घड़ियाल आदि की गणना की जाती है। परन्तु लोक-विश्वास की दृष्टि से मछली का इसमें प्रधान स्थान है। यात्रा के समय मछली का दर्शन शुभ माना जाता है। इसका कारण संभवतः यह है कि मछली भगवान् विष्णु का प्रथम अवतार—मत्स्यावतार है। अतएव दूर की यात्रा पर जानेवाला सभी मछली का दर्शन अवश्य करता है। महाकवि जायसी राजा रतनसेन की सिंहल यात्रा के समय शुभ वस्तुओं की श्रेणी में मछली की भी गणना की है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस लोक-विश्वास की पुष्टि की है।

### (२) परिच्छेद

### आकाशीय पिण्ड सम्बन्धी विश्वास

#### (१) अनुच्छेद

आकाश में अनेक ज्योतिष्मान् पिण्ड—जैसे सूर्य, चन्द्रमा और तारे हैं जिनके सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास साधारण में प्रचलित हैं।

(१) **सूर्य**—आकाशीय पिण्डों में सबसे अधिक प्रकाशमान भगवान् भास्कर अर्थात् सूर्य हैं जिन्हें ग्रामीण जनता ‘सुरुज भगवान्’ के नाम से स्मरण करती है। प्रातःकाल में उठकर उदीयमान सूर्य को लोग प्रणाम करते हैं। स्नान तथा पूजा करने के पश्चात् सूर्य को निम्नांकित मंत्र से अर्घ्य दिया जाता है।

“एहि सूर्य ! सहस्रांशो, तेजोराशे जगत्पते ।  
अनुकम्पय मां भक्त्या, गृहाणार्घ्यं दिवाकर ।”

परन्तु अशिक्षित स्त्रियाँ संस्कृत के इस श्लोक का शुद्ध रूप से उच्चारण नहीं कर सकती हैं अतः वे अपनी टूटी-फूटी वाणी से इस श्लोक का निम्नांकित रूप में उच्चारण करती हैं।

“हे सुरुज सहस्सर नाम,  
तेजोरासि जगत्पत्यांग ।”

सूर्य को अर्घ्य देने के मन्त्र का शुद्ध उच्चारण न कर सकने पर भी उनकी श्रद्धा और भक्ति में किसी प्रकार की कमी नहीं रहती। अतः ‘विश्वासः फलदायकः’ के अनुसार उन्हें सूर्य-पूजा का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है।



पण्डित लोग प्रातः तथा सायंकाल में सन्ध्या करते समय गायत्री के मन्त्र का जप करते हैं जो वास्तव में सावित्री (सूर्य) का ही मन्त्र है। यह गायत्री मन्त्र निम्नलिखित है।

“ओऽम् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्।”

अर्थात् भगवान् सूर्य के उस तेज का हम ध्यान करते हैं जिससे हमारी बुद्धि तीक्ष्ण हो। उपवीत छात्र के लिए इस मन्त्र का जप करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इससे उनकी बुद्धि का विकास होता है।

भगवान् सूर्य का व्रत कल्याण की कामना से किया जाता है। इस दिन व्रती दिनभर उपवास करने के पश्चात् रात्रि में ‘अलोना’ भोजन करता है। कुष्ठ रोग से पीड़ित व्यक्ति सूर्य को प्रतिदिन नियमित रूप से अर्घ्य प्रदान कर उनकी पूजा करते हैं। जो लोग चरक (लेको उरमा) रोग से ग्रसित हैं उनके लिए भी सूर्य की उपासना लाभदायक मानी जाती है।

(२) चन्द्रमा—सूर्य के पश्चात् चन्द्रमा की पूजा का प्रचार है। लोगों का विश्वास है कि चन्द्रमा की किरणों में अमृत का गुण विद्यमान है। अतः शरदपूर्णिमा (आश्विन शुक्ल पूर्णिमा) के दिन कुछ लोग खीर (तस्मै) बनाकर उसे छत पर अथवा घर के ऊपरी भाग पर रख देते हैं। रात भर चन्द्रमा की अमृतमयी किरणें उस खीर को आप्यायित करती हैं। दूसरे दिन भक्त लोग उस खीर को बड़े प्रेम से खाते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से अमरत्व की प्राप्ति होती है।

भाद्रपद मास (भादों) के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को गाँवों में ‘ढेलहवा चौथ’ कहते हैं। इस दिन रात्रि में चन्द्रमा का दर्शन करना निषिद्ध माना जाता है। लोगों की यह धारणा है इस दिन चन्द्रमा के दर्शन करने वाले व्यक्ति को कोई झूठा कलङ्क लग जाता है। इसलिए सभी लोग इस बात का बड़ा प्रयास करते हैं कि आकाश में चन्द्रमा न दिखायी पड़े। परन्तु कदाचित् वह दिखायी ही पड़ जाय तो इस दोष का परिहार दूसरों के घर पर ढेला, ईंट या पत्थर फेंकने से हो जाता है। इसीलिए इसे ‘ढेलवा चौथ’ की संज्ञा प्रदान की गयी है। माघ शुक्ल चतुर्थी को स्त्रियाँ चन्द्रमा का व्रत करती हैं और रात्रि में चन्द्रमा को अर्घ्य देने के बाद भोजन करती हैं। द्वितीया का चन्द्रमा आकाश में हँसिया के रूप में उदय होता है जो अत्यन्त सुन्दर दिखायी पड़ता है। दूज के चन्द्रमा को भक्ति के साथ लोग प्रणाम करते हैं। कालिदास ने भी इस तथ्य का प्रतिपादन ‘प्रतिपद चन्द्रमिव प्रजाः नृपम्’ लिखकर किया है।

(३) मंगल—नव ग्रहों में यह बड़ा ही दुष्ट ग्रह समझा जाता है। जिस व्यक्ति की कुण्डली में मंगल बुरे स्थान में होता है उसका अमंगल होना निश्चित है। अतः मंगल ग्रह को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रकार के पूजा-पाठ का विधान बतलाया गया है। मंगल की शान्ति के लिए लाल वस्त्र, लाल अन्न—जैसे मसूर की दाल, लाल भोजन—जैसे पूआ और रेकुआ आदि तथा अन्य लाल रंग की वस्तुएँ ब्राह्मणों को प्रदान की जाती हैं। इससे मंगल देवता प्रसन्न होते हैं।

जिस कन्या की कुण्डली में मंगल प्रधान स्थान पर स्थित होता है उस कन्या को ‘मंगली’ कहा जाता है। इस कन्या का विवाह केवल ‘मंगला’ वर से ही किया जा सकता है। सामान्य लोगों का यह विश्वास है कि मंगली कन्या का विवाह यदि मंगला वर से न किया जाय तो उसका फल वैधव्य योग होता है। इसी प्रकार यदि ‘मंगला वर’ का विवाह मंगली लड़की से न हो तो उसकी स्त्री की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

(४) वृहस्पति—यह ग्रह मंगलकारक माना जाता है। जिस व्यक्ति की कुण्डली में वृहस्पति अपने घर अर्थात् चतुर्थ स्थान में होता है वह महान् विद्वान् होता है। वृहस्पति चूँकि विद्या के देवता माने जाते हैं अतः उनकी प्रसन्नता से विद्या की प्राप्ति होती है। इसीलिए इस दिन विद्यारम्भ करना शुभ माना जाता है।

(५) शुक्र—यह ग्रह साधारणतया शुभ माना जाता है। गाँवों में इसे ‘सुकवा’ कहते हैं। मगध निवासियों के सम्बन्ध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

“मगह के लोग बुडुबकवा,  
सुकवा के कहे भुडुक्वा।”

अर्थात् मगह के निवासी अत्यन्त मूर्ख होते हैं और वे शुक्र (सुकवा) को भृगु (भुडुक्वा) के नाम से पुकारते हैं। ग्रामीण लोग आकाश में शुक्र की स्थिति को देखकर रात्रि में समय का निर्धारण किया करते हैं। शुक्रतारा अत्यन्त चमकीला और प्रकाशमान् होता है। यह रात्रि के अपर भाग में आकाश में दिखायी पड़ता है। अतः इसे पहिचानना कुछ कठिन नहीं होता।



विवाह के अवसर पर शुक्रोदय होना आवश्यक माना जाता है क्योंकि जब शुक्र अस्त हों तब वैवाहिक शुभ कार्य सम्पन्न नहीं किये जा सकते। नव विवाहिता वह जब प्रथम बार अपने मायके जाना चाहती है उस समय शुक्र का सम्मुख (सामने) होना शुभ होने के साथ ही अनिवार्य भी है। इस प्रकार विवाह तथा यात्रा के अवसर पर शुक्र की अनुकूलता का विचार निश्चित रूप से किया जाता है।

(६) शनि—मंगल की ही भाँति शनि भी अत्यन्त दुष्ट ग्रह है। जिस व्यक्ति की कुण्डली में शनि ग्रह खराब होता है उसे जीवन में बड़ा ही शारीरिक तथा मानसिक कष्ट उठाना पड़ता है। अतः शनि की पूजा करके उसे प्रसन्न करने की चेष्टा की जाती है। जिस प्रकार मंगल की पूजा में लाल वस्त्रों तथा लाल मिष्ठान्तों को ब्राह्मणों को देना शुभ होता है उसी प्रकार शनि की पूजा में काला वस्त्र, काला अन्न—जैसे उड़द की दाल आदि—तथा काली वस्तु—लोहा आदि का दान देना मंगलकारी माना जाता है। इस दिन सरसों के तेल को दान में देना शुभ फल को देनेवाला होता है। वाराणसी नगरी में शनिवार के दिन तेल की भिक्षा माँगने वाले 'सनीचर तेल' कहते हुए घूमा करते हैं जिन्हें लोग बड़े प्रेम से तेल दान में देते हैं।

काशी में शनि देवता के अनेक मन्दिर हैं जहाँ इनकी पूजा शनिवार के दिन बड़ी विधिपूर्वक की जाती है। इस दिन इनके मन्दिर में कड़ुवा तेल के दीपक जलाये जाते हैं। शनि की महादशा सोलह वर्ष तक चलती है परन्तु इसकी 'साढ़साती' अर्थात् साढ़े सात वर्षों तक शनि की दशा का होना—बड़ी ही भयंकर होती है। गोस्वामी जी ने कैकेयी को अवध की 'साढ़साती' कहा है। शनि के समान दुष्ट ग्रह दूसरा नहीं है। इसीलिए सभी लोग इससे डरते हैं।

## (२) अनुच्छेद—तारा

(१) अगस्त—यह तारा शरद् ऋतु के प्रारम्भ में आकाश में दिखायी पड़ता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इसके उदय से वर्षा का जल सूख जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने इसी तथ्य का उद्घाटन निम्नलिखित पंक्तियों में किया है—

“उदित अगस्त पंथ जल सोखा,  
जिमि लोभहि सोखे संतोषा।”

अगस्त्य नामक ऋषि ने समुद्र के जल को अपनी अञ्जलि (अञ्जलि) में पीकर उसे सुखा दिया था। सम्भवतः इसीलिए अगस्त का नाम जल के सोखने से सम्बन्धित हो गया है।

जब कोई मनुष्य अपनी मात्रा से अधिक भोजन कर लेता है और उसे अपच होने की आशंका होती है तब उस अन्न को पचाने के लिए अगस्त्य ऋषि की प्रार्थना निम्नलिखित श्लोक से की जाती है।

“समुद्रः शोषितो येन,  
स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु।

इस प्रकार जल का शोषण करने के लिए तथा अन्न को पचाने के लिए अगस्त्य ऋषि का आवाहन किया जाता है।

(२) ध्रुव तारा—यह तारा आकाश में सदा एक ही स्थान पर एक ही दिशा में उदित होता है। यह आकाश में सदा अटल (ध्रुव) रूप से विराजमान रहता है इसीलिए इसका नाम ध्रुव पड़ गया है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि यह ध्रुव तारा ध्रुव नामक बालक का प्रतिनिधि है जिसने अपनी कठोर तपस्या तथा त्याग के द्वारा स्वर्ग में निश्चित स्थान प्राप्त कर लिया था। इसी ध्रुव बालक के नाम के कारण ही 'ध्रुव' शब्द का अर्थ अटल हो गया है।

(३) सप्तर्षि मण्डल—रात्रि में आकाश में सात तारे एक साथ प्रकाशित दिखायी पड़ते हैं जिन्हें 'सप्तर्षि मण्डल' कहा जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि तारे सात ऋषियों के प्रतिनिधि हैं।

सप्तर्षि मण्डल आकाश में सदा एक ही स्थान में तथा एक ही रूप में अवस्थित दिखायी पड़ते हैं। अंग्रेजी में इन्हें 'सेवेन बियर्स' कहते हैं जिसका अर्थ सात-भालू होता है।

## (३) अनुच्छेद—नक्षत्र

नक्षत्र—नक्षत्रों की संख्या सत्ताइस मानी जाती है जिनके सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। इनमें से कुछ नक्षत्र वर्षा तथा कुछ ग्रीष्म के लिए प्रसिद्ध हैं। निम्नांकित दस नक्षत्रों में वृष्टि-योग माना जाता है अर्थात् जब ये नक्षत्र चढ़ते अर्थात् आते हैं तब अत्यधिक वर्षा होती है—(१) आर्द्रा (२) पुष्य (३) पुनर्वसु (४) श्लेषा (५) मघा (६) पूर्वा फाल्गुनी (७) उत्तरा (८) चित्रा (९) हस्त और (१०) स्वाति। ये सभी वर्षा के नक्षत्र हैं। इनमें से प्रत्येक के आग-



मन पर कम या अधिक वर्षा होती है। इनमें भी आर्द्रा और हस्त में वर्षा का योग विशेष होता है। आर्द्रा-नक्षत्र में अत्यधिक वर्षा के कारण पृथ्वी आर्द्र अर्थात् गीली हो जाती है। सम्भवतः इसीलिए इसका नाम आर्द्रा पड़ गया है। मघा-नक्षत्र में वर्षा प्रचुर मात्रा में होती है। जायसी ने लिखा है कि इस नक्षत्र में झकोरि-झकोरि कर वर्षा होती है—“बरसे मघा झकोरि” —

“बरसे मघा झकोरि-झकोरी,  
मोर डुइ नयन चुवें जस ओरी॥”

हस्त नक्षत्र को गाँवों में ‘हथिया’ कहा जाता है। इस नक्षत्र में अत्यन्त अधिक वर्षा होती है जिसका क्रम लगातार अनेक दिनों तक चलता रहता है। आज से लगभग चालीस-पचास वर्ष पहिले हथिया के डर के मारे लोग अपने घरों में दस-पन्द्रह दिनों के लिए खाने के लिए अन्न तथा जलाने के लिए ईंधन जमा करके रख लेते थे क्योंकि उन्हें सदा यह भय बना रहता था कि हथिया के अनवरत वर्षा के दिनों में इन वस्तुओं को प्राप्त करना कठिन हो जायेगा। गाँवों में “हथिया का झपसा” अर्थात् हस्त नक्षत्र की वर्षा प्रसिद्ध है।

जहाँ हथिया वर्षा का नक्षत्र माना जाता है वहाँ मृगशिरा प्रचण्ड गर्मी का नक्षत्र प्रसिद्ध है। मृगशिरा को गाँवों में ‘मृगडाह’ कहते हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में कहा जाता है कि चूँकि इन दिनों में भीषण गर्मी के कारण मृग ‘डहते’ हैं अर्थात् कष्ट को प्राप्त होते हैं अतएव इस नक्षत्र को ‘मृगडाह’ कहते हैं। मृगशिरा नक्षत्र में ब्राह्मणों को पूड़ी और आम का भोजन कराया जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इस नक्षत्र में ब्राह्मणों को भोजन कराने से प्रचुर वर्षा होती है। मृगशिरा के बाद आर्द्रा नक्षत्र आता है। अतः मृगशिरा में ब्राह्मण भोजन कराने से आर्द्रा में ब्राह्मणों के आशीर्वाद से अखण्ड वर्षा के कारण पृथ्वी आर्द्र हो जाती है।

रोहिणी नक्षत्र में वर्षा होने के कारण आम पक जाते हैं जो बड़े ही स्वादिष्ट होते हैं। इस नक्षत्र में वर्षा के होने से अन्न प्रचुर मात्रा में पैदा होता है।

सुप्रसिद्ध लोक-ऋतु विज्ञान-वेत्ता घाघ ने लिखा है कि यदि रोहिणी नक्षत्र में वर्षा हो और मृगशिरा नक्षत्र में भीषण गर्मी पड़े तो इतना अधिक अन्न उत्पन्न होता है कि कुत्ता भी भात नहीं खाना चाहता।

“रोहिनि बरसे मृग तपे, कुछ-कुछ अद्रा जाय।  
कहे घाघ घाघनि से, स्वान भात ना खाय॥”

भङ्गरी—जो घाघ के समान ही ऋतु-विज्ञान शास्त्री हैं—का कथन है कि आर्द्रा में तनिक भी वर्षा न हो और मृगशिरा में हवा न चले तो एक बूंद भी वर्षा आगे होने की सम्भावना नहीं समझनी चाहिए।

“आर्द्रा तो बरसै नहीं, मृगशिर पौन न जोय।  
तौ जानै यों भङ्गरी, बरसा बूंद न होय॥”

इस प्रकार से घाघ और भङ्गरी की अनेक कहावतें उपलब्ध होती हैं जिनका सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के नक्षत्रों से है। ग्रामीण लोग इन्हीं लोकोक्तियों के आधार पर अपनी जीवन-चर्या को परिचालित करते हैं। वर्षा होने तथा सूखा पड़ने का परिज्ञान उन्हें इन्हीं के द्वारा होता है।

#### (४) अनुच्छेद—प्राकृतिक प्रकोप सम्बन्धी विश्वास

प्रकृति भी अपना प्रकोप कभी-कभी प्रकट करती है। कभी प्रचुर वर्षा के द्वारा वह संसार को जलमग्न कर देती है तो कभी अनवरत करकापात से खेतों में खड़ी खेती को नष्ट कर देती है। कभी बादलों की गड़गड़ाहट से और बिजली के तड़-तड़ाहट से हृदय में भय का संचार होता है तो कभी प्रचण्ड आँधी के कारण विशालवृक्ष भी भूमिसात हो जाते हैं। इस प्रकार आँधी-पानी, वर्षा-बिजली के सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हो गये हैं। इन्हीं विश्वासों के आधार पर ग्रामीण जनता का जीवन परिचालित होता है।

प्राकृतिक प्रकोपों तथा प्रकृति सम्बन्धी स्वरूपों (Phenomenon) को सामान्यतया चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—



- (१) बादल (२) वर्षा  
(३) बिजली (४) आँधी और बवण्डर

(१) बादल—रंग-रूप के कारण बादल भी अनेक प्रकार के होते हैं—जैसे काला, भूरा, सफेद आदि। जो बादल भूरे अथवा सफेद रंग के होते हैं वे अत्यधिक वर्षा के कारण बनते हैं परन्तु काले बादल केवल लोगों को डरवाते हैं। वे तनिक भी वर्षा नहीं करते हैं। इस सम्बन्ध में गाँवों में यह लोकोक्ति प्रचलित है कि—

“भूरा बादल पानी लावे,  
काला बादल जी डरवावे।”

(२) बिजली—आकाश में बिजली का तड़तड़ाना बड़ा अशुभ है तथा भयकारक माना जाता है। ऐसा समझा जाता है कि जब बिजली अधिक कड़केगी तब वह कहीं-न-कहीं अवश्य गिरेगी। बिजली का गिरना अत्यन्त अशुभ माना जाता है क्योंकि इससे जन और धन दोनों की हानि होती है। इसलिए ‘बिजली गिरना’ हिन्दी में एक मुहावरा बन गया है जिसका अर्थ है अत्यधिक क्षति का होना।

संस्कृत का एक श्लोक प्रचलित तथा प्रसिद्ध है जिसमें विभिन्न रंग की बिजली को देखकर अनेक शुभ तथा अशुभ कल्पनाएँ की गयी हैं—

“वाताय कपिला विद्युत्, आतपायाति लोहिनी।  
कृष्णा भवति सस्याय दुर्भिक्षाय सिता भवेत्॥”

इसका भाव यह है कि यदि आकाश में भूरी (कपिल) रंग की बिजली चमके तो जोरों की आँधी आती है। यदि लाल रंग की बिजली दिखायी पड़े तो भीषण गर्मी पड़ने की सूचना मिलती है। काली बिजली प्रचुर अन्न के पैदा होने की सूचक है तथा यदि सफेद बिजली आकाश में चमके तो देश में अकाल की सूचक है। इस प्रकार बिजली के विभिन्न रंगों के अनुसार अशुभ तथा शुभ कार्य का अनुमान किया जाता है।

(३) वर्षा—यद्यपि एक लोकोक्ति के अनुसार—जिसकी चर्चा अन्यत्र की गयी है—काले बादल केवल भय के कारक होते हैं और वर्षा नहीं करते परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की यह दृढ़ धारणा है कि बादल जितने ही काले होंगे उतनी ही अधिक वर्षा होगी। इसीलिए काले बादलों को आकाश में मडराते हुए देखकर भावी वर्षा की सम्भावना से किसान नाच उठता है।

मघा और हस्त—जिसे जनपदीय भाषा में हथिया कहा जाता है—ये दोनों ही वर्षा के नक्षत्र हैं जिनकी चर्चा नक्षत्र वाले प्रकरण में की जा चुकी है।

### वर्षा कराने वाले विविध विधि-विधान

जब वर्षा नहीं होती तब अनावृष्टि के कारण किसान का हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठता है। वह अकाल की काली आशंका से उद्विग्न हो जाता है। ऐसे समय जिस किसी प्रकार से वर्षा हो यही उसका एकमात्र अभीष्ट होता है। इसके लिए पण्डित, पुरोहित और यज्ञ का विधान प्रारम्भ करते हैं। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि—यज्ञ के धुएँ से बादल बनते हैं बादलों से वर्षा होती है और इससे अन्न की उत्पत्ति होती है। अतः अवर्षण होने पर लोग यज्ञ-यागादि का विधान करते हैं।

गाँवों में वर्षा का योग प्राप्त करने के लिए एक विशेष प्रकार का विधान किया जाता है। उच्च वर्ण—ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों की स्त्रियाँ मध्य रात्रि में पूर्णतया नंगी होकर खेत में जाकर अपने हाथों से हल चलाती हैं। सामान्य जनता की यह मान्यता है कि ऐसा करने से वर्षा होती है। इस समय नंगी स्त्रियाँ एक प्रकार का लोक-गीत भी गाती हैं जिसे “हरफरवरी” कहा जाता है। वर्षा कराने का दूसरा उपाय यह है कि कुल बच्चे घर-घर जाकर जमीन पर लेटते हैं और ‘काला मेघा पानी दे’ का रट लगाते हैं। लोग उन बालकों के ऊपर पानी फेंकते हैं या डालते हैं। ऐसा करने से वर्षा होती है यह विश्वास है।

### (४) आँधी तथा बवण्डर

ग्रीष्म ऋतु में जब हवा नहीं चलती और ग्रामीण लोग भीषण गर्मी से उद्विग्न हो जाते हैं; उस समय गाँव की स्त्रियाँ तथा लड़के वायु को प्रेरित करने के लिए निम्नांकित गीत गाते हैं—



“एक टेंट कपास, बुढ़िया ले गइल आकास।

भाका बहऽबतास, भाका बहऽबतास।”

कुछ लोग हवा शब्द के अक्षरों को उलट कर ‘वाह वाह’ भी कहते हैं जिसका सम्बन्ध वायु के बहने से है। इन दोनों उपायों के करने से वायु बहने लगती है ऐसा सामान्य जनता का विश्वास है। यदि वायु चल रही हो और उसका प्रचण्ड झोंका अभीष्ट न हो तो उसे रोकने के लिए निम्नांकित शब्दावली का प्रयोग किया जाता है—

“अउवे रे अउवे, गउवे रे गउवे।”

लड़के इन्हीं शब्दों का उच्चारण बारम्बार करते हैं जिससे वायु का प्रचण्ड रूप बहुत कुछ कम हो जाता है।

प्रचण्ड आँधी—जिसे संस्कृत में झञ्झावात और अंग्रेजी में ‘साइक्लोन’ कहते हैं—के चलने से पूर्व प्रकृति में बड़ी निस्तब्धता छा जाती है। प्रकृति के इस पूर्णतया शान्त रूप को देखकर कुछ लोगों को यह आभास हो जाता है कि ‘प्रचण्ड अन्धड़’ आने वाला है। गाँवों में ऐसी प्रचण्ड आँधी या अन्धड़ को ‘बुढ़िया आँधी’ कहा जाता है। ऐसी आँधी वृक्षों को उखाड़ फेंकती है तथा छप्पर के झोपड़ों एवं कच्चे मकानों को भूमिसात् कर देती है।

गर्मी के दिनों में हवा जोरों से गोलाई में चलती है तथा बीच में पड़ने वाली पत्तियों, तृणों तथा रजकणों को उड़ाती चलती है। इसे बवण्डर कहा जाता है। भोजपुरी में इसे ‘बड़ेरा’ कहते हैं जो बवण्डर का ही अपभ्रंश रूप है। गाँव के लोगों का ऐसा विश्वास है कि भूतों की प्रेरणा से ही बवण्डर चला करते हैं। अतः जहाँ बड़ेरा चलता रहता है उस स्थान को छोड़कर लोग दूर चले जाते हैं अन्यथा भूत-या प्रेत योनि से अभिभूत होने की आशंका बनी रहती है। संस्कृत में बवण्डर को ‘वात्या-चक्र’ की संज्ञा प्रदान की गयी है। हिन्दी में बिना काम के घुमक्कड़ तथा संचरणशील व्यक्ति को बवण्डर नाम से अभिहित किया जाता है।

### (३) परिच्छेद

#### जलाशय सम्बन्धी विश्वास

##### (१) अनुच्छेद—नदी सम्बन्धी विश्वास

गंगा, यमुना, नर्मदा तथा कर्मनासा आदि नदियों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की मान्यतायें जनसाधारण में प्रचलित हैं जिनका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

(१) गंगा—यह हिन्दुओं की परम पवित्र नदी है। इसमें स्नान करने से शरीर पवित्र हो जाता है। मन को शान्ति मिलती है और मृत्यु के बाद परलोक की प्राप्ति होती है। गंगा में स्नान करने से व्यक्ति को भुक्ति (भोग) और मुक्ति (मोक्ष) दोनों ही प्राप्त होता है। गंगा की स्तुति में संस्कृत के किसी कवि ने ठीक ही लिखा है कि—

“नमामि गंगे! तव पादपंकजम्,  
सुरा सुरैर्वन्दितदिव्यरूपम्।  
मुक्तिञ्च भुक्तिञ्च ददासि नित्यं,  
भावानुसारेण सदा नराणाम्॥”

गंगा में स्नान करने से तो मुक्ति मिलती ही है परन्तु जो व्यक्ति सौ योजन से भी केवल गंगा शब्द का उच्चारण भी करे तो भी उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। गंगा के माहात्म्य के सम्बन्ध में यह श्लोक बड़ा प्रसिद्ध है—

“गंगा गंगेति, यो ब्रूयात्,  
योजनानां शतैरपि।  
मुच्यते सर्वपापेभ्यो,  
स्वर्गलोकं स गच्छति॥”

इन कारणों से लोगों की यह दृढ़ धारणा है कि गंगा में स्नान करने से स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है। कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा के दिन गंगा में स्नान करने का अत्यधिक महत्त्व माना जाता है। इस दिन बिहार में सोनपुर में हरिहर क्षेत्र का



उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में ददरी का मेला, मेरठ जिले के गढ़मुक्तेश्वर में गंगा स्नान का बहुत बड़ा मेला जुटता है। कार्तिक माघ वाराणसी के पंचगंगा घाट पर स्नान करने के समधिक माहात्म्य हैं। इसी प्रकार से माघ-मास में त्रिवेणी-संगम पर तथा वैसाख-मास में हरिद्वार में हर की पैड़ी पर गंगा स्नान की बड़ी महिमा मानी जाती है। चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण के अवसर गंगा के पावन जल में स्नान किया जाता है।

मरणासन्न व्यक्ति के मुख में गंगा-जल तथा तुलसीदल दिया जाता है जिससे उसको सद्गति प्राप्त हो सके; सुदूर दक्षिण में स्थित रामेश्वरम् के मन्दिर में भगवान् शिव का गंगाजल से अभिषेक करना परम् पुण्यकारक माना जाता है। सत्य-नारायण की कथा में भगवान् के चरणामृत में गंगा-जल का डालना पवित्र है। गंगा का जल अनेक मासों तक रखे रहने पर भी कीटाणुओं से दूषित नहीं होता। इस प्रकार धार्मिक तथा आयुर्वेदीय दोनों ही दृष्टियों से गंगा का जल परम पावन, पवित्र तथा लाभकारी है।

(२) यमुना—गंगा के पश्चात् दूसरी पावन नदी यमुना, जो साधारणतया यमुना के नाम से पुकारी जाती हैं। माघ मास में त्रिवेणी के तट पर यमुना में स्नान करने का बड़ा माहात्म्य है। कार्तिक शुक्ल द्वितीया—जिसे यमद्वितीया भी कहा जाता है—के दिन मथुरा के विश्राम घाट पर यमुना में स्नान करने के लिए भक्तों की भयंकर भीड़ एकत्रित होती है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इस दिन यमुना में स्नान करने से यम की यातना से मुक्ति मिल जाती है। जो लोग मथुरा नहीं जा सकते वे प्रयाग में ही यमुना में स्नान करते हैं।

इस सम्बन्ध में यह कथा प्रचलित है कि सूर्य के पुत्र यमराज ने अपनी बहिन यमुना से अत्यन्त प्रसन्न होकर उससे वर मांगने के लिए कहा। यमुना ने यह वर मांगा कि जो व्यक्ति आज के दिन मेरे पवित्र जल में स्नान करे वह तुम्हारी (यम की) यातना से मुक्त हो जाय। यमराज ने 'एवमस्तु' कह इसे स्वीकार कर लिया। तभी से यमद्वितीया के दिन यमुना में स्नान, मुक्ति प्रदान करने वाला माना जाता है।

ब्रजवासी लोग 'यमुना मइया' से बहुत प्रेम करते तथा उनकी महिमा गाते हैं। वे गंगा की अपेक्षा यमुना में ही स्नान करना अधिक पुण्यदायक मानते हैं। 'जमुना मइया की जय' यही उनका प्रिय नारा है।

(३) कर्मनाशा—यह नदी मुगलसराय (उत्तर प्रदेश) के आगे थोड़ी दूर पर बहती है। यह बिहार और उत्तरप्रदेश सीमा पर प्रवाहित होने के कारण उसकी सीमा का भी निर्धारण करती है। ऐसा कहा जाता है कि कर्मनाशा नदी आकाश में अधर रूप में लटकते हुए त्रिशंकु के लार से बनी हुई है। अतः इसमें स्नान करना निषिद्ध माना जाता है। सर्वसाधारण जनता की यह दृढ़ धारणा है कि इसमें स्नान करने से समस्त शुभ कर्मों का नाश हो जाता है। इस प्रकार यह नदी अपने 'कर्मनाशा' नाम को पूर्णतया चरितार्थ करती है।

पण्डित लोग तथा धार्मिकजन इस नदी के जल को स्पर्श करना भी अपावन समझते हैं। इसलिए इसके घाटों पर न तो स्नानार्थियों की भीड़ दिखायी पड़ती है और न पर्वों पर जन समूह।

(४) सरयू—भोजपुरी क्षेत्र की यह एक पावन तथा प्रसिद्ध नदी मानी जाती है। यह अयोध्या से बहती हुई आती है और बिहार के सारन जिले में गंगा में मिल जाती है। अयोध्या में प्रवाहित होने के कारण यह भगवान् राम की परम प्यारी नदी है। रामनवमी के दिन अयोध्या में बहुत बड़ा मेला लगता है। इस दिन सरयू में स्नान करना परम-पवित्र तथा पुण्यदायक माना जाता है।

इसी सरयू नदी के किनारे निवास करने के कारण कुछ ब्राह्मणों को 'सरयूपारीण' के नाम से अभिहित किया जाता है जिसका अर्थ है सरयू के पार रहनेवाला व्यक्ति।

भोजपुरी क्षेत्र में सरयूपारीण ब्राह्मणों की संख्या अत्यधिक है जिन्होंने भोजपुरी लोक-संस्कृति के निर्माण में समधिक योगदान दिया है। गंगा और सरयू इस प्रदेश की दो पवित्र नदियाँ हैं जिनके कारण इस प्रदेश की भू-समृद्धि होती रही है।

## (२) अनुच्छेद

कूप—गांवों में कुछ ऐसे कुएँ होते हैं जिनका जल मीठा होता है। ऐसे कुओं के जल से दाल अच्छी तरह से गलती है। अतः मीठे कुओं का बड़ा महत्त्व माना जाता है। कुछ कुओं का जल रोगनाशक होता है जिससे चर्मरोग सदा के लिए नष्ट हो जाता है।

वाराणसी नगरी में 'धनवन्तरि कूप' नामक एक सुप्रसिद्ध कुआँ है जिसका जल स्वास्थ्य-वर्धक तथा पाचक एवं रोग-विनाशक माना जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इस कूप के जल को पीने से अनेक प्रकार के रोगों का नाश हो जाता



है। अतः इस कूप पर लोगों की सदा भीड़ लगी रहती है। कुछ लोग इस कुएँ के जल को अपने घर ले जाते हैं और अपने बाल बच्चों को भी पिलाते हैं।

**कुण्ड**—कूप के समान ही कुण्ड के जल की भी मान्यता पायी जाती है। वाराणसी नगरी भदौनी मुहल्ले के पास लोलार्क नामक एक कुण्ड है जिसे स्थानीय लोग 'लोलार्क कुण्ड' के नाम से पुकारते हैं। इस कुण्ड के विषय में यह प्रसिद्धि है कि इसके जल में कुष्ठ रोग को दूर करने की शक्ति विद्यमान है। अनेक चर्मरोग भी इसके जल में अवगाहन करने से नष्ट हो जाते हैं। इसके साथ ही इस कुण्ड के विषय में लोगों की यह मान्यता है कि सन्तानहीन स्त्री यदि इस कुण्ड में स्नान कर ले तो उसे सन्तान की प्राप्ति होती है। अतएव एक विशेष दिन इस कुण्ड में स्नान करने के लिए स्त्रियों की बड़ी भीड़ एकत्र होती है। इस दिन इस कुण्ड में पेठा (भतुआ) दान करने का बड़ा माहात्म्य माना जाता है। स्त्रियाँ इस कुण्ड में स्नान करके अपनी पुरानी साड़ी यहीं छोड़ देती हैं और नवीन वस्त्र को धारण करती हैं। लोलार्ककुण्ड में स्नान करने से अनेक स्त्रियों को पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई है।

## (४) परिच्छेद

### वनस्पति-जगत् सम्बन्धी विश्वास

वनस्पति जगत् को अनेक श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है यथा—वृक्ष, पौधा, लता, पुष्प, शाक और गुल्म तथा तृण। इनमें से कतिपय विशिष्ट वृक्षों तथा पुष्पों का ही यहाँ विवरण प्रस्तुत किया जाता है जिनका सम्बन्ध लोक-विश्वास से प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

(१) **पीपल**—यह वनस्पति जगत् में ब्राह्मण वर्ग का वृक्ष माना जाता है; अतः परम पवित्र है। इसकी पवित्रता का प्रधान कारण संभवतः यह है कि इस वृक्ष के ऊपर ब्रह्मा का निवास रहता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने "अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्" कहकर इस वृक्ष को अत्यन्त महत्त्व प्रदान किया है। इसकी पवित्रता के ही कारण मन्दिरों के पास पीपल का वृक्ष लगाने की प्रथा है।

इस वृक्ष की डालों का काटना वर्जित है और इसकी लकड़ी को पूजा के अतिरिक्त अन्य घरेलू कार्यों में जलाना अत्यन्त निषिद्ध है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इस वृक्ष को काटने से इस पर निवास करने वाले देवताओं को कष्ट होता है अतः कोई भी हिन्दू इसको काटने की हिम्मत नहीं कर सकता।

भोजपुरी क्षेत्र की स्त्रियाँ सोमवती अमावस्या के दिन स्नान करके वासुदेव के रूप में इस वृक्ष की पूजा करती हैं। वे इसकी जड़ में जल चढ़ाती हैं तथा चन्दन, रोरी एवं पुष्प से इसकी पूजा करती हैं। वे १०८ बार इस वृक्ष की प्रदक्षिणा करती हैं तथा प्रत्येक बार इसके चारों ओर सूत लपेटती हैं। जो इसके यज्ञोपवीत का प्रतीक है। कोई बूढ़ी स्त्री इस अवसर पर राजा निकुञ्जलि और उसकी पतिपरायणा स्त्री सत्यवती की कथा को भी सुनाती हैं। इस वृक्ष की पूजा दाम्पत्य प्रेम को बढ़ाने वाली मानी जाती है तथा इससे सन्तान की प्राप्ति भी होती है।

इस क्षेत्र में किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् दिवंगत आत्मा को जल प्रदान करने के लिए इस वृक्ष की शाखा में एक छोटा-सा कलश बाँध दिया जाता है जिसे 'घण्ट' कहते हैं। 'दाही' प्रतिदिन इसी घण्ट में प्रातः तथा सायंकाल जल डालकर इसे भर देता है।

चूँकि इस वृक्ष की लकड़ी परम् पवित्र मानी जाती है अतः इसका उपयोग मृत व्यक्ति के शव को जलाने के लिए किया जाता है। यज्ञ में प्रयुक्त की जाने वाली अग्नि को उत्पन्न करने वाली 'अरणी' और होमकर्म का साधन 'श्रुवा' इसी पवित्र लकड़ी का बनाया जाता है। इस प्रकार पीपल अत्यन्त पवित्र वृक्ष है जिसका उपयोग केवल धार्मिक कृत्यों के लिए ही किया जाता है।

(२) **बरगद**—बरगद का वृक्ष अपनी विशालता के लिए प्रसिद्ध है। संस्कृत में इसे न्यग्रोध कहते हैं। वाल्मीकि-रामायण तथा तुलसीदास कृत मानस में 'अक्षयवट' का उल्लेख पाया जाता है जिसकी शीतल छाया में सीता के साथ राम ने विश्राम किया था।

१. लेखक एक ऐसी पुत्रहीन स्त्री को जानता है जिसे अनेक वर्षों तक (पुत्रियों के होने पर) पुत्र की प्राप्ति नहीं थी। परन्तु इस कुण्ड में एक बार स्नान करने के पश्चात् ही उस स्त्री को पुत्र पैदा हुआ। इस प्रकार उसका विश्वास सच निकला।



ऐसी प्रसिद्धि है कि प्रलयकाल में समस्त संसार के विनष्ट हो जाने पर केवल वट का वृक्ष ही रह जाता है जिसकी पत्तियों पर भगवान् कृष्ण अपने बालरूप में विराजते हैं।

“हस्तारविन्दे मुखारविन्दे,  
पादारविन्दं विनिवेशयन्तम्।  
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं  
बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि॥”

इस उपर्युक्त श्लोक में इसी बालरूप कृष्ण का सुन्दर रीति से वर्णन किया गया है।

भोजपुरी मण्डल में इस वृक्ष को पीपल की ही भाँति पवित्र माना गया है। इस वृक्ष की शाखाओं को काटना निषिद्ध है। अपनी विशाल शाखाओं के द्वारा मार्ग का अवरोध करने पर भी इस पर कुल्हाड़ी चलाने की किसी की हिम्मत नहीं होती। इसकी पत्तियों का उपयोग पत्तल बनाने के लिए किया जाता है जिसमें भोजन करना पवित्र है। वट-सावित्री व्रत के दिन इसकी पूजा की जाती है जो सौभाग्य का वर्धक है। इस वृक्ष की शाखाओं से लम्बी-लम्बी जटायें नीचे लटकती रहती हैं जिन्हें ‘बरोही’ कहा जाता है। अनेक लोक-कथाएँ इस वृक्ष से सम्बन्धित हैं।

(३) गूलर—इसे संस्कृत में उदुम्बर कहते हैं। इस वृक्ष की पत्तियों को तोड़ने से दूध निकलता है जो बड़ा गुणकारी होता है। सम्भवतः इसीलिए इसे ‘हेमदुग्धा’ भी कहा जाता है।

भोजपुरी जनता का यह विश्वास है कि गूलर के फूल—जो प्रायः दिखायी नहीं पड़ते—को भोज्य पदार्थ अथवा धन की राशि में रख दिया जाय तो उसकी कभी समाप्ति नहीं हो सकती। इसीलिए जो वस्तु खर्च करने पर भी कभी नहीं घटती उसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि इसमें गूलर का फूल पड़ गया है घर के समीप गूलर के वृक्ष को लगाना निषिद्ध है। क्योंकि लोगों का यह दृढ़ विश्वास है कि इसकी छाया से समस्त संचित पुण्य नष्ट हो जाते हैं। अतः धर्मात्मा लोग इसकी छाया से बचकर चलते हैं। इस वृक्ष का फल मीठा होता है जिसे निर्धन व्यक्ति चुन-चुन कर खाते हैं। अतः भोजपुरी माताएँ अपने उदण्ड तथा शरारती पुत्रों को गूलर के वृक्ष की छाया में बैठकर रौने तथा उसके फल को—जिसे ‘गोदा’ कहा जाता है—बीन-बीन कर खाने का अभिशाप देती हैं। उनके शाप का ‘मंत्र’ है—

“पकली गूलर तर बैठि के रोइबे।  
अवरू गोदा बिनि-बिनि खइबे॥”

(४) नीम—नीम का वृक्ष बहुत ही पवित्र समझा जाता है। शीतला माता चेचक की अधिष्ठाता देवी मानी जाती हैं। इनका निवास नीम के वृक्ष पर माना जाता है। लोक-गीतों में इस विषय का उल्लेख मिलता है। शीतला नीम के पेड़ पर झूलती झूलती रहती हैं। अतः शीतला माता का निवास स्थान होने के कारण यह वृक्ष आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

जो व्यक्ति चेचक के रोग से पीड़ित होता है उसकी चारपाई पर नीम की पत्तियों को बिछाकर उसे सुलाते हैं। इस वृक्ष की पत्तियों से युक्त टहनियों से रोगी को पंखा झला जाता है। चेचक में नीम की पत्तियों का विभिन्न रूप में प्रयोग किया जाता है। माली शीतला माता का भक्त है। अतः उसे बुलाकर इस देवी की पूजा करायी जाती है जिससे यह रोग शीघ्र शान्त हो जाय। नीम का फल रोगी के पास रखा जाता है जिसकी सुगन्ध इस रोग में हितकर मानी जाती है।

नीम का सम्बन्ध सर्प से भी है। लोगों का यह साधारण विश्वास है कि यदि कोई मनुष्य बारह वर्षों तक नीम की दातौन करे, इसकी लकड़ी से पकाये गये अन्न का भोजन करे, इस वृक्ष की वायु का सेवन करे तब सर्प के काटने का उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता; प्रत्युत इसके विपरीत ऐसे मनुष्य को काटने वाले सर्प की ही मृत्यु हो जाती है।

नीम भूत भगवान् भी हैं। इसकी पत्तियों का प्रयोग दुष्ट प्रेत आत्माओं को भगाने के लिए किया जाता है। भूत से आविष्ट व्यक्ति को नीम की पत्तियों को जलाकर उसका धुआँ दिया जाता है। इस धुएँ के प्रभाव से भूत शीघ्र ही भाग जाता है। स्त्रियों के सूतिकागृह के मुख्य द्वार पर जलने वाली अँगोठी—जिसे पाँसधि कहते हैं—में नीम की पत्तियाँ जलायी जाती हैं जिससे कोई दुष्ट आत्मा (Evil spirit) घर में प्रवेश न कर सके।

किसी मृत व्यक्ति की शवयात्रा से उत्पन्न स्पर्श दोष को दूर करने के लिए इसकी पत्तियों का प्रयोग किया जाता है। शव यात्रा से लौटकर आने पर प्रत्येक व्यक्ति को नीम की पत्तियाँ चबाने के लिए दी जाती हैं और इसकी टहनियों से उनके ऊपर जल छिड़का जाता है।

जंगली जातियों में इस वृक्ष की पूजा का प्रचार है। उत्तरप्रदेश के डोम नामक जाति नीम वृक्ष को काली का निवास



स्थान मानते हैं। कुरूमी जाति के लोग इसे काली भवानी का स्थान मानकर इसकी पूजा करते हैं। इस प्रकार नीम का वृक्ष आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से तथा धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त ही उपयोगी, पवित्र तथा पूजनीय वृक्ष है। वैद्यक शास्त्र में तुलसी को छोड़कर यह सबसे उपयोगी तथा लाभदायक वृक्ष माना जाता है।

(५) बेल—लोक भाषा में इसे 'सिरिफल' कहते हैं। यह भी पीपल की ही भाँति एक पवित्र वृक्ष है। इसकी पत्तियों पर राम नाम लिखकर उन्हें शिव को चढ़ाया जाता है। सामान्य जनता की यह धारणा है कि इन पत्तियों को चढ़ाने से विष-पायी शिव की गर्मी शान्त होती है। शिव का इस वृक्ष से विशेष सम्बन्ध है। इसीलिए उन्हें 'वित्त्व दण्ड' भी कहा जाता है। इसके फल को भी शिव को अर्पित किया जाता है।

इस वृक्ष की लकड़ी पवित्र होने के कारण मृत-व्यक्ति के शव को जलाने में प्रयुक्त होती है। यज्ञीय कर्म में होम करने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। यज्ञीय यूप, वह स्तम्भ जिसमें बाँधकर पशु को बलि चढ़ाया जाता है, का निर्माण भी इसकी लकड़ी से किया जाता है। पवित्रता के कारण इसका प्रयोग ईंधन के रूप में करना निषिद्ध है।

भोजपुरी मण्डल में अपनी मनोकामना की सिद्धि के लिए स्त्रियाँ बेल-वृक्ष का आर्चन करती हैं जिसे 'अँकवारि' देना कहा जाता है। पार्थिव पूजा (मिट्टी के द्वारा शिर्वालंग बनाना) में भी बेलपत्र का उपयोग किया जाता है। शिव के भक्त-शैव-लोग अपनी शिखा में बेल की पत्तियों को बाँधते हैं।

(६) तुलसी—तुलसी का पौधा परम पवित्र माना जाता है। विष्णु की पूजा से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। संस्कृत में तुलसी को 'हरिप्रिया' कहते हैं जिसका अर्थ है विष्णु की प्रेमिका। इसे भूतघ्नी भी कहा जाता है जिससे सहज ही में अनुमान किया जा सकता है कि यह भूतों को भगाने वाली भी है। लोगों का विश्वास है कि तुलसी का पौधा जहाँ होता है वहाँ भूत नहीं आते। इसलिए इसका भूतघ्नी नाम सार्थक है।

यों तो तुलसी की पूजा बारहों महीने की जाती है परन्तु कार्तिक मास में इनकी पूजा का विशेष महत्त्व है। स्त्रियाँ अपने घरों में तुलसी का पौधा लगाती हैं। नित्य-प्रति प्रातः तथा सायं उसकी पूजा अक्षत, रोरी, पुष्प और नैवेद्य चढ़ाकर करती हैं। रात्रि में तुलसी के पास घी का दीपक जलाया जाता है। तुलसी पर गंगाजल चढ़ाकर निम्नांकित मंत्र का पाठ किया जाता है—

“करिया तुलसी साँवर बान,  
तुलसी लाई सदा फल पाई।  
पाँच पदारथ सोना पाई,  
तुलसी महरानी एहि जग नाहीं।  
जनम-जनम के पाप कटित करी,  
तुलसी महरानी नमो नमः॥”

तुलसी की पूजा का दूसरा मन्त्र यह है—

“घट में तुलसी मुख में राम।  
जब भजो तब सीताराम॥”

रविवार और मंगलवार को तुलसी की पत्तियों को तोड़ना निषिद्ध है। इसकी पत्तियों को गर्म जल में डालकर उबालना मना है क्योंकि इससे तुलसी की आत्मा को कष्ट पहुँचता है। भक्त लोग भोजन में तुलसी की पत्तियों को डालकर भगवान् का भोग लगाते हैं। विवाह आदि भोज के अवसर पर भोजन-पकवान और मिष्ठान्न के भाण्डार में तुलसी की पत्तियाँ मंत्र पढ़कर डाल दी जाती हैं। सामान्य जनता की यह धारणा है कि ऐसा करने से भोजन की सामग्री कभी कम नहीं हो सकती।

तुलसी की पत्तियों को पूजा करते समय शालग्राम के ऊपर चढ़ाते हैं। यदि ऐसा न किया जाय तो शालग्राम के सिर में दर्द पैदा हो जाता है। कार्तिक मास देवोत्थान एकादशी के दिन तुलसी का विवाह विष्णु से सम्पादित किया जाता है जिसमें विवाह सम्बन्धी सभी विधिविधान होते हैं।

मरणासन्न व्यक्ति के मुख में तुलसीदल और गंगाजल डाला जाता है। जनता की धारणा है कि ऐसा करने से मृत आत्मा को सद्गति प्राप्त होती है। इसकी पत्तियाँ अनेक रोगों में दवा के काम में लायी जाती हैं। इसके पौधे में मच्छरों को नष्ट कर देने का गुण विद्यमान है। अतः जहाँ यह पौधा लगाया जाता है वहाँ मच्छर नहीं रहते। किसी व्यक्ति को शपथ दिलाते समय उसके हाथ में तुलसी और गंगाजल रखा जाता है। इससे वह झूठ नहीं बोल सकता यह माना जाता है।



(७) कोहड़ा—इसे संस्कृत में कूष्माण्ड कहते हैं। भोजपुरी जनता की ऐसी मान्यता है इसके छोटे फल, जिसे 'बतिया' कहा जाता है, को अंगुली दिखा देने से वह नष्ट हो जाता है। तुलसीदास जी ने इसी लोक-विश्वास की ओर निम्नांकित पंक्तियों में संकेत किया है—

“इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं।  
जो तर्जनी देखि मरि जाहीं॥”

जब तर्जनी दिखलाने से कोहड़ा की 'बतिया' मुझनि लगती है तब उसको पुनः हरा-भरा बनाने के लिए सुवर्ण के बने गहनों को पानी में धोकर उस जल को रविवार और मंगलवार के दिन इस पौधे की जड़ में डाला जाता है।

कोहड़ा को पुत्र का प्रतीक माना जाता है। अतः पुत्रवती स्त्रियाँ शाक बनाने के लिए इसे स्वयं नहीं फोड़तीं। किसी पुरुष के द्वारा ही इसे फोड़ने का कार्य सम्पन्न कराया जाता है। रविवार तथा मंगलवार को इसका शाक बनाना निषिद्ध है। यदि किसी कारण से इसका शाक बनाया ही गया तो पुत्रवती इसमें नमक नहीं डालती। कोहड़े का अत्यधिक संख्या में फलना अपशकुन माना जाता है।

(८) सप्तपुतिया—यह भी एक शाक है जिसे संस्कृत में 'सप्तपुत्रिका' कहते हैं। यह शाक सदासम्भू (धवदि) में एक ही साथ फलता है। स्त्रियों का ऐसा विश्वास है इस शाक को खाने से सात पुत्रों की उत्पत्ति होती है। आश्विन मास के कृष्ण-पक्ष की सप्तमी के दिन स्त्रियाँ जिउतिया (जीवितपुत्रिका) नामक व्रत करती हैं। इस दिन वे निश्चित रूप से इसी शाक को खाती हैं। यह व्रत पुत्र की उत्पत्ति तथा उसकी रक्षा के लिए किया जाता है। अतः 'जिउतिया' व्रत के अवसर पर 'सप्तपुतिया' की तरकारी खाना अत्यन्त आवश्यक है।

(९) नेनुआ—इसको 'धेवड़ा' भी कहा जाता है। आश्विन मास के कृष्णपक्ष, जिसे पितृपक्ष भी कहा जाता है, में इस शाक का खाना निषिद्ध कहा गया है। जो लोग अपने मृत पिता तथा पितरों को इस पक्ष में जलाञ्जलि देते हैं, वे इसे बिल्कुल नहीं खाते। इसीलिए वाराणसी में यह शाक पितृपक्ष में बहुत सस्ता बिकता है।

(१०) कुश—भोजपुरी में इसे 'कूस' कहते हैं। वर्ष में केवल एक बार केवल कुशोत्पादिनी एकादशी के दिन पण्डित तथा पुरोहित लोग 'ओम् फट स्वाहा' मंत्र को कहते हुए इसे उखाड़ते हैं और सालभर के उपयोग के लिए इसे संचित करके सुरक्षित रूप से रख देते हैं।

कुश की पवित्रता के कारण इसका उपयोग सभी मांगलिक कार्यों में किया जाता है। विवाह की वेदी के ऊपर कुश बिछाया जाता है जिस पर पूजन का कार्य सम्पन्न होता है। नवग्रह की पूजा में इसका प्रयोग होता है। यज्ञोपवीत के अवसर पर ब्रह्मचारी की शिखा को तीन भागों में विभक्तकर उसमें कुश बाँध दिया जाता है। सत्यनारायण की कथा में कुश की 'पवित्री' बनाकर हाथों में पहना जाता है। पूजा में कुश की आसनी पर बैठकर यह कार्य सम्पादित किया जाता है।

किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसके श्राद्ध के अवसर पर पिण्ड-दान के लिए जो वेदी बनायी जाती है उस पर कुश बिछाते हैं। मृतात्मा को जलाञ्जलि देते समय हाथ में कुश, तिल और जल लिया जाता है। यदि कोई मनुष्य परदेश में मर जाता है और उसका विधिवत् अग्नि संस्कार नहीं हो पाता तो कुश से उसकी प्रतिमा, जिसे कुशपुत्रिका कहते हैं, बनाकर उसका दाह-संस्कार सम्पन्न किया जाता है। कुश में भूत को भगाने वाली शक्ति विद्यमान है। अतः भूत से आविष्ट व्यक्ति को ओझा लोग कुश से ही 'झारते' हैं।

(११) दूब—इसे भोजपुरी में 'दूबि' और संस्कृत में 'दूर्वा' कहा जाता है। सभी मांगलिक कार्यों में इसका उपयोग किया जाता है। किसी शुभ कार्य के प्रारम्भ में जो गणेश-पूजा की जाती है उस समय उनकी प्रतिमा पर दूब चढ़ायी जाती है। कुश के अभाव में देवताओं का आसन इसी दूब से बनाया जाता है। विवाह करने के लिए जाने वाले वर की धोती में दूब अक्षत और हलदी बाँध दी जाती है। इसी प्रकार विवाह के पश्चात् ससुराल जाने वाली नव-बधू की 'खोईछा' में दूब चावल और हलदी रख दी जाती है क्योंकि ये तीनों ही मंगलकारक हैं।

दूब सदा हरी-भरी रहती है। ऐसा कहा जाता है कि भगवान् विष्णु ने अमृत का कलश एक स्थान पर रख दिया था कौवे ने आकर उसका कुछ अंश जमीन पर गिरा दिया। अमृत के छींटे दूब पर पड़ गये। इसीलिए यह अजर-अमर बन गयी। और सभी ऋतुओं में हरी-भरी बनी रहती है। दूब स्त्रियों के सौभाग्य का प्रतीक मानी जाती है। अन्य स्थानों की अपेक्षा कुएँ की 'जगत' पर जमी हुई दूब अधिक पवित्र मानी जाती है। भूतपूर्व बम्बई राज्य (अब महाराष्ट्र) के प्रभु जाति के लोग गर्भवती स्त्रियों के बायें नाक में दूब का रस निचोड़कर डालते हैं जिससे गर्भ की व्यथा कुछ कम हो जाती है।



## (५) परिच्छेद

## यात्रा सम्बन्धी लोक-विश्वास

## (१) अनुच्छेद—यात्रा

भोजपुरी क्षेत्र में यात्रा के सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। साधारण जनता किसी दूर स्थान को जाने के पूर्व दिन का विचार करती है। लोक-विश्वास के अनुसार किसी विशेष दिन को किसी विशेष दिशा में ही जाना श्रेयस्कर माना जाता है। इसके विपरीत गमन अशुभ तथा हानिप्रद माना जाता है। इस सम्बन्ध में घाघ और भड्डरी की उक्ति प्रसिद्ध है जिसका पालन जनता बड़ी श्रद्धा से करती है।

**दिशा-शूल**—लोक कवि जायसी ने भी पद्मावत में इस तथ्य का प्रतिपादन किया है। उनका कथन है कि—

“सोम, सनिचर पुरुष न चालू, मंगल, बुध उत्तर दिसि कालू।  
अदित, सूक पच्छिम दिसि राहू, दियफें दखिन लंक दिसि दाहू॥”

अर्थात् सोमवार और शनिवार को पूर्व दिशा की ओर यात्रा नहीं करनी चाहिए। रविवार और शुक्रवार को पश्चिम दिशा में जाना निषिद्ध है। मंगलवार तथा बुधवार को उत्तर दिशा में जाना मृत्यु का कारण होता है तथा वृहस्पतिवार को दक्षिण दिशा में जाना दाह अर्थात् नाश करनेवाला है। इसी विषय को निम्नांकित तालिका के द्वारा इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

दिन का नाम	यात्रा के लिए निषिद्ध दिशा का नाम
१. सोमवार तथा शनिवार	पूर्व
२. मंगल और बुध	उत्तर
३. रविवार और शुक्रवार	पश्चिम
४. वृहस्पतिवार	दक्षिण

इन निषिद्ध दिनों को विभिन्न दिशा में यात्रा करना ‘दिशा-शूल’ कहा जाता है जिसका अर्थ है दिशा का काँटा या कष्ट अर्थात् दिशा-शूल में यात्रा करना विघ्न या कष्टकारक है।

**दिशा-शूल का परिहार**

परन्तु यदि किसी आवश्यक कार्य-वश किसी व्यक्ति को दिशा-शूल में यात्रा करनी पड़े तो दिशा-शूल के परिहार के लिए ‘प्रस्थान’ रख दिया जाता है। यात्रा के लिए निषिद्ध दिन के पूर्व तिथि यात्रा करने वाले व्यक्ति की कोई वस्तु-पुस्तक, कपड़ा अथवा आभूषण—किसी परिचित आदमी के घर पर रख दिया जाता है। इस प्रक्रिया को ‘प्रस्थान रखना’ कहा जाता है। दूसरे दिन उस वस्तु को लेकर वह व्यक्ति अपनी निर्दिष्ट यात्रा पर चला जाता है। इस विधि से दिशा-शूल का दोष मिट जाता है। अतः गाँवों में प्रस्थान रखना एक सामान्य विधि मानी जाती है।

निषिद्ध दिन को यात्रा करनी यदि आवश्यक ही हो तो कुछ वस्तुओं को खाने या पीने से भी इस दिशा-शूल का दोष परिहार हो जाता है। इसकी तालिका निम्नलिखित है—

दिन	दिशा-शूल	दिशा-शूल का दोष परिहार
१. रविवार	पश्चिम	घी खाना
२. सोमवार	पूर्व	दूध पीना
३. मंगलवार	उत्तर	गुड़ खाना
४. बुधवार	उत्तर	तिल खाना
५. वृहस्पतिवार	दक्षिण	दही खाना
६. शुक्रवार	पश्चिम	जव खाना
७. शनिवार	पूर्व	उड़द खाना

ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार कुछ दिनों में विशेष दिशा में यात्रा करना शुभ तथा श्रेयस्कर माना जाता है। अतः श्रेयस्कामी व्यक्ति को निम्न दिनों को ही यात्रा करनी चाहिए—



दिन का नाम	यात्रा के लिए शुभ दिशा
(१) रविवार	पूर्व, उत्तर, दक्षिण
(२) सोमवार	पश्चिम, उत्तर, दक्षिण
(३) मंगलवार	पूर्व, पश्चिम, दक्षिण
(४) बुधवार	पूर्व, पश्चिम, दक्षिण
(५) वृहस्पतिवार	पूर्व, पश्चिम, उत्तर
(६) शुक्रवार	पूर्व, उत्तर, दक्षिण
(७) शनिवार	पश्चिम, उत्तर, दक्षिण

**तिथि-विचार**—यात्रा के सम्बन्ध में तिथियों का भी विचार किया जाता है। घाघ ने इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तिथियों का उल्लेख किया है—

#### यात्रा सम्बन्धी विश्वास

ग्रामीण जनता का जीवन अन्ध-विश्वास के ताने-बाने से बुना हुआ है। उन्हें अपने कार्यों परम्परा तथा लोक-विश्वास का सहारा लेकर चलना पड़ता है। किंवदन्ती यदि स्थान को प्राप्त करना होता है तब इसके लिए भी शुभ दिन तथा दिशा-शूल का विचार करना पड़ता है। कुछ ऐसे दिन निर्धारित हैं जिस दिन अमुक दिशा में यात्रा करना शुभ अथवा अशुभ माना जाता है। उदाहरण के लिए शास्त्रकारों ने रविवार के दिन पूर्व, उत्तर तथा दक्षिण दिशा की ओर यात्रा करना शुभ माना है। इसी प्रकार से सोमवार को पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा की यात्रा करनी चाहिए। मंगलवार के दिन पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण की यात्रा मंगलमय होती है। बुधवार को पूर्व, दक्षिण की यात्रा करनी चाहिए। इसके साथ ही वृहस्पतिवार को पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर की यात्रा प्रशस्त है। शुक्रवार के दिन पूर्व, उत्तर और दक्षिण की यात्रा शुभकारक मानी जाती है तथा शनिवार के दिन पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा की ओर प्रशस्त करने से कार्य की सिद्धि होती है। इस विषय को निम्नांकित तालिका के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। यात्रा के लिए शुभ दिन तथा दिशाएँ इस प्रकार हैं—

दिन	दिशा
(१) रविवार	पूर्व, उत्तर, दक्षिण
(२) सोमवार	पश्चिम, उत्तर, दक्षिण
(३) मंगलवार	पूर्व, पश्चिम, दक्षिण
(४) बुधवार	पूर्व, पश्चिम, दक्षिण
(५) वृहस्पतिवार	पूर्व, पश्चिम, उत्तर
(६) शुक्रवार	पूर्व, उत्तर, दक्षिण
(७) शनिवार	पश्चिम, उत्तर, दक्षिण

उपर्युक्त निर्दिष्ट दिनों और तिथियों में ही यात्रा करनी चाहिए इसके विपरीत यात्रा करने पर 'दिशा-शूल' होता है जिससे कार्य में बाधा या विपत्ति उत्पन्न हो जाती है। अतएव दिशा-शूल में यात्रा कदापि नहीं करनी चाहिए। किस दिन को किस दिशा में यात्रा करना निषिद्ध है तथा वह दिशा-शूल माना जाता है उसकी तालिका निम्नलिखित है—



दिन	दिशाशूल
रविवार	पश्चिम दिशा
सोमवार	पूर्व ,,
मंगलवार	उत्तर ,,
बुधवार	उत्तर ,,
वृहस्पतिवार	दक्षिण ,,
शुक्रवार	पश्चिम ,,
शनिवार	पूर्व ,,

दिशा-शूल तथा उसमें यात्रा करने के दुष्परिणाम के सम्बन्ध में घाघ की यह लोकोक्ति गाँवों में अत्यधिक प्रचलित है। घाघ का कथन है कि—

“सोम, सनीचर पूरुब न चालू। मंगल, बुध उत्तर दिसि कालू।  
 बियफे दखिन करै पयाना। फिर समझौ नहिं ताकौ आना।  
 बुध कहै मैं बड़ा सयाना। मोरे दिन जनि करौ पयाना।  
 कौड़ी से नहिं भेंट कराऊँ। छेम कुसल से घर पहुँचाऊँ।”

अर्थात् सोमवार और शनिवार को पूर्व दिशा में नहीं जाना चाहिए। मंगलवार और बुधवार को उत्तर दिशा में जाना मृत्यु को निमंत्रण देना है। वृहस्पतिवार के दिन जो दक्षिण दिशा में यात्रा करता है वह फिर लौटकर घर वापस नहीं आता। बुधवार के दिन यात्रा नहीं करनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से एक कौड़ी से भेंट नहीं हो सकती। अर्थात् धन की प्राप्ति नहीं होती।

दिशा-शूल के सम्बन्ध में एक दूसरी भी कहावत गाँवों में प्रचलित है जो उपर्युक्त लोकोक्ति से बहुत कुछ मिलती जुलती है।

“अदित, सूक पन्छिम दिसि राहू।  
 बियफे दखिन लंक दिसि दाहू॥  
 सोम सनीचर पूरुब न चालू।  
 मंगल, बुध उत्तर दिसि कालू॥”

इसके अनुसार रविवार और शुक्रवार को पश्चिम दिशा में जाना कष्टदायक है, वृहस्पतिवार को दक्षिण दिशा में जाना दाह उत्पन्न करता है, सोमवार तथा शनिवार को पूर्व-दिशा में जाना निषिद्ध है तथा मंगलवार और बुधवार को उत्तर-दिशा में प्रस्थान करना मृत्यु को निमंत्रण देना है।

परन्तु यदि किसी आवश्यक कार्य-वश दिशा-शूल के दिन प्रस्थान करना ही हो तो इसके लिए भी शास्त्रकारों ने विधान बतलाया है। रविवार के दिन घी खाना, सोमवार को दूध पीना, मंगलवार को गुड़ खाना, बुधवार को तिल, वृहस्पतिवार को दही, शुक्रवार को जौ और शनिवार को उड़द खाने से दिशा-शूल का परिहार हो जाता है।

गाँवों में यह विश्वास दृढ़ मूल है कि यात्रा के समय खाली घड़ा या कोई रिक्त पात्र देखने से कार्य की सिद्धि नहीं होती। अतएव यात्रा के समय घड़ा में पानी भर कर रख दिया जाता है जिससे यात्रा मंगलमय हो। इसी प्रकार से प्रस्थान के समय शव को देखना शुभ माना जाता है। इसके विपरीत गेरुआ वस्त्रधारी किसी संन्यासी को देखना अशुभ का सूचक है। मनुष्यों में तेली अथवा अन्य किसी नीच जाति के व्यक्ति का दर्शन प्रस्थान के समय अमंगलकारक होता है। तेली के सम्बन्ध में यह कथा प्रसिद्ध है कि कोई व्यक्ति यात्रा पर जा रहा था कि उसे कोई तेली दिखायी पड़ा। लोगों के यह सूचित करने पर कि अब तुम्हारी यात्रा अमंगलकारक हो गयी उस व्यक्ति ने उत्तर दिया कि—



“एक ही तेली कहा करिहे,  
सौतेली बसे जिसके घर माँही॥

अर्थात् जिसके घर में सौतेली (१०० तेली) माता है उसका एक तेली क्या बिगाड़ सकता है। इस कथा से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यात्रा के समय तेली का दर्शन अशुभ है।

गाँवों में यह प्रथा प्रचलित है कि यदि किसी व्यक्ति को दिशा-शूल के दिन यात्रा करनी आवश्यक हो तो वह उसके एक दिन पहिले अपनी किसी वस्तु, धोती, पुस्तक अथवा यज्ञोपवीत आदि, को दूसरे के घर पर रख देता है। इसे प्रस्थान रखना कहा जाता है। यात्रा करने के पहिले वह प्रस्थान को लेकर अपने गन्तव्य स्थान को चला जाता है। ऐसा करने से लोगों का विश्वास है कि दिशा-शूल का परिहार हो जाता है।

यात्रा करते समय दही खाकर प्रस्थान करना शुभ माना जाता है। दर्पण में मुँह देखकर जाना भी शुभकारक है। कुछ लोग मछली का दर्शन करना भी मंगलकारक मानते हैं। प्रस्थान के समय किसी का छींकना अशुभ है। यदि कोई व्यक्ति यात्रा पर जा रहा हो तो उसे रोकना अथवा कुछ पूछना निषिद्ध है। यदि जाते समय रास्ते को बिल्ली काट दे अर्थात् सामने से चली जाय तो यह अमंगलकारक है। अतः प्रस्थान करते समय उस व्यक्ति को दर्पण में अपना मुँह देखकर तथा दही खाकर प्रस्थान करना चाहिए। यदि जलपूर्ण घड़ा दिखायी पड़े तो यात्रा शुभ तथा कार्य में सफलता मिलती है।

## (२) अनुच्छेद—स्वप्न-विचार

स्वप्न लोक-विश्वास का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। स्वप्न के द्वारा शुभ अथवा अशुभ शकुनों का विचार किया जाता है। आधुनिक मनोविज्ञानशास्त्रियों ने स्वप्न के सम्बन्ध में अत्यन्त गहन अध्ययन किया है।

गाँवों में स्वप्न का बड़ा विचार किया जाता है। ग्रामीण जनता में स्वप्न के सम्बन्ध में यह विश्वास प्रचलित है कि “आपन देखल पराया के होय।” अर्थात् जो स्वप्न अपने प्रति देखा जाता है वह दूसरे लोगों पर जाकर घटता है। स्वप्न में किसी व्यक्ति की मृत्यु, गृहदाह, उल्कापात, भूकम्प आदि देखना अशुभ माना जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में त्रिजटा के स्वप्न का उल्लेख किया है। त्रिजटा कहती है कि “मैंने स्वप्न में देखा कि किसी वानर ने लंका जला डाली और राक्षसों की सेना का नाश कर दिया। रावण नंगा होकर गदहे पर बैठा है। उसका सिर मुण्डित है और बीसों भुजायें खण्डित हो गयी हैं।” इस स्वप्न का बुरा फल क्या हुआ यह मानस के पाठकों से अविदित नहीं है। गोस्वामी जी लिखते हैं कि—

“सपने बानर लंका जारी।  
जातुधान-सेना सब मारी॥  
खर-आरूढ़ नगन दससीसा।  
मुण्डित सिर, खंडित भुजबीसा॥”

दिन में भी उल्कापात को अशुभ तथा अमंगलकारक माना जाता है। लोगों का विश्वास है कि यदि किन्हीं भी पाँच फलों का नाम ले लिया जाय तो इस अमंगल का परिहार हो जाता है।

## (३) अनुच्छेद—दिन सम्बन्धी लोक-विश्वास

विभिन्न दिनों के सम्बन्ध में भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। (१) रविवार—सूर्य भगवान् का दिन समझा जाता है। इस दिन अनेक भक्तगण सूर्य का व्रत करते हैं। वे प्रातःकाल उठकर किसी नदी, तालाब अथवा कूप पर स्नान करके सूर्य भगवान् को अर्घ्य देकर उनकी पूजा करते हैं। इसके पश्चात् वे दिनभर उपवास व्रत करते हैं। रविवार का व्रत करने वाले व्यक्ति के लिए नमक खाना निषिद्ध है। अतः वे सायंकाल में ‘अलोना’ भोजन ग्रहण करते हैं।

यदि रविवार को सप्तमी तिथि हो तो वह विशेष माहात्म्य का दिन होता है। मध्याह्न में आँगन में जमीन को गोबर से लीपकर सूर्य की पूजा करे। सूर्य को सफेद पुष्प चढ़ाने का विधान है।

(२) सोमवार—यह चन्द्रमा का दिन माना जाता है। कुछ लोग इस दिन भी उपवास करते हैं। यह दिन पवित्र माना जाता है।

(३) मंगलवार—यह दिन भी अत्यन्त पवित्र माना जाता है। इस दिन हनुमान की पूजा का विशेष माहात्म्य है। अतः भक्तजन हनुमान का दर्शन निश्चित रूप से करते हैं। काशी में संकटमोचन हनुमान का दर्शन करने के लिए हजारों



व्यक्तियों की इस दिन भीड़ एकत्रित होती है। चूँकि महावीर जी को 'मोदक प्रिय, मुदमंगल दाता' कहा गया है अतः प्रत्येक व्यक्ति आज के दिन बेसन का लड्डू चढ़ाना अपना कर्तव्य समझता है। इस प्रकार भक्तों के मोदक से लड्डू का पहाड़ लग जाता है।

मंगलवार का दिन पवित्र होने के कारण किसी भी कार्य का श्रीगणेश करना शुभ माना जाता है। इसी प्रकार से किसी कार्य की इतिश्री भी आज के दिन मंगलकारक मानी जाती है। शास्त्रों में भी कहा गया है कि 'स्थाप्यं समाप्यं शनि भौमवारे।' अर्थात् किसी काम का प्रारम्भ तथा समाप्ति शनि और मंगल को ही करनी चाहिए।

(४) बुधवार—यह दिन खाली (रिक्त) जाना जाता है। इसलिए आज के दिन किसी कार्य को प्रारम्भ नहीं किया जाता। लोगों का ऐसा विश्वास है कि आज के दिन प्रारम्भ कार्य सफलीभूत नहीं होता।

(५) वृहस्पतिवार—वृहस्पति विद्या के देवता माने जाते हैं। अतः आज का यह दिन विद्या आरम्भ करने के लिए बड़ा शुभ माना जाता है। छोटे बच्चों को जिस दिन विद्यारम्भ कराया जाता है वह दिन वृहस्पतिवार ही होना चाहिए। अन्य कोई भी कार्य इस दिन करना मंगलकारक होता है।

(६) शुक्रवार—यह दिन सामान्यतया शुभ माना जाता है।

(७) शनिवार—यह शनि देवता का दिन होने के कारण अशुभ माना जाता है। गाँव के लोग शनिवार को नया काम करना शुभ नहीं मानते परन्तु शास्त्रों के अनुसार इस दिन किसी कार्य का प्रारम्भ करना तथा उसकी समाप्ति शुभ है।

## (६) परिच्छद

### शरीर के विभिन्न अंगों सम्बन्धी लोक-विश्वास

मानव शरीर के विभिन्न अंगों के सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। सिर से पैर तक शरीर के जो विभिन्न अवयव हैं उनके विषय में सर्वसाधारण जनता की अनेक मान्यतायें हैं। जैसे सिर के बालों को काटकर किसी पवित्र स्थान में उसे विसर्जित करने का विश्वास है उसी प्रकार से पैरों का बड़ा होना मूर्खता का द्योतक माना जाता है।

(१) केश—सिर के बालों के सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। बच्चों के बालों को अत्यन्त पवित्र माना जाता है। अतः उसे काटना निषिद्ध है। जन्म के प्रथम, तृतीय अथवा पञ्चम वर्ष में बालक का मुण्डन-संस्कार किसी पवित्र नदी के किनारे तथा तीर्थ-स्थान में किया जाता है। मुण्डन-संस्कार के अन्तर्गत इस विषय का विस्तृत वर्णन किया जा चुका है। अतः उन बालों का यहाँ पुनरुल्लेख केवल पिष्टपेषण मात्र होगा। केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि बच्चों के बालों के पवित्र होने के कारण किसी नदी में ही प्रवाहित किया जाता है।

तीर्थ-स्थानों में सिर के बालों को मुण्डित करना पुण्य का कारण समझा जाता है। अतः प्रत्येक तीर्थयात्री काशी, प्रयाग अथवा गया में अपने बालों को कटवा कर अखण्ड, पुण्य की प्राप्ति करते हैं। बालों की पवित्रता के ही कारण महापुरुषों के बालों को सुरक्षित रखा जाता है। महात्मा बुद्ध के बालों को स्वर्णमंजूषा में रखकर उन्हें स्तूपों में सुरक्षित रखा गया है। साधु और महात्माओं के सिर तथा दाढ़ी के बाल बड़े पवित्र माने जाते हैं। अतः भक्तगण इन बालों को बड़ी श्रद्धा तथा भक्ति से इन्हें अपने पास थाती के रूप में सँजोए रहते हैं।

जहाँ केशों को पावन समझा जाता है वहाँ ये भूत-प्रेतों के वाहक भी माने जाते हैं। किसी मृत व्यक्ति का दाह-संस्कार करने वाला 'दाही' अपने सिर के बालों को मुड़ा देता है जिससे प्रेतात्मा का घर में प्रवेश न हो सके। बाल अशौच का भी प्रतीक माना जाता है। इसलिए मृत-व्यक्ति के 'दशाह' के दिन परिवार तथा कुटुम्ब के सभी व्यक्ति अपने सिर, दाढ़ी तथा मूँछ के बालों को मुड़वा देते हैं। उनका यह विश्वास है कि ऐसा करने से अशौच समाप्त हो जाता है तथा मृत की प्रेतात्मा से घर के लोगों को मुक्ति मिल जाती है।

बालों के द्वारा किसी व्यक्ति को अभिभूत भी किया जा सकता है क्योंकि ये नीच आत्माओं (Evil spirits) के स्थानान्तरण (Transfer) करने के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम हैं इसलिए यदि कोई व्यक्ति किसी के घर प्रतिदिन जाता है, तथा उसके साथ ही रहना पसन्द करता है तो यह विश्वास किया जाता है कि उक्त व्यक्ति ने उस प्रेमी की चुटिया के बालों को काटकर अपने घर में काटकर गाड़ रखा है। आदिम जातियों में बालों के द्वारा भूत-दूत का आवाहन किया जाता है और किसी व्यक्ति को वश में करने का यह माध्यम माना जाता है।



**खल्वाट होना**—जिस व्यक्ति के सिर के बाल झड़ जाते अर्थात् गिर जाते हैं वह खल्वाट कहा जाता है। ऐसा व्यक्ति कभी निर्धन नहीं हो सकता ऐसी लोगों की धारणा है। संस्कृत की एक सूक्ति में कहा गया है कि—

क्वचित् काणः भवेत् साधुः,  
क्वचित् खल्वाट निर्धनः॥

अर्थात् शायद ही कोई काना (एकाक्ष) सज्जन होता है और कदाचित् ही कोई खल्वाट धन से रहित हो। अनुभव के आधार पर भी यह तथ्य सत्य प्रमाणित होता है। प्रायः जितने भी खल्वाट आज तक देखे गये हैं वे सभी धनी, वैभवसम्पन्न तथा महान् व्यक्ति हैं। नीच जाति का निर्धन तथा दीन व्यक्ति आज तक गंजी खोपड़ी वाला नहीं देखा गया। अतः जब किसी व्यक्ति के बाल गिरने शुरू होते हैं तब यह उसके भावी भाग्य का सूचक माना जाता है। प्रायः स्त्रियाँ खल्वाट नहीं होती हैं। इसमें प्रकृति का कोई रहस्य ही कारणभूत हो सकता है।

**चुटिया**—गाँवों में ऐसी मान्यता है कि जिस व्यक्ति के चुटिया के बाल खड़े अर्थात् सिर के ऊपर लम्बे सीधे खड़े हो जाते हैं वह निश्चित ही चोर होता है। अतः चुटिया के बाल किस दशा में हैं इसका सदा ध्यान रखा जाता है। चुटिया के वालों को न बाँधना प्रतिज्ञा का कारण होता है। कुछ लोग यह प्रतिज्ञा करते हैं कि जब तक मैं अमुक कार्य का सम्पादन नहीं कर लूँगा तब तक अपनी चुटिया को नहीं बाँधूँगा। यह तो प्रसिद्ध ही है कि नन्द द्वारा अपमानित होने के कारण सुप्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ चाणक्य ने यह कठोर प्रतिज्ञा की थी कि जब तक मैं नन्द-वंश का समूल नाश नहीं कर दूँगा तब तक अपनी चुटिया नहीं बाँधूँगा। किसी व्यक्ति को वश में करने के लिए चुटिया के वालों को काटकर अपने पास रखना अनन्यतम साधन है।

‘गोखुर-प्रमाण’ चुटिया मानी जाती है अर्थात् चुटिया इतनी मोटी तथा चौड़ी होनी चाहिए जितना चौड़ा गाय का खुर होता है। इसीलिए पण्डित लोग मोटी चुटिया धारण करते हैं। यह हिन्दुत्व का प्रतीक है। अतः किसी व्यक्ति के द्वारा किसी दूसरे की चुटिया को काट लेना उसके अपमान का कारण समझा जाता है। उसकी नपुंसकता तथा पौरुषहीनता का चिह्न है।

(२) **सिर तथा ललाट**—सिर का बड़ा होना शुभ तथा बड़प्पन का सूचक समझा जाता है। यह बुद्धिमत्ता का प्रतीक है। इस सम्बन्ध में यह कहावत प्रसिद्ध है कि ‘सिर बड़ा सरदार का’ अर्थात् बुद्धिमान मनुष्य का सिर बड़ा होता है। लोगों की यह धारणा है कि बड़ी बुद्धि बड़े सिर में ही निवास करती है। अतः किसी बड़े सिर वाले व्यक्ति की खिल्ली उड़ाने के लिए लोग कहते हैं कि उसका सिर सूजा हुआ है वास्तव में बड़ा नहीं है।

उन्नत ललाट प्रशस्त माना जाता है। अतएव जिस व्यक्ति का ललाट उन्नत होता है वह भाग्यशाली माना जाता है। वह बुद्धिमान्, धनवान् तथा भाग्यवान् होता है। इसके ठीक विपरीत निम्न अर्थात् धँसा हुआ ललाट वाला व्यक्ति मन्दबुद्धि निर्धन तथा अभाग्य होता है। आजकल के मनोविज्ञानवेत्ता भी उन्नत ललाट को बुद्धिमत्ता का प्रतीक स्वीकार करते हैं और इसके विपरीत निम्न ललाट को बुद्धिमान्दय का लक्षण मानते हैं। इस प्रकार किसी व्यक्ति का बड़ा सिर तथा उन्नत ललाट उसके भाग्य, वैभव तथा तीक्ष्ण बुद्धि की घोषणा डिण्डिभनाद से करता है।

(३) **आँख**—पुरुषों की दाहिनी आँख तथा स्त्रियों की बायीं आँख का फड़कना शुभ माना जाता है। इसके विपरीत अशुभ है। जब किसी स्त्री की बायीं आँख फड़कने लगती है तब उसे इसका दृढ़ विश्वास हो जाता है कि उसका परदेशी प्रियतम शीघ्र ही आनेवाला है अथवा कोई अन्य शुभ समाचार की प्राप्ति होगी। वाल्मीकि ने अशोक बाटिका में त्रिजटा के द्वारा सीता की बायीं आँख का फड़कना शुभ मानकर राम की प्राप्ति का सूचक बतलाया है। परन्तु मनुष्य की दाहिनी आँख शुभ मानी जाती है। यदि किसी व्यक्ति की दाहिनी आँख फड़कती है तो वह समझता है कि उसे किसी शुभ संवाद की प्राप्ति होती है अथवा अर्थार्थ मिलता है।

संस्कृत तथा हिन्दी-साहित्य में आँख के सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं जिनमें इनका फड़कना शुभ तथा अशुभ माना गया है। ग्रामीण जनता में आँखों के फड़कने के द्वारा ही शुभाशुभ का निर्णय किया जाता है।

(४) **नाक**—नाक में घ्राण शक्ति का होना आवश्यक है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि जिस व्यक्ति की घ्राण-शक्ति नष्ट हो जाती है वह छः मास के भीतर ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। विशेष करके दीपक के बुझाने पर जो गन्ध होती है उसके सूँघने की शक्ति का होना जीवन का लक्षण माना जाता है। इस सम्बन्ध में यह श्लोक प्रसिद्ध है कि—



दीप निर्वाण गन्धं च,  
 सुहृद् वाक्यं अरुन्धतीम्।  
 न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति,  
 न पश्यन्ति गतायुषः॥

जब अपनी ही आँख से अपनी नाक न दिखायी पड़े तो उसे भी अशुभ मानते हैं। सम्भवतः यह मृत्यु की सूचना देता है। नाक का नोकीली होना सुन्दर तथा शुभ है। अतः भोजपुरी माताएँ अपनी सन्तानों की नाक 'चोख' (नोकीली) होने की कामना करती हैं।

छींक—छींक के सम्बन्ध में भी अनेक विश्वास प्रचलित हैं। किसी व्यक्ति की छींक शुभ मानी जाती है और किसी की अशुभ। किसी कार्य को प्रारम्भ करने के पहिले यदि कोई व्यक्ति छींक देता है तो उसे अशुभ मानते हैं। यह समझा जाता है कि कार्य में कोई बाधा उत्पन्न होगी। छींक के सम्बन्ध में घाघ ने लिखा है कि—

“सन्मुख छींक लड़ाई भाषै,  
 पीठ पाछिली सुख अभिलाषै।  
 छींक दाहिनी धन को नासै,  
 बाम छींक सुख सदा प्रकासै।  
 ऊँची छींक महा सुखकारी,  
 नीची छींक महा भयकारी।  
 अपनी छींक महादुःखदायी,  
 कहै घाघ लोगन समुझाई॥

अर्थात् सामने छींक होने पर किसी व्यक्ति से लड़ाई होती है परन्तु पीठ के पीछे छींकने से सुख मिलता है। दक्षिण अग या दिशा में छींक से धन का नाश और बायें होने से सुख की प्राप्ति होती है। जोरों से छींकना सुखकारक तथा धीरे से छींकना भयकारक माना जाता है। दूसरे की छींक शुभ है परन्तु अपनी छींक अत्यन्त दुःखदायी होती है। इसीलिए यात्रा के समय यदि व्यक्ति स्वयं छींकने लगे तो यह अशुभ है और यात्रा स्थगित कर दी जाती है।

जब छोटे-छोटे बालक छींकते हैं तो उनकी माताएँ छींक के पश्चात् 'सत्तन जी' कहती हैं। यह शब्द 'शतं जीवामि' का अपभ्रंश होता है। छींक होने पर श्वास के सदा के लिए बाहर निकल जाने की आशंका बनी रहती है। अतएव माताएँ छींक करने के बाद अपने बच्चों को सौ वर्ष तक जीने का आशीर्वाद देती हैं। जब बच्चों को लगातार छींक आने लगती है तब उसे रोकने के लिए उसकी माता उसके सिर के तालू को मुँह से फूँकने लगती है। उनको विश्वास है कि ऐसा करने से छींक बन्द हो जाती है।

एक-दो छींक तो ठीक है परन्तु बच्चों का लगातार छींकना जुकाम तथा अन्य बीमारी का कारण समझा जाता है। अतः उससे शुभाशुभ का कोई फल नहीं निकलता।

(५) भुजा—आँख की ही भाँति पुरुषों की दाहिनी भुजा और स्त्रियों की बायीं बाँह का फड़कना शुभ है। परन्तु इसके विपरीत फड़कना अशुभ का द्योतक माना जाता है। हिन्दी तथा संस्कृत साहित्य से इस विश्वास की पुष्टि की जा सकती है। कालिदास ने अपने प्रसिद्ध नाटक शकुन्तला में लिखा है कि कण्व के आश्रम में जाने पर दुष्यन्त की दाहिनी भुजा फड़कने लगती है। इस पर आश्चर्यित होकर वह कहता है कि इस शान्त आश्रम में मेरी दाहिनी बाँह के फड़कने का कौन-सा शुभ फल हो सकता है? बिहारी की नायिका कहती है कि मेरी बायीं भुजा के फड़कने के शुभ फलस्वरूप मेरे प्रियतम का यदि आगमन हो गया तो अपनी दाहिनी भुजा को दूर करके बायीं बाँह से ही उसका आलिंगन करूँगी।<sup>१</sup> इस प्रकार स्त्रियों की बायीं आँख

#### १. शान्तमिदमाश्रमपदं,

स्फुरित च बाहुः कुतो फलमिहास।

अभिज्ञान शाकुन्तलम्-अंक १।१४।

२. वाम बाहु फरकत मिले, जो हरि जीवन मूरि।  
 तो तोही से भेंटिहौ, राखि दाहिनी दूरि॥



और बायीं भुजा का फड़कना शुभ है। इसके ठीक विपरीत पुरुषों की दाहिनी भुजा और आँख का फड़कना मंगलकारक माना जाता है।

सामुद्रिकशास्त्र के अनुसार बाँहों का बड़ा होना शुभ माना जाता है। कालिदास ने रघुवंशी राजाओं का वर्णन करते हुए उन्हें "शाल प्रांशुः महाभुजः" अर्थात् लम्बी भुजावाला लिखा है। जिस व्यक्ति की भुजाएँ इतनी लम्बी हों कि वे मुटुओं तक पहुँच जायें तो वह व्यक्ति निश्चित रूप से महापुरुष होता है। भगवान् रामचन्द्र के विषय में कहा जाता है कि उनकी भुजाएँ बड़ी लम्बी थीं। इसीलिए उन्हें "आजानुवाहुः" की संज्ञा दी गयी है।

हाथ की अँगुलियों में कमल तथा विष्णु के चक्र का चिह्न होना सौभाग्य का सूचक है। इससे धन-धान्य की प्राप्ति होती है और ऐसा व्यक्ति बड़ा ही भाग्यवान् माना जाता है। स्त्रियों की अँगुलियाँ लम्बी और पतली होनी चाहिए जो उनके सौन्दर्य की प्रतीक हैं। बाँहों के समान ही अँगुलियों का भी लम्बा होना प्रशस्त है।

(६) छाती—पुरुषों की लम्बी-चौड़ी छाती प्रशस्त मानी जाती है। यह उनकी वीरता का सूचक है। पुरुषों की छाती में बालों का होना शुभ समझा जाता है। इसके ठीक विपरीत बालों का अभाव अशुभ और अविश्वास का कारण माना जाता है। भोजपुरी में एक कहावत प्रचलित है कि—

‘जेकरा छाती में बार ना।  
ओकर एतबार ना॥’

अर्थात् जिस पुरुष की छाती में बाल नहीं होता वह विश्वास का पात्र नहीं है। अनुभव के आधार पर भी यह देखा गया है कि छाती में बालों से रहित पुरुष अविश्वसनीय, काँइयाँ तथा धूर्त होते हैं।

पुरुष की परिभाषा बतलाते हुए सामुद्रिकशास्त्र के विद्वानों ने लिखा है कि—

‘स्तन केशवती स्त्री स्यात्  
पुरुषः लोमशः स्मृतः।’

अर्थात् पुरुष लोम से युक्त होता है। अतः पुरुष की छाती तथा शरीर के अन्य भागों में बालों का होना स्वाभाविक है। परन्तु इसका विपरीत होना अशुभ की सूचना देता है।

(७) पैर—पैर सुन्दर तथा सुडौल होने चाहिए। जिस व्यक्ति का पैर सामान्य अनुपात से बड़ा होता है वह उसकी मूर्खता का लक्षण माना जाता है। कहावत है कि—

“सिर बड़ा सरदार का, पैर बड़ा गँवार का।”

अर्थात् महान् पुरुषों का सिर बड़ा होता है परन्तु मूर्ख पुरुषों का बड़ा पैर उनकी मन्द बुद्धि का सूचक है। अतः पैर का बड़ा होना शुभ नहीं माना जाता।

जिस व्यक्ति के तलवे में अथवा पैर की अँगुलियों में चक्र के चिह्न दिखायी पड़ते हैं वह व्यक्ति घुमक्कड़ प्रकृति का समझा जाता है। इसीलिए चक्रमणशील व्यक्ति के लिए बहुधा यह कहा जाता है कि इसके पैर में चक्कर (अर्थात् चक्र) है। पैर की अँगुलियों में तिल का चिह्न होना भी इसी बात की सूचना देता है।

## (७) परिच्छेद

### विविध लोक-विश्वास

भोजपुरी क्षेत्र के विविध प्रकार के कार्यों में लोक-विश्वास प्रचलित हैं। जैसे जन्म, मृत्यु और श्राद्ध आदि। नवीन वस्त्र धारण करना, स्नान करना, चूड़ी पहिनना, सिन्दूर धारण करना आदि के सम्बन्ध में भी विश्वास पाये जाते हैं। किम्बहुना, एक, दो, तीन आदि संख्याओं के विषय में भी जनता अनेक विश्वासों को धारण करती है। इन्हीं सब विविध विश्वासों का विवरण यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है।



## (१) अनुच्छेद—जन्म सम्बन्धी लोक-विश्वास

लोक-विश्वास की परम्परा की जड़ें बहुत दूर तक चली गयी हैं। बालक के जन्म किंवा गर्भाधान के सम्बन्ध में भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। किसी भी मास के शुक्ल पक्ष में स्त्री-समागम करना शुभ माना जाता है। इस सम्बन्ध में तिथि-विचार भी आवश्यक है। लोगों का ऐसा विश्वास विषम तिथियों—जैसे प्रतिपदा, पञ्चमी आदि—में समागम करने पर पुत्री तथा सम तिथियों—जैसे द्वितीया, चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी में गर्भाधान होने पर पुत्र की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार से कृष्ण पक्ष में सम्भोग से लड़की और शुक्ल पक्ष में लड़का पैदा होता है। अमावस्या इस कर्म के लिए निषिद्ध मानी गयी है। परन्तु पूर्णिमा विषम तिथि होने पर भी प्रशस्त है।

दशहरा, वसन्तपञ्चमी, होली आदि तिथियों के दिन गर्भाधान शुभ माना जाता है। लोगों की यह धारणा है कि इस प्रकार जो सन्तान उत्पन्न होगी वह भाग्यशाली होगी। समागम के कक्ष में यदि वीर पुरुषों, नेताओं तथा सन्तों का चित्र विद्यमान हों तो इसका भी उत्पन्न होने वाली सन्तति के स्वभाव पर प्रभाव पड़ता है।

यदि सन्तति सिर के बल पैदा होती है तो शुभ मानी जाती है परन्तु पैर के बल होना अशुभ का सूचक है। यदि ऐसा बालक पेट के रोग से पीड़ित किसी व्यक्ति को अपने पैर से छू दे तो उसका रोग दूर हो जाता है।

तीन वच्चों के बाद यदि कोई लड़की पैदा होती है तो वह शुभ माना जाता है। इस सम्बन्ध में गाँवों में एक कहावत प्रचलित है कि—

“तेतर बेटी राज रजावे।  
तेतर बेटा भीख मँगावे॥”

अर्थात् तीन पुत्रों के बाद यदि लड़की पैदा हो तो उसे धन-धान्य तथा राज्य की सम्पदा प्राप्त होती है परन्तु तीन पुत्रियों के बाद यदि पुत्र की उत्पत्ति होती है तो वह निर्धनता का कारण माना जाता है। इसीलिए ‘तेतर’ बेटी का गाँवों में बड़ा आदर होता है।

लोगों की यह धारणा है कि किसी सन्तति के जन्म होने के बाद यदि घर अथवा परिवार में किसी की मृत्यु हो जाय तो ऐसे बालक के जन्म को अशुभ मानते हैं। परन्तु यदि जन्म के बाद किसी की नौकरी लग जाय अथवा धन और सम्पत्ति की प्राप्ति हो तो वह शुभदायक माना जाता है।

## (२) अनुच्छेद—मृत्यु सम्बन्धी लोक-विश्वास

मृत्यु के सम्बन्ध में भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। सूर्य छह महीने तक उत्तरायण रहता है और शेष छह मास में दक्षिणायन। जब सूर्य दक्षिणायन हो उन दिनों में किसी की मृत्यु अशुभ मानी जाती है। यह तो प्रसिद्ध ही है कि वीर योद्धा तथा कूट-राजनीतिज्ञ भीष्म महीनों तक शर-शय्या पर पड़े रहे परन्तु सूर्य के दक्षिणायन होने के कारण उन्होंने अपने प्राणों का परित्याग नहीं किया।

किसी शुभ तिथि तथा व्रत के दिन—जैसे एकादशी, रामनवमी तथा शिवरात्रि आदि—मृत्यु को प्राप्त करना शुभ माना जाता है। परन्तु ‘पंचखा’ के पाँच दिनों में मृत्यु का होना अशुभ सूचक है। सामान्य जनता की यह दृढ़ धारणा है कि ‘पंचखा’ में मरनेवाला व्यक्ति अपने साथ पाँच व्यक्तियों को लेकर मरता है। अर्थात् अपनी मृत्यु के पश्चात् और पाँच व्यक्ति भी यमराज के घर के अतिथि बनते हैं। अतः इस अशुभ की शान्ति के लिए पूजा-पाठ का विविध विधान किया जाता है। अन्वयात् घर के एक-दो व्यक्तियों की मृत्यु निश्चित ही होती है। अतः ‘पंचखा’ के पाँच दिनों में मरना अत्यन्त अशुभ है।

## (३) अनुच्छेद—श्राद्ध सम्बन्धी विश्वास

किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसकी आत्मा की शान्ति के लिए जो विधि-विधान किया जाता है उसे श्राद्ध कहते हैं। मृत्यु के दूसरे दिन से ही उसे जलाञ्जलि दी जाती है तथा पिण्डदान किया जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इस प्रकार मृतात्मा को भोजन और जल प्राप्त होता है।

१. लेखक एक ऐसी लड़की को जानता है जिसके पिता की मृत्यु उस समय हो गयी जब वह अपनी माता के गर्भ में थी। पिता की मृत्यु के छह मास बाद जब वह पैदा हुई तब उसकी माता उसे कुलच्छिनी मानकर उसका बड़ा निरादर करती रही। अन्त में उस अभागिनी का जीवन भी बड़ा ही दुःखमय हो गया।



दशाह तथा एकादशाह को पुरोहित तथा महाब्राह्मण को चारपाई, बिस्तर, बर्तन, पहिने के वस्त्र, गहना, जूता, चप्पल, छड़ी, छाता आदि सभी वस्तुएँ दी जाती हैं। मृतात्मा को जो भी चीजें प्रिय थीं उन सभी वस्तुओं को महाब्राह्मण को देना आवश्यक माना जाता है। जनता की यह धारणा है कि जिन वस्तुओं का यहाँ दान किया जाता है वे सभी मृतात्मा को उस लोक में मिलती हैं। इसी विश्वास के अनुसार 'दाही' को अनेक प्रकार के मिष्ठान्न तथा पक्वान्न खिलाये जाते हैं। मृतात्मा को जो भोजन प्रिय था, जिन वस्त्रों को वह पहिनता था, जिन वस्तुओं का वह प्रेमी था उन सभी का दान प्रशंसनीय माना जाता है।

धनी-मानी तथा समृद्ध व्यक्ति श्राद्ध के अवसर पर 'वृषोत्सर्ग' भी करते हैं अर्थात् वे साँड़ के बच्चे को गर्म लोहे की शलाका से दागते हैं और अपने पिता के नाम पर उसे चरने के लिए स्वतन्त्र छोड़ देते हैं। कुछ लोग एक वर्ष तक इस साँड़ को अपने घर पर रख कर उसे खिलाते तथा पालते हैं। सामान्य जनता की यह धारणा है कि मृत व्यक्ति की आत्मा इस साँड़ में संक्रमित होकर चली आती है। इसलिए इस साँड़ का बड़ा आदर किया जाता है। इसे मारना अत्यन्त निषिद्ध है।

श्राद्ध के अन्तिम दिन त्रयोदशाह, जिसे भोजपुरी में 'तेरही' कहते हैं, को ब्रह्म-भोज होता है। इस दिन जितने ही अधिक ब्राह्मणों को खिलाया जाय उतना ही प्रशंसा का विषय माना जाता है। ब्राह्मण-भोज मृतात्मा की तृप्ति का अनन्यतम साधन माना जाता है।

### (४) अनुच्छेद—अंक सम्बन्धी लोक-विश्वास

अंकों के सम्बन्ध में भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। इनके सम्बन्ध में यह जानना आवश्यक है ये विश्वास एक से लेकर चौदह संख्या तक ही सीमित हैं। इनके आगे की संख्याओं का लोक-विश्वास से कोई विशेष लगाव नहीं है।

सबसे छोटी संख्या शून्य (०) है जो किसी इकाई की दाहिनी ओर लगाने से उस संख्या के मूल्य को दस गुना बढ़ा देती है। परन्तु स्वयं शून्य का कुछ भी मूल्य नहीं है। अभाव का पर्याय शून्य माना जाता है। अतः यह संख्या अत्यन्त अशुभ समझी जाती है। किसी भी संख्या के अन्त में, चाहे वह कितनी बड़ी-से-बड़ी क्यों न हो, शून्य का होना अमंगल का सूचक है। इसीलिए दानी व्यक्ति (१००) सौ अथवा पाँच सौ (५००) या एक हजार (१,०००) रुपयों का दान देकर उसमें एक रुपये की और वृद्धि कर देते हैं जिससे दान में देय राशि शून्यान्त न होकर एक+अन्त (एकान्त) हो जाय। शून्य के अभाव का द्योतक होने के कारण मांगलिक कार्यों में इस संख्या का प्रयोग नहीं किया जाता। श्मशान घाट में शव को जला देने के पश्चात् उस स्थान पर एक बड़ा शून्य बना देने की प्रथा है।

**तीन**—यह अंक बड़ा ही अशुभ माना जाता है। इस सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है कि 'तीन टिकट महा विकट' अर्थात् किसी भी वस्तु का तीन की संख्या में होना अमंगलकारक होता है। इसीलिए तीन ब्राह्मणों का किसी कार्य के लिए एक साथ चलना कार्य की असफलता का द्योतक है। शास्त्रों में भी लिखा है कि "न गच्छेत् ब्राह्मणत्रयम्" अर्थात् तीन ब्राह्मणों का कहीं एक साथ जाना निषिद्ध है। किसी व्यक्ति को तीन की संख्या में मिष्ठान्न अथवा फल आदि नहीं देना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से अमंगल की आशंका बनी रहती है। विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर तीन स्त्रियों का गीत गाना अच्छा तथा शुभ नहीं माना जाता है। श्मशान में शव जलाने के पश्चात् उस स्थान पर छत्तीस (३६) का अंक लिख देते हैं जिसका अभिप्राय इस संसार से उसका सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। दान में तीन रुपयों को देना मना है। किसी कार्य को तीन बार नहीं करना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी दशा में—चाहे वह तीन ब्राह्मणों का एक साथ चलना हो, चाहे तीन फलों, मिष्ठान्नों या रुपयों को दान में देना—तीन की संख्या अत्यन्त निषिद्ध मानी जाती है। इसका वैज्ञानिक कारण क्या है यह कहना अत्यन्त कठिन है। सम्भवतः जनता की इस संख्या के सम्बन्ध में कुत्सित धारणा ही इसका आधार है।

**पाँच**—यह विषम संख्या अत्यन्त शुभ मानी जाती है। गाँवों में यह कहावत प्रचलित है कि 'पंचमुख परमेश्वर' अर्थात् पाँच व्यक्ति जिस बात को कहते हैं वह परमात्मा की वाणी होती है। इसीलिए ग्रामीण विवादों को निपटाने के लिए जिन पंचों की नियुक्ति होती है उनकी संख्या पाँच ही होनी चाहिए। विवाह के अवसर पर मांगलिक गीत गाने के लिए अथवा वर को हल्दी चढ़ाने के लिए स्त्रियों की संख्या पाँच ही होती है। एक भोजपुरी लोक-गीत में ऐसा वर्णन पाया जाता है कि पाँच सौभाग्यशाली अर्थात् सधवा स्त्रियाँ एक साथ मिलकर वर के शरीर पर हल्दी लगा रही हैं। गीत की पंक्ति है—

“पाँच सोहागिनि मिलि के  
हरदी चढ़ावहु मोरा लाल के।”



आजकल भी हाईकोर्ट अथवा सुप्रीम कोर्ट में मुकदमे की सुनवाई के लिए जो बेञ्च (खण्डपीठ) बैठती है उसमें न्यायाधीशों की संख्या प्रायः पाँच ही होती है। लोगों की ऐसी मान्यता है कि पाँच व्यक्ति एक साथ मिलकर जो न्याय करेंगे वह उचित ही होगा। यदि आकाश में कोई पुच्छल तारा दिखायी पड़ जाय तो किसी भी पाँच फलों का नाम ले लेने से उससे उत्पन्न होने वाले अमंगल की शान्ति हो जाती है।

**सात और नव**—ये दोनों ही विषम संख्याएँ अत्यन्त शुभ मानी जाती हैं। ऋषियों की संख्या सात है जो सप्तर्षि मण्डल के नाम से प्रसिद्ध है। अतएव सात की संख्या को शुभ मानना स्वाभाविक ही है। इसी प्रकार से ग्रहों की नव है जो नवग्रह के नाम से जाने जाते हैं। अतः यह संख्या भी मंगलकारक है।

विवाह आदि शुभ अवसरों पर जिस प्रकार पाँच स्त्रियों का गाना मंगलदायक है। उसी प्रकार से सात स्त्रियों का एक साथ मिलकर समवेत स्वर से गाना सौभाग्य की वर्षा करनेवाला समझा जाता है। इसीलिए लोक-गीतों में “सात सुहागिन” स्त्रियों के द्वारा अपने कोंकिल कण्ठ से गीत गाने का अनेक बार उल्लेख पाया जाता है। विवाह के लिए पाँच अथवा सात सधवा स्त्रियों का होना अत्यन्त आवश्यक है।

ऐसा लोगों का विश्वास है कि पाँच अथवा सात व्यक्ति मिलकर यदि किसी बुरे कार्य को भी करें तो उसमें कोई दोष नहीं लगता। इस सम्बन्ध में एक धर्मशास्त्री पण्डित जी की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है जिन्होंने कुछ लड़कों के द्वारा किसी गदहे को मार डालने पर उन्हें अनेक प्रकार का प्रायश्चित्त करने का विधान बतलाया था। परन्तु इन लड़कों ने पण्डित जी को जब यह सूचना दी कि इस कार्य में उनका पुत्र सन्तोष भी सम्मिलित था तब उन्होंने शीघ्र ही अपना ‘आदेश’ बदल दिया और कहा कि—

“सात, पाँच लड़का एक सन्तोष  
गदहा मरले तनिको ना दोष॥”

अर्थात् पाँच, सात लड़के मिलकर (जिनमें सन्तोष भी हो) यदि किसी गदहे को जान से मार डालें तब उसमें कोई भी दोष नहीं लगता।

**नौ**—ग्रहों की संख्या नौ होने के कारण इस संख्या को भी शुभ माना जाता है। मंगल कार्य में नवग्रहों की पूजा की जाती है। गाँवों में किसी वृक्ष के नीचे देवी या किसी सती के चौरा के ऊपर जो मिट्टी की पिण्डियाँ स्थापित की जाती हैं, उनकी संख्या सात अथवा नौ होती है।

**तेरह**—ईसाई धर्म में यह संख्या अत्यन्त अशुभ मानी गयी है। इसका कारण यह है कि ईसा का अनुयायी जूड़ा, जिसने उनको धोखा दिया था, उनका तेरहवाँ शिष्य था। अतः यह तेरह की संख्या जूड़ा से सम्बन्धित होने के कारण अशुभ संख्या मानी जाने लगी।

सरयूपारीण ब्राह्मणों का विभाजन तीन और तेरह इन दो वर्गों में किया जाता है, ऐसी कथा प्रसिद्ध है। भगवान् रामचन्द्र ने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर एक बहुत बड़ा ब्रह्म-भोज किया था। भोज के अन्त में उन्होंने ब्राह्मणों को ताम्बूल अर्पित किया जिसमें ‘ग्रामदान’ तथा ‘धनदान’ दक्षिणा की संख्या लिखी हुई थी। गर्ग, गौतम तथा शाण्डिल्य गोत्र के ब्राह्मणों ने इस दक्षिणा को अस्वीकार कर दिया परन्तु काश्यप, भारद्वाज, घृत कौशिक आदि तेरह गोत्रधारी ब्राह्मणों ने इस दक्षिणा को ग्रहण कर लिया। इसीलिए ये उपर्युक्त तीन गोत्र वाले ब्राह्मण अपने को सर्वश्रेष्ठ तथा तेरह गोत्र के ब्राह्मणों को हीन दृष्टि से देखते हैं। इसीलिए विवाह के अवसर पर ‘तीन’ को वरीयता दी जाती है और ‘तेरह’ हेय समझे जाते हैं। इसी कारण तेरह की संख्या शुभ नहीं मानी जाती है।

**बारह और चौदह**—आदित्यों की संख्या बारह है और भुवनों की संख्या चौदह कही जाती है। अतः बारह और चौदह ये दोनों ही सम-संख्याएँ शुभ हैं। किसी पुस्तक के अध्यायों की संख्या बारह या चौदह रखना मंगलकारक माना जाता है। समस्त विद्याओं की संख्या चतुर्दश अर्थात् चौदह मानी जाती है। पाणिनि व्याकरण में शिव से प्राप्त जो प्रत्याहार सूत्र हैं उनकी संख्या चौदह ही है। इन कारणों से बारह और चौदह ये दोनों ही संख्याएँ शुभ हैं।

**अठारह**—यह संख्या भी सम होते हुए भी शुभ मानी गयी है। महाभारत के पर्वों की संख्या अठारह है। इसी प्रकार से गीता के अध्यायों की संख्या भी अठारह है। महापुराणों की संख्या भी अठारह ही है। यद्यपि इस संख्या की पवित्रता का कोई वैज्ञानिक कारण ढूँढ़ निकालना कठिन है परन्तु अत्यन्त प्राचीनकाल से इस संख्या को शुभ माना जाता है। आज भी यह संख्या पवित्र समझी जाती है।



### अक्षर तथा वाक्य सम्बन्धी विश्वास—

लोक में अक्षरों तथा वाक्यों के सम्बन्ध में भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। देवनागरी वर्णमाला में स्वरों की सूची में पहिला अक्षर 'अ' है। यह अनन्त का सूचक है। जिस प्रकार अंग्रेजी में किसी अज्ञात राशि का सूचक (x) अक्षर माना जाता है उसी प्रकार से हिन्दी में अज्ञात राशि को 'अ' अक्षर से सूचित किया जाता है।

अ, उ तथा म् अक्षरों से 'ओऽम्' शब्द की उत्पत्ति मानी जाती है। यह अत्यन्त पवित्र तथा मंगलकारक शब्द माना जाता है। वेदों के प्रत्येक मंत्र का प्रारम्भ 'ओऽम्' से प्रारम्भ होता है। इसी तथ्य का समर्थन महाकवि कालिदास ने 'प्रणवः छन्दसामिव' लिखकर किया है। अतः किसी ग्रन्थ के लिखने के पूर्व अथवा किसी वहीखाता को प्रारम्भ करने के पहिले मंगल का सूचक 'ओऽम्' लिखने की प्रथा प्रचलित है।

'र', 'आ' तथा म अक्षरों को एक साथ मिला देने पर 'राम' शब्द की निष्पत्ति होती है। अतः 'राम' के संयोजक इन अक्षरों को पवित्र माना जाता है। कुछ लोगों का विश्वास है कि रामचरितमानस की प्रत्येक चौपाई में 'र' या 'म' अक्षर पाया जाता है जो 'राम' का प्रतिपादक है।

### (५) अनुच्छेद—(१) भोजन सम्बन्धी लोक-विश्वास

भोजपुरी क्षेत्र में रसोईघर में चौके में बैठकर भोजन करने की प्रथा है। पण्डित लोग तथा धर्मभीरु व्यक्ति शरीर पर से सिले हुए सभी वस्त्रों—कुर्ता, कमीज आदि को निकालकर भोजन करते हैं। कुछ लोग दर्जी के द्वारा सिली बनियाइन (गंजी) को भी निकाल देते हैं और इस प्रकार केवल धोती पहिन तंगे बदन भोजन करते हैं। उनकी यह धारणा है कि सिला हुआ वस्त्र अशुद्ध होता है अतः उसे पहिनकर भोजन करना निषिद्ध है।

भोजपुरी लोग पहिले पैर धोकर ही भोजन करते हैं। इसीलिए किसी अतिथि को भोजन कराने के पहिले उसे पैर धोने के लिए लोटा में जल दिया जाता है। मनु ने भी लिखा है कि "पैर धोकर ही भोजन करना चाहिए। "आर्द्र पादस्तु भुञ्जीत।" स्वास्थ्य तथा सफाई (हाइजिनिक) की दृष्टि से भी पैर धोकर ही भोजन करना श्रेयस्कर माना गया है।

रसोईघर से भोजन को उठाकर दूसरे स्थान पर ले जाना अशुद्ध तथा अनुचित माना जाता है। कुछ पण्डित लोग उठाकर लाया हुआ भोजन अशुद्ध होने के कारण उसे ग्रहण नहीं करते। अतः वे चौके में ही भोजन करते हैं। रामानुज श्री वैष्णव ब्राह्मण दृष्टि-दोष को मानते हैं। अतः वे एकान्त में बैठकर भोजन करते हैं जहाँ उन्हें कोई देख न सके। यदि किसी व्यक्ति की दृष्टि उनके भोजन पर पड़ गयी तो वे उसे उच्छिष्ट मानकर ग्रहण नहीं करते।

ताजा तथा गर्म भोजन रुचिकर एवं प्रशस्त माना जाता है। परन्तु मनु के मतानुसार अति उष्ण भोजन नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे स्वास्थ्य की क्षति होती है। इसके ठीक विपरीत ठण्डा तथा बासी भोजन बुद्धि को नष्ट करनेवाला होता है। इसलिए पढ़ने वाले लड़कों को बासी भोजन नहीं खिलाना चाहिए। इस सम्बन्ध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

“बात, बतासी, बासी; तीनों विद्या नासी।”

अर्थात् परस्पर बतकूचन (व्यर्थ की बातें) करना, जोरों की प्रचण्ड वायु का चलना तथा बासी भोजन करना ये तीनों ही वस्तुएँ विद्या का नाश करने वाली होती हैं।

यद्यपि गुरु, पुरोहित तथा श्रेष्ठ जनों का जूठा भोजन प्रसाद मानकर किया जाता है परन्तु उच्छिष्ट भोजन करने से बुद्धि मन्द हो जाती है और अनेक छूत के रोगों के होने की सम्भावना रहती है अतः जूठा भोजन नहीं करना चाहिए।

### (२) प्रातःकाल में मुख-दर्शन

प्रातःकाल शय्या से उठने पर किसी प्रिय व्यक्ति का मुख देखना शुभ माना जाता है। अतः भोजपुरी माताएँ प्रातःकाल में अपने बच्चों को जगाकर अपना ही मुँह उन्हें दिखला देती हैं। यदि किसी बुरे व्यक्ति का मुँह प्रातः देख लिया जाय तो दिन-भर उसे भोजन नहीं मिलता, ऐसा लोगों का विश्वास है। अतः सभी लोग यही प्रयास करते हैं कि अच्छे व्यक्ति के मुख का दर्शन हो।

नैषध-चरित के रचयिता महाकवि श्री हर्ष ने लिखा है कि नल के लिए उनकी प्रियतमा दमयन्ती का प्रातःकाल मुख-दर्शन अत्यन्त शुभ था। क्योंकि प्रियजनों के दर्शन से बढ़कर संसार में कोई दूसरा मंगल तथा शुभकारक वस्तु नहीं है। कवि कहता है—



“जय जय महाराजति प्राभातिकीं प्रतिभामिमां  
सफलयतु दानादक्षिणोरलसपक्ष्मणी।  
प्रथमदर्शनं शय्योत्थायं तवास्तु विदर्भजा।  
प्रियजनमुखाम्भोजातुंगयदंगन संगलम्॥”

यदि किसी अन्य व्यक्ति का मुँह देखना प्रातःकाल में सम्भव न हो तो लोग अपनी दोनों हथेलियों को देखना शुभ मानते हैं। शास्त्रों में लिखा है कि—

“कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।  
करमूले तु गोविन्दः प्रभाते करदर्शनम्॥”

अर्थात् हथेली के मूल भाग में विष्णु, अग्र भाग में लक्ष्मी तथा मध्य भाग में सरस्वती का निवास होता है। अतः प्रातःकाल उठकर अपने हाथों का दर्शन अवश्य करना चाहिए।

### (३) दन्तधावन

दैनिक क्रियाओं में दन्त-धावन का प्रधान स्थान है। शौच-कर्म के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति दातौन से मुँह धोता है। नीम और बबूल की दातौन अच्छी मानी जाती है क्योंकि इसके रेशे बड़े महीन होते हैं और इनसे दाँतों की सफाई अच्छी तरह से हो जाती है। क्षीरी वृक्ष, अर्थात् वे वृक्ष जिनसे दूध निकलता है, की दातौन शुभ मानी जाती है। ऋषिपञ्चमी के दिन एक विशेष प्रकार की लता की दातौन करने का विधान है जिसे जनपदीय भाषा में ‘चिचिड़ी’ कहते हैं। कुछ स्त्रियाँ आज के दिन पूरे वर्ष के दिनों के हिसाब से ३६५ दातौन करती हैं जिससे प्रतिदिन ‘चिचिड़ी’ की दातौन करने का उन्हें फल मिल जाता है।

जिउतिया के दिन स्त्रियाँ जीवत्पुत्रिका व्रत करती हैं। इस दिन भोजन करने की बात दूर रही, वे जल भी ग्रहण नहीं करतीं। उनके मुँह में जल कहीं चला न जाय इसलिए वे इस दिन दातौन भी नहीं करतीं।

दातौन एक वालिस्त अथवा आठ से दस इंच बड़ी होनी चाहिए जो न अधिक मोटी हो और न अधिक पतली। दातौन को दो भागों में चीरकर उससे जीम साफ की जाती है जिसे चीरा कहा जाता है। यह चीरा बड़ा अशुद्ध माना जाता है अतः इसे छठाकर दूर फेंक दिया जाता है।

### (४) नवीन वस्त्र धारण करना

नये वस्त्रों को धारण करने के सम्बन्ध में भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। इस सम्बन्ध में गाँवों में यह कहावत प्रचलित है कि—

“कपड़ा पहिरोँ बार बार,  
बुध बियफे अबरु शुक्रवार।  
भूले भटके खत अतवार।”

अर्थात् नवीन वस्त्र को बुधवार, वृहस्पतिवार और शुक्रवार को ही धारण करना चाहिए। भूले-भटके रविवार को भी पहिना जा सकता है। शनिवार को नया वस्त्र कभी नहीं पहिनना चाहिए क्योंकि उसके फटने का भय बना रहता है। भड्डरी ने भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है—

“कपड़ा पहिरै तीन बार; बुध, वृहस्पति, शुक्रवार,  
हारे उबरे का अतवार; भड्डर काहै यही विचार।”

वृहस्पतिवार को नवीन वस्त्र धारण करना शुभ तथा प्रशस्त माना जाता है। बुध और शुक्रवार भी शुभ हैं। परन्तु अन्य दिनों नया कपड़ा कदापि नहीं पहिनना चाहिए।

माघ शुक्ल पञ्चमी—जिसे वसन्तपञ्चमी अथवा श्रीपञ्चमी भी कहते हैं—के दिन पीत-वस्त्र पहिनने का विधान है। अतः इस दिन कुछ लोग नवीन वस्त्र धारण करते हैं जो पीले रंग में रंगा हुआ होता है।



परन्तु किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर उसकी अन्त्येष्टि संस्कार करनेवाले 'दाही' के लिए किसी भी दिन नवीन वस्त्रों को धारण करने के लिए निषेध नहीं है। इसी प्रकार से सद्यः विधवा स्त्री भी किसी भी दिन नवीन श्वेत वस्त्रों को धारण कर सकती है। सात दिनों के पश्चात् 'सतनहयना' किया जाता है। इस दिन भी विधवा के लिए नवीन वस्त्रों का धारण निषिद्ध नहीं है। आपातकालीन स्थिति के कारण उपर्युक्त तीनों ही अवस्थाओं में किसी भी दिन नये वस्त्रों को धारण किया जा सकता है।

### (५) शयन

दक्षिण दिशा यमराज की दिशा मानी जाती है अतएव चारपाई पर सोते समय दक्षिण की ओर पैर करके सोना अशुभ माना जाता है। यदि कोई सोनेवाला न भी हो तो भी चारपाई की 'गोनतारी' दक्षिण दिशा की ओर नहीं की जाती। पूर्व दिशा की ओर सिर करके सोना शुभ माना जाता है। पश्चिम की ओर से शयन करना भी अच्छा है। परन्तु उत्तर सिर करके सोना अत्यन्त निषिद्ध है।

मृत व्यक्ति के शव को ले जाते समय उसका पैर सदा दक्षिण दिशा की ओर रखा जाता है क्योंकि यमराज उसी दिशा में निवास करते हैं। ऐसा यदि सम्भव न हो तो उसके सिर को अस्थी के आगे और पैरों को पीछे रखा जाता है।

### (६) अनुच्छेद—झाड़ू सम्बन्धी विश्वास

झाड़ू सम्बन्धी विश्वास—घर को स्वच्छ रखने का साधन झाड़ू है। अतः घर में प्रतिदिन झाड़ू लगाना गृहिणी का आवश्यक धर्म माना जाता है। परन्तु दीपावली के बाद दो दिनों तक अर्थात् भैया दूज तक झाड़ू लगाना अत्यन्त निषिद्ध है। दीपावली के दूसरे दिन स्त्रियाँ सूप डबडबा कर 'दलिदर खेदती' हैं अर्थात् घर से 'दरिद्रा' का निःसारण करती हैं। अतएव स्त्रियों का यह दृढ़ विश्वास है कि दीपावली के बाद दो दिनों तक झाड़ू नहीं लगाना चाहिए अन्यथा घर में आयी हुई लक्ष्मी बुहारते समय घर से बाहर चली जाती हैं। अतएव घर चाहे कितना ही गन्दा क्यों न हो जाय, इन दो दिनों में झाड़ू नहीं लगाया जाता।

झाड़ू को सीधा खड़ा करना चाहिए अर्थात् जिस ओर झाड़ू को पकड़कर घर बुहारा जाता है वह भाग जमीन पर होना चाहिए। परन्तु झाड़ू को उलटकर रखना अशुभ माना जाता है। झाड़ू को उलटकर खड़ा रखने से शत्रु खड़ा हो जाता है अर्थात् किसी से झगड़ा होने की आशंका बनी रहती है। अतः इसे जमीन पर सुलाकर 'पट' रखना ही श्रेयस्कर माना जाता है।

किसी प्रिय व्यक्ति के घर से प्रस्थान करने के दिन झाड़ू लगाना निषिद्ध माना जाता है। सम्भवतः इससे उस व्यक्ति का अनादर होने की आशंका होती है। इसी प्रकार से रात्रि के समय झाड़ू लगाना मना है। सम्भवतः इससे लक्ष्मी के रुठ जाने का भय बना रहता है।

पूजा-पाठ करने के स्थान पर अथवा यज्ञ-वेदी या 'द्वारपूजा' की जगह पर झाड़ू नहीं लगाना चाहिए। चूँकि झाड़ू को अशुद्ध माना जाता है अतः पवित्र स्थानों पर इसका प्रयोग समुचित नहीं है। ऐसे स्थानों को पहिले कपड़े से साफ करते हैं। इसके उपरान्त उसे गोबर और मिट्टी से लीपकर स्वच्छ बनाया जाता है।

मोर के पंखों से बनाया झाड़ू परम पवित्र होता है। इसका प्रयोग पवित्र स्थानों को भी बुहारने में किया जा सकता है। आजकल अनेक प्रकार के झाड़ूओं का प्रचार पाया जाता है—जैसे नारियल का झाड़ू, सीक का झाड़ू, ताड़पत्र का झाड़ू, फूल का झाड़ू। परन्तु सुन्दरता तथा पवित्रता में मोर का झाड़ू अद्वितीय है।

गन्दी वस्तुओं को झाड़ने और बुहारने का साधन होने के कारण झाड़ू अपवित्र माना जाता है। अतएव पूजा-गृह अथवा रसोईघर में इसे नहीं ले जाते। इसी अपवित्रता के बुहारने के अतिरिक्त झाड़ू को कोई नहीं छूता। कदाचित् इसका स्पर्श हो जाने पर हस्त-प्रक्षालन करना पड़ता है। किसी व्यक्ति को झाड़ू से मारना अपमान का सूचक है। इसलिए 'झाड़ू मारना' एक मुहावरा बन गया है जिसका अर्थ किसी व्यक्ति अथवा वस्तु का घोर तिरस्कार करना है।

चारपाई बुनना—'पचखा' के दिनों में चारपाई का बुनना अशुभ माना जाता है। इसी प्रकार से आषाढ़ के महीने में भी चारपाई नहीं बुनी जाती क्योंकि ऐसा करने से उसके जल्दी ही टूट जाने की आशंका बनी रहती है।

प्रधानतया चारपाई दो प्रकार से बुनी जाती है जिसे 'चार' बघिया और 'छह बघिया' कहा जाता है क्योंकि बुनते समय उपर्युक्त संख्या के बाधों को एक साथ रखा जाता है। चारपाई बुनते समय इन बाधों के ग्रुप (समुदाय) बन जाते हैं। इन समुदायों को इन्द्र, चन्द्र, जम के रूप में गिना जाता है। कोई भी चारपाई 'जम' पर नहीं उतरनी चाहिए क्योंकि यह



अशुभ माना जाता है। अतः बुनते समय सदा इस बात का ध्यान रखा जाता है कि चारपाई इन्द्र पर उतरे अर्थात् समाप्त हो अथवा चन्द्र पर।

चारपाई को बुनते समय जिस रस्सी की सहायता ली जाती है, जिसे भोजपुरी में बरुआ कहते हैं, उसको अन्त में गड्ढे में फेंक दिया जाता है। यदि किसी दूसरे व्यक्ति के घर में उसे फेंक दिया जाय तो उसके घर में झगड़ा करते हैं। अतः कुछ दुष्ट व्यक्ति ऐसा करते हैं।

### (८) परिच्छेद

### निषिद्ध (व्यक्ति-वस्तु)

(Taboo)

सामान्य परिचय—प्राचीन काल में राजा, महाराजा, सामन्त, पण्डे तथा पुरोहित, गुरु एवं पुजारी समाज में अपने विशिष्ट स्थान के लिए अपने को उच्च समझते थे। अतएव वे सामान्य जनता की पहुँच के बाहर थे। साधारण लोग केवल उनका दर्शन कर सकते थे। वे राजा अथवा गुरु के प्रति अत्यधिक श्रद्धा के कारण उनका नाम लेना अशोभन तथा अनुचित समझते थे। इसी प्रकार से नीच, दुष्ट व्यक्ति का नाम लेना भी अच्छा नहीं माना जाता है।

अशौच की दशा को प्राप्त व्यक्तियों का स्पर्श करना सम्भवतः शौच की दृष्टि से बुरा माना जाता था। उदाहरण के लिए किसी मृत व्यक्ति की अन्त्येष्टि क्रिया करने वाला 'दाही' तथा 'मासिक धर्म' की अवस्था में वर्तमान स्त्री का स्पर्श निषिद्ध है। इसी प्रकार कुछ वस्तुएँ भी स्पर्श के अयोग्य मानी जाती हैं जैसे रक्त तथा बाल आदि। आदिम समाज के लोगों की यह धारणा थी कि कुछ वस्तुओं में भूत तथा नीच प्रेतात्माओं को भगाने की शक्ति निहित है जैसे लोहा और आग। अतः ये भी 'टैबू' की श्रेणी में ही आते हैं।

'टैबू' अंग्रेजी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ 'निषेध' होता है।<sup>१</sup> किसी भी प्रकार का निषेध क्यों न हो यह सब टैबू के अन्तर्गत आता है। किसी व्यक्ति का नाम लेना, किसी महान् आत्मा को स्पर्श करना, किसी कुत्सित तथा अपवित्र वस्तु को छूना, किसी व्यक्ति के साथ समागम करना, किसी विशिष्ट वस्तु का भोजन करना तथा किसी का मुँह देखना अथवा दिखलाना—ये सभी बातें टैबू के अन्तर्गत आती हैं।

इस प्रकार 'टैबू' को प्रधानतया चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

- (१) निषिद्ध कर्म (Tabooed Acts)
- (२) निषिद्ध व्यक्ति (Tabooed Persons)
- (३) निषिद्ध वस्तु (Tabooed Things)
- (४) निषिद्ध शब्द (Tabooed Words)

इसमें से प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

### (१) अनुच्छेद—निषिद्ध व्यक्ति

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनका स्पर्श करना निषिद्ध है। यद्यपि फ्रेजर ने अपनी पुस्तक में निषिद्ध व्यक्तियों में ऊँच-नीच अनेक प्रकार के मनुष्यों की गणना की है परन्तु भोजपुरी क्षेत्र में उनमें से केवल तीन की ही सत्ता उपलब्ध होती है जो निम्नांकित हैं—

- |                    |         |
|--------------------|---------|
| (१) रजस्वला स्त्री | निषिद्ध |
| (२) दाही मनुष्य    | ” ” ”   |
| (३) हत्यारा मनुष्य | ” ” ”   |

(१) रजस्वला स्त्री—मासिक धर्म की अवस्था में वर्तमान स्त्री को स्पर्श करना निषिद्ध माना जाता है। सामान्यतया स्त्रियाँ तीन दिनों तक मासिक धर्म का पालन करती हैं। इन दिनों में वे सबसे अलग एकान्त स्थान में होती हैं। घर के किसी अन्य व्यक्ति को वे इन दिनों में स्पर्श नहीं कर सकतीं और न घर का कोई सदस्य छूता है। वे तीन दिनों तक स्नान

१. हिन्दी भाषा में Taboo शब्द का द्योतक कोई समुचित समानार्थक शब्द उपलब्ध नहीं है। अतः ऐसी अवस्था में अंग्रेजी के 'टैबू' शब्द को यहाँ ग्रहण किया गया है। हिन्दी में 'निषेध' शब्द के द्वारा इसका कुछ भाव द्योतित हो सकता है परन्तु 'टैबू' का क्षेत्र 'निषेध' की अपेक्षा अधिक व्यापक तथा विस्तृत है।



नहीं करती और एक ही वस्त्र को पहिने रहती हैं। ऋतु काल में पति-समागम करना अत्यन्त निषिद्ध है। चूँकि रजस्वला स्त्री अपवित्र समझी जाती है अतः भोजन तथा जल का स्पर्श नहीं कर सकती।

इन दिनों में पति अपनी स्त्री से समागम की तो बात दूर रही, उसका स्पर्श भी नहीं कर सकता। इसका कारण स्त्री की अपवित्रता ही समझनी चाहिए। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इन दिनों में पत्नी के साथ सम्पर्क करने से पति की आयु क्षीण होती है। ऋतुकाल के पश्चात् चौथे दिन स्नान करने पर ही स्त्री शुद्ध समझी जाती है तथा वह स्पर्श योग्य होती है।

सन्तान की उत्पत्ति के दिनों में भी स्त्री अशुद्ध मानी जाती है। भोजपुरी क्षेत्र में यह परम्परा प्रचलित है जब किसी स्त्री को लड़का पैदा होता है तब वह अनेक दिनों तक एक विशेष घर—जिसे सूतिका-गृह कहते हैं—में ही निवास करती है। इन दिनों में न तो वह स्नान करती है और न उस घर से बाहर ही जा सकती है। इस प्रकार अपवित्र होने के कारण वह अस्पृश्य होती है। सौर (सउरि) में निवास करने के दिनों में पति के लिए उसका मुँह देखना भी निषिद्ध है। ज्योतिषी के द्वारा बतलाये गये शुभ दिन में वह स्नान करके पवित्र होती है तभी घर के अन्य सदस्यों के लिए स्पर्श योग्य मानी जाती है।

## (२) दाही मनुष्य का स्पर्श निषिद्ध

किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् परिवार का जो सदस्य मृतात्मा के मुँह में आग देता है तथा उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया करता है, उसे 'दाही' कहा जाता है। यह व्यक्ति श्राद्ध के दस-बारह दिनों तक अस्पृश्य माना जाता है। वह सबसे अलग काठ के तख्ते पर सोता है नियमित आहार करता है और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला होता है। लोगों की ऐसी धारणा है कि दाही व्यक्ति के ऊपर मृत व्यक्ति की आत्मा रहती है। अतः लोग उससे डरते हैं और उसका स्पर्श नहीं करते। श्राद्ध-काल में 'दाही' अस्पृश्य व्यक्ति माना जाता है। न तो उसे कोई छूता है और न वह किसी को स्पर्श कर सकता है।

## (३) हत्यारा मनुष्य निषिद्ध

जो मनुष्य किसी व्यक्ति की हत्या करता है वह पातकी माना जाता है। शास्त्रकारों ने हत्या को महापातक की संज्ञा प्रदान की है। अतः हत्यारा घोर नरक को प्राप्त करता है। इस कारण हत्यारा को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। उसे नीच तथा पापी मानने के कारण कोई भी स्पर्श नहीं करता। उसका मुँह देखना भी पाप का कारण होता है।

गाय की हत्या महापातकों में गिनी जाती है। अतः गो-हत्या करने वाला महापातकी माना जाता है। यह अपने गले में रस्सी का फंदा लगा कर घर-घर भिक्षा माँगता फिरता है। महापातक का कर्ता होने के कारण वह मौन-व्रत धारण करता है। पाँच गाँवों में भिक्षा माँगने के पश्चात् ही वह इस पाप का प्रायश्चित्त करने में समर्थ हो पाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि गोहत्या का प्रायश्चित्त मौन व्रत धारण कर पाँच गाँवों में भिक्षा माँगने से दूर होता है। इसीलिए गाय के हत्यारे को उपर्युक्त विधान का आचरण करना पड़ता है। हत्यारा होने के कारण वह अस्पृश्य माना जाता है।

## (२) अनुच्छेद—निषिद्ध वस्तुएँ

(१) लोहा—अनेक ऐसी वस्तुएँ हैं जो अनेक कारणों से 'निषिद्ध' की कोटि में गिनी जाती हैं। इनमें लोहा का स्थान प्रथम है। भोजपुरी प्रदेश में लोहा भूतों को भगाने वाला माना जाता है। जनता की ऐसी धारणा है कि जहाँ लोहा होता है वहाँ भूत नहीं आ सकता। सम्भवतः लोहा का रंग काला होने के कारण नीच आत्मायें (evil spirits) डरती हैं और इसके पास फटकने की उनकी हिम्मत नहीं होती। इसीलिए 'दाही' सदा अपने पास लोहे की छड़ी अथवा चाकू रखता है। इन दोनों के अभाव में वह लोहे की कील को ही पास में रखकर संतोष को प्राप्त करता है। कुछ लोग अपने यज्ञोपवीत में इसी कारण लोहे की चाभी बाँधे रहते हैं।

वियावान जंगल में, अँधेरी रात में, जाने वाला व्यक्ति लोहे की बनी किसी वस्तु को धारण करके दुष्ट आत्माओं के आक्रमण से अपने को सुरक्षित समझता है। गाँव की स्त्रियाँ एक घर से दूसरे घर को पका हुआ भोजन ले जाते समय थाली में लोहा का एक टुकड़ा अथवा आग की चिनकारी रख देती हैं जिससे भूत और 'परेत' डरकर उस भोजन का उपभोग न कर सके अथवा उनकी आत्मा (spirit) उसे दूषित न कर दे।

लोहा बड़ा ही अपवित्र धातु माना जाता है। इसीलिए लोहे की थाली में कोई भोजन नहीं करता। मांगलिक तथा शुभ कार्यों में पीतल और ताँबे का तो प्रयोग होता है परन्तु ऐसे अवसर पर लोहे को कोई छूता भी नहीं है।

शनि बड़ा ही दुष्ट ग्रह माना जाता है। जब किसी व्यक्ति पर शनि की कुदृष्टि होती है तब उसके दुष्परिणामों से बचने के लिए लोहा तथा अन्य वस्तुओं तथा वस्त्रों को ब्राह्मणों को दान में देता है। कुछ लोग शनि के बुरे प्रभावों से बचने



के लिए लोहे की बनी हुई अँगूठी धारण करते हैं। यदि किसी व्यक्ति के पैर की अँगूली 'ठेसाहि' हो जाती है तो वह चोट से बचने के लिए उस अँगूली में लोहे की अँगूठी पहिन लेता है जिससे चोट की पुनरावृत्ति नहीं होने पाती। लोहा सब धातुओं में निकृष्ट होने पर भी अपनी "भूत-भगावन" विशेषताओं के कारण अत्यन्त उपयोगी तथा आवश्यक है।

(२) रुधिर—राजा और महाराजाओं का रुधिर बड़ा ही पवित्र माना जाता है अतः किसी भी दशा में उसका जमीन पर गिरना अनुचित है। फ्रेजर ने लिखा है कि मध्ययुग में राजाओं को जब फाँसी दी जाती थी अथवा हत्या की जाती थी तब ऐसा प्रबन्ध किया जाता था कि उनका खून जमीन पर न गिरने पावे। इस देश में भी खून के विषय में अनेक विश्वास प्रचलित है।

मासिक-धर्म वाली रजस्वला स्त्री का रुधिर अत्यन्त अपवित्र माना जाता है। अतः उसके लोहू से सिकत वस्त्र का स्पर्श करना अत्यन्त निषिद्ध है। इसी प्रकार से जिस व्यक्ति की हत्या की जाती है उसका रुधिर भी अस्पृश्य होता है। ऐसा समझा जाता है कि उसके स्पर्श से हत्या का पाप लगता है।

इसके ठीक विपरीत जिस मनुष्य अथवा पशु की बलि चढ़ायी जाती है उसका रुधिर पवित्र होता है। मिर्जापुर के पास विन्ध्यवासिनी देवी के सुप्रसिद्ध मंदिर में नवरात्र के दिनों में अनेक वकरों की बलि दी जाती है। इससे जो खून निकलता है उसे पवित्र मानकर भक्त लोग अपने ललाट में उसका टीका लगाते हैं और वे उसके मांस को बड़ी श्रद्धा से भक्षण करते हैं।

इसी प्रकार से शहीदों का खून भी पवित्र कोटि में गिना जाता है। प्राचीन काल में गो तथा ब्राह्मण की रक्षा में जो व्यक्ति अपने शरीर का बलिदान कर देते थे उनका रुधिर उनके कार्य के समान ही परम पावन होता था। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दिनों में जो देश-भक्त ब्रिटिश गोली के शिकार हो जाते थे उनके रक्त से सिञ्चित स्थान पर लोग फूलों की माला चढ़ाया करते थे।

(३) केश निषिद्ध—सिर के बालों को बड़ा पवित्र माना जाता है। अतः बालकों का जब मुण्डन-संस्कार सम्पादित होता है उस समय कटे हुए बालों को किसी पवित्र तालाब अथवा नदी में विसर्जित कर दिया जाता है। श्रेष्ठ व्यक्तियों तथा ऋषि, मुनियों के केश पवित्र मानकर कुछ लोग उसे अपने पास सुरक्षित रखते हैं। पवित्र नदियों के किनारे तथा तीर्थ-स्थानों में बालों का कटवाना पुण्य का कारण माना जाता है।

इसके ठीक विपरीत कुछ लोग केशों को अपवित्र मानते हैं। किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसका दाह-संस्कार करने वाले 'दाही' का सिर मुण्डित कर दिया जाता है। 'दशाह' के दिन परिवार के सभी व्यक्ति अपने बालों को उस्तरे से मुड़वाते हैं। लोगों की यह धारणा है कि ऐसा करने से मृत्यु से उत्पन्न अशौच समाप्त हो जाता है। इस अवसर पर सिर, दाढ़ी तथा मूँछ के बालों को कटवाना आवश्यक माना जाता है। बालों के द्वारा नीच आत्माओं का स्थानान्तरण भी किया जा सकता है। अतएव लोग अपने बालों को दूसरे को नहीं छूने देते। बालों के सम्बन्ध में विशेष विवरण 'लोक-विश्वास' के प्रकरण में दिया जा चुका है। अतः उनका पिष्ट-पेषण यहाँ अभीष्ट नहीं है।

#### (४) केश-पाश तथा गाँठ बाँधना निषिद्ध

केश-पाश के सम्बन्ध में भी अनेक विधि-निषेध पाये जाते हैं। वृहस्पतिवार को कुमारी लड़कियों के लिए अपने सिर के बालों को साफ करना शुभ माना जाता है। वे अपने बालों को सँवार कर जूड़ा बाँधती हैं। परन्तु शनिवार को केशपाशों को साफ कर उन्हें बाँधना निषिद्ध समझा जाता है। ऐसा करने से शनि महाराज की कुदृष्टि होने की आशंका बनी रहती है। केश-पाश को बाँधने से दूसरे के मन को बाँधा जा सकता है, ऐसा विश्वास है। हिन्दी-कवि बिहारी ने किसी नायिका के केशपाश को देखकर उसमें दूसरे मनुष्यों के मन को बाँधने के गुण का उल्लेख किया है।<sup>१</sup>

इसी प्रकार से 'गाँठ बाँधने के सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। हिन्दी में 'गाँठ-बाँधना' मुहावरा के रूप में प्रचलित है जिसका भाव है किसी वस्तु का स्मरण करना। गाँठ बाँधने से किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के बाँधे जाने का विश्वास होता है। हरिद्वार में मनसा देवी के पास एक वृक्ष की शाखा में अनेक भक्त गण कपड़े की गाँठ लगा देते हैं। इस प्रकार उनका मनोरथ उसमें बँध जाता है। अपनी कामना की पूर्ति के बाद वे उस गाँठ को खोल देते हैं।

१. काको मन बाँधे न यह,  
जूरो बाँधि निहारि।'



(५) भोजन—भोजन के सम्बन्ध में भी अनेक विधि-निषेध उपलब्ध होते हैं। हिन्दुओं के लिए गाय का मांस तथा मुसलमानों के लिए सूअर का मांस खाना अत्यन्त निषिद्ध है। कोई भी हिन्दू चाहे वह कितना भी पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित क्यों न हो, गोमांस कभी नहीं खा सकता। इसी प्रकार से सिक्खों के लिए मदिरा तथा धूम्र-पान करना अनभिष्ट है। उनके धर्म के द्वारा इन दोनों वस्तुओं का निषेध किया गया है।

भोजपुरी क्षेत्र में पूजा-पाठ करने वाले ब्राह्मणों, पुरोहितों तथा पण्डितों के द्वारा लहसुन तथा प्याज का प्रयोग निषिद्ध कोटि में माना जाता है। पण्डितलोग इन उपर्युक्त पदार्थों को, इनकी तामसिक वृत्ति के कारण, स्पर्श तक नहीं करते। उनको भोज्य वस्तुओं की सूची में स्थान देने की कथा तो दूर रही। इसी प्रकार से लाल टमाटर और मांस के रंग में समानता के कारण कतिपय ब्राह्मण नहीं खाते। आश्विन कृष्ण-पक्ष—जिसे पितृपक्ष भी कहा जाता है—में उन व्यक्तियों के लिए—जिनके पिता मृत हैं—‘नेनुआ’ नामक सब्जी का प्रयोग करना निषिद्ध है। कार्तिक मास में बहुत से व्रती तथा गंगास्नायी लोग ‘मंटा’ (बैंगन) का खाना निषिद्ध मानते हैं।

### (३) अनुच्छेद—निषिद्ध कार्य

कुछ कार्य ऐसे हैं जो निषिद्ध माने जाते हैं। इन कार्यों का सम्पादन करना अपुण्यकारक तथा पापों का जनक है।

(१) भोजन—कुछ सनातनी रामानुजी वैष्णव स्वयंपाकी होते हैं अर्थात् वे दूसरों के हाथ से बनाया हुआ भोजन ग्रहण नहीं करते। वे अपना भोजन स्वयं पकाते हैं। इसी प्रकार से वे एकान्त में बैठकर भोजन करते हैं जिससे उन्हें कोई देख न सके। वे ‘दृष्टिदोष’ में विश्वास करते हैं। उनकी यह मान्यता है कि यदि कोई मनुष्य भोजन करते समय उन्हें देख ले तो वह भोज्य-पदार्थ उसकी दृष्टि लगने से दूषित हो जाता है। वह भोजन दृष्टि-दोष लगने से उच्छिष्ट और अखाद्य हो जाता है।

(२) मुँह दिखलाना तथा देखना—शय्या से उठकर प्रातःकाल में किसी अपरिचित व्यक्ति का मुँह देखना अशुभ माना जाता है। अतः मातायें अपने बच्चों को प्रातःकाल में सबसे पहिले अपनी माता अथवा घर के श्रेष्ठ व्यक्तियों का मुँह देखने के लिए उपदेश देती हैं। लोगों का यह विश्वास है कि किसी अपरिचित तथा अशुभ व्यक्ति का मुँह देखने से घर में झगड़ा लग जाता है अथवा दिनभर एकादशी का व्रत करने के लिए बाधित होना पड़ता है। यदि किसी व्यक्ति को दिनभर भोजन से भेंट नहीं होती अथवा अनायास कोई झगड़ा खड़ा हो जाता है तो वह पश्चात्ताप करता हुआ कहता है कि “आज न जाने मैंने किसका मुँह देखा है।” अतः भोजपुरी मातायें इस विषय में बड़ी सतर्क रहती हैं कि मेरा पुत्र प्रातःकाल में किसी अपरिचित अथवा अवाञ्छित व्यक्ति का मुँह न देखने पाये।

इसी प्रकार से दूसरे व्यक्तियों को अपना मुँह दिखलाना भी उचित नहीं माना जाता है। विवाह के उपरान्त जब नयी बधू अपनी ससुराल आती है तो कई दिनों तक घर की स्त्रियाँ भी उसका मुँह नहीं देख पातीं। कुछ तो यह परदा-प्रथा तथा लज्जा के कारण किया जाता है। परन्तु इस कार्य के पीछे यह भावना भी छिपी हुई ज्ञात होती है कि मुँह दिखलाने से किसी स्त्री अथवा पुरुष की कहीं कुदृष्टि न लग जाय। इसी प्रकार से जन्म के पश्चात् लगभग छः मास तक बालक को घर से बाहर नहीं जाने दिया जाता अन्यथा उस पर किसी की दूषित दृष्टि पड़ जाने का भय बना रहता है। विवाह के लिए जाने वाले वर के सिर पर ‘मोर’ पहिनाया जाता है और उससे लटकती हुई मालायें वर के मुख को आच्छादित किये रहती हैं। इसके भीतर भी यही भावना विद्यमान है।

(३) उच्छिष्ट भोजन—थाली में से थोड़ा-सा भोजन करके शेष को छोड़ देना ‘उच्छिष्ट’ कहलाता है। अनेक आदिम जातियों में ऐसा विश्वास प्रचलित है कि उच्छिष्ट भोजन के द्वारा जादू किया जा सकता है। अतः इस जाति के सदस्य अपने जूठे भोजन को जला देते हैं अथवा जमीन में गाड़ देते हैं। भोजपुरी क्षेत्र में जूड़े भोजन को छोड़ना अशुभ तथा अनुचित माना जाता है। परोसे गये अन्न को पूर्णतया ग्रहण न करना उस अन्न का अपमान समझा जाता है। चूँकि अन्न का तिरस्कार करना पाप का कारण होता है अतः भोजन को उच्छिष्ट रूप में नहीं छोड़ना चाहिए। शौच तथा सफाई (हाइजिनिक) की दृष्टि से भी उच्छिष्ट भोजन का दूसरे व्यक्तियों के द्वारा ग्रहण करना उचित नहीं। इससे अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। भोजपुरी स्त्रियाँ अपने पति का उच्छिष्ट भोजन करना अपना सौभाग्य समझती हैं। परन्तु शुचिता की दृष्टि से तथा अन्य अनेक कारणों से इस भावना का अब क्रमिक ह्रास होने लगा है। मातायें किसी व्यक्ति का जूठा भोजन अपने बच्चों को नहीं खरने देती। उनकी धारणा है कि ऐसा करने से बच्चे प्रेत आत्माओं से ग्रसित हो जाते हैं।



(४) वृक्ष काटना—हरे वृक्षों को काटना अत्यन्त निषिद्ध माना जाता है। वृक्षों में पीपल तथा आम अत्यन्त पवित्र तथा पूजनीय माने जाते हैं। सोमवती अमावस्या के दिन स्त्रियाँ पीपल की पूजा करती हैं। आम का वृक्ष अपनी पवित्रता तथा उपयोगिता के कारण अछेद्य माना जाता है। प्राचीन धर्म-शास्त्रियों तथा आधुनिक वैज्ञानिकों का यह मत है कि वृक्षों में भी प्राण होता है। अतः वृक्षों को काटना हत्या करने के समान पातक माना जाता है। विशेषकर पीपल और आम के हरे वृक्षों का विनाश करना पाप का कारण होता है। अतः कोई भी हिन्दू हरे पेड़ों को नहीं काटता। किंवदन्ती रात्रि के समय आम की पत्तियों को भी तोड़ना निषिद्ध है। रात के समय मनुष्य की ही भाँति वृक्ष भी सोते रहते हैं। अतः ऐसी दशा में उनकी पत्तियों को तोड़ना उनकी निद्रा को भंग कर उनका अंग-भंग करने के समान है। आजकल सरकार ने भी हरे वृक्षों को न काटने की आज्ञा जारी कर रखी है। यद्यपि इसका कारण सामान्य जनता के विश्वास से सर्वथा भिन्न है।

#### (४) अनुच्छेद—निषिद्ध शब्द

कुछ ऐसे शब्द हैं जिनका उच्चारण करना अशोभन तथा अशुभ माना जाता है। ऐसे शब्दों को निम्नांकित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

- (१) व्यक्तिगत नामों का उच्चारण न करना।
- (२) सम्बन्धित व्यक्तियों का नाम न लेना।
- (३) मृतात्मा का नाम न लेना।
- (४) राजा तथा पवित्र व्यक्तियों का नामोच्चारण न करना।
- (५) देवताओं का नाम न लेना।

इनमें से अन्तिम को छोड़कर शेष चार निषेध (Taboo) भोजपुरी प्रदेश में उपलब्ध होते हैं।

(१) व्यक्तिगत नाम—हमारे शास्त्रों में लिखा है कि अपने मुँह से अपने नाम का उच्चारण नहीं करना चाहिए। शास्त्र-कारों ने जिन नामों का उच्चारण करना निषिद्ध बतलाया है उसमें अपना नाम भी है।<sup>१</sup> अतः भोजपुरी प्रदेश में साधारणतया लोग अपना नाम स्वयं नहीं बतलाते। यदि उनका नाम पूछा जाता है तो वे बड़े संकोच से कहते हैं कि “मुझे लोग ऐसा पुकारते हैं।”

प्रत्येक हिन्दू दो नामों को धारण करता है जिन्हें (१) राशि नाम और (२) पुकार नाम कहा जाता है। राशि का नाम गोपनीय होता है। इसका उपयोग केवल मांगलिक कार्य-विशेष पर, विवाह के अवसर पर किया जाता है। विवाह के लिए वर और कन्या की कुण्डली इसी राशि के नाम से ही मिलाई जाती है। पुकार-नाम व्यक्ति विशिष्ट को पुकारने के लिए किया जाता है। इसी नाम का उपयोग जीवन में सदा होता है। सम्भवतः नाम-गोपन के विश्वास के कारण ही राशि-नाम की उत्पत्ति हुई होगी।

अपने मुँह से अपने नाम के उच्चारण न करने की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। बारहवीं शताब्दी में उत्पन्न होने वाले महा-कवि श्री हर्ष ने अपने “नैषधीय चरित” महाकाव्य में लिखा है कि जब दमयन्ती ने नल से उनके नाम को जानने की जिज्ञासा प्रकट की तब उन्होंने अपना नाम बताना स्पष्ट ही अस्वीकार कर दिया और यह कहा कि महाजन लोगों की यह परम्परा है कि वे अपने मुँह से स्वयं अपना नाम नहीं बतलाते।

“महाजनाचारपरम्परेदृशी

स्वनामनामादधते न साधवः॥

अतोऽभिधातुं न तदुत्सहे पुनः।

जनः किलाचारमुचं विगायति॥”

निषिद्ध नामों में अत्यन्त कृपण व्यक्ति के नाम की भी गणना की गई है।<sup>२</sup> जो व्यक्ति कंजूस हो, मक्खीचूस हो तथा “चमड़ी जाय दमड़ी न जाय” के सिद्धान्त का पक्षपाती हो ऐसे महाकृपण व्यक्ति का नाम प्रातःकाल में नहीं लेना चाहिए।

१. आत्म-नाम गुरोर्नाम, नामातिकृपणस्य च।

श्रेयस्कामो न गृह्णीयात्, ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः॥

२. नामातिकृपणस्य च।



लोगों का विश्वास है कि ऐसा करने से दिन भर अमंगल तथा अशुभ होता है। इसीलिए गाँवों में सबेरे कंजूस आदमी का नाम कोई नहीं लेता। इसी प्रकार से शत्रु का भी नाम नहीं लेना चाहिए क्योंकि इससे अमंगल की आशंका होती है।

अमांगलिक अवसरों पर उच्चारण किये जानेवाले कुछ शब्द ऐसे हैं जिनकी अन्य अवसरों पर की गयी आवृत्ति अत्यन्त अशुभ मानी जाती है। मृत व्यक्ति की श्मशान यात्रा में “राम नाम सत्य है” इन शब्दों का उच्चारण किया जाता है। परन्तु पुत्रजन्म, यज्ञोपवीत, विवाह और गवना आदि शुभ अवसरों पर इस पदावली का अकस्मात्, अतजाने उच्चारण भी अत्यन्त अशुभ तथा अमंगल का कारण होता है। अतः इस शाश्वतिक सत्य वाक्य का प्रयोग भी नितान्त निषिद्ध है।

## (२) सम्बन्धियों का नाम न लेना

अपना जो घनिष्ठ तथा प्रियतम व्यक्ति होता है उसका भी नाम लेना निषिद्ध है। संभवतः यह अतिशय प्रेम और स्नेह के कारण किया जाता है।

भोजपुरी प्रदेश में स्त्रियाँ अपने पति का नाम कदापि नहीं लेती हैं। वे कितनी भी विपत्ति में क्यों न फँसी हो, कितने भी संकट में क्यों न हो परन्तु वे किसी भी दशा में अपने पति के नाम का उच्चारण नहीं करतीं।<sup>१</sup> यदि उन्हें अपने पति को सम्बोधित करना होता है तो वे ‘रउवा’ अथवा ‘ए रउवा’ शब्दों का प्रयोग करती हैं। यदि किसी अवसर पर पति का उल्लेख करना होता है तब ‘बबुआ के बाबूजी’ शब्दों से करती हैं। सास तथा ननद के समक्ष वे पति का उल्लेख ‘राउर बेटा’ तथा ‘राउर भाई’ शब्दों के द्वारा क्रमशः करती हैं। पति भी अपनी स्त्री का नाम प्रायः नहीं लिया करते। यदि उन्हें अपनी स्त्री को सम्बोधित करना होता है तब “ए बबुआ के भाई” अथवा “सुनतारू हो” आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार पति-पत्नी एक दूसरे को नाम से कभी नहीं पुकारते।

इसी प्रकार से धू अपने सास और ससुर का नाम कदापि नहीं लेती। ‘भवहि’ के लिए अपने ‘भसुर’ का नाम लेना नितान्त निषिद्ध है। माता तथा पिता अपने ज्येष्ठ पुत्र के नाम का उच्चारण कदापि नहीं करते। अतएव जेठे लड़के को पुकारने के लिए कोई स्नेहपूर्ण छोटा सा दूसरा नाम रख लिया जाता है।<sup>२</sup>

## (३) मृतात्मा का नाम न लेना

मृत व्यक्ति का भी नाम लेना निषिद्ध है। इसका कारण यह जान पड़ता है कि मृत का नाम लेने से उसकी स्मृति ताजी हो जाती है। और उसके सुख-दुःखों का स्मरण कर हृदय को कष्ट पहुँचता है। इसलिए उस मृतात्मा का नाम न लेना ही श्रेयस्कर माना जाता है।<sup>३</sup> कुछ आदिम जातियाँ अपने मृतपूर्वजों का नाम इसलिए नहीं लेतीं क्योंकि उन्हें इस बात की सदा आशंका बनी रहती है कि उस मृत व्यक्ति की प्रेत आत्मा (evil spirit) फिर लौट कर चली न आवे। परन्तु भोजपुरी क्षेत्र में ऐसा कोई विश्वास प्रचलित नहीं है।

१. इस सम्बन्ध में बलिया जिले के सोनवर्सा गाँव की एक स्त्री का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत करना कुछ अनुचित न होगा। इस स्त्री के पति का नाम अनन्त राय था जो कलकत्ता में नौकरी करता था। एक बार वह अपनी स्त्री को कलकत्ता ले गया। संयोगवश एक दिन कलकत्ता जैसे महानगर के ‘बड़ा बाजार’ में घूमते समय अनन्त राय का अपनी स्त्री का साथ छूट गया। वह भूल गयी। पुलिस ने उसके पति का नाम उससे पूछा परन्तु उसने बतलाने से इन्कार कर दिया। परन्तु बड़ी चतुरता से उसने बतलाया कि मेरे पति का नाम वह व्रत है जो श्रावण शुक्ला चतुर्दशी को किया जाता है अर्थात् अनन्त। इस प्रकार उसने अपने पति के नाम का उच्चारण किये बिना ही उसे प्रकट कर दिया।

२. मेरी पूजनीया माता जी बड़े भाई साहब (अपने ज्येष्ठ पुत्र) का नाम कदापि नहीं लेती थी। वे सदा उन्हें ‘नन्हू राम’ के नाम से पुकारती थीं। पूज्य पिता जी भाई साहब को सदा ‘बबुआ’ कहा करते थे। मैंने कभी उन्हें नाम लेकर पुकारते नहीं सुना।

३. इन पंक्तियों के लेखक को इस सम्बन्ध में एक सच्ची घटना ज्ञात है जो इस प्रकार है। एक नव विवाहिता युवती का युवक पति अभी हाल ही में संक्रामक रोग से पीड़ित होकर मर गया। कुछ दिनों के बाद उस घर में किसी का विवाह हुआ। विवाह के अवसर पर सभी मृत पुरुषों का नामोल्लेख कर गीत गाने की प्रथा है घर की स्त्रियों ने इसी प्रथा के अनुसार उस मृत युवक के नाम का भी उल्लेख कर दिया जिसे सुनकर उसकी विधवा पत्नी ‘पूका फाड़कर’ रोने लगी। इस प्रकार घर में कुहराम मच गया।



## (४) राजाओं तथा पवित्र आत्माओं का नामोच्चारण न करना

श्रेष्ठ व्यक्तियों, आदरणीय पुरुषों तथा पवित्र आत्माओं का नाम लेना निषिद्ध माना जाता है। जापानी लोग अपने राजा हिरोहितो के नाम का उच्चारण नहीं करते। भारतीय संघ में विलयन के पूर्व देशी राज्यों के राजाओं का नाम आदर तथा श्रद्धा के कारण कोई नहीं लेता था। काशी नरेश “हिज हाइनेस दि महाराजा आफ बनारस” के नाम से अभिहित किये जाते थे। साधारण जनता उन्हें ‘महाराजा’ के नाम से ही जानती थी।

इसी प्रकार से गुरुओं, आचार्यों, महन्तों तथा शंकराचार्यों का भी नाम लेना निषिद्ध माना जाता है। चूँकि ये पूत तथा पवित्र व्यक्ति समझे जाते हैं, अतः इनका नामोल्लेख अनादर सूचक है। शंकराचार्यों के उल्लेख के लिए “अनन्त श्री विभूषित श्री १००८ शंकराचार्य भगवान्” इस पदावली का प्रयोग किया जाता है। शंकराचार्य का नाम लेना अशोभन तथा अशिष्टता समझी जाती है। अतः वे सदा भगवान् !, श्री १००८ या आचार्य पाद के नाम से अभिहित किये जाते हैं।

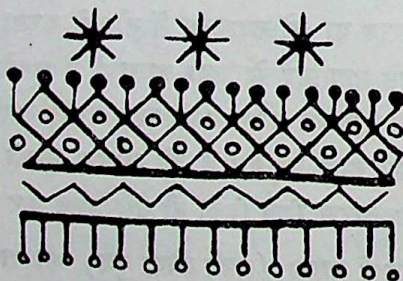
इसी प्रकार से मंदिर के पुजारी तथा मठों के मठाधीश अथवा महन्तों को ‘महाराज’ की सम्मानित उपाधि से अभिहित किया जाता है। गाँवों के लोग अपने दीक्षा-गुरुओं को गुरु जी तथा पुरोहित को ‘उपरोहित’ के नाम से स्मरण करते हैं। इन मठाधीशों, महन्तों, पण्डा-पुजारियों, गुरु, पुरोहितों के पवित्र (अथवा अपवित्र) चरित्र का सामान्य जनता के हृदय पर इतना अधिक प्रभाव होता है कि श्रद्धा से अभिभूत होकर वे उनका नाम कदापि लेने की कल्पना भी नहीं कर सकते।

## (५) देवताओं का नाम लेना निषिद्ध

भारत में देवताओं का नाम लेना निषिद्ध नहीं माना जाता। इसके ठीक विपरीत इनके नामों का स्मरण करना अथवा जपना अक्षय पुण्य का कारण होता है। परन्तु एक ही देवता ऐसे ही हैं जिनका नाम लेना निषिद्ध है और वह हैं हनुमान। इनके विषय में लोगों का ऐसा विश्वास है कि प्रातःकाल में जो व्यक्ति हनुमान् का नाम लेता है उसे दिन भर भोजन से भेंट नहीं होता। गोस्वामी जी ने भी इस तथ्य का प्रतिपादन किया है—

“प्रात लेइ जो नाम हमारा  
सो तेहि कुछ न मिले अहारा॥”

इसलिए प्रातःकाल बन्दर का नाम लेना मना है। हनुमान् बन्दर जाति के शिरोमणि तथा सेनापति हैं परन्तु इनका नामोच्चारण निषिद्ध है।





## अध्याय १३

# मनोरंजन के साधन

० ०

### सामान्य विवरण

गाँवों में मनोरंजन के साधन अत्यन्त सीमित हैं। बच्चों के मनोरंजन का प्रधान साधन खेल है जिसे दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(१) घर के भीतर के खेल (Indoor games)

(२) घर के बाहर के खेल (Outdoor games)

परन्तु वयस्क लोगों के लिए मनोरंजन की कोई विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं होती। वे रामलीला देखकर अथवा किसी मेला में जाकर अपना मनोरंजन किया करते हैं। बारातों में जो नाटक मण्डली अथवा नृत्य मण्डली आती है वह भी मनोरंजन का साधन बन जाती है। कुछ लोग रामायण का सामूहिक पाठ तथा कीर्तन भी किया करते हैं। मनोरंजन के इन साधनों को निम्न श्रेणी में विभक्त किया जा सकता है—

(१) परिच्छेद—घर के बाहर के खेल

(२) परिच्छेद—घर के भीतर के खेल

(३) परिच्छेद—अन्य खेल ताश आदि

(४) परिच्छेद—मेला आदि

(५) भिखरिया का नाच

(६) कीर्तन—रामायण का भजन

(७) लोकनाट्य—रामलीला

## खेल-कूद

### खेल-कूद का महत्त्व

खेल-कूद का महत्त्व—किसी देश की पौरुष शक्ति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस देश के खेल कूदों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीन यूनान तथा रोम साम्राज्य में प्रचलित खेलों से पता चलता है कि इन देशों के लोग कितने वीर तथा शक्तिशाली थे। ग्रीस देश में 'ओलम्पिक' नामक खेल हुआ करते थे जिसमें मानव-शक्ति का भिन्न-भिन्न रूपों में प्रदर्शन किया जाता था। यहाँ 'मेरेथानरेस' के नाम से एक लम्बी दौड़ हुआ करती थी जो बहुत ही परिश्रम साध्य थी। रोमन साम्राज्य के उत्कर्ष के दिनों में रोम नगरी में बने हुए 'कोलोसियम' में बड़े ही मयंकर खेल हुआ करते थे जिनमें शारीरिक शक्ति का पूर्ण प्रदर्शन किया जाता था। शीतप्रधान यूरोप के देशों में स्कीयिंग (skiing) की जो परम्परा है वह उनके अद्भुत साहस और पराक्रम को प्रदर्शित करती है। कहने का आशय केवल इतना ही है कि विभिन्न देशों में प्रचलित भिन्न-भिन्न प्रकार के खेल-कूदों के विषय में अनुसन्धान करने से वहाँ के लोगों की वीरता, पराक्रम, साहस और कष्ट-सहिष्णुता का पता चलता है। किंवदन्ता उनके स्वभाव तथा जातीय चरित्र (National Character) को भी सम्यक् प्रकारेण जाना जा सकता है।

भोजपुरी-प्रदेश में जो खेल-कूद आजकल प्रचलित हैं उनको दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—Outdoor games और Indoor games इनको मैदानी खेल और घरेलू खेल कहा जा सकता है। यहाँ के मैदानी खेलों में कबड्डी,



चिक्का, गुल्ली-डण्डा, ओल्हा-पाती आदि हैं और घर में के खेलों में चन्दा मामा, चिऊंटा मामा, ओका-बोका आदि की गणना की जा सकती है। अवस्था के अनुसार इन खेलों की दो श्रेणी पायी जाती है। (क) बालकों के खेल (२) वयस्कों के खेल। बालकों के खेल के अन्तर्गत गुल्ली-डण्डा, ओका-बोका, ओल्हा पाती आदि आते हैं। वयस्कों के खेल में कबड्डी, चिक्का, दौड़ आदि का समावेश किया जा सकता है। लिंग के विचार से भी इन खेलों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। (१) लड़कों के खेल तथा (२) लड़कियों के खेल। प्रथम के अन्तर्गत वे सभी खेल आते हैं जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है। लड़कियों के खेल में प्रधानतया गोटी खेलना, हरदाविछिया, झाका-झूमर की गणना की जा सकती है।

इस प्रकार अवस्था तथा लिंग के अनुसार भोजपुरी खेलों में विविधता पायी जाती है। बालकों तथा तरुणों के द्वारा प्रधानतया खेल खेले जाते हैं। भोजपुरी क्षेत्र के वृद्ध तथा वृद्धयें अपने बच्चों को कथा और कहानियाँ सुनाती हैं, उन्हें पालने में सुलाकर खेलाती हैं—यही इनका एकमात्र खेल तथा मनोरंजन का साधन है।

### (१) परिच्छेद

इस क्षेत्र में मैदानी खेलों (outdoor games) की ही प्रधानतया पायी है जिनमें कबड्डी, चिक्का, गुल्ली-डण्डा, ओल्हा-पाती, आँख-मिचौनी, कोड़ा-कोड़ा दौड़ आदि प्रसिद्ध हैं। अतः सर्वप्रथम इन्हीं खेलों का यहाँ वर्णन किया जाता है।

(१) कबड्डी—भोजपुरी-प्रदेश का यह सबसे प्रसिद्ध तथा लोक-प्रिय खेल है। इसे लड़के तथा वयस्क समान रूप से खेलते हैं। कबड्डी के इस खेल ने अब अन्तर-राष्ट्रीय 'स्टेटस' को प्राप्त कर लिया है। प्रति चौथे वर्ष संसार के भिन्न-भिन्न देशों में जो अन्तर-राष्ट्रीय ओलम्पिक खेलों का आयोजन होता है उसमें कबड्डी को भी स्थान प्राप्त है। समस्त भारत से चुनकर कबड्डी के खिलाड़ियों की टीम इस खेल में सम्मिलित होती है और प्रायः विजयश्री प्राप्त करती है। इस प्रकार यह खेल बहुत ही लोकप्रिय हो गया है।

कबड्डी के खेल में बालकों का समुदाय दो दलों में विभक्त हो जाता है। प्रत्येक दल में कितने बालक होंगे इसकी कोई संख्या निश्चित नहीं है। इस खेल के प्रत्येक दल में पन्द्रह-बीस लड़के भी हो सकते हैं परन्तु कम से कम दो लड़कों का होना आवश्यक है। खेल के मैदान में दोनों दलों के बीच में एक रेखा खींच दी जाती है। प्रत्येक दल इसी रेखा के एक-दूसरी ओर आमने-सामने खड़ा हो जाता है। हाकी या फुटबाल के खेल की भाँति इन खिलाड़ियों के खड़े होने का कोई स्थान निश्चित नहीं है। वे स्वतन्त्रता-पूर्वक अपने दल में जहाँ भी चाहें खड़ा रहकर खेल खेल सकते हैं।

खेल प्रारम्भ होने के पहिले कौन-सा दल पहिले खेल खेलेंगा इसका निश्चय 'टाँसिंग' (Tossing) के द्वारा किया जाता है अर्थात् किसी सिक्के को आकाश में उछाल कर उसके 'चित्त' अथवा 'पढ़' होने के अनुसार निर्णय होता है। जो दल पहिले खेल को शुरू करता है, उस दल का एक सदस्य, उस 'सौमित्र रेखा' को पार कर दूसरे दल में प्रवेश करता है और उस दल के किसी व्यक्ति को छूकर अपने दल में भागकर चला जाता है। दूसरे दल में जाते समय यह खिलाड़ी कबड्डी, कबड्डी, कबड्डी आदि शब्द की पुनरावृत्ति करता जाता है जिसे "कबड्डी पढ़ाना" कहते हैं। यदि इस शब्द का उच्चारण करते हुए वह दूसरे दल के किसी के अंग का स्पर्श कर यदि अपने दल में भागने में सफल हो गया तब उसकी जीत समझी जाती है और जिस व्यक्ति को उसने छुआ है "वह मर गया" ऐसा घोषित कर दिया जाता है। इस प्रकार 'मरे हुए' व्यक्ति को खेल में भाग लेने का तब तक अधिकार नहीं मिलता जब तक प्रथम दल का कोई खिलाड़ी भी न 'मर जाय'। यदि "कबड्डी" वाले बालक का "साँस टूट" जाय और दूसरे दल वाले अपनी सीमा में ही उसे छू दें तो यह भी "मर जाता" है। इसलिए यह खिलाड़ी इस बात का सदा प्रयास करता है कि साँस टूटने के पहिले ही वह अपने दल में लौटकर वापस चला जाय। एक दल वाले दूसरे दल के 'कबड्डी पढ़ाने वाले' खिलाड़ी को पकड़ने की कोशिस करते हैं जिससे उसकी 'साँस टूट' जाय और वह 'मर जाय'। वह खिलाड़ी दूसरे दल के अधिक से अधिक जितने भी व्यक्तियों को छूकर भागने में समर्थ होता है वह उतना ही उत्तम तथा चतुर समझा जाता है। 'कबड्डी' पढ़ाते समय खिलाड़ी इसके अतिरिक्त कभी-कभी ये बोल भी बोलते हैं।

१—"आम छू आम छू कउड़ी झनक छू।

आम छू, आम छू कउड़ी झनक छू॥"

× + ×

२—आव तानी हो, परहू जनि हो।

टाँग जाई टूटी, कपार जाई फूटी,

लड़िकपन, छूटी॥"



३—“ए कबड़िया रेता, भगत मोर बेटा।  
भगताइन मोरी जोरी, खेलबि हम होरी॥”

× × ×

इसके अलावा नीचे के बोल में कबड़ि खेलने का भी उल्लेख हुआ है।

४—“एक कबड़िया आईलें, तबला बजाइले।  
तबला में पईसा, लाल बगइचा॥”

कबड़ि के खेल में कुछ खिलाड़ी कुछ दूसरे ‘बोल’ भी बोलते हुए पाये जाते हैं। जैसे—

५—“आम झू आम छू, अमवा...छू”

× × ×

६—“चल कबड़ि धाइले, तबला घुड़काइले।  
तबला में पईसा, लाल बगइचा॥”

इन बोलों का कोई अर्थ नहीं होता। विभिन्न शब्दों को लाकर यहाँ जोड़ दिया गया और इस प्रकार एक तुकबन्दी तैयार कर दी गयी है। इन बोलों का अभिप्राय केवल इतना ही है कि दूसरे दल वालों को यह पता लगता रहे कि ‘कबड़ि पढ़ाने वाले’ खिलाड़ी की साँस अभी टूटी नहीं है।

कबड़ि का खेलते समय जब किसी दल के—एक को छोड़कर—सभी खिलाड़ी “मर जाते” हैं तब अन्तिम खिलाड़ी दूसरे दल में चुपचाप खेलने के लिए प्रवेश करता है। इसे ‘गूंगी’ कहते हैं। यह खिलाड़ी बिल्कुल भी नहीं बोलता और मौन रहते हुए दूसरों को छूकर भागने का प्रयास करता है। इस खिलाड़ी के प्रतिद्वन्द्वी इसे पकड़कर ‘गुदराते’ हैं तथा इसे बोलने के लिए बाधित करते हैं। ज्योंही यह बोल देता है उसी समय यह ‘मर गया’ समझ लिया जाता है और इस प्रकार खेल समाप्त होने पर ‘गूंगी’ के विरोधियों की जीत समझी जाती है। परन्तु अब हार-जीत की गणना ‘प्वाइन्ट’ से की जाने लगी है।

कबड़ि का खेल बड़ा स्वास्थ्यवर्धक है। इसमें दौड़ने के कारण पैरों का और घर-पकड़ के कारण हाथों का पूर्ण व्यायाम हो जाता है। तेज दौड़ने से शरीर में स्फूर्ति भी आती है और रक्त का संचार शीघ्रता से होने लगता है। इसमें शारीरिक शक्ति को छोड़कर खेल के किसी अन्य उपादान या सामग्री की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः यह बड़ा ही सस्ता और सरल खेल है। नदी के बालुकामय तट पर खेत में, मैदान में, किसी बाग-बगीचा में कबड़ि का खेल रचाया जाता है। अहीर के बालक अपने गावों को खेतों में चराते समय इस खेल को खेलते हैं। आम के बगीचों की रखवाली करने वाले किसानों के लड़के, अपने बगीचे में ही इस खेल का आयोजन करते हैं। कहने का आशय यह है कि वर्षा-ऋतु को छोड़कर कबड़ि का खेल किसी भी मौसम में और किसी भी मैदान में खेला जा सकता है।

## (२) गुल्ली-डण्डा

कबड़ि के पश्चात् गुल्ली-डण्डा लड़कों का सबसे प्रसिद्ध, प्रचलित तथा लोकप्रिय खेल है। इसे सभी लड़के बड़े प्रेम से खेलते हैं। इस खेल के खिलाड़ी दो दलों में बँट जाते हैं। खेल का प्रारम्भ किस दल की ओर पहिले किया जायेगा इसका निश्चय पैसे को आकाश में उछालकर ‘चित्त और पट’ अर्थात् ‘टासिंग’ के अनुसार किया जाता है। इस खेल में एक या डेढ़ हाथ लम्बा लकड़ी का डण्डा और एक छोटी सी गुल्ली आवश्यक होती है। गुल्ली के दोनों अन्तों को छोलकर कुछ पतला (चांसल) बना दिया जाता है जिससे गुल्ली आसानी से ऊपर उछल सके। फिर जमीन में चार अंगुल गहरा गड्ढा बना दिया जाता है जिसे ‘गुडुपी’ कहा जाता है। कुछ लोग इसे ‘कुपी’ भी कहते हैं।

प्रथम दल का एक खिलाड़ी खेल को आरम्भ करता है। यह अपने हाथ में डण्डा लेकर गुल्ली को गुडुपी के ऊपर रख देता है। फिर उसे डण्डे से गुल्ली को दूर फेंकता है। दूसरे दल के खिलाड़ी उस गुल्ली को ‘लोकने’ का प्रयास करते हैं अर्थात् गुल्ली के जमीन पर गिरने के पहिले अपने हाथों से पकड़ लेते हैं। यदि ऐसा करने में वे समर्थ हो गये तो खेलने वाले लड़के का दाँव चला जाता है अर्थात् वह ‘आउट’ हो जाता है। यदि गुल्ली जमीन पर गिर गयी तो दूसरे दल वाले उसे उठाकर इस हिसाब से फेंकते हैं कि गुल्ली ‘गुडुपी’ में गिर जाय। ऐसा होने पर भी खिलाड़ी ‘आउट’ माना जाता है। गुडुपी की ओर फेंकी गयी



गुल्ली को खिलाड़ी डण्डे से मारता है जिसे दूसरे दल वाले पुनः 'लोकने' का प्रयास करते हैं। गुल्ली जितनी दूर जाकर गिरती है उस दूरी को खिलाड़ी अपने डण्डे की लम्बाई से नाँपता है। सात डण्डा नापने पर उसका एक प्वाइन्ट बनता है जिसे . . . . . कहा जाता है। फिर वह उस गुल्ली को दूसरे बार भी मारता है और जब तक 'आउट' नहीं हो जाता तब तक खेलता रहता है। जब खिलाड़ी का डण्डा गुल्ली को मारते समय जमीन से स्पर्श कर जाता है तब भी उसे 'आउट' हो जाना पड़ता है। ऐसा करने पर दूसरे दल वाले चिल्लाने लगते हैं कि—

**खुरकुच्ची मरले पियले सही।**

अर्थात् चूँकि तुम्हारा डण्डा जमीन छू गया अतः तुम 'आउट' हो गये। गुल्ली को इस अन्दाज से फेंका जाता है जिससे वह गुडुपी में गिर जाय। इस प्रक्रिया को 'पियाना' कहते हैं। इस प्रकार एक के आउट हो जाने के बाद दूसरा खिलाड़ी खेल खेला है। जब दल के सभी खिलाड़ी खेल चुकते हैं तब वे अपने दल के प्रत्येक खिलाड़ी के द्वारा बनाये गये . . . . . को जोड़ लेते हैं। यदि दूसरे दल के खिलाड़ियों की समष्टि के द्वारा बनाये . . . . . कम हुए तो प्रथम दल की जीत और अधिक हुए तो द्वितीय दल की विजय मानी जाती है।

गुल्ली को डण्डे से मारने के सात प्रकार हैं—जिनके नाम निम्नांकित हैं।

(१) एड़ी (२) दोड़ी (३) तिलिया (४) चौरी (५) चम्पा (६) सेख (७) सुतेख।

जब गुल्ली को पैर के बायें या दायें पंजे पर रखकर डण्डे से मारा जाता है तब इसे एड़ी कहते हैं।

बायें हाथ की तर्जनी और कनिष्ठिका अँगुलियों के ऊपर गुल्ली को रख कर इसे मारने की प्रक्रिया 'दोड़ी' कहलाती है। गुल्ली को 'तिलतिला' कर मारना 'तिलिया' के नाम से प्रसिद्ध है। बायें हाथ की मुट्ठी पर गुल्ली को रख कर मारना 'चौरी' और बायें हाथ में रखकर मारना चम्पा कहलाता है। दाहिने हाथ के ऊपरी भाग में गुल्ली को रखकर उसे ऊपर उछालकर मारना सेख और जमीन पर उसे रखकर डण्डे से दूर फेंकना 'सुतेख' की संज्ञा प्राप्त करता है। इस प्रकार सात प्रकार से गुल्ली को डण्डे से मार कर यह खेल खेला जाता है। कुछ लोग 'एड़ी, दोड़ी, जैसे निरर्थक शब्दों के भीतर से अर्थ खोजने का व्यर्थ का प्रयास करते हैं।

जिस दल की जीत होती है उस दल के खिलाड़ी दूसरे पराजित दल वालों को अब 'पदाना' प्रारम्भ करते हैं। प्रत्येक खिलाड़ी गुल्ली को मारता है। गुल्ली जहाँ गिरती है वहाँ से दूसरा खिलाड़ी फिर उसे डण्डे से मारता है। प्रत्येक खिलाड़ी बारी बारी से ऐसा ही करता है। इस प्रकार खिलाड़ी अपने मूल स्थान से गुडुपी-से दो अथवा तीन फर्लांग दूर तक निकल जाते हैं। इसके पश्चात् विजेता पराजित दल वालों को 'पदाना' प्रारम्भ करते हैं। दूसरे दल का खिलाड़ी 'बड्डी' 'बड्डी' कहता हुआ जहाँ से खेल प्रारम्भ हुआ था उस दिशा में दौड़ता है। जहाँ उसकी साँस टूट जाती है वहाँसे दूसरा खिलाड़ी दौड़ना शुरू करता है। इसके बाद तीसरा और चौथा खिलाड़ी दौड़ लगाते हैं। जब ये खिलाड़ी 'बड्डी' 'बड्डी' कहते हुए क्रम से गुडुपी तक पहुँच जाते हैं तब खेल समाप्त समझा जाता है। परन्तु पराजित खिलाड़ी यदि अपने निर्दिष्ट स्थान तक नहीं पहुँच सके तब विजयी दल के खिलाड़ी डण्डे से गुल्ली को मारते हुए फिर उन्हें 'पदाना' शुरू करते हैं। इस प्रकार यह खेल घंटों तक चलता रहता है।

गुल्ली-डण्डा के खेल में हाथ, पैर तथा शरीर के अन्य अंगों का भी व्यायाम होता है अतः यह मनोरंजक होने के साथ ही परिश्रमजन्य खेल है। इसमें प्रयुक्त होने वाली सामग्री सर्वत्र सुलभ होने के कारण धनी तथा निर्धन सभी वर्ग के बालक इसे समान रूप से खेल सकते हैं।

### (३) गूंगा-गूंगी

यह बच्चों का एक खेल है जिसमें उन्हें मौन रहने की साधना करनी पड़ती है। इसीलिए यह 'गूंगा-गूंगी' के नाम से प्रसिद्ध है। सन्ध्या के समय जब दो-चार बच्चे एक साथ बैठ जाते हैं तब वे आपस में मौन रहने प्रतियोगिता करते हैं। इस खेल में इस बात की परीक्षा की जाती है कि कौन लड़का अधिक देर तक मौन व्रत की साधना करता हुआ चुपचाप बैठा रह सकता है। चूँकि बुलबुलापन बच्चों का स्वभाव होता है, अतः यह खेल उनके धैर्य को चुनौती देने वाला है। जब सब लड़के एक साथ आकर बैठ जाते हैं तब उनमें से एक लड़का निम्नांकित पंक्तियों को कह कर सर्वप्रथम बोलने वाले बालक की माँ-बहन से निकट का संबंध स्थापित करता हुआ सभी को मौन रहने की शपथ दिलाता है।



“आदा बादा नून सवादा  
मछरी के कंटा, बैल के सींग।  
जे बोली से गँइयाँ बोली  
सगरी नगरिया बोली॥  
जे बोली ओकरा माई के.....।”

इस शपथ के उच्चारण करने के साथ ही सभी लड़के ‘कोईरी के देवता’ की तरह चुपचाप मौन बैठ जाते हैं। परन्तु यदि कोई बालक चपलतावश बोल उठता है तो माँ की गाली उसी के सिर पड़ती है।

इस खेल का उद्देश्य बालकों के चित्त को एकाग्र करना है। कुछ देर तक चुपचाप मौन बैठने से उनके चित्त की एकाग्रता बढ़ती है जिसका उपयोग वे अपने पठन-पाठन के कार्य में करते हैं।

#### (४) कोड़ा-कोड़ा के खेल

कुछ लड़के गोलाई में जमीन पर बैठ जाते हैं। उनमें से एक बालक अपनी गम्छी (तौलिया) के अगले भाग में गाँठ बाँध कर उसे कोड़े के आकार का बना लेता है। फिर वह बैठे हुए लड़कों के पृष्ठ भाग में गोलाई में दौड़ता है। इसी दौड़ के बीच में वह किसी लड़के के पीछे चुपके से अपने कोड़े को रख देता है। जिस लड़के के पीठ के पीछे वह कोड़ा रखा गया है यदि उसे इस बात का पता लग गया तो वह उस कोड़े को अपने हाथ में लेकर स्वयं दौड़ने लगता है और वह भी यही प्रयत्न करता है कि इस कोड़े को किसी अन्य लड़के के पीछे रख दें। यदि उस लड़के को इस रहस्य का पता नहीं चला और दौड़ने वाला बालक पुनः उसी स्थान पर दौड़कर आ गया जहाँ उसने कोड़ा रखा था तब वह उस कोड़े से उस बालक को पीटने लगता है। दो चार कोड़े मारने के पश्चात् वह उसे अपना कोड़ा उस दण्डित बालक को दे देता है। वह लड़का भी पुनः उसी प्रकार दौड़ता हुआ उस कोड़े को किसी अन्य बालक के पीठ के पीछे छिपा कर रख देता है। बालक के एक राउण्ड दौड़कर आने तक यदि अन्य बालक को अपने पीठ के पास रखे गये कोड़े का पता न चला तो फिर उसको भी कोड़े से ‘मारा’ जाता है। इस प्रकार इस खेल का आनन्द सभी बालक उठाते हैं। परन्तु जो बालक सतर्क रहते हैं, जो सदा यह देखते रहते हैं कि कहीं कोड़ा उनकी पीठ के पीछे तो नहीं रखा जा रहा है वे इस कोड़े की मार से वंचित रहते हैं।

#### (५) जय कन्हैयालाल की

इस खेल में तीन-चार लड़के भाग लेते हैं। जिनकी अवस्था आठ-दस वर्ष की होती है। दो लड़के आमने-सामने खड़े हो जाते हैं और अपने दोनों हाथों को एक दूसरे की ओर फैला देते हैं। उसमें से एक लड़का अपने दाहिने हाथ की तलहथी से अपना मुँह ठोकता है और ‘आँ-आँ-आँ’ की आवाज करता है। इसके बाद वह उस हाथ की तलहथी से अपने बायें हाथ की केहुनी को पकड़ लेता है और अपने दायें हाथ को सीधा रखता है। दूसरा लड़का भी इसी प्रकार करता है। इसके बाद पहिला लड़का अपने बायें हाथ से दूसरे लड़के की हाथ की केहुनी को पकड़ लेता है। दूसरा लड़का भी अपने बायें हाथ से पहिले लड़के के हाथ की केहुनी को पकड़ लेता है। इस प्रकार चार हाथों को मिला देने से तीन खाने बन जाते हैं। तीसरा लड़का अगल-बगल वाले खाने में अपना पैर लटका कर बीच वाले खाने में बैठ जाता है और अपने दोनों हाथों से दोनों लड़कों के सिर को पकड़े रहता है जिससे वह गिर न पड़े। दोनों लड़के अपने हाथों पर उसे बैठा कर उसे घुमाने लगते हैं और यह ‘बोल’ बोलते रहते हैं।

जय कन्हैयालाल की, मदन गोपाल की।

लड़कन के हाथी जोड़ा, बुढ़वन के पालकी॥

इस प्रकार तीसरा लड़का पालकी पर चढ़ने का आनन्द लेता है और उसके दोनों साथी उसे अपने हाथों पर बैठा कर उसे घुमाने में मनोरंजन का अनुभव करते हैं।

#### (६) हमार घोड़ी विरयनी

यह खेल केवल दो लड़कों के बीच में खेला जाता है। दो लड़के अपने दायें और बायें हाथ की तलहथी को इस प्रकार से जकड़ लेते हैं कि दोनों कनिष्ठिका अँगुलियाँ और दोनों अँगूठे एक दूसरे के आमने सामने हो। वे लोग दोनों विचली अँगु-



लियों (मध्यमा) को छोड़कर शेष सभी अँगुलियों को आपस में फँसा देते हैं। वे दोनों मध्यमा अँगुलियों को आगे की ओर निकाले रहते हैं। तथा इनकी घोड़ी की कल्पना कर लेते हैं। एक लड़का दूसरे से पूछता है कि तुम्हारी घोड़ी कौन है। वह जिस अँगुली को घोड़ी बतलायेगा उसे स्थिर करके वह दूसरी बिचली अँगुली से उसे चिड़ाना शुरू कर देता है जिसे 'रिगाना' या 'विराना' कहा जाता है। वह 'विराते' समय निम्नांकित 'बोल' बोलता है।

“तहरा घोड़ी के टाँग टूटल,  
हमार घोड़ी विरवनीः”

इस प्रकार यह खेल कुछ देर तक चलता रहता है।

### (७) घोड़ा के खेल

बालकों को घोड़ा-घोड़ी पर चढ़ने का बड़ा शौक होता है। विवाह आदि में जब भी घोड़े पर किसी दूसरे के साथ उन्हें बैठने का अवसर मिलता है वे अतिशय आनन्द का अनुभव करते हैं। परन्तु जब वास्तविक घोड़ा उपलब्ध नहीं होता तब वे एक लम्बी लाठी को ही घोड़ा के रूप में कल्पित करते हैं। वे इस लाठी को दोनों पैरों के बीच में रखकर उस पर बैठने की कल्पना करते हैं। लाठी का कुछ अंश दोनों पैरों के आगे कुछ निकला रहता है। इसको बालक अपने बायें हाथ से पकड़े रहता है और दाहिने हाथ में चाबुक के रूप में बाँस की एक छड़ी ले लेता है। इसी छड़ी से वह अपने 'घोड़े' को तेज चलने के लिए मारता है और लाठी पर एक चाबुक जमाकर द्रुतगति से स्वयं चलने लगता है। वह 'घोड़ा' को चलाते समय यह 'बोल' कहता है—

“दिन दहाड़े खेत उजाड़े,  
पाँडे जी के घोड़ी।  
पाँडे जी से बढ़ि के निकललि,  
पाँडे जी के जोड़ी॥

इस प्रकार वह लाठीरूपी घोड़े पर चढ़ा हुआ घुड़सवारी के आनन्द का अनुभव करता है। 'सोलो संगीत' की तरह यह खेल केवल एक ही बालक के द्वारा खेला जाता है।

गाँवों में घोड़ा पर चढ़ना धनी, समृद्ध तथा शौकीन लोगों का काम समझा जाता है। अतः बालक, असली घोड़ा न सही; काठ (लाठी) के नकली घोड़े पर चढ़कर ही उसका आनन्द उठाते हैं।

### (८) घुमरी परउवा

यह खेल पाँच छः लड़के मिल कर एक साथ खेलते हैं। वे एक स्थान में गोलार्ध में घूमते जाते हैं। इस प्रकार गोलार्ध में चक्कर काटते-काटते उन्हें चक्कर आ जाता है और वे जमीन पर गिर पड़ते हैं। कुछ देर के बाद वे जमीन से उठकर फिर घूमने लगते हैं और 'घुमरी परउवा' खेलने में मस्त हो जाते हैं। वे चक्कर काटते समय यह गीत गाते जाते हैं।

“घुमरी परौआ, चाक डोलौआ।  
घुमरी परौआ, चाक डोलौआ॥  
चाक डोले चक बम्बक डोले।  
खरवा पीपर कबहुँ ना डोले॥

### (९) घोड़ी का खेल

छोटे-छोटे बच्चे इस खेल को बड़े प्रेम से खेलते हैं। इसे खेलते समय कोई लड़का अपने दोनों जंघों के बीच में एक लम्बी लाठी रख लेता है जिसके अगले भाग को वह अपने बायें हाथ से पकड़े रहता है। दाहिने हाथ में बाँस की एक छड़ी लेकर वह अपने 'घोड़ी' को पीटता है और उसे आगे तेज चलने के लिए प्रेरित करता है। लड़का लाठी को पकड़े हुए धीरे धीरे आगे चलता रहता है और इस प्रकार अपने कल्पित 'घोड़ी' पर चढ़ने के काल्पनिक सुख का अनुभव करता है। वह घोड़ी पर चढ़े हुए इस गीत को भी गाता जाता है।

“दिन दहाड़े खेत उजाड़े,  
पाँडे जी की घोड़ी।



पाँड़े जी से बड़ि के निकलल  
पाँड़े जी की जोड़ी॥”

## (२) परिच्छेद

### घर के भीतर के खेल

घर के भीतर के खेलों में उन क्रीड़ाओं की गणना की जाती है जो घर के भीतर आनन्द से बैठकर खेले जाते हैं। जैसे ओका-बोका, झाका-झूमरि और अन्हर-चटकी आदि। इन खेलों के लिए विशेष स्थान की आवश्यकता नहीं होती बल्कि वे मकान के किसी एक कमरे में बैठ कर खेले जा सकते हैं। बरसात के दिनों में जब बाहर मैदान में निकल कर खेलना सम्भव नहीं हो सकता, तब ये खेल घर के भीतर खेले जाते हैं। इन खेलों में विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता। अतः सभी प्रकार के बालक इसमें आनन्दपूर्वक भाग लेते हैं।

#### (१) ओका-बोका का खेल

यह एक बड़ा ही मनोरंजक खेल है। इसमें दस-पाँच लड़के एक साथ बैठते हैं। ये अपने दोनों हाथों की अँगुलियों से जमीन को छूते हुए अपनी हथेली को ऊपर उठाये रहते हैं। फिर उस दल का नेता प्रत्येक बालक के हाथों को अपने हाथ से स्पर्श करता हुआ यह कहता है—

“ओका बोका तीन तड़ोका,  
लउवा लाठी, चन्दन काठी।  
बाग में बगउवा डोले,  
सावन में करइला फूले,  
ओ करइला के नाव का  
इजइल, बिजइल, पानवा, फूलवा  
ढोड़िया पचक।

पहिले यह अगला बालक ‘ओका’ कहकर दूसरे बालक के हाथ को स्पर्श करता है। फिर ‘बोका’ कह कर तीसरे बालक के हाथ को छूता है। इसी प्रकार वह उपर्युक्त गीत गाता हुआ प्रत्येक बालक के हाथ को स्पर्श करता जाता है। जब गीत का अन्तिम शब्द ‘पचक’ आता है, तब वह जिस बालक के हाथ को उस समय छूता है उसे जमीन पर पिचका देता है। फिर जिस बालक का हाथ जमीन पर पिचकाया गया रहता है वह इस खेल को शुरू करता है और पुनः ‘ओका-बोका’ कहने का क्रम जारी कर देता है।

बालकगण इस खेल को मनोरंजन के लिए खेला करते हैं। इसमें आठ-दस वर्ष की आयु वाले बच्चे ही भाग लेते हैं।

#### (२) झाका-झूमरि—

यह लड़कियों का बड़ा ही लोकप्रिय खेल है। इस खेल में नृत्य का भी आयोजन रहता है। अतः मनोरंजन की मात्रा इससे अधिक बढ़ जाती है। आठ-दस लड़कियाँ एक दूसरे के हाथ को पकड़कर गोलाई में खड़ी हो जाती हैं। वे कभी आगे आती हैं, कभी पीछे जाती हैं। इस प्रकार वे झूमती रहती हैं। फिर वे गोलाई में बड़े जोरों से झूमती हैं और निम्नलिखित गीत गाती हैं।

“एक हाड़ी झिकड़ा, बँडैरी लागल धूआ।  
सासु पकवली, गल गल पूआ।  
अपने खइली घिआवाहा पूआ।  
हमरा के दिहली तेलहवा पूआ।  
ना खाइबि पूआ, खेलबि जूआ,  
ना खाइबि पूआ, खेलबि जूआ।”



यह क्रम बहुत देर तक चलता रहता है। भोजपुरी गाँवों में 'झाका झूमरि' का खेल बहुत ही प्रसिद्ध है। जब दो तीन स्त्रियाँ आपस में बातचीत करती हुई एक दूसरी को झकझोरती हैं तब कहा जाता है कि—

### का झाका झूमरि कहल बाड़ू लोग।

ऐसा ज्ञात होता है इस खेल पर ब्रज की रास लीला का प्रभाव पड़ा है। इस खेल में भाग लेने वाली लड़कियों की संख्या जितनी अधिक हो उतना ही अच्छा है।

झूम झूम कर खेलने के कारण ही इसका नाम 'झाका-झूमरि' पड़ गया है।

अन्तिम दोनों पंक्तियों—'ना खाइबि पूआ खेलबि जूआ' को गाती हुई लड़कियाँ बड़ी द्रुतगति से गोलाई में नाचने लगती हैं। उनके पैरों में गति और हाथों में जोर आ जाता है और वे एक दूसरे का हाथ पकड़ कर नृत्य का अभियन करती हैं।

### तार काटो तरकुल काटो

छोटे बच्चों का यह खेल भी बड़ा मनोरंजक होता है। पाँच-सात बच्चे एक जगह एकत्र हो जाते हैं। उनमें से कोई एक लड़का अपने बायें पैर की एड़ी को जमीन में टिका कर पैर के अँगूठे को ऊपर उठाये रहता है। फिर वह इसी अँगूठे को अपने बायें हाथ से पकड़ कर मुट्ठी बाँध लेता है। फिर वह दूसरे लड़कों को अपने बायें हाथ के अँगूठे को पकड़ कर मुट्ठी बाँधने के लिए कहता है। इस प्रकार सभी लड़के एक बाद के एक अपनी मुट्ठी बाँधते जाते हैं। जब मुट्ठियों का एक लम्बा और ताड़ के समान ऊँचा-एक पेड़ सा बन जाता है तब पहिला लड़का अपने हाथरूपी तलवार या टांगी से उसे काटने लगता है। ऐसी कल्पना की जाती है कि ताड़ का यह कल्पित वृक्ष कुल्हाड़ी से काटा जा रहा है। ऐसा करते समय वह इन पंक्तियों का बड़े प्रेमयुक्त स्वर से उच्चारण करता या गाता है—

तार काटो तरकुल काटो  
काटो रे बन खाजा।  
हाथी पर के घुघुरा  
चमकि चले राजा॥  
राजा के दोलइया  
भइया के दोपाटा।  
हॉच मारो, घीचि मारो  
मूसर अइसन बाचा॥

कुछ लड़के बाचा के स्थान पर बेटा भी कहते हैं। वे यह गीत गाते हुए एक-एक मुट्ठी को हटाकर अलग करते जाते हैं। जब सब मुट्ठियों को "काट" दिया जाता है तब खेल खतम हो जाता है।

### घुघुरा माना

यह खेल बच्चे अपनी माता के साथ खेलते हैं। इसमें एक वर्ष से लेकर पाँच-छह वर्ष के बच्चे ही भाग लेते हैं। इसमें माता का प्रधान भाग होता है। माता अपने बच्चों को साथ में लेकर किसी चारपाई पर लेट जाती है। फिर वह अपने दोनों पैर के घुटनों को मोड़ लेती है और उन घुटनों पर किसी छोटे बच्चे बैठा देती है। इसके पश्चात् वह अपने घुटने को धीरे धीरे ऊपर-आकाश की ओर उठाती है। घुटने के साथ ही उस पर बैठा हुआ छोटा बच्चा भी ऊपर की ओर उठता जाता है। माता अपने दोनों हाथों से उस बच्चे को पकड़े रहती है जिससे बच्चा कहीं गिर न पड़े। वह अपने दोनों पैर के घुटने को ऊपर उठाती और नीचे गिराती रहती है जिससे बालक को बड़ा आनन्द आता है। इस खेल को करते समय वह माता निम्नांकित गीत भी गाती रहती है जिससे बच्चे का मनोरंजन भी होता रहता है:—

"गलर-गलर पूआ पाकेला।  
चिलर खोंइछा नाचेला॥  
जो रे चिलरा खेलत खरिहान।  
ले अइहे तिलकिया धान॥



ओही धान से चिउरा कूटबि।

बाभन, बिमुन नेवता पठइबि॥

बाभन के पूतवा दीही असीस।

बबुआ जीअसु लाख बरीस॥

बच्चों को मिठाई और पूआ खाना अच्छा लगता है। चिउरा का बुझना भी उनको प्रिय है। अतः माता भोजन की इन वस्तुओं का उल्लेख इस गीत में करती है।

एक लेखक ने इस गीत में गंभीर अर्थ खोज निकालने का प्रयत्न किया है परन्तु उनका यह प्रयास उतना ही निष्फल है जितना बालू से तेल निकालना। सच तो यह है कि इन गीतों में बच्चों के मनोरंजन के लिए शब्दों की योजना की गयी है।

इस खेल में प्रयुक्त होने वाला दूसरा खेल इस प्रकार है जिसमें बच्चे के मामा के आने की सूचना दी गयी है।

“घुघुआ माना उपजे धाना।

धनि धनि अइले बबुआ के मामा।

बबुआ के नाक कान दुनो छेदइबो,

सोनरा के देबो भर सूप धाना॥

सोनरा के पूतवा दीही असीस।

बबुआ जीअसु लाख बरीस॥

छोटे बच्चों के नाक और कान छेदने की प्रथा है। इस कार्य को गाँव का सोनार सम्पादित करता है। माता अपने पुत्र के दीर्घ आयुष्य की कामना करती हुई कहती है मेरा प्यारा बच्चा एक लाख वर्ष तक जीता रहे।

इसी खेल में यह तीसरी गीत भी गायी जाती है जो इस प्रकार है।

“घुघुआ माना मनेर से।

सठिया के चाउर डेढ़ सेर॥

बबुआ खाले दूध-भातावा।

बिलइया चाटें पातावा॥

पातवा उधिआई गइल।

बिलइया लजाई गइल॥”

अन्त में माता अपने ऊपर उठायें हुए दोनों घुटनों को धीरे-धीरे नीचे ले आती है और यह ‘बोल’ बोलती है।

“नयी भीति उठेले, पुरानी भीति गिरेले।

सँभरले रहिहे रे बुढ़िया माई॥

यहाँ नयी भीति का अर्थ नयी पीढ़ी से लिया जा सकता है परन्तु यह क्लिष्ट कल्पना मात्र है।

### घुघुआ माना

यह खेल दिन अथवा रात्रि में कभी भी खेला जा सकता है जिसमें चार-पाँच वर्ष से कम आयु के बालक ही भाग ले सकते हैं। गृहकार्य से अवकाश प्राप्त करने पर माता अपने छोटे बच्चे के साथ यह खेल खेलती है। वह चारपाई पर सोकर पहिले अपने दोनों घुटनों को मोड़ लेती है। फिर वह बच्चे को अपने घुटनों पर बैठा कर अपने पैरों को धीरे धीरे ऊपर उठाती है। छोटा बच्चा ऊपर उठने पर कहीं गिर न जाय अतः वह उसे अपने दोनों हाथों से पकड़े रहती है। माता अपने घुटनों को कभी ऊपर उठाती और कभी धीरे से नीचे गिराती है। इससे बच्चों को झूले पर चढ़ने का आनन्द मिलता है। बच्चों का मनोरंजन करने के लिए माता निम्नांकित गीत भी गाती जाती है—

अरर बरर पूआ पाकेला,

चीलर खोंइछा नाचेला।

चीलर भइले थोर,

मोर बाबू के मुंहवा गोर॥



इसके साथ ही मातायें इस गीत को भी प्रायः गाती हैं—

“हाल हाल बबुआ,  
कुरुई में ठेबुआ।  
माई अकसरुआ,  
बाप दरबरुआ॥  
हाल हाल बबुआ॥

माता बच्चे को अपने पैर रूपी पालने पर झुलाती हुई उसे आनन्द प्रदान करती है। बच्चा ध्यान से गाने को सुनता है और उसके स्वर-साम्य के माधुर्य के कारण धीरे-धीरे निद्रा देवी की गोद में चला जाता है। बिहार के सारन जिले में इस अवसर पर निम्नांकित गीत गाया जाता है—

“गलर गलर पूआ पाकेला  
चिलरा खोंइछा नाचेला।  
जोरे चिलरा खेत खरिहान,  
ले अइहे तिलकिया धान।  
ओही धान से चिउरा कुटाइबि,  
वाभन विमुन नेवता पठाइबि।  
बभना के पूतवा दीही असीस,  
बबुआ जीअसु लाख बरीस॥”

बच्चों के लिए मामा बड़ा ही प्रिय सम्बन्धी होता है। वह जब भी अपने बहिन के यहाँ जाता है अपने भानजों के लिए प्रचुर मात्रा में मिष्ठान्न लाता है। इसीलिए बच्चे मामा के आगमन पर बहुत प्रसन्न होते हैं। नीचे के गीत में इसी का उल्लेख पाया जाता है।

“घुघुआ माना उपजे धाना,  
धनि धनि अइले बबुआ के मामा।  
बबुआ के नाक-कान दूनू छेदवइबों,  
सोनरा के देबो भरसूप धाना।  
सोनरा के पूतवा दीही असीस  
बबुआ जी उसु लाख बरीस॥”

बच्चों को दूध-भात खाना बड़ा प्रिय है। वे बड़े प्रेम से इसे खाते हैं। इस तथ्य का उल्लेख नीचे के गीत में है—

“घुघुआ माना मनेर से  
सठिया के चउरा डेढ़ सेर।  
बबुआ खाले दूध भातवा,  
बिलइया चाटे पातवा।  
पातवा उधिआइ गइल,  
बिलइया लजा गइल॥”

माता अपने घुटनों पर बच्चों को बैठाकर जब घुटनों को ऊपर-नीचे करती रहती है उसी समय ये गीत गाये जाते हैं। चूँकि इन सभी गीतों का प्रारम्भ ‘घुघुआ माना’ शब्दों से होता है। अतः इस खेल का नाम ही ‘घुघुआ माना’ पड़ गया है।

खेल के अन्त में माता अपने पैरों को धीरे-धीरे ऊपर उठाकर फिर उन्हें नीचे गिराती हुई यह गाती है—

नई भीति उठेले  
पुरानी भीति गिरेले  
सम्भरिहे रे बबुआ।”

इस प्रकार अपने घुटनों को नीचे गिरा कर वह खेल को समाप्त कर देती है।



### चिऊँटा हो चिऊँटा का खेल:

इस खेल में पाँच-सात लड़के भाग लिया करते हैं जिनकी आयु पाँच से दस-बारह के बीच होती है। वे गोलाई में बैठ जाते हैं। प्रत्येक लड़का एक दूसरे के कानों को अपने दायें तथा बायें दोनों हाथों से पकड़ कर अपनी ओर खींचता है। ऐसा करने में ये लोग आगे और पीछे झुकते रहते हैं। एक दूसरे का कान जोर से खींचते हुए लड़के यह 'बोल' बोलते हैं—

“चिऊँटा हो चिऊँटा  
मामा के गगरिया,  
काहे फोरल हो चिऊँटा।  
मामा के झगरवा,  
छोड़ाव हो चिऊँटा॥”

ए चिऊँटा! तुमने मामा की गगरी क्यों फोड़ी? इतना कहते ही लड़के एक दूसरे का कान छोड़कर मामा और मामी का झगड़ा छुड़ाने लगते हैं। अन्त में लड़के आपस में 'लाता-लूती' करने लगते हैं और इस प्रकार से खेल समाप्त हो जाता है।

'चिऊँटा हो चिऊँटा' का यह खेल बच्चों में बड़ा लोकप्रिय है। एक दूसरे का कान उभेठने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है और 'लाता-लूती' में इसकी समाप्ति इसको पराकाष्ठा पर पहुँचा देती है। यह खेल दो लड़कों के बीच में भी हो सकता है। अतः जहाँ भी दो-तीन बच्चे बैठ जाते हैं वहाँ इस खेल को प्रारम्भ कर देते हैं।

### आँखि मुदौवल

इस खेल में आठ-दस लड़के भाग लेते हैं। इनमें से किसी एक बालक को 'चोर' की उपाधि प्रदान की जाती है। यह 'चोर' बालक किसी दीवाल अथवा पेड़ की ओर खड़ा होकर अपनी आँखों को दोनों हाथों से ढक देता है। शेष लड़के भागकर किसी घर अथवा पेड़ की आड़ में छिप जाते हैं। थोड़ी देर के बाद वह 'चोर' अपनी आँखों को खोलकर अपने साथियों को खोजता है। जिस बालक को वह खोजकर पकड़ने में समर्थ होता है वही बालक 'चोर' की संज्ञा को प्राप्त करता है। फिर वह उसी प्रकार अपनी आँखों को मूंद कर, खड़ा रहकर खेल को चालू करता है। इस खेल के बोल हैं—

(१) खोल केवाड़ी झकझूमरी  
ताहारा भइया लेअइले चूनरी।  
(२) ए बनवारी खोल केवाड़ी,  
ताहारा घर में लँहगा-साड़ी।  
आन्हर कनिया बूढ़ महतारी,  
दुनो रोवे पारा-पारी॥

### आँखि मुदौवल

इस खेल में किसी दीवाल को कोठा मान लिया जाता है। चोर लड़का दीवाल की ओर अपना मुँह करके अपनी आँखों को दोनों हाथों से बन्द कर लेता है और अपने मुँह को दीवाल से 'सटाये' (चिपकाये) रहता है। शेष लड़के यह 'बोल' बोलते हुए भाग कर कहीं छिप जाते हैं। थोड़ी देर के बाद चोर लड़का अपनी आँखें खोलता है और उन लड़कों में से किसी एक का पता लगा लेता है। वह जिस लड़के को छू देता है वही 'चोर' बन जाता है और वह भी फिर पहिले लड़के के समान अपनी आँखें बन्द कर खेल खेलता है। इस क्रीड़ा का 'बोल' है—

“खोल केवाड़ी झकझूमरी।  
ताहार भइया ले अइले चूनरी॥”  
× × ×  
“ए बनवारी खोलउ केवाड़ी,  
तहरा घर में लँहगा सारी।  
आन्हर कनिया, बूढ़ महतारी,  
दुनो रोबें पारा-पारी॥”



## अन्हर चटकी

यह एक बड़ा ही मनोरंजक खेल है। इस खेल में आठ-दस लड़के इकट्ठे हो जाते हैं। उनमें से एक लड़का किसी दूसरे लड़के की दोनों आँखों को अपने हाथों से बन्द कर देता है। फिर शेष लड़के अपनी तर्जनी और मध्यमा अँगुलियों के द्वारा उसके सिर में ठोकर मारते हैं और उससे पूछते हैं कि बतलाओ तुम्हें किसने ठोकर मारा। अनवरत ठोकरों का शिकार वह लड़का दोनों आँखों के बन्द होने के कारण किसी बालक का नाम बतलाने में असमर्थ होता है। अतः वह किसी ठोकर मारने वाले लड़के का हाथ पकड़ लेता है और उसे अपराधी साबित हो जाने पर उसी की आँखें बन्द कर दी जाती हैं और अन्य लड़के उसे ठोकर मारने लगते हैं। यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक वह किसी ठोकर मारने वाले 'अपराधी' को पहिचान न ले अथवा पकड़ न ले। चूँकि एक बालक दूसरे को ठोकर मारने में आनन्द का अनुभव करता है अतः इसे बड़े चाव से खेलता है।

## अन्हर चटकी

इस खेल में अनेक लड़के भाग लेते हैं। सब लड़के एक साथ बैठ जाते हैं और किसी एक लड़के की आँखों को अपने दोनों हाथों से ढँक लेते हैं। फिर कुछ लड़के उसके सिर पर अपनी अँगुलियों से ठोकर मारते हैं। यदि उस लड़के ने ठोकर मारने वालों में से किसी को पकड़ लिया तब पकड़े गये लड़के को उसके सिर पर ठोकर मारना शुरू कर दिया जाता है। यही क्रम घंटों चलता है रहता है। यह खेल लड़कों का बड़ा ही प्रिय खेल है क्योंकि इसमें सभी को बारी-बारी से एक दूसरे को ठोकर मारने का अवसर मिलता है। जब तक ठोकर मारने वाला असली लड़का नहीं पकड़ा जाता तब तक उसी लड़के पर मार पड़ती रहती है। चूँकि इस खेल में बालक की आँखें मूंद कर; उसे अन्धा बनाकर, उसके सिर पर चटकन अर्थात् चपत से मारा जाता है इसीलिए इस खेल को "अन्हर चटकी" कहा जाता है।

## लाता-लूती

भोजपुरी में 'लात' का अर्थ पैर होता है। अतः 'लाता-लूती' का अर्थ हुआ पैर से झगड़ा करना अथवा खेल खेलना। इस खेल में एक साथ केवल दो ही बालक भाग लेते हैं। दो बालक जमीन पर अथवा चारपाई पर आमने-सामने पैरों को फैला कर बैठ जाते हैं। जब खेल शुरू होता है तब एक बालक दूसरे को अपने पैरों से मारता है। दूसरा बालक भी अपने पैरों को अन्धा-धुंध चलाता है। इस प्रकार एक दूसरे पर पाद-प्रहार करते हैं। इस खेल में पैर के द्वारा दूसरे बालक के पैरों पर ही हल्की सी चोट की जाती है जिसका उद्देश्य प्रहार करना नहीं बल्कि मनोरंजन प्रदान करना होता है। इन पंक्तियों के लेखक को लाता-लूती का खेल बड़ा प्रिय था। आज भी इस खेल का प्रचलन है परन्तु धीरे-धीरे इसका ह्रास हो रहा है।

## (३) परिच्छेद

## ताश का खेल

यह खेल ताश के पत्तों से खेला जाता है। इन पत्तों में पान, ईंट, राजा, रानी आदि का चित्र बना रहता है। ताश खेलने के अनेक प्रकार हैं। कुछ लोग पैसा दाँव पर लगा करके ताश खेलते हैं जिसे जुआ का दूसरा रूप ही समझना चाहिए। ताश का खेल बच्चों में बड़ा ही लोकप्रिय है तथा इसे खेलना सभी जानते हैं। अतः इसके विशेष वर्णन की यहाँ आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

कुछ लोग रात्रि में तुलसीदास का रामायण सामूहिक रूप में गाकर अपना मनोरंजन करते हैं। इसी प्रकार से किसी मंदिर में सामूहिक हरिकीर्तन भी किया जाता है। रामलीला देखकर भी मनोरंजन किया जाता है।

## (४) परिच्छेद

## मेला

भोजपुरी प्रदेश में प्रायः अधिकांश जिलों में किसी पर्व के अवसर पर मेला लगता है। मेला शब्द सम्मेलन या मेलन शब्द का अपभ्रंश रूप है। यह शब्द 'मिलि संगमे' धातु से बना हुआ है जिसका अर्थ है आपस में मिलना। प्राचीन काल में इन मेलों का बड़ा महत्त्व था क्योंकि इस अवसर पर इस महान् देश में अनेक प्रान्तों से आये हुए साधु, सन्तों, महात्माओं तथा



तपस्वियों के दर्शन करने का सुयोग प्राप्त होता था। आज भी इन मेलों का महत्त्व कुछ कम नहीं है क्योंकि इस समय पर ही जनता के धार्मिक जीवन को उसके स्वामाविक रूप में देखा जा सकता है।

इन मेलों को प्रायः दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—(१) धार्मिक मेला तथा (२) व्यावसायिक मेला। प्रथम कोटि में उन मेलों की गणना की जाती है जो किसी पर्व या त्यौहार के समय लगते हैं और जिनका उद्देश्य शुद्ध धार्मिक है। व्यावसायिक मेला उनको कहा जा सकता है जिनकी योजना किसी व्यवसाय अथवा व्यापार की सिद्धि के लिए की जाती है। भोजपुरी क्षेत्र में प्रायः धार्मिक मेले ही अधिक पाये जाते हैं परन्तु व्यावसायिक मेलों की भी कुछ कमी नहीं है। यहाँ जनपद के क्रम से कुछ प्रधान तथा लोकप्रसिद्ध मेलों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

### (१) बलिया

इस जनपद में प्रधानतया प्रायः तीन मेले लगते हैं—

(१) भृगुक्षेत्र का मेला (२) धनुषयज्ञ का मेला और (३) शंकरपुर का मेला।

भृगुक्षेत्र का मेला बलिया नगर के पास गंगा के तट पर कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को लगता है। यह 'ददरी का मेला' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। दर्दर मुनि भृगुजी के शिष्य थे। अतः इन्हीं के नाम से यह मेला समधिक लोकविश्रुत है। कार्तिक पूर्णिमा के दिन गंगा में स्नान करना बड़ा ही पुण्यकारक समझा जाता है। अतः इस दिन गंगा-स्नान करना एक आवश्यकिय धर्म है। इस जिले के सुदूर स्थानों से ग्रामीण जनता बलिया नगर में आती है और प्रातःकाल पतित पावनी भागीरथी में स्नान कर 'गंगा मइया की जय' का तार स्वर से उद्घोष करती है। स्नान करने के पश्चात् गंगाजल को लेकर श्रद्धालु जनता भृगुजी के मंदिर में जल चढ़ाती तथा इनके साथ ही उनके शिष्य दर्दर मुनि का भी दर्शन करती है।

इस अवसर पर गंगा के किनारे मीलों तक मेला लगता है जो लगभग पन्द्रह दिनों तक चलता रहता है। इस मेले में घोड़े, गाय, बैल, बकरी आदि अनेक जानवरों की बिक्री होती है। कार्तिक का महीना किसानों के लिए, खेती के लिए, बड़ा उपयोगी है। अतः अनेक जिले से किसान यहाँ आकर उत्तम नस्ल के बैलों को खरीदते हैं। इस प्रकार विशेषकर बैलों की खरीददारी के लिए यह मेला बहुत प्रसिद्ध है। जानवरों के अतिरिक्त यहाँ कपड़ा, वर्तन, गृहस्थी के सामान आदि की भी बिक्री होती है। गंगा के बालुकामय तट पर लगा हुआ यह मेला बड़ा ही भव्य तथा हृदयकर्षक होता है।

### (२) धनुष यज्ञ का मेला

यह मेला बलिया नगर बीस मील पूर्व (३० किलोमीटर पूर्व) बैरिया गाँव से थोड़ी दूर पर अगहन सुदी पंचमी को लगता है। आज से लगभग एक सौ वर्ष पहिले सुदिष्ट गोसाईं नाम के एक स्थानीय महात्मा थे जो अपने आश्रम पर 'रामलीला' के अभिनय की योजना किया करते थे। धनुषयज्ञ के अवसर पर यहाँ बड़ी भीड़ हुआ करती थी जिसने कालान्तर में मेले का रूप धारण कर लिया। यह ददरी के मेले की अपेक्षा बहुत छोटा होता है। इसमें जानवरों की बिक्री नहीं होती है। परन्तु ग्रामीण उपयोगी वस्तुएँ—जैसे वर्तन, लकड़ी का दरवाजा, कपड़ा आदि—बिका करती हैं। यह मेला भी दस-पन्द्रह दिनों तक चलता रहता है।

### (३) शंकरपुर का मेला

यह मेला बलिया नगर से दो-तीन मील की दूरी पर चैत्र शुक्ल नवमी—जिसे रामनवमी कहा जाता है—के अवसर पर लगता है। यह केवल एक दिन ही रहता है। इस मेले में आये हुए लोग मिष्ठान्न आदि खरीदते हैं और दिन भर मेला घूम कर शाम को घर जाते हैं। इस मेले में भेड़ों की लड़ाई—मेथों का मल्लयुद्ध—अपनी विशेषता रखता है। चूँकि यह मेला चैत्र मास में लगता है अतः यहाँ चैता-गीत को गाने वाले गवैयों का दंगल भी देखने योग्य होता है।

### सोनपुर का मेला

सारन—यह मेला बिहार राज्य के सारन जिले में कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को होता है। चूँकि इसकी स्थिति सोनपुर कस्बे के पास है अतः यह सोनपुर का मेला कहा जाता है। यहाँ हरिहरनाथ बाबा (शिव) का मंदिर है जहाँ लाखों यात्री मंदिर में दर्शन के लिए जाते हैं। अतः यह "हरिहर-क्षेत्र का मेला" के नाम से अधिक प्रसिद्ध है।



सोनपुर के मेले का संसार में दूसरा स्थान है। यह समस्त भारतवर्ष में सबसे बड़ा तथा प्रसिद्ध मेला है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ हाथी बिकने के लिए आते हैं। इस मेले में मद-मस्त, झूमते हुए हाथियों की पंक्तियों का दृश्य बड़ा ही सुन्दर तथा नेत्रकर्षक होता है। इसके अतिरिक्त यहाँ घोड़ा, गाय, बैल, बकरी, भेड़, तोता-मैना आदि पशु-पक्षी बिकते हैं। यहाँ पर भारतवर्ष के समस्त राज्यों से व्यापारी अपनी विविध वस्तुओं को लेकर आते हैं जिनमें कपड़ा, बर्तन, लकड़ी, सोना, चाँदी आदि वस्तुओं की प्रधानता रहती है। कहने का आशय यह है कि जितनी भी पण्य वस्तुयें हो सकती हैं वे सभी इस महान् मेले में उपलब्ध होती हैं।

**आरा (भोजपुर)**—बिहार राज्य के आरा (वर्तमान भोजपुर) जिले में 'बरहपुर' का प्रसिद्ध मेला लगता है। उत्तर रेलवे के रघुनाथपुर रेलवे स्टेशन पर उतर कर इस स्थान को जाते हैं। यह मेला फाल्गुन मास की महाशिवरात्रि के दिन लगता है। यहाँ शिव का एक मंदिर है। बरहपुर गाँव गंगा के किनारे बसा हुआ है। अतः यात्री इस दिन गंगा की पवित्र धारा में स्नान करके शिवजी का दर्शन करते हैं। यात्री लोगों की अपार संख्या के कारण इस छोटे से मंदिर में बड़ी भीड़ हो जाती है जिससे अनेक वृद्ध व्यक्ति कुचल जाते हैं। यहाँ बैलों का बड़ा भारी मेला होता है जिन्हें खरीदने के लिए दूर दूर से लोग आते हैं।

**बक्सर**—इसी जिले के बक्सर नगर में गंगा के किनारे रामरेखा घाट पर माघ मास की मकर संक्रांति के अवसर पर बहुत बड़ा मेला जुटता है। इस समय आस पास के जिलों के लोग यहाँ गंगास्नान के लिए आते हैं। यह मेला प्रधानतया धार्मिक है क्योंकि यहाँ आने वाले यात्रियों का एकमात्र उद्देश्य गंगा की पवित्र धारा में अवगाहन कर पुण्य संचय करना होता है। बक्सर महर्षि विश्वामित्र की तपोभूमि माना जाता है। यहाँ पर भगवान् राम ने ताड़का का वध किया था। आजकल यहाँ पर विश्वामित्र के नाम पर एक डिग्री कालेज भी स्थापित है। अतएव यह स्थान बड़ा पवित्र माना जाता है। यही कारण है कि मकर-संक्रांति के अवसर पर यहाँ गंगा-स्नान का बड़ा महत्त्व है।

**बिहटा**—यह स्थान आरा नगर से पूर्व दिशा में बीस-पचीस मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ विहटेश्वरनाथ (शिव) का मंदिर है जहाँ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को मेला लगता है। यह भी एक धार्मिक मेला है जहाँ केवल भगवान् शिव का दर्शन ही यात्रियों का एक मात्र प्रयोजन होता है।

**वाराणसी**—वाराणसी भारतवर्ष का एक प्रधान तीर्थस्थान है जहाँ प्रदेश के प्रत्येक भाग से हजारों की संख्या में यात्री प्रतिदिन आया करते हैं। इस प्रकार यहाँ गंगा के किनारे प्रतिदिन मेला लगा रहता है। फिर भी यहाँ कुछ विशिष्ट मासों में मेला लगा करते हैं।

**रथयात्रा का मेला**—आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को यहाँ रथ-यात्रा का मेला लगता है जो लगातार तीन दिनों तक चलता रहता है। वाराणसी नगर में रथ-यात्रा चौमुहानी पर इस मेले का आयोजन होता है जहाँ बीस फीट ऊँचा लकड़ी का बना हुआ रथ रखा है। इसी रथ पर भगवान् जगन्नाथ अपने भाई बलराम और बहिन सुमद्रा के साथ बैठाये जाते हैं। इस रथ में लम्बे-लम्बे रस्सों को लगाकर इसे खींचा जाता है जिसमें सहस्रों की संख्या में लोग भाग लेते हैं। भगवान् के रथ को खींचना बड़ा ही पुण्य का कार्य माना जाता है। उड़ीसा राज्य के पुरी नगर में रथयात्रा का भारत-प्रसिद्ध मेला लगता है परन्तु उसके पश्चात् काशी के इस मेले का ही स्थान है।

**सारनाथ का मेला**—यह स्थान वाराणसी से दस मील की दूरी पर स्थित है। यह बहुत ही प्राचीन तथा ऐतिहासिक स्थान है। यहाँ सावन मास के प्रत्येक सोमवार को मेला लगता है। यहाँ 'सारंगनाथ' नामक शिव का मंदिर है जिसका दर्शन इस दिन करना बड़ा पवित्र माना जाता है। इस मेले में वाराणसी नगर के लोगों की प्रधानता रहती है परन्तु आसपास के गाँवों से भी आकर लोग इसमें सम्मिलित होते हैं। यह मेला पूरे सावन मास में प्रत्येक सोमवार को जुटता है।

**दुर्गा जी का मेला**—सावन मास के प्रत्येक मंगलवार को दुर्गाकुण्ड के पास यह मेला लगता है। इस दिन दुर्गा जी का दर्शन करना बड़ा पवित्र माना जाता है। यहाँ हजारों यात्री उस दिन आकर भगवती दुर्गा का दर्शन कर अपने जीवन को सफल बनाते हैं। इस मेले में छोटे-छोटे बच्चे 'चरखी' तथा 'कठघोड़वा' पर चढ़ते हुए दिखाई पड़ते हैं। बच्चों के लिए उपयोगी खिलौने भी यहाँ बिकते हैं।

**लक्ष्मीकुण्ड का मेला**—यह मेला लक्सा के पास लक्ष्मी कुण्ड पर लगता है। दर्शक गण लक्ष्मी कुण्ड में स्नान करके लक्ष्मी जी की अर्चा तथा पूजा करते हैं।

**भरत मिलाप का मेला**—यह वाराणसी का सबसे बड़ा मेला है जिसे देखने के लिए लाखों नर-नारी एकत्रित होते हैं। यह नाटी इमली मुहल्ले में आश्विन सुदी एकादशी अर्थात् दशहरा के एक दिन बाद लगता है। यह मेला 'भरत-मिलाप' के नाम से प्रसिद्ध है। काशी की रामलीला का भरतमिलाप का दृश्य यहीं सम्पन्न होता है जिसमें स्वयं काशी नरेश पधारते हैं। राम-



नगर की रामलीला भी बड़ी प्रसिद्ध है जो लगभग एक मास तक चलती है। इसका आयोजन काशीनरेश की ओर से किया जाता है जिसे देखने के लिए दूर दूर से लोग आते हैं।

काशी के सभी मेले प्रायः स्थानीय हैं जिनमें केवल शहर के निवासी ही भाग लेते हैं। इनमें केवल स्थानीय वस्तुयें ही बिका करती हैं।

### प्रयाग का माघ मेला

तीर्थराज प्रयाग में प्रतिवर्ष माघ के महीने में मेला लगता है जो माघ मेला के नाम से प्रसिद्ध है। यह मेला पूरे एक मास तक लगता है। गंगा और यमुना के किनारे, त्रिवेणी के पावन बालुकामय तट पर, यह मेला जुटता है। अनेक जिलों तथा राज्यों से धार्मिक व्यक्ति आकर यहाँ एक महीने तक निवास करते हैं जिसे 'कल्पवास' कहा जाता है। ये भक्त गण संगम पर बनी पंडा लोगों की झोपड़ियों में निवास करते हैं। इस प्रकार कल्पवास करने वाले व्यक्ति 'कल्पवासी' कहलाते हैं। इनका एकमात्र कर्तव्य सूर्योदय के पहिले संगम में स्नान करना होता है। कल्पवास करते समय इन्हें अनेक नियमों का पालन करना पड़ता है जिनमें से कुछ प्रधान निम्नांकित हैं—

- (१) जमीन पर सोना।
- (२) जूता, चप्पल आदि न पहिनना।
- (३) तैल आदि का शरीर में मर्दन न करना।
- (४) कल्पवास के क्षेत्र को छोड़कर बाहर न जाना।
- (५) पूरे मास तक कीर्तन, 'कथा-श्रवण' तथा भजन में अपना समय बिताना।

इस मास में तिल को खाने तथा दान में देने का बड़ा महत्त्व समझा जाता है। अतः लोग प्रायः तिल का लड्डू खाते हैं। सूर्योदय के पहिले प्रत्येक कल्पवासी नियमित रूप से संगम में स्नान करता है। लोक-गीतों को गाती हुई, संगम की ओर जाती हुई, स्त्रियों का समुदाय बड़ा ही सुन्दर दृश्य उपस्थित करता है। 'गंगा मइया' के प्रति इनकी श्रद्धा को देखकर नास्तिक जनों के हृदय में भी भक्ति की भावना का उद्रेक होता है।

माघ मास में यों तो प्रतिदिन संगम में स्नान का महत्त्व है परन्तु निम्नांकित पर्वों के अवसर पर यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है और लाखों की संख्या में लोग गंगा स्नान करते हैं। ये मुख्य पर्व हैं—

(१) संक्रान्ति (२) मौनी अमावस्या (३) वसन्त पंचमी तथा (४) माघी पूर्णिमा। माघ मास में जो संक्रान्ति का पर्व मनाया जाता है उसे मकर-संक्रान्ति करते हैं। इस दिन पूर्वी जिलों में खिचड़ी खाने की प्रथा है। अतः इसे खिचड़ी संक्रान्ति भी कहते हैं। परन्तु प्रयाग के माघ मेले का सबसे बड़ा पर्व माघ मास की अमावस्या है जिसे मौनी अमावस्या कहते हैं। इस दिन प्रातः काल उठकर, मौन रहकर, त्रिवेणी में स्नान किया जाता है। इसीलिए इसे मौनी अमावस्या कहा जाता है। इस अवसर पर लाखों की संख्या में लोग आकर गंगा में अवगाहन कर पुण्य-लाभ करते हैं। बारह वर्षों के पश्चात् इस तिथि को कुम्भ का महान् मेला जुटता है जिसमें भारत से यात्रीगण आकर सम्मिलित होते हैं। सन् १९५४ में जो कुम्भ का मेला लगा था उसमें ८०,००,००० (अस्सी लाख) लोगों ने संगम में स्नान किया था। इस अवसर पर भारत के समस्त धार्मिक सम्प्रदायों के अखाड़े यहाँ आते हैं। नागा, उदासी, अवधूत, वैरागी, साधु-महात्मा, कबीर पन्थी, रैदासी आदि सभी पन्थों के लोग यहाँ आकर पूरे मास तक निवास करते हैं। विभिन्न साधु-महात्माओं के कैम्पों में कीर्तन-भजन तथा कथा-श्रवण का कार्यक्रम चलता रहता है। सच तो यह है कि संसार के किसी भी भू-भाग में इतना विशाल धार्मिक मेला नहीं लगता और न इतनी अधिक संख्या में नर-नारी ही कहीं एकत्र होते हैं।





## लोक-औषधि

(Folk medicine)



ग्रामीण जनता का जीवन लोक-विश्वासों तथा अन्ध-परम्पराओं से अभिभूत रहता है। जीवन में जो कुछ घटनायें घटित होती हैं इसका कारण वे कोई देवी कोप ही समझते हैं। इसीलिए किसी प्राकृतिक दुर्घटना के होने पर वे देवी-देवता अथवा भूत-प्रेत की पूजा करते हैं। आरोग्य तथा स्वास्थ्य के सम्बन्ध में भी उनके ये ही विचार हैं।

आदिवासी जातियों में यह परम्परा प्रचलित है कि वे कान और आँख में दर्द पैदा होने का कारण किसी देवी या देवता का प्रकोप मानते हैं और किसी अभीष्ट देवता की पूजा करके उस व्याधि को दूर करने की चेष्टा करते हैं।

शिष्ट तथा शिक्षित लोग किसी रोग के होने पर डाक्टर की शरण लेते हैं। किसी होमियोपैथ का दरवाजा खटखटाते हैं। परन्तु गाँवों में जहाँ डाक्टरों का नितान्त अभाव होता है, वहाँ लोक-विश्वास पर आश्रित देहाती दवाओं से ही काम चलाया जाता है। कुछ रोगों में तो केवल लोक-विश्वास ही उसके उपचार का कारण बन जाता है।

उदाहरण के लिए चेचक के रोग को लिया जा सकता है। गाँवों में बसन्त ऋतु में चेचक का प्रकोप दिखाई पड़ता है। यद्यपि इस रोग की अनेक अंग्रेजी दवायें आविष्कृत हो चुकी हैं परन्तु ग्रामीण जनता इसे शीतला माता का प्रकोप समझती है और इस रोग का सम्यक् उपचार न करके शीतला को प्रसन्न करने की ही चेष्टा करती है। इसी प्रकार से अंजनहारी रोग का उपचार भी लोक-विश्वास पर ही आश्रित है।

इस अध्याय में जन-जीवन से सम्बन्धित कुछ उन रोगों की चर्चा की जा रही है जिसका उपचार अंग्रेजी दवा से नहीं होता, बल्कि लोक-विश्वास के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। कुछ रोगों में कुछ औषधि दी जाती है परन्तु वे ही दवायें जो गाँवों में उपलब्ध होती हैं और सर्वसाधारण जनता के लिए भी अत्यन्त सुलभ हैं। इन दवाओं को लोक-औषधि (Folk medicine) की संज्ञा प्रदान की गई है। यह कहना उचित नहीं होगा कि इन औषधियों में वैज्ञानिक तत्वों का अभाव है। परन्तु सामान्यतया यह प्रतीत नहीं होता। इन औषधियों की आधार-शिला प्रधानतया लोक-विश्वास है, न कि उनमें वैज्ञानिक तत्वों की उपलब्धि।

### रोगों की सूची

- |                   |                          |
|-------------------|--------------------------|
| (१) अंजनहारी      | (२) चेचक                 |
| (३) मलेरिया       | (४) सर्दी या जुकाम       |
| (५) पेचिश         | (६) लू या लूह            |
| (७) घाव या फोड़ा  | (८) फोड़िया-फुँसी        |
| (९) खाँसी         | (१०) आँव                 |
| (११) सिर दर्द     | (१२) पेट दर्द            |
| (१३) आँख आना      | (१४) पाण्डु रोग          |
| (१५) पैर का दर्द  | (१६) ह्रारत              |
| (१७) रात्रि-सेचन  | (१८) अधकपारी             |
| (१९) दाँत का दर्द | (२०) चनकल होना           |
| (२१) रोंहा        | (२२) फूली या माड़ा पड़ना |



(२३) मिरगी	(२४) पेट फूलना
(२५) सूखण्डी रोग	(२६) मियादी बुखार
(२७) चरक फूटना	(२८) हैजा
(२९) सर्पदंश	(३०) बिच्छू दंश
(३१) कुत्ता का काटना	(३२) छरियाना
(३३) हड्डा-वर्रे का काटना	(३४) कट जाना
(३५) ज्वर या बुखार	(३६) रतौंधी
(३७) कान का दर्द	

इनमें से केवल प्रधान बीमारियों का वर्णन यहाँ संक्षेप में लिखा जाता है।

## (१) परिच्छेद

### शरीर के विभिन्न अंगों से संबंधित रोग

१. सिर दर्द—कठिन शारीरिक परिश्रम करने अथवा अधिक समय तक अध्ययन करने के कारण सिर में दर्द पैदा होता है। ऐसी दशा में इस दर्द को दूर करने के लिए 'गुलाब रोगन' जिसे लोक-भाषा में 'गुलरोगन' कहा जाता है—का तेल मला जाता है। इस तेल की तासीर ठंडी होती है। अतः यह सिर के दर्द को शीघ्र ही शान्त कर देता है। इस तेल के अभाव में तिल के तेल को लगाना भी लाभदायक सिद्ध होता है। ग्रामीण जनता इन दोनों को 'ठंडा तेल' के नाम से पुकारती है। अतः सिरदर्द में इनका लगाना रोगनाशक माना जाता है।

कुछ लोग सिर की व्यथा से पीड़ित होने पर चन्दन को घिसकर ललाट पर लगाते हैं। इसकी शीतलता से संभवतः सिर का ताप नष्ट हो जाता है। हिरन के सींग को पानी के साथ चन्दन की भाँति पत्थर पर रगड़ कर लगाने से भी यह लाभ होता है। अतः अनेक ग्रामीण लोग हिरन की सींग इस कार्य के लिए अपने घर में रखते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में विश्वास करने वाले व्यक्ति पीली मिट्टी का लेप भी ललाट पर लगाते हैं अथवा गीली मिट्टी को किसी साफ कपड़े में रखकर उसकी पोल्टिस को सिर पर बाँधते हैं।

२. अघकपारी—जो लोग सूर्योदय के पश्चात् सोकर उठते हैं उनके आधे सिर में दर्द पैदा हो जाता है। भोजपुरी में सिर को 'कपार' कहा जाता है। अतः यह रोग 'अघकपारी' के नाम से प्रसिद्ध है जिसका अर्थ है सिर के आधे भागमें दर्द का होना।

अघकपारी की सबसे अच्छी दवा सूर्योदय होने के पहिले ही विस्तर को छोड़कर उठ जाना है। चन्दन को घिस कर सिर में लगाने से भी थोड़ी शान्ति मिलती है।

३. अंजनहारी—इसे भोजपुरी में 'अंखिजनी' कहते हैं। यह आँख का एक रोग है। आँखों की निचले या ऊपरी पलक पर छोटा सा घाव हो जाता है जिससे पलक में सूजन आ जाती है। आँखों में कष्ट उत्पन्न हो जाता है। इस रोग को दूर करने के लिए लोक में पाँच उपचार प्रचलित हैं जो प्रायः लोक-विश्वास के ऊपर आश्रित हैं।

(१) इसका प्रथम उपचार है अपने दाहिने हाथ की कनिष्ठिका अंगुली को बायें हाथ के तलवे पर रगड़ रखकर आँख के उस अंश को स्पर्श करना जहाँ सूजन हो गई है। यह आधुनिक 'फोमेण्टेशन' का ही दूसरा रूप समझना चाहिए।

(२) इसकी दूसरी दवा किसी ताड़ वृक्ष को 'बिराना' है। कानी अंगुली को हाथ पर रगड़ कर किसी ताड़वृक्ष को उसके द्वारा 'बिराते' हैं और पुनः उस अंगुली से फूले हुए स्थान को स्पर्श करते हैं।

(३) कुछ लोग इस रोग को दूर करने के लिए बेर के सात पत्तों को लेकर, उन्हें किसी सींक में खोंस कर, किसी स्थान पर रख देते हैं। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि जैसे जैसे बेर का पत्ता सूखता जायेगा वैसे ही वैसे उनकी अंजनहारी भी सूखती जायेगी। कुछ ही दिनों में वे नीरोग भी हो जाते हैं।

(४) कुछ लोग छोहाड़ा के बीज को पानी में रगड़कर उसके लेप को आँख में लगाते हैं। इससे भी इस रोग की शान्ति हो जाती है।

(५) अंजनहारी को नष्ट करने के लिए सिन्दूर को तेल में रगड़कर इस पर लगाया जाता है। इससे भी इस रोग की शान्ति हो जाती है।

अंजनहारी के लिए उपर्युक्त जो उपचार बतलाये गये हैं उनमें औषधि के तत्त्व विद्यमान हो सकते हैं परन्तु अधिकांश जनता इन्हें लोक-विश्वास के आधार पर ही ग्रहण करती है।



४. **आँख आना**—गर्मी के दिनों में अधिक धूप में घूमने के कारण बच्चों की 'आँखें' आ जाती हैं अर्थात् वे लाल होकर दुःखने लगती हैं। ऐसी दशा में उन्हें बड़ी पीड़ा होती है। इस रोग को दूर करने के लिए सबसे बड़ी औषधि 'आँजन' है जो अंजन का ही अपभ्रंश रूप है। घर की बड़ी तथा बूढ़ी औरत आँजन तैयार करती हैं। वह पीतल की थाली की पीठ पर बेल की पत्तियों, मेथी के दानों और ताम्बे के पैसों को लेकर, उसमें थोड़ा पानी डालकर, जोरों से रगड़ती हैं। इस रगड़ से जो लेप के रूप में पदार्थ तैयार होता है वही 'आँजन' है। इसे वे अपने बच्चे की आँखों में लगाती हैं जिससे आँख की लाली जाती रहती है और दर्द भी दूर हो जाता है।

इस रोग में गुलाब-जल का आँखों में डालना अत्यन्त लाभदायक होता है। इससे आँख की जलन तथा लाली नष्ट हो जाती है। कुछ लोग पकाये गये गर्म तथा ताजा भात की पोल्टिस भी आँखों पर बाँधते हैं।

कुछ लड़कों की आँखें लसलसाने लगती हैं और 'कीचर' आने लगता है। उस समय आँखों में काजल लगाने से बड़ा लाभ होता है। काजल स्त्रियों की आँखों का शृंगारहोने के अतिरिक्त बच्चों की आँखों के लिए उत्तम औषधि भी है।

५. **फूली और माड़ा**—जब आँखें लाल हो जाती हैं, जब रोग के कारण अधिक दिनों तक दुःखती रहती हैं तब उसके मध्य भाग अर्थात् पुतली में विकार उत्पन्न हो जाता है और पुतली की कालिमा में सफेदी उत्पन्न हो जाती है। इससे दृष्टि दोष उत्पन्न हो जाता है।

इस रोग को दूर करने के लिए स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार का आँजन (अन्जन) तैयार करती हैं। इस आँजन को पीतल की थाली की पीठ पर बेलपत्र, मेथी, ताम्बे का पैसा आदि को रगड़ कर तैयार किया जाता है। इस आँजन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए इसमें 'तूतिया' भी मिलाया जाता है। यद्यपि इस प्रकार तैयार किया आँजन आँखों में बहुत अधिक 'लगता' है परन्तु इससे आँख का रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

६. **रतौंधी**—रतौंधी शब्द की निष्पत्ति 'रात्रि अन्ध' से ज्ञात होती है जिसका अर्थ है रात्रि में दिखाई न पड़ना। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके नेत्र की ज्योति दिन में बिलकुल ठीक रहती है परन्तु रात्रि के प्रारम्भ होते ही उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। ऐसे लोग रतौंधी रोग से पीड़ित होते हैं। यह रोग केवल बुढ़े लोगों को ही हो ऐसी बात नहीं है, बल्कि नौजवान भी इस रोग से ग्रसित हो जाते हैं।

इस प्रकार के रोगी के लिए बेल (सिरिफल) के पत्ते को सील पर खूब अच्छी तरह से पीस कर फिर उसे कपड़े से छान लेते हैं। इसके पश्चात् इसमें दही मिलाकर इस पेय को रोगी को पीने के लिए दिया जाता है। इससे यह रोग जाता रहता है।

७. **कान का दर्द**—कान में दर्द पैदा होने पर लहसुन को सरसों के तेल में खूब पकाया जाता है। लहसुन के पक जाने पर उस ईषन् उष्ण-सुसुम—तेल को कान में डालने से दर्द दूर हो जाता है। कुछ लोग गेंदा की पत्तियों को सील पर अच्छी तरह से कूटते हैं। फिर उसके रस को कपड़े से छानकर आग पर थोड़ा गर्म करते हैं। पुनः इसे कान में डाल देते हैं। लोगों का विश्वास है कि इससे कान का दर्द दूर हो जाता है।

८. **दाँत का दर्द**—इस दर्द में पानी को आग में गर्म करके उसमें थोड़ा नमक डाल दिया जाता है। इस गर्म जल से कुल्ला करने पर दर्द दूर हो जाता है। कुछ लोग 'सेँहुड़' (एक प्रकार का पौधा) का दूध भी दाँतों में लगाते हैं। क्षीरीवृक्ष जैसे महुआ, वरगद, सेँहुड़ आदि की दतौन से दाँत धोने से भी इस रोग में लाभ पहुँचता है।

गाँवों में कानों तथा दाँतों के दर्द को मंत्रों के द्वारा झाड़ कर दूर करने वाले बहुत से 'वैद' घूमा करते हैं जो नीम हकीम होते हैं। इन्हें अंग्रेजी में 'मेडिसिन मैन' कहा जा सकता है। ये लोग कान और दाँत से कीड़ा (जर्म्स) निकालते हैं और इस प्रकार रोगी के रोग को दूर कर देते हैं। ये लोग गाँवों में 'दाँत का वैद' और 'कान का वैद' की आवाज लगाते रहते हैं हुए प्रायः घूमा करते हैं।

९. **सर्दी या जुकाम**—जाड़े के दिनों में खुली हवा में घूमने अथवा कपड़ों के अभाव में शीत लग जाने के कारण लोगों को सर्दी का रोग हो जाता है। इसे जुकाम भी कहते हैं। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति को तुलसी की पत्तियों का काढ़ा बनाकर दिया जाता है। कमी-कमी इसमें काली मिर्च भी डाल दी जाती है। जिससे उसका रोग कुछ शान्त हो जाता है। रोगी को 'वफारा' देना इसकी दूसरी दवा है। धीमी आग में अँजवाइन डाल दी जाती है। इससे जो धुआँ उठता है उसे रोगी सूँघता है। इसी को वफारा कहते हैं। चूँकि अजवाइन की तासीर गर्म होती है। अतः इसके धुएँ को सूँघने से उसे बड़ा लाभ होता है।

यदि सर्दी के कारण किसी व्यक्ति का गला फँस जाता है अर्थात् उसे बोलने में कष्ट होने लगता है तो उसे काली मिर्च, अदरक और गुड़ को घी में पकाकर खाने के लिए दिया जाता है। इसको खाने से उसका गला साफ हो जाता है। कुछ लोग इसके लिये 'मुलेठी' को मुख में रखकर उसे चूसते हैं। अदरक तथा अँजवाइन के खाने से भी यह रोग शीघ्र ही दूर हो जाता है।



१०. खाँसी—शीत लग जाने से तथा अन्य कारणों से भी खाँसी हो जाती है। हमेशा खाँसते रहने के कारण 'लगस' पर जोर पड़ता है तथा छाती में दर्द पैदा हो जाता है। अतः इससे शीघ्र ही मुक्ति पाने की चेष्टा की जाती है।

जिस पान में कत्था की मात्रा अधिक हो उसे खाने से खाँसी से क्षणिक शान्ति मिलती है। कुछ लोग 'कुलन्जन' नामक एक काष्ठ-औषधि को मुँह में डालकर चूसते रहते हैं। इससे खाँसी नहीं आती। अँजवाइन में थोड़ा नमक मिलाकर, इसे मुँह में रखकर चूसने से थोड़ा लाभ होता है। परन्तु इनसे क्षणिक लाभ की ही प्राप्ति होती है, स्थायी नहीं।

केले की सूखी हुई पत्तियों को आग में जलाकर और उसमें थोड़ा सा शहद मिलाकर उसे चाटने से खाँसी का रोग स्थायी रूप से नष्ट हो जाता है। आँवला अथवा आँवले का मुरब्बा खाने से भी यह रोग शान्त हो जाता है। इसीलिए वैद्य लोग च्यवनप्राश का सेवन इस रोग में उत्तम बतलाते हैं जिसमें आँवले का अंश सर्व प्रधान होता है।

११. पेचिस—अन्न के अच्छी तरह से पेट में न पचने के कारण पेचिस की बीमारी हो जाती है। इस रोग में पतले-पतले दस्त आने लगते हैं। थोड़े से अन्तर के बाद शीघ्र ही दस्त होने के कारण शरीर में कमजोरी आने लगती है और दस्त के कारण रोगी पस्त हो जाता है।

दस्त को रोकने के लिए रोगी को मट्ठा पिलाना अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होता है। इस मट्ठे (तक्र) में भूना हुआ जीरा और काला नमक डालकर पिलाने से अधिक फायदा होता है। रोगी को पुराना चावल का भात और मट्ठा खिलाया जाता है जिससे उसका दस्त बन्द हो जाता है।

पका हुआ केला खिलाने से भी रोग की शान्ति हो जाती है। कुछ लोगों को बेल का मुरब्बा भी खाने के लिए दिया जाता है परन्तु गाँवों में जहाँ मुरब्बा उपलब्ध नहीं होता वहाँ पका हुआ बेल का शर्बत भी लाभदायक सिद्ध होता है।

१२. आँव—अन्न का सम्यक् परिपाक न होने के कारण पेट में आँव पड़ जाता है। इससे शौच करते समय पेट में दर्द होने लगता है और बड़ा कष्ट होता है।

आँव को दूर करने की सबसे सस्ती और सुलभ दवा पके हुए केले को खाना है। बेल का मुरब्बा भी इस रोग में बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। इसके अभाव में, पका हुआ बेल का फल भी खाया जा सकता है। आँव के रोग से पीड़ित होने पर ग्रामीण लोग "इसफ गोल की भूसी को पानी में डालकर और उसमें थोड़ी सी चीनी मिलाकर इसे पीते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से यह रोग नष्ट हो जाता है।

पुराने चावल के भात में घी मिलाकर खाने से भी इसमें लाभ होता है। आँव से पीड़ित होने पर रोटी कदापि नहीं खानी चाहिए। भात को थोड़ी दही के साथ खाने पर इसमें विशेष लाभ होता है। आँव में हल्दी को कड़ी पीस कर उसकी गोली को खाने से भी इसका नाश हो जाता है।

१३. पेट दर्द—भोजन को अत्यधिक मात्रा में भक्षण करने के हेतु पेट में दर्द पैदा हो जाता है। ग्रामीण स्त्रियों का विश्वास है कि किसी भूत-प्रेत से ग्रसित हो जाने के कारण ही बच्चों के पेट में दर्द पैदा हो जाता है। अतः स्त्रियाँ इस रोग से पीड़ित बच्चे को किसी 'ओझा' से दिखलाती हैं और उसकी 'भभूति' को उसके पेट में पर मलती हैं। उनकी यह धारणा है कि ऐसा करने से भूत भाग जाता है और पेट का दर्द नष्ट हो जाता है।

इस दर्द में बबूल की पत्तियों को नमक के साथ खाने से भी लाभ होता है। कुछ लोग काला नमक खाकर गर्म पानी पीते हैं। इससे भी दर्द शान्त हो जाता है। त्रिफला—आँवला, हरें और बहेड़ा का चूर्ण भी इसकी औषधि है। कुछ लोग हिंवाष्टक चूर्ण का भी प्रयोग इसके लिये करते हैं।

१४. पेट फूलना—अत्यधिक भोजन करने तथा उसका सम्यक् परिपाक न हो सकने के कारण प्रायः बच्चों का पेट फूल जाता है। इस कारण उन्हें दर्द भी होने लगता है। ऐसी दशा में ग्रामीण लोग काला नमक बच्चे को खाने के लिये देते हैं। यदि इससे शीघ्र लाभ होता हुआ न दिखाई पड़े तो गर्म पानी में सेंधा नमक मिला पीने के लिए दिया जाता है। इतसे पतले दस्त आने लगते हैं और पेट का फूलना कम हो जाता है।

कुछ लोग हींग को पानी में घोल कर तथा उसे गर्म करके बच्चे को नाभि (डोढ़ी) के चारों ओर लेप देते हैं। इससे भी पेट का फूलना शान्त हो जाता और दर्द भी जाता रहता है।

१. इन पंक्तियों के लेखक की पूजनीया माता श्रीमती मूर्तिदेवी जी जब उनके बच्चे के पेट में दर्द पैदा होता था "तब एक विशेष" मंत्र से भूत को 'भारती' थीं। बच्चे के पेट को अपनी मूठी में पकड़ वह "छोड़ पापी छोड़", 'छोड़ पापी छोड़' इस मंत्र की आवृत्ति कर अपनी मुठ्ठी को खोलकर अपने मुँह से फूँकती थीं। फलस्वरूप वह भूत भाग जाता था और पेट का दर्द शान्त हो जाता था।



१५. कमर में दर्द—कभी कभी ठंडक लग जाने से अथवा अन्य कारणों से कमर में भी दर्द पैदा हो जाता है जिसे चिलकना कहते हैं। ग्रामीण जनता की यह धारणा है कि जो बच्चा अपनी माँ की पेट से पैर के बल पैदा होता है यदि वह अपने पैरों से पीड़ित व्यक्ति के कमर को स्पर्श कर दे तो यह दर्द नष्ट हो जाता है। सरसों के तेल में सोंठ मिला कर आग में उसे थोड़ा गर्म करते हैं। उस तेल को कमर में मालिस करने से कष्ट दूर होता है।

१६. पैर का दर्द—अनेक लड़कों को पैर का दर्द हो जाता है। वे पैदल भले ही न चलें, केवल चारपायी पर भले ही पड़े रहे फिर भी उनके पैरों में दर्द मालूम होता है जिसे पैरों का 'टटाना' कहा जाता है। यह रोग भी झाड़ू-फूँक से ही दूर होता है। मंत्रोषधि ही इसकी रामबाण दवा है।

इस रोग के मंत्र को जानने वाला ओझा बाँस की दो छोटी तथा पतली शाखाओं—जिसे लोक-भाषा में 'कोइनि' कहा जाता है—मँगवाता है और उन्हें बीच से चीर कर दो भागों में विभक्त कर देता है। दो मनुष्य कोइनि के इन दोनों भागों को अपने दोनों हाथों में पकड़ कर खड़े हो जाते हैं। इन दोनों कोइनों में काफी अन्तर रहता है। परन्तु ओझा जैसे-जैसे 'जुट-जुट' करते हुए मंत्र पढ़ता जाता है वैसे ही वैसे इन कोइनों का अन्तर कम होने लगता है और अन्त में वे एक साथ मिलकर 'जुट' जाती हैं। फिर 'छुट-छुट' कहने से वे पुनः अलग अलग हो जाती हैं। इस प्रक्रिया से बालक के पैर का 'टटाना' दूर हो जाता है। इस कार्य में किसी प्रकार की औषधि का प्रयोग नहीं होता बल्कि मंत्र के बल से ही यह रोग निर्मूल हो जाता है।

## (२) परिच्छेद

### सामान्य रोग

१७. चेचक—यह छूत का रोग बड़ा ही भयानक माना जाता है जो प्रायः बसन्त ऋतु में ही होता है। यद्यपि इसके निदान के लिए अनेक अंग्रेजी दवायें आविष्कृत हो चुकी हैं परन्तु गाँव के लोग उन पर विश्वास नहीं करते। उनकी यह दृढ़ धारणा है कि यह शीतला माता के प्रकोप के कारण होता है। अतः वे इस रोग से आक्रान्त होने पर उस व्यक्ति की दवा शीतला माता को प्रसन्न करके करते हैं। शीतला देवी का निवास स्थान नीम का वृक्ष है। वे इस वृक्ष पर हिडोला डाल कर रहती हैं। अतः चेचक के रोग से पीड़ित व्यक्ति को नीम की टहनियों से पंखा झलते हैं। इसकी पत्तियों को उसकी शय्या पर बिखेर देते हैं और उसी पर सोने के लिए उससे आग्रह किया जाता है। माली शीतला माता का भक्त माना जाता है। अतः उसे बुलाकर शीतला की पूजा कराई जाती है। घर की स्त्रियाँ शीतला माता के गीत गाती हैं जिनमें रोगी को शीघ्र नीरोग करने के लिए प्रार्थना की जाती है। इस प्रकार लोक-विश्वास के आधार पर, लोक-औषधि के द्वारा इस भीषण रोग की शान्ति की जाती है। शीतला माता की पूजा ही इस संक्रामक रोग की परम औषधि मानी जाती है।

### १८. ज्वर तथा मियादी बुखार

ज्वर को भोजपुरी में 'जर' कहा जाता है। इसे अंग्रेजी में फीवर कहते हैं। जो ज्वर जाड़ा देकर आता है उसे 'जड़ैया' का अभिधान प्राप्त है। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति की बाँह अथवा गर्दन में 'बिछकुतिया' अर्थात् छिपकलीकी पूँछ को काट कर बाँध दिया जाता है। इससे 'जड़ैया' जाती रहती है। बुखार से पिण्ड छुड़ाने का सबसे प्रबल उपचार 'लंघन' माना जाता है। अर्थात् बुखार लगने पर रोगी को खाने के लिए अन्न नहीं दिया जाता। देहात में यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'जर अवरु पाहुन लंघन से दूर भागेला।' अर्थात् अतिथि और ज्वरी को भोजन न देने से दूर भाग जाते हैं।

जो बुखार निश्चित समय के अन्तर से आता है उसे मियादी बुखार कहते हैं। यह अपने समय पर अर्थात् एक या दो सप्ताह के बाद ठीक समय पर ही छूटता है।

१९. मलेरिया—यह वह ज्वर है जो जाड़ा देकर आता है। इस रोग के होने से शरीर का तापमान बढ़ जाता है। इसके उपचार के लिए तुलसी की पत्तियों को गर्म पानी में उबाला जाता है तथा उसमें काली मिर्च मिलायी जाती है। इस प्रकार तैयार किये गये काढ़े को रोगी को पिलाया जाता है जिससे उसका ज्वर शान्त हो जाता है।

कभी कभी अदरक तथा काली मिर्च को मिलाकर रोगी को पीने के लिये चाय भी दी जाती है।

२०. मिरगी—इसे संस्कृत में अपस्मार कहते हैं। आग और पानी देखकर यह रोग अचानक भड़क उठता है और रोगी हाथ-पैर पीटता हुआ जमीन पर छटपटाने लगता है। अतः मिरगी रोग से ग्रसित व्यक्ति जलाशय अथवा नदी के तट पर स्नान के लिए नहीं जाता। चूल्हा अथवा 'आँवा' के पास भी उसका जाना निषिद्ध है। घर वाले ऐसे रोगी को सदा आग-पानी से अलग रखते हैं।



२१. पाण्डु रोग—इसे भोजपुरी में 'पियरी' कहते हैं। इस रोग के कारण मनुष्य का सारा शरीर पीला जाता है। किम्बहुना उसकी आँखें भी पीली दिखाई देती हैं।

इसकी सबसे प्रसिद्ध दवा झाड़-फूंक है। गाँवों में अनेक ओझा और सोखा होते हैं जो इस रोग को केवल झाड़-फूंक से ही दूर कर देते हैं। वे एक पीतल की थाली में जल भर कर उसमें रोगी के हाथ के रखने का लिए कहते हैं। फिर वे मंत्र पढ़ते हुए उस जल से रोगी की बांह को धोते हैं। रोगी के बांहों को धोने से वह जल पीला पड़ता जाता है। लोगों का यह विश्वास है कि रोगी के शरीर का पीलापन मंत्र की शक्ति से उस जल में संक्रमित हो जाता है। इस प्रकार वह व्यक्ति नीरोग हो जाता है। कि इन पंक्तियों के लेखक ने अनेक ऐसे रोगियों को देखा है जिनका यह रोग मंत्र के बल से पानी में संक्रमित होकर दूर हो गया।

२२. चरक फूटना—अनेक मनुष्यों के शरीर पर सफेद सफेद छोटे छोटे दाग दिखाई पड़ने लगते हैं। यह भी एक प्रकार का संक्रामक रोग है जो दिन पर दिन रोगी के शरीर में फैलता जाता है। इसको 'चरक' कहते हैं। अंग्रेजी में यह 'ल्यूको-डर्मा' के नाम से प्रसिद्ध है। इस रोग के होने से संभवतः कोई शारीरिक कष्ट तो नहीं होता परन्तु शारीरिक सौन्दर्य सदा के लिए नष्ट हो जाता है।

इस रोग से पीड़ित व्यक्ति के लिए नमक का प्रयोग नहीं करना चाहिए। स्त्रियाँ इस रोग से ग्रसित होने पर प्रायः नित्यप्रति गंगा स्नान करती हैं, सूर्य को अर्घ्य प्रदान करती हैं और रविवार तथा मंगलवार को अलोना भोजन करती हैं। ग्रामीण लोगों की ऐसी थारणा है कि इस रोग का सूर्य भगवान् से विशेष सम्बन्ध है। अतएव भगवान् भास्कर को प्रसन्न करने से ही इस रोग से मुक्ति मिल सकती है।

२३. हैजा—इसे संस्कृत में विसूचिका तथा अंग्रेजी में कालरा कहते हैं। यह प्रायः गर्मी के दिनों में मात्रा से अधिक भोजन करने के कारण होता है। अधिक गंदगी भी इसके पैदा होने का एक कारण है। इसीलिए मेले-ठेले में हैजा का टीका लगाना आवश्यक होता है। इस रोग में वमन और दस्त अधिक होता है जिससे रोगी शीघ्र ही सुस्त तथा कमजोर हो जाता है।

ऐसी दशा में उसके कं और दस्त को बन्द करने के लिए उपचार किया जाता है। बताशा में बरगद का दूध डालकर रोगी को देना दस्त के लिए लाभदायक है। इसी प्रकार से छोटी इलायची को पीसकर तथा उसमें मधु मिलाकर चाटना वमन को रोकता है। मोर के पंख को आग में जलाकर, इसकी राख में शहद मिलाकर चाटना वमन के रोकने में सहायक सिद्ध होता है।

२४. लू—इसे भोजपुरी जनता लूह के नाम से पुकारती है। गर्मी के दिनों में प्रचण्ड धूप में चलने से 'लू' लग जाती है। इस रोग में रोगी का शरीर गर्म हो जाता है और उसे बुखार हो जाता है। ऐसी दशा में गाँव के लोग कच्चे आम को आग में पकाते हैं और उसके गुद्दे को पानी में डालकर उसका शर्बत तैयार करते हैं जो 'अमझोर' के नाम से प्रसिद्ध है। उस शर्बत में नमक डाल कर रोगी को पिलाया जाता है। रोगी के शरीर की गर्मी को शान्त करने के लिए आग में पकाये गये कच्चे आम के गुद्दे को रोगी के हाथों तथा पैरों में मला या रगड़ा जाता है। ऐसा करने से उसके शरीर का तापमान कम हो जाता है और उसे शान्ति मिलती है।

प्याज लू का परम प्रतिरोधक है। अतः भोजपुरी मातायें गर्मी के दिनों में स्कूल को अथवा खेलने के लिए घर से बाहर जाने वाले अपने बच्चे के पाकेट में एक प्याज रख देती हैं। उनका यह विश्वास है कि प्याज के पाकेट में रखने के कारण उसे लू नहीं लग सकती। लू से पीड़ित व्यक्ति को प्याज को निचोड़ कर उसका रस पिलाया जाता है जिससे उसका शारीरिक ताप शान्त हो जाता है।

२५. घाव या फोड़ा—फोड़ा बड़ा ही कष्टदायक रोग होता है। अतः इससे पिण्ड छुड़ाने के लिए अनेक दवायें की जाती हैं। गाँवों में फोड़ा की सबसे अच्छी दवा नीम की पत्ती मानी जाती है। जो कृमि नाशक (एण्टीसेप्टिक) होती है। अतः नीम की पत्तियों को पीस कर उसमें थोड़ा सरसों का तेल मिलाकर उसे फोड़े पर लगाकर पट्टी बाँध दी जाती है। इससे कुछ ही दिनों में फोड़ा पक कर फूट जाता है। फिर नीम की पत्तियों को पानी में उबालकर उसी गर्म पानी से उस घाव को धोया जाता है।

घाव को पकाने के लिए अरहर की पत्तियों को पीसकर उस पर लगाया जाता है। कुछ लोग अरहर की दाल को पीसकर उसकी पोल्टिस भी फोड़ा के ऊपर बाँधते हैं जिससे वह पक कर सूख जाता है। एक प्रकार की लत्ता—जिसका नाम है और जिसकी पत्तियाँ चौड़ी एवं प्रायः गोली हैं—की पत्तियों के पृष्ठ भाग में घी लगाकर उसको घाव पर रखकर पट्टी बाँध



देते हैं। ऐसा करने से भी घाव पक जाता है। इस कार्य के लिए तीसी को पीसकर उसकी पोल्टिस भी बाँधी जाती है। इस प्रकार फोड़ा को पकाकर सुखा देने के लिए ये अनेक प्रकार की लोक-औषधियाँ प्रयुक्त होती हैं।

**२६. फोड़िया-फुंशी**—यह एक छोटा सा फोड़ा या घाव है जो शरीर के किसी भी अंग में हो सकता है। नवजवान लड़के जब यौवन के प्रांगण में पदार्पण करना प्रारम्भ करते हैं तब उनके मुँह पर छोटी-छोटी फुंसियाँ निकल आती हैं जिनको 'मोहासा' कहा जाता है। इनको दूर करने के लिए अनेक दवायें प्रचलित हैं।

नीम के वृक्ष के तने के सूखे हुए छिलके को चन्दन की भाँति पानी डालकर पत्थर पर रगड़ा जाता है। पुनः इस लेप को फुंशी पर लगाया जाता है। इससे फुंसियाँ, सूख जाती हैं। छोटी छोटी फुंसियों, पर गीला खाने वाला चूना लगा देने से भी वे दब जाती हैं। कुछ लोग इनके ऊपर गीला सिन्दूर भी लगाते हैं। छोहाड़ा के बीज को चन्दन की भाँति रगड़ कर लगाने से भी यह रोग दूर हो जाता है।

**२७. रक्त स्राव**—गृह कार्य में विशेष शाक-सब्जी काटते समय हसुवा या चाकू से हाथ की अँगुलियों का कट जाना एक साधारण बात है। ऐसी दशा में कटे हुए स्थान से खून गिरने लगता है। रक्त स्राव को शीघ्र बन्द करने के लिए सबसे पहिले कटे हुए स्थान को हाथ से दबा दिया जाता है। फिर किसी साफ कपड़े को पानी में भि गोकर उसे कटे स्थान पर बाँध दिया जाता है। इसके पश्चात् उस कपड़े पर थोड़ा थोड़ा पानी डालकर उसे सदा भि गोकर 'तर' रखते हैं। इस प्रकार सर्दी पाकर खून का गिरना बन्द हो जाता है।

परन्तु यदि किसी कारण से किसी व्यक्ति का सिर फूट गया हो और उससे खून गिर रहा हो तो पानी से उस स्थान को धोकर उसमें पीसा हुआ बारीक कोयला भर कर उसे पट्टी से बाँध देते हैं। यद्यपि यह प्रक्रिया वैज्ञानिक नहीं है परन्तु इससे सिर से खून का गिरना बन्द हो जाता है।

**२८. जलना**—स्त्रियाँ रसोई बनाते समय 'अदहन' के गर्म पानी से, दाल छौकते समय गर्म घी के गिर जाने से, जल जाती है। कभी कभी रोटी सेंकते समय आग से उनका हाथ जल जाता है। ऐसी परिस्थिति में ग्रामीण लोग बिना पानी की सहायता से आलू को छील पर, पतला पीस कर, उस जले हुए स्थान पर उसे लगा देते हैं। इससे जलन शान्त हो जाती है और कष्ट भी जाता रहता है। आलू से अधिक उत्तम जलन-शान्ति की कोई दूसरी दवा गाँवों में उपलब्ध नहीं है। जले हुए स्थान पर मधु का लेप करने से भी थोड़ी शान्ति मिलती है।

**२९. छरियाना**—छोटे छोटे बच्चे कभी कभी अनायास बहुत रोते हैं और वे माता का दूध नहीं पीते। इसे 'छरियाना' कहा जाता है। जब बच्चे माता का दूध नहीं पीना चाहते उस समय उनकी मातायें अपने थन को 'थुक थुकाती' हैं। ऐसा करने से बच्चा दूध पीने में प्रवृत्त हो जाता है।

कुछ स्त्रियों का यह भी विश्वास है कि किसी भूत-प्रेत—जिसे 'उपरवार' कहा जाता है—की कुदृष्टि से बच्चे छरियाने लगते हैं। अतः वे उनके सिर के चारों ओर अपने हाथों में राई लेकर घुमाती हैं और अन्त में उस राई को आग में जला देती हैं। ऐसा करने से बच्चों को कष्ट देने वाली प्रेतात्मा का नाश हो जाता है।

**३०. सुखण्डी रोग**—प्रायः ऐसा देखा जाता है कि छोटे छोटे बच्चों के हाथ-पैर दुबले होते चले जाते हैं। उनका पेट बाहर निकल आता है और उनका चेहरा कृश तथा उदास हो जाता है। ऐसे रोग को 'सूखा' कहते हैं जिसे लोक-भाषा में 'सुखण्डी' रोग के नाम से अभिहित किया जाता है।

इस रोग का उपचार प्रायः ओझाओं के द्वारा किया जाने वाला झाड़फूंक है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि किसी दुष्ट प्रेतात्मा के द्वारा ऐसा किया जाता है। अतः मांत्रिक किसी लौकी या घास को अभिमंत्रित करके घर के प्रधान द्वार पर टँगवा देते हैं। ऐसा समझा जाता है कि जैसे जैसे वह लौकी या घास सूखती जायेगी वैसे ही वैसे बच्चे का रोग भी सूखता जायेगा। इस प्रकार बच्चा वास्तव में कुछ दिनों के पश्चात् चंगा तथा पूर्ण स्वस्थ हो जाता है।

### (३) परिच्छेद

**३१. सर्पदंश**—गाँवों में विशेषकर बरसात के दिनों में, सर्पदंश प्रायः एक सामान्य घटना मानी जाती है। कोई भी साल ऐसा नहीं बीतता जब कि साँप के काटने से दो-चार व्यक्ति परलोक न जाते हों।

साँप के द्वारा काटे गये व्यक्ति को पहिले नीम की पत्ती अथवा कालीमिर्च चबाने के लिए दी जाती है। यदि ये वस्तुयें कड़ई अथवा तीती (तिक्त) न मालूम हो तो यह समझना चाहिए कि उस व्यक्ति को सर्प ने काट खाया है तथा इसका विष उसके शरीर में व्याप्त हो रहा है। ऐसी अवस्था में किसी 'साँप को झारने' वाले व्यक्ति को बुलाया जाता है। सर्पदंश की सूचना



देने वाले व्यक्ति की पीठ पर यह मांत्रिक पीतल की थाली का पृष्ठ भाग स्थापित करता है। वह अपने हाथों से 'मुसकोइल'— अर्थात् वह मिट्टी जिसे चूहों ने जमीन के नीचे से कुरेदकर ऊपर निकाला हो—को लेकर मंत्र पढ़ता है और उस थाली पर मिट्टी को जोरों से फेंकता है। ऐसा करने से थाली उस व्यक्ति की पीठ पर चिपक जाती है। जब तक थाली उसकी पीठ पर चिपकी रहती है मांत्रिक सर्पदंश का मंत्र पढ़कर उस पर मिट्टी फेंकता रहता है। परन्तु जब थाली पीठ पर न चिपक कर नीचे गिर जाती है तब यह समझा जाता है सर्पदंश का विष उतर गया अथवा नष्ट हो गया और वह व्यक्ति नीरोग हो जाता है। सर्पदंश का मंत्र निम्नलिखित है—

“इन्द्र के बेटे वरह्मा सारी,  
हाथ लड़ा वह ताली।  
गोहूँवन, घोड़कराइत, अजिगर,  
भुवैंग दोनों नैना जोरी के  
चला हो शंकर जी  
चला हो शंकर जी।”

कुछ यांत्रिक लोग कौड़ी फेंकते हैं। अर्थात् वे अपने मंत्र के बल पर से दो कौड़ियों को फेंकते हैं जो सर्प के दोनों कानों के पास जाकर चिपक जाती है। मंत्र के बल से सर्प उस व्यक्ति के पास आता है और अपने विष को चूस लेता है।

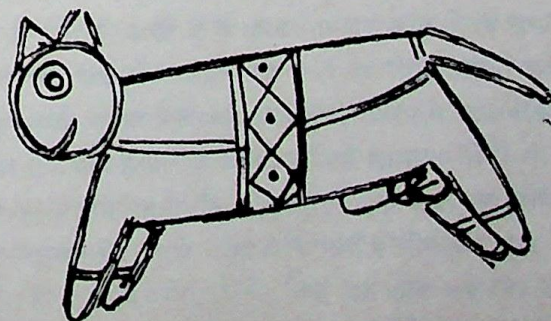
राजस्थान में सर्प से काटे गये व्यक्ति को तेजा जी—जो सर्पों के देवता माने जाते हैं—के मंदिर में ले जाते हैं। वहाँ मंदिर का पुजारी अथवा तेजाजी का कोई भक्त आकर साँप के विष को चूस लेता है और रोगी पूर्णतः निरोग हो जाता है।

३२. विच्छू का दंश—गाँवों में विच्छू का काटना भी एक सामान्य घटना समझना चाहिए। जिस स्थान पर विच्छू काटता है उस स्थान से थोड़ी दूर ऊपर शरीर के उस अंग को रस्सी से जोरों से बाँध दिया जाता है जिससे दूषित या बिचैले रक्त का संचार शरीर में न फैलने पाये। कुछ लोग उस स्थान को—जहाँ विच्छू ने काट लिया हो—चाकू से चीर कर उससे थोड़ा रक्त निकाल देते हैं जिससे विच्छू का विष का संचार न हो। फिर 'फिटकिरी को पानी में घुलाकर उस जल को पीड़ित व्यक्ति के विपरीत अंग वाले कान में डाल देते हैं। यदि पैर अथवा हाथ में 'विच्छू ने डंक मारा हो तो उस अंग को गर्मपानी से धोया जाता है। इससे रोगी को बड़ी शान्ति मिलती है।

साँप की तरह विच्छू के दंश के विष को भी मंत्रों के द्वारा 'उतारा' जाता है।

३३. ततैया का काटना—ततैया दो प्रकार का होता है जिसे भोजपुरी में हाड़ा और बिन्हीं कहा जाता है। हाड़ा का रंग लाल और बिन्हीं का पीला होता है। दोनों का ही दंश बड़ा कष्टदायक होता है परन्तु चिरस्थायी नहीं। ततैया के द्वारा काटे गये स्थान पर लोहे की चाभी, चाकू अथवा कील के द्वारा धीरे-धीरे रगड़ने से उसका विष शान्त हो जाता है। कुछ लोग उस स्थान पर खानेवाला चूना पोत देते हैं। चूना के प्रभाव से विष जाता रहता है।

३४. कुत्ता का काटना—कुत्ते से काटे गये व्यक्ति को सात कुजों में झाँकने के लिए कहा जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इससे कुत्ते के विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है। सर्प की ही भाँति कुत्ते के विष को भी मंत्रों के द्वारा नष्ट किया जाता है।









## अध्याय १५

# आर्थिक जीवन

० ०

### (१) परिच्छेद

## सामान्य जनता के आर्थिक जीवन का चित्रण

(१) अनुच्छेद—समाज में समृद्धि

(२) अनुच्छेद—गरीबी तथा निर्धनता

भोजपुरी जनता का आर्थिक स्तर अत्यन्त निम्न कोटि का है। इस प्रदेश में निवास करने वाली अधिकांश जनता गरीबी की सीढ़ी के नीचे निवास करती है। इस गरीबी का प्रधान कारण इस प्रदेश में किसी बड़े व्यवसाय का अभाव है। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार ने इस क्षेत्र की आर्थिक उन्नति पर आज तक विशेष ध्यान नहीं दिया है। इस प्रदेश में न तो कोई बड़ा स्टील प्लांट है और न कोई बड़ी इन्डस्ट्री। यही कारण है कि यहाँ की जनता अत्यन्त निर्धन है। यद्यपि भोजपुरी लोक-गीतों में सोने की थाली में भोजन करने का वर्णन उपलब्ध होता है परन्तु वह अतीत की स्मृति मात्र है। वर्तमान दशा का चित्रण कदापि नहीं है।

इस प्रदेश में अनेक पेशेवाली जातियाँ निवास करती हैं जैसे लोहार, सोनार, बढ़ई आदि। ये लोग रात दिन घनघोर परिश्रम करते हैं फिर भी पेट भरने से अधिक द्रव्य की प्राप्ति नहीं होती। अतः इनकी दशा भी किसानों की ही भाँति साधारण है। इन्हीं का वर्णन यहाँ किया जाता है।

### (२) परिच्छेद

## पेशेवाली जातियाँ

भोजपुरी प्रदेश में ऐसी अनेक जातियाँ निवास करती हैं जो किसी विशिष्ट व्यवसाय को ही करती हैं। इन जातियों में जो परम्परागत पेशा चला आ रहा है उसी को करने में वे अपना सम्मान तथा गौरव समझती हैं। ये लोग इस प्रदेश में निवास करने वाली सामान्य जनता—किसान तथा मजदूरों—की दैनिक चर्चा के लिए सामग्री जुटाने में संलग्न रहते हैं। उदाहरण के लिए बढ़ई किसानों के गृह निर्माण का कार्य करता है तो लोहार खेती के काम में आने वाले उपकरणों को अपनी ग्रामीण प्रयोगशाला में तैयार करने में संलग्न रहता है। इसी प्रकार से अन्य जातियाँ सामान्य लोगों के जीवन-यापन में अपने पैतृक व्यवसाय के द्वारा सहायता पहुँचाती हैं। कहने का आशय यह है कि साधारण कृषक तथा इन पेशेवाली जातियों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है अर्थात् एक का जीवन दूसरे पर अवलम्बित है। यदि घोबी और नाई ग्रामीण जनता के वस्त्रों का धोकर तथा उनकी हजामत बनाकर उनकी सेवा करता है तो जनता भी उनके भरण-पोषण के लिए आवश्यक अन्न तथा द्रव्य प्रदान कर अपने कर्तव्य का पालन करती है। इस प्रकार श्रम का विभाजन (Division of labour) होने के कारण ग्रामीण जीवन सुखी और सम्पन्न है। एक दूसरे के व्यवसाय में किसी प्रकार की प्रतियोगिता की भावना न होने के कारण ग्रामीण जनता सुखपूर्वक निवास करते हुए चैन की वंशी बजाती है।



यहाँ पेशेवाली जातियों का नाम तथा उनके व्यवसाय का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

१. बड़ई	२. लोहार
३. सोनार	४. धोबी
५. नाई	६. कोहार
७. माली	८. दर्जी
९. तेली	१०. तमोली
११. राई	१२. ठठेरा
१३. नोनिया	१४. गोंड
१५. भर	१६. लकड़ीहारा
१७. कोयरी	१८. कुँजड़ा
१९. खटिक	२०. काछी
२१. मल्लाह	२२. मछुआ
२३. कहार	२४. मुसहर
२५. पेशराज	२६. पटहेरा
२७. धुनिया	२८. जोलाहा
२९. भाट	३०. नेटुआ
३१. घटवार	३२. कलवार
३३. घाटिया	३४. कुरुमी
३५. पंसारी	३६. भाँड़
३७. पँवरिया	३८. हलुवाई
३९. तुरहा	४०. कानू
४१. अहीर	

(१) अहीर—भोजपुरी प्रदेश में अहीर एक अत्यन्त वीर और पराक्रमशील जाति है जो अपनी शक्ति और बाहुबल के श्रोसे जीती-जागती है। इनका प्रधान व्यवसाय गोपालन और कृषि-कार्य है। ये स्वभाव से बड़े ही सीधे-सादे और स्पष्टवक्ता हैं। अतः कभी कभी इनकी स्पष्टोक्ति शिष्टता की सीमा को भी पार कर जाती है। लाठी इनका सदा-सहायक आयुध है। अतः ये लोग “लाठी में गुण बहुत हैं, सदा राखिए पास” इस सिद्धान्त को मानने वाले हैं। यही कारण है कि ये बाँस की मोटी तथा लम्बी लाठी को अपने कंधे पर रखकर खेतों में निश्चिन्त तथा निडर विचरण किया करते हैं। डॉ० ग्रियर्सन ने इस वीर जाति की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

अहीर लोगों का राष्ट्रीय-गीत विरहा है जिसे ये लोग खेतों में गाय चराते समय, अथवा आम के बगीचों में विश्राम करते समय या किसी मेले-ठेले में कान पर हाथ रख कर बड़े ही उन्मुक्त स्वर से गाते हैं। विरहा मूलतः विरह के गीत हैं जिनमें आजकल सभी रसों की अभिव्यक्ति की जाती है।

अहीरों की बारात देखने ही लायक होती है। इस जाति के सभी सदस्य अपने कंधों पर मोटी लाठी लेकर विरहा गाते हुए चलते जाते हैं। अपने गन्तव्य स्थल पर पहुँच कर ये किसी बाग या बगीचे में ठहर जाते हैं जिसे इनका जनवासा समझना चाहिए। यहाँ पर ये लोग खेल-कूद और व्यायाम का प्रदर्शन करते हैं। इनका एक विशेष व्यायाम दोनों हाथों को पृथ्वी पर रख कर उसके सहारे उछलना है जिसे ‘गिरह मारना’ कहा जाता है। जो अहीर इस कला में जितना ही निपुण होगा वह उतना ही वीर समझा जाता है।

अहीर लोग स्वभाव से सीधे और छल-प्रपंच से कोसों दूर रहते हैं। अतः इनकी इस सिध्दाई को मूर्खता समझा जाने लगा है। इसीलिए, यह कहा जाता है कि अहीर सदा नाबालिग ही रहता है। लोग गीतों, लोक-कथाओं और कहावतों में इनकी मूर्खता और काँड़यापन के अनेक उल्लेख पाये जाते हैं। अहीर का आई-क्यू (I Q) बहुत कम होता है अतः उसे समझाने वाला व्यक्ति बहादुर ही कहा जा सकता है।—

“अहिर के इयारी, भावों में उजारी”

अहीर से मित्रता नहीं करनी चाहिए अन्यथा ये बीच में ही धोखा दे देते हैं। उसका निर्वाह कदापि नहीं करते—



“अहीर के इयारी, भादों में उजारी।”

जब संसार में कोई भी व्यक्ति मित्रता करने के लिए न मिले तभी अहीर से इयारी (दोस्ती) करनी चाहिए अन्यथा नहीं।

“अहीर मिताई तब करे  
जब सब मीत मरि जाय॥”

इससे ज्ञात होता है मित्र के रूप में अहीर कितना अविश्वसनीय व्यक्ति होता है। एक दूसरी कहावत में इनकी मित्रता की उपमा ‘बदरकट्टू घाम’ (वह धूप जिसमें बादल छाये हुए हों) से दी गई है जो बहुत तेज और कष्टदायक होती है।<sup>१</sup> साँवा की खेती और अहीर की मित्रता कभी-कभी ही अपनी होती है। अर्थात् इन पर विश्वास नहीं किया जा सकता।<sup>२</sup>

अहीरों की बुद्धिहीनता सुप्रसिद्ध है। वह कितना भी चतुर क्यों न हो जाय परन्तु लोरिक (लोरकी नामक लोक-गाथा) को छोड़ कर वह और कुछ गाना नहीं जानता।

“कतनो अहीर होय सयाना।  
लोरिक छाड़ि न गावहि आना॥”

यदि कोई व्यक्ति जाति का अहीर हो, और जवानी से युक्त हो तथा इसके ऊपर उसके घर में नव मन धान भी पैदा हो गया हो तब तो उसके बल, शक्ति और ज्ञान का क्या कहना है। ये तीनों अनर्थ के कारण बन जाते हैं। लोकोक्ति है—

“एक त अहीर, दोसरे जवान।  
तीसरे होगइल नौ मन धान॥”

इस लोकोक्ति से सम्बन्धित संस्कृत की यह उक्ति कितनी समानता रखती है।

“यौवमं, धनसम्पत्तिः; प्रभुत्वं, अविवेकता।  
एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम्॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि अहीरों में यदि उनके पास धन और प्रभुता भी हो—ये चारों बातें पायी जाती हों तो विनाश को प्राप्त करना स्वाभाविक है।

अहीर का जीवन सीधा-सादा और उसका भोजन मोटा अन्न होता है। वह चटकीले तथा चटपटी वस्तुओं के खाने से दूर रहता है। इसीलिए यह कहा गया है कि “अहीर के भोजन कवन; दालि, बाटि, कोहड़ा।” इस जाति के लोग शरीर से बलिष्ठ तथा बड़े हठे कट्टे होते हैं। अतः इनका भोजन भी अपने शरीर के समान ही अधिक होता है। इसीलिए इनके पेट को गहरा कहा गया है।

“अहीर के पेट गहीर।” इनकी स्त्री बड़ी चतुर होती हैं। इसलिए कहावत है कि “अहिरिन अपना दही के कभी खट्टा ना कहेले।”

(२) कलवार—ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में इनका व्यवसाय शराब ‘चूआना’ था। कबीरदास के एक पद से भी इनके व्यवसाय का उल्लेख किया गया है:—

“अब में हो कलवारिन होइबे।  
राम-नाम के मदिरा चुअइबो,  
हो कलवारिन होइबों।”

भोजपुरी में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि कलवार की लड़की भूख से भलेही छटपटाती रहे परन्तु लोग यही कहते हैं कि उसने शराब पिया है।<sup>३</sup>

१. अहीर के इयारी बदरकट्टू घाम। (भो० लो० मु० पृ० ८९)

२. साँवा के खेती अहीर मीत।

कबो कबो होखे मीते॥ (भो० लो० पृ० १३५)

३. डॉ० मुक्तेश्वर तिवारी—भोजपुरी लोकोक्तियाँ और मुहावरे पृ० ८९।

भो०—३६



“कलवारे के बिटिया भूखन छपिटात रही,  
तबो लोग कही कि पियले बा।”

इसी भाव को द्योतित करने वाली एक दूसरी लोकोक्ति भी प्रचलित है—

“कलवार के लड़िकाखइला बिनामुअत रहे,  
तबो लोग कहल कि पी के मातल बा।”

इन लोकोक्तियों से ज्ञात होता है कि कलवार लोगों का प्रधान कार्य शराब बनाना है। अपने इसी निम्न व्यवसाय के कारण ये समाज में ऊँची निगाह से नहीं देखे जाते।

कलवार जाति का प्राचीन नाम ‘कल्यपाल’ था। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि<sup>१</sup> “इन (कलवारों) के पूर्वज कभी राजपूत सैनिक थे और सेना के पिछले हिस्से में रहकर ‘कल्यवर्त’ या ‘कलेऊ’ की रक्षा करते थे। न जाने किस जमाने में इन लोगों ने तराजू पकड़ी थी और अब पूरे बनिया हो गये हैं।” परन्तु मृच्छकटिक नाटक में ‘कल्यवर्तः’ का प्रयोग निन्दासूचक अर्थ में किया गया है।

(३) कहाँर—गाँवों में कहाँर लोग पालकी ढोने का काम करते हैं। भोजपुरी प्रदेश में दूल्हा पालकी में बैठकर ही विवाह करने के लिए जाता है। अतः इस अवसर पर पालकी की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। इसके फलस्वरूप विवाह के ‘सीजन’ में कहाँरों का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। पालकी ढोते समय ये धीरे चलने, तेजी से चलने तथा ठहर जाने के अर्थ को द्योतित करने के लिए एक विशेष शब्दावली का प्रयोग करते हैं जो इनके ही शब्द-कोष में पायी जाती है। लोक-गीतों में इनका उल्लेख अनेक स्थानों में पाया जाता है। चूँकि विवाह के पश्चात् ये विवाहिता स्त्री को अपनी पालकी में बिठाकर मायके से उसे समुराल ले जाते हैं, अतः इनका कार्य बधू की दृष्टि में बड़ा क्रूर समझा जाता है। जब पालकी ढोने का मौसम नहीं होता तब ये लोग किसानों के घर में सेवा या ‘टहल’ करते हैं।

(४) काछी—यह जाति भी कुजड़ा की ही भाँति साग-सब्जी पैदा करने का काम करती है। नदी के कछारों में ये सब्जी और फल पैदा करने का व्यवसाय करती है। सत्यनारायण ‘कविरत्न’ ने अपनी एक कविता में जमुना की तलहटी में काछियों के द्वारा सब्जी की खेती करने का उल्लेख किया है—

“काछी, माली करत है, आपन आपन खेत” यह जाति उत्तर-प्रदेश के पश्चिमी जिलों में ही प्रायः अधिक पायी जाती है।

(५) कानू—संस्कृत में ‘कन्दु’ शब्द का अर्थ ‘भाड़’ होता है जिसे भोजपुरी में ‘भनसारि’ कहा जाता है। कन्दु-पदव अन्न उसे कहते हैं जो भाड़ में भूना जाय। इसे जन-भाषा में ‘भुजुना’ भी संज्ञा प्राप्त है। देव-वाणी में ‘कान्दविक’ नाम से उस जाति का उल्लेख किया गया है जो भड़भूजे का पेशा करती है। संस्कृत के इसी ‘कान्दविक’ शब्द से ‘कानू’ की उत्पत्ति समझनी चाहिए।<sup>१</sup> चूँकि कानू या कान्दू जाति कन्दू (भाड़ झोंकना) का व्यवसाय करती है, अतएव कालान्तर में इसका नाम ‘कानू’ पड़ गया होगा।

इस जाति की स्त्रियाँ गाँवों के बगीचे में गिरी हुई सूखी पत्तियों को बटोर कर उनकी एक बहुत बड़ी तथा ऊँची राशि तैयार करती है। यह शुष्क-पर्ण-राशि ‘गाँज’ कही जाती है। इन्हीं सूखे पत्तों को भाड़में झोंककर ‘भुजुना’ भूना जाता है। चूँकि ‘भाड़ का झोंकना’ एक परिश्रम रहित और निरर्थक व्यापार समझा जाता है। अतः हिन्दी में ‘भाड़ झोंकना’ एक मुहावरे के रूप में प्रयुक्त होने लगा है जिसका अर्थ है निष्प्रयोजन कार्य करना। भाड़ में अन्न को भूनने की परम्परा कुछ कम प्राचीन नहीं है। जायसी ने विरहिणी नागमती के शरीर के जलने की उपमा भाड़ के जलने से दी है।<sup>२</sup>

फिरि फिरि भुजहि तजहि न बारू॥

पाणिनि ने भी भाड़ का उल्लेख किया है। उनके ‘संस्कृत भक्षाः’ (४।२।१३) सूत्र पर काशिका में तीन उदाहरण दिये गये हैं—(१) भ्राष्ट्रा अपूपाः (२) कालश अपूपाः और (३) कौम्माः अपूपाः। यहाँ भ्राष्ट्र का अर्थ ‘भाड़’ है। इस भाड़

१. डॉ० शशिशेखर तिवारी—भोजपुरी लोकोक्तियाँ पृ० १२५।

२. डॉ० द्विवेदी—अशोक के फूल पृ० ३३।

३. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी—अशोक के फूल पृ० ३२।

४. जायसी-पद्मावत (नागमती वियोग खण्ड)



में सेंक कर बनाये गये 'अपूप' को 'भाष्ट्रा अपूप' कहा जाता था। भोजपुरी प्रदेश में ये 'अपूप' आज भी बनाये जाते हैं। कड़े गूँथे हुए आटे की बड़ी लोई बनाकर भाड़ के पास ले जाते हैं और इसे खोंचे में रखकर भाड़ के भीतर रखकर सेंक लेते हैं। इसे 'खोरिया' कहा जाता है। यही पाणिनि का 'भाष्ट्रा अपूप' है।

(६) कायस्थ—यह एक बुद्धिजीवी जाति है जो अपनी लेखनी और बुद्धि के बल से जीविकोपार्जन करती है। कायस्थों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। शूद्रक के द्वारा लिखित मृच्छकटिक नाटक में इनका उल्लेख पाया जाता है, जहाँ न्यायालय (कचहरी) के एक कर्मचारी के रूप में इनका चित्रण किया गया है। मुगलकाल तथा ब्रिटिश राज में भी ये छोटे बड़े राजकीय पदों पर आसीन रहे। मुगलकाल में कचहरी का काम करने के लिए इन्होंने अरबी, फारसी और उर्दू का अध्ययन किया और अंग्रेजी राज में ये अंग्रेजी पढ़ने में भी अग्रणी रहे हैं। इस प्रकार समय के परिवर्तन के साथ ही ये अपने को उसके अनुकूल बनाने में बड़े तेज हैं। आज भी कायस्थ भारतवर्ष की शिक्षित तथा बुद्धिजीवी जातियों में प्रधान है। अत्यन्त प्राचीन काल से राज-काज तथा राज-दरबारों से सम्बद्ध होने के कारण ये वाक्-पटुता, लोक-व्यवहार और समाचातुरी में सिद्ध होते हैं।

ये कचहरी के जीव हैं। जैसे बत्तक पानी में आनन्द से तैरता रहता है उसी प्रकार से कायस्थ कचहरी में अपनी सिद्ध-हस्तता दिखाने में बड़े चतुर हैं। लिखा-पढ़ी करने तथा लेखा (एकाउण्ट्स) आदि के काम को बड़ी ही चतुरता से ये सम्पादित कर सकते हैं। शायद ही कोई कायस्थ का पुत्र ऐसा हो जो मन्द, बुद्धिहीन और मूर्ख हो। कायस्थ चतुरता, चालाकी और काइ-यांपन का प्रतीक समझा जाता है। इसीलिए इससे सभी लोग भय खाते हैं।

याज्ञवल्क्य ने कायस्थ शब्द की व्युत्पत्ति बतलाते हुए इसे काय (शासन) में 'स्थ' अर्थात् स्थित (काय + स्थ) लिखा है।<sup>१</sup> आचार्य उशना ने कायस्थों को एक चतुर जाति माना है और इस शब्द की निरुक्ति निम्नांकित प्रकार से बतलायी है। उनके अनुसार काक (कौआ) के 'का' यम के 'य' और स्थपति के 'स्थ' इन तीनों शब्दों के आदि अक्षरों को जोड़ देने से इसकी निष्पत्ति हुई है।<sup>२</sup> काक, यम और स्थपति शब्द क्रम से चंचलता, क्रूरता एवं लूट के परिचायक हैं।<sup>३</sup> संस्कृत के किसी कवि ने इनकी क्रूरता के सम्बन्ध में लिखा है कि कायस्थ के बालक ने अपनी माता के गर्भ में निवास करते समय माता के मांस का भक्षण नहीं किया। इसमें उसकी दया नहीं समझनी चाहिए। बल्कि उसके दाँतों का अभाव ही इसका प्रधान कारण था।<sup>४</sup> परन्तु निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि यह उक्ति अत्युक्ति मात्र है। कायस्थ जाति में ऐसे अनेक पुरुष रत्न पैदा हुए हैं जिनका आचरण देवतुल्य था। जो त्याग और तपस्या में किसी भी उच्च वर्ग के व्यक्ति को चुनौती दे सकते थे और जिनका जीवन गंगा की तरह पवित्र, दूध की भाँति स्वच्छ और पवमान् के सदृश पावन था।

लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं—लोक-गीत, लोक-कथा, लोकोक्तियाँ आदि—में कायस्थों की चतुरता का उल्लेख पाया जाता है। ये लोग अपनी बुद्धि से काम करते हैं। अतः यदि कायस्थ का लड़का पढ़ा लिखा है तब तो ठीक है नहीं तो उसे बेकार ही समझना चाहिए।<sup>५</sup> ये लोग गाँवों में प्रायः पटवारी (आधुनिक लेखपाल) का काम करते हैं और इन्हें सदा अपना कागज-पत्र—'खसरा' और 'खतिऔनी' आदि ही दिखाई पड़ता है।<sup>६</sup> ये हमेशा लेखा-जोखा करते रहते हैं, खेतों की पैदावार का औसत निकाला करते हैं तथा लेखन कार्य से सम्बद्ध रहने के कारण ये बड़े हिसाबी किताबी हैं। उनकी इसी प्रवृत्ति

१. याज्ञवल्क्य स्मृति १।३३६

२. काकाल्लौल्यं यमात् क्रौयं

स्थपतेरथ कृन्तनम्।

आद्यक्षराणि संगृह्य,

कायस्थ, इति निर्विशेत्।

उशना स्मृति ३५।

३. डा० शशिशेखर तिवारी—भो० लो० पृ० १२६।

४. कायस्थेनोदरस्थेन, मातुर्मासं न भक्षितम्।

न हि तत्र दया हेतुः, तत्र हेतुरदन्तता॥

५. कायस्थ का बेटा पढ़ा भला, या मरा भला।

६. कायथ के कागदे में सूझेला।



को लक्षित करती हुई एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है।<sup>१</sup> कायस्थ किसी से झगड़ा नहीं करता बल्कि वह अपनी तेज बुद्धि और अपनी कलम के बल से दूसरों का नाश कर देता है। वह खेती के कागजों में गलत इन्दिराज (entries) करके एक व्यक्ति के खेत को दूसरे के नाम लिख देता है। यह कहावत प्रसिद्ध है कि—

“एक कलम घसके, त बावन गाँव खसके”

अर्थात् वह एक कलम की नोक से किसी व्यक्ति के बावन गाँव के खेतों को दूसरे के नाम लिख देता है। ये लोग धनी वर्ग के सदस्यों को आपस में लड़ा देते हैं और स्वयं इस झगड़े से लाभ उठाकर अपने स्वार्थ की सिद्धि करते हैं।<sup>२</sup> ये महाकवि भवभूति के इस कथन के अनुयायी हैं जिसका उल्लेख उन्होंने निम्नांकित पंक्ति में किया है:—

“तटस्थः स्वान् अर्थान् घटयति च मौनं च भजते”

घूस लेना पटवारी अथवा लेखपाल का जन्मसिद्ध अधिकार माना जाता है। ये घूस लिए बिना बात तक नहीं करते। मुफ्तखोरी की आदत पड़ जाने के कारण, ये पैसा देकर किसी चीज को खरीदना नहीं जानते और जब किसी वस्तु का मूल्य रूपयों में चुकाना पड़ता है तब ये अशिष्ट आचरण करने लगते हैं।<sup>३</sup> कायस्थ लोग बड़े चालाक होते हैं। ये अपने मालिक को खुश करना जानते हैं। अपनी खुशामदी प्रवृत्ति के कारण ये किसी भी व्यक्ति को अपने वश में करने की कला को जानते हैं। इसीलिए इनकी गणना बैद्यों और दलालों की श्रेणी में की गई है।<sup>४</sup> एक ही कायस्थ अपनी चतुरता और चालाकी के द्वारा दूसरों का नुकसान करने के लिए पर्याप्त है परन्तु जहाँ तीन कायस्थ एकत्रित हो जाँय वहाँ तो सर्वनाश ही समझना चाहिए। एक पहेली में ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि जहाँ तीन कायस्थ हों वहाँ बज्र पड़ जायेगा।<sup>५</sup>

कायस्थों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये अपने जाति से बड़ा प्रेम करते हैं। यदि एक भी कायस्थ किसी आफिस, फ़ैक्टरी अथवा सचिवालय में ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित है तो वह अपनी जाति के हजारों आदमियों को लाकर भर देता है। ये ब्राह्मण और कुत्तों की तरह अपने बन्धु-बान्धवों को देखकर गुराते नहीं, प्रत्युत उनसे प्रेम करते हुए अपना साहचर्य स्थापित करते हैं। संगठन तथा एकता की यही भावना इनकी उन्नति का एक मात्र कारण है। एक कहावत में उनकी इस प्रवृत्ति का बड़ा सुन्दर उल्लेख पाया जाता है।<sup>६</sup>

“कायथ, कडवा, रोर; जाति जाति बटोर।”

अर्थात् कायस्थ, कौआ और सियार (गीदड़)—ये अपनी जाति के अन्य सदस्यों को एकत्रित करते हैं, उन्हें अपने पास बटोर कर लाते हैं।

(७) कुँजड़ा—इन लोगों का कार्य प्रधानतया शाक-सब्जी बेंचना है। गाँवों में जो व्यवसाय तुरहा जाति के लोग किया करते हैं शहरों में वही काम कुँजड़ा लोगों का है। ये सब्जी बेंचने के अतिरिक्त आम और अमरुद के कुंजों अथवा बगीचों को खरीद लेते हैं और पक जाने पर इन फलों को तोड़ कर बाजारों में बेंचते हैं। क्या कुंजों में रहने और उनकी रखवाली करने के कारण ही इनका नाम कुँजड़ा तो नहीं पड़ गया है ?

१. लेखे जोखे थाहे, लड़िका बुड़लन काहे।

इस लोकोक्ति से सम्बन्धित कथा इस प्रकार है। कोई मुन्शी जी (कायस्थ की उपाधि) किसी नदी की गहराई का औसत हिसाब निकाल रहे थे। उनकी गणना के अनुसार नदी की औसत गहराई इतनी ही थी जिसे आर पार किया जा सकता था। परन्तु अपने पुत्र को जिस स्थान पर नदी पार करने का उन्होंने आदेश दिया वहाँ नदी अधिक गहरी थी। अतः नदी को पार करते समय उनका लड़का डूबकर मर गया। उस मूर्ख मुन्शी को यह क्या मालूम था कि नदी की गहराई औसत से नहीं निकाली जाती।

२. “लड्डू लड़े, झिल्ली भरे, कायथ बेचारा का पेट भरे।”

यहाँ लड्डू का अर्थ धनी लोगों से समझना चाहिए। और झिल्ली का अर्थ ‘बुनिया’ है।

३. “नगद कायथ भूत, उधार कायथ देवता।”

४. पर घर नाचे तीन; कायथ, बंद, दलाल।

५. बज्जर पड़े कहवाँ, तीन कायथ जहवाँ।

६. डॉ० शशि शेखर तिवारी—भो० लो० पृ० १२६-२७।



इनकी स्त्री 'कुँजड़िन' के नाम से जानी जाती हैं जो अपने पति के साथ काम करने में बड़ी दक्ष होती हैं। ये आम और अमरुद के फलों को बेंचने के लिए छवड़ी में अपने सिर पर रख कर, गाँव गाँव में घूमती फिरती हैं।

(८) कुरुमी—यह एक खेतिहर जाति है। इनकी आर्थिक स्थिति प्रायः अच्छी पायी जाती है। ये लोग व्यापार भी करते हैं परन्तु इनकी प्रधान जीविका खेती पर ही निर्भर है। लोक-साहित्य में इनका वर्णन एक परिश्रमी जाति के रूप में किया गया है। इनकी स्त्रियाँ भी बड़ी ही मिहनती तथा परिश्रमशील होती हैं और अपने पति के साथ निरन्तर खेतों में काम करती हुई पायी जाती है। एक 'कविता' में इनके व्यवसाय का बड़ा ही सुन्दर वर्णन हुआ है जिससे अपने पति के साथ इनकी साहचर्य-प्रियता का भी पता चलता है।

“नीक जाति कुरुमिन की, खुरपी हाथ।  
आपन खेत निरावे, पिय के साथ॥”

एक लोकोक्ति में कोंहार और कुरुमी के द्वारा झुक झुक कर खेत को कुदाल के द्वारा खोदने का उल्लेख हुआ है।

“कुरुमी, कोंहार; हुचुक हुचुक के कुदरा पार।”

कुरुमी के विषय में यह कहावत प्रसिद्ध है।

“बनले मल्ल, बिगरले कुरुमी॥

अर्थात् धन से युक्त होने पर ये मल्ल (क्षत्रियों के एक विशेष जाति) के नाम से पुकारे जाते हैं परन्तु गरीब होने पर 'कुरुमी' की संज्ञा प्राप्त करते हैं।

एक लोकोक्ति में इनकी अविश्वसनीयता का पता चलता है:—

“पत्थर पर जब जामे गुरुमी।  
तबहु ना होखे आपन कुरुमी॥”

अर्थात् पत्थर की शिला पर गुरुमी (ककड़ी की जाति का एक पौधा) का पैदा होना संभव है परन्तु कुरुमी पर विश्वास करना असम्भव है। ये कभी भी अपने नहीं हो सकते हैं।

(९) कोईरी—यह बहुत परिश्रमी जाति है जिनका स्वभाव बड़ा सरल और रहन-सहन साधारण होता है। इनका प्रधान व्यवसाय शाक-सब्जी पैदा करना है। ये अपने खेतों को खूब अधिक जोतते हैं, उनमें गोबर तथा कम्पोस्ट की खाद प्रचुर मात्रा में डालते हैं जिससे उस खेत की उपजाऊ शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है। कोईरी के इस खाद युक्त खेत को “कोंड़ार” कहा जाता है। ये लोग इस ‘कोंड़ार’ में साल भर में तीन फसल पैदा करते हैं। मिन-मिन मौसमों में ये इन खेतों में अनेक प्रकार की शाक-सब्जियाँ पैदा करते हैं जिससे इनको प्रचुर आय होती है। प्रचण्ड गर्मी के दिनों में ही जब तरकारी पैदा होने का मौसम नहीं रहता ये ‘चीना’ बो देते हैं और कुएँ से सिंचाई करके इस पैदावार को दो मास के भीतर ही पैदा कर लेते हैं। इस प्रकार कोईरी केवल दो-तीन बीघे जमीन में ही शाक-सब्जी के द्वारा इतना द्रव्य पैदा कर लेता है जिससे वह अपने परिवार का पालन-पोषण अच्छी तरह से कर लेता है।

कोईरी बड़े ही परिश्रमी होते हैं। खेत ही इनका साधन है। यही इनकी कर्मस्थली है। इनके सम्बन्ध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि:—

“कोईरी अहीर खेती करे  
अउर करे वरिआई।”

अर्थात् कोईरी और अहीर अपने अधिक परिश्रम के द्वारा सच्चे अर्थों में खेती करते हैं और अन्य जाति के लोग तो जबरदस्ती करते हैं। वास्तव में ये दोनों अपने घनघोर श्रम के द्वारा पृथ्वी से सोना उगलवाते हैं।

इतनी जबरदस्त मिहनत करने के बावजूद भी कोईरी अपने परिवार का पेट पालने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पाता। वह एक निर्धन वर्ग का सदस्य माना जाता है। इसका उल्लेख एक कहावत में इस प्रकार से किया गया है:—

१. डॉ० शशिशेखर तिवारी—भोजपुरी-लोकोक्तियाँ पृ० १२७।



“कोईरी के लरिका जनमें के हीन।  
हाथ में खुदपा मोथा बीन॥

अर्थात् कोईरी का पुत्र जन्म से ही दरिद्र, दीन-हीन होता है। वह आरम्भ से ही हाथ में खुरपी लेकर मोथा—एक विशेष घास—को बीनता है, उसकी निराई करता है।

कोईरी एक सीधी-सादी जाति है। यह छल-प्रपञ्च से कोसों दूर रहती है। इनको अपने खेत में कठिन परिश्रम कर तरकारी उगाने से ही फुर्सत नहीं मिलती। इनकी इसी सीधापन और सज्जनता को लक्षित करते हुए एक मुहावरा प्रचलित है—

“कोईरी के देवता नियर सीधा”

अर्थात् कोईरी के देवता के समान सरल और सज्जन। गाँवों में यदि कोई व्यक्ति कम बोलता है, सीधा तथा सरल है तथा छल-प्रपञ्च से कोसों दूर रहता है ऐसे व्यक्ति की उपमा ‘कोईरी’ के देवता से दी जाती है। इस प्रकार कोईरी सीधापन का प्रतीक और सज्जनता की मूर्ति है।

(१०) कोंहार—संस्कृत के ‘कुम्भकार’ शब्द से कोंहार की निरुक्ति हुई है जिसका अर्थ है कुम्भ अर्थात् घड़ा का बनाने वाला। गाँवों में जिस प्रकार से बड़ई और लोहार किसानों के लिए लकड़ी और लोहे के सामानों को तैयार कर उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है उसी प्रकार से कोंहार सामान्य जनता के उपयोग के लिए मिट्टी के विभिन्न उपयोगी पात्रों को बनाता है। इसके द्वारा निर्मित कुछ पात्रों के नाम इस प्रकार हैं—करवा, पुरवा, चुक्कड़, नादी, मटका, मटकी, सुराही घड़ा, नाद, छोड़ि आदि। इसमें पुरवा सबसे छोटा पात्र होता जिसमें सामान्यलोग जल, चाय या दुग्ध-पान करते हैं। परन्तु छोड़ि सबसे बड़ा जल का पात्र होता है जिसमें विवाह के अवसर पर बारातियों के पानी पीने के जल का संचय किया जाता है। गाँवों में जहाँ पानी रखने के लिए बड़े बड़े कंडाल नहीं होते वहाँ उनकी पूर्ति इसी ‘छोड़ि’ से की जाती है।

कोंहार—जिसे कुम्हार भी कहा जाता है—का साधन पत्थर का एक गोलाकार खण्ड मात्र है जिसे ‘चाक’ कहते हैं। उसमें एक छेद बना रहता है जिसमें डण्डा या छोटी छड़ी डाल कर कुम्हार उसे दायें से बायें घुमाता है और अपने हाथों से मिट्टी के ‘लौंदा’ को स्पर्श कर उससे विभिन्न पात्रों की आकृति बनाता है। अपने इसी निर्माण कुशलता के कारण वह ब्रह्मा से भी स्पर्शा करने की कामना करता है।

“भवेत्तच्छ इवो वा नियतमिह पापिनि कलियुगे।  
घटानां निर्मातुः त्रिभुवनविधातुश्च कलहः॥”

परन्तु कोंहार का सबसे अधिक महत्व इससे है कि वह ग्रामीणों के गृह-निर्माण के लिए आवश्यक उपादान प्रस्तुत करता है। गाँव के लोग प्रायः मिट्टी का मकान बनाते हैं और उसे ऊपर से खपड़ा और नरिया से छा देते हैं। ये दोनों ही वस्तुयें ग्रामीण कुम्हार की प्रयोगशाला—आँवा—में तैयार की जाती हैं। इनके अभाव में मकान का बनना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त वह मंगलमय अवसरों—विशेषकर विवाह के समय—पर गणेश की प्रतिमा, मंगलमय हस्ती (हाथी) और ‘भड़ेसर’ आदि को बनाकर जनता के कार्यों में सहयोग प्रदान करता है। दिवाली के अवसर पर कुम्हार की कला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई दिखलाई पड़ती है। विभिन्न जानवरों, पक्षियों, देवताओं की प्रतिमाओं को मिट्टी के लौंदे के द्वारा निर्मित कर वह उनको सजीवता प्रदान कर देता है। दिवाली के त्यौहार पर गणेश और लक्ष्मी की रंगीन तथा मनोहारिणी प्रतिमा देखते ही बनती है।

कोंहार के सम्बन्ध में कई कहावतें प्रसिद्ध हैं। एक लोकोक्ति का भाव यह है कि कुम्हार के आवें से अनेक जीवों की रक्षा होती है।<sup>१</sup> इसी प्रकार से कोंहार घड़े का निर्माण करता है और अपनी सृष्टि से समस्त संसार को भर देता है।<sup>२</sup> इस दृष्टि से कुम्हार का पेशा बड़ा ही उपयोगी व्यवसाय है जिसकी आवश्यकता ग्रामीण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दिखायी पड़ती है।

१. करवा कोंहार के, घीव जजमान के।

बाबा जी करमु, स्वाहा स्वाहा॥

२. कोंहार के घुई पाख, दोसरा के जीव राख।

३. घड़े कोंहार, भरे संसार।

डॉ० श० शे० तिवारी—भोजपुरी लोकोक्तियाँ पृ० १२७।



(११) खटिक—इनका व्यवसाय भी प्रायः कुंजड़ों के समान है। ये लोग फल के बगीचों को खरीदने तथा साग-सब्जी बेचने का काम करते हैं। जो जाति गाँवों में कुंजड़ा के नाम से प्रसिद्ध है वहीं शहरों में खटिक के नाम से जानी जाती है। दोनों के व्यवसाय में कुछ भी अन्तर नहीं समझना चाहिए।

(१२) गोंड—भोजपुरी प्रदेश में गाँवों में गोंड नामक एक जाति निवास करती है जिनका पेशा किसानों के घर में सेवा वृत्ति करना है। ये लोग मध्यप्रदेश के सुप्रसिद्ध 'गोण्ड' नामक आदिवासियों से नितान्त भिन्न हैं। उन गोण्डों का मध्य-प्रदेश में अपना राज्य था जो गोण्डवाना के नाम से प्रसिद्ध था। यहीं की रानी दुर्गावती थी जिसने अपनी वीरता, शौर्य एवं पराक्रम के कारण भारतीय इतिहास में अपना नाम अजर-अमर कर दिया है। अतः इन पराक्रमी आदिवासी गोण्डों से भोजपुरी गोण्डों की समानता करना नितान्त भ्रमपूर्ण है। नेबिल ने स्पष्ट ही लिखा है कि इन दोनों गोण्ड जातियों का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है।<sup>१</sup>

भोजपुरी क्षेत्र में निवास करने वाले गोण्डों की रहन-सहन साधारण और आचार-विचार शुद्ध है। यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है कि ब्राह्मणों के भी हाथ का बनाया हुआ ये भोजन ग्रहण नहीं करते। परन्तु इनके इस कार्य से ब्राह्मणों के प्रति अस्पृश्यता की भावना नहीं बल्कि अपने स्वामी को कष्ट न देने की भावना ही कारण है। ये लोग शरीर से हट्टे कट्टे होते हैं। अतः किसानों के घरों में पानी भरने, तथा सेवा टहल करने का काम करते हैं। इन का जीवन टोना-टोटका तथा अन्य धार्मिक मान्यताओं से भरा पड़ा है।

गोंड लोग अपने गीत और नाच के लिए प्रसिद्ध हैं। इनका गीत 'गोड़ऊ गीत' के नाम से और नृत्य 'गोड़ऊ नाच' के नाम से विख्यात है। ये लोग अपने व्यङ्ग्य-विनोद और भड़ैती के कारण जनता के प्रिय-पात्र बन गये हैं। इनके गीतों में भी वैसी ही मस्ती पायी जाती है। गोंड लोगों का यह गीत कितना हास्य तथा विनोद पूर्ण है:—

“हलबल धुनिया धूने, सूत काते हलुआई।  
फुफुती तर के झुलनी झूले, बुटवल के कमाई।  
आरे बुटवल के कमाई॥”

परन्तु गोंड लोग अपने नाच के लिए ही समधिक प्रसिद्ध हैं जो “गोड़ऊ नाच” पुकारा जाता है। इस नाच में केवल पुरुष ही सम्मिलित होते हैं। दल का नेता एक कटे बाँस को हाथ में लेकर नाचता है और नृत्य का अभिनय करने के साथ कुछ सम्वाद भी करता है। उसका यह सम्वाद बड़ा ही अश्लील होता है जिसमें गाली-गलौज, मोड़ी तथा अश्लील बातों का समावेश किया जाता है। दल का दूसरा व्यक्ति एक विशेष प्रकार का बाजा बजाता है जिसे ‘हुड़ुका’ कहते हैं। इनका अभिनय—जिसमें हास्य, विनोद, अश्लीलता सभी का संमिश्रण होता है—‘हर बोलाई’ कहा जाता है। इसी कारण भोजपुरी में ‘हरबोलाई करना’ मुहावरा के रूप में प्रचलित हो गया है जिसका अर्थ है हास्यपूर्ण अनुकरण करना। “गोड़ऊ नाच” को देखने के लिए गँवई के लोगों की अपार भीड़ इकट्ठी देखी जा सकती है जो इन लोगों के हँसोड़िये अभिनय को देखकर हँसते हँसते लोट-पोट हो जाते हैं।

(१३) घटवार—नदियों को पार करने के लिए विभिन्न स्थानों पर घाट बने होते हैं। इन घाटों पर जाकर ग्रामीण जनता नावों के द्वारा नदी के एक पार से दूसरे पार को जाती है। इन घाटों को ठीका (contract) पर दिया जाता है। अतः जो जाति इस व्यवसाय को करती है उसे ‘घटवार’ कहते हैं। ये नावों के द्वारा नदी पार करने के लिए जनता से शुल्क रूप में पैसा वसूल करते हैं। ये लोग इस कार्य में बड़ी सक्ती करते हैं और गरीब लोगों से भी ‘उतराई’ का शुल्क लिये बिना उन्हें पार नहीं उतारते। उनके इसी निर्दयपूर्ण व्यवहार के कारण यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

“घटवार बाड़ा बटवार होखेला”

अर्थात् घटवार बड़े ही बटमार अथवा दुष्ट होते हैं। इनका आचरण भी बहुत अच्छा नहीं समझा जाता। पार जाने वाली युवती स्त्रियों से छेड़छाड़ कर ये अपने अनैतिक चरित्र का परिचय देते हैं। एक लोक-गीत में यह वर्णन पाया जाता है कि कोई युवती नदी के पार जाना चाहती है, परन्तु दुष्ट घटवार उसे मछली और दूध देने का प्रलोभन देता है परन्तु वह सती स्त्री उसके प्रस्ताव

१. “There is no apparent connection between these Gonds and the aboriginal tribe of the same name who belong to the hill country of Central India.”

H. R. Nevill—Benares district Gaizeteer Vol. XXIV. Allahabad 1907.



को अस्वीकार करती हुई कहती है कि तेरी मछली में मैं आग लगा दूंगी, तेरे दूध में वज्र पड़ जाय। तुम भले ही मुझे पार मत उतारो। मैं पार नहीं जाऊँगी।<sup>१</sup> इनकी बड़ी नाव को 'घटहा' कहा जाता है जिसमें बैठकर ये लोगों को नदी के पार उतारते हैं। घटवार नदी के घाट का देवता माना जाता है। वह अपने अधिकारों का दुरुपयोग कर जिसको चाहे पार उतारे अथवा न उतारे। अब अनेक स्थानों पर 'पान्टुन ब्रिज' (पीपा का पुल) बन जाने के कारण घटवारों के अत्याचारों में कमी आ गई है।

(१४) घाटिया—घटवार जहाँ अपने घटहा (नाव) के द्वारा लोगों को नदी के पार उतारता है वहाँ घाटिया सर्व साधारण जनता को अपने धार्मिक क्रिया-कलापों के द्वारा भव-सागर से पार करता है। घटवार और घाटिया की नाम राशि एक ही है और ये दोनों ही पार लगाने का काम करते हैं। काशी, अयोध्या और हरिद्वार आदि धार्मिक स्थानों पर, नदी के किनारे घाटों पर बैठने वाले ब्राह्मणों को 'घाटिया' कहा जाता है। ये गंगा में स्नानार्थी जनता के लिए संकल्प पढ़ते हैं, पितृपक्ष के दिनों में उनके द्वारा पितरों को जलाञ्जलि देने के विधान को सम्पादित करते हैं। इसके फलस्वरूप स्नान करने वाले लोग इन्हें दान-दक्षिणा भी देते हैं। यही 'घाटिया' के जीवन यापन का एकमात्र साधन है। चूँकि घाटों पर बैठकर पूजा-पाठ कराना ही इनका एकमात्र कर्म है अतः इन्हें 'घाटिया-ब्राह्मण' भी कहते हैं। गंगा-माता ही इनकी उदर-परी की पूर्ति के लिए एकमात्र साधन है। अतः ये घाटिया 'गंगा-पुत्र' नाम से भी प्रसिद्ध हैं। वाराणसी में ये 'घाटिया' प्रचुर संख्या में पाये जाते हैं। गंगा-दशहरा के दिन ये 'गंगा-पुत्र' बड़ा उत्सव मनाते हैं और बड़ी भक्ति-भाव से गंगा-माता की पूजा करते हैं। ये यात्रियों के निवास के लिए अपने घर में स्थान देते हैं, उन्हें नगर की तीर्थयात्रा कराते हैं। अतः धार्मिक पथ-प्रदर्शक के रूप में इनकी संस्था बड़ी उपयोगी है। इन लोगों में कुछ विद्वान् और सच्चरित्र भी पाये जाते हैं। परन्तु कुछ व्यक्तियों के अनाचरण के कारण यह व्यवसाय बहुत आदर की दृष्टि से अब नहीं देखा जाता।

(१५) जुलाहा—इस जाति के लोग कपड़ा बुनने और बुने हुए कपड़ों को बेचने का काम करते हैं। हिन्दू-धर्मावलम्बी भी इस पेशे को अपनाये हुए हैं जो 'तन्तुवाय' के नाम से प्रसिद्ध है। ये ताना और बाना को मिलाकर बड़े परिश्रम से कपड़ा बुनते हैं। महात्मा गांधी के स्वदेशी आन्दोलन के पूर्व, ये लोग हाथ से काते गये मोटे सूतों को बुना करते थे जो 'मोटिया' कहा जाता था। प्रत्येक गाँव में इन लोगों की वस्ती पायी जाती है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इनके विषय में लिखा है कि "जुलाहों के पुरोहित 'साई' कहे जाते हैं। साई, अर्थात् स्वामी। नाथ परम्परा में गुरु को 'नाथ' या स्वामी कहते थे। अब ये लोग पक्के मुसलमान हो गये हैं। केवल नाम में अपनी पुरानी स्मृति ढोते आ रहे हैं।"<sup>२</sup>

जुलाहों के स्वभाव, रहन-सहन तथा उनके पेशा के सम्बन्ध में अनेक आवश्यक जानकारी का पता लोक-जीवन में प्रचलित लोकोक्तियों से चलता है। एक जुलाहा करघे पर कपड़ा बुनना छोड़कर कोई तमाशा देखने गया किन्तु उस तमाशा में उसे अकारण ही चोट खानी पड़ी :—

“करिगह छोड़ि तमाशा जाए।  
नाहक चोट जोलाहा खाए॥”

इनका स्वभाव कुछ झगड़ालू होता है इस सम्बन्ध में यह कहावत कही जाती है।

“आठ जुलाहा नौ हुक्का, तवनों पर थुक्कम थुक्का।”

अर्थात् प्रचुर सामग्री होने पर भी ये आपस में झगड़ते रहते हैं।

संस्कृत में एक कहावत है कि :—

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्थं त्यजति पंडितः

१. “आगि लगइबों चाल्हावा मछरिया,

बजर परसु तोरा दूध ए।

आरे टुनुकी फुटहु तोरा जांत के करिया।

नउजी उतारि देबो पार ए॥”

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १ पृ० १३५।

२. डॉ० द्विवेदी—अशोक के फूल पृ० ३३।



परन्तु इनका आचरण इसके ठीक विपरीत है।

सबस हारों त हारों, गजभर ना फारों

अर्थात् खरीदने वाले के प्रति जुलाहा कहता है कि मैं सर्वस्व भले ही हार जाऊँ परन्तु थान से एक गज कपड़ा फाड़कर नहीं दूँगा। ये थोड़ा सा धन पा जाने पर भी सन्तुष्ट हो जाते हैं—

“गगरी अनाज भइल, जोलहन के राज भइल”

अर्थात् जब जुलाहे को एक घड़ा अनाज हो जाता है तब वह अपने को राजा समझने लगता है। इनकी बातें भी विश्वसनीय नहीं हैं।<sup>१</sup>

“जोलाहा के आई-पाई, चमरा के विहान”

अर्थात् यदि जुलाहा कपड़ा माँगने पर शीघ्र ही कपड़ा बनाकर देने का आश्वासन दे और चमार दूसरे ही दिन जूता बनाकर देने को कहें तो भी इनकी बातों पर विश्वास नहीं करना चाहिए। पठान जुलाहों के यहाँ नौकरी (बेगारी) करते हैं। इस अर्थ को द्योतित करने वाली लोकोक्ति है “जोलाहा के बेगरिहा पैठान”। जुलाहा के घर की बकरी कभी ‘मरखाहि’ (मारने वाली) नहीं होती क्योंकि उसे सदा अपनी ही मृत्यु का भय बना रहता है।<sup>२</sup>

“जोलाहो के छेरि मरखाहि”

इस प्रकार जुलाहों के पेशा, जीवनचर्या, स्वभाव तथा उनकी अविश्वसनीयता की झाँकी हमें लोक-साहित्य में देखने को मिलती है।

(१६) ठठेरा—इस जाति के लोग प्रायः पीतल के बर्तन बनाने का काम करते हैं। ये अपनी हथौड़ी से पीतल को पीटते हैं जिससे ‘ठक ठक’ की आवाज होती है। इसीलिए संभवतः इन्हें ठठेरा कहा जाता है। वाराणसी में जहाँ पीतल के बर्तन बनाये जाते हैं उस स्थान का नाम ही ‘ठठेरी गली’ पड़ गया है। इसी प्रकार से लोहारों की कर्मस्थली ‘लोहटिया’ के नाम से प्रसिद्ध है।

ठठेरा पीतल की धातु से लोटा, गिलास, थाली, परात आदि बर्तनों को बनाते हैं। ये इन बर्तनों पर नक्काशी का काम भी करते हैं जिसके द्वारा ये विभिन्न देवी और देवताओं की मूर्तियाँ उत्कीर्ण करने में समर्थ होते हैं। इन्हें धातु-विज्ञान का अच्छा ज्ञान होता है। अतः ये खरी और खोटी धातु को शीघ्र ही पहिचान लेते हैं। इसी कारण यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

“ठठेरे ठठेरे में बदलाई नहीं होती”

जिसका आशय यह है कि एक चतुर व्यक्ति दूसरे चतुर आदमी को ठग नहीं सकता है। ठठेरा फूटे हुए पुराने बर्तनों को मरम्मत करने तथा जोड़ने का भी काम करते हैं।

(१७) तमोली—जो व्यक्ति पान का व्यवसाय करके अपनी जीविका चलाता है उसे ‘तमोली’ कहते हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति ‘ताम्बूल’ से ज्ञात होती है जिसका अर्थ पान है। ताम्बूल का व्यापार करने के कारण इस जाति का अभिधान ‘ताम्बोली’ रहा होगा। इस शब्द का परिवर्तन कालक्रम से तमोली के रूप में हो गया। भोजपुरी में इसे ‘पनहेरी’ कहते हैं जो ‘पानहर्ता’ शब्द का अपभ्रंश रूप ज्ञात होता है।

पनहेरी पान का व्यापार करता है। वह पानों को खरीद कर उन्हें बड़े करीने से सौ सौ की गड्डियों में लगाकर रखता है जिसको ‘ढोली’ कहते हैं। वह पान को पकाने की विधि में भी निष्णात होता है। पानों में ‘मगहिया पान’ बहुत प्रसिद्ध है परन्तु बनारसी पान का भी अपना विशेष महत्व है। पान में कत्था, चूना, सुपारी लगाकर उसे तैयार किया जाता है। अतः पान के संबंध में यह लोकोक्ति प्रचलित है कि—

“एक बेकति के चार कान।

खैर, सोपारी, चूना, पान॥”

१. डॉ० शशि शेखर तिवारी—भोजपुरी लोकोक्तियाँ, १२९।

२. डॉ० मुक्तेश्वर तिवारी—भो० लो० मु० पृ० ८९।

भो०—३७



विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर पनहेरी पान लेकर गृहस्थों के घर जाता है और उन्हें अपनी 'सौगात' समर्पित करता है। इसके लिए उसे मुंह मांगी दक्षिणा मिलती है। पान का प्रयोग पूजा-पाठ में भी किया जाता है। यदि तमोली न हो तो बहुतों का मुंह लाल होने से रह जाय और बहुत से शौकीन पान के बिना बेपानी हो जाँय। यह तमोली की ही कृपा है कि वह बहुतों के मुख की लाली बनाये रखता है।

(१८) **तुरहा**—इस जाति के लोगों का प्रधान व्यवसाय शाक-सब्जी बेंचना है। परन्तु ये शाकों को केवल बेंचते ही नहीं उन्हें खेतों में पैदा भी करते हैं। खटिक और तुरहा इन दोनों का व्यवसाय प्रायः एक समान ही है। परन्तु जहाँ खटिक शाकों को केवल बेंचता है वहाँ तुरहा इन शाकों की खेती भी करता है। नदियों की पेटी में—जिसे 'छाड़न' कहा जाता है—जहाँ बलघुस (बालू से मिली हुई) मिट्टी की प्रधानता होती है वहाँ तुरहा का एक छत्र साम्राज्य विराजमान दिखाई पड़ता है। बालुकामय मिट्टी ककड़ी, खरबूजा और तरबूजा को पैदा करने के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है। अतः नदी के इसी बालुकामय पुलिन पर तुरहा अपनी झोपड़ी बनाता है और वहाँ बालू में से तेल (फल) निकालने का सफल प्रयास करता है। वे इसी बालू को खोदकर छोटी-छोटी कुइयाँ बनाते हैं और इसी कूपजल से अपने पौधों को सींचते हैं।

बालू की सतह पर पैदा होने वाले इन फलों को बाँस के बने हुए 'ओड़ा' (बड़ी चँगोली) में लेकर इनकी स्त्री—तुरहिन—गाँवों तथा बाजारों में घूम-घूम कर बेंचती हैं। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है कि "जातियों की तालिका में इनका नाम तो मिल जाता है परन्तु किसी नृतत्व-शास्त्रीय विवेचन में मैंने इनकी चर्चा नहीं पढ़ी। मेरा अनुमान है कि यह जाति आर्यों और गोड़ों के मिश्रण की एक कड़ी है। नृतत्व-शास्त्र के अध्येता इनको अपनी अधीति का उपयोगी विषय बना सकते हैं।"

(१९) **तेली**—इस जाति का प्रधान व्यवसाय तेल पेरना है। सम्भवतः इस शब्द की निरुक्ति संस्कृत तैलिक से हुई है जिसका अर्थ है तेल का निर्माता। तेली का एकमात्र साधन 'कोल्हू' है जिसमें वह तेल पेरता है। वह इस कार्य के लिए एक बैल को कोल्हू में जोतता है। इस बैल को 'नाटा' कहा जाता है जो अपने नियमित मार्ग पर गोलाई में सदा घूमता रहता है। इसीलिए सतत कार्य में निरत व्यक्ति—जो अनवरत गति से अपने काम में जुटा रहता है—को 'कोल्हू का नाटा' की संज्ञा प्रदान की जाती है। इस बैल की आँखों को कपड़े से ढक दिया जाता है जिससे वह किसी वस्तु को देख कर भड़क न जाय। आँखों के इस आवरण को 'छोपनी' कहते हैं।

ऐसा ज्ञात होता है प्राचीनकाल में तेली सम्भवतः केवल तिल को ही पेर कर तेल बनाता था। इसी कारण इसका नाम 'तेली' पड़ गया हो। परन्तु आजकल वह सरसों, तिल, बरें, चिनिया बदाम आदि सभी वस्तुओं से तेल बनाता है। मशीन के इस युग में कोल्हू की प्रथा अब उठती चली जा रही है, परन्तु 'कोल्हू का नाटा' साहित्य जगत् में सदा अमर रहेगा।

लोगों का यह विश्वास है कि प्रातःकाल में तेली का मुख देखना अमंगल कारक है। किसी व्यक्ति के घर सौतेली (सौ-तेली) मां थी। उसने किसी तेली का मुख देख लिया। इस पर जब किसी ने उससे 'अमंगल' होने की बात कही तब उसने झुंझलाकर उत्तर दिया कि—

“एक ही तेली कहा करिहें  
सौतेली बसे जिसके घर माँही”

इसी एक सूक्ति से तेली के मुंह देखने से अपशकुन की सम्भावना का अनुमान किया जा सकता है।

तेली का उल्लेख भोजपुरी लोकोक्तियों में पाया जाता है। अपने व्यवसाय के द्वारा विपुल द्रव्य कमाने के कारण तेली धनी माना जाता है। अतः इसके सम्बन्ध में यह कहावत प्रसिद्ध है किः—

“सरलों तेली तऽ एक अघेली”

अर्थात् यदि गरीब भी तेली होगा तो उसके पास एक अघेला (थोड़ी-सी सम्पत्ति) तो अवश्य ही होगा। तेली धन का लोलुप होता है अतः जब तीसी महँगी हो जाती है तभी वह तेल पेरना प्रारम्भ करता हैः—

“तीन के तीसी तेरह लागलि,  
तब तेलिनियाँ पेरे लागलि॥”



पूस और माघ महीनों के बीत जाने पर तेली हाथ नहीं लगता। इसका कारण यह है कि इन महीनों में तेलहन तैयार हो जाता है। अतः किसान इसे बेचने के लिए उसका दरवाजा खटखटाता है। इस तथ्य का उल्लेख निम्न प्रकार से हुआ है:—

“माघ पूस ठेली, तब ना हाथ तेली”

तेली स्वभाव से ही कृपण होता है। उसे पैसा खर्च करने में बड़ा कष्ट होता है। वह उदार दिल नहीं बल्कि संकुचित है। अतः उसके विषय में यह ठीक ही कहा गया है कि “तेली के जीव अघेली” अर्थात् इसका हृदय अघेले के बराबर तुच्छ होता है।

(२०) दर्जी—इस जाति के सदस्य कपड़ा सीने का कार्य करते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सम्प्रदाय के लोग इस पेशा को करनेवाले हैं परन्तु इनमें मुसलमानों की ही संख्या अधिक है। भोजपुरी की एक कहावत है—

“दरजी का पुता जब तक जीता तब तक सीता।”

अर्थात् दर्जी का लड़का जब तक जीता है तब तक सिलाई के काम को ही करता है। यह लोकोक्ति कुछ इसी प्रकार की है कि “यावत् जीवमधीते विप्रः” अर्थात् ब्राह्मण जब तक जीवित रहता है तब तक ज्ञान की गुदड़ी को सीता रहता है। दर्जी का पुत्र ही नहीं बल्कि उसकी पुत्री भी कपड़ा सीने का कार्य करती है जैसा कि यहाँ संकेत किया गया है—

• “बुखरे दर्जी का सीना देखकर  
जी में आता है कि मलमल बें।”

दर्जी मोटे-पतले सभी प्रकार के वस्त्रों को सीने का काम करता है:—

“दर्जी के सुई कन्बों तास में, कन्बों टाट में”

अर्थात् दर्जी की सुई कभी रेशम में और कभी टाट में चलती है।

विवाह अथवा शादी के मांगलिक अवसर पर या होली आदि त्यौहारों के समय दर्जी की माँग बहुत अधिक हो जाती है। वह दिन-रात बर-बधू के कपड़ों को सीने में संलग्न रहता है। ‘वियहुती’ पीली साड़ी में ‘मनोरी-पत्ती’ लगाना तो उसी का ही काम है। होली के पूर्व छोटे बच्चों के लिए कुर्ता और टोपी सीने से उसे फुर्सत नहीं मिलती। इस प्रकार दर्जी ग्रामीण जनता के लिए बड़ा ही उपयोगी है।

(२१) धुनिया—इनका व्यवसाय रूई धूनना है। जाड़े के दिनों ले जब ओढ़ने और बिछाने की आवश्यकता होती है तब लोग रजाई और तोसक बनवाने के लिए रूई खरीदते हैं। धुनिया लोग इस रूई को अपनी धुनुकी से ‘धूनकर’ इन वस्त्रों में भर देते हैं। यही इनका एकमात्र पेशा है। ये जाड़े को ऋतु में गाँवों में घूमते फिरते हैं और रूई धूनने के लिए अपनी सशुल्क सेवाओं को प्रस्तुत करते रहते हैं। ये बड़ी शीघ्रता के साथ रूई को धूनते हैं जिसका उल्लेख एक लोक-गीत में इस प्रकार से हुआ है:—

“हलबल हलबल धुनिया धूने  
सूत काते हलुआई।  
फुफ़ती तर के झुलनी झूले,  
आरे बुटवल के कमाई॥”

धुनुकी नामक अपने साधन के द्वारा रूई को ‘धुन’ ‘धुन’ की आवाज कर धूनने के कारण ही इनका नाम ‘धुनिया’ पड़ गया होगा।

(२२) धोबी—

धोबी का प्रधान व्यवसाय ग्रामीण तथा नगर निवासियों के मलीन वस्त्रों का प्रक्षालन करना है। धोबी अथवा उसकी स्त्री—धोबिन—गाँव के प्रत्येक घर में जाकर गन्दे कपड़ों को इकट्ठा करती है। वह इन वस्त्रों की अपने वाहन ‘गदहा’ पर लादकर किसी नदी, तालाब, तलैया अथवा पोखरे पर ले जाती है। वहाँ वह किसी पत्थर अथवा काठ के किसी टुकड़े पर जिसको ‘पाट’ कहते हैं—उन वस्त्रों को पटकती है। वह इन वस्त्रों को इस निर्दयता के साथ पीटती है कि कमजोर कपड़ों का दिवाला निकल जाता है। इसी कारण भोजपुरी में ‘पाट पर पीटना’ एक मुहावरे के रूप में प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ है निर्म-



मता के साथ किसी व्यक्ति को पीटना। गाँव का घोबी कपड़ों को साफ करने के लिए साबुन या सर्फ नहीं का प्रयोग करता बल्कि इसके स्थान पर वह 'रेह' और गदहे की लीद का प्रयोग करता है। घोबी गदहे पर 'लादी' (गन्देवस्त्र) लादकर प्रातःकाल ही अपने गन्तव्य स्थल पर चला जाता है और सूर्यास्त तक वस्त्र प्रक्षालन के कार्य में संलग्न रहता है। एक गीत में वह अपनी स्त्री से कहता है कि ऐ घोबिन ! तुम मेरे लिए मोटी-मोटी रोटी अर्थात् लिट्टी पकाना क्योंकि मुझे कल सवेरे 'घाट' पर (कपड़ा धोने का स्थान) बहुत दूर जाना है—

“मोटी मोटी लिट्टिया पकइहें रे धोबिनिया  
मोरा जाए के बा बड़ी दूर।”

यही मोटी लिट्टी घोबी के मध्याह्न भोजन का कार्य करती है जिसे खाकर वह दिन भर कठिन परिश्रम करने में लगा रहता है। वह जब कपड़ों को 'पाट' पर पटकता रहता है तब अपने श्रम की व्यथा को कम करने के लिए अथवा उसे भुला देने के लिए 'आछो'-आछो' का जोरों से उच्चारण करता है। यद्यपि यह शब्द निरर्थक है परन्तु उसके कष्ट को हटात् कम करने में सार्थक है।

घोबी घुटने भर पानी में खड़ा होकर कपड़ों को पटक कर और उन्हें साफ करके धोबिन को देता जाता है। वह इन वस्त्रों को घास पर फैला देती है। सन्ध्या की वेला में घर लौटते समय धोबिन सभी वस्त्रों को एकत्रित कर गदहे पर लाद देती है। ग्रामीण धोबिन के पास कपड़ों की सिकुड़न को ठीक करने के लिये न तो कोई 'लोहा' (आयरन) होता है और न 'इस्त्री'। अतः वह बिना लोहा किये ही, और उन कपड़ों को बिना 'चौपाते' ही अपने 'जजमानों' के घर दे आता है। कभी-कभी इन वस्त्रों को देखकर मन में यह सन्देह होने लगता है कि ये धुल कर आये हैं अथवा घोबी के घर जाने वाले हैं।

इन कपड़ों को धोने के लिए घोबी को प्रत्येक खेप में कोई धुलाई नहीं दी जाती। किसी घर में जितने व्यक्ति होते हैं प्रति व्यक्ति उतने ही पसेरी (पाँच सेर) अन्न उसे दिया जाता है। परन्तु रेट में भी आजकल महँगाई के इन दिनों में इस दर में भी वृद्धि हो गयी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि घोबी का व्यवसाय बहुत ही परिश्रम साध्य है जिसके अनुरूप उसे गाँवों में मजूरी नहीं दी जाती।

(२३) नाई—'नाई' शब्द संस्कृत के 'नापित' के अपभ्रंश के रूप में है। इसे भोजपुरी में 'हजाम' कहा जाता है और इसके काम को 'हजामत' की संज्ञा प्राप्त है। पक्षियों में कौवा की ही भाँति मनुष्यों में नाई बड़ा ही चतुर, चालाक तथा धूर्त माना जाता है। संस्कृत में एक लोकोक्ति प्रचलित है कि “नराणां नापितो धूर्तः।” सामन्ती युग में नाई का बड़ा महत्व था। यह ब्राह्मण-पुरोहित के साथ सामन्तों, जमींदारों तथा धनी मानी व्यक्तियों की कन्याओं के लिए वर खोजने के लिए जाया करता था। इस प्रकार यह समृद्ध परिवारों के विवाह का 'घटक' था। इसीलिए नाई और ब्राह्मण का जोड़ा—कम से कम वैवाहिक कार्य के लिए—प्रसिद्ध है। आजकल नाई अपने को ब्राह्मण का छोटा भाई समझते हैं और इस प्रकार वे अपनी जाति को “नाई-ब्राह्मण” बतलाने में तनिक भी संकोच नहीं करते।

नाइयों की चतुरता, वाक् विदग्धता तथा चालाकी के सम्बन्ध में भोजपुरी में अनेक लोकोक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। एक कहावत के अनुसार पक्षियों में कौवा और मनुष्यों में नाई अपनी धूर्तता के लिए विख्यात हैं।<sup>१</sup> नाई और केवट विभिन्न जातियों की प्रकृति को पहिचानते हैं और बहुत चिकनी-चिपुड़ी बातें करते हैं।<sup>२</sup> ये वचन-चातुरी में बड़े कुशल हैं। नाई की बारात में सब अपने को श्रेष्ठ समझते हैं। इस सम्बन्ध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

“नउवा के बरियात में सब ठाकुरे ठाकुर।”

भोजपुरी जीवन के प्रत्येक शुभ अथवा अशुभ कार्यों में नाई का सहयोग पाया जाता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों के विभिन्न क्रिया-कलापों में नाई का साहचर्य दिखायी पड़ता है। मुण्डन और यज्ञोपवीत के संस्कारों में क्षौर कर्म के लिए नाई की उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक है। विवाह के लिए वर का अन्वेषण करना नाई और ब्राह्मण का प्रधान

१. रेह ऊसर प्रदेश में प्राप्त होने वाली उस इषत् सफेद धूल को कहते हैं जो क्षार होती है।
२. चिरई में कउवा, मनई में नउवा।
३. नउवा के वह चीन्हें जात।

बड़ लोगनि के चिक्कन बात॥

डॉ० शशिशेखर तिवारी—भोजपुरी लोकोक्तियाँ, पृ० १३१।



कार्य माना जाता है। इसलिए नाई की उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक है। विभिन्न वैवाहिक विधानों में नाई तथा उसकी नाइन (हजाम और हजामिन) का होना अनिवार्य है। द्वार-पूजा के लिए वर के बैठने के स्थान पर चौका पूरना नाईन का ही काम है। वह घर की स्त्रियों के पैर में महावर लगाती हैं, कन्या के शरीर में तैल का मर्दन करती और उबटन लगाती हैं। विवाह के समय वह मण्डप में कन्या को लेकर बैठती हैं और 'सुमंगली' के समय सहायता पहुँचाती हैं। नाई भी अनेक प्रकार का कार्य इस अवसर पर करता है। किंवहुना, मृत्यु के समय और मृतात्मा के श्राद्ध में वह अनेक विधि-विधानों में सहायक होता है। 'दाही'—मृत व्यक्ति का दाह संस्कार करने वाले—के साथ नाई छाया की तरह दस दिन तक रहता तथा उसकी सेवा करता है। इस प्रकार जीवन के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक नाई की आवश्यकता पद-पद पर अनुभूत होती है।

नाई का उपकरण 'उस्तरा' है जिसे 'छूरा' कहा जाता है। यह प्रायः लम्बा और थोड़ा चौड़ा होता है। एक दिन में अनेक व्यक्तियों की हजामत बनाने के कारण यह 'छूरा' प्रायः शीघ्र ही 'भोथर' (कुंठित) हो जाता है जिसे तेज करने के लिए नाई उसे चमड़े की पट्टी पर रगड़ता है। ग्रामीण नाई का छूरा प्रायः 'भोथर' होता है। जिससे हजामत बनाने में कष्ट होता है। अतः 'हजामत बनाना' हिन्दी में एक मुहावरे के रूप में प्रयोग होता है जिसका अर्थ है किसी व्यक्ति को ठगना, धोखा देना अथवा उसे कष्ट पहुँचाना। इसी सम्बन्ध में एक दूसरा मुहावरा भी प्रचलित है—“उल्टे छूरे से हजामत बनाना” जिसका आशय है किसी व्यक्ति को समधिक कष्ट प्रदान करना।

गाँवों में प्रत्येक किसान के घर जाकर, नाई अपने जजमान की हजामत बनाता है। चूँकि शनिवार को बाल काटना शास्त्र के द्वारा निषिद्ध है अतः नाई के लिए शनिवार अवकाश का दिन होता है। नाई को प्रत्येक व्यक्ति का बाल काटने के लिए उससे कोई शुल्क या द्रव्य नहीं मिलता। इसके लिए किसान साल भर में एक बार नाई को अन्न के रूप में उसकी मजदूरी देता है। हाँ, विवाह आदि के अवसर पर उसे धोती, कुर्ता, चादर या गम्छी आदि भी दी जाती है।

नाई ग्रामीण जनता के लिए सन्देशवाहक का भी कार्य करता है। विशेष कर शुभ तथा मांगलिक अवसर पर वह जनेऊ, विवाह अथवा गवना का सन्देश लेकर सगे सम्बन्धियों के घर जाता है। इस प्रकार वह पत्र-वाहक या चिट्ठीरसा की भूमिका भी अदा करता है। गवना के अनेक गीतों में नाई के द्वारा कन्या की बिदाई का सन्देश लाने का वर्णन पाया जाता है—

“खेलत रहलों में सुपुली रे मऊनिया  
कि लेइ के अइले ना, मोरा गवना के दिनवा  
कि लेइ के अइले ना। गोड़ तोरा लागिलें नउवा  
के बेटउवा, कि लेई जाहु ना मोरा गवना का दिनवा॥

(२४) नेटुआ—नेटुआ शब्द की व्युत्पत्ति 'नट' से ज्ञात होती है; जिसका अर्थ नाचना या अभिनय करना है। उत्तर-प्रदेश के पूर्वी जिलों में नेटुआ लोग गाँव के बाहर सीक की शोपड़ी बनाकर रहते हैं। यह एक खाना-बदोश जाति है जो अपनी इच्छानुसार एक स्थान से हटकर दूसरे स्थान पर अस्थायी रूप से अपना डेरा-डंडा डाल कर रहने लगते हैं। यह लोग प्रायः भैंस को पालते हैं और उसके दूध-घी को बेचते हैं। ये लोग मधुमक्खी के 'छाता' से मधु (शहद) निकालने का भी काम करते हैं जिसकी बिक्री कर ये अपनी जीविका चलाते हैं। ये लोग बड़े हट्टे-कट्टे होते हैं और अखाड़ों में कुश्ती भी लड़ते हैं।

इनकी स्त्रियाँ 'नेटुइन' कही जाती हैं। ये नव-विवाहिता बहुओं की बाहों में गोदना गोदने का काम करती हैं। काजल को मँगरिया (भृङ्गराज—एक प्रकार का पौधा) के रस में मिलाकर ये अपनी तेज सुइयों से कोमलांगी बहुओं की बाहुओं पर गोदना गोदती हैं। बहुओं के कष्ट को दूर करने के लिए ये मनोरंजन तथा हास्यास्पद गीत भी गाती जाती हैं। नेटुइन वचन-विदग्धता में बड़ी निपुण होती हैं और पर-पुरुष के मन को हठात् मोह लेती हैं। नेटुआ लोग नट-विद्या में भी निपुण होते हैं। यायावरी वृत्ति ग्रहण करने के कारण ये एक स्थान पर अधिक दिनों तक निवास नहीं करते। यदि ये लोग अपने खानाबदोशी जीवन को छोड़कर यदि एक स्थान पर निवास करने लगें तो समाज के बड़े ही उपयोगी अंग सिद्ध हो सकते हैं।

(२५) नोनिया—गाँवों में प्रायः मिट्टी के मकान बनाये जाते हैं। इन मकानों को बनाने का काम नोनिया जाति के व्यक्ति किया करते हैं। नूनी (नमक) अथवा नमकीन मिट्टी के माध्यम से गृह निर्माण कर अपनी जीविका चलाने के कारण ही इनको 'नोनिया' कहा जाता है। जिस प्रकार ईंट या पत्थर से पक्के मकान को बनाने वाले कारीगर को 'राज' कहा जाता है उसी प्रकार से मिट्टी के द्वारा कच्चे मकानों को बनाने वाले मजदूर को 'नोनिया' कहते हैं।

इन लोगों का दूसरा व्यवसाय कच्ची मिट्टी से ईंटें 'पाथना' है। गाँवों में जब कोई व्यक्ति व्यवसाय के लिए अथवा घर बनाने के लिए भट्ठा—जिसे भोजपुरी में 'कजवा' कहते हैं—लगाता है तब ईंटें पाथने के लिए इसी जाति के सदस्य बुलाये जाते



हैं। ये लकड़ी के बने एक आयताकार साँचे में गिली मिट्टी को भर उससे कच्ची ईंटों का निर्माण करते हैं। इनके व्यवसाय का उपकरण साँचे के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अब धीरे-धीरे गाँवों में भी पक्के मकानों के बनते जाने के कारण इनके व्यवसाय में कमी आने लगी है।

(२६) **पटहेरा**—इस जाति का प्रधान व्यवसाय गहने को गूँथना है। ये लोग अपने व्यापार के साधनों को अपनी पीठ पर लादकर गाँव-गाँव घूमते-फिरते हैं। गृहस्थ के घरों में जाकर ये गहना गूँथने के लिए स्त्रियों से पूछते फिरते हैं। विवाह के दिनों में इनका व्यवसाय बड़ी प्रगति कर जाता है क्योंकि सभी लोग नये खरीदे गये गहनों को गुथाने के लिए पटहेरा की प्रतीक्षा करते रहते हैं। ये लोग सूत अथवा रेशम के तागों के द्वारा गहनों को गूँथने का काम करते हैं। जो आभूषण इनके द्वारा गूँथे जाते हैं उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं:—कंठा, कँटेसरि, जोसन, बाजू, हलका, लटकन, झबिया, बँगुरी, और पहुँची आदि। इसी कारण यह ग्रामीण स्त्रियों का प्रिय व्यवसायी है। यह वैवाहिक कृत्य के लिए अत्यन्त आवश्यक उपादान 'ताग-पाट' जो लाल रंग के सूत की माला के समान होता है—को भी बेचता है। सोनार सोना और चाँदी के गहनों को बनाता है; उनका निर्माण करता है, परन्तु सूत के द्वारा इनको 'गुहना' पटहेरा का ही काम है।

(२७) **पवैरिया**—इस जाति के लोग इस्लाम धर्म के अनुयायी हैं। इनका प्रधान पेशा पुत्र-जन्म के अवसर पर नाचना और गाना है। जब गाँवों में किसी गृहस्थ के घर पुत्र की उत्पत्ति होती है तब एक विशिष्ट जाति के लोग गाने, बजाने के लिए उस व्यक्ति के घर अनाहूत चले आते हैं। ये 'पवैरिया' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये लोग एक लम्बा-चौड़ा चोगा पहिनते हैं। गाँवों में सभी नवजात शिशु राम का प्रतीक माने जाते हैं। अतः ये लोग राम जन्म के सम्बन्ध में सोहर के गीत गाते हैं, जिसकी प्रथम पंक्ति इस प्रकार है।

“सिरी रामचन्द्र जनम लिहले  
चइत राम नवमी।”

ये गीत गाते समय नाचते भी रहते हैं। इनका बाजा 'ढोल' है जिसे गले में लटका कर ये बजाते हैं। परन्तु पुत्र-जन्म के अवसर पर ही 'पवैरिया' का नाच होता है, पुत्री के पैदा होने पर नहीं। केवल धनी और समृद्ध लोग ही अपने यहाँ इनके नृत्य का आयोजन करते हैं। निर्धन व्यक्ति इनकी दक्षिणा देने में अपने को असमर्थ पाकर इनका नाच नहीं कराता।

(२८) **पेसराज**—वाराणसी नगर में मकान बनाने वाले कारीगर 'पेसराज' के नाम से प्रसिद्ध हैं। गाँवों में मकान बनाने वाले कारीगरों को 'राज' कहा जाता है। 'पेसराज' शब्द की निरुक्ति के विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। ये पेसराज प्रायः अहीर जाति के सदस्य होते हैं जो बड़े ही हट्टे-कट्टे और मजबूत होते हैं। ये बनारस की तंग गलियों में बड़े-बड़े पाषाण-खण्डों को 'सेंगरा' के रूप में अपने कंधों पर ढोते हैं। इसी से इनकी शारीरिक शक्ति का कुछ अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार ये पेसराज 'पाषाण राज' हैं। ये अलग-अलग पत्थरों को अपनी छेनी से छील कर उसे सुन्दर तथा सुडौल बनाने में बड़े दक्ष होते हैं। पाँच-पाँच और छः-छः मंजिले ऊँचे मकानों को बनाने के लिए "पैट" बाँधकर उन पर चढ़ना इन्हीं के साहस का काम है।

(२९) **पंसारी**—इस जाति के लोगों का काम प्रधानतया नमक और मसाला बेचना है। इसके अतिरिक्त सूखी जड़ी-बूटियों का भी व्यवसाय करते हैं। शहरों में जो काम 'अत्तार' किया करते हैं, गाँवों में वही पेशा पंसारी का भी है। इस प्रकार खुदरा चीजों का व्यापार करते हैं। इनकी दूकान बहुत छोटी होती है परन्तु वहाँ ग्रामीण लोगों के लिए सभी आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। अतः इनकी दूकान को यदि 'जनरल स्टोर्स' की संज्ञा प्रदान की जाय तो कुछ अनुचित न होगा। कभी-कभी ये गाँवों में घूम-धूम कर, अपनी दूकान को अपनी पीठ पर लाद कर हल्दी, मिर्च, मसाले और जड़ी बूटियों को बेचते फिरते हैं। ग्रामीणों को इनसे सौदा खरीदते समय बड़ा सावधान रहना पड़ता है क्योंकि इनसे ठग जाने की संभावना बनी रहती है। लोकोक्तियों में इनकी चालाकी तथा ठगी का उल्लेख पाया जाता है:—

“बाघ ना देखल, देखल बिलारी।

ठग ना देखल, देखल पंसारी॥”

अर्थात् यदि ठग को नहीं देखा है तो पंसारी का देखना ही पर्याप्त है। एक दूसरी कहावत में भी इनकी चालाकी का संकेत किया गया है—



“वैद पंसारी, आधे आध।”

अर्थात् वैद्य और पंसारी औषधियों के व्यापार में बराबर लाभ के भागी होते हैं इस प्रकार पंसारियों की चालाकी का वर्णन लोक-साहित्य में उपलब्ध होता है।

(३०) बड़ई—यह गाँव में निवास करनेवाली सबसे अधिक उपयोगी पेशेवाली जाति है। इसका प्रधान कार्य ग्रामीण लोगों के गृहनिर्माण कार्य में लरही, बल्ली, धरनि, खम्भा आदि आवश्यक वस्तुओं को बनाना है। इसके अतिरिक्त यह चार-पाई, हर, फार, आदि को लकड़ी से गढ़ कर तैयार करता है। जनजीवन से सम्बन्धित कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जिसमें बड़ई का सहयोग न हो। यह मुण्डन तथा विवाह में ब्रह्मचारी की पढ़ने की पाटी (पटरी) तथा वर का पीढ़ा तैयार करता है। कृषक-कार्य में प्रयुक्त अनेक प्रकार के उपादानों—जैसे हल, पचखा, गड़ासी, मुंगरी-आदि—का निर्माण करता है। किबहुना मृत्यु के समय मृतात्मा के लिए जो ‘अस्थी’ बनाई जाती है वह भी विश्वकर्मा के इसी वंशज के परिश्रम का फल है।

बड़ई का औजार बसुला, टांगी, रुखानी, छेनी, आरी आदि हैं जिनके द्वारा वह लकड़ी को काटता, छीलता और चिकना बनाता है। इस जाति के लोग विश्वकर्मा को अपना पूर्वज मानते हैं और एक विशिष्ट दिन इनकी पूजा करते हैं। आजकल पढ़े-लिखे बड़ई अपने को ब्राह्मण होने का दावा करते हैं। अपनी उपाधि के रूप में ‘शर्मा’ लिखते हैं और यज्ञोपवीत को भी धारण करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये लोग बड़े ही उपयोगी होते हैं और इनके सहयोग के अभाव में किसान का जीवन दूभर हो जायेगा।

(३१) बरई—बरई का प्रधान कार्य पत्तल बनाना है। इस शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। इसे भोजपुरी में ‘बारी’ कहा जाता है। ऐसा ज्ञात होता है यह गृहस्थों के घर पत्तल देने के लिए बार-बार (पुनः-पुनः) जाता है। अतः इसका नाम बारी पड़ गया हो। अथवा प्रत्येक बार (दिन) जाने के कारण ही यह नामकरण हो गया हो।

गाँवों में विवाह और गवना आदि मांगलिक अवसरों पर बारातियों को पत्तल में ही भोजन कराया जाता है। पुत्र के जन्म के उत्सव पर अथवा किसी कथा-वार्ता की समाप्ति पर ब्राह्मणों के भोजन का पात्र यही पत्तल ही होता है। किबहुना, श्राद्ध-तेरही के दिन—ब्राह्मणों, महाब्राह्मणों आदि को खाने के लिए पूड़ी और तरकारी इसी पत्ते की बनी पत्तलों में परोसी जाती है। पत्तलों का निर्माता होने के कारण ग्रामीण जनता के लिए यह बड़ा ही उपयोगी जीव है।

पत्तल प्रायः वट वृक्ष के पत्ते से बनाया जाता है। महुआ तथा कटहल की पत्तियाँ भी इसके लिए प्रयोग में लायी जाती हैं। परन्तु पण्डित लोग महुआ को मादक मानकर इसके पत्तल में भोजन नहीं करते। पलाश की पत्तियों से बना पत्तल बहुत ही पवित्र माना जाता है। भोजपुरी प्रदेश में जब कोई बारात आती है तब बारी अपनी कमर में क्षुद्र घंटिकाओं को बाँधकर बारातियों का स्वागत करने के लिए सबसे पहिले जाता है। बारी और बारात—दोनों की एक ही राशि होने के कारण यही उन लोगों के लिए उपयुक्त स्वागतकर्ता माना जाता है।

(३२) भर—ये गाँवों में पानी भरने का काम किया करते थे। इसीलिए सम्भवतः इनका नाम ‘भर’ पड़ गया। भर और गोंड़ लोगों का व्यवसाय प्रायः एक समान ही है। दोनों ही गाँवों में गृहस्थों के घरों में सेवक का कार्य करते हैं। भरों की एक जाति ‘राजभर’ भी है जो अनेक दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भर लोग सेवा-वृत्ति का कार्य छोड़कर अब स्वतन्त्र पेशा भी करने लगे हैं।

(३३) भाट—इस शब्द की निरुक्ति संस्कृत ‘मट्ट’ से हुई है। आपटे ने इस शब्द का अर्थ बतलाते हुए लिखा है कि यह एक मिश्रित जाति है जिसका व्यवसाय राजाओं की स्तुति करना है। राजस्थान में चारण नामक एक जाति पायी जाती है; जिसका काम राजघरानों में रहते हुए, अपने आश्रयदाता राजा का यशोगान करना है। भोजपुरी प्रदेश के भाटों का व्यवसाय भी इसी प्रकार का है। आधुनिक युग में राजा-महाराजा और जमींदारों के अभाव में अब ये लोग साधारण जनता का गुणगान करने लगे हैं। किसी मांगलिक समय पर विशेष कर विवाह के अवसर पर—ये भाट लड़की अथवा लड़केवाले के घर जाते हैं और हिन्दी के किसी प्राचीन कवि की कविता सुनाते हैं। चूँकि साधारण व्यक्ति की वंशावली ऐसी नहीं होती जिसका गुणगान किया जा सके; अतः ये लोग सीता-राम के विवाह सम्बन्धी कविताओं को सुनाकर ही सन्तोष कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं। ये बड़े ही वाचाल होते हैं। अतः अधिक बोलने वाले व्यक्ति को ‘भाट’ की संज्ञा प्रदान की जाती है। ब्राह्मणों की भाँति भाट भी अपने जातिवालों से ईर्ष्या करते हैं। इनके सम्बन्ध में यह कहावत प्रसिद्ध है कि—

“बाभन, कुकुर, भाट, जाति जाति के काट।”

१. A Kind of mixed caste, whose occupation is that of bards or panegyrists.

आपटे—संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, पृ० ३९९।



(३४) **भांड**—इस जाति के सदस्य किसानों के विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर अपना अभिनय दिखाकर सर्व-साधारण जनता का मनोरंजन किया करते हैं। इनके अभिनय में मजाक, हँसी, अश्लीलता, व्यंग्य-विनोद तथा अनुकरण का मिश्रण पाया जाता है। गाँवों में रात्रि के समय जहाँ हजारों आदमियों की भीड़ लगी हो और हास्यरस का फौवारा फूट रहा हो वहाँ निश्चित रूप से समझना चाहिए भांडों का नाच हो रहा है। ये कभी-कभी अपने अभिनय में शिष्टता की सीमा का अतिक्रमण कर अश्लीलता की छोर को छूने लगते हैं। इसीलिए इनका नाच शिष्ट समाज में प्रदर्शित करने योग्य नहीं होता। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ये जन-मन का अनुरंजन करने में बड़े ही निपुण तथा कुशल होते हैं। इनके अभिनय को 'भड़ैती' कहा जाता है जिसमें नृत्य, अनुकरण सभी कुछ सम्मिलित है। चूँकि भांड लोग बहुत-सी अनर्गल बातें करते हैं; अतः किसी व्यक्ति की भांड से और उसके कृत्य का भड़ैती से उपमा देना उसका अपमान करना माना जाता है। जहाँ भट्ट या भाट लोग राज-दरबारों में रहते हुए राजाओं का मनोरंजन किया करते थे; वहाँ ये भांड सर्वसाधारण जनता को हँसाते हँसाते लोट, पोट कर देते हैं। यों तो लखनऊ के भांड अपने अभिनय तथा वचन-चातुरी में बड़े प्रसिद्ध हैं; परन्तु वाराणसी के भांड भी किसी से कम नहीं हैं। ये भड़ैती में किसी से भी लोहा ले सकते हैं।

(३५) **मछुआ**—इनका प्रधान व्यवसाय मछली मारना और उसे बाजार में बेचना है। मल्लाह भी मछली मारते हैं; परन्तु वह अपनी पेट-पूजा के लिए ही ऐसा करते हैं। परन्तु मछुआ विक्रय के लिए ही मछली मारता है। मछली का व्यापार करने के कारण ही इनका नाम 'मछुआ' पड़ गया है। बिहार राज्य के पटना शहर में एक मुहल्ले का नाम ही 'मछुआ टोली' है जहाँ इस जाति के लोग सड़क के किनारे अपनी अस्थायी दूकान लगाकर मछलियों को बेचा करते हैं।

(३६) **मल्लाह**—ये लोग नदियों में नाव चलाने का काम करते हैं। नदी, नाला, ताल, तैलया आदि में नाव द्वारा लोगों को आर-पार कराना ही इनका व्यवसाय है। यही इनकी उदरपूर्ति का प्रधान साधन है। ये शुल्क लेकर लोगों को पार उतारते हैं जिसे 'उतराई' कहा जाता है। परन्तु अपनी विरादरी के लोगों से यह शुल्क नहीं लेते हैं। यह इनकी आचार संहिता का प्रथम नियम है। भगवान् रामचन्द्र नदी के पार उतारने के लिए जब निषादराज गुह को दक्षिणा देने लगे तब उसने इसे स्पष्ट ही अस्वीकार कर दिया और उसने कहा हे भगवान्! ऐसा करके आप मेरा धर्म (नियम) मत बिगाड़िये—

“नाई से न नाई लेत, धोबी से न धोबी लेत  
देके उतराई मेरी जाति ना बिगाड़िये॥”

मल्लाह तालाबों अथवा नदियों में जाल डालकर मछली पकड़ने का भी काम करते हैं। जब कोई व्यक्ति किसी नदी में डूब कर मर जाता है तब ये 'महाजाल' (बहुत बड़ा जाल) डालकर उसकी लाश को निकालने का प्रयास करते हैं। ये अपनी जीविका की एकमात्र साधन 'नौका' का बड़ा आदर करते हैं। उसके अग्र भाग पर 'जूता रखना' अथवा जूता पहनकर नाव पर चढ़ना बुरा मानते हैं। जब कोई नयी नाव पानी में प्रथम बार उतारी जाती है उस समय ये उसकी बड़ी पूजा करते हैं। अनेक लोक-गीतों में इसका उल्लेख पाया जाता है; जहाँ नदी के पार उतारने के लिए इनसे प्रार्थना की गई है।<sup>१</sup>

(३७) **माली**—माली शब्द संस्कृत के 'मालाकार' का अपभ्रंश ज्ञात होता है। जिसका अर्थ माला बनाने वाला है। कालान्तर में 'कार' शब्द का लोप हो गया और माला शब्द शेष रह गया जिससे 'माली' शब्द का निर्माण हुआ। यदि भाषा-शास्त्र की दृष्टि से देखें तो माली (माला अस्ति अत्येति माली) शब्द का भी वही अर्थ है जो मालाकार का था।

भोजपुरी में माली को 'मलहोरी' कहा जाता है जिसका आशय है माला को आहरण करने वाला अर्थात् लाने वाला व्यक्ति। माली का प्रधान व्यवसाय फूलों के द्वारा माला बनाकर उसकी विक्री करना है। काशी, अयोध्या, मथुरा और हरि-द्वार आदि तीर्थ-स्थानों पर, प्रसिद्ध मंदिरों के सिंहद्वार के दोनों ओर अनेक मालियों की दूकानें देखी जा सकती हैं जो देश-दर्शन के लिए मंदिर में जानेवाले भक्तों के हाथ मालाओं को बेच कर अपनी उदरदरी की पूर्ति करते हैं।

भोजपुरी लोक-गीतों में माली और उसकी स्त्री मालिन का उल्लेख शीतला माता के भक्त के रूप में किया गया है। गाँवों में जब कोई बालक चेचक के रोग से पीड़ित होता है तब उसकी कोई दवा नहीं की जाती। शीतला माता इस रोग की अधिष्ठाता देवी मानी जाती है। अतः बालक की आरोग्य प्राप्ति के लिए उन्हीं की अर्चा तथा पूजा की जाती है। चूँकि माली



शीतला माता का सेवक है अतः उसे बुलाकर देवी को प्रसन्न करने के लिए उससे निवेदन किया जाता है। लोगों का ऐसा दृढ़ विश्वास है कि नीम के वृक्ष पर शीतला निवास करती हैं और वहीं पर झूला लगाकर झूलती रहती हैं। अतः माली या मालिन नीम की पत्ती का पंखा झलती है जिससे बालक शीघ्र नीरोग हो जाता है।

लोक-गीतों में माली—विशेष कर उसकी स्त्री मालिन—का उल्लेख अनेक स्थानों में पाया जाता है। नीम के पेड़ में झूला झूलते हुए शीतला को प्यास लग जाती है अतः पानी पीने के लिए अपनी भक्तिन मालिन के निवास स्थान पर स्वयं चली आती है और उसे सम्बोधित करती हुई कहती है कि ए मालिन ! तुम सो रही हो अथवा जाग रही हो। तुम उठो और मझे पानी पिलाओ। गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

“झुलत झुलत मइया का लगली पियसिया

कि चलि भइली ना।

मलहोरिया आवास कि चलि भइली ना।

सूतलि बाडू कि जागलि ए मालिनि

उठि के मोहि के पनिआ पिआऊ॥”

विवाह के अवसर पर माली वर के लिए ‘मऊरि’ बनाता है जिसे सिर पर पहिन कर वह कन्यावाले के घर जाता है। समस्त मांगलिक अवसरों पर पुष्प और माला प्रदान करना माली का ही कार्य है। परन्तु शीतला माता का सेवक होने के कारण ही माली का सम्मान अधिक है क्योंकि वह चेचक से पीड़ित बालक के लिए देवी के प्रसाद को प्राप्त करने का सहज माध्यम है।

(३८) मुसहर—इस जाति के लोग वाराणसी जिले के पश्चिमी भाग में पाये जाते हैं। परन्तु इनका केन्द्र बिहार राज्य का आरा जिला है; जहाँ लाखों की संख्या में ये पाये जाते हैं। मुसहर शब्द की निरुक्ति ‘मूषकहर’ या ‘मूषकहर्ता’ मानी जाती है। इस जाति के लोग, बरसात के दिनों में, खेत में बिल बनाकर रहने वाले चूहों को पकड़ते हैं और उन्हें आग में पका कर खाते हैं इसीलिए इनका नाम ‘मुसहर’ है। यह एक प्रकार की अस्पृश्य जाति है जिसका छुआ हुआ पानी उच्च वर्ण के लोग नहीं पीते। ये गाँव के बाहर अपनी झोपड़ी बनाकर निवास करते हैं। इनकी आकृति काली और कद सामान्यतया छोटा होता है।

इनका प्रधान व्यवसाय मजदूरी करना है। शाहाबाद (अब भोजपुर) जिले में ये किसानों के खेतों को जोतते और फसल—विशेषकर धान के पक जाने पर उसे काटते हैं। इनकी स्त्रियाँ जिनको मुसहरिन कहा जाता है—खेतों में धान को रोपती हुई सुन्दर गीत गाती हैं। ये लोग पालकी ढोने का भी काम करते हैं। ये बड़े ही परिश्रमी होते हैं। थकावट का तो ये नाम ही नहीं जानते। यदि इनको थोड़ी-सी ‘ताड़ी’ अथवा महुआ की शराब पिला दी जाय तो ये दिन भर बड़े चाव से परिश्रम करते रहते हैं। यद्यपि ये लोग भोजपुरी ही बोलते हैं परन्तु इनका उच्चारण (Intonation) कुछ भिन्न होता है। रात्रि में ये लोग नाच-गान करके अपने दिन की थकावट को दूर करते हैं। इनकी रहन-सहन, आचार-विचार के सम्बन्ध में शोधकार्य भी हो चुका है।

(३९) लकड़ीहारा—ये लोग गाँवों में लकड़ी चीरने का काम करते हैं। ग्रामीण लोगों के यहाँ जब कभी विवाह, गवना अन्य कोई मांगलिक या अमांगलिक कृत्य होता है तब भोजन पकाने के लिए अत्यधिक लकड़ी की आवश्यकता है। ऐसी परिस्थिति में किसान आम या बबूल की लकड़ी का प्रयोग करता है जो ‘जलावन’ के लिए अच्छी मानी जाती है। लकड़ीहारा इन पेड़ों को काटकर गिराता है और उसका ‘बोटा’ बनाकर उस लकड़ी को ‘टांगा’ से चीरकर ‘चैला’ बनाता है। इसी लकड़ी को बड़े-बड़े चूल्हों (भट्ठी) में जलाकर भोजन पकाया जाता है। इनका दूसरा काम लकड़ी चीरना भी है। ये आम या साखू की मोटी लकड़ी को अपने लम्बे-लम्बे ‘आरा’ से चीरकर इनके ‘पटरा’ (लम्बा तख्ता) बनाता है। इस प्रकार ‘टांगा’ से लकड़ी काटना और ‘आरा’ से मोटे काष्ठ खण्ड को चीरना इनका प्रधान कार्य है।

इनका तीसरा काम लकड़ी बेचना भी है। ये किसी किसान का सूखा पेड़ चोरी से अथवा स्वल्प मूल्य देकर उसे खरीद लेते हैं और उस लकड़ी को चीरकर उनको इकट्ठा कर देते हैं जिसे ‘टाल’ कहा जाता है। ये इस ‘टाल’ की लकड़ी को बेचने का काम करते हैं। वाराणसी जिले के पश्चिमी भाग—भदोही तहसील में लकड़ीहारे का काम विशेषकर ‘मुसहर’ जाति के लोग किया करते हैं जो ‘बँहगी’ में चैलों को सजाकर उसे अपने कंधों पर ढोते हैं और ‘ले चैला’ ‘ले चैला’ चिल्लाते फिरते हैं और इस प्रकार अपनी जीविका चलाने में व्यस्त रहते हैं।

१. डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन पृ० २०१।

३८—मो०



(४०) **लोहार**—लोहार शब्द संस्कृत लौहकार' का अपभ्रंश है जिसका अर्थ है लोहे को बनाने वाला। चूँकि लोहार लोहे के द्वारा विभिन्न औजारों तथा वस्तुओं का निर्माण करता है अतः इसका यह नाम सार्थक है। बड़ई के समान लोहार भी समाज का एक उपयोगी अंग है। गाँवों में इसका प्रधान कार्य गृह-निर्माण में प्रयुक्त होने वाली सामग्रीका निर्माण करना है। इसके अतिरिक्त वह किसानों के 'भोथर' (कुण्ठित) औजारों को 'सान धराने' (तेज करने) का भी कार्य करता है। हँसुआ, 'छूरी' (चाकू) गड़सी टाँगी, आरी आदि औजारों को 'सान' (शाण) पर चढ़ा कर वह तेज करता है। लोहे को आग में गर्म करके वह कोल, काँटा, कब्जा, कुल्हाड़ी को भी बनाता है। उसके इस कार्य का उल्लेख संस्कृत के किसी कवि ने इस प्रकार किया है—

“लौहकार घनैः लोहैः, किं ताड्यसि तापितम्।  
इदृक् तीक्ष्णमुखाग्राणां, इयव प्रतिक्रिया॥”

लोहार का उपकरण भाथी, निहाई, हथौड़ा, छेनी आदि है जिनके उपयोग से वह अपनी जीविका चलाता है। भाथी चाम की बनी होती है जिसमें हवा भरकर लोहार लोहे को गर्म करता है। इस सम्बन्ध में हिन्दी के किसी कवि की यह उक्ति कितनी सटीक है।

“निर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाथ।  
मुई चाम की खाल से, सार भसम होई जाय॥”

लोहार किसानों का सतत सखा और सहायक है। चाकू पर 'सान धराने' से लेकर घर बनाने के काम तक उसका सहयोग अपेक्षित ही नहीं अनिवार्य भी है।

(४१) **सोनार**—यह संस्कृत के स्वर्णकार का अपभ्रंश रूप है। सोनार का प्रधान कार्य सोना तथा चाँदी के गहनों का निर्माण करना है। ग्रामीण स्त्रियाँ अपेक्षा कृत समधिक आभूषण प्रिय होती हैं। अतः सोनार उनके मनोवान्छित आभूषणों का निर्माता है। इस प्रकार वह स्त्रियों का प्रियपात्र तथा बन्धु है। अनेक लोक-गीतों में इसे 'भइया' अथवा “सोनार भइया हितवा” (मलाई करने वाले सोनार भाई) की उपाधि से विभूषित किया गया है और उससे नथिया या 'तिलरी' गढ़ाने के लिए प्रार्थना की गई है।<sup>१</sup>

सोनार अपने व्यवसाय में कुशलता के लिए प्रसिद्ध हैं। वे अपनी कला-चातुरी के द्वारा सुवर्ण का ऐसा गहना बनाने में समर्थ होते हैं कि उसमें किसी अन्य धातु के मिलावट का पता भी नहीं चलता। ऐसी किम्वदन्ती है कि किसी सोनार ने अपनी माता के लिए सोने का गहना बनाया था परन्तु उसमें किसी प्रकार की मिलावट न करने के शोक के कारण वह बीमार पड़ गया।

विवाह के दिनों में सोनार का आदर बहुत बढ़ जाता है। वह गहनों के बनाने में सदा संलग्न रहता है और लोगों की 'फरमाइश' के अनुसार अनेक प्रकार के गहने बनाता है। सोनार का उपकरण बहुत मामूली होता है। वह छोटी-सी एक हथौड़ी से सोने को पीटकर उसे विभिन्न आभूषणों को आकृति प्रदान करता है। यद्यपि स्वर्णकार सर्वाधिक मूल्यवान् धातु का उपयोग करता है परन्तु उसकी रहन सहन साधारण तथा सामग्री स्वल्प होती है।

(४२) **हलुवाई**—गाँवों में हलुवाई जाति के लोगों का व्यवसाय मिष्ठान्न बनाना और अपनी दूकान लगाकर उसे बेचना है। ये गुड़ और चीनी तथा आटा और चौरठ (चावल को पीस कर बनाया गया चूर्ण) के द्वारा विभिन्न प्रकार की मिठाइयाँ बनाने में बड़े कुशल और सिद्धहस्त होते हैं। इनके द्वारा बनायी जाने वाली कुछ प्रसिद्ध, लोकप्रिय तथा टिपिकल मिठाइयों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) टिकरी, (२) जलेबी, (३) लड्डू (४) अनरसा, (५) कुटकी, (६) पटौरा, (७) मोतीचूर आदि।

गाँवों में जब कोई अतिथि आ जाता है और उसके स्वागत-सत्कार के लिए जब कोई वस्तु उपलब्ध नहीं होती तब उक्त गाढ़े समय में हलुवाई ही काम आता है।

१. मोरा पिछुआरावा सोनार भइया हितवा,

गर्हाइ देवहु ना मोहि के सोने के तिलरिया॥

डॉ० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १।

२. इन विभिन्न प्रकार के मिष्ठान्तों के विस्तृत वर्णन के लिए “भोजन और पेय” वाला अध्याय देखिए।



इस जाति का दूसरा काम किसी बारात अथवा भोज के समय लोगों को खिलाने के लिए पूड़ी-कचौड़ी बनाना है। भोज-पुरी प्रदेश में धनी लोगों की बारात में कुछ निमंत्रित और कुछ अनिमंत्रित—सैकड़ों व्यक्ति कन्या वाले के घर आते हैं जो भोजन करने में बड़े ही 'भोजनभट्ट' होते हैं। उन्हें उदरमरि: तथा वृकोदर की संज्ञा दी जाय तो कुछ अनुचित न होगा। इस भारी भोज को भरपेट भोजन देना साधारण काम नहीं है। अतः ऐसे अवसर पर हलुवाई बुलाया जाता है जो पूरी बारात के लिए साग, सब्जी, पूड़ी, कचौड़ी और मिठाई बनाता है। इनकी पूड़ियाँ बड़ी लम्बी-चौड़ी होती हैं जिन्हें दो से अधिक खाना किसी भले आदमी के लिए संभव नहीं है।

### (३) परिच्छेद

## भूमि (जमीन) के प्रकार

गाँवों में जो भूमि उपलब्ध होती है उसके अनेक भेद-प्रभेद पाये जाते हैं। ये भेद प्रधानतया तीन प्रकार के होते हैं।

- (१) गाँवों से उनकी दूरी के कारण
- (२) उस भूमि की विशिष्टता के कारण
- (३) उस भूमि में जो विशेष पैदावार होती है उसके आधार पर।

(१) जिस जमीन में घर बने होते हैं और जहाँ गाँवों की स्थिति होती है उसे **आबादी** कहते हैं। इसे **बसती** भी कहा जाता है। परन्तु जो जमीन कुछ ऊँची होती है, जिस पर पहिले घर बने हुए थे परन्तु अब उजाड़ हो गयी है उसे **डीह** के नाम से पुकारते हैं। गाँव के पास की जमीन जहाँ घरों के नाली का पानी जाता है **गोहान** की संज्ञा प्राप्त करती है। गाँव से दूर स्थित खेतों को जब तक उनमें पैदावार लगी रहती है **सरेह** के नाम से पुकारा जाता है। किसी नदी के उपान्त्य की भूमि जहाँ कुछ भी पैदावार नहीं होती अथवा जो किसी नदी के बीच में पड़ जाने के कारण द्वीप बन जाती है **दीअर** कही जाती है। जो गाँव ऐसी जमीन पर स्थित होते हैं वे भी प्रायः **दीअर** के नाम से पुकारे जाते हैं, जैसे बलिया जिले का गाँव **सिताबदियर**। जिस जमीन पर केवल मूँज ही मूँज पैदा होती है उसे **मुँजवानि** कहा जाता है।

(२) जिस जमीन में मिट्टी, बालू, कंकड़ आदि पाया जाता है उसका नाम इन विशेष वस्तुओं की उपलब्धि के कारण भिन्न भिन्न हुआ करता है।

(क) जिस भूमि में बालू अधिक पाया जाता है उसे **बलधुस** कहते हैं। कहीं कहीं इसे **बलुअट** भी कहा जाता है। **भीस** सुन्दर तथा **Compact** (ठोस) बालू को तथा **बाल** मोटे तथा अलग अलग कण वाले बालू को कहते हैं।

(ख) जिस भूमि में शुद्ध मिट्टी की प्रधानता होती है उसे **मिट्टियार** की संज्ञा प्राप्त है। यह मिट्टी भूअर होती है तथा धान की पैदावार के लिए अति उत्तम है। जिस जमीन में अधिक उपजाऊ मिट्टी होती है वह **करइल** के नाम से प्रसिद्ध है। इसका रंग बड़ा ही काला होता है। वह मिट्टी जो शरीर पर मलने पर चिकनी लगती है **दूधी** या **चिकनी मिट्टी** कही जाती है। वाराणसी नगर में हाथ मलने के लिए बड़ी चिकनी मिट्टी प्राप्त होती है जिसका रंग पीला होने के कारण **पीली मिट्टी** कहलाती है। सोन नदी की तलहटी में लाल मिट्टी पाई जाती है इसका बालू लाल बालू के नाम से प्रसिद्ध है। जिस मिट्टी में कंकड़, पत्थर मिला होता है वह **कंकड़ीली**, **पथरीली** के नाम से प्रसिद्ध है। इसे **पटिया** भी कहते हैं। **चहल** या **कबोई** उस जमीन को कहते हैं जो कभी पूर्ण रूप से नहीं सूखती और उसमें कीचड़ या पाँक होती है। ऐसी जमीन में बिना हल चलाये ही अन्न बो दिया जाता है। जब बाढ़ आती है तब वह खेतों में बहुत सी नयी मिट्टी लाकर जमा कर देती है। ऐसे खेत **दोमट** कहे जाते हैं। नदी की बाढ़ का पानी जब घट जाता है परन्तु निचली भूमि वाले खेतों में जमा रहता है उसे **छाड़न** कहते हैं। यह **भागड़** के नाम से भी प्रसिद्ध है। जो खेत ऊँची जमीन पर स्थित होते हैं उन्हें **उपरवार** और नीची जमीन के खेतों को **खलार** की संज्ञा प्राप्त है।

जिन खेतों की मिट्टी अच्छी होती है और जिनमें पैदावार अच्छी लगती है वे **उपजाऊ** कहे जाते हैं। परन्तु जिन खेतों में रेतीली, कंकरीली मिट्टी के होने से उपज बिल्कुल नहीं होती वे **ऊसर** या **बनजर** कहलाते हैं। कोयरी जिस खेत में खूब अधिक खाद डाल कर, उसमें तरकारी तथा अन्य फसलों (चीना आदि) को पैदा करता है वह **कोंडार** के नाम से जाना जाता है। ऐसे खेतों में साल भर तक साग सब्जी पैदा होती रहती है।

(३) जो खेत ईख बोन के लिए पिछले बसन्त में बिना बोये ही छोड़ दिया जाता है उसे **मघार** कहा जाता है। इसी प्रकार से जो खेत चैती बोन के लिए पहिले बिना बोये ही छोड़ दिया जाता है उसे **पलिहर** की संज्ञा प्राप्त है। जो खेत बिना



बोये ही छोड़ दिये जाते हैं वे **परती** कहलाते हैं। परन्तु जिन खेतों में अन्न सदा बोया जाता है वे **आबाद** या **उठती** के नाम से जाने जाते हैं। जिन खेतों की उपजाऊ शक्ति नष्ट हो जाती है वे **हल्लुक** कहलाते हैं। इनका दूसरा नाम **बाँगर** है।

जिन खेतों में कृत्रिम साधनों से सिंचाई की जाती है उन्हें **पटौआ** कहते हैं। ऐसे खेतों को **भरैया** भी कहा जाता है। जिस खेत में साल भर में केवल एक ही फसल पैदा होती है उसे **एकफसली** तथा जिन खेतों में दो फसल होती है उन्हें **दो फसली** कहते हैं। परन्तु जिनमें साल भर में तीन फसल होती है वे **तिनफसली** कहलाते हैं। इस प्रकार मिट्टी, ऊपज, सिंचाई, पैदावार के हिसाब से खेतों के अनेक प्रकार पाये जाते हैं।

## सिंचाई के विभिन्न साधन

गांवों में खेतों की सिंचाई के लिए अनेक साधन प्रयोग में लाये जाते हैं। जैसे मोंट, रँहट, कूँडि, दौरी, दोन आदि। इन साधनों में मोंट के द्वारा सिंचाई ही अधिक प्रचलित है और साधारणतया किसान इसी का उपयोग करते हैं।

(१) **मोंट**—यह चमड़े का बना हुआ गोलाकार बड़ा पात्र होता है जिसमें एक मोटी रस्सी बँधी रहती है। इस मोटी रस्सी में मोंट को बाँध कर घड़ारी पर चढ़ाकर नीचे कुएँ में डाल दिया जाता है। जब मोंट में पानी भर जाता है तब उस रस्सी को बैल खींचते हैं। जब मोंट ऊपर आ जाता है तब कोई व्यक्ति उस मोंट के पानी को बाहर गिराकर पुनः मोंट को कुएँ में डाल देता है। इस प्रकार मोंट के द्वारा पानी कुएँ में से निकाल कर खेत की सिंचाई की जाती है। इस कार्य में कम से कम तीन व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। एक व्यक्ति बैलों को हाँकता है और दूसरा पानी से भरे मोंट को खाली कर उसे पुनः कुएँ में डालता है। तीसरा व्यक्ति खेत में मिट्टी की नाली बनाता जाता है जिससे कुएँ का जल खेतों में अभीष्ट स्थान तक पहुँच जाय।

(२) **रँहट**—रँहट में छोटी छोटी बीस-पच्चीस बाल्टियाँ लगी रहती हैं जो लम्बाई में कुएँ के जल तक पहुँचती हैं। इस रँहट को एक बैल के द्वारा चलाया जाता है। जैसे जैसे बैल घूमता है वैसे वैसे बाल्टियाँ कुएँ में नीचे चलती जाती हैं और उसमें पानी भरता जाता है। कुएँ में से ऊपर आने पर यह पानी स्वतः बाहर गिरता रहता है और बाल्टियाँ नीचे-ऊपर आती जाती रहती हैं। इस राज्य के पश्चिमी जिलों में इस रँहट को ऊँट चलाया करते हैं। इसके द्वारा सिंचाई के कार्य को बड़ी आसानी से किया जाता है।

(३) **कूँडि**—यह लोहे की एक बड़ी बाल्टी के समान होता है जिसके सिरे पर लम्बी रस्सी बाँधी गई रहती है। इसी रस्सी के सहारे कूँडि को कुएँ में डालकर पानी को ढेकुल के द्वारा ऊपर खींचा जाता है। चूँकि कूँडि में पानी की मात्रा बहुत थोड़ी होती है अतः इससे अधिक खेतों की सिंचाई नहीं की जा सकती। कोईरी लोग अपने कोठार के खेतों में साग-सब्जी उपजाने के लिए इसी कूँडि से अपने खेतों की सिंचाई करते हैं। मोंट और कूँडि में यही अन्तर है कि मोंट को कुएँ से बैल खींचते हैं, इसमें पानी की मात्रा अधिक होती है परन्तु कूँडि को आदमी खींचता है और इसमें जल की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है।

(४) **दोन**—मोंट, रँहट तथा कूँडि से खेतों की सिंचाई कूएँ से पानी निकाल कर की जाती है। परन्तु दोन के द्वारा जो सिंचाई होती है उसका आधार कुआँ न होकर छोटी तल्लैया या पोखरा या जलाशय होता है। दोन काठ का बना हुआ लम्बा तथा चौड़ा काष्ठ खण्ड होता है जिसको खोंखला करके चम्मच के आकार का बनाया जाता है। किसी नीचे जलाशय के जल द्वारा ऊँचाई पर स्थित खेत को जब सींचना पड़ता है तब दोन द्वारा ही यह कार्य किया जाता है। दोन के एक सिरे को पानी में डुबो दिया जाता है। फिर छोटी सी ढेकुल के द्वारा इस जल को ऊपर लाकर खेत में डाल देते हैं। इस प्रकार से जिन खेतों को कुएँ से सींचने की कोई व्यवस्था नहीं होती उनको इसी दोन से सींचा जाता है। जो व्यक्ति दोन को चलाता है उसे दोनवाह कहते हैं। इस प्रकार की सिंचाई वहाँ सम्भव है जहाँ छोटे जलाशय उपलब्ध हों।

(५) **दौरी**—दौरी के द्वारा भी कहीं कहीं सिंचाई की जाती है। दौरी बाँस की बनी हुई छबड़ी को कहते हैं जिसमें प्रायः घर का अन्न आदि सामान रखा जाता है। इस दौरी के दोनों ओर दो रस्सियाँ लगा दी जाती हैं। इन्हीं रस्सियों को पकड़ कर दो व्यक्ति इस दौरी को जल में डुबोते हैं और फिर उसी रस्सी के सहारे उस जल को बाहर निकाल कर खेतों में डालते हैं। जो दो व्यक्ति इन रस्सियों को खींच कर जल भरते हैं उन्हें **दौरीवाह** कहा जाता है। यह कार्य प्रायः गाँव की नीची जाति की स्त्रियाँ करती हैं। दौरी के द्वारा सिंचाई तभी संभव है जबकि जलाशय से खेत की ऊँचाई थोड़ी ही अधिक हो।



(६) खोखले ताड़ वृक्ष के द्वारा—कहीं कहीं गाँवों में ताड़ वृक्ष को काटकर उसके घड़ को खोखला बना देते हैं। कुएँ से पानी निकाल कर इसी खोखले लम्बे ताड़ के द्वारा उसे खेतों में पहुँचाते हैं। परन्तु इस माध्यम से अधिक खेतों की सिंचाई नहीं हो सकती।

(७) नहर—खेतों की सिंचाई का सबसे प्रधान बड़ा साधन नहर है। शाहाबाद (आधुनिक भोजपुर) जिले में सोन नदी से एक बहुत बड़ी नहर निकाली गई है जिससे लाखों एकड़ जमीन की सिंचाई होती है जिसमें धान बोया जाता है। धान की खेती के लिए बहुत अधिक जल की आवश्यकता होती है। अतः यह पानी केवल नहर के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है अथवा मूसलाधार वृष्टि से ही सम्भव है। कूप और जलाशयों के लघु स्रोत से धान के खेतों की सिंचाई सम्भव नहीं है। अतः नहर और धान की खेती का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है।

## सिंचाई के आधुनिक साधन

स्वाधीन भारत में सिंचाई के बहुत से नये साधन उपलब्ध हो गये हैं जिनको तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है:—

- (१) नवीन नहरों का निर्माण।
- (२) डैम का निर्माण।
- (३) ट्यूब वेलों का निर्माण।
- (४) पम्पिंग सेटों का लगाना।

हमारी राष्ट्रीय प्रान्तीय सरकारों ने अनेक नवीन नहरों का निर्माण कराया है जिससे सिंचाई में बड़ी सुविधा हो गई है। गंगा, जमुना, सोन, गंडक आदि नदियों से अनेक छोटी छोटी नहरें निकाली गई हैं जिससे सिंचाई बड़ी आसानी से हो रही है सरकार ने कहीं-कहीं लिफ्ट-योजना भी चालू कर रखी है। जिन नहरों या जलाशयों में पानी का अभाव है उनमें गंगा आदि बड़ी नदियों का पानी यन्त्रों के द्वारा बड़े बड़े पाइपों के सहारे इन नहरों में डाल दिया जाता है जिससे वे सूखने न पावें और खेतों को पर्याप्त जल देकर सिंचाई कर सकें। यह लिफ्ट-योजना बड़ी कारगर सिद्ध हुई है।

(२) सरकार का उद्देश्य प्रत्येक गाँव में बिजली पहुँचाना है जिससे सिंचाई का कार्य सुलभ हो सके। इसके लिए सरकार ने पहाड़ी नदियों में बड़े बड़े बाँधों का निर्माण किया है। मिर्जापुर में रिहन्द (रेणु) नदी पर ऐसा ही बाँध बाँधा गया है जो 'रिहन्द डैम' के नाम से प्रसिद्ध है। इस 'डैम' से बहुत बिजली पैदा की जाती है जिसका उपयोग उद्योग-धन्धों को चलाने के लिए किया जाता है। मिर्जापुर जिले में ही अहिरीरा के पास पर्वत की घाटी को घेर कर—बाँध बाँधकर—एक बड़े जलाशय का निर्माण किया गया है जिससे एक बहुत बड़े भूभाग की सिंचाई की जाती है। इसी प्रकार से अन्य जिलों में 'डैम' बनाये गये हैं।

### (३) ट्यूबवेल—नलकूपों का निर्माण

सरकार ने गाँवों में अनेक नलकूपों का निर्माण किया है। ये नलकूप पाताल तोड़ कुयों के समान हैं जिनका जल बिजली के द्वारा ऊपर लाकर खेतों में पहुँचाया जाता है। इन ट्यूबवेलों से—जिन्हें ग्रामीण जनता 'टीबुल' कहती है—खेतों की सिंचाई में बड़ी सुविधा हो गई है।

(४) कुछ धनी तथा समृद्ध व्यक्तियों ने अपने खर्च से अपने खेतों में 'पम्पिंग सेट' लगा लिया है जो बिजली के द्वारा चालित होता है। इन प्राइवेट 'पम्पिंगसेटों' के द्वारा भी बड़ी आसानी से सिंचाई हो रही है। परन्तु बिजली कटौती के कारण इस कार्य में पूरी सफलता नहीं मिल रही है। सिंचाई के इन नये साधनों से सुविधा तो अवश्य हो गई है परन्तु इससे खेती का खर्चा बढ़ता जा रहा है।

## (४) परिच्छेद

### प्राकृतिक आपत्तियाँ

यदि भोजपुरी प्रदेश को प्राकृतिक आपत्तियों का घर कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। ऐसा ज्ञात होता है कि प्रकृति इस प्रदेश से अत्यन्त क्रुद्ध है और यह मण्डल विधाता की कोप दृष्टि का भाजन है। भगवान् की कृपादृष्टि से यह प्रदेश सदा वंचित रहा है और स्वाधीनता की प्राप्ति के पश्चात् भी सुख सौभाग्य और सम्पन्नता की किरणें इसे अभी स्पर्श भी नहीं कर सकी हैं।



**ईतियाँ**—शास्त्रों में छः प्रकार की ईतियों का उल्लेख किया गया है।

अर्थात् (१) अतिवृष्टि (२) अनावृष्टि (३) चूहा (४) टिड्डियाँ (५) सुग्गा और (६) राजा का आक्रमण—ये छः प्रकार की ईतियाँ हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि भोजपुरी प्रदेश में ये छवों ईतियाँ युग युग से टाँग तोड़कर बैठी हुई हैं।

(१) **अति वृष्टि**—अर्थात् अत्यन्त अधिक वर्षा तथा अनावृष्टि—अर्थात् वर्षा का अत्यन्त अभाव। इन दोनों के जोड़ा से यह प्रदेश सदा से पीड़ित रहा है। बूड़ा और सूखा ये दोनों ही ऐसे ग्रह हैं जो इस प्रदेश की जन्म-कुण्डली में अपने स्थान के स्वामी होकर बैठे हुए हैं।

बलिया जिले का पूर्वी भाग 'दो आबा' के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ एक ओर गंगा नदी और दूसरी ओर सरयू नदी प्रवाहित होती हैं। प्रतिवर्ष इन नदियों में बाढ़ आ जाती है और समस्त प्रदेश जलमग्न हो जाता है। खड़ी फसल का नष्ट हो जाना यहाँ की वार्षिक चर्या है। बाढ़ के आने से केवल खड़ी फसल ही नष्ट नहीं होती बल्कि कच्चे मकान धराशायी हो जाते हैं और छप्पर वह जाते हैं। लोगों को घर में मचान बनाकर रहना पड़ता है और भोजन के स्थान पर सत्तू से ही सन्तोष करना पड़ता है। इस प्रकार से प्रतिवर्ष खेती का नष्ट हो जाना और मकान का गिरना मानों इनके भाग्य की निश्चित रेखा बन गई है।

काशी की छोटी ओर गमियों में सूख जाने वाली वरुणा नदी भी बाढ़ के दिनों में वीभत्स रूप धारण कर लेती है। जौनपुर की सई नदी वर्षा के दिनों में प्रलयकारी रूप दिखलाती है। इसी प्रकार से आजमगढ़ की तमसा (टोन्स) और गोरखपुर की गोमती भी अपना विकराल रूप धारण कर यहाँ के निवासियों को गृहहीन बनाने के साथ ही उनकी खेती को नष्ट करके दाने दाने को मुँहताज बना देती है। अतः अतिवृष्टि के कारण बाढ़ का आना इस प्रदेश की ऐसी समस्या है जिसका समाधान आज तक नहीं हो पाया है। इस दैवी आपत्ति के कारण यहाँ की जनता की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गई है।

**अनावृष्टि**—अनावृष्टि का अर्थ वर्षा का अत्यन्त अभाव है। इस कारण इस प्रदेश में आये दिन सूखा पड़ता रहता है। भोजपुरी किसान केवल भगवान् के भरोसे खेती करता है। यदि समय से उचित मात्रा में वर्षा हो गई तब उसकी धरती सोना उगलने लगती है। परन्तु वर्षा के अभाव में खेतों में धूल उड़ने लगती है। पैदावार होने की कथा तो दूर की बात है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद से, नलकूपों का निर्माण होने से, सिंचाई की अवश्य कुछ सुविधायें प्राप्त हुई हैं परन्तु अभी पूरे प्रदेश को इससे लाभ पहुँचने की आशा दुराशा मात्र है। अतः किसानों की समस्या अभी वैसी ही बनी हुई है।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि वर्षा के कारण अतिवृष्टि से भदई की फसल नष्ट हो जाती है और बाढ़ की समाप्ति के पश्चात् खरीफ की फसल होने पर अनावृष्टि के कारण वह सूख जाती है। इस प्रकार अधिक वर्षा तथा बाढ़ से भदई की फसल पानी में डूब कर नष्ट हो जाती है और इसके बाद पानी न बरसने से अनावृष्टि से खरीफ भी नहीं होती। इस प्रकार अतिवृष्टि और अनावृष्टि का द्वन्द्व भोजपुरी कृषक के भाग्य के दुष्ट शनि और मंगल ग्रह के समान है जो उसे पनपने नहीं देते।

**मूषकाः शलभाः, शुकाः**—खेतों में चूहों की अधिकता से सारी मिट्टी खोखली कर दी जाती है जिससे अन्न नहीं पैदा होता। कभी कभी आये दिन टिड्डियों का भी आक्रमण होता रहता है जो कि किसान की खड़ी खेती को घंटों में ही चट कर जाती है। टिड्डियाँ फल वाले वृक्षों को भी अत्यन्त हानि पहुँचाती हैं। इस प्रकार खेती और फल दोनों को नष्ट कर देती हैं।

### नदियों के द्वारा बरती का कटाव

भोजपुरी प्रदेश में गंगा, सरयू, सई, गोमती, वरुणा आदि नदियों में प्रति वर्ष बाढ़ आती है जिसके कारण लाखों वर्ग मील की खेती नष्ट हो जाती है। इसके अतिरिक्त जब नदियों का पानी 'ओहरने' अर्थात् घटने लगता है तब वे अपने तट को काटने लगती हैं जिसके फलस्वरूप हजारों बीघा जमीन कट कर इधर से उधर हो जाती है। यद्यपि कटाव की समस्या प्रायः प्रत्येक जिले में है परन्तु बलिया और छपरा तथा बलिया एवं आरा (वर्तमान भोजपुर) जिलों के बीच इस समस्या ने भीषण रूप धारण कर लिया है। बलिया और आरा के बीच गंगा नदी प्रवाहित होती है। गंगा की कटाव से कभी बलिया जिले की हजारों बीघा जमीन आरा जिले में चली जाती है और कभी आरा की बलिया में। चूँकि गंगा नदी ही इन दोनों की विभाजक रेखा है अतः जिला की सीमा प्रतिवर्ष बदलती रहती है। इस कारण दोनों जिलों के लोगों में प्रति वर्ष झगड़ा होता रहता है और कभी कभी बलवा भी हो जाता है। यही दशा बलिया और छपरा की है जहाँ सरजू (घाघरा) नदी विभाजन की रेखा बनाती है। इस कारण हजारों व्यक्ति गृहहीन तथा खेती की जमीन से रहित हो जाते हैं और उन्हें निर्धनता का जीवन बिताना पड़ता है। काश इसका कोई स्थायी समाधान निकाला जाता।

**महामारियों का प्रकोप**—भोजपुरी प्रदेश में बाढ़ के घटने के पश्चात् अनेक प्रकार की बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। हैजा और प्लेग इन दोनों ही बीमारियों का इस प्रदेश से घनिष्ठ प्रेम है और ये बिना चुके हुए प्रतिवर्ष दर्शन देने के लिए आती हैं।



अपोषण और कुपोषण से अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। गर्मी के दिनों में हैजा का प्रकोप अधिक दिखाई पड़ता है और जाड़े के दिनों में प्लेग का रोग। गाँवों में अस्पताल के अभाव और सद्वैद्यों की कमी के कारण इन रोगियों का कोई रसुमि त उपचार नहीं हो पाता और वे रोगी तड़प तड़प कर मर जाते हैं। गाँवों में 'मेटर्निटी होम' न होने के कारण कितनी गर्भिणी स्त्रियों के प्राण पखेरू प्रसव की वेदना के कारण उड़ जाते हैं।

गाँवों में वसन्त ऋतु में चेचक की बीमारी सांक्रामक रोग के रूप में फैल जाती है। भोजपुरी जनता इस रोग को शीतला माता का प्रकोप मानती है। अतः इस रोग से पीड़ित व्यक्ति को कोई दवा अथवा औषधि नहीं दी जाती बल्कि शीतला की पूजा ही इसका उपचार माना जाता है। मच्छरों के कारण मलेरिया का प्रचार भी कुछ कम नहीं है। कुवार के महीने में ज्वर से पीड़ित होने से अनेक लोगों के घर में कोई पथ्य देनेवाला भी नहीं रहता। जूड़ी-बुखार इन लोगों का सतत सहचर है जिससे पिण्ड छुड़ाना बड़ा कठिन कार्य है।

## (५) परिच्छेद

### बाट और माप

(Weights and measures)

भोजपुरी प्रदेश में ठोस वस्तुओं—अन्न, शाक-सब्जी आदि—के क्रम-विक्रय के लिए अनेक बाट प्रसिद्ध थे जिसकी सबसे छोटी ईकाई छँटाक थी जिसे 'कनवा' भी कहते हैं। ४ छँटाक का एक पाव (११४ सेर), ८ छँटाक का आधा सेर (११२ सेर) और १६ छँटाक का एक सेर होता था। ढाई सेर की आधा पसेरी और पांच सेर की एक पसेरी होती थी। दस सेर को एक धारा कहा जाता था। बीस सेर का आधा मन और चालीस सेर का एक मन होता था। इसी तरह से अट्ठाइस मन को एक टन की संज्ञा दी जाती थी। इस प्रकार से ठोस पदार्थों के तौलने की सबसे छोटी ईकाई छँटाक थी और सबसे बड़ी ईकाई टन माना जाता था। उसे निम्नांकित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है:—

१ छँटाक	सबसे छोटी ईकाई
४ „	१ पाव (११४ सेर)
८ „	११२ सेर (दो पाव)
१६ „	१ सेर (चार पाव)
२१२ सेर	११२ पसेरी
५ „	१ पसेरी (पनसेरी)
१० „	१ धारा
२० „	११२ मन
४० „	१ मन
२८ मन	१ टन

जिन लोहे के बाटों से—जिन पर सरकार की मुहर लगी रहती थी—ये ठोस द्रव्य तौले जाते थे उन बाटों के नाम इस प्रकार थे।

(१) छटंकी	११६ सेर
(२) अघपई	११८ सेर
(३) पौआ	११४ सेर
(४) अघसेरा	११२ सेर
(५) तिन पौआ	३१४ सेर
(६) सेर	१ सेर (१६ छँटाक)
(७) सवैया	११४ सेर
(८) डेढ़सेरी	११२ सेर
(९) अढ़ैया	२१२ सेर
(१०) पसेरी या पनसेरी	५ सेर
(११) धारा	१० सेर
(१२) मन	४० सेर



प्रान्तीय सरकार के द्वारा निर्धारित इन लोह के बने बाटों के अतिरिक्त गाँवों में शाक-सब्जी को तौलने के लिए पत्थर के बाट भी प्रचलित थे जिन्हें वहाँ के लोगों ने अपनी सुविधा के लिए बना रखा था। ये बाट आज भी प्रचलित हैं यद्यपि इनके तौल में अब अन्तर आ गया है।

दूध, घी, तेल आदि द्रव पदार्थों के भी नापने की यह प्रणाली प्रचलित थी। इस तौल में सोलह छटाँक का एक सेर माना जाता था। परन्तु गाँवों में जो सेर प्रचलित था उसे कच्चा सेर कहते थे। सरकारी मुहर से अंकित जो सेर शहरों में प्रचलित था वह पक्का सेर कहा जाता था। इन दोनों प्रकार के सेरों में बड़ा अन्तर था। सरकारी सेर १६ गण्डा का होता था परन्तु कच्चा सेर कहीं १४ और कहीं १२ गण्डा का ही होता था। एक गण्डा पाँच तोला के बराबर था। अतः सरकारी १६ गण्डा वाला पक्का सेर ८० तोला का होता था जबकि गाँव के कच्चे सेर का वजन केवल ६० तोला अथवा ७० होता था। पक्का सेर बड़ी तौल के नाम से प्रसिद्ध था जबकि कच्चा सेर छोटी तौल कहा जाता था। एक ही जनपद में दो तरह के बाटों के प्रचलित होने के कारण बड़ी गड़बड़ी थी। चालाक व्यापारी सीधे सादे ग्रामीणों को कच्चे सेर से अपने माल को तौलकर पक्के सेर के रेट का दाम वसूल करते थे। अतः तत्कालीन सरकार ने इस अव्यवस्था को दूर करने के लिए सर्वत्र पक्का सेर से ही तौलने का आदेश जारी कर दिया था। इस कारण बाद में इसी स्टैण्डर्ड राजकीय बाट का प्रयोग किया जाने लगा था। सन् १९४७ ई० में यह देश स्वतन्त्र हो गया। इसके पश्चात् हमारे देश के राजनेताओं में सभी प्रकार की वर्तमान वस्तुओं में सुधार तथा परिवर्तन की धुन सवार हुई। जिसके फलस्वरूप हिन्दू धर्म में विवाह, दाय भाग, उत्तराधिकार आदि नियमों में महान् परिवर्तन कर दिया गया। हमारे देश की मुद्रा प्रणाली तथा बाट और नाप की पद्धति भी इससे अछूती नहीं बची और उसमें आमूल परिवर्तन या क्रान्ति कर दी गई। यह क्रान्ति सन् १९५५ ई० के आसपास में की गई और तभी से यह नयी बाट प्रणाली प्रचलित कर दी गई।

आजकल जो बाट प्रणाली प्रचलित है उसे दशमलव प्रणाली (Decimel system) कहते हैं क्योंकि इसकी सभी इकाईयाँ १० अथवा १०० से विभाजित की जा सकती है। यह प्रणाली यूरोप के अन्य देशों में भी पायी जाती है। अतः भारत को यूरोप के अन्य देशों की श्रेणी में बैठाने के लिए तौल की इस दशमलव प्रणाली का यहाँ भी प्रचार किया गया। वैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रणाली में मले ही कुछ विशेषता हो परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इससे लाभ की अपेक्षा साधारण जनता की कठिनाई और भी बढ़ गई है। क्योंकि जो जनता शताब्दियों से छटाँक और सेर से परिचित थी वह अब ग्राम और किलो के चक्कर में फँस गई है।

आजकल बाट की जो दशमलविक प्रणाली प्रचलित है उसे निम्नांकित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है। इस बाट प्रणाली की सबसे छोटी ईकाई ग्राम है और सबसे बड़ी ईकाई मेट्रिक टन है।

	१ ग्राम
१ ग्राम	१।१००० किलो
१०० ग्राम	१।१०० किलो
२५० "	१।४ किलो
५०० "	१।२ किलो
७७५ "	३।४ किलो
१००० "	१ किलो
२५ किलोग्राम	१।४ क्विन्टल
५० " "	१।२ " "
७५ " "	३।४ " "
१०० " "	१ क्विन्टल

सोना तथा चाँदी आदि बहुमूल्य पदार्थों को तौलने के लिए जो बाट भोजपुरी प्रदेश में प्रचलित थे उनका विवरण इस प्रकार है। इस बाट की सबसे छोटी ईकाई जौ थी और सबसे बड़ी ईकाई तोला कही जाती थी। एक विशेष वृक्ष का लाल फल 'करजनी' या लाल कहा जाता था। इसे रत्ती भी कहते थे। यही रत्ती सोने और चाँदी को तौलने के लिए सबसे छोटी ईकाई के रूप में व्यावहारिक रूप से काम में लायी जाती थी। चार जौ मिलाकर एक रत्ती होती थी। इस बाट की तालिका निम्नांकित है:—



*३ जौ	१ लाल *
४ जौ	१ रत्ती
४ रत्ती	१ चौरत्ती
५ ११४ रत्ती	१ एअन्नी (एकन्नी)
८ रत्ती	१ मासा
१० ११२ रत्ती	१ दुअन्नी
८ दुअन्नी	१ ढाका
या १० ११२ मासा	}
१२ मासा	
	१ तोला

आजकल सोने आदि बहुमूल्य वस्तुओं के तौलने का बाट बिल्कुल बदल गया है। इसके तौल की सबसे छोटी इकाई ग्राम है तथा सबसे बड़ी इकाई कही जाती है। यह तौल भी दाशमालविक प्रणाली के नाम से प्रसिद्ध है।

### (३) ठोस द्रव्यों को नापने का नया पैमाना

१० मिलीग्राम	१ सेन्टीग्राम
१० सेन्टीग्राम	१ डेसी ग्राम
१० डेसी ग्राम	१ ग्राम
१० ग्राम	१ डेका ग्राम
१० डेकाग्राम	१ हेक्टाग्राम
१० हेक्टाग्राम	१ किलोग्राम
१० किलोग्राम	१ मिरिया ग्राम
१० मिरिया ग्राम	१ क्विन्टल
१० क्विन्टल	१ मेट्रिक टन

इस नये पैमाने में ग्राम और किलो इन्हीं दो बातों का प्रयोग सबसे अधिक होता है। अब किलोग्राम ने पुराने बाट सेर का स्थान ले लिया है। एक किलोग्राम १ सेर ६ तोला के बराबर होता है और १ सेर ९३३ ग्राम के बराबर माना जाता है। एक किलो में कितने ग्राम होते हैं इसके सम्बन्ध में एक दोहा प्रचलित है।

डेका दस है किलो हजार।

हेक्टा से समझौ सौ बार॥

इस प्रकार १० ग्राम का १ डेका ग्राम, १०० ग्राम का १ हेक्टाग्राम तथा १००० ग्राम का १ किलोग्राम होता है।

#### कपड़ा नापने का माप

कपड़ा को नापने के लिए पहिले गिरह और गज का प्रयोग होता था। तर्जनी की जो लम्बाई है वह एक गिरह के बराबर समझा जाता था। सोलह गिरह का एक गज माना जाता था। इसी गिरह और गज के माप से दर्जी कपड़ा नापा करते थे। यह गज भी दो प्रकार का होता था। (१) बड़ा गज (२) छोटा गज। जमीन के नापने में जिस गज का प्रयोग किया जाता था उसे सिकन्दरी गज कहते थे। परन्तु दर्जी जिस गज का प्रयोग करते थे वह कतई गज या 'कत्ती गज' के नाम से जाना जाता था। अकबर ने अपने साम्राज्य में इलाही गज का नाप चलाया था जो ३३ ३/४ इंच के बराबर होता था।

परन्तु आज कल कपड़ा को नापने के लिए गिरह और गज के स्थान पर मीटर का प्रयोग होने लगा है। यह मीटर गज से थोड़ा बड़ा होता है।

\* जौ एक प्रकार का अन्न है जो गेहूँ के ही समान होता है। इसका प्रयोग सोने के तौलने के लिए किया जाता था।

\* यह एक वृक्ष का फल है जो लाल होता है। इसके ऊपर काला दाग भी होता है। इसे 'करजनी' भी कहा जाता है।



## लम्बाई नापने का माप

लम्बाई नापने के लिए जो पैमाना प्रचलित था उसकी छोटी इकाई सूत और सबसे बड़ी इकाई हाथ थी। किसी सूत (सूत) या डोरा की जो मोटाई है उसे सूत कहते हैं। तीन सूत मिल कर एक पैन होता था और तीन पैन मिलाकर एक अंगुल माना जाता था। अँगुरी की जो चौड़ाई है उसका नाम अंगुल है जो २।३ इंच के बराबर होता है। चार अंगुलियों की चौड़ाई को चौआ कहा जाता है। शाहाबाद (आधुनिक भोजपुर) जिले में एक माप मुट्ठा के नाम से भी प्रचलित है जो बाँधी गई मूँठ (बद्ध मुष्टि) की चौड़ाई के बराबर होता है। बारह अंगुलियों की चौड़ाई बित्ता कहा जाता है। दो बालिस्त एक हाथ के नाम प्रसिद्ध है। इस माप को निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है:—

१ सूत	सूत की चौड़ाई
३ सूत	१ पैन
३ पैन	१ अंगुल
४ अंगुल	१ चौआ
१२ अंगुल	१ बित्ता
२ बित्ता	१ हाथ

यह हाथ १५ से २० इंच लम्बा होता है परन्तु इसकी औसत लम्बाई १८ इंच होती है।

## खेत नापने का माप

खेत नापने तथा दूरी—सड़क या स्थान की लम्बाई—मापने के लिए अलग अलग मापदण्ड प्रचलित हैं। तीन गज या छः क्यूबिट की एक लग्गी होती है। जिसे बाँस भी कहा जाता है। बीस लग्गी एक रसरी के बराबर होती है जो १२० क्यूबिट के बराबर मानी जाती है। साठ रस्सी या रसरी का एक कोस होता है। कोस की लम्बाई विभिन्न जिलों में बदलती रहती है। साधारणतया एक कोस ६० रस्सी या १२०० लग्गी अथवा ३६०० गज या दो मील से ८० गज बड़ा होता है। धाप करीब एक मील का होता है और कच्चा कोस पक्के कोस—जिसका ऊपर वर्णन किया गया है—से कुछ छोटा होता है।

२ हाथ	१ गज
३ गज	१ लग्गी
२० लग्गी	१ रस्सी या रसरी
६० रस्सी	१ कोस
४ कोस	१ जोजन

सामान्यतया सड़क की दूरी को नाँपने के लिए नीचे लिखे हुए माप प्रचलित थे :—

२२० गज	१ फर्लांग
८ फर्लांग	१ मील
२ मील	१ कोस

कहीं कहीं गाँवों में खेत नापने के लिए एक दूसरी प्रणाली भी प्रचलित है जिसमें लट्ठा, धुर, विस्वा, बीघा आदि का प्रयोग होता है। इस माप में—गज का एक लग्गी या लट्ठा होता है। लग्गी की एक धूर होती है। बीस धूर का एक विस्वा और बीस विस्वा का एक बीघा होता है। किन्हीं किन्हीं जिलों में विस्वा को डिसमिल भी कहा जाता है। बीघा भी दो प्रकार का होता है—(१) पक्का बीघा और (२) कच्चा बीघा। कच्चा बीघा पक्के से छोटा होता है। कहीं कहीं एकड़ का भी प्रयोग किया जाता है जो लगभग १। से २ बीघा के बराबर होता है।

गज	१ लट्ठा
लट्ठा	१ धूर
२० धूर	१ विस्वा
२० विस्वा	१ बीघा
१॥ बीघा	१ एकड़

साधारणतया गाँवों में खेतों को नाँपने के लिए यही नाप प्रचलित है। पटवारी (आधुनिक लेखपाल) खेतों को नापने के लिए लोहे का बना हुआ नाप यन्त्र—जो 'जरीब' कहा जाता था—का प्रयोग किया करते थे जिसकी लम्बाई—गज हुआ करती थी।



(१) दूरी नापने का नया मेट्रिक पैमाना

१० मिली मीटर	१ सेंटी मीटर
१० सेन्टी मीटर	१ डेसी मीटर
१० डेसी मीटर	१ मीटर
१० मीटर	१ डेका मीटर
१० डेका मीटर	१ हेक्टो मीटर
१० हेक्टोमीटर	१ किलो मीटर

आजकल मील के स्थान पर इसी किलोमीटर का प्रयोग किया जाता है।

(२) कपड़ा आदि नापने का नया पैमाना

१० सेन्टी मीटर	१ डेसी मीटर
१० डेसी मीटर	१ मीटर

इस प्रकार १ मीटर, १ गज ३ इंच के बराबर होता है। दूसरे शब्दों में १ गज ०.९१ मीटर के।

ईकाई का पैमाना

आम, नीबू, केला आदि वस्तुओं को गिनने में निम्नलिखित पैमाना का व्यवहार किया जाता है।

१२ अदद या ईकाई	१ दर्जन
१२ दर्जन	१ ग्रास या ग्रूस
५ अदद	१ गाही
२० अदद	१ कोड़ी
१०० अदद	१ सैकड़ा

बनारस आदि शहरों में आम, नीबू आदि वस्तुओं की बिक्री सैकड़ा के हिसाब से की जाती है। परन्तु यह सैकड़ा एक सौ (१००) के बदले में १३० अदद का होता है।

गांवों में जो स्त्रियाँ एक से लेकर सौ तक की गिनती नहीं जानती वे अपने आम, नीबू, उपले आदि गाही (५) के हिसाब से ही गिनकर लेती हैं। इस प्रकार बीस गाही गिनने पर उनका सैकड़ा पूरा हो जाता है।

(६) परिच्छेद

आदान-प्रदान के साधन

अत्यन्त प्राचीन काल में जब मुद्राप्रणाली का आविष्कार नहीं हुआ था उस समय तत्कालीन लोगों में आदान-प्रदान का साधन विनिमय था। वैदिक काल में यह साधन गौ थी। जिसके पास अधिक गौएँ होती थीं वही व्यक्ति धनिक माना जाता था। गौ को देकर दूसरी वस्तुओं का क्रय किया जाता था। इसके पश्चात् अन्न से अन्न का विनिमय किया जाता रहा। यह प्रथा आदिम जातियों तथा जन जातियों में आज भी प्रचलित है।

भोजपुरी-प्रदेश में आदान-प्रदान-विनिमय की यह प्रथा गांवों में अभी हाल तक प्रचलित थी। गांव की स्त्रियाँ चावल, चना आदि अन्नों को देकर इसके बदले में अपने बच्चों के लिए मिठाई आदि खरीदा करती थीं। यदि किसी स्त्री के घर में चावल नहीं होता था तो वह गेहूँ देकर चावल उसके बदले में ले आती थी। इसी प्रकार से चना को देकर दाल और घान को देकर नमक दही, दूध आदि बदले में लिया जाता था। इन अन्नों के विनिमय की दर क्या थी यह कहना तो बड़ा कठिन है परन्तु यह एक सामान्य नियम था कि जितना अन्न दिया जाता था उसके बदले में उतना ही दूसरा अन्न मिलता था। अर्थात् यह विनियम का दर बराबरी का था। गांव के व्यापारी तथा बनियाँ इस विनिमय की प्रणाली से भोली भाली स्त्रियों को बड़ा ठगा करते थे। इन पंक्तियों के लेखक ने एक बार देखा कि एक दही बेंचने वाली जितना दही देती थी उसके बदले में उतना ही घान उस घर-वाली से ले लिया करती है जबकि दही का दाम सस्ता, दो पैसे सेर था। इस प्रकार दही और घान दोनों के विनिमय का दर बराबर था।



परन्तु जब से अन्न अधिक महँगा हो गया तब से अन्नसे विनिमय की प्रणाली जाती रही है। अब सभी वस्तुयें पैसा और रुपया के माध्यम से ही प्राप्त की जाती हैं।

इस प्रदेश में जो मुद्रा-प्रणाली पहिले प्रचलित थी उसका उल्लेख अगले पृष्ठों में किया जाता है। इसके पश्चात् स्वतन्त्र भारत में इस प्रणाली में जो परिवर्तन किया गया है उसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

### सिक्का

भोजपुरी प्रदेश में पहिले मुद्रा की जो प्रणाली प्रचलित थी उसमें रुपया, आना, पाई का प्रयोग होता था। इस प्रणाली की सबसे छोटी ईकाई पैसा था और सबसे बड़ी ईकाई रुपया था। चार पैसे का एक आना होता था और सोलह आने का एक रुपया होता था। इस प्रकार एक रुपया में चौसठ पैसा होता था। इसके अतिरिक्त पाई का भी प्रचलन था जो १ पैसा में तीन पाई होती थी। इस प्रकार एक आना में बारह पाई का समावेश होता था। परन्तु इस पाई—जो अंग्रेजी पाई के नाम से प्रसिद्ध थी—का व्यावहारिक रूप से प्रचलन बहुत कम था। बल्कि नहीं के बराबर था। यह केवल सरकारी कार्यालयों में कागजी हिसाब-किताब के प्रयोग में ही लाई जाती थी। यह पाई—जो एक पैसे में तीन होती थी—पैसे से आकार-प्रकार में बहुत छोटी होती थी। दो पैसे का भी एक सिक्का होता था जो एक पैसे के आकार से प्रायः दुगुना मोटा और बड़ा होता था परन्तु व्यवहार में इसका प्रयोग विशेष नहीं था। एकन्नी नामक सिक्के में चार पैसे होते थे जो आकार में गोली होती थी। दुअन्नी और चवन्नी शुद्ध चाँदी की बनी हुई थी जिसका आकार एकन्नी से छोटा था। अठन्नी ५० पैसे की आकृति में गोली थी। रुपया आकार में अठन्नी से भी बड़ा और गोला था। इन राजकीय मुद्राओं के अतिरिक्त इस प्रदेश में एक स्थानीय सिक्का भी प्रचलित था जिसे 'ढेबुआ' कहा जाता था। यह पैसा के ही मूल्य के बराबर होता था परन्तु आकार में चौकोर तथा चपटा था। संभवतः गोरखपुर में इसका प्रचार अधिक होने के कारण इसे 'गोरखपुरी ढेबुआ' की भी संज्ञा प्राप्त थी। इस ढेबुआ का बहुत दिनों तक प्रचार था। परन्तु इस पर राजकीय मुहर न होने के कारण अवैध रूप से लोगों ने इसका निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। अतः ब्रिटिश सरकार ने इसका प्रचलन कानून द्वारा बन्द कर दिया।

ब्रिटिश शासन के दिनों में छोटी दुअन्नी और चवन्नी शुद्ध चाँदी की बनी होती थी। महारानी विक्टोरिया के समय में प्रचलित रुपयों में चाँदी की मात्रा अत्यधिक होती थी। जब कालान्तर में रुपये में चाँदी की कमी होने लगी तब विक्टोरिया के रुपयों का लोग तस्कर व्यापार करने लगे थे। कुछ वर्षों के पश्चात् दुअन्नी और चवन्नी में दरब (Alloy) की मात्रा अधिक होने लगी और इसके आकार में भी परिवर्तन हो गया। स्वाधीनता के पहिले और कुछ दिनों बाद तक जो सिक्के प्रचलित थे वे इस प्रकार थे।

### प्रचलित सिक्के

सिक्के का नाम	धातु-विशेष
१ पैसा	लघुतम ईकाई
४ ,,	१ इकन्नी
८ ,,	१ दुअन्नी
१६ ,,	१ चवन्नी
३२ ,,	१ अठन्नी
६४ ,,	१ रुपया
	ताम्बा का बना
	गिलट
	चाँदी
	चाँदी
	गिलट
	चाँदी + दरब

एक पैसा में तीन अंग्रेजी पाई होती थी। इस प्रकार एक आने में बारह पाई का समावेश था। परन्तु इसके आगे के सिक्के एकन्नी, दुअन्नी में कोई अन्तर नहीं था।

उस समय जो नोट प्रचलित थे वह एक, दो, पाँच, दस, सौ, हजार, और दस हजार रूपयों के मूल्य के होते थे। एक रुपये की नोट से दस और सौ के नोट का आकार बड़ा होता था। इन नोटों पर ब्रिटेन के तत्कालीन बादशाह की आकृति छपी रहती थी तथा यह राजकीय प्रतिज्ञा भी मुद्रित होती थी कि "अमुक नोट के धारक को किसी भी सरकारी खजाने से उतने ही मूल्य की अदायगी सिक्कों में की जायेगी।"

परन्तु स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् जिस प्रकार से हमारी राष्ट्रीय सरकार ने बाट और नाप में परिवर्तन कर दिया उसी प्रकार इस मुद्रा प्रणाली में भी आमूल परिवर्तन स्थापित किया गया। पहिले मुद्रा प्रणाली का आधार रुपया, आना और



पाई था परन्तु इस भारतीय प्रणाली को यूरोप दाशमालविक मुद्रा पद्धति से समानता करने के लिए तथा इसमें एकरूपता लाने के लिए 'आना' को हटाकर केवल रुपया और पैसा ही प्रधान सिक्का स्वीकार किया गया। नयी मुद्रा प्रणाली के अनुसार अब एक रुपया एक सौ पैसा के बराबर माना जाने लगा है जबकि पुरानी पद्धति के अनुसार चौसठ पैसे का एक रुपया होता था। अब मुद्रा की सबसे छोटी इकाई पैसा है जिसे पहिले कुछ वर्षों तक नया पैसा कहा जाता था। अधिकतम ईकाई रुपया है। अब १० रुपयों और २० रुपयों का भी एक सिक्का होने लगा है जो पहिले नहीं था। अब नोटों पर केन्द्रीय सरकार की राजकीय मुद्रा—अशोक स्तम्भ तथा चार सिंह छापा जाता है। आजकल के प्रचलित सिक्के निम्नांकित हैं।

१ पैसा—लघुतम इकाई—रुपये का

(१/१०० भाग)

२ पैसा—रुपये का १/५० भाग

५ पैसा—रुपये का १/२० भाग

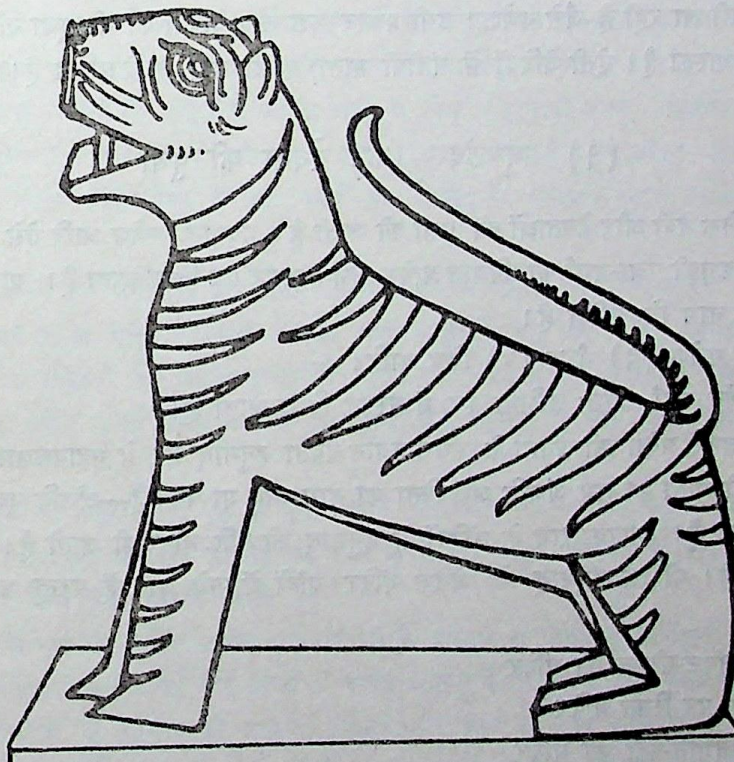
१० पैसा—रुपये का १/१० भाग

२५ पैसा—रुपये का १/४ भाग

५० पैसा—रुपये का १/२ भाग

१०० पैसा—एक रुपया

• •





## धार्मिक जीवन

(१) परिच्छेद

### लोक देवी और देवता

भोजपुरी जनता का जीवन धर्म से ओत-प्रोत है। उसके जीवन की मूल भित्ति धर्म है। इसी के ऊपर इनका जीवन आश्रित है। भोजपुरी प्रदेश में अनेक देवी और देवता उपलब्ध हैं जिनकी पूजा बड़ी श्रद्धा से की जाती है। इन देवताओं को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है (१) पौराणिक देवता (२) लोक देवता।

पौराणिक देवता वे हैं जिनकी पूजा और अर्चा का विधान पुराणों में उपलब्ध होता है जैसे राम, कृष्ण और शिव आदि। परन्तु लोक देवता उन्हें कहते हैं जिनका प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख नहीं पाया जाता। परन्तु जनता में वे बड़े ही लोकप्रिय हैं जैसे क्षेत्रपाल। कुछ देवता ऐसे भी हैं जिनका पुराणों में किम्बा वेदों तक में वर्णन पाया जाता है परन्तु जनता में भी उनकी पूजा अक्षुण्ण रूप से होती चली आ रही है जैसे गणेश। इसी प्रकार कुछ लोक-देवियों की भी पूजा गाँवों में हुआ करती है। इन पर ग्रामीण जनता की बड़ी आस्था है। ऐसी देवियों में संतोषी माता, काली माई आदि प्रसिद्ध हैं।

### (१) अनुच्छेद—(क) देवता की पूजा

भोजपुरी प्रदेश में अनेक देवी और देवताओं की पूजा की जाती है। हनुमान्, गणेश आदि ऐसे अनेक देवता हैं जो गाँवों में अत्यन्त लोक-प्रिय हैं और इनकी पूजा-अर्चा का विधान प्रत्येक शुभ अवसर पर किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्र में प्रसिद्ध लोक-देवताओं (Folk gods) के नाम निम्नांकित हैं।

(१) हनुमान् (२) गणेश (३) भैरव (४) शिव आदि।

इन देवताओं का वर्णन यहाँ क्रमशः संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

(१) **हनुमान्**—भोजपुरी प्रदेश की जनता के सबसे प्रधान देवता हनुमान् हैं। ये महाबलशाली हैं अतः इन्हें 'महावीर' भी कहा जाता है। हनुमान् की माता का नाम अंजनि और पिता का नाम वायु या पवन है—अंजनि पुत्र, पवन सुत नामा। ये भगवान् रामचन्द्र के अत्यन्त भक्त हैं। अतएव राम के मंदिरों में हनुमान् की मूर्ति भी पायी जाती है। परन्तु हनुमान् की पूजा पृथक् रूप में भी की जाती है। यों तो हनुमान् के अनेक मंदिर गाँवों में पाये जाते हैं परन्तु इनके तीन मंदिर अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

(१) वाराणसी में संकट-मोचन का मंदिर

(२) प्रयाग में संगम पर स्थित मंदिर

(३) अयोध्या में हनुमान्-गढ़ी का मंदिर

वाराणसी नगर में लंका के पास स्थित संकट मोचन का मंदिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस मंदिर की स्थापना गोस्वामी तुलसीदास जी ने आज से चार सौ वर्ष पहले की थी। यहाँ शनिवार और मंगलवार को बड़ी भीड़ एकत्रित होती है। मंगल हनुमान जी का जन्म दिन माना जाता है। अतः इस दिन विशेष रूप से यहाँ दर्शनार्थियों का संमर्द होता है। हनुमान् जी को मोदक अर्थात् लड्डू बहुत प्रिय है—

मोदक-प्रिय मुद मंगल दाता।

विद्या वारिधि बुद्धि विधाता ॥



अतः दर्शनार्थी हनुमान् जी को लड्डू चढ़ाते हैं। कुछ लोग मनौती मानते हैं और अपनी कामना की पूर्ति होने पर लड्डू चढ़ाते हैं। दुर्गा जी के मंदिर के पास वनकटी हनुमान् का मंदिर है। ऐसी प्रसिद्धि है कि लगातार चालीस दिनों तक इस हनुमान् का दर्शन करने से मनोकामना की अवश्यमेव सिद्धि होती है।

हनुमान् का दूसरा मंदिर प्रयाग में संगम के पास स्थित है। हनुमान् की प्रायः सभी मूर्तियाँ खड़ी मुद्रा में स्थित पायी जाती हैं परन्तु यहाँ पर हनुमान् की मूर्ति जमीन पर सोयी हुई मुद्रा में उपलब्ध होती है। जो कोई यात्री संगम पर स्नान करने के लिए आते हैं वे सभी हनुमान् का दर्शन इस मंदिर में करते हैं। अयोध्या में हनुमान गढ़ी में रामनवमी के दिन बड़ी भीड़ होती है। इस दिन लाखों व्यक्ति सरयू में स्नान कर हनुमान् जी के दर्शन के लिए आते हैं और उनका प्रिय प्रसाद 'लड्डू' चढ़ाते हैं। 'जय महावीर जी की' तथा 'जय हनुमान् जी की' गगनभेदी ध्वनि से सारा वायुमण्डल गूँज उठता है।

हनुमान् की मूर्ति का निर्माण ठोस पाषाण की एक ही शिला से किया जाता है। यह मूर्ति पुरुष-प्रमाण से बड़ी और विशाल होती है। इस मूर्ति में तेल और सिन्दूर को मिलाकर उसका लेप किया जाता है। इस प्रकार हनुमान् की मूर्ति लाल होती है। भक्त जन इसी सिन्दूर का टीका लगाते हैं। हनुमान बन्दरों के राजा माने जाते हैं। अतः इनकी मानवाकृति में पूँछ की भी रचना की जाती है जो बड़ी विशाल होती है। उनकी आकृति का बड़ा सुन्दर वर्णन इस पद्य में किया गया है:—

“लाल देह लाली लसे; अरु धरि लाल लँगूर।

वज्रदेह, दानव दलन; जय, जय, जय, कपिसूर॥

चूँकि हनुमान् शक्ति के देवता हैं और बल के प्रतीक माने जाते हैं अतः अपनी रक्षा के अवसर पर अथवा किसी संकट के समय भक्तजन जय हनुमान् जी की 'जय वजरंगबली की' का गगनभेदी जयघोष करते हैं।

चूँकि हनुमान् शक्ति के देवता माने जाते हैं, अतः गाँवों के प्रत्येक अखाड़ों पर इस देवता की मूर्ति स्थापित की जाती है तथा 'एकरंगा' के कपड़े की बनी हुयी लाल पताका गाड़ी जाती है जिसे 'महावीर जी का झंडा' कहते हैं। मंगलवार के दिन ग्रामीण जनता मोटी रोटी को पका कर उसमें गुड़ मीस कर—जिसे रोट कहते हैं—इस देवता को चढ़ाती हैं। बहुत से लोग अपनी मनोकामना की पूर्ति होने पर सवा सेर, या सवा पसेरी का रोट भगवान् को चढ़ाते हैं और उसे भक्तजनों में वितरण करते हैं जिसे 'प्रसाद' कहा जाता है। गाँवों में महावीर जी के जन्म के दिन 'महावीरी झंडा' निकाला जाता है जिसमें हजारों की संख्या में लोग सम्मिलित होते हैं। इस दिन ये लोग गदा और मुग्दर भाँजते हैं और बनेटी भाँजते हैं। चूँकि भोजपुरी भूमि वीर-प्रसू है और यहाँ की जनता वीरता-प्रिय हैं अतः शौर्य और शक्ति के प्रतीक हनुमान् इनके इष्टदेव हैं यह स्वाभाविक ही है।

हनुमान् जी वानरराज माने जाते हैं। अतः उनके संबंध के कारण जनता साधारण बन्दरों को भी सम्मान की दृष्टि से देखती है। वाराणसी में दुर्गा जी के मंदिर को 'मंकी टेम्पुल' कहा जाता है जहाँ सैकड़ों की संख्या में बन्दर पाये जाते हैं। ये इतने घृष्ट और उद्दण्ड हैं कि यात्रियों की गठरी को उनसे छीनकर भाग जाते हैं। भक्तगण इन्हें चना और गुड़ खिलाते हैं। अयोध्या की हनुमान् गढ़ी के मंदिर में भी यह दृश्य देखा जा सकता है। हनुमान् के गण होने के कारण बन्दरों को मारना पाप समझा जाता है।

अनेक लोक हनुमान् की आकृति को गृह के प्रधान द्वार की भित्ति पर चित्रित करते हैं। लोगों का यह विश्वास है कि शक्ति के देवता होने के कारण महावीर जी गृह की रक्षा करते हैं। महाराष्ट्रराज्य में प्रायः प्रत्येक गाँव में हनुमान् की मूर्ति स्थापित पायी जाती है जिसे 'ग्राम मारुति' कहते हैं।

हनुमान की स्तुति के रूप में ग्रामीण जनता महावीर जी के मंदिर में 'हनुमान् चालीसा' का पाठ करती है। जो लोग संस्कृत के विद्वान् हैं वे तो मारुति स्तोत्र का पाठ करते हैं परन्तु अनपढ़ के लिए चालीस पद्यों की यह पुस्तक ही उनके लिए स्तोत्र ग्रन्थ है। 'हनुमान चालीसा' में हनुमान् की आकृति, स्वभाव और गुणों का बड़ी सरल भाषा में वर्णन किया गया है इसके साथ ही उनके पराक्रम का भी बड़ी ओजस्वी भाषा में विवरण पाया जाता है। इसके कुछ प्रसिद्ध पद्य निम्नांकित हैं जिनका पाठ हनुमान् के दर्शन के समय किया जाता है:—

“जय हनुमान ज्ञान गुन सागर,

जय कपीश तिहुँलोक उजागर।

राम दूत अतुलित बलधामा,

अंजनि पुत्र पवन सुत नामा॥१॥



महावीर विक्रम बजरंगी,  
कुमति निवार सुमति के संगी।  
कंचन बरन विराज सुकेसा,  
कानन कुण्डल, कुंचित केसा॥२॥

अब उनके पराक्रम का वर्णन इस प्रकार है—

भीम रूप धरि, असुर संहारे,  
रामचन्द्र के काज सँवारे॥३॥

(२) गणेश—भगवान् गणेश बहुत ही लोकप्रिय देवता हैं। सभी मांगलिक कर्मों में गणेश की पूजा सर्वप्रथम की जाती है। क्या यज्ञोपवीत और क्या विवाह, क्या सत्यनारायण की कथा और क्या त्रिलोकीनाथ की पूजा—इन सभी अवसरों पर गणेश जी की पूजा अनिवार्य रूप से की जाती है। कहने का आशय यह है कि कोई भी ऐसा मंगल का अवसर नहीं होता जब गणेश जी की पूजा न की जाती हो।

भगवान् गणेश विघ्नों के नष्ट करने वाले देवता माने जाते हैं। इनकी पूजा करने से आने वाली विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और आरम्भ किया हुआ कार्य सफलतापूर्वक समाप्त होता है। इन्हें 'विघ्नेश्वर' माना गया है। यही कारण है कि गणेश की पूजा प्रथम कर्तव्य माना जाता है।

गणेश जी का पेट बहुत बड़ा तथा आगे निकला हुआ है। इसीलिए इन्हें 'तुन्दिल' कहा जाता है। मुँह के स्थान में ये हाथी के सूँड को धारण करते हैं। अतएव इन्हें 'गजानन' भी कहा जाता है। हनुमान् की भाँति इनके शरीर में लाल सिन्दूर लगाया जाता है जिससे इनकी आकृति लाल दिखाई पड़ती है। वायु-पुत्र की तरह इन्हें भी लड्डू बहुत ही प्रिय है। इसीलिए भक्तगण इनका दर्शन करके इन्हें लड्डू का प्रसाद चढ़ाते हैं। माघ शुक्ल चतुर्थी—जिसे गणेश चतुर्थी कहते हैं—को गणेश जी की विशेष रूप से पूजा की जाती है। काशी में लौहटिया मुहल्ले में 'बड़ा गणेश' का मंदिर है। इस दिन इस देवता के दर्शन के लिए हजारों दर्शनार्थियों की भीड़ एकत्रित होती है और अपनी श्रद्धा के रूप में इन्हें पुष्प और मिष्ठान्न अर्पित करते हैं। महाराष्ट्र में गणेश चतुर्थी के दिन सार्वजनिक उत्सव मनाया जाता है। जहाँ छात्र व्यायाम का प्रदर्शन करते हैं तथा विद्वानों के भाषण होते हैं। यों तो गणेश का मंदिर प्रायः प्रत्येक नगर में पाया जाता है परन्तु मध्य प्रदेश के उज्जैन में बड़ा गणेश का मंदिर बड़ा प्रसिद्ध है। इस मंदिर में गणेश की बड़ी विशाल प्रतिमा स्थापित है जो ऊँचाई में बीस फीट से भी अधिक है।

यह किम्बदन्ती है कि एक बार देवताओं में यह विवाद छिड़ गया कि सर्वश्रेष्ठ देवता कौन है। यह निश्चय हुआ कि जो संसार की परिक्रमा सबसे पहिले कर लेगा वही सर्वश्रेष्ठ देवता माना जायेगा। सभी देवता अपने 'मिशन' पर निकल गये। गणेश जी 'तुन्दिल' होने के कारण पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने में असमर्थ थे। अतः इन्होंने अपने माता और पिता—शिव-पार्वती की प्रदक्षिणा की। चूँकि माता-पिता की प्रदक्षिणा का महत्त्व संसार की प्रदक्षिणा से भी अधिक है अतः गणेश जी ही सर्वश्रेष्ठ घोषित किये गये। यही कारण है कि सभी मांगलिक कार्यों में सर्वप्रथम गणेश की ही पूजा की जाती है।

गणेश जी का वाहन चूहा है। जिसकी आकृति की स्थापना इनकी मूर्ति के पास की जाती है। गणेश का अर्थ गणों का स्वामी है। अतः ये देवताओं में मुख्य माने जाते हैं। गणेश जी धन, ऐश्वर्य, लाभ के भी देवता हैं। अतः व्यापारी लोग अपनी दूकान में गणेश की प्रतिमा रखते हैं तथा अपनी बहियों पर 'श्रीगणेशाय नमः' लिखते हैं। दीपावली के दिन गणेश और लक्ष्मी की प्रतिमा का पूजन विशेष रूप से किया जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि ऐसा करने से घर में लक्ष्मी का आगमन होता है।

(३) शिव—ब्रह्मा, विष्णु और महेश हिन्दू धर्म की प्रसिद्ध त्रयी है जिनका कार्य क्रमशः संसार की सृष्टि, पालन तथा नाश करना है। इनमें महेश ही शिव के नाम से प्रसिद्ध है। शिव का शाब्दिक अर्थ मंगल या कल्याण है। इस देवता के दो रूप हैं (१) शिव तथा (२) रुद्र। इनका शिवस्वरूप मंगल दायक तथा कल्याणकारी है तथा रुद्ररूप भयानक तथा विनाश करने वाला है।

भोजपुरी क्षेत्र में इस देवता के शिव रूप की ही पूजा की जाती है। कदाचित् ही ऐसा कोई भोजपुरी गाँव हो जिसमें शिव का मंदिर न पाया जाता हो। ग्रामीण जनता प्रातःकाल स्नान कर शिव के मंदिर में जाती है और 'हर हर महादेव शंभो' के मंत्र का उच्चारण कर शिव जी की प्रतिमा पर एक लोटा जल चढ़ाती है। चन्दन, पुष्प, गंध और दीप से इनकी पूजा की जाती



है। शिव जी का दूसरा नाम 'आशुतोष' है अर्थात् ये शीघ्र ही प्रसन्न होकर भक्तों की मनोकामना की पूर्ति करते हैं। इसलिए सर्वसाधारण जनता बड़े प्रेम से इनकी पूजा करती हैं। वृषभ या बैल इनका वाहन है। अतः प्रत्येक मंदिर में इनके वाहन नन्दी की प्रतिमा पायी जाती है। फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशी को महाशिवरात्रि का व्रत होता है। इस दिन शिव की पूजा-अर्चना का विशेष महत्त्व माना जाता है। काशी में विश्वनाथ जी के मंदिर में भगवान शिव के दर्शन के लिए अपार भीड़ होती है। बिहार राज्य के भोजपुर जिले में 'बरहपुर' नामक स्थान में इस अवसर पर बड़ा भारी मेला लगता है जहाँ लाखों की संख्या में लोग गंगा में स्नान कर भगवान् शिव का दर्शन करते हैं।

(४) भैरव—यह एक लोकप्रिय देवता हैं जो नगर के रक्षक माने जाते हैं। काशी में कालभैरव का मंदिर बहुत प्रसिद्ध है। ये वाराणसी नगर के कोतवाल हैं और काशी में आनेवाले तथा यहाँ के निवासियों की रक्षा करते हैं। अतः काशी में तीर्थयात्रा के लिए आनेवाले प्रत्येक यात्री का यह कर्तव्य होता है कि वह सर्वप्रथम भैरव जी का दर्शन करे। ये लोगों की रक्षा करने के लिए अपने हाथ में दण्ड (डण्डा) लिये रहते हैं। अतः इन्हें 'दण्डपाणि' भी कहा जाता है। भैरव जी का वाहन कुत्ता है। जैसे शिव के मंदिर में उनके वाहन नन्दी की मूर्ति स्थापित की जाती है उसी प्रकार से भैरव के मंदिर में उनके वाहन कुत्ते की प्रतिमा भी रहती है। काशी के काल भैरव के मंदिर के प्रधान द्वार पर कुत्ता बैठा रहता है जिसे लोग मिष्ठान्न खिलाते हैं।

जो लोग प्रेत-बाधा से पीड़ित रहते हैं उनकी झाड़-फूंक भी इस मंदिर में की जाती है। पुजारी लोग उन्हें गले में पहिने के लिए एक काला गण्डा देते हैं। इसके साथ ही मोर के पंखों से बने हुए डण्डों से उनकी पीठ को थपथपाते हैं। ऐसा करने से यह विश्वास किया जाता है कि प्रेत बाधा दूर हो जाती है। छोटे बच्चों को भैरव जी का 'गण्डा' पहिनाया जाता है जिससे उन्हें नजर न लगने पाये। उनको विभूति (भस्म) भी लगायी जाती है। इस प्रकार भैरव का गण्डा तथा विभूति मनुष्य की रक्षा का अनन्य साधन माना जाता है।

भैरव की मूर्तियाँ अनेक रूपों में पायी जाती हैं :—

(१) काल भैरव (२) दण्डपाणि भैरव (३) लाट भैरव (४) बटुक भैरव। (५) नन्द भैरव (६) भूत भैरव (७) आस भैरव।

दण्डपाणि भैरव का मंदिर काल भैरव के पास में ही स्थित है जहाँ हाथ में दण्ड लिए हुये इनकी मूर्ति स्थापित है।

लाट भैरव की प्रतिमा बनारस सिटी स्टेशन से सारनाथ को जानेवाली सड़क पर है। बटुक भैरव का मंदिर कमच्छा मुहल्ले में सेण्ट्रल हिन्दू स्कूल के पास में है। इसमें भैरव जी की प्रतिमा बालरूप में अवस्थित है। इस देवता का दूसरा स्वरूप 'नन्द भैरव' है जिसमें कृष्ण और नन्द की कथा का संकेत मिलता है। भूत भैरव भूत-प्रेतों के देवता हैं। वे राक्षस, पिशाच तथा अन्य प्रेतात्माओं को दूर भगाते हैं।

भैरव शब्द का अर्थ भयानक है। चूँकि ये प्रेत योनियों को प्राप्त भूत-प्रेतों को भगा देते हैं अतः इनका नाम सार्थक है। भैरव की सहधर्मिणी 'भैरवी' की देवी के रूप में पूजा की जाती है। तान्त्रिक पूजा में 'भैरवी' का विशिष्ट स्थान माना जाता है जो तान्त्रिकों की अधिष्ठाता देवी हैं।

भैरव की पूजा दूध और मिष्ठान्न के द्वारा की जाती है। यों तो इनका दर्शन प्रत्येक दिन किया जाता है परन्तु रविवार के दिन इनके दर्शन का विशेष महत्त्व माना जाता है।

#### (५) बाबा सत्यनारायण

बाबा सत्यनारायण—जिसे गाँवों में 'सत नरायण' कहा जाता है—ग्रामीण जनता के अत्यन्त लोकप्रिय देवता हैं। प्रत्येक मांगलिक अवसरों—जैसे यज्ञोपवीत, विवाह, गवना आदि—पर सत्यनारायण की कथा का होना आवश्यक है। यदि कोई व्यक्ति बीमार पड़ गया तो नीरोग होने के लिए, यदि कोई विपत्ति आ गयी तो उसके निराकरण के लिए, सत्यनारायण बाबा की मनीती मानी जाती है। इतना ही नहीं बल्कि पुत्र जन्म के अवसर पर, मुकदमा जीतने पर, परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर, मनीती के रूप में इनकी कथा 'कहवायी' जाती है।

इस कार्य के लिए गाँव के कुलगुरु अथवा पुरोहित जी बुलाये जाते हैं। वे अपनी पोथी लेकर आते हैं और इस पूजा के लिए आवश्यक सामग्री जुटाने का आदेश देते हैं। भगवान्—ठाकुर जी—को स्नान कराने के लिए पंचामृत—जिसे दही, कच्चा दूध, घी, मधु और चीनी को मिलाकर तैयार किया जाता है—बनाया जाता है। कथा के पश्चात् भक्तों में प्रसाद के रूप में वितरण करने के लिए आम, अमरुद, केला, पनजीरी, भूना हुआ आटा, 'रोट' आदि बनाकर रख देते हैं। हवन के लिए धूप, जौ, तिल,



घी, गुड़ आदि सामग्री जुटायी जाती है। इन समस्त वस्तुओं के एकत्रित हो जाने के पश्चात् पण्डित जी कथा प्रारम्भ करते हैं। यह कथा दो से कही जाती है—पारायण तथा अर्थसहित। संस्कृत में लिखी गयी सत्यनारायण की कथा को केवल वाँच देने को 'पारायण' कहा जाता है। परन्तु संस्कृत के श्लोकों को पढ़कर भक्तों को उनका अर्थ समझाने को अर्थ सहित कथा वाँचना कहते हैं। पुरोहित जी जब एक अध्याय कथा कह चुकते हैं तब शंख बजाया जाता है। यह क्रम कथा के अन्त (पाँचवें या सातवें अध्याय) तक जारी रहता है। भक्तजन हाथ जोड़ कर कथा सुनते रहते हैं।

कथा की समाप्ति के पश्चात् आरती होती है। आरती लेने के साथ ही भक्तजन पैसा भी देते हैं। इसके बाद हवन होता है और अन्त में प्रसाद वितरण के पश्चात् कथा समाप्त हो जाती है।

सत्यनारायण की कथा में सत्य को ही देवता माना गया है। सत्य को ही भगवान्—नारायण के रूप में पूजा जाता है। इनकी पूजा-अर्चा प्रत्येक घर में की जाती है। संक्षिप्त रूप में सत्यनारायण की कथा इस प्रकार है जिसमें सत्य तथा आस्था (निष्ठा या श्रद्धा) पर विशेष जोर दिया गया है।

### (६) बाबा त्रिलोकीनाथ

हिन्दूधर्म एक प्रगतिशील धर्म है जिसमें नये-नये देवी-देवताओं की सृष्टि भी हुआ करती है। खोंखी मइया और पिलेग मइया की चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है। बाबा त्रिलोकीनाथ हिन्दू देवता मंडल (Pantheon) के सबसे नये 'रिक्त' हैं। पिलेग मइया की ही भाँति यह भी एक नये देवता हैं जिनकी पूजा का प्रचलन अब गाँवों में बढ़ता जा रहा है। पहिले ग्रामीण क्षेत्रों में सत्यनारायण बाबा की कथा प्रचलित थी जिसमें प्रसाद के रूप में केला, अमरूद, आम, पनजीरी, मिठाई आदि की आवश्यकता पड़ती थी। इसके अतिरिक्त 'ठाकुर' जी को स्नान कराने के लिए 'पंचामृत'—दूध, दही, घी, चीनी और मधु का भी प्रबन्ध करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त कथावाचक को कुछ दक्षिणा भी देनी पड़ती थी। निर्धन व्यक्ति के लिए इन साधनों को जुटाना कठिन था। अतः इन्हीं खर्चीले विविध-विधानों के संक्षेपीकरण के बाबा त्रिलोकीनाथ का जन्म या सृष्टि हुई है।

बाबा त्रिलोकीनाथ की कथा में किसी भी विधि-विधान को करने की आवश्यकता पड़ती है। इस कथा को कोई भी साधारण वित्त का व्यक्ति अपने घर कहवा सकता है। इनकी कथा में न तो चरणामृत की आवश्यकता पड़ती है और न प्रसाद की। कथा कहनेवाले व्यक्ति को भी दक्षिणा के रूप में कुछ देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बाबा त्रिलोकीनाथ पूर्णतया लोक-देवता (Folk God) हैं। अतः इनकी पूजा में केवल तीन पैसा (आजकल महँगी के समय में केवल पाँच पैसा) खर्च करने से ही पूजा की आवश्यकीय सामग्री की पूर्ति की जा सकती है। इसमें से एक पैसे का गाँजा, एक पैसे का बताशा और एक पैसे का धूप खरीद कर इनकी पूजा की जाती है। बाबा त्रिलोकीनाथ को गाँजा बहुत ही प्रिय है अतः इनकी कथा में गाँजा का होना परम आवश्यक है। कोई भी व्यक्ति आठ-दस मिनट में इनकी कथा कह सकता है। पहिले इनकी कथा मौखिक ही हुआ करती थी परन्तु अब तो पोथी भी छप गयी है जिसे पढ़कर इनकी कथा सुनायी जाती है। गाँवों में सत्यनारायण बाबा की कथा का स्थान त्रिलोकीनाथ की कथा लेती जा रही है। इसका प्रधान कारण आर्थिक है। जब तीन पैसों में काम चल जाता है तब तीन रुपया कौन खर्च करे?

### (२) अनुच्छेद—दुर्गा

वर्ष भर में दो बार नवरात्र मनाया जाता है। आश्विन शुक्ल तथा चैत्र शुक्ल प्रतिपद् से लेकर नवमी तक को नवरात्र कहा जाता है। इन दिनों में दुर्गा जी की पूजा का बड़ा महत्त्व समझा जाता है। इनमें भी शारदीय नवरात्र की विशेष महत्ता है। इन दिनों दुर्गा जी का दर्शन, पूजा विशेष रूप से की जाती है। दुर्गा जी के नव स्वरूप हैं—नव दुर्गा: प्रकीर्तिताः। काशी में इन सभी नवों दुर्गा के मंदिर भिन्न-भिन्न मुहल्लों में स्थित हैं जिनका दर्शन करना पुण्यारक माना जाता है। कुछ लोग इन नौ दिनों तक प्रतिदिन 'दुर्गा सप्तशती' का पाठ करते हैं। ये दुर्गाकुण्ड पर अवस्थित दुर्गा जी के मंदिर अथवा अन्नपूर्णा के मंदिर में जाकर कीले, कवच के साथ 'सप्तशती' का पारायण करते हैं। यदि किसी विशेष अभिप्राय से यह पाठ किया जाता है तो किसी मंत्र-विशेष से दुर्गा सप्तशती के 'सम्पुट' पाठ करने का विधान है। विन्ध्याचल में स्थित विन्ध्यवासिनी के मंदिर इन पाठ करने वालों की भयंकर भीड़ एकत्रित होती है जहाँ बैठने के लिए भी स्थान नहीं मिलता।

जो लोग संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण स्वयं पाठ करने में असमर्थ हैं वे किसी पण्डित के द्वारा पाठ करवाते हैं। इसके लिए वे उस पण्डित को प्रतिदिन भोजन कराते हैं और पाठ की समाप्ति पर उसे दक्षिणा प्रदान करते हैं। इस प्रकार पण्डितों के द्वारा पाठ करवा कर लोग अपने अभीष्ट अर्थ की सिद्धि करते हैं। चैत्र के शुक्ल पक्ष में दुर्गापाठ किया जाता है परन्तु वह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता।



## (ख) लोक देवी की पूजा

ग्रामीण क्षेत्र में अनेक देवी और देवताओं की पूजा प्रचलित है जिनमें काली माई, गंगा माई, सीतला माई, सन्तोषी माई और सामे माई आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

(१) काली माई—भोजपुरी प्रदेश की यह सबसे प्रसिद्ध देवी हैं; जिनकी पूजा प्रायः प्रत्येक गाँव में और प्रत्येक घर में की जाती है। ये 'दुर्गा' के नाम से भी जानी जाती हैं। पुराणों में दुर्गा का महिषासुरमर्दिनी के रूप में वर्णन किया गया है। ये अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए सदा उद्यत रहती हैं। ये बड़े से बड़े भयंकर राक्षसों का वध कर भक्तजनों का उद्धार करती हैं। दुर्गा का मंदिर प्रायः प्रत्येक गाँव में पाया जाता है। इनकी प्रतिमा में आठ भुजाएँ होती हैं जिनमें राक्षसों के काटे गये मुण्डों को ये धारण करती हैं। इसीलिए इनका नाम 'अष्ट भुजा' देवी है। मिर्जापुर जिले में विन्ध्याचल के पास पहाड़ पर अष्टभुजा देवी का प्रसिद्ध मंदिर है जहाँ नवरात्र के दिनों में लाखों की संख्या में यात्री दर्शन के लिए जाते हैं। कहीं-कहीं दुर्गा की मूर्ति दो भुजाओं वाली भी पायी जाती है। विन्ध्याचल में गंगा के तट पर 'विन्ध्यवासिनी' देवी के सुप्रसिद्ध मंदिर में ऐसी ही प्रतिमा स्थापित है। आश्विन तथा चैत्र मास के दोनों नवरात्रों में यहाँ दर्शनार्थियों की भीड़ होती है। कितने भक्त-गण अपनी मनोकामना की सिद्धि के लिए देवी के मंदिर में बकरा की बलि देने की मनौती भी मानते हैं। अतः नवरात्र के दिनों में विन्ध्यवासिनी के मंदिर में पशुबलि चढ़ाने का दृश्य देखा जा सकता है। लोगों की ऐसी धारणा है कि बलि चढ़ाने से देवी संतुष्ट होती है। इसी भावना से प्रभावित होकर यहाँ बलि का विधान किया जाता है। दुर्गा 'महिषासुर मर्दिनी' मानी जाती है। अतः उत्तर प्रदेश के पर्वतीय भागों में नवरात्र के अवसर पर कहीं-कहीं महिष अर्थात् भैंसा भी की भी बलि चढ़ायी जाती है।

यों तो देवी की पूजा प्रत्येक मास की जाती है परन्तु आश्विन (कुवार) तथा चैत्र मास के प्रथम नव दिनों में—जिसे नवरात्र कहते हैं—इनकी पूजा का विशेष महत्त्व माना जाता है। इन दिनों में दुर्गा-सप्तशती के पाठ करने की बड़ी महिमा है। काशी के दुर्गा जी के तथा विन्ध्याचल के विन्ध्यवासिनी के मंदिर में पाठ करने वालों की लम्बी-लम्बी पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं जो उच्च स्वर से सप्तशती का सम्पुट या साधारण पाठ करते हैं। इस अवसर पर—

“पत्नी मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारणीम्।

रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥”

के उद्घोष से सारा वायुमण्डल गूँज उठता है।

इस देवी की पूजा में ऊड़हुल का लालफूल, मिष्ठान्न, चूड़ियाँ और चूनरी विशेष रूप से चढ़ायी जाती है। कुछ लोग नारियल और बताशा भी चढ़ाते हैं।

इन दिनों में भूत-प्रेत के लगने की बड़ी आशंका रहती है। अतः भोजपुरी माताएँ अपने छोटे बच्चों को नवरात्र में घर से बाहर नहीं निकलने देतीं; अन्यथा उन्हें कोई प्रेतात्मा प्रसित कर लेगी। वे कहती हैं कि आजकल देवी जी का रन्थ (रथ) चल रहा है। अतः छोटे बच्चों का घर से बाहर निकलना खतरे से खाली नहीं है।

(२) सामे माई—यह भी एक प्रसिद्ध देवी हैं जिनकी एकरूपता तंत्र-शास्त्र में वर्णित 'श्यामा' से स्थापित की जा सकती है। काली माई के मंदिर अथवा मण्डप में सूखी मिट्टी का एक 'पिण्ड' स्थापित रहता है। यही मृत् पिण्ड सामे माई की प्रतिमा का प्रतीक है। यह देवी उच्च वर्ण की स्त्रियों के साथ ही निम्न जाति की स्त्रियों के द्वारा भी पूजी जाती है। उनकी पूजा में 'कराह' चढ़ाया जाता है अर्थात् मिट्टी के एक पात्र में दूध को उपले की आग पर गर्म किया जाता है। जब दूध ऊबल कर उस पात्र के बाहर गिरने लगता है तब यह माना जाता है कि देवी प्रसन्न हो गयी हैं और उन्होंने पूजा को स्वीकार कर लिया। दूध में उबाल न आना देवी की अप्रसन्नता का लक्षण माना जाता है।<sup>१</sup>

१. इस सम्बन्ध में एक स्वानुभूत घटना का उल्लेख करना अनुचित न होगा। मेरी माता जी ने इस देवी की पूजा में कराह चढ़ाने की मनौती मानी थी। उन्होंने मिट्टी के बड़े पात्र में थोड़ा-सा दूध रखकर उसे आग पर रख दिया; जिससे उस पात्र का दूध उबलकर नीचे नहीं गिर सका। माता जी ने यह समझा कि देवी रुष्ट हो गयी हैं इसीलिए उन्होंने पूजा स्वीकार नहीं की। अतः वे अत्यन्त उदासीन होकर बैठी हुई थीं। इतने ही देर में मैं घर आ गया और माता जी की उदासीनता का कारण पूछा। वस्तुस्थिति को समझने में मुझे देर नहीं लगी और मैंने माता जी से निवेदन किया कि देवी जी दूध अधिक चाहती हैं। थोड़े दूध से उन्हें संतोष नहीं है। फलस्वरूप उस 'कराह' (कड़ाही) में अधिक दूध डालकर उसे खूब गर्म किया गया। अब की दूध उबलकर नीचे गिरने लगा। माता जी अब प्रसन्न हो गयीं कि देवी ने उनकी पूजा स्वीकार कर ली और उनकी मनौती सफल हो गयी।



## (३) चटपटी माई

यह बड़ी ही जागृत देवी है। इनकी पूजा करने से मनोकामना की चटपट अर्थात् शीघ्र ही पूर्ति हो जाती है। इसीलिए इनका नाम चटपटी माई है। इनका मन्दिर काशी में रवीन्द्रपुरी (नयी कालोनी) नामक मुहल्ले में स्थित है।

## (४) सन्तोषी माता

सन्तोषी माता मनोकामना की पूर्ति करने वाली देवी हैं। ये इतनी प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय देवी हैं कि इनकी कथा के आधार पर 'सन्तोषी माता' नामक फिल्म का ही निर्माण हो गया है। यह फिल्म काशी में इतनी लोकप्रिय हुई कि इसका प्रदर्शन (शो) पूरे एक वर्ष तक काशी में होता रहा। सन्तोषी माता का वाराणसी में एक मंदिर भी है जहाँ पूजा के लिए अनेक लोग जाया करते हैं।

## (२) परिच्छेद

## प्रकृति के देवता (Gods of Nature)

गाँवों में ऐसे बहुत से देवताओं की पूजा की जाती है जिन्हें प्रकृति का देवता कहा जाता है। इन देवताओं में सूर्य, चन्द्रमा, धरती, पर्वत, विभिन्न प्रकार के नक्षत्र—विशेषकर शनि और मंगल—तथा ध्रुवतारा आदि प्रसिद्ध हैं। गाँव के नीच वर्ग के लोग राहु और केतु आदि की भी पूजा करते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से डीह, डीहवार, अस्थान (स्थान), चौरा और चबूतरा हैं जहाँ ग्रामीणजन अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

## (१) सूर्य

प्रकृति के देवता में सूर्य का स्थान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह देवता हमें प्रकाश प्रदान करता है, हमारे घरों के अन्धकार को दूर करता है, घनघोर जाड़े के दिनों में हमें ऊष्मा (गर्मी) देता है और खेतों के फसल को पकाता है। अतः ऐसे उपयोगी देवता की पूजा करना स्वाभाविक ही है। यदि सूर्य न हो तो हमारा जीवन दूभर हो जाय। सारा संसार अन्धकार में निमग्न हो जाय और किसी भी प्राणी का जीवित रहना असंभव हो जाय।

प्राचीन काल में वैदिक आर्य सूर्य की उपासना किया करते थे जिसे 'सविता' कहा जाता था। गायत्री का सुप्रसिद्ध मंत्र जिसे प्रत्येक ब्राह्मण को जपना आवश्यक माना जाता है—वास्तव में सविता अथवा सूर्य का ही मंत्र है। सूर्य-पूजा की यह परम्परा आज भी अक्षुण्ण रीति से चली आ रही है। आज भी प्रतिदिन प्रातःकाल काशी में गंगा के किनारे हजारों व्यक्ति प्रातः तथा सायंकाल गायत्री मंत्र का जप करते हुए दिखाई पड़ते हैं। गायत्री का यह मंत्र निम्नांकित है:—

“ओम् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥”

अर्थात् हम लोग सूर्य के उस श्रेष्ठ तेज का ध्यान करते हैं जिससे हमारी बुद्धि को प्रेरणा प्राप्त हो सके। गाँव के जो लोग नियमित रूप से सन्ध्या-वन्दन नहीं करते वे भी प्रातःकाल स्नान करने के पश्चात् सूर्य को तीन अंजुरि (अंजलि) जल अर्घ्य रूप में देते हैं और 'सूर्याय नमः' कह कर प्रणाम करते हैं।

अनपढ़ ग्रामीण प्रातःकाल उठकर सूर्य को हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं। वे इन्हें 'सूरज नारायण' के नाम से अभिहित करते हैं। ग्रामीण स्त्रियाँ कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी के दिन व्रत करती हैं जो 'छठी के बरत' के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन वे पूरे चौबीस घंटे का व्रत करती हैं। वे आज के दिन लकड़ी के साँचे पर कड़ा आटा चिपका देती हैं। जब उस पर सूर्य के रथ की आकृति उत्कीर्ण हो जाती है तब उसे धी में पकाया जाता है। इस पक्वान्न को "अघरवटा" कहते हैं। वे कार्तिक शुक्ल षष्ठी को सन्ध्या के समय किसी नदी या तालाब के किनारे जाती हैं और अस्त होते हुए सूर्य को जलाञ्जलि देती हैं वे सप्तमी के प्रातःकाल भी वहाँ जाकर पुनः उगते हुए सूर्य को अर्घ्य देती हैं। भगवान् भास्कर को अर्घ्य देते हुए वे नीचे लिखे श्लोक का उच्चारण करती हैं जो अशुद्ध होते हुए भी उनकी भावनाओं का पूर्ण प्रतीक है—

“हे सूरज सहस्तर नाम  
तेजो रासि जगत् पत्यांग।”



इस मंत्र का शुद्ध रूप यह है जिसे पण्डित लोग पढ़ा करते हैं:—

“एहि सूर्य! सहस्रांशो, तेजोराशे जगत्पते।

अनुकम्पय मां भक्त्या, गृहाणार्घं दिवाकर॥”

भोजपुरी प्रदेश में सूर्य की पूजा का प्रचार है। परन्तु यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि इस क्षेत्र में सूर्य के मंदिरों का प्रायः अभाव है। उड़ीसा में कोणार्क का मंदिर अवस्थित है जो अपनी कला के लिए संसार में प्रसिद्ध है। उत्तरप्रदेश के अल-मोड़ा जिले में कटारमल का सूर्य मंदिर विख्यात है जो आजकल जीर्ण-शीर्ण अवस्था में विद्यमान है। सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं संभवतः इसीलिए इनकी प्रतिमा को मंदिर में स्थापित करने की आवश्यकता न समझी गई होगी।

## (२) चन्द्रमा

विशेष पर्वों तथा तिथियों पर चन्द्रमा की भी पूजा की जाती है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि चन्द्रमा अमृत का कुण्ड है। इसे देवता लोग क्रमशः पीते जाते हैं इसीलिए यह घटता बढ़ता रहता है। शुक्ल पक्ष की द्वितीया के चन्द्रमा आकाश में देखकर लोग हाथ जोड़कर बड़ी श्रद्धा से उसे प्रणाम करते हैं। माघ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को स्त्रियाँ व्रत रखती हैं। इस दिन चन्द्रमा को अर्घ्य दिया जाता है। अतः आकाश में उगने की बड़ी उत्कण्ठा से इसकी प्रतीक्षा की जाती है। इसे दूध, जल, पुष्प और फल के द्वारा पूजा की जाती है। सूर्य के समान ही चन्द्रमा का भी कोई मंदिर इस क्षेत्र में नहीं पाया जाता।

## (३) अग्नि

अग्नि-पूजा की परम्परा बड़ी प्राचीन है। वैदिक आर्य अग्नि-पूजक थे। ऋग्वेद में इन्द्र और सोम के अनन्तर अग्नि को ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है जिसकी स्तुति में सैकड़ों सूक्त कहे गये हैं। पारसी धर्म में भी अग्नि-पूजा का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। आज भी इसकी पूजा की परम्परा अक्षुण्ण रीति से चली आ रही है।

सामान्य जनता प्रत्येक मांगलिक अवसर पर अग्नि-पूजा करती है। क्या यज्ञोपवीत और क्या विवाह इन सभी कार्यों में ‘अग्नि देवता’ की पूजा की जाती है। विवाह में ‘सप्तपदी’ के अवसर पर अग्नि की सात बार प्रदक्षिणा की जाती है। वर और बधू प्रत्येक बार प्रदक्षिणा करते अग्नि को साक्षी देकर यह प्रतिज्ञा करते हैं कि हम दोनों आजन्म एक हृदय होकर रहेंगे और किसी दशा में एक दूसरे का परित्याग नहीं करेंगे। इसी प्रकार जब वे सात बार अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं तब सप्त-पदी की विधि सम्पूर्ण समझी जाती है।

प्रत्येक अनुष्ठान के अन्त में हवन की विधि सम्पादित की जाती है। इस समय जब, तिल, गुड़ और घी को एक साथ मिलाकर प्रज्वलित अग्नि में इनका हवन किया जाता है। इसीलिए अग्नि को ‘हुतभुक्’ भी कहा गया है। धार्मिक पुरुष बलि वैश्य देव की प्रतिदिन पूजा करते हैं। इसमें अग्नि को अन्न की बलि दी जाती है।

नवरात्र के दिनों में दुर्गा, सप्तशती के पाठ की समाप्ति के पश्चात् उसकी पूर्णाहुति की जाती है। इस दिन अग्नि में हवन किया जाता है। पुरोहित जी मंत्र पढ़ने के बाद ‘अग्नेय स्वाहा’ कहते हैं। उनके पश्चात् यजमान भी ‘स्वाहा’-‘स्वाहा’ कह कर अग्नि में हवन की सामग्री अर्पित (डालता) करता है तथा आज्य (घी) से भी आहुति करता है। गाँवों में सत्य-नारायण भगवान् की कथा प्रायः आये दिन हुआ करती है। उस दिन भी कथा की समाप्ति के पश्चात् अग्नि में हवन करने का विधान है। आग में नमकीन पदार्थों को डालना निषिद्ध माना जाता है। अतः हवन के समय घूप में घी, चावल, जौ और तिल मिलाकर ‘अग्नेय स्वाहा’ किया जाता है। इसके पश्चात् पूड़ी पर चीनी तथा एक नारियल रखकर भगवान् ‘सर्वभक्षी हुताशनः’ को समर्पित करते हैं।

स्त्रियाँ जब किसी यज्ञ के प्रारम्भ में पूड़ी या कचौड़ी बनाना प्रारम्भ करती हैं तब वे प्रथम पूड़ी को अग्निदेव को ही देती हैं। किम्बहुना रसोई बनाते समय दाल या चावल को पकाने के पहिले उसके कुछ दानों को आग में अर्पित करना भोजपुरी महिला की दैनिक दिनचर्या है। हनुमान जी की पूजा के समय आग में घूप, जलाया या डाला जाता है। अग्निदेव के समक्ष भूत-दूत नहीं आ सकते अतः ओझा और सोखा अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए आग जलाकर उसकी पूजा करते हैं।

## (४) ग्रहों की पूजा

विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर ग्रहों की पूजा की जाती है। जिससे वह कार्य निर्विघ्न समाप्त हो जाय। इन ग्रहों की संख्या नौ है जो ‘नवग्रह’ के नाम से प्रसिद्ध है:—



(१) सूर्य (२) चन्द्रमा (३) बुध, (४) वृहस्पति (५) शुक्र (६) शनि (७) मंगल (८) राहु और (९) केतु। इन ग्रहों में मंगल और शनि दुष्ट ग्रह समझे जाते हैं। ये किसी मांगलिक कार्य में विघ्न न उपस्थित कर दें अतः इनकी पूजा करना आवश्यक समझा जाता है। राहु और केतु भी अमंगल करने वाले ग्रहों की ही कोटि में समझे जाते हैं। इन छोटे तथा छोटे ग्रहों को पूजा आदि के द्वारा प्रसन्न करने की परम्परा बहुत दिनों से चली आ रही है। महाकवि बिहारी ने लिखा है कि लोग अच्छे ग्रहों की अर्चना नहीं करते बल्कि छोटे अर्थात् क्रूर ग्रहों को प्रसन्न करने के लिए पूजा-पाठ किया करते हैं:—

“भले भले कहि छाड़िये,  
छोटे ग्रह जपदाम।”

सत्यनारायण की कथा में भी इन नवग्रहों की पूजा की जाती है। मिट्टी की वेदी के ऊपर सरकण्डे के नौ छोटे-छोटे टुकड़े उस पर गाड़ दिये जाते हैं। इनमें से प्रत्येक सरकण्डा एक-एक ग्रह का प्रतिनिधित्व करता है। पत्र, पुष्प, नैवेद्य आदि समर्पित कर इनकी पूजा की जाती है।

#### (५) ध्रुवतारा

राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं। बड़ी रानी का नाम सुनीति था जिसका पुत्र ध्रुव था। छोटी रानी मुरुचि थी, जिसका लड़का उत्तम था। राजा छोटी रानी को अधिक प्यार करते थे। एक दिन संयोग से ध्रुव अपने पिता की गोद में बैठ गया। इस पर क्रोधित होकर उसकी विमाता मुरुचि ने उसे राजा की गोद से हटा दिया। ध्रुव के लिए यह अपमान असह्य था। वह जंगल में चला गया और घनघोर तपस्या करने लगा। उसकी तपस्या को देखकर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने उसके यश को अमर बनाने के लिए उसे आकाश में ध्रुवतारा के रूप में स्थान दिया।

इस तारा की विशेषता यह है कि सदा एक ही स्थान पर रहता है। एक ही दिशा में उगता है और कभी भी टस से मस नहीं होता। इस प्रकार यह निश्चितता तथा स्थिरता का प्रतीक है।

विवाह संस्कार के अवसर पर वर तथा बधू को ध्रुवतारा का दर्शन कराया जाता है। इस विधि का आशय यह है कि जिस प्रकार से आकाश में ध्रुवतारा अटल तथा निश्चल है उसी प्रकार से इनका विवाह सम्बन्ध भी अचल हो। इसी अभिप्राय से स्त्रियों को अरुन्धती का दर्शन कराना भी एक प्रधान विधि मानी जाती है। गाँवों में वृद्ध लोग रात में शुक्रतारा—जिसे सुकवा कहते हैं—को देखकर समय का अनुमान लगाया करते हैं। जब शुक्रोदय नहीं होता उन दिनों में विवाह करना निषिद्ध माना जाता है।

#### (६) सप्तर्षि मण्डल

आकाश में एक निश्चित दिशा में सात ताराओं का एक मण्डल दिखाई पड़ता है जो एक नियत स्थान पर निश्चित प्रकार से अवस्थित दिखाई पड़ते हैं। इन्हें ‘सप्तर्षि मण्डल’ कहा जाता है। गाँवों में इन्हें ‘रीछ’ कहते हैं जो संस्कृत ‘ऋक्ष’ का अपभ्रंश रूप है। इन सात ऋषियों में निम्नांकित की गणना की जाती है:—

(१) गौतम (२) भारद्वाज, (३) विश्वामित्र (४) जमदग्नि (५) वशिष्ठ (६) काश्यप और (७) अत्रि। ये सभी प्रसिद्ध ऋषि हैं जिनके नाम से गोत्रों की उत्पत्ति हुई जो आज तक परम्परागत रूप में चली आ रही है।

#### (७) धरती माता

भोजपुरी क्षेत्र में धरती की पूजा विवाह के अवसर पर की जाती है। बारात जाने के एक दिन पहिले घर की स्त्रियाँ गाजे-बाजे के साथ जाती हैं और किसी खेत से अथवा पवित्र मिट्टी खोदने के स्थान—जिसे ‘मटिखाना’ कहते हैं—से मिट्टी घर ले आती हैं और उससे चूल्हा बनाया जाता है। इस कच्ची मिट्टी के चूल्हे पर ‘कुँवरथ’ का भात बनाया जाता है जिसे खाकर दूल्हा विवाह करने जाता है। मिट्टी खोदकर लाने की इस विधि को ‘मँटगोड’ कहते हैं। नागा साधु जब प्रयाग में कुम्भ के मेले में जलूस बनाकर चलते हैं तब ग्रामीण लोग उनके पद के स्पर्श से पवित्र मिट्टी को हाथों में लेकर अपने सिर पर चढ़ाते हैं। मिट्टी का पात्र बहुत पवित्र माना जाता है। कट्टर सनातनी पण्डित मिट्टी के पात्र में भोजन बनाना और जल पीना उत्तम समझते हैं। कुछ धार्मिक व्यक्ति मिट्टी की छोटी-छोटी पिण्डियाँ बनाकर नियमित रूप से इनकी पूजा करते हैं जो पार्थिव पूजा के नाम से प्रसिद्ध है। सती का चबूतरा अथवा ब्रह्म का चौरा मिट्टी का ही बनाया जाता है। पण्डित लोग रात्रि में



शयन के पश्चात् जब प्रातःकाल उठते हैं तब घरती पर पैर रखने के पहिले निम्नांकित श्लोक पढ़कर पृथ्वी को हाथ से स्पर्श कर उसे प्रणाम करते हैं:—

“समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।  
विष्णुपति नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

### (३) परिच्छेद

### रोगों के देवता

सामान्य जनता का यह विश्वास है कि देवी और देवताओं के प्रकोप से ही रोगों की उत्पत्ति होती है। जब देवता किसी व्यक्ति या स्थान विशेष से कुपित हो जाते हैं तब वे उस व्यक्ति को रोग से पीड़ित कर देते हैं। हैजा और प्लेग आदि बीमारियों के फैलने का कारण स्थानीय देवताओं का प्रकोप ही माना जाता है। अतः उनको संतुष्ट तथा प्रसन्न करने के लिए अनेक विधि-विधान किये जाते हैं। इन देवताओं में शीतला, मसान, पिलेग मइया, महीं आदि प्रसिद्ध हैं।

#### (१) शीतला माता

शीतला माता चेचक रोग की अधिष्ठाता देवी मानी जाती है। जब कोई व्यक्ति इस रोग से पीड़ित होता है तब ऐसा समझा जाता है कि शीतला का प्रकोप हो गया है। अतः इस देवता को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रकार के उपाय किये जाते हैं। यह रोग प्रायः बच्चों को हुआ करता है। माली शीतला देवी का सेवक माना जाता है। अतः जब कोई बच्चा इस रोग से पीड़ित होता है तब माली बुलाया जाता है और देवी की आराधना के लिए उससे प्रार्थना की जाती है।

शीतला देवी का निवास-स्थान नीम का वृक्ष है। वे इस वृक्ष पर झूले में बैठकर झूलती रहती है। जब इन्हें प्यास लगती है तब ये मालिन की बिटिया को बुलाकर पानी लाने का आदेश देती हैं। भोजपुरी में ऐसे अनेक लोक-गीत उपलब्ध होते हैं जिनमें शीतला के द्वारा पीने के लिए पानी माँगने का वर्णन पाया जाता है। चूँकि नीम का वृक्ष शीतला का प्रिय स्थान है अतः माली अथवा उसकी स्त्री मालिन नीम की टहनियों को तोड़कर लाती है और उससे रोगी को पंखा झलती है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि नीम की पत्तियों की हवा से शीतला का प्रकोप शान्त हो जाता है। नीम की पत्तियों को रोगी की शय्या पर बिछा दिया जाता है। इन्हीं पत्तियों पर वह सोता है। इस प्रकार नीम की पत्तियों के उपयोग से उसका रोग शान्त होने लगता है। चेचक-रोग से पीड़ित व्यक्ति को कोई दूसरी डाक्टरी दवा नहीं दी जाती क्योंकि सामान्य जनता की यह दृढ़ धारणा है कि ऐसा करने से माता प्रकुप्त हो जाती हैं। अतः माली ही इस रोग में सबसे बड़ा डाक्टर है और माता की कृपा ही वह दवा है जिससे रोगी आरोग्य को प्राप्त होता है।

शीतला को माता कहा जाता है क्योंकि वह माँ के समान दयालु तथा करुणाद्र है। वे जगरानी—जगत् की रानी तथा महाकाली के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। गाँवों में शीतला माता का कोई मंदिर नहीं होता। किसी चबूतरे पर मिट्टी का एक लोंदा रख दिया जाता है। यही इनका प्रतिनिधित्व करता है। परन्तु देवी के रूप में इनकी पूजा मंदिर में की जाती है। काशी में दशाश्वमेध घाट पर शीतला जी का मंदिर बना हुआ है जहाँ दर्शनार्थियों की बड़ी भीड़ एकत्रित होती है। शीतला का वाहन गदहा है अतः इनके मंदिर में इनके वाहन की मूर्ति स्थापित की जाती है। यों तो इनकी पूजा सदा की जाती है परन्तु शीतला-सप्तमी को इनकी आराधना का विशेष महत्त्व है।

शीतला वास्तविक अर्थ में लोक-देवता हैं। गाँवों में जब चेचक का प्रकोप होता है तब इनकी पूजा विशेष रूप से की जाती है। जन-जीवन से जितना इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है उतना अन्य किसी देवता का नहीं। शीतला की छोटी प्रतिमा चाँदी पर उत्कीर्ण कराकर स्त्रियाँ अपने गले में पहिनती हैं और विशेष अवसरों पर उनकी पूजा करती हैं।

#### २. पिलेग मइया

पिलेग शब्द अंग्रेजी के ‘प्लेग’ का अपभ्रंश रूप है। भारतवर्ष में पहिले यह रोग नहीं होता था। परन्तु अंग्रेजों के इस देश में आने के पश्चात् इस रोग का आगमन यहाँ हो गया था। यह छूतहा रोग माना जाता है। गाँवों में यह बीमारी गन्दगी के कारण फैलती है। इसका प्रकोप इतना भीषण होता है कि अनेक गाँवों में सैकड़ों आदमी इससे एक साथ पीड़ित हो जाते हैं और मृत्यु को प्राप्त होने वाले लोगों की संख्या भी कुछ कम नहीं होती। ग्रामीण क्षेत्रों में इस महामारी की रोकथाम का कुछ



विशेष प्रबन्ध न होने के कारण लोगों को घनघोर कष्ट उठाना पड़ता है। ऐसी दशा में इस भीषण संक्रामक बीमारी को किसी देवी या देवता के प्रकोप का कारण मान लिया जाय तो कोई आश्चर्य नहीं है।

प्लेग रोग की अधिष्ठातृ देवी 'पिलेग मइया' मानी गयी हैं। अतः गाँवों में जब यह महामारी भीषण रूप में फैलती है तब 'पिलेग मइया' की पूजा की जाती है। इनकी भी पूजा प्रायः उन्हीं विधि-विधानों के द्वारा की जाती है जैसी कि प्रायः अन्य देवियों की होती है। हिन्दू देव मण्डल—'पैन्थियान' (Pantheon) में इस देवी का आगमन लगभग पचास वर्षों से ही हुआ है। इसके पहिले इस देवी की पूजा नहीं होती थी। हिन्दू धर्म की प्रगतिशीलता का परिचय केवल इसी बात से होता है कि इसने एक विदेशी महामारी (प्लेग) को मइया (देवी) का रूप प्रदान किया है।

### ३. चटपटी माता

काशी में भैलपुर के पास न्यू कालोनी (रवीन्द्र पुरी) में चटपटी माता का एक मंदिर अवस्थित है जो बड़ा ही छोटा है। इसकी पश्चिमी दीवाल के एक ताखे पर इनकी छोटी-सी मूर्ति रखी हुई है। यह भक्तों की मनोकामना को चटपट ही पूरा कर देती है। इसीलिए इनका नाम 'चटपटी माता' पड़ गया है। यों तो इस माता का दर्शन प्रतिदिन किया जाता है परन्तु नवरात्र के दिनों में इनके दर्शन का विशेष महत्त्व है। इनकी पूजा में पुष्प, धूप, दीप, मिष्ठान्न आदि का प्रयोग किया जाता है। इस देवी को दही और चीनी अधिक प्रिय है। अतः भक्त लोग इन्हीं वस्तुओं का इन्हें भोग लगाते हैं। चटपटी बड़ी चलती देवी हैं। इसीलिए भक्त लोग अपनी कामना की पूर्ति के लिए इनकी मनौती मानते हैं।

### (४) खोंखी मइया

शीत ऋतु में सर्दी की अधिकता से लोगों को प्रायः ठंडक लग जाती है जिसके कारण उन्हें खाँसी आने लगती है। इसी खाँसी को भोजपुरी में 'खोंखी' कहते हैं। 'खोंखी' की अधिष्ठातृ देवी 'खोंखी मइया' के नाम से प्रसिद्ध है। जब किसी व्यक्ति को खाँसी अधिक आने लगती है, और जब वह इस रोग से अत्यधिक पीड़ित होने लगता है तब यह समझा जाता है कि 'खोंखी मइया' कुपित हो गई हैं और यह सब उन्हीं के क्रोध के कारण से हो रहा है। अतः इस देवी को प्रसन्न करने के लिए इनकी पूजा की जाती है। पुष्प, मिष्ठान्न, धूप, दीप आदि इन्हें समर्पित किया जाता है। इनकी पूजा करने के पश्चात् प्रसाद को भक्तों में वितरित कर दिया जाता है।

हिन्दू देव मण्डल (Pantheon) में 'खोंखी मइया' का आगमन अभी कुछ ही वर्षों पहिले हुआ है अतः 'पिलेग मइया' की भाँति ये भी हिन्दू धर्म की 'अभिनव देवी' हैं।

### (५) मनसा देवी

मनसा देवी मन की कामना को पूर्ण करने वाली देवी हैं। हरिद्वार में हर की पैड़ियों के ठीक सामने पश्चिमी दिशा में पर्वत की ऊँची चोटी पर इनका मंदिर अवस्थित है। पहिले हरिद्वार नगर से इनके मंदिर तक पहुँचने का मार्ग बड़ा विकट था और थके माँदे यात्रियों के लिए वहाँ पानी पीने की भी कोई व्यवस्था नहीं थी; परन्तु अब सरकार ने मनसा देवी के मार्ग को प्रशस्त बना दिया है और चोटी पर जल की भी सुन्दर व्यवस्था कर दी है।

मनसा देवी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये अपने भक्तों की मनोकामना को निश्चित रूप से पूर्ण करती है। इनके मंदिर के पास एक छोटा-सा वृक्ष है; जिसमें हजारों कपड़े के छोटे-छोटे टुकड़े लटके हुए दिखाई पड़ते हैं। जिन लोगों की कोई मनोकामना होती है वे उसकी पूर्ति के लिए यहाँ आते हैं और वे इसी वृक्ष में एक छोटे से कपड़े के टुकड़े को बाँध देते हैं। जब उनकी मनोकामना पूरी हो जाती है तब वे यहाँ आकर उस गाँठ को खोल देते हैं।

इस प्रकार मनसा देवी मनोकामना की देवी हैं। इनकी उपासना से मन की अभिलाषा पूर्ण होती है। भोजपुरी प्रदेश में ऐसी देवियों के अनेक स्थान हैं जहाँ मन की इच्छा की पूर्ति के लिए लोग जाते हैं और उस मंदिर के पास स्थित किसी वृक्ष या स्तम्भ में अपनी कामना का प्रतीक कपड़ा बाँध देते हैं।

### (४) परिच्छेद

### भूत-प्रेतों की पूजा

हिन्दू धर्म में जन्मान्तरवाद के सिद्धान्त को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। लोगों का यह विश्वास है मृत्यु के पश्चात् यह जीव अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न योनियों में जन्म लेता है। यदि किसी मनुष्य ने पुण्य कर्म किया है तब उसका जन्म किसी



उच्च मनुष्य की योनि में होगा। परन्तु उसका जीवन यदि गर्हित कर्मों के करने में ही बीता है तो उसे पशु-पक्षी की नीच योनि प्राप्त होती है।

हमारे धर्म शास्त्रकारों ने आत्महत्या की बड़ी निन्दा की है। उनिवदों में तो यहाँ तक लिखा है जो लोग आत्मघाती हैं वे उस लोक को प्राप्त करते हैं जहाँ घोर अन्धकार होता है। इसी प्रकार जिनकी अकाल मृत्यु होती है, जो किसी दुर्घटना के कारण मृत्यु को प्राप्त करते हैं अथवा जिनकी किसी व्यक्ति के द्वारा हत्या कर दी जाती है, ये सभी लोग भूत योनि को प्राप्त होते हैं। किसी विशेष घटना या दुर्घटना के कारण पञ्चत्व को प्राप्त लोगों को विभिन्न भूतों की योनियों में जन्म लेना पड़ता है। ये योनियाँ प्रधानतया निम्नांकित हैं:—

(१) भूत, (२) प्रेत (३) पिशाच (४) राक्षस (५) ब्रह्मराक्षस (६) असुर (७) दैत्य (८) दानव (९) वीर या यक्ष (१०) जिन (११) शैतान (१२) बूढ़ा (१३) महीं (१४) मसान (१५) चुड़ैलें (१६) परी आदि।

## (१) भूत

भूत शब्द का व्यवहार समस्त प्रेत योनि अथवा नीच योनियों (Lower spirits) के लिए किया जाता है। संस्कृत में 'भूत' का प्रयोग उन सभी प्राणियों के लिए किया जाता है जो पैदा हुए हैं अथवा जिनका निर्माण किया गया है। इसीलिए शिव को 'भूतनाथ' या 'भूतपति' कहा जाता है। परन्तु भूत शब्द का प्रयोग प्रेत आत्माओं के अर्थ में ही सीमित है।

प्रेत आत्माओं की विभिन्न श्रेणियाँ अथवा ग्रेड हैं। इन सभी के लिए भूत का व्यवहार किया जाता है। गाँव के लोग प्रायः भूत-प्रेत की चर्चा किया करते हैं। वे सभी प्रकार को प्रेत आत्माओं को भूत शब्द से ही अभिहित करते हैं। परन्तु जो व्यक्ति आत्महत्या करके, दुर्घटना के कारण अथवा फाँसी की सजा पाकर मृत्यु को प्राप्त करता है, वास्तव में उसी की प्रेत आत्मा को भूत कहा जाता है। यदि मृत्यु के पश्चात् इस प्रेत आत्मा का अन्तिम संस्कार विधिवत् नहीं किया जाता तो उसकी भयंकरता तथा विनाश करने की शक्ति और भी अधिक बढ़ जाती है। इस संस्कार के अभाव का अनुभव उस प्रेत आत्मा को सदा होता रहता है जिसके कारण वह शान्ति को नहीं प्राप्त कर सकता। इसीलिए हिन्दू लोग इस आत्मा की शान्ति के लिए समय समय पर वार्षिक तथा मासिक श्राद्ध किया करते हैं।

जिस व्यक्ति को कोई पुत्र नहीं होता जो मृत्यु के पश्चात् पिता का दाह संस्कार तथा श्राद्ध सम्पन्न कर सके, उसकी प्रेत आत्मा को 'गयाल' कहते हैं। अतः यह आत्मा बड़ी भयानक होती है और दूसरे व्यक्तियों के छोटे बच्चों के लिए बड़ी हानि-प्रद है।

**भूतों के लक्षण—**भूतों के अनेक लक्षण होते हैं जिनके द्वारा उन्हें पहिचाना जा सकता है। वे कभी भी जमीन पर नहीं बैठते। चूँकि पृथ्वी (भूमि) की पूजा देवता के रूप में की जाती है अतः भूत उस पर बैठने का दुःसाहस नहीं कर सकते। यही कारण है कि नीच जाति के लोग अपने मंदिरों के पास लकड़ी की कुछ खूंटियाँ गाड़ देते हैं अथवा दो-चार ईंटे स्थापित करते हैं जिन पर भूत आकर सुखपूर्वक विश्राम कर सकें। कभी कभी एक बाँस लटका दिया जाता है जिससे भूतों की बैठने का स्थान मिल सके।<sup>१</sup> इसी सिद्धान्त के कारण बिहार की उराँव नामक आदिम जाति के लोग अपने घर के सामने एक स्तम्भ को स्थापित करते हैं जिससे वह घट (Cinerary urn) लटकता रहता है जिसमें प्रेत आत्मा की अस्थियाँ स्थापित की गई रहती हैं। जो व्यक्ति किसी मृतक की अस्थियों—जिसे भोजपुरी में 'फूला' कहते हैं—को तीर्थ स्थान में विसर्जित करने के लिए ले जाता है वह स्वयं जमीन पर भले ही सोये परन्तु वह अस्थि-पात्र को ऊँचे स्थान से टाँग कर रखता है। जहाँ प्रदत्त बलि को लेने के लिए भूतों के आने की अधिक सम्भावना हो वहाँ मंदिर के निकट जमीन पर ही सोना चाहिए।

भूत काम-रूप होते हैं अर्थात् वे अपनी इच्छा के अनुसार अपने शरीर को विशाल बना सकते हैं और क्षणभर में ही अत्यन्त स्वल्प काया को धारण कर लेते हैं। लोक-कथाओं में ऐसे अनेक उदाहरण पाये जाते हैं जहाँ भूतों की आकृति ताड़ वृक्ष से भी बड़ी पायी जाती है। सामान्यतया लोगों को भयभीत करने के लिए भूत विशाल रूप को ही प्राप्त करते हैं। ये कभी ताड़ के समान लम्बा और कभी पीपल के समान लम्बी चौड़ी आकृति को दिखलाकर रात में निर्जन स्थान में जाने वाले पथिक के हृदय में भय का संचार करने में समर्थ होते हैं।

भूतों की परिछाई नहीं होती अथवा वह दिखाई नहीं पड़ती। ताड़ के समान विशाल आकृति को धारण करने पर भी उनके प्रतिबिम्ब का पता नहीं चलता। यही इनकी सबसे बड़ी पहिचान है। इनकी दूसरी विशेषता यह है कि धूप अथवा अगर-बत्ती या अन्य किसी सुगन्धित द्रव्य की सुगन्ध को ये कदापि सहन नहीं कर सकते। इसीलिए भूत से व्याप्त स्थान पर धूप,



गुगुलु या अगरवत्ती जलाई जाती है। लोगों का यह विश्वास है कि भूत इस सुगन्ध को सहन नहीं कर सकता और वह उस स्थान को छोड़कर भाग जाता है।

परन्तु भूतों की सबसे असली पहिचान यह है कि असली भूत सदा नाक की आवाज से बोलता है। यह प्रत्येक शब्द का उच्चारण नाक से (Nasal sound) किया करता है। अतः इसकी बोली सामान्य लोगों की बोली से उच्चारण वैशिष्ट्य के कारण पृथक् होती है। संभवतः इसीलिए इनकी बोली को 'पैशाची भाषा' कहा जाता था। गाँवों में जिन लोगों ने भूत देखा है उनका कहना है कि ये नाक से बोलते हैं। अतः इनकी भाषा बड़ी भयानक लगती है।

भूतों की आकृति प्रायः काली होती है जिससे इनकी भयंकरता और अधिक बढ़ जाती है। इसीलिए भोजपुरी में किसी काले व्यक्ति की उपमा "करिया भूत" से दी जाती है। कहीं कहीं इनका रंग गेहूँआ और सफेद भी बतलाया गया है परन्तु इन्हें अपवाद ही समझना चाहिए।

भूतों का गला सूई के समान पतला तथा संकीर्ण होता है। संभवतः इसीलिए मुँह से बोलने में असमर्थ होने के कारण ये नाक से ही बोलते हैं। परन्तु गला के संकीर्ण होने पर भी ये कई सेर (किलो) पानी एक साथ पी सकते हैं। चुड़ैलों के समान इनका पैर आगे न होकर पीछे की ओर मुड़ा रहता है।

ताड़ के समान लम्बी और पतली आकृति, कोयल के समान काली देह, सूई की तरह पतली गर्दन, पीछे मुड़ा हुआ पैर और इसके बाद नाक से 'साँई साँई' की आवाज—इन सबके सहयोग से भूत की आकृति बड़ी भयानक तथा हृदय को कँपाने वाली बन जाती है।

**भूत का भोजन तथा निवास**—अन्य बुरी आत्माओं (evil spirits) के समान भूत का भोजन अत्यन्त गन्दी वस्तुयें हैं। ये सर्वदा प्यासे रहते हैं। अतः जल कितना भी गन्दा क्यों न हो, ये उसके एक बूँद को भी प्राप्त करने के लिए लालायित पाये जाते हैं। लोक-कथाओं में ऐसा वर्णन पाया जाता है कि जब कोई भूत किसी अजनबी बटोही को पाता है तब वह उससे पीने के लिए पानी माँगता है। ये दूध पीने के बड़े शौकीन होते हैं। इसलिए कोई पंजाबी माता ताजा दूध पीने के पश्चात् अपने बच्चे को घर से बाहर जाना पसन्द नहीं करती।

भोजपुरी भूत 'खइनी'—जिसे सुरुती भी कहा जाता है—के बड़े प्रेमी होते हैं। किसी अजनबी को रात में पाकर वे सबसे पहिले उससे खाने के लिए 'खइनी' माँगते हैं। "ए भइया खँइनियाँ दँ हों" इस प्रकार नाक से उच्चरित वाणी में वे खइनी देने की प्रार्थना करते हैं और उनकी आज्ञा का पालन न करने पर उसे बहुत परेशान करते हैं। अतः "भूत" से भेंट होने पर लोग उसे 'खइनी' देकर अपना पिण्ड छुड़ाते हैं।

भूत मंदिर में नहीं रहते परन्तु उसके आस-पास मँडराया करते हैं। यदि पुजारी सावधान न रहा हो वे मंदिर में चढ़ाये गये बलि को लेकर भाग जाते हैं। अर्घरात्रि के समय वे सुनसान स्थानों में घूमा करते हैं जिससे पथिकों से उन्हें खाने की सामग्री प्राप्त हो जाय। इनका प्रधान भोजन मांस है। इसीलिए भूतों का एक प्रकार 'पिशाच' कहा जाता है।

**भूत का निवास**—भूतों का निवास प्रायः अनेक स्थानों पर पाया जाता है। ये अधिकतर उजाड़ तथा जीर्ण-शीर्ण घरों में रहते हैं। ग्राम से दूर सुनसान बगीचों में ही इनका अड्डा पाया जाता है। लोगों का विश्वास है कि भूत प्रायः पुराने इमली के पेड़ पर रहा करते हैं। अतः गाँव के लड़के पुरानी इमली के पेड़ों के पास जाने से डरते हैं। काशी में 'भूतही इमली' नामक एक मुहल्ला है जहाँ आज भी इमली का वृक्ष पाया जाता है। सामान्य जनता की यह धारणा है कि इस वृक्ष पर भूत रहा करते थे। इसीलिए संभवतः इसको 'भूतही' की संज्ञा प्रदान की गई हो।

भूतों का दूसरा निवास स्थान बबूल का पेड़ है। चूँकि यह गाँव की सीमा से दूर सुनसान खेत में खड़ा रहता है, इस-लिए यह इनका प्रिय स्थान है। गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-चरित्र से ज्ञात होता है कि वे नित्य प्रति शौच के अवशेष जल को एक बबूल-वृक्ष की जड़ में डाल दिया करते थे जिससे उस पर रहनेवाला भूत बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उनसे वर माँगने के लिए कहा था।<sup>१</sup> जिस मकान में वर्षों से कोई आदमी नहीं रहता उसमें भूत का निवास माना जाता है। अतः ऐसे 'भूतहा' घर में कोई भी रहना नहीं चाहता। भोजपुरी प्रदेश में प्रचलित लोकोक्ति "बिन घरनी घर भूत का डेरा" इसी तथ्य की ओर संकेत करती है।

**भूत को भगाने के उपाय**—जब कोई भूत से आविष्ट हो जाता है तब उसे भगाने के लिए अनेक उपाय किये जाते हैं। भोजपुरी में एक कहावत कही जाती है कि "मारला से भूत भागेला" अर्थात् मारने से भूत भग जाता है अतः जिन स्त्री या पुरुष के ऊपर भूत सवार हो जाता है उसे ओझा लोग अथवा झाड़फूंक करने वाले बड़ी निर्दयता से पीटते हैं। नवरात्र के दिनों में



विहार के भोजपुर जिले में स्थित हरसू ब्रह्म के स्थान पर यह दृश्य देखा जा सकता है। भूत को भगाने का दूसरा साधन अग्नि है। जहाँ आग रहती है वहाँ भूत नहीं फटक सकते। इसीलिए किसी बच्चे के पैदा होने पर सूतिका-गृह के द्वार पर 'पौड़ी' (अँगीठी) में दिन रात आग जलाई जाती है जिससे कोई बुरी आत्मा (evil spirit) या भूत-दूत उस घर में प्रवेश न पा सके। यदि व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है और उसके शव का दाह-संस्कार शीघ्र नहीं हो पाता तब वहाँ आग जलाना आवश्यक होता है। भूत लोहा से भी डरता है। अतः छोटे बच्चों को लोहे की अँगीठी पहनायी जाती है। मृत व्यक्ति का अन्तिम संस्कार करने वाले दाही के लिए बाँस का दण्ड धारण करना आवश्यक है जिसमें लोहे की कील लगी रहती है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इस लोहे के कारण दाही के पास प्रेत व्यक्ति की आत्मा आने का दुःसाहस नहीं कर सकती। गायत्री मंत्र का उपयोग भी भूतों को भगाने के लिए किया जाता है। ओझा लोग या तांत्रिक गायत्री मंत्र से अभिषिन्चित जल से आविष्ट व्यक्ति के भूत को झाड़ते हैं।

भूतों के विभिन्न प्रकार—भूतों के अनेक प्रकार होते हैं। ये विभिन्न रूपों के होते हैं तथा मनुष्यों को कष्ट दिया करते हैं। इन भूतों के वैताल, प्रेत, पिशाच, राक्षस आदि प्रसिद्ध हैं। 'वैताल पंच विंशतिका' नामक ग्रन्थ में वैतालों की अनेक कहाँ नियाँ दी गई हैं।

(२) प्रेत—प्रेत शब्द का अर्थ 'मृत' होता है। किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् तथा उसके श्राद्ध-कर्म की समाप्ति के मध्य में उसकी आत्मा प्रेत योनि में निवास करती है। प्रेत अपने मूल स्थान या निवास के चारों ओर इस काल में चक्कर लगाया करता है। इसका आकार मनुष्य के अँगूठे के समान छोटा होता है। मृत आत्मा के श्राद्ध के अवसर पर प्रतिदिन उसे जो पिण्ड प्रदान किया जाता है उससे प्रेत के शरीर का क्रमशः निर्माण होता है। यह क्रम दस दिनों तक चलता रहता है। सपिण्डीकरण के पश्चात् प्रेत पितरों की कोटि को प्राप्त कर लेता है। गर्भ के निर्माण के समय उचित विधि-विधानों के न करने से जिन बच्चों की मृत्यु हो जाती है उनकी आत्मा प्रेत योनि में चली जाती है।

साधारणतया प्रेत शब्द का प्रयोग उन मृत आत्माओं के लिए किया जाता है जो किसी प्रकार से असंतुष्ट हैं। जीवन में जिन्हें किसी प्रकार संतोष प्राप्त नहीं हो सका उनकी आत्मायें प्रेत का रूप धारण कर लेती हैं। अतः प्रेत को संतुष्ट करना आवश्यक समझा जाता है।

प्रेत जब उत्तेजित हो जाता है तब वह बड़ा भयानक तथा उत्पीड़क सिद्ध होता है। परन्तु जीवित मनुष्यों को यह प्रायः कष्ट नहीं देता। गया में 'प्रेतशिला' पर प्रेत की पूजा की जाती है। पटना में 'प्रेतिया' नामक ब्राह्मण पाये जाते हैं जो किसी सन्त के प्रेत आत्मा की आराधना करते हैं। गाँवों में भूत और प्रेत ये दोनों ही युगल शब्द माने जाते हैं और दोनों का प्रयोग प्रायः समान अर्थ में किया जाता है।

(३) पिशाच—पिशाच शब्द अर्थ मांस को खाने वाला है। अतः इससे स्पष्ट है कि इस श्रेणी की प्रेत आत्मायें मांस का भक्षण करती हैं। क्रुके के कथनानुसार पिशाच वे बुरी आत्मायें (evil spirils) हैं जिनका निर्माण मनुष्य के बुरे कृत्यों से होता है। असत्य भाषी, व्यभिचारी, हत्या का अपराधी तथा पागल व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसकी आत्मा पिशाच योनि को प्राप्त होती है।

सोमदेव के कथा-सरित्सागर में पिशाचों का उल्लेख पाया जाता है तथा इनकी पूजा का विधान बतलाया गया है। पिशाच स्वभावतः बड़े क्रूरकर्मा होते हैं। इनका स्वभाव बड़ा ही कठोर, निर्दयी और दुष्ट होता है। मनुष्यों में जो दुष्ट और नृशंस स्वभाव वाले लोग होते हैं उन्हें 'नरपिशाच' की संज्ञा प्रदान की जाती है। अतः जो व्यक्ति इन पिशाचों से आविष्ट होते हैं उन्हें ये बड़ा ही कष्ट देते हैं।

## (५) परिच्छेद

### व्रत और त्यौहार

व्रत का अर्थ तथा विशेषता—धर्म और व्रत में बड़ा गहरा सम्बन्ध है। कदाचित् ही कोई ऐसा धर्म होगा जिसमें व्रत के आचरण को महत्व न दिया गया हो। हमारे वैदिक धर्म में व्रत की महती प्रतिष्ठा है। व्रतों का ठीक ठीक निर्णय करने के लिए तथा उनके उचित रूप से अनुष्ठान के लिए जितना आग्रह हमारे हिन्दू धर्म में दिखाई पड़ता है उतना किसी भी धर्म में नहीं है। इसीलिए हमारे धर्मशास्त्रों का एक विशेष अंग व्रतों के निर्णय तथा अनुष्ठान को लेकर प्रवृत्त होता है।

निरुक्त-कार ने व्रत का सामान्य अर्थ 'कर्म' बतलाया है। यह कर्ता को शुभ अथवा अशुभ रूप से बाँध लेता है इसीलिए इसे 'व्रत' कहते हैं।



कोई व्यक्ति जो कर्म करता है उसका फल उसे भोगना पड़ता है। इसीलिए कर्म को व्रत कहते हैं। इस अर्थ में इसका प्रयोग वैदिक संहिताओं में अनेक बार हुआ है।<sup>१</sup>

व्रत शब्द का एक दूसरा भी अर्थ है। वह अर्थ है उपवास आदि नियम विशेष। लौकिक संस्कृत में इसी अर्थ में इसका विशेष प्रयोग दिखलाई पड़ता है। वेदों में इस विशेष अर्थ में भी यह शब्द व्यवहृत हुआ है।<sup>२</sup> यह निवृत्ति रूप व्रत उपवास आदि है जो तीन प्रकार का होता है:—(१) नित्य (२) नैमित्तिक और (३) काम्य। नित्य व्रत वह है जिसका अनुष्ठान हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है, जैसे एकादशी का व्रत। नैमित्तिक व्रत किसी विशेष निमित्त, कारण या अवसर को लेकर प्रवृत्त होता है, यथा चान्द्रायण व्रत। काम्य व्रत किसी विशेष कामना की सिद्धि के लिए किया जाता है जैसे सूर्य-पष्ठी व्रत जो पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से सम्पादित होता है।

व्रत का प्रधान उद्देश्य आत्म-शुद्धि तथा परमात्म-चिन्तन है। व्रत में उपवास का विशेष विधान है। परन्तु केवल अन्न और जल के परित्याग से ही उपवास की पूर्ति नहीं होती। उपवास का शाब्दिक अर्थ है—उप समीपे वासः। समीप में रहना अर्थात् अपने इष्टदेव के पास में रहना। सच्चा उपवास तो परमात्मा का चिन्तन करते हुए उनके साथ तन्मय होकर रहना है।

**त्यौहार**—व्रतों का सम्बन्ध ऋतुओं के परिवर्तन से विशेष रूप से है। नयी ऋतु के आगमन पर नये व्रत अथवा नवीन उत्सव का आयोजन प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। जैसे वसन्त पञ्चमी और होली। व्रत में जहाँ उपवास और परमात्म चिन्तन की प्रधानता रहती है वहाँ त्यौहारों में आनन्द और उल्लास एवं उछाह की अधिकता पायी जाती है। व्रत और त्यौहार में यही अन्तर है। उदाहरण के लिए एकादशी एक व्रत है परन्तु होली और दिवाली त्यौहार माने जाते हैं। कुछ ऐसे भी पर्व हैं जिनमें व्रत और त्यौहार दोनों का सम्मिलन उपलब्ध होता है जैसे रामनवमी और कृष्ण जन्माष्टमी। इस दिन लोग व्रत भी रखते हैं और उत्सव भी मनाते हैं। अयोध्या में रामनवमी पर और मथुरा में कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर बहुत बड़ा मेला लगता है।

इन व्रतों और त्यौहारों को प्रधानतया चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

- (१) शुद्ध अध्यात्म सम्बन्धी व्रत
- (२) देवी-देवता सम्बन्धी व्रत
- (३) महापुरुष सम्बन्धी व्रत
- (४) ऋतु सम्बन्धी व्रत

प्रथम कोटि के व्रतों में एकादशी, महाशिवरात्रि आदि की गणना की जाती है। दूसरी श्रेणी में उन व्रतों का अन्तर्भाव होता है जो किसी देवी, देवता अथवा महापुरुष से सम्बन्धित है जैसे हनुमान जयन्ती, वामन द्वादशी गणेश चतुर्थी, शितलाष्टमी, मातृनवमी आदि। तीसरी श्रेणी के व्रतों में रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, भीष्माष्टमी, भीमसेनी एकादशी परशुराम जयन्ती की गणना की जाती है। ऋतु सम्बन्धी व्रत वे हैं जो किसी नवीन ऋतु के आगमन के अवसर पर मनाये जाते हैं—जैसे होली, दिवाली, दशहरा आदि। इन्हें व्रत न कहकर त्यौहार की संज्ञा प्रदान की जाय तो अधिक समीचीन होगा।

यदि इन व्रतों का श्रेणी विभाजन लिंग की दृष्टि से करना चाहें तो इन्हें तीन वर्गों में विभक्त करना होगा:—

- (१) पुरुषों के व्रत (२) स्त्रियों के व्रत (३) उभय लिंगों के व्रत।

पुरुषों के व्रत वे हैं जो अधिकांश रूप में पुरुषों के द्वारा ही सम्पन्न किये जाते हैं जैसे श्रावणी, महालया, रक्षाबन्धन, अनन्त आदि। दूसरी कोटि के व्रत वे हैं जो केवल स्त्रियों के ही द्वारा सम्पादित होते हैं—जैसे वट-सावित्री, गन्गौर, जीवित्पुत्रिका, अहोई और सूर्यपष्ठी व्रत आदि।

तीसरी श्रेणी में उन व्रतों का अन्तर्भाव किया जा सकता है जिनका अनुष्ठान स्त्री और पुरुष दोनों—उभय लिंग—समान रूप से करते हैं यथा एकादशी, अक्षय नवमी, महाशिवरात्रि आदि। वर्णन की सुविधा के लिए यहाँ व्रतों का विभाजन इसी क्रम से किया गया है। अतः मास के क्रम से यहाँ व्रतों और त्यौहारों का विवरण निम्नांकित रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है:—

- (१) पुरुषों के व्रत (२) स्त्रियों के व्रत (३) त्यौहार तथा (४) पर्व।

१. (क) यथा अथा वयमादित्यस्य व्रते तव। (ऋ० वे०)

(ख) ब्राह्मणाः व्रत चारिणः।

ऋ० वे० ७।१०३।१

(ग) अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि।

(ऋ० वे०)

२. अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि।

शु० यजु० सं० १।५



## विजयादशमी

विजयादशमी का त्यौहार आश्विन शुक्ल दशमी को मनाया जाता है। इसे 'दशहरा' भी कहा जाता है। भवान् राम-चन्द्र ने लंका में इसी दिन रावण का वध कर दिया था। अतः इसी विजय के उपलक्ष में यह विजयादशमी का त्यौहार सोल्लास मनाया जाता है। राम ने रावण का वध करके इस धराधाम पर राम राज्य की प्रतिष्ठा की। यह त्यौहार हमें अन्याय पर न्याय की, असत्य पर सत्य की और अनाचार पर सदाचार की स्थापना का सन्देश देता है। यह कर्मठता तथा कर्मण्यता का उप-देश देता है।

**समय तथा शास्त्रीय स्वरूप**—'ज्योतिर्निबन्ध' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि आश्विन की शुक्ल पक्ष की दशमी को तारा उदय होने के समय 'विजय' नामक काल होता है। यह सब सिद्धि को देने वाला होता है। अतः इस दिन विजय की इच्छा करने वाले राजा को चाहिए कि वह हाथी, घोड़ा, शस्त्रादि तथा अपनी सेना को सुसज्जित करके सीमा का उल्लंघन कर शत्रु पर आक्रमण करे।

हेमाद्रि ने लिखा है कि युद्ध का अवसर न होने पर भी राजा को अपने राज्य की सीमा का अतिक्रमण करना अपना परम कर्तव्य समझना चाहिए। सीमा के बाहर जाकर राजा पूर्वमुख खड़े होकर शमी वृक्ष के मूल में पृथ्वी पर जल छिड़के और शमी वृक्ष की पूजा करे। इसके पश्चात् शत्रु के विजय की भावना अपने हृदय में करके अपने महल में लौट आवे।

**लौकिक स्वरूप**—विजयादशमी का त्यौहार भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक राज्य में मनाया जाता है। यह प्रधानतया क्षत्रियों तथा राजाओं का त्यौहार है। इसीलिए इसकी जो शोभा भूतपूर्व देशी रियासतों में दिखाई पड़ती थी वह अब नहीं पायी जाती। राजस्थान के भूतपूर्व राजाओं के द्वारा यह त्यौहार बड़े ही ठाट बाट के साथ मनाया जाता था। परन्तु मैसूर (आधुनिक कर्नाटक) राज्य का दशहरा भारतभर में प्रसिद्ध था। इस दिन राजा लोग अपने प्राचीन अस्त्र-शस्त्रों को निकाल कर उनकी पूजा किया करते थे। घोड़ों को सुन्दर काठी तथा हाथियों को जरी के काम किये गये वेशकीमती झूलों से सजाकर जलूस में निकाला जाता था। अम्बारी से सजाये गये गजराज पर महाराजाधिराज स्वयं विराजमान रहते थे। उनके पीछे घुड़सवारों तथा पैदल सैनिकों की सेना बड़े सजघज के साथ चलती थी। इस जलूस के आगे "मिलिटरी बैंड" बजता चलता था जो अपनी एक एक चोट पर, शत्रु पर दूट पड़ने के लिए प्रोत्साहित करता था। इस प्रकार विजयादशमी का यह त्यौहार भूतपूर्व राजाओं के द्वारा बड़े ही शान-शौकत के साथ मनाया जाता था। परन्तु भारतीय संघ में देशी राज्यों के विलयन के पश्चात् न तो वह राज्य ही रहा और राजा ही। अतः दशहरे का वह राजकीय स्वरूप अब नहीं रहा जो पहिले था।

गाँवों की सामान्य जनता भी इस त्यौहार को बड़े उत्साह के साथ मनाती है। प्रत्येक नगर में छोटा बड़ा जलूस निकाला जाता है जिसमें दुर्गा जी की प्रतिमा को लोग पालकी पर ढोते हैं। पहलवान लोग तलवार भाँजकर, मुग्दर उठाकर, बनैठी घुमाकर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हैं। इस जलूस में लोगों का उत्साह देखते ही बनता है। काशी में यह दृश्य देखते ही बनता है। यहाँ दुर्गा-पूजा के प्रत्येक स्थान से दुर्गा की मूर्ति के साथ जलूस निकाला जाता है जो दशाश्वमेध घाट तक आता है। यहाँ दुर्गा की प्रतिमा को गंगा में विसर्जित कर दिया जाता है जिसे "दुर्गा भसान" कहते हैं।

प्रयाग में दशहरा का जलूस बड़ा ही शानदार रूप से निकलता है। इसमें सैकड़ों चौकियाँ निकलती हैं जिनमें पौराणिक, धार्मिक तथा राजनैतिक दृश्यों की झाँकी दिखलायी जाती है। प्रयाग की चौकियों का जलूस बड़ा प्रसिद्ध है जिसमें हजारों व्यक्ति सम्मिलित होते हैं और लाखों नर-नारी दर्शक के रूप में उपस्थित रहते हैं।

रात्रि में रामलीला होती है जिसका प्रारम्भ आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से ही हो जाता है। इस दिन राम लंका पर आक्रमण करके रावण का वध करते हैं। बाँस और कागज की सहायता से रावण की भीमकाय कागजी प्रतिमा बनायी जाती है जिसमें आग लगाकर राम के द्वारा रावण का वध कराया जाता है। यह दृश्य बड़ा ही प्रभावशाली होता है। वाराणसी के पास स्थित रामनगर की रामलीला बहुत ही प्रसिद्ध है। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि—

"लीला रामनगर की भारी,  
कजली मिर्जापुर सरदार।"

काशी राज्य के विलयन के पूर्व रामनगर में दशहरा के दिन राजकीय जलूस बड़े ही ठाट बाट से निकलता था। यहाँ रामलीला आज भी बड़े धूमधाम से मनायी जाती है।

१. आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां तारकोदये। स कालः विजयो ज्ञेयः, सर्व कार्याय सिद्धये॥



गाँवों में दशहरा के दिन लोग नये वस्त्र धारण करते तथा पूजा, पूड़ी बनाकर खाते हैं। रात में बड़े आनन्द से राम-लीला देखते हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि आज नीलकण्ठ का दर्शन करना शुभ है। अतः बहलिये नीलकण्ठ को पकड़ कर प्रत्येक घर में ले जाकर लोगों का इसका दर्शन कराते हैं। ऐसा ज्ञात होता है यह प्रथा कुछ प्राचीन है। हिन्दी के एक कवि ने इस लोक विश्वास की ओर निम्नलिखित दोहे में संकेत किया है।

“काल्ह दशहरा बीतिहें, धरु धीरज हिय लाज।

छिपे फिरत तुम दुश्मन में, नीलकण्ठ बिनु काज॥”

दशहरे के दिन नीलकण्ठ के दर्शन को क्यों शुभ माना जाता है इसके रहस्य को बतलाना कठिन है।

**महत्त्व**—विजयादशमी का त्यौहार हमारा परम पुनीत पर्व है। यह हमारा राष्ट्रीय त्यौहार है। यह हमारी संस्कृति का द्योतक व्रत है। विजयादशमी का त्यौहार हमें यह बतलाता है कि प्राचीन आर्य हिन्दू अपनी स्त्रियों का कितना सम्मान करते थे। उनके हृदय में अपनी ललनाओं के लिए कितना आदर था। दुष्ट रावण ने आर्या सीता का अपहरण किया था। उसने एक आर्य सती स्त्री को छल से चुरा लिया था। मर्यादापुरुषोत्तम राम भला इस अपमान को कैसे सह सकते थे? उन्होंने बन्दरों तथा भालूओं की अपनी सेना को लेकर सागर को पार किया और रावण पर आक्रमण कर उसकी सोने की लंका को धूल में मिला दिया। और रणक्षेत्र में रावण को अकेले ही नहीं बल्कि सपरिवार, यमलोक का टिकट कटाकर उसे विदा कर दिया। यह था एक आर्य स्त्री के अपहरण का फल! रावण ने देवताओं पर अनेक अत्याचार कर अन्याय का राज्य फैला रखा था। अतः राम ने अन्यायी रावण का वध कर इस लोक में न्याय और धर्म की स्थापना की। अन्याय का समूल नाश कर, अत्याचार तथा उत्पीड़न को विनष्ट कर और अनाचार का अन्त कर इस धरा धाम पर न्याय, धर्म, और सदाचार की प्रतिष्ठा करना ही विजयादशमी का सन्देश है। यही उपदेश है। यही आदेश है।

### दिवाली

दीपावली हमारा सामाजिक त्यौहार है। यह जनसाधारण में दिवाली के नाम से प्रसिद्ध है। दिवाली शब्द दीपावली का अपभ्रंश रूप है। चूँकि इस दिन दीपों की अवली अर्थात् समूह—अनेक दीपों—को एक साथ जलाया जाता है अतः इसे दीपावली कहते हैं। यह त्यौहार कार्तिक मास की (कृष्ण पक्ष की) अमावस्या को प्रतिवर्ष मनाया जाता है।

**धनतेरस**—इस त्यौहार के साथ अनेक छोटे छोटे त्यौहार इसके अंगीभूत के रूप में इससे सम्बद्ध हैं जैसे धनतेरस और अन्नकूट आदि। सच तो यह है कि दिवाली का त्यौहार धन तेरस—कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी से ही प्रारम्भ हो जाता है। यह शब्द ‘धन त्रयोदशी’ का अपभ्रंश रूप है। धन तेरस को छोटी दिवाली भी कहते हैं। इस दिन यमराज की प्रसन्नता के लिए दीपदान किया जाता है। लोग अपने घर में घी तथा तेल के दीपक जलाते हैं परन्तु अल्प मात्रा में। इसीलिए संभवतः इसे छोटी दिवाली कहा जाता है। इस दिन काशी के ठठेरी बाजार में बनारसी साड़ियों तथा पीतल के वर्तनों को प्रदर्शन के लिए सजाया जाता है जिसकी बड़ी ही सुन्दर शोभा होती है। यह दृश्य बड़ा ही रमणीय तथा चित्ताकर्षक होता है। इस दिन नये वर्तनों को खरीदना शुभ समझा जाता है। अतः प्रायः सभी लोग छोटा या बड़ा वर्तन इस दिन अवश्य खरीदते हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इस दिन वर्तन खरीदने से घर में लक्ष्मी (धन) का आगमन होता है। इस दिन यमराज की पूजा की जाती है जिससे वे प्रसन्न रहें तथा असामयिक मृत्यु का निवारण करते रहें। गाँवों में प्रायः छोटी दिवाली नहीं मनायी जाती। वर्तन की दुकानों के अभाव में नये वर्तनों का खरीदना भी आवश्यक नहीं माना जाता।

**दीपावली**—इस त्यौहार को मनाने के लिए महीनों पहिले मकान की सफाई की जाती है। पक्के मकानों में टूटे-फूटे स्थानों की मरम्मत करके उसकी चूना से पोताई की जाती है। कच्चे घरों की दीवारों को गोबर और मिट्टी से लीपा जाता है। घर का सालभर का कूड़ा करकट बटोर कर उसे बाहर फेंक दिया जाता है और इस प्रकार घर को पवित्र तथा स्वच्छ किया जाता है।

दीपावली के दिन सायंकाल को लक्ष्मी की पूजा की जाती है। मिट्टी की बनी हुई गणेश और लक्ष्मी की प्रतिमा को पूजते हैं। नाना प्रकार के नवीन वस्त्रों से लक्ष्मी का मण्डप बनाकर और उसे पत्र-पुष्पों से सुसज्जित करके भगवती लक्ष्मी की षोडशोपचार पूजा करने का इस दिन विधान बतलाया गया है। दीपों के समूह के द्वारा वृक्ष की आकृति बनाकर खजाने में अथवा अन्य किसी स्थान पर लक्ष्मी की प्रतिमा को स्थापित करके विधिवत पूजन करना चाहिए। इस पूजा से धन-धान्य की वृद्धि होती है ऐसा लोगों का विश्वास है। इसीलिए अनेक व्यक्ति लक्ष्मी के आगमन के लिए अपने घर का द्वार रात भर खोले रखते हैं और पूरी रात्रि में जागरण करते रहते हैं।

दीपावली के दिन प्रत्येक व्यक्ति अपने घर में दीपक जलाता है। धनी मानी व्यक्तियों की तो बात ही दूसरी है, गरीब



आदमी भी दो चार दीपक अवश्य ही जलाता है। होली की ही भाँति इस त्यौहार को सभी वर्ण तथा जातियों के लोग बड़े उत्साह से मनाते हैं। होली को छोड़कर यही हमारा सर्वप्रिय और लोक प्रचलित पर्व है। यह गाँवों तथा नगरों में समान रूप से मनाया जाता है। अमावस्या की काली रात में असंख्य दीपकों का प्रकाश सचमुच ही बड़ा सुहावना मालूम पड़ता है। यह अन्धकार का तो नाश करता ही है इसके साथ ही हमारी गन्दगी को भी दूर करता है।

वर्तमान स्वरूप—ऐसा कहा जाता है भगवान् रामचन्द्र ने रावण का वध करके सीता का उद्धार किया था। अवध पर धर्म की इस विजय के उपलक्ष में लोगों ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए दीपकों को जलाया। तभी से दीपावली का यह त्यौहार प्रचलित हो गया। यह परम्परा आज अक्षुण्ण रीति से चली आ रही है। यों तो प्रत्येक स्थान की दिवाली दर्शनीय होती है परन्तु काशी, बम्बई तथा अमृतसर (पंजाब) की दीपावली प्रसिद्ध मानी जाती है। बम्बई में जलते हुए दीपों का अगणित प्रकाश जब समुद्र में पड़ता है तब उसकी अलौकिक शोभा होती है।

आजकल विजली के युग में अनेक धनी व्यक्ति दीपकों के स्थान पर लाल, हरे, पीले रंगीन बल्बों को जलाकर इस उत्सव को मनाते हैं। इस दिन मित्रगण आपस में एक दूसरे से मिलते हैं और एक दूसरे के घर मिठाइयाँ भिजवाते हैं। इन दिनों सड़कों तथा गलियों में छोटे छोटे बच्चे “एक लगाओ, तीन पाओ” की आवाज लगाते हुए जुआ खेलते दिखाई पड़ते हैं। गाँवों में कौड़ी के द्वारा लोग जुआ खेलते हैं जिसमें कुछ व्यक्ति अपना सर्वज्ञ गँवा देते हैं।

वैश्य लोगों के लिए यह त्यौहार उनके व्यापार का प्रथम दिन समझा जाता है। वे इसी दिन से अपना हिसाब किताब चुकता करके अपनी नयी बही बनाते और नया खाता चालू करते हैं। जिस प्रकार दशहरा क्षत्रियों का त्यौहार है उसी प्रकार दीपावली प्रधानतया वैश्यों का त्यौहार माना जाता है, यद्यपि इसमें सभी वर्गों के लोग समान रूप से भाग लेते हैं।

महत्त्व—जहाँ हमारे अन्य व्रत और त्यौहार आन्तरिक शुद्धि तथा पवित्रता की ओर ध्यान देते हैं वहाँ यह त्यौहार बाह्य पवित्रता तथा स्वच्छता के लिए मनाया जाता है। वर्षाऋतु की गंदगी और कूड़ा-करकट को दूर कर हम इसे मनाते हैं जिससे वातावरण शुद्ध और पवित्र हो जाता है। दीपावती हमें सिविक सेन्स (नागरिक आचरण) की शिक्षा देती है। यह बाह्य शुद्धि तथा स्वच्छता का त्यौहार है।

दलिद्वर खेदना—गाँवों में दीपावली के दूसरे दिन प्रातःकाल में दरिद्रा—निःसारण की प्रथा प्रचलित है जिसे भोजपुरी भाषा में “दलिद्वर खेदना” कहा जाता है। इस दिन घर की सबसे बूढ़ी स्त्री अपने बाये में सूप और दाहिने हाथ में बाँस की छड़ी लेकर उस सूप को पीटती अर्थात् डबडवाती चलती है। वह सूप को पीटते हुए वह प्रत्येक घर के कोने कोने में जाती है और इस निम्नांकित वाक्य को बार बार दुहराती जाती है—

इस्सर पइससु, दलिद्वर निकससु।  
अवरुं लछिमी जी डेहरि चढ़ि बइठसु॥”

अर्थात् दरिद्रता मेरे घर से निकल जाय और ऐश्वर्य रूपी भगवान् गृह में प्रवेश करें। भगवती लक्ष्मी मेरे घर के द्वार पर चढ़ कर बैठें अर्थात् गृह में आगमन करें। इस मंत्र को पढ़ते हुए घर की बुढ़िया सूप को घर से बाहर फेंक आती हैं और वह समझती है अब मेरे घर की दरिद्रता दूर हो गई। इसी प्रथा को लक्षित करके हिन्दी में यह कहावत प्रचलित हो गई है कि—“सूप के डबडवाने से दरिद्रता दूर नहीं होती।” परन्तु ग्रामीण जनता का यह दृढ़ विश्वास है कि “दलिद्वर खेदना” की इस प्रथा से घर की दरिद्रता नष्ट हो जाती है।

अन्नकूट—कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को अन्नकूट का महोत्सव मनाया जाता है। वास्तव में अन्नकूट का उत्सव गोवर्धन पूजा का त्यौहार है। प्राचीन काल में जनता इन्द्र की पूजा किया करती थी। इन्द्र भगवान् को भोग लगाने के लिए अनेक प्रकार के पक्वान्न तथा मिठाइयाँ बनायी जाती थीं। इन्द्र इनको ग्रहण कर प्रसन्न होकर लोगों का कल्याण करते थे।

ब्रजमण्डल में विशेषतया गोवर्धन में अन्नकूट का त्यौहार बड़े ठाट-बाट से मनाया जाता है। उस दिन अनेक प्रकार के पक्वान्नों तथा मिष्ठान्नों का भोग लगाया जाता है। राजस्थान में नाथद्वारा में इस त्यौहार का वैभव दर्शनीय होता है। इस दिन भगवान् को छप्पन प्रकार का नहीं बल्कि सैकड़ों प्रकार का भोग लगाया जाता है। वाराणसी में विश्वनाथ और अन्नपूर्णा जी के मंदिरों में इस दिन पक्वान्नों तथा मिष्ठान्नों की विभिन्नता दर्शनीय होती है। इसी दिन अन्नपूर्णा का नाम सार्थक प्रतीत होता है। विश्वनाथ जी के मंदिर में मिठाई का पहाड़ दर्शनीय होता है। तुलसी मानस मंदिर में कलात्मक ढंग से मिष्ठान्नों को सजाया जाता है। सचमुच यह त्यौहार हमारे देश की वैभव, सम्पन्नता का सूचक था। परन्तु इस भीषण महगाई में इसका ह्रास हो रहा है।



## होली

फाल्गुन मास की पूर्णिमा को होली का त्यौहार मनाया जाता है। इसे 'होलिकोत्सव' भी कहा जाता है। होली हमारा सबसे बड़ा, प्रसिद्ध तथा सर्वाधिक लोकप्रिय त्यौहार है। इसे आवाल-वृद्ध-वनिता सभी बड़े ही उत्साह के साथ मनाते हैं। इसके समान आनन्द, उछाह तथा प्रसन्नता देने वाला कोई अन्य त्यौहार नहीं है। हमारे प्रसिद्ध त्यौहारों की त्रयी—होली, दशहरा तथा दिवाली में होली का स्थान सर्वप्रथम है। यह हमारे सामाजिक त्यौहारों में सर्वश्रेष्ठ, सर्वप्रसिद्ध तथा सबसे अधिक लोक-प्रचलित है। आज के दिन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—सभी वर्णों के लोग बड़े आनन्दित दिखाई देते हैं। इस त्यौहार में न तो कोई जाति-भेद माना जाता है और न वर्ण-भेद। सभी लोग आज के दिन ऊँच-नीच के भावों को भुलाकर एक दूसरे के गले मिलते हैं और इस प्रकार प्रेम का प्रदर्शन करते हैं। जो उत्साह और आनन्द ईसाई लोग क्रिसमस (बड़े दिन) के त्यौहार में मनाते हैं उससे कई गुना आनन्द इस त्यौहार के दिन सभी वर्णों के लोग प्राप्त करते हैं।

वसन्त की ऋतु और फाल्गुन का मादक तथा मनभावन महीना इसके आनन्द में शताधिक वृद्धि कर देता है। इस त्यौहार की सबसे बड़ी विशेषता है, मस्ती, मौज और आनन्द। फाल्गुन का मास यों ही मस्ती का महीना माना जाता है, फिर होली के दिन क्या कहना है? इस मास में बूढ़ों की नसों में भी जवानी का खून दौड़ने लगता है और उनके मुरझाये तथा खूसट मन में भी जवानी का जोश जाग पड़ता है। उनकी तबीयत हरी हो जाती है तथा वे भी हास-परिहास में रस लेने लगते हैं। इसीलिए गाँवों में यह कहावत प्रचलित है कि:—

“भरि फाल्गुन बूढ़ा देवर लागे”

अर्थात् फाल्गुन के महीना में बूढ़े भी देवर के समान हँसी-मजाक करने लगते हैं।

**शास्त्रीय स्वरूप**—प्रतिपदा, चतुर्दशी की तिथि में भद्रा में, दिन में होली जलाना सर्वथा निषिद्ध है। होलिका दहन के समय काष्ठ का संग्रह करके इसे जलाना चाहिए। इस दिन व्रती को चाहिए कि वह प्रातः स्नानादि के अनन्तर होलिका के दहन-स्थान को जल के प्रोक्षण से शुद्ध करे। पश्चात् सायंकाल में समस्त नगर या ग्रामवासियों के साथ होलिका के पास जाकर पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके आसन पर बैठे। इसके पश्चात् होलिका पूजन का संकल्प करके पूर्णिमा तिथि के होने पर किसी अच्छूत के घर से अथवा सूतिका-गृह से किसी बालक के द्वारा अग्नि मँगवा कर होलिका को जलावे। आग के प्रचण्ड रूप धारण करने पर मंत्र पढ़ते हुए तीन बार उसकी प्रदक्षिणा करें और अर्घ्य दे। इसके बाद गेहूँ, चने और जौ की बाल को इस अग्नि की ज्वाला में सेंके तथा पकाये गये इस नये अन्न को तथा होलिका-दहन के भस्म को लेकर घर लौट आवे।

फाल्गुनी पूर्णिमा को वैष्णव लोग होलोत्सव मनाते हैं। ब्रह्मपुराण में लिखा है कि इस दिन गोविन्द पुरुषोत्तम को जो मनुष्य हिडोले में झुलाता है वह वैकुण्ठ में जाता है। यह उत्सव होली मनाने के बाद किया जाता है।

**लौकिक स्वरूप**—वसन्त का आगमन तो माघ शुक्ल पंचमी—अर्थात् वसन्त पञ्चमी से ही माना जाता है परन्तु होली की तैयारी फाल्गुन मास के प्रारम्भ से ही शुरू हो जाती है। गाँव के नटखट लड़के किसी के घर से लकड़ी और किसी झोपड़ी से उपले (गोईठा) चुराकर ले जाते हैं और उसे चौराहे पर होलिका में जलाने के लिए इकट्ठे करते जाते हैं। होलिका दहन के दिन तो ये लोग किसी के घर की खाट, काठ उठा लाते हैं और किसी गरीब का छप्पर लाकर होलिका में जला देते हैं। होलिका के चारों ओर प्रदक्षिणा कर इसमें आग लगा दी जाती है और थोड़ी ही देर में यह जल कर भस्म हो जाती है। इसीलिए हिन्दी के किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि—

चोरी करि होरी रची,  
मई तनक में छार।”

जब होलिका जलती रहती है उस समय गाँव के लड़के, कच्चे बाँस की छड़ी में बाँस की सूखी हुई पत्तियों को छेदकर इकट्ठी करते हैं फिर उसमें आग लगाकर इधर उधर दौड़ते हुए भाँजते हैं जिसे 'बनैठी भाँजना' कहा जाता है। सामान्य जनता का यह विश्वास है कि यदि होलिका में बालकों को उबटन लगाकर इसमें जला दिया जाय तो वे सालभर तक स्वस्थ रहते हैं। अतः मातायें अपने छोटे बच्चे के शरीर में उबटन या बुकवा लगाकर उसकी झिल्ली को आग में जला देती हैं।

होलिका दहन के दूसरे दिन होली मनाई जाती है। शहरों में यह प्रथा है कि पूर्वान्ह में गुलाल अथवा पीले रंग को पानी में घोलकर एक दूसरे पर रंग डालते हैं। अपने मित्रों तथा परिचितों को रंग से शराबोर कर देते हैं। अपरान्ह में सूखे रंग से होली खेली जाती है। परन्तु गाँवों में इस प्रथा में कुछ मिन्नता पायी जाती है। वहाँ दिन के पूर्वान्ह में मिट्टी, गोबर तथा कीचड़ आदि एक दूसरे के शरीर में लपेट कर होली खेली जाती है तथा अपरान्ह में गीले तथा सूखे रंग से।



इस दिन गाँव के बालक तथा बनितायें नया वस्त्र धारण करती हैं। बालकों के लिए मलमल का कुर्ता सिलवाया जाता है जिसको धारण कर वे होली खेलते हैं। इस दिन गरीब व्यक्ति के घर में भी पूड़ी, पुआ और खीर खाया जाता है। फिर धनी तथा समृद्ध लोगों का क्या कहना? बहुत लोग होली के दिन भाँग भी छानते हैं।

इस दिन होली भी गायी जाती है जिसे भोजपुरी प्रदेश में 'फगुआ' भी कहा जाता है। गवैयाँ का दल होली गाते हुए गाँव में घर-घर घूमता है। इन गाँवों में 'कबीर' और गालियों की ही अधिकता होती है। इस दिन की गाली को कोई बुरा नहीं मानता। यह कहावत प्रसिद्ध है कि :—

“भाई बुरा न मानो होली”

ऐसा ज्ञात होता है कि इस दिन मजाक करने तथा गाली देने के लिए सबको छूट मिल गयी है। गाँवों में किसी धनी व्यक्ति के घर रात में होली गान का उत्सव मनाया जाता है।

वाराणसी में होली के दिन दशाश्वमेध घाट पर स्थित चौसट्ठी देवी का दर्शन करना आवश्यक माना जाता है। अतः इस मंदिर में बड़ी भीड़ होती है। कुछ लोग अपने परिचितों के गाल में गुलाल मलते हुए दिखाई पड़ते हैं और मौज में आकर गाली भी बकते हैं। होली हमारी मस्ती तथा मौज का त्यौहार है। हम वर्ष भर के अपने समस्त दुःखों को भुलाकर बैर और ईर्ष्या को दूर कर सबसे प्रेम से मिलते हैं। इस प्रकार सार्वजनीन प्रेम और मस्ती ही होली का सन्देश है।

### रथ-यात्रा

आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को रथयात्रा का उत्सव मनाया जाता है। इस दिन पुष्य नक्षत्र में सुभद्रा सहित भगवान् को रथ में बैठाकर यात्रा करनी चाहिए। यों तो भारतवर्ष में सर्वत्र ही रथ-यात्रा का महोत्सव मनाया जाता है परन्तु इस दिन जो बृहत् समारोह उड़ीसा राज्य के पुरी नामक नगर में मनाया जाता है वैसे अन्यत्र दिखाई पड़ना कठिन है। भगवान् जगन्नाथ के इस महोत्सव के कारण इस नगर का नाँव जगन्नाथपुरी पड़ गया है।

इस पुरी का सबसे बड़ा आकर्षण भगवान् जगन्नाथ का मन्दिर है। इस मंदिर का बाहरी घेरा ६६६ फीट लम्बा और ६४५ फीट चौड़ा है। इसका कंगूरेदार प्राकार (चहारदिवारी) लगभग २२ फीट ऊँचा है। सिंहद्वार के सामने एक ही पाषाण खण्ड का बना हुआ ३५ फीट ऊँचा एक अरुण-स्तम्भ है जिसके सिरे पर सूर्य और उनके रथ के सारथी अरुण देवता की मूर्ति स्थापित है। बाहरी प्राकार के भीतर ४५० फीट लम्बा और ३०० फीट चौड़ा एक दूसरा दीवालों का घेरा बना है जिसके भीतर जगन्नाथ जी तथा अन्य देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित हैं। कहा जाता है वर्तमान मंदिर का निर्माण ११८४ ई० से लेकर ११९८ ई० तक किया गया था।

जगन्नाथ जी के मंदिर में भगवान् जगन्नाथ, बलराम तथा सुभद्रा तीनों की मूर्तियाँ विराजमान हैं। ये मूर्तियाँ पाषाण की न होकर लकड़ी से बनायी गयी हैं अतः इन्हें 'दारुमय' कहा जा सकता है।

इस नगरी का सबसे बड़ा त्यौहार रथयात्रा है। इस दिन भगवान् के दर्शन के लिए यात्रियों की अपार भीड़ देश के कोने कोने से आकर एकत्रित होती है। इस दिन भगवान् रथ में बैठ कर यात्रा करते हैं। इस विशाल रथ को खींचने के लिए ४२०० व्यक्ति लगाये जाते हैं जिन्हें मंदिर की ओर से माफी जमीन मिली है। परन्तु इनके अतिरिक्त भगवान् के रथ को लाखों आदमी मिल कर खींचते हैं। भगवान् के रथ को खींचना बड़ा ही पुण्यदायक माना जाता है अतः लाखों दर्शनार्थियों की एकमात्र यही लालसा रहती है कि वह जगन्नाथ जी के रथ को स्वयं खींचे। भगवान् रथ में बैठकर जनकपुर जाते हैं और वहाँ तीन दिन रहकर पुनः लौट आते हैं। रथयात्रा का यह दृश्य बड़ा ही दिव्य तथा दर्शनीय होता है। काशी में भी यह उत्सव मनाया जाता है, जहाँ रथयात्रा की चौमुहानी पर लगता है। रथयात्रा के दिन ऊँच-नीच का भेद-भाव भुलाकर सभी वर्ण एवं जाति के लोग भगवान् के रथ को खींचते हैं एवं छूआछूत की भावना को भगाकर भगवान् का प्रसाद (पकाया हुआ भात) ग्रहण करते हैं। समानता, मित्रता एकता की यही भावना इस त्यौहार का सन्देश है।

### नाग-पंचमी

श्रावण शुक्ला पंचमी को नाग-पंचमी कहा जाता है इसका कारण यह है कि इसी दिन नाग अर्थात् सर्प की पूजा की जाती है। इस पूजा का सर्वत्र प्रचार पाया जाता है।

इस दिन प्रातःकाल उठकर घर की लड़कियाँ अथवा स्त्रियाँ गोबर से सारे घर को आवेष्टित करती हैं और घर की सभी बाहरी दीवालों पर गोबर से रेखा बनाती हैं। इसके पश्चात् वे गृह के प्रधान द्वार के दोनों ओर नाग की दो प्रतिमाओं



को चित्रित करती हैं। शहरों में जहाँ गोबर उपलब्ध नहीं होता वहाँ के नाग के कागज पर बने चित्रों को द्वार पर चिपका दिया जाता है। वाराणसी नगर में आज के दिन प्रातःकाल छोटे-छोटे बच्चे “नाग लो भाई नाग लो। छोटे गुरु का बड़े गुरु का नाग लो भाई नाग लो” चिल्लाते हुए पाये जाते हैं। नाग की प्रतिमा के निर्माण के पश्चात् उनकी विधिवत् पूजा की जाती है। एक कटोरे में धान का लावा और दूध भरकर किसी एकान्त स्थान में घर के कोने में रख दिया जाता है। लोगों का यह विश्वास है कि नाग देवता आज स्वयं प्रकट होते हैं और दूध पीते हैं। जनता की ऐसी दृढ़ धारणा है कि जो इस दिन अर्थात् नाग पंचमी को नाग की पूजा करते हैं उन्हें सर्पदंश का भय नहीं रहता। कदाचित् सर्प काट भी दे तो उसके विष का कुछ असर नहीं होता।

इस तिथि को ‘नाग पंचैया’ भी कहते हैं जो नागपंचमी का ही अपभ्रंश रूप है। कहीं कहीं इस दिन कुस्ती का दंगल भी होता है जिसमें बड़े बड़े पहलवान भाग लेकर अपनी शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन करते हैं। काशी में इस दिन ‘नागकुँआ’ नामक स्थान में संस्कृत के पण्डितों का जमघट होता है जहाँ वे आपस में शास्त्रार्थ करते हैं और अपनी पण्डिताई का परिचय देते हैं। इस दिन वहाँ एकत्रित लोग ‘नागकुँआ’ का जल पीते हैं और नाग देवता का दर्शन कर घर लौटते हैं।

नागपंचमी का त्यौहार हमारी उदारता तथा विशाल हृदयता का स्मरण दिलाता है। संसार में संभवतः हिन्दू ही इतने उदार हैं कि वे सर्प जैसे दुष्ट जीव की पूजा करते हैं और उन्हें दूध पिलाते हैं। धार्मिक सहिष्णुता की भावना हमारे हृदय में इतनी अधिक मात्रा में विद्यमान है कि हम शत्रुरूप के प्रतीक हिसक जीवों को केवल आश्रय ही नहीं देते बल्कि उनकी पूजा भी करते हैं। अतः इस त्यौहार से हमें उदारता तथा सहिष्णुता की शिक्षा लेनी चाहिए और अपने जीवन में इन दोनों सद्गुणों को व्यावहारिक रूप देना चाहिये।

### रक्षा-बन्धन

श्रावण की पूर्णिमा को यह त्यौहार मनाया जाता है। गाँवों में यह राखी के नाम से विख्यात है। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलों में यह ‘सलूनो’ के नाम से जाना जाता है। यह वास्तव में भाई और बहिन के स्वार्भाविक प्रेम का द्योतक त्यौहार है।

राखी का त्यौहार प्रायः पूरे देश में मनाया जाता है। आज के दिन पण्डित लोग पीले रंग में रंगा हुआ सूत अपने यजमानों के हाथ में बाँधते हैं और फलस्वरूप ये इन्हें दक्षिणा देते हैं। परन्तु आजकल रेशम और प्लास्टिक की राखियाँ भी चल पड़ी हैं जिसे शौकीन लोग अपने हाथों में बाँधते हैं।

राखी के दिन बहिन अपने भाई के भाल में पहिले तिलक लगाती हैं। फिर उसे नारियल और मिष्ठान्न देती हैं। इसके बाद उसके हाथ में राखी बाँधती हैं। इस रक्षा सूत्र के बाँधने का रहस्य यह है कि बहिन अपने भाई की रक्षा की कामना करती है। मध्यकाल में भी इस त्यौहार की परम्परा पायी जाती है। यदि कोई स्त्री किसी दूसरे व्यक्ति के भी हाथ में यदि राखी बाँध देती थी तो वह उसका ‘राखीबन्ध भाई’ हो जाता था और उसका यह कर्तव्य होता था कि वह अपने ‘बहिन’ की प्रतिष्ठा और इज्जत की रक्षा करे। ऐसी अनेक घटनाओं से मध्ययुगीन भारत का इतिहास भरा पड़ा है।

### कजरी

यह त्यौहार भाद्रकृष्ण तृतीया को मनाया जाता है? इसीलिए इसे कजरी तीज भी कहते हैं। यह स्त्रियों का बहुत बड़ा त्यौहार है। इस दिन स्त्रियाँ नवीन वस्त्र धारण करती हैं और अपने शरीर को आमूषणों से सुसज्जित करती हैं। वे सौन्दर्य वृद्धि के लिए अपनी आँखों में काजल और हाथों में मेहदी लगाती हैं। इस दिन स्त्रियाँ रात्रि में जागरण करती हुई रात भर कजली गाती रहती हैं। वाराणसी में तीज के दिन प्रायः सभी स्त्रियाँ ‘मंगला गौरी’ नामक देवी का दर्शन करती हैं जो मंगल को देनेवाली मानी जाती हैं।

यों तो कजली सर्वत्र मनायी जाती है परन्तु वाराणसी तथा मिर्जापुर में इसका विशेष प्रचार है। मिर्जापुर में तो इस दिन बहुत बड़ा मेला लगता है जहाँ रातभर कजली के दंगल हुआ करते हैं। स्त्रियाँ पेड़ों पर झूला लगाकर झूलती हैं और कजली गाती रहती हैं। मिर्जापुरी कजली के सम्बन्ध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि :—

“लीला रामनगर की भारी,  
कजली मिर्जापुर सरनाम।”

यह कजली का त्यौहार आनन्द उछाह और मस्ती का पर्व है जिसे सभी समान रूप से मनाते हैं।



## बहुला व्रत

यह व्रत भाद्रमास की कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को किया जाता है। इसे जनपदीय भाषा में 'बहुला' कहते हैं। इस दिन कन्यायें तथा युवती स्त्रियाँ दिन भर व्रत रखती हैं और सार्यकाल किसी नदी या जलाशय में स्नान कर बहुला, उसके बच्चे तथा सिंह को मिट्टी अथवा बालू की प्रतिमा बनाकर इनका पूजन किया जाता है। इसके बाद स्त्रियाँ बहुला की कथा सुनती हैं। वे जौ का सत्तू तथा गुड़ सन्ध्या समय खाती हैं। यह व्रत सन्तान का दाता और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला माना जाता है।

बहुला की कथा उत्कट संतति प्रेम का जीता जागता उदाहरण है। इस व्रत से हमें माता की पुत्र के ऊपर अगाध प्रेम का पता चलता है। इस व्रत से सत्य बोलने तथा दृढ़प्रतिज्ञ होने की शिक्षा मिलती है। अनाथ की रक्षा करना भी हमारा धर्म है। जो स्त्रियाँ अनाथों का अपने पुत्र के समान पालन करती हैं वे धन्य हैं तथा उनके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। बहुला की कथा में सत्य की महान् महिमा का उद्घाटन किया गया है। मनुष्य को दृढ़ प्रतिज्ञ होना चाहिए यही इस कथा का सन्देश है।

## श्रीकृष्ण जन्माष्टमी

भाद्रपद (भादों) मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को कृष्ण जन्माष्टमी का पर्व मनाया जाता है। चूंकि भगवान् कृष्ण का जन्म इसी तिथि को हुआ था। अतः यह 'जन्माष्टमी' के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म मथुरा में कंस के कारागार में हुआ था। आज भी मथुरा में वह स्थान सुरक्षित है जहाँ श्रीकृष्ण ने इस वराधाम पर अवतार लिया था। यह स्थान आजकल 'केशव-कटरा' के नाम से प्रसिद्ध है जहाँ दानवीर विड़ला बन्धुओं ने भगवान् का एक आधुनिकतम सुन्दर मंदिर बनवा दिया है।

कृष्ण जन्माष्टमी के दिन प्रातःकाल किसी पवित्र नदी में स्नान करना चाहिए। आज व्रती को दिनभर उपवास करना चाहिए। जो लोग उपवास रखने में समर्थ न हों वे फलाहार भी कर सकते हैं। यह त्यौहार गाँवों तथा नगरों में समान रूप से बड़े धूमधाम के साथ मनाया जाता है। लोग फूल-पत्तियों से श्रीकृष्ण के मंदिर को खूब सजाते हैं तथा उनकी सुन्दर झाँकी तैयार करते हैं। जिस मंदिर में भगवान् की जितनी ही सुन्दर झाँकी तैयार की जाती है वहाँ दर्शनार्थियों की उतनी अधिक भीड़ लगती है। रात्रि में भगवान् के मंदिर में एक खीरा रख दिया जाता है। जब रात को बारह बज जाते हैं तब समझ लिया जाता है कि भगवान् का जन्म हो गया। इसके बाद घड़ी घंटा, डमरू और शंख आदि बजाकर भगवान् के जन्मोत्सव को मनाया जाता है। पश्चात् भक्तों में पंजीरी, पंचामृत, खीरा और सिंघाड़ा का हलुआ का प्रसाद वितरित किया जाता है। यों तो कृष्ण जन्माष्टमी सभी नगरों में मनाया जाता है मथुरा तथा वृन्दावन में जन्माष्टमी का उत्सव बड़े ठाट-बाट से सम्पन्न होता है। इस दिन मथुरा में द्वारिकाधीश के मंदिर में सवा लाख रूपयों की कीमत वाला स्वर्ण तथा रत्नों से जटित भगवान् का झूला निकाला जाता है जिस पर बाल गोपाल झूलते हुए दिखायी पड़ते हैं। यह त्यौहार इस नगर में भगवान् की बरही तक मनाया जाता है। यहाँ प्रतिदिन भक्तों को प्रसाद वितरित होता है। रामनवमी की अपेक्षा कृष्ण जन्माष्टमी का त्यौहार अधिक लोकप्रिय है।

भगवान् कृष्ण का चरित्र अद्भुत और अलौकिक है। इनके चरित्र में इतनी लोकोत्तर तथा असाधारण बातें पायी जाती हैं कि प्राचीन शास्त्र इन्हें अवतार न मानकर साक्षात् भगवान् ही मानते हैं—कृष्णास्तु भगवान् स्वयम् इनके चरित्र में अलौकिकता के कारण इनके लीला के रहस्य को समझना बड़ा कठिन है। कृष्ण ने पाण्डव की सहायता कर अन्याय पर न्याय के विजय की स्थापना की। इसी प्रकार कंस का नाश कर इन्होंने अधर्म पर धर्म की विजय दिखायी। अन्याय, अधर्म से सदा संघर्ष करना ही कृष्ण जयन्ती का उपदेश है।

## गणेश चतुर्थी

भाद्रपद मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के दिन यह व्रत किया जाता है गाँवों में यह 'गणेश चतुर्थी' के नाम से प्रसिद्ध है जो 'गणेश चतुर्दशी' का ही अपभ्रंश रूप है। गणेश जी सभी देवताओं में श्रेष्ठ तथा लोक-प्रिय देवता हैं। अतः किसी भी मांगलिक कार्य में ये सदा विराजमान रहते हैं। चाहे पुत्र जन्म हो या मुण्डन, यज्ञोपवीत हो अथवा गणेश जी की पूजा विघ्न की शान्ति के लिए सदा की जाती है। इसीलिए ये 'विघ्ननाशक विनायक' के नाम से प्रसिद्ध हैं। गणेश जी व्यापारियों की बही और प्रधान द्वार के ऊपरी भाग में सदा विराजते रहते हैं। 'श्री गणेशाय नमः' लिखकर ही पत्र अथवा पुस्तक के लिखने का कार्य प्रारम्भ किया जाता है।

गणेश चतुर्थी के दिन प्रातःकाल स्नान आदि से निवृत्त होकर गणेश की प्रतिमा की पूजा करनी चाहिए। किसी गणेश मंदिर के अभाव में उनकी मिट्टी अथवा गोबर की प्रतिमा बनाकर ही पूजन किया जा सकता है। गोबर की प्रतिमा



बनाने, के कारण ही 'गोबर गणेश' शब्द का निरुक्ति मानी जाती है। नये कलश में जलभर कर उसके ऊपर नवीन वस्त्र रखा जाता है। पुनः गणेश की प्रतिमा की स्थापना करके उसकी षोडशोपचार पूजा करनी चाहिए। इसके बाद धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल आदि उन्हें समर्पित करना चाहिए। गणेश जी की पूजा में २१ लड्डू चढ़ाना आवश्यक है। रात्रि में चन्द्रोदय होने पर चन्द्रमा की यथाविधि पूजा करके उन्हें अर्घ देना चाहिए। बाद में ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर गणेश जी का विसर्जन किया जाता है।

गणेश का दूसरा नाम गणपति भी है। अतः ये समस्त गणों के अधिपति अर्थात् स्वामी माने जाते हैं। ये सभी देवताओं के अग्रणी देवता हैं। अतः इनका महत्त्व सर्वाधिक है। वाराणसी नगर में गणेश चतुर्थी के दिन लोहटिया मुहल्ले में स्थित बड़े गणेश के मंदिर में भगवान् गणेश का दर्शन के लिए बड़ी भीड़ होती है। लोकमान्य तिलक ने महाराष्ट्र में गणेश चतुर्थी को 'गणपति महोत्सव' के रूप में इसे राष्ट्रीय उत्सव का रूप प्रदान किया है। इसीदिन महाराष्ट्र में बड़ा ही उत्सव मनाया जाता है। गणेश की प्रतिमा को लेकर बड़े बड़े जलूस निकाले जाते हैं। विद्वानों के भाषण होते हैं जिनमें गणेश की पूजा के महत्त्व का प्रतिपादन किया जाता है।

गणेश जी बुद्धि के देवता हैं। वह विवेचनात्मक बुद्धि के। आज हमारा समाज अन्धविश्वास, दूषित परम्पराओं और गृहित प्रथाओं से बुरी तरह से जकड़ा हुआ है। ऐसी परिस्थिति में गणेश की पूजा नितान्त आवश्यक है जिससे हमें सद्बुद्धि मिले और हम इन बुराइयों का नाश कर सकें।

### ऋषि-पंचमी

भाद्र मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी को ऋषि पंचमी, कहा जाता है। इस दिन पूरे दिन भर व्रत रखा जाता है और हल के जोतने से उत्पन्न अन्न को नहीं खाया जाता। इस तिथि को व्रती स्त्री अथवा पुरुष को चाहिये कि वह प्रातःकाल अपा-मार्ग—जो लोक में चिचिरी के नाम से प्रसिद्ध है—के पौधे की १०८ दत्तौन से बारी बारी से मुँह धोवे तथा सारे शरीर में मिट्टी लगाकर स्नान करे। इसके बाद पंचगव्य का पान करे बाद में घर आकर कलश की स्थापना कर, उसमें पंचरत्न फूल और अक्षत डालकर, उसी स्थान पर सप्त ऋषियों की षोडशोपचार पूजा करे तथा ब्राह्मणों को दान करे। इस दिन 'तिन्ना का चावल' खाने का विशेष माहात्म्य है क्योंकि यह हल से जोत उत्पन्न किया गया चावल नहीं है बल्कि तालाव आदि में आपसे आप उत्पन्न होता है। गाँवों में इसे साठी का चावल भी कहा जाता है। आज के दिन नमक खाना निषिद्ध है अतः व्रती साठी के भात को दही मिलाकर खाते हैं। एक मुक्त रहने के नियम के कारण रात्रि को भोजन नहीं किया जाता।

यह व्रत शरीर के द्वारा किये गये स्पर्शास्पर्श तथा अन्य पापों के प्रायश्चित्त के रूप में किया जाता है। शरीर की शुद्धता और पवित्रता को बनाये रखना ही इस व्रत का प्रधान उद्देश्य है। प्राचीन काल में जंगलों में रहने वाले ऋषि इस व्रत को करते थे अतः ऋषिपंचमी नाम पड़ गया।

### अनन्त चतुर्दशी

भाद्रपद (भादों) मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को 'अनन्त चतुर्दशी' कहा जाता है। इस दिन अनन्त भगवान् की पूजा होती है इसीलिए यह चतुर्दशी उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन प्रातःकाल किसी नदी में स्नान करना चाहिए। फिर पूजा-पाठ करके अनन्त भगवान् का ध्यान करना चाहिए। पश्चात् किसी पवित्र स्थान पर गोबर से चौका लगाकर कलश की स्थापना कर नये वस्त्रों से उसे ढँक देना चाहिए। कलश के पास एक वेदी की स्थापना कर उसमें वरुण देवता का आवाहन करे। पश्चात् आसन, पाद्य, अर्घ, पंचामृत धूप, दीप और पुष्प से भगवान् अनन्त की पूजा करे। विष्णु १०८ नामों का पाठ करके बुरे धर्मों के लिए क्षमा की प्रार्थना करे।

आजकल अनन्त चतुर्दशी के दिन दोपहर तक उपवास किया जाता है। ब्राह्मण लोग स्थान स्थान पर आज के दिन अनन्त भगवान् की कथा कहते हैं जिसे सुनने के लिए सभी लोग जाते हैं। नयी ब्याही बधू—जो पर्दा प्रथा के कारण कथासुनने के लिए नहीं जा सकती—अपना कोई गहना अथवा वस्त्र अपने प्रतिनिधि के रूप में वहाँ भेज देती है। ऐसा स्त्रियों का विश्वास है कि ऐसा करने से उन्हें कथा-श्रवण का पूरा फल मिलेगा। पण्डित जी अनन्त भगवान् की कथा सुनाते हैं। कथा की समाप्ति पर सभी लोग थाली में पानी रखकर अपने हाथों से उसमें किसी वस्तु के टटोलने का अभिनय करते हैं। पण्डित जी स्त्रियों से पूछते हैं—का ढूँढ़त बाडू? (क्या खोज रही हो)। स्त्रियाँ उत्तर देती हैं—अनत फल अर्थात् अनन्त भगवान् का कथा श्रवण का फल। पुनः पंडित जी पूछते हैं—पवलू? (तुमने उसे पा लिया)। स्त्रियाँ उत्तर देती हैं—हाँ पवलीं (हाँ प्राप्त कर लिया)। इन अभिनय के पश्चात् श्रोताओं में प्रसाद का वितरण किया जाता है। व्रती लोग अब एक नये सूत्र को—जिसे 'अनन्त'



कहा जाता है—अपने हाथ के मध्यभाग में बाँधते हैं। इस सूत्र में चौदह गांठें पड़ी रहती हैं जो चौदह वर्षों तक लगातार कथा सुनने का प्रतीक है। दोपहर के पश्चात् लोग पुआ, पूड़ी कचौड़ी तथा मिष्ठान्न का भोजन करते हैं।

इस दिन पक्वान्न तथा मिष्ठान्न खाने का विधान है। इसीलिए गाँवों में यह कहावत प्रचलित है कि मनुष्यों का पेट या तो होली त्यौहार के दिन भरता है अथवा अनन्त व्रत के दिन।

“की पेट भरे होलिया माई।  
की पेट भरे अनन्ता माई॥”

इस प्रकार अनन्त चतुर्दशी के दिन पक्वान्न तथा मिष्ठान्न भोजन के लिए मिलने के कारण यह व्रत बड़े उल्लास तथा प्रसन्नता से मनाया जाता है।

### जीवित पुत्रिका व्रत

भोजपुरी प्रदेश में यह व्रत ‘जिउतिया’ के नाम से प्रसिद्ध है। यह व्रत पुत्र की प्राप्ति तथा उसके जीवन की रक्षा तथा आयुष्य के लिए किया जाता है। आश्विन मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को इसका विधान बतलाया गया है। इस व्रत को प्रायः वे ही स्त्रियाँ करती हैं जिन्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति हो चुकी है। इस दिन स्त्रियाँ प्रातःकाल गंगा अथवा किसी अन्य नदी में स्नान करती हैं तथा दिन भर निराहार तथा निर्जल व्रत करती हैं। बिना जल पीये दिन भर व्रत करना बड़ा कठिन कार्य माना जाता है। इस प्रकार व्रत रखने के प्रकार को ‘खर जिउतिया’ कहा जाता है।

सन्ध्या के समय स्त्रियाँ सूत की बनी हुई ‘जिउतिया’ पहिन कर कथा सुनती हैं। धनी घर की महिलायें सोने की ‘जिउतिया’ गले में धारण करती हैं। हसुली के रूप में चाँदी की ‘जिउतिया’ भी पहिनने की प्रथा है। इस व्रत को करने से पुत्र दीर्घायु होता है और वह आकस्मिक विपत्ति अथवा खतरे से बच जाता है। यदि किसी स्त्री का पुत्र भयंकर आपत्ति अथवा किसी दुर्घटना से बच जाता है तब उसके विषय में कहा जाता है कि उसकी माँ ने ‘खर जिउतिया’ का व्रत किया था। इस दिन चील और सियारिन की कथा कही जाती है।

### मातृ नवमी

यह व्रत आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की नवमी को किया जाता है। साधारणतया पितृपक्ष में जिस तिथि को जिस व्यक्ति की माता की मृत्यु हुई रहती है उसी दिन माता का श्राद्ध किया जाता है। परन्तु मातृनवमी वह सामान्य तिथि जिस दिन माता का श्राद्ध सर्वसाधारण लोग किया करते हैं। यह मातृ शक्ति की आराधना का व्रत है। और परलोक धाम में विराजमान अपनी माता को स्मरण करने का पावन पर्व है।

इस दिन प्रातःकाल नदी या जलाशय में स्नान करके अपनी माता का श्राद्ध करना चाहिए। मध्याह्न में ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें भर पेट भोजन कराना चाहिए। उन्हें ताम्बूल और दक्षिणा भी देनी चाहिए। ब्रह्मभोज के पश्चात् व्रती को पारण करना चाहिए।

### महालया

आश्विन (कुआर) मास का कृष्णपक्ष पितृपक्ष के नाम से प्रसिद्ध है। इसका कारण यह है कि इस पक्ष में मृत पितरों का तर्पण किया जाता है और उन्हें पिण्डदान प्रदान किया जाता है। पितृहीन पुरुष ही इसे करते हैं। तर्पण करने वाला व्यक्ति प्रतिदिन प्रातःकाल किसी नदी में स्नान करके अपने हाथ तिल, में अक्षत, कुशा लेकर मंत्रों के द्वारा अपने पितरों को जलांजलि प्रदान करता है। जो लोग स्वयं मंत्र पढ़ने में असमर्थ हैं उन्हें पुरोहित या पण्डा मंत्रोच्चारण करके तर्पण कराता है। पितृपक्ष में वाराणसी नगरी में प्रातःकाल तर्पण करने वाले लोगों का समुदाय देखा जा सकता है। पितरों को जलांजलि देने का यह क्रम आश्विन कृष्ण प्रतिपदा से अमावस्या तक पूरे पन्द्रह दिनों तक चलता रहता है। अमावस्या के दिन—जिसे महालया कहा जाता है—प्रातःकाल तर्पण करने के पश्चात् अपना मुण्डन कराता है। दोपहर में वह पितरों को पिण्डदान देकर अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण भोजन कराता है। जो लोग ब्राह्मण भोजन कराने में असमर्थ हैं वे ‘सीधा’ दे देते हैं।

महालया पितरों को स्मरण कराने वाला व्रत है—यह प्रत्येक पुरुष को उसके पिता का स्मरण दिलाता है। उनकी स्मृति को बनाये रखने के लिए यह हमें सतत प्रेरणा प्रदान करता है।



### करवा चौथ

इस व्रत को 'करक चतुर्थी' भी कहा जाता है। यह व्रत कार्तिक कृष्ण चतुर्थी को सम्पन्न होता है। इस व्रत को करने का अधिकार केवल स्त्रियों को है। व्रती स्त्री को चाहिए कि वह किसी नदी अथवा तालाब में स्नान करके इस व्रत का संकल्प करे। इस व्रत में चन्द्रमा की प्रतिमा बनाकर उनकी षोडशोपचार पूजा का विधान है। पूजन के पश्चात् ताँबे अथवा मिट्टी के पात्र में पुओं (अपूप) को रखकर ब्राह्मणों को दान करें। चन्द्रमा के उदय के पश्चात् उन्हें अर्घ्य देकर कथा सुने। इसके पश्चात् व्रती स्त्री को पारण करना चाहिए।

### पिंडिया का व्रत

अन्य व्रत एक या दो दिन में समाप्त हो जाते हैं परन्तु पिंडिया के ही व्रत की यह विशेषता है कि यह पूरे एक मास तक चलता रहता है। कार्तिक मास के शुक्ल प्रतिपदा से यह व्रत प्रारम्भ होता है और अगहन शुक्ल प्रतिपदा को समाप्त होता है। इस प्रकार यह पूर्ण एक मास तक रहता है। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन गोधन की जो गोबर की मूर्ति बनाकर उनकी पूजा की जाती है उसी गोबर में से थोड़ा सा अंश लेकर कुंवारी लड़कियाँ पिंडिया लगाती हैं। गोबर के छोटे छोटे पिण्ड को ही पिंडिया कहा जाता है।

घर की भीतरी दीवाल पर गोबर की छोटी-छोटी सैकड़ों पिंडिया मनुष्य की आकृति की बनायी जाती हैं। इसके साथ ही उनकी दीवालों पर आटे के द्वारा चित्र कर्म भी किया जाता है। इन छोटी-छोटी पिंडियों को दीवाल पर चिपका दिया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया को 'पिंडिया लगाना' कहते हैं। पिंडिया शब्द पिंड का ही अपभ्रंश रूप है जिसमें लघु अर्थ में 'इया' प्रत्यय लगाकर 'पिंडिया' की निष्पत्ति की गयी है। दीवालों पर गोबर की जो आकृति, बनायी जाती है वह पिण्ड के समान गोली-गोली होती है। इसी कारण इस व्रत का नाम कदाचित् 'पिंडिया' पड़ गया है।

यह व्रत बहिनों के द्वारा अपने भाई की मंगल कामना के लिए किया जाता है। इसे केवल कुंवारी कन्यायें ही सम्पादित करती हैं। वे प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर, स्नानादि करके घर की किसी बूढ़ी स्त्री से पिंडिया की कथा सुनती हैं। वे बिना कथा सुनें अन्न ग्रहण नहीं कर सकतीं। यदि किसी दिन किसी लड़की ने गलती से भोजन कर लिया तो दूसरे दिन उसे इसका प्रायश्चित्त करना पड़ता है। रात्रि को भी वे पिंडिया की कथा सुन करके ही भोजन करती हैं। यही क्रम पूरे एक मास तक चलता रहता है। अगहन शुक्ल प्रतिपदा को पिंडिया की समाप्ति होती है। इस दिन लड़कियाँ नये चावल और नये गुड़ से बनी हुई खीर खाती हैं जिसे गाँवों में 'रसियाव' कहा जाता है। इस समय वे अपने कानों में रुई ठूस लेती हैं जिससे भोजन करते समय कोई शब्द सुनायी न पड़े। भोजन के समय यदि कोई शब्द सुनायी पड़ गया तो वे भोजन करना छोड़ देती हैं। दूसरे दिन दीवाल पर चिपकायी गयी उन पिंडियों को वे नष्ट कर देती हैं और उन्हें किसी नदी में बहा देती हैं। इस प्रकार यह मासिक व्रत समाप्त हो जाता है।

पिंडिया का व्रत बहिनों के द्वारा अपने भाई के प्रति अटूट प्रेम का प्रतीक है। पिंडिया व्रत से सम्बन्धित अनेक लोक-गीत पाये जाते हैं जिनमें भाई के प्रति प्रेम तथा उसकी मंगल कामना का वर्णन उपलब्ध होता है। परन्तु दुःख है कि पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से इस व्रत का लोप होता जा रहा है।

### भ्रातृ द्वितीया

यह व्रत "भैयादूज" के नाम से लोक में प्रसिद्ध है। इस व्रत का प्रधान उद्देश्य भाई और बहिन में अटूट प्रेम सम्बन्ध की स्थापना है। आज के दिन भाई अपनी बहिन के घर जाता है, उसके यहाँ भोजन करता है। फलस्वरूप भाई अपनी बहिन को उपहार रूप फल, मिष्ठान्न तथा द्रव्य आदि प्रदान करता है। जिस प्रकार बहुला माता और पुत्र के प्रेम का द्योतक व्रत है उसी प्रकार 'भैयादूज' भाई और बहिन के स्वभाविक प्रेम का प्रकट करने वाला पर्व है।

इस दिन गोधन कूटा जाता है। स्त्रियाँ गोबर से किसी व्यक्ति की प्रतिमा बनाती हैं। उसकी छाती पर इंट रखी जाती है और उसी को स्त्रियाँ मूसल से कूटती हैं। इस दिन स्त्रियाँ गूम, भटकटैया (घमोई का कँटीला पौधा) और चना लेकर अपने घर के प्रत्येक पुरुष को 'सरापती' हैं अर्थात् घर के प्रत्येक पुरुष का नाम लेकर कहती हैं कि 'इसको खाँव इसको बचाँव'। घर ही नहीं बल्कि पास-पड़ोस के व्यक्तियों को भी वे इसी प्रकार खाती और चबाती हैं अर्थात् उनकी मृत्यु की कामना करती हैं। इसके पश्चात् अपनी जीभ को भटकटैया के काँटे से दागती हैं। इसके बाद वे इन सब वस्तुओं को लावा और मिठाई के साथ 'गोधन बावा' के स्थान पर भेजती हैं। वहाँ गोधन कूटने के स्थान पर अनेक घरों की स्त्रियाँ एकत्रित हो जाती हैं और कहती हैं कि जिन व्यक्तियों को हमने खाया और चबाया है वे सभी जीवित हो जायें और उन्हें "हनुमान्ते (हनुमान्) वा बल"



प्राप्त हो जाय। गोधन कूटने के कर्म के पश्चात् स्त्रियाँ वहाँ से चरणामृत लेकर पीती हैं तथा अपने घर चली आती हैं। यह सब पूजन कार्य मध्याह्न के पूर्व समाप्त कर लिया जाता है।

दोपहर के बाद बहिन अपने भाई को मिठाइयाँ खिलाती हैं। सर्व प्रथम वह भाई को चना चवाने के लिए देती हैं, फिर मिष्ठान और इसके बाद पक्वान्न खिलाती हैं। भाई मिष्ठान तथा पक्वान्न को खाकर अपने प्रेम के प्रतीक के रूप में उसे यथाशक्ति रुपया-पैसा देता है।

ऐसी प्रसिद्धि है कि इसी दिन सूर्यपुत्री यमुना अपने भाई यमराज से मिलने के लिए गयी थी। यमराज ने यमुना से कहा कि बहिन ! मैं आज तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। अतः जो तुम्हारी इच्छा हो वह वर माँगो। यमुना ने कहा भैया ! यदि तुम सचमुच मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो मुझे यही वरदान दो कि आज के दिन जो भी व्यक्ति मेरे जल में स्नान करेगा वह यमलोक में न जाय। यमराज ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। उसी दिन से कार्तिक शुक्ल द्वितीया को जो भी व्यक्ति यमुना में स्नान करता है वह स्वर्गलोक को जाता है यह विश्वास दृढ़ हो गया। इसी कारण भैया दूज के दिन मथुरा में विश्रामघाट में लाखों की संख्या में स्नानार्थियों की भीड़ एकत्रित होती है। लोगों का यह विश्वास है कि आज के दिन भाई और बहिन यदि साथ ही यमुना में स्नान करें तो वे सीधे स्वर्ग जाते हैं। इसीलिए इस दिन भाई-बहिन दोनों का साथ ही यमुना में स्नान का विशेष महत्त्व है। भाई और बहिन के स्वाभाविक तथा अलौकिक प्रेम का द्योतक यह व्रत अद्वितीय तथा अप्रतिम है।

### सूर्य षष्ठी व्रत

यह व्रत कार्तिक शुक्ल षष्ठी को किया जाता है। गाँवों में इसे 'छठी माता का व्रत' कहा जाता है। यह 'डाला छट' के नाम से भी प्रसिद्ध है। चूँकि पूजा की समस्त सामग्री इस दिन डाल में रखी जाती है। इसीलिए इसका उपर्युक्त नामकरण हो गया है। यह व्रत पुत्र की प्राप्ति के लिए तथा उसके दीर्घ आयुष्य की कामना के लिए सम्पादित होता है। इस व्रत का विधान बड़ा ही कठिन है। क्योंकि इसमें प्रायः तीन दिनों तक उपवास रखना पड़ता है।

इस व्रत को करनेवाली स्त्रियाँ पंचमी के दिन केवल एक बार बिना नमक का भोजन करती हैं। दूसरे दिन षष्ठी को स्त्रियाँ बिना जल ग्रहण किये दिन भर उपवास करती हैं। इस दिन सन्ध्या के समय सूर्य को अर्घ्य दिया जाता है। सूर्य की पूजा के निमित्त विविध प्रकार के फल, नारियल, केला, सरीफा आदि को डाल में सजाया जाता है। इस दिन एक विशेष प्रकार का पक्वान्न पकाया जाता है जिसे गाँवों में 'अघरवटा' कहते हैं। काठ के बने साँचे पर—जिस पर सूर्य के चक्र की आकृति बनी रहती है—आटे को चिपका कर इस पक्वान्न को बनाया जाता है। फल तथा इसी पक्वान्न को सूर्य को चढ़ाया जाता है।

दूसरे दिन सप्तमी को प्रातःकाल स्त्रियाँ किसी नदी अथवा तालाब के किनारे जाती हैं तथा नदी में स्नान करके सूर्य को अर्घ्य देने के लिए जल में खड़ी रहकर भगवान् सविता के उदय की प्रतीक्षा करती हैं। इस समय वे एक लोक-गीत गाती हैं जिसमें शीघ्र उदय लेने के लिए सूर्य से प्रार्थना की जाती है। ठण्डे जल में खड़े रहकर सूर्य की प्रतीक्षा करने का समय बड़ा ही कठिन होता है सूर्य के उदय होते ही वे दूध से उन्हें अर्घ्य प्रदान करती हैं। इस पूजा के पश्चात् ही यह व्रत समाप्त होता है।

इस व्रत को प्रधानतया पुत्र-प्राप्ति की अभिलाषिणी स्त्रियाँ ही करती हैं। मिथिला में इस व्रत को बड़े उत्साह से मनाया जाता है। छठी माता—जो 'सूर्य षष्ठी व्रत' कहा जाता है—की स्तुति में अनेक लोक-गीत प्रसिद्ध हैं जो इस अवसर पर गाये जाते हैं। वास्तव में यह व्रत सूर्य की पूजा से सम्बन्धित है परन्तु षष्ठी तिथि के दिन किये जाने के कारण इसे 'छठी माता का व्रत' कहा जाता है।

### अक्षय नवमी

कार्तिक शुक्ल नवमी को 'अक्षय-नवमी' कहा जाता है। इस दिन जो दान दिया जाता है उसका अक्षय फल होता है। इसीलिए इसे अक्षयनवमी कहते हैं। इसे धात्री-नवमी अथवा कुष्माण्ड नवमी के नाम से भी पुकारते हैं। आज के दिन कुष्माण्ड अर्थात् भतुआ (पेठा) दान करने का बड़ा माहात्म्य माना जाता है। आज के दिन किया गया पूजा-पाठ तथा दान-पुण्य का कभी क्षय नहीं होता। गाय, भूमि, सोना वस्त्र और आभूषण इस दिन दान किया जाता है।

इस व्रत को धातृनवमी भी कहते हैं। अतः धातृवृक्ष अर्थात् आँवला वृक्ष के नीचे पूर्व की ओर बैठकर 'ओऽम् धातृयैनमः' इस मंत्र से आवाहन करके पुष्प, गन्धादि से पूजा करके इस वृक्ष के मूल में दूध की घारा देनी चाहिए। आज के दिन आँवले के वृक्ष के नीचे ब्राह्मणों को भोजन कराना तथा कुष्माण्ड का दान करना बड़ा पुण्यदायक माना जाता है। शहर में जहाँ



आँवले का वृक्ष नहीं होता वहाँ दूर के किसी बगीचे में जाकर आँवले के नीचे लोग स्वयं भोजन करते और ब्राह्मणों को कराते हैं। कुष्माण्ड के भीतर गुप्त रूप से सोना या चाँदी रखकर दान देना विशेष फलदायक है।

### प्रबोधिनी एकादशी

कार्तिक शुक्ला एकादशी को प्रबोधिनी एकादशी कहा जाता है। लोगों का यह विश्वास है कि भगवान् विष्णु आषाढ़ शुक्ला एकादशी को क्षीरसागर में शयन करते हैं और ठीक चार मास के बाद कार्तिक शुक्ला एकादशी को जागते हैं। अतः पहिली एकादशी को 'हरिशयनी' और कार्तिक की एकादशी को 'हरिप्रबोधिनी' के नाम से पुकारा जाता है। जिन चार महीनों में विष्णु क्षीरसागर में शयन करते हैं उनमें कोई मांगलिक कार्य—विवाह आदि नहीं किया जा सकता। अतः भगवान् की दीर्घ निद्रा त्याग करने की इस तिथि को त्यौहार के रूप में मनाया जाना स्वाभाविक ही है। ग्रामीण क्षेत्र में इस त्यौहार 'देव-ठन' के नाम से प्रसिद्ध है जो 'देवोत्थान' का अपभ्रंश रूप है।

इस पवित्र दिन को सभी लोगों को उपवास करना चाहिए। परन्तु जो लोग किसी कारण से उपवास नहीं कर सकते वे फलाहार कर सकते हैं। फलाहार के लिए आज के दिन कन्द और सुथनी (एक प्रकार का फल जो कन्द के समान जमीन के अन्दर पैदा होता है) की प्रधानता मानी जाती है। रात्रि के समय सोते हुए विष्णु को जगाने के लिए स्तोत्र पाठ, भगवत कथा, विविध वाद्यों को बजाकर विष्णु को जगाना चाहिए। इस प्रकार व्रत और कीर्तन के द्वारा इसे मनाया जाता है।

हरिप्रबोधिनी का त्यौहार वास्तव में हमारी जागृति का दिन है। यह अनेक शताब्दियों से चली आ रही हमारी अलसता, निरुद्यमता तथा निरक्षरतारूपी मोहनिद्रा को तोड़कर जागृति का पुण्य पर्व है। अतः इस त्यौहार को पूर्णरूप से मनाने के लिए हमें अपनी कुम्भकर्णी निद्रा को छोड़ना पड़ेगा, कर्मयोग का पाठ पढ़ना पड़ेगा और आलस्य को भगाना पड़ेगा। तभी हम इसके मनाने के सच्चे अधिकारी हो सकेंगे।

प्रबोधिनी एकादशी के ही दिन एक दूसरे व्रत का प्रारम्भ होता है जिसे 'भीष्म पंचक' कहा जाता है। यह व्रत एकादशी से प्रारम्भ होकर कार्तिक पूर्णिमा तक अर्थात् पूरे पाँच दिन तक चलता है। इन दिनों में व्रती उपवास रहकर विष्णु भगवान का पूजन करता है। इस दिन विष्णु स्तोत्र के पाठ का विशेष विधान है। महाभारत में जब भीष्म पितामह शरशय्या पर पड़े हुए थे तब पाँचों पाण्डव उनके पास उपदेश लेने के लिए आये। पाँच दिनों तक भीष्म ने उन्हें राजधर्म का उपदेश दिया। तभी से ये पाँच दिन 'भीष्म पंचक' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। काशी में इन दिनों भीम (भीष्म के स्थान पर) की विशालकाय मिट्टी की मूर्ति बनायी जाती है जिसकी पूजा स्त्रियाँ करती हैं।

### कार्तिकी पूर्णिमा

इस पूर्णिमा को गंगास्नान की पूर्णिमा कहें तो अत्युक्ति न होगी। इस दिन गंगा में स्नान तथा दीप-दान का बड़ा माहात्म्य है। आज के दिन गंगा जी के किनारे असंख्य नर-नारी स्नान करने के लिए आकर और पतितपावनी गंगा में डुबकी लगाकर अपने को कृतकृत्य मानते हैं। हरिद्वार, गढ़मुक्तेश्वर, राजघाट, अनूपशहर कानपुर-प्रयाग, काशी, बलिया, बक्सर और पटना में गंगा स्नान का जो मेला लगता है उसका वर्णन करना कठिन है विशेषकर गढ़मुक्तेश्वर (जिला मेरठ) राजघाट (जिला मुरादाबाद) भृगु आश्रम (जिला बलिया) तथा हरिहर क्षेत्र (जिला सारन, बिहार) में आज के दिन बड़ा भारी मेला लगता है और लाखों आदमी एकत्रित होते हैं। इन सब यात्रियों का एक मात्र ध्येय होता है गंगा में स्नान। गढ़मुक्तेश्वर का मेला पन्द्रह दिनों तक रहता है जहाँ गंगा के किनारे लाखों नर-नारी झोपड़ियों में रहते और प्रातःकाल गंगा स्नान करते हैं।

बलिया में आज के दिन ददरी का मेला लगता है। लोग आज गंगा में स्नान कर भृगु मुनि का दर्शन करते हैं। इसी प्रकार सोनपुर में हरिहर क्षेत्र का मेला जुड़ता है जो संसार में अद्वितीय है। यहाँ स्नान कर हरिहर महादेव का दर्शन का माहात्म्य है। इस मेले को देखकर गंगा की महिमा तथा उसकी लोकप्रियता का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

### मकर संक्रान्ति

संक्रान्ति अर्थ संक्रमण होता है अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना। जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश (संक्रमण) करता है तब उसे मकर संक्रान्ति कहा जाता है। पौष मास के चान्द्रमास में जो संक्रमण होता है वह इसी नाम से प्रसिद्ध है।

मकर संक्रान्ति के पहले दिन एक ही समय भोजन करना चाहिए तथा दूसरे दिन तिलों से तैलाभ्यंग करके स्नान करना



चाहिए। इस तिथि को तिल का बड़ा माहात्म्य है। अतः इस दिन तिल को ही खाना चाहिए। तिल का उबटन लगाकर तिल ही से स्नान करना उचित है।

उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में मकर संक्रांति को खिचड़ी संक्रान्ति कहते हैं। इसका कारण यह है कि इस दिन लोग गंगा में स्नान करके उड़द के दाल की खिचड़ी खाते हैं। ब्राह्मणों को खिचड़ी ही दान में दी जाती है। इस दिन तिल का लड्डू और धान का तिलवा खाने का विशेष माहात्म्य है। इस तिथि को गंगा तथा अन्य नदियों में स्नान करने के लिए लाखों आदमियों की भीड़ एकत्रित होती है। प्रयाग, काशी तथा बक्सर में इस दिन बड़ा मेला जुड़ता है। यह गंगा स्नान तथा खिचड़ी खाने का त्यौहार है।

### मौनी अमावस्या

माघ मास की अमावस्या मौनी अमावस्या के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन मौन धारण करके गंगा में स्नान करने का विधान है। अतः भक्तगण गंगा में स्नान करने के पूर्व एक भी शब्द नहीं बोलते हैं। यदि यह तिथि सोमवार के दिन पड़ जाय तो उसका माहात्म्य शताधिक बढ़ जाता है। माघ के महीने में प्रयागराज में त्रिवेणी में स्नान करना अक्षय पुण्य का दायक होता है। अतः अनेक भक्त नर-नारी यहाँ माघ में पूरे मास तक संगम के किनारे कुटिया बनाकर उसमें वास करते हैं। जिसे 'कपिलवास' कहा जाता है। संभवतः यह 'कल्पवास' का अपभ्रंश रूप है।

माघ में कुछ लोग पूरे महीने भर व्रत करते हैं, कुछ केवल फलाहार करते हैं और कुछ केवल एक-भुक्त रहते हैं। कल्पवासियों के लिए जमीन के ऊपर चटाई पर सोना, तेल न लगाना, किसी प्रकार का श्रृंगार न करना तथा ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना अत्यन्त आवश्यक है। माघ मास में गंगास्नान का सबसे बड़ा पर्व मौनी अमावस्या है। इस दिन प्रयाग में संगम पर लाखों की संख्या में स्नानार्थी एकत्रित होते हैं। इस अवसर पर गंगा स्नान करना मोक्षदायक होता है। प्रयाग के अतिरिक्त अन्य तीर्थ-स्थानों पर भी आज के दिन भक्तगण स्नान के लिए जाकर अपनी काया को पवित्र तथा आत्मा को मुक्त बनाते हैं।

### वसन्त पंचमी

वसन्त पंचमी का त्यौहार माघ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी को मनाया जाता है। इस त्यौहार की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह होली की ही भाँति सामाजिक त्यौहार है। यह वसन्त ऋतु के शुभ आगमन के उपलक्ष में मनाया जाता है।

वसन्त पंचमी का दूसरा नाम 'श्री पंचमी' भी है। इस दिन विद्या की अधिष्ठाता देवी सरस्वती की पूजा का विशेष विधान है। इस दिन प्रातःकाल में स्नान करके सन्ध्या, तर्पण आदि नित्यकर्मों से निवृत्त होकर भवितपूर्वक कलश की स्थापना करके धूप, दीप, नैवेद्य से सरस्वती की पूजा करनी चाहिए।

आजकल विद्या के आलय स्कूल और कालेज में भी सरस्वती की पूजा की जाती है जो उचित ही है। आज के दिन लोग अपने सिर गुलाल लगाते और पीला वस्त्र धारण करते हैं जो वसन्त के आगमन का प्रतीक माना जाता है। इस प्रदेश के पूर्वी जिलों में आज से ही 'ताल ठोका' जाता है अर्थात् होली गाना प्रारम्भ होता है। यह क्रम आज से फाल्गुन पूर्णिमा तक अक्षुण्ण रीति से चलता रहता है। किसान लोग अपने खेत से गेहूँ और जौ की बालि लाते हैं और उसमें घी तथा गुड़ मिलाकर अग्नि में हवन करते हैं। आज से वे लोग नवान्न का खाना प्रारम्भ कर देते हैं। यही वसन्त पंचमी का लौकिक रूप है।

### महाशिवरात्रि

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को महाशिवरात्रि का व्रत मनाया जाता है। यों तो प्रत्येक मास में शिवरात्रि का व्रत होता है परन्तु फाल्गुन की शिवरात्रि ही महाशिवरात्रि कही जाती है। यह शिव का सबसे बड़ा व्रत है। इस दिन अश्विनाश लोग दिनभर उपवास करते हैं और रात्रि में शिव का दर्शन कर अपने को धन्य मानते हैं। कुछ लोग रात्रिभर जागरण करते और शिव की आराधना में समय बिताते हैं।

त्रयोदशी के दिन एक समय भोजन करके, चतुर्दशी को निराहार व्रत का विधान करें। वस्त्र तथा पुष्पों से मण्डप सजा करके उसमें पार्वती सहित महादेव की मूर्तियों की स्थापना करनी चाहिए। पुनः इनकी मूर्तियों को पुष्प, चन्दन आदि से पूजा करके विल्व पत्र अर्पित करे। इस दिन शिव की मूर्ति का पूजन और उसके दर्शन का विशेष माहात्म्य माना जाता है। आज के दिन काशी में विश्वनाथ जी के दर्शन के लिए दर्शनार्थियों की भयंकर भीड़ एकत्रित होती है जिसका नियंत्रण, पुलिस के सिपाही करते हैं। महाशिवरात्रि के दिन गंगा जल से शिव की प्रतिमा का अभिषेक कराना अत्यन्त पुण्यदायक माना जाता



है। अनेक भक्तगण हरिद्वार से गंगा का जल काँवर में सैकड़ों मील पैदल ले जाकर गोलामोर्कनाथ में स्थित शिव पर चढ़ाते हैं।

### राम-नवमी

चैत्र शुक्ला नवमी को राम नवमी कहा जाता है। क्योंकि इसी दिन मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र का इस धरा-धाम पर अवतार हुआ था। यह हमारे त्यौहार में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। रामनवमी के व्रत में मध्याह्न तिथि लेनी चाहिए अर्थात् जिस दिन दोपहर को रामनवमी पड़े उसी दिन व्रत का विधान करना चाहिए।

इस तिथि को दिनभर उपवास रखना चाहिए। व्रती प्रातःकाल में स्नान करके भगवान् रामचन्द्र का पूजन करे तथा उनके भजन-कीर्तन में दिन बिताना चाहिए। इस दिन रामचन्द्र जी के मंदिरों में बड़ा शृंगार होता है। मंदिरों में सजावट के साथ रोशनी का भी प्रबन्ध होता है। सन्ध्या समय भक्त जनता भगवान् राम का दर्शन कर अपने को कृतकृत्य मानती है। कहीं कहीं इस दिन विमान भी निकलते हैं। दक्षिण भारत में तिरुपति और रामेश्वरम् में यह महोत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जाता है।

उत्तर प्रदेश में अयोध्या, जो भगवान् रामचन्द्र का जन्मस्थली है, में रामनवमी के दिन बहुत बड़ा मेला लगता है। इस दिन भारतवर्ष के विभिन्न राज्यों से लोग आकर सरयू में स्नान कर राम के जन्मस्थान का दर्शन करते हैं जिसे जन्म-स्थली कहा जाता है। राम के भक्त हनुमान् का भी यहाँ मंदिर है जो 'हनुमान गढ़ी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस अवसर पर अयोध्या में मेला जुड़ता है उसका वर्णन करना कठिन है। जन-समुदाय के हृदय में भगवान् राम के प्रति प्रगाढ़ भक्ति और श्रद्धा है इसका पता इस मेले से लगता है। जो लोग किसी कारण से अयोध्या नहीं जा सकते वे किसी नदी में स्नान कर तथा राम का दर्शन कर अपने को कृतार्थ समझते हैं।

रामनवमी का त्यौहार हमारा राष्ट्रीय पर्व है। यह हमारी राष्ट्रीय चेतना को जागृत करनेवाला पुनीत दिवस है। सामाजिक विषमता में वर्तमान, तथा दूषित प्रथाओं से उत्पीड़ित हिन्दू जनता के लिए यह पर्व बल और सम्बल है। यह भारत के समृद्ध साम्राज्य को कन्दुक के समान टुकड़ा देनेवाले मर्यादा पुरुषोत्तम राम की पुण्यतिथि है। भातृप्रेम के अलौकिक आदर्श को स्थापित करनेवाले, मनुष्य के कर्तव्यों की मर्यादा की नींव डालनेवाले, आदर्शपुत्र, आदर्श पति और आदर्श राजा रामचन्द्र की यह जयन्ती है। इस त्यौहार से हमें यह उपदेश ग्रहण करना चाहिए कि हमें राम के समान ही पिता की आज्ञा के पालक, एक पत्नी व्रती, आदर्श भातृप्रेमी, प्रजापालक तथा मातृभूमि के सेवक बनें। रामनवमी का पर्व हमारे लिये तभी सार्थक हो सकता है जब हम इस धराधाम पर रामराज्य की अवतारणा कर सकें। यही राम नवमी का वास्तविक सन्देश है।

### वट-सावित्री व्रत

यह व्रत ज्येष्ठ मास की अमावस्या को किया जाता है। इस व्रत का उद्देश्य सौभाग्य की रक्षा और पुत्र की प्राप्ति है। सावित्री और सत्यवान् की कथा तो प्रसिद्ध ही है। सावित्री ने अपनी तपस्या और त्याग के बल से अपने पति सत्यवान् को यमराज के पाश से मुक्त किया था। इसी सावित्री की पुण्य स्मृति में यह व्रत किया जाता है।

आज के दिन स्त्रियाँ स्नान करके वट वृक्ष के समीप जाकर उसके मूल में जल चढ़ाती हैं। वहीं सावित्री और सत्यवान् की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उनकी पूजा करती हैं। पूजा में विशेषतया हल्दी, गन्ध, पुष्प, अक्षत, कुंकुम और सिन्दूर का प्रयोग किया जाता है। स्त्रियाँ वटवृक्ष के चारों ओर १०८ बार प्रदक्षिणा करती हैं और प्रत्येक बार उस वृक्ष के तने में सूत्र (रक्षा सूत्र) लपेटती जाती हैं। इस दिन वटवृक्ष की प्रदक्षिणा करते हुए स्त्रियों का झुण्ड अद्भुत दृश्य उपस्थित करता है। चूँकि इस दिन सती शिरोमणि सावित्री की स्मृति में वटवृक्ष की प्रदक्षिणा तथा पूजा की जाती है इसीलिए इसे 'वट-सावित्री व्रत' कहते हैं। यह सौभाग्यदायक पर्व माना जाता है अतः सौभाग्यवती स्त्रियाँ इसे निश्चित रूप से करती हैं।

### एकादशी व्रत

एकादशी का व्रत प्रत्येक मास के प्रत्येक पक्ष की एकादशी तिथि को किया जाता है। बहुत से लोग कृष्णपक्ष की एकादशी की अपेक्षा शुक्ल पक्ष की एकादशी को व्रत रखना उत्तम समझते हैं। यों तो प्रत्येक मास की एकादशी का महत्त्व एक समान है परन्तु आपाढ़ शुक्ल पक्ष की एकादशी—जिसे हरिशयिनी भी कहा जाता है—तथा कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी—जो 'देवोत्थानी एकादशी' के नाम से प्रसिद्ध है, विशेष महत्त्व रखती हैं। पद्मपुराण में प्रत्येक एकादशी की पूजा का विधान बड़े विस्तार के साथ वर्णित है।

एकादशी के दिन निराहार व्रत करने का अतिशय फल बतलाया गया है। परन्तु जो व्यक्ति किसी कारण से निराहार



नहीं रह सकते वे फलाहार भी कर सकते हैं। इस दिन प्रातः काल उठकर स्नान करके भगवान् विष्णु की षोडशोपचार पूजा करनी चाहिए। रात्रि को जागरण करके भगवान् का कीर्तन, स्तवन तथा भजन करके समय बिताना चाहिए। एकादशी तिथि विष्णु को अत्यन्त प्रिय है। अतः इस दिन इनका भजन-पूजन करना आवश्यक है। हरिशयिनी और देवोत्थानी एकादशी को विष्णु की पूजा का विशेष विधान पाया जाता है।

### प्रदोष व्रत

इस व्रत का विधान प्रत्येक मास के दोनों पक्षों की त्रयोदशी को किया जाता है। इसे स्त्री-पुरुष दोनों ही समानरूप से करते हैं। प्रदोष शब्द का अर्थ रात्रि का प्रारम्भ है। प्रदोषो रजनीमुखम्। चूँकि इसी काल में इस व्रत के पूजन का विधान है, अतः इसे प्रदोषव्रत कहते हैं। विशेषतया यह व्रत सन्तान की कामना के लिए किया जाता है।

इस व्रत के उपास्य देवता महादेव शंकर भगवान् हैं जिनकी प्रदोष काल में विधिवत् पूजा करनी चाहिए। व्रती को दिनभर उपवास करना चाहिए। वह सन्ध्या समय शंकर की पूजा करने के पश्चात् ही अन्न ग्रहण कर सकता है। प्रत्येक मास के दोनों पक्षों में पड़नेवाले प्रदोष की अपेक्षा कृष्णपक्ष का प्रदोष व्रत यदि शनिवार को पड़े तो यह शनि-प्रदोष विशेष फलदायक माना जाता है। इसी प्रकार यदि सोमवार को प्रदोष हो तो यह सोमप्रदोष अतिशय मंगल का दायक माना जाता है। श्रावण मास का प्रत्येक सोमवार प्रदोष के निमित्त बड़ा उपादेय होता है। वाराणसी में श्रावण मास के प्रत्येक सोमवार को यह व्रत विशेष समारोह के साथ मनाया जाता है। यह व्रत सुख, समृद्धि तथा मंगल का विधायक है।

### सत्यनारायण व्रत

यह व्रत सार्वकालिक है अर्थात् इसका विधान किसी भी मास में किसी भी तिथि को किया जा सकता है। परन्तु विशेषकर इस व्रत का विधान एकादशी और पूर्णिमा को ही होता है। इस व्रत में सत्य की नारायण या ईश्वर के रूप में पूजा की जाती है।

प्रारम्भ में गौरी-गणेश तथा नवग्रहों की पूजा की जाती है। इसके अनन्तर विष्णु भगवान् का विधिवत् अर्जन तथा पूजन होता है। प्रसाद के लिए फल, चीनी मिश्रित भूना हुआ आटा का चूर्ण, मिष्ठान तथा चरणामृत की व्यवस्था की जाती है। पूजा के बाद सत्यनारायण की कथा होती है। अन्त में भगवान् की आरती करके प्रसाद का वितरण किया जाता है।

भोजपुरी प्रदेश के गाँव-गाँव तथा घर-घर में सत्यनारायण बाबा की कथा कही और सुनी जाती है। सच तो यह है कि गाँवों में बाबा सत्यनारायण की कथा जितनी लोक-प्रिय तथा प्रसिद्ध है उतनी अन्य कथा नहीं है। इस कथा में सत्य की महिमा का वर्णन पाया जाता है। भगवान् स्वयं सत्यस्वरूप हैं। सत्य ही नारायण हैं इस बात का स्मरण कर हमें अपने कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिए। 'सत्यमेव जयते नानृतम्' यही इस कथा का तत्त्व या सार है।

### व्रतों की सूची

- (क) पुरुष
- (१) विजयादशमी
- (२) होली
- (३) दिवाली
- (४) अक्षय नवमी
- (५) प्रबोधिनी एकादशी
- (६) एकादशी व्रत
- (७) सत्यनारायण व्रत
- (८) प्रदोष व्रत
- (९) नाग पंचमी
- (१०) रथ यात्रा
- (११) मकर संक्रांति
- (१२) महाशिवरात्रि



- (१३) मौनी अमावस्या
- (१४) वसन्त पंचमी
- (१५) कार्तिकी पूर्णिमा
- (१६) रक्षाबन्धन
- (१७) राम नवमी
- (१८) कृष्ण जन्माष्टमी
- (१९) गणेश चतुर्थी
- (२०) अनन्त चतुर्दशी
- (२१) ऋषि पंचमी
- (२२) महालया

(ख) स्त्री

- (१) वट सावित्री व्रत
- (२) बहुला व्रत
- (३) जीवित्पुत्रिका व्रत
- (४) करवा चौथ
- (५) मातृनवमी
- (६) मातृ द्वितीया
- (७) सूर्यषष्ठी व्रत
- (८) कजरी तीज
- (९) पिंडिया





## दार्शनिक जीवन

० ०

भोजपुरी जनता का जीवन दर्शनमय है। इनका विश्वास है कि संसार में जो कुछ कार्य हो रहा है वह किसी दैवी शक्ति के कारण है। संसार में भगवान् की इच्छा के बिना कोई भी कार्य नहीं हो सकता, यह इनका दृढ़ विश्वास है। ये लोग भाग्यवाद पर अटूट विश्वास रखते हैं। यद्यपि भोजपुरी जनता बड़ी कर्मठ, साहसिक तथा उद्योगशील है परन्तु इनकी आस्था भाग्यवाद में दृढ़ मूल है। इसी प्रकार ये जन्मान्तरवाद में भी विश्वास रखते हैं।

भोजपुरी लोगों के दार्शनिक जीवन की जो मूल आस्थायें हैं उन्हें तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है जो निम्नांकित हैं:—

- (१) कर्मवाद
- (२) भाग्यवाद
- (३) जन्मान्तरवाद

### दार्शनिक अवस्था

भोजपुरी प्रदेश में शिक्षा का प्रचुर प्रचार है। इस क्षेत्र के प्रत्येक जिले में बीसियों हाईस्कूल तथा इण्टर कालेज पाये जाते हैं जहाँ हिन्दी तथा अंग्रेजी की शिक्षा बालकों को दी जाती है। इसके अतिरिक्त गाँवों में अनेक संस्कृत पाठशालायें हैं जहाँ छात्र संस्कृत विद्या का अध्ययन करते हैं। शिक्षा के प्रचार की इतनी व्यवस्था होने पर भी यह प्रदेश शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है। विशेषतया स्त्रियों की शिक्षा का बहुत कम प्रचार है। अतः साधारणतया ग्रामीण जनता उतनी शिक्षित नहीं है जितना उसे होना चाहिए।

उच्च शिक्षा का प्रायः अभाव होने पर भी ग्रामीण जनता का जीवन धार्मिक विधि-विधानों तथा दार्शनिक विचारों से व्याप्त है। एक साधारण किसान भी दर्शन शास्त्र की इतनी ऊँची बातें करता है कि दांतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। वह अद्वैत वेदान्त की चर्चा करके लोगों को आश्चर्यित कर देता है। कहीं वह कर्मवाद की चर्चा करता है और कहीं जन्मान्तरवाद की। कभी वह संसार को ही मिथ्या बतलाता है और कहीं जीवन को नश्वर कहता है। कहने का आशय केवल यही है कि किसान का जीवन धार्मिक रूढ़ियों तथा दार्शनिक विचार-धारा में ओत-प्रोत है।

### (१) कर्मवाद

गाँव के सर्व साधारण लोगों की आस्था कर्मवाद में पूर्णतया पायी जाती है। वे समझते हैं कि कर्म, जिसे वे 'करम' कहते हैं, में जो कुछ लिखा है उसे कोई मिटा नहीं सकता। सामान्य लोगों का यह दृढ़ विश्वास है कि जब मनुष्य पैदा होने लगता है तब ब्रह्मा उसके ललाट में उसका भाग्य लिख देते हैं। उसकी भाग्य लिपि के अनुसार उसका जीवन परिचालित होता है। गाँवों में प्रायः यह कहते हुए लोग सुने जाते हैं कि "जवन भाग में लिखल बाटे ओकरा के मिटा सकेला।" अर्थात् जो भाग्य में लिखा है उसे भला कौन मिटा सकता है। संस्कृत के किसी कवि ने भी कहा है कि "लिखितमपि ललाटे प्रोज्झतं कः समर्थः॥ नैषधीय चरितम् महाकाव्य के रचयिता श्रीहर्ष ने भी लिखा है कि—

“अयं दरिद्रो भवितेति वेषसी,  
लिपिं ललाटेऽयिजनस्य जाग्रतीम्।”

अर्थात् ब्रह्मा मनुष्य के ललाट में ही लिख देता है कि यह दरिद्र होगा।



## (२) भाग्यवाद

गाँव के लोग बड़े ही भाग्यवादी होते हैं। वे समझते हैं कि जो भाग्य में होगा वह होकर ही रहेगा। अतः व्यर्थ में परिश्रम और प्रयास करने से क्या लाभ? वे गोस्वामी तुलसीदास जी की यह चौपाई प्रायः कहते हैं कि:—

“होइहैं वही जो राम रचि राखा।  
को करि तर्क बढ़ावै साखा।”

वह भाग्य पर इतना अधिक विश्वास करता है कि सभी कार्यों को ‘भाग के भरोसे’ छोड़कर चैन की नींद सोता है। वह अपने भाग्यवाद के सिद्धान्त के प्रतिपादन में मलूकदास जी के इस दोहे को भी प्रस्तुत करता है:—

“अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।  
दास मलूका कहि गयो कि सबके दाता राम॥”

जो लोग गरीब हैं, धन-सम्पत्ति से वंचित हैं वे इसका दोष अपने भाग्य को देते हैं। जो लड़का पढ़ने में मन्द है उसके विषय में घर के लोग यह कहते हैं कि इसके भाग्य में विद्या नहीं है। यदि किसी स्त्री का पति मृत्यु को प्राप्त हो गया तो यह दुर्घटना भी भाग्य के वश ही समझती जाती है। किबहुना यदि बिल्ली ने दूध पी लिया और कुत्ता ने भोजन जूठा कर दिया तो लोग इन तुच्छ घटनाओं को अपने दुर्भाग्य के सिर मढ़ते हैं। कहने का आशय यह है कि छोटे-से-छोटा और बड़ा-से-बड़ा कार्य भी भाग्य के द्वारा ही परिचालित माना जाता है।

कर्मों के अनुसार मनुष्यों को योनि प्राप्त होती है, उसी के अनुसार वे संसार में धन वैभव अथवा निर्धनता को प्राप्त करते हैं यह भावना लोगों के हृदय में कूट-कूट कर भरी हुई है। भोजपुरी की एक कहावत है—“जैसी करनी वैसी भरनी” अर्थात् मनुष्य जैसा कार्य करता है उसे वैसा ही फल मिलता है। मनुष्य प्रतिदिन जो कुछ भोजन करता है वह भी उसके भाग्य का ही परिणाम है। यह कहावत प्रचलित है कि “दाने दाने पर लिखा है, खानेवाले का नाम।” जिसके भाग्य में जो कुछ भोजन, वस्त्र, आदि बढ़ा है उसे वही प्राप्त होता है।

भोजपुरी लोक-गीतों में भाग्यवाद की अमिट रेखा खिंची हुई दिखायी पड़ती है। पिता अपनी पुत्री का विवाह किसी अयोग्य व्यक्ति से कर देता है जिसके फलस्वरूप वह दुःखी तथा असंतुष्ट है। इस पर उसका पिता कहता है कि ए बेटी! यदि वर्तन और गहना होता तो मैं उसे बदल देता परन्तु तुम्हारे भाग्य को कैसे बदल सकता हूँ। वह तो दुर्निवार है, वह नहीं बदला जा सकता।<sup>१</sup>

भोजपुरी-प्रदेश के लोग भाग्यवाद में अटूट आस्था रखते हैं। ये प्रायः कहा करते हैं कि जो भगवान् चाहेगा वही कार्य होगा। अतः व्यर्थ में झंझट करने तथा परेशान होने से क्या लाभ? ये लोग तुलसीदास जी की इस चौपाई को प्रायः कहा करते हैं:—

“होइहैं वही जो राम रचि राखा।  
को करि तर्क बढ़ावै साखा॥”

गाँव के लोग प्रायः कहते हैं कि ब्रह्मा की लिपि को भला कौन मिटा सकता है। जो कुछ होना होगा वह होकर रहेगा। फ्रांस देश का सम्राट नेपोलियन बड़ा ही कर्मठ व्यक्ति और कुशल सेनापति था। परन्तु इसके साथ ही वह प्रचण्ड भाग्यवादी था। वह कहा करता था कि संसार में अभी ऐसी गोली (बुलेट) नहीं बनी है जिससे मैं मारा जा सकूँ। इसी प्रकार से भोजपुरी जनता नितान्त कर्मठ होते हुए भी अटूट भाग्यवादी है। ये लोग बात-बात पर भाग्य की दोहाई देते हैं। यदि किसी कार्य में सफलता नहीं मिली तब अपने भाग्य को ही दोषी ठहरावेंगे। इसी प्रकार से ये प्रत्येक कार्य को भाग्य के द्वारा ही निष्पन्न मानते हैं। इनका अटूट सिद्धान्त है कि:—

“भाग्य के लिखा ना मेटल जाई।”

## (३) जन्मान्तरवाद

भाग्यवाद की ही भाँति जन्मान्तरवाद में भी लोगों की अटूट आस्था है। प्रत्येक व्यक्ति यह विश्वास करता है कि



मृत्यु के पश्चात् मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार दूसरी योनि में जन्म लेता है। इसीलिए मृत व्यक्ति के श्राद्ध के समय उसे अन्न, वस्त्र, शय्या, ओढ़ना, बिछौना आदि उन सभी वस्तुओं को प्रदान किया जाता है जो उसे इस लोक में प्रिय थी।

स्त्रियाँ अगले जन्म में सुन्दर रूप को प्राप्त करने के लिए देवी और देवताओं को सफेद तथा सुन्दर पुष्प चढ़ाती हैं। वे दूसरे लोक में अपने वर्तमान पति को प्राप्त करने के लिए सोमवती अमावस्या के दिन पीपल की १०८ बार प्रदक्षिणा करती हैं। बहुत से लोग इस जन्म में अनेक पुण्य कार्य करते हैं, गरीबों को धन धान्य देते हैं, सार्वजनिक हित के लिए लाखों रुपये इसलिए खर्च करते हैं कि अगले जन्म में समृद्धि प्राप्त हो तथा वे उच्च कुल में उत्पन्न हों।

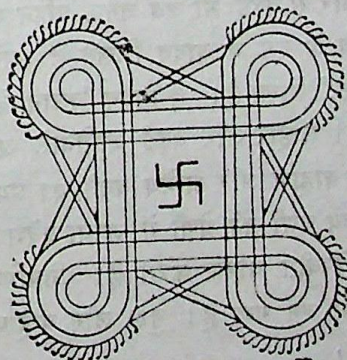
निर्धन व्यक्ति प्रायः यह कहते सुने जाते हैं कि उनकी गरीबी उनके पूर्व जन्म के पाप के कारण है। वे इस बात से सन्तोष को प्राप्त करते हैं कि उन्हें अगले जन्म में सुख और समृद्धि प्राप्त होगी। कर्मवाद और जन्मान्तरवाद के सिद्धांतों ने हिन्दू जनता को अभूतपूर्व सुख और शान्ति प्रदान की है। मनुष्य अपनी वर्तमान दीनता और दुर्दशा का कारण अपने भाग्य को समझकर सन्तोष करता है और अगले जन्म में उसे सुख और वैभव प्राप्त होगा इस आशा से अपने जीवन को धारण करता रहता है।

#### (४) संसार की असारता

लोगों का यह विश्वास है कि संसार अनित्य है, दृश्यमान जगत का नाश अवश्यम्भावी है। शरीर का धर्म विनश्वरशील है। अतः यह एक-न-एक दिन अवश्य नष्ट होता है। मानव देह की उपमा कागज की पुड़िया से दी गयी है जो एक बूंद जल के पड़ने से ही गल जाता है। लोग अक्सर यह कहते हैं कि—

“इह देहिया कागज की पुड़िया,  
बूंद परत मिहिलानी।”

ग्रामीण जनता जानती है कि यह शरीर मिट्टी का बना हुआ है और यह अन्त में मिट्टी में ही मिल जायेगा। अतः जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तब इस समाचार को सुनकर लोग अनासक्त भाव से कहते हैं कि “मिट्टी के देह मिट्टी में मिल गइल।” भोजपुरी महिलाएँ जब किसी व्यक्ति पर क्रोधित होती हैं तब उसको गाली देती हुई कहती हैं कि “तोहार माटी लागो” अर्थात् तुम मिट्टी में मिल जाओ। इसका भाव यही है कि तुम्हारा नाश हो जाय अथवा तुम्हारी मृत्यु हो जाय। इस प्रकार से भोजपुरी गारियों में भी दार्शनिकता का पुट पाया जाता है। जब कोई व्यक्ति बड़ा बूढ़ा हो जाता है और रोगों के कारण कष्ट पाने लगता है तब वह भगवान् से यही प्रार्थना करता है कि “ए भगवान्! अब हमरा के उठाव” अर्थात् मृत्यु प्रदान कर जीवन के कष्टों का अन्त कर दो।





## भोजपुरी लोक-संस्कृति का बदलता स्वरूप

७०

पाश्चात्य सभ्यता और आधुनिक शिक्षा का प्रभाव भोजपुरी लोक-संस्कृति के प्रत्येक अंग पर प्रचुर परिमाण में पड़ रहा है। सामाजिक संस्थाओं तथा प्रथाओं, धार्मिक विश्वासों तथा अनुष्ठानों, आर्थिक अवस्थाओं एवं राजनैतिक परिस्थितियों आदि सभी पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव परिलक्षित होता है। किंबहुना हमारे दार्शनिक विचारों और सिद्धान्तों में भी परिवर्तन दिखायी पड़ता है। कहने का आशय यह है कि भोजपुरी जन-जीवन का कोई भी अंग ऐसा नहीं जो पाश्चात्य सभ्यता के चाकचिक्य से अछूता रह गया हो।

भोजपुरी जीवन में जो परिवर्तन हो रहे हैं उनका वर्गीकरण निम्नांकित वर्गों में किया जा सकता है।

- (१) सामाजिक जीवन में परिवर्तन
- (२) धार्मिक जीवन में परिवर्तन
- (३) आर्थिक जीवन में परिवर्तन
- (४) राजनैतिक जीवन में परिवर्तन
- (५) दार्शनिक विचारों में परिवर्तन

अगले पृष्ठों में परिवर्तन का वर्णन स्थानाभाव के कारण अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

### वर्ण में परिवर्तन

प्राचीन काल में जो जिस वर्ण में पैदा होता था जीवनपर्यन्त वही उसका वर्ण माना जाता था। उसमें परिवर्तन होना सम्भव नहीं था। परन्तु आज कल नीची जाति के लोग वर्ण की संस्था को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। बहुत सी छोटी जाति के लोग अब अपने को उच्च वर्ण में उत्पन्न घोषित करते हैं। उदाहरण के लिए नाइयों को लिया जा सकता है जिनका कहना है हम लोग पहिले ब्राह्मण थे परन्तु क्षौर कर्म को पेशा के रूप में स्वीकार करने के कारण नाई हो गये। ऐसे लोग अपनी जाति 'नाई-ब्राह्मण' बतलाने लगे हैं। इसी प्रकार से बड़ई भी अब जनेऊ पहिन कर ब्राह्मण बनने का दावा करने लगे हैं। अहीर जाति के लोग जो अपने नाम के आगे उपाधि के रूप में यादव लिखते हैं अपने को भगवान् श्रीकृष्ण का वंशज बतलाते हैं। श्रीकृष्ण के लिए भागवत में 'यादवानां कुले जातः' लिखा है। वे यादव 'कलान' के वृष्णि वंश में उत्पन्न हुए थे। अतएव ये अहीर लोग अब क्षत्रिय बनने का प्रयास कर रहे हैं। लोहार और बड़ई जातिवाले अपने को विश्वकर्मा का वंशज बतलाने में नहीं हिचकते। इसी प्रकार से सभी नीची जातियाँ ब्राह्मण और क्षत्रिय बनने का प्रयास कर रही हैं।

इन नीची जातियों के लोगों ने, जो उच्च वर्णों की श्रेणी में अपना प्रवेश पाने के इच्छुक हैं, ब्राह्मणों की तरह आचरण भी करना प्रारम्भ कर दिया है। वे अब यज्ञोपवीत धारण करते हैं। नियमित रूप से गंगा स्नान करना तथा पूजा-पाठ में समय लगाना उनके दैनिक जीवन का कार्यक्रम बन गया है। कुछ लोग ब्राह्मणों की तरह टीका भी लगाते हैं और उन्हीं की तरह पवित्र जीवन बिताने का प्रयास करते हैं।

वर्णों के कर्तव्यों में तो महान् व्यत्यय उत्पन्न हो गया है। मनु ने चारों वर्णों के धर्मों तथा कर्तव्यों का जो परिगणन किया था उसमें से एक का भी कोई आचरण नहीं कर रहा है। उदाहरण के लिए ब्राह्मणों को ही लीजिये। मनु ने ब्राह्मणों के लिए अध्ययन, अध्यापन, यजन याजन दान लेना और दान देना इन छः कर्मों का विधान किया है। परन्तु ब्राह्मण अब अपने कर्मों को छोड़कर दूध बेचते हैं, गल्ला की दूकान करते हैं और दफ्तरों में किरानी बाबू और रेलवे स्टेशनों पर 'पानी पांड़े' का भी काम करने लगे हैं। अब चमार और मंगी भी अध्यापन कर्म में प्रवृत्त हैं और लड़ाई के मैदान में लड़ने के लिए बन्दूक लेकर चलने का हौसला रखते हैं। इस प्रकार वर्णों के कर्तव्यों में महान् परिवर्तन हो गया है।



**आश्रम धर्म में व्यत्यय**—प्राचीन काल में मानव जीवन को चार भागों में विभाजित किया गया था और प्रत्येक आश्रम में (२५) पच्चीस वर्षों तक रहकर मनुष्य एक निश्चित कर्म को करता था। उदाहरणार्थ ब्रह्मचर्याश्रम में प्रत्येक हिन्दू (द्विज) पच्चीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता था। इस अवधि में वह गुरुकुल में जाकर अध्ययन करता था और एकनिष्ठा से गुरु की सेवा में दत्तचित्त रहता था। परन्तु आज इस आश्रम का सर्वथा विनाश हो रहा है। माता-पिता विद्यार्थी अवस्था में ही अपने बच्चों का विवाह कर देते हैं। फलस्वरूप वे विद्याअध्ययन की समाप्ति के पहिले ही अनेक बच्चों के पिता बनकर गृहस्थाश्रम में दीक्षित हो जाते हैं। इस प्रकार ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रम का ऐसा मिश्रण हो गया है जिसके सम्बन्ध में कुछ लिखना ही व्यर्थ है।

अब कोई भी गृहस्थ वानप्रस्थ आश्रम को धारण नहीं करता। अतः इस आश्रम का तो बिल्कुल लोप ही हो गया है। हाँ, कुछ व्यक्ति जिनकी संख्या लाखों में शायद एक हो—संन्यासाश्रम में अवश्य प्रविष्ट पाये जाते हैं। परन्तु प्रायः ये लोग भी वैसे ही हैं जिनके विषय में गोस्वामी जी ने लिखा है—

“नारि मुई गृह संपति नासी।  
मूढ़ मूढ़ाई भये संन्यासी॥”

वाराणसी में ‘दण्डी आश्रम’ नामक भवन में अनेक संन्यासी रहते हैं जिन्हें मुफ्त में आवास और भोजन मिलता है। धर्म की प्रेरणा से प्रेरित होकर संन्यास धर्म को ग्रहण करनेवाले बहुत कम व्यक्ति होंगे। फिर इन संन्यासियों की अपनी उदरदरी की पूर्ति के लिए जो दुर्गति हो रही है उसे देखकर बड़ी निराशा होती है। इसीलिये अनेक वीतराग व्यक्ति भी इस आश्रम में जाने में हिचकते हैं।

वर्ण और आश्रम में जितनी गड़बड़ी, जितनी अव्यवस्था तथा जितनी कान्ति आजकल दिखायी पड़ती है उतनी संभवतः कमी भी नहीं हुई थी। आज न कोई वर्ण धर्म का पालन करता हुआ दिखायी पड़ता है और न आश्रम धर्म का। ऐसा ज्ञात होता है कि निकट भविष्य में इन दोनों की सत्ता ही नष्ट हो जायेगी।

### (१) अनुच्छेद—संयुक्त परिवार

भोजपुरी प्रदेश का सामाजिक संगठन संयुक्त परिवार की दृढ़ भित्ति पर अवस्थित है। इस समाज में संयुक्त परिवार की प्रथा अभी तक जीवित है जहाँ एक ही छत के नीचे रहनेवाले तथा एक ही चूल्हे में बने हुए तथा एक ही साथ भोजन करनेवाले घर के सदस्यों की संख्या तीस-चालीस तक होती है। किसी-किसी परिवार में तो घर के सदस्यों की संख्या एक सौ तक पहुँच जाती है। परिवार के सभी व्यक्ति गृहपति के अनुशासन में रहते हैं जो उनके पालन-पोषण, भोजन-छाजन तथा शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करता है। वह सदस्यों को समान दृष्टि से देखता है तथा सभी की उचित आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इस प्रकार गृहपति जिसे लोग भाषा में ‘मालिक’ कहते हैं—को छोड़कर सभी सदस्य खाने-पीने की चिन्ता से मुक्त होकर सुख की नींद से सोते हैं। न तो उन्हें कमाने की चिन्ता सताती है और न घर जोड़ने की। वे शान्ति-पूर्वक जीवन बिताते हैं। इस प्रकार ‘मालिक’ को छोड़ कर सभी सदस्यों का जीवन सुखी और शान्त होता है।

परन्तु पाश्चात्य शिक्षा के प्रताप के कारण अब संयुक्त परिवार विघटित होने लगा है। संयुक्त परिवार का जो प्रासाद आज हजारों वर्षों से अक्षुण्ण खड़ा था अब जीर्ण-शीर्ण होकर भूमिसात् हो रहा है। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं कि यह कुछ ही वर्षों में धराशायी न हो जाय। पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा के अतिरिक्त संयुक्त परिवार के विघटन के प्रधानतया निम्नांकित कारण भी हैं—

- (१) औद्योगीकरण
- (२) जनसंख्या में वृद्धि
- (३) पाश्चात्य आदर्शों के प्रभाव में वृद्धि
- (४) संयुक्त परिवारों के कार्यों का हस्तान्तरण
- (५) परिवहन तथा संचार का विकास
- (६) स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार।
- (७) संयुक्त परिवारों का विघटित पर्यावरण



संयुक्त परिवारों को विघटित करनेवाले कारकों में औद्योगीकरण तथा नगरीकरण से उत्पन्न परिस्थितियों का प्रभाव सबसे अधिक है। रोजगार के अवसरों में वृद्धि होने के कारण अब गाँवों के लोग कलकत्ता और बम्बई में जाकर चटकलों तथा सूती मिलों में मजदूरी का काम करने लगे हैं। नगरों में नौकरी के अधिक अवसर मिलने के कारण लोग गाँवों को छोड़कर नगर की ओर भागने लगे हैं। जनसंख्या की वृद्धि भी संयुक्त परिवार के विघटन का कारण बन रही है। पहिले लोग खेती करते थे और उससे उत्पन्न अन्न को खाकर अपना जीवनयापन करते थे। परन्तु परिवार के सदस्यों की अत्यधिक वृद्धि के कारण खेती से परिवार का खर्च पूरा नहीं पड़ता। अतः खेती के कार्य से जो व्यक्ति अधिक हैं उन्हें पेट पालन के लिए किसी दूसरे स्थान की शरण लेनी पड़ती है। भारत में अंग्रेजों के शासन के कारण हमारे विचारों, मनोवृत्तियों तथा जीवन-दर्शन पर पाश्चात्य संस्कृति का व्यापक प्रभाव पड़ा है। अब सामूहिकता के स्थान पर वैयक्तिकता की प्रधानता हो गयी है। अतः कोई भी व्यक्ति समुदाय या परिवार में रहना नहीं चाहता।

आजकल परिवहन, यातायात तथा संचार की सुविधा बहुत अधिक बढ़ गयी है। वायुयान, रेल, बस, मोटर कार तथा पानी के जहाजों के आविष्कार के कारण अब देश में एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करना बड़ा सरल हो गया है। किंवदन्ता केवल चौबीस घंटों के भीतर संसार के एक कोने से दूसरे कोने में कोई भी व्यक्ति वायुयान (जेट प्लेन) की कृपा से पहुँच सकता है। पहिले जब देश में न रेलें थी, न वायुयान, जब न सड़कें थीं और न राजपथ, तब एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना अत्यन्त कठिन था। अतः लोग अपने परिवार में ही रहते थे और खेती कर अपनी जीविका चलाते थे। परन्तु अब यातायात की सुविधा के कारण लोग अपना पुश्तैनी घर छोड़कर परदेस कमाने के लिये चले जाते हैं।

स्त्रियों में शिक्षा के प्रचार ने भी संयुक्त परिवार को काफी धक्का पहुँचाया है। आज की शिक्षित स्त्री संयुक्त परिवार के मनमाने शोषण और अमानवीय व्यवहार को अपना दुर्भाग्य समझकर चुपचाप नहीं बैठ रहती, बल्कि मानवोचित अधिकारों की माँग करने लगी हैं। वह स्कूलों तथा कालेजों में नौकरी करने के लिए अपने घर को छोड़कर बाहर चली जाती है। पहिले स्त्री ही संयुक्त परिवार की नींव समझी जाती थी। परन्तु जब नींव ही हिल गयी तब उस पर बना हुआ प्रासाद कैसे खड़ा रह सकता है?

पहिले संयुक्त परिवार का मालिक बड़ा ईमानदार होता था और वह सब को समान दृष्टि से देखता था परन्तु अब वह स्वयं न्यायप्रियता से बहुत दूर आगे निकल गया है। घर का जो अर्थोपार्जन करनेवाला 'कमासुत' सदस्य है उसकी स्त्री तथा बालबच्चों का तो वह बड़ा सम्मान तथा सत्कार करता है परन्तु जो 'कमासुत' नहीं है उसको वह फूटी आँख से भी नहीं देखता। मालिक के द्वारा सबके साथ समान व्यवहार न करना ही संयुक्त परिवार के विघटन का प्रधान कारण बन गया है।

इन परिवारों का विषाक्त वातावरण तथा रुढ़िगत पर्यावरण भी इसके विनाश में सहायक हो रहा है। इनकी कार्य प्रणाली, भेदभाव की नीति, कुछ इस प्रकार की हो गयी है कि संयुक्त परिवार के सदस्यों में कलह और आन्तरिक विद्वेष अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है। स्त्रियों का आपस में एक दूसरे से झगड़ना, घर में सदा राम-रावण युद्ध मचाते रहना, बच्चों को एक-दूसरे के विरुद्ध भड़काना, पुरुषों का आपस में छोटी-छोटी बातों के लिए लड़ना, ये ऐसी बातें हैं जिनसे संयुक्त परिवार के प्रासाद के स्तम्भ टूट-टूट कर गिर रहे हैं। पहिले परिवार में दादा से लेकर प्रपौत्र चार पाँच पीढ़ी के लोग साथ रहते थे परन्तु अब विघटित परिवार के सदस्य मियाँ-बीबी ही केवल माने जाते हैं।

**माता-पिता की उपेक्षा**—पहिले संयुक्त परिवार में माता और पिता पूजनीय समझे जाते थे। वे परम आदर तथा श्रद्धा के पात्र माने जाते थे। परन्तु विघटित परिवार में माता और पिता का अनादर होने लगा है। जब से भोजपुरी लड़का अपनी स्त्री का मुँह देखता है उसी दिन से माता-पिता को वह अपना परम शत्रु मानने लगता है और स्त्री ही एकमात्र उसके प्रेम, श्रद्धा तथा भक्ति की अधिकारिणी बन जाती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने ठीक ही लिखा है कि:—

“ससुरारि पियारि लगी जबते  
रिपु-रूप कुटुम्ब भये तबते॥”

गोस्वामी जी का यह कथन आजकल की परिवर्तित परिस्थिति में पूर्णतया चरितार्थ हो रहा है।

जहाँ पुत्र अपने मातापिता की उपेक्षा करने लगा है वहाँ उसकी वधू अपनी सास और ससुर को अपना परम विरोधी समझती है। सास से तो उसे तनिक भी नहीं पटता और ननद से वह सदा झगड़ा मोल लिये रहती है। ऐसी विषम परिस्थिति में संयुक्त परिवार की सदा सुहावनी तथा हरी-भरी वाटिका अब सूखने लगी है। उसकी पत्तियाँ मुरझाने लगी हैं। आशंका तो यह है कि निकट भविष्य में कदाचित् स्थूण मात्र शेष न रह जाय।

**पति-पत्नी के प्रेम में वृद्धि**—आजकल पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में आकर नारी स्वतन्त्रता के वातावरण में विचर



रही है। विघटित परिवार की 'पति-पत्नी' ही इकाई है। पत्नी अपने पति को ही सर्वस्व समझती है। फलस्वरूप पति उसे अपनी सतत सहचारिणी मानता है। संयुक्त परिवार में पति-पत्नी को आपस में मिलने का बड़ा कम समय मिलता था। पर्दा-प्रथा के कारण दिन में तो इसकी संभावना ही नहीं थी, हाँ रात्रि में लुक छिपकर मिलन हो सकता था, वह भी केवल दो चार घंटों के लिए। ऐसी परिस्थिति में दाम्पत्य-प्रेम का पौधा अविकसित ही रह जाता था। उसमें फूल भी नहीं लग पाते थे फल की तो कथा ही दूर रही।

परन्तु अब एकाकी परिवार में पति-पत्नी को सतत साहचर्य का अवसर मिलता है। एक दूसरे के कार्यों स्वभाव तथा चरित्र से परिचित होने का अधिक अवकाश प्राप्त होता है। अतः पूर्व की अपेक्षा अधुना पति-पत्नी में पारस्परिक प्रेम का आधिक्य हो तो इसमें कोई सन्देह नहीं। आज पति-पत्नी का जुगल-जोड़ा प्रेम का प्रतीक और साहचर्य का साक्षी बन गया है।

### समाज में स्त्री की दशा में परिवर्तन

समाज में स्त्रियों की दशा में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। इसे हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। (१) सामाजिक और (२) आर्थिक। पहिले पुरुष बिना किसी उचित कारण के तथा प्रधानतया अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए ही बहु-विवाह किया करते थे। प्रथम पत्नी की मृत्यु हो जाने पर दूसरी का हाथ पकड़ना तो कुछ हद तक अनुचित नहीं माना जा सकता परन्तु पहिली पत्नी के जीवित रहते हुए दूसरी स्त्री से विवाह करना अनुचित कार्य था। बहुविवाह की इस प्रथा से स्त्री का मान घट जाता था। परन्तु केन्द्रीय सरकार के द्वारा बहुविवाह का कानून द्वारा निषेध कर दिये जाने के कारण स्त्रियों के गौरव में वृद्धि हुई है। अब पुत्री भी पैतृक सम्पत्ति की अधिकारिणी मानी जाती है। इस प्रकार अब स्त्रियों के आर्थिक अधिकार में भी वृद्धि हुई है। अब स्त्री भी किसी को गोद ले सकती है और कुमारी लड़की भी गोद लिये जाने की अधिकारिणी होती है। इन सामाजिक तथा आर्थिक कानूनों के द्वारा हिन्दू समाज में अब स्त्री का स्तर बहुत ऊँचा उठ गया है और वह सम्मान तथा आदर की अधिकारिणी हो गयी है।

### (२) अनुच्छेद—भोज्य पदार्थ—(क) चावल

भोजपुरी लोगों का प्रधान भोज्य पदार्थ चावल है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस प्रदेश में चावल की पैदावार प्रचुर रूप में होती है। चावल के दो प्रधान भेद हैं (१) उसीना और (२) अरवा। इनमें से उसीना चावल का ही विशेष प्रयोग किया जाता है। कितने घरों में सबरे और शाम दोनों 'जून' उसीना चावल का ही भात खाया जाता है। इस प्रदेश में यद्यपि गेहूँ की उपज भी कुछ कम नहीं होती परन्तु इन लोगों की आदत गेहूँ की अपेक्षा चावल खाने की ही अधिक है। परन्तु अब धीरे धीरे लोग इसमें परिवर्तन कर रहे हैं और चावल के साथ ही गेहूँ को भी प्रधान भोज्य पदार्थों की सूची में स्थान दे रहे हैं।

भोजपुरियों का दूसरा भोज्य अन्न मक्का है जिसे लोक-भाषा में जनेरा कहा जाता है। भादों के महीने में पैदा होने के कारण इसे 'भदई' भी कहते हैं। पहिले मक्का को जाँत में 'दर करके' इसका भात बनाया जाता था जो रंग में पीला होता था। इसे दही अथवा मट्ठे की सहायता से लोग खाते थे। परन्तु अब 'जनेरा का भात' खाने की प्रथा धीरे-धीरे उठने लगी है। अब सभी वर्ग के लोग चावल का भात और गेहूँ की रोटी खाने लगे हैं। अब कोई मक्का का प्रयोग करता भी है तो रोटी के रूप में, भात के रूप में बिल्कुल नहीं।

पूड़ी—भोजपुरी बारातों में बरातियों को खिलाने के लिए जो पूड़ी पकायी जाती थी वह लम्बाई और चौड़ाई में बहुत ही बड़ी होती थी जिसकी उपमा हाथी के कानों से ही दी जा सकती थी। ये पूड़ियाँ—जिन्हें लुचुई कहते हैं—एक सेर में केवल चार ही पकायी जाती थी अर्थात् एक पूड़ी का वजन पूरे पाव भर—आजकल की तौल में ढाई सौ ग्राम—होती थी। यद्यपि ये देखने में मोटी और भद्दी लगती थी परन्तु भोजन करने में बहुत स्वादिष्ट, मुलायम और सरस होती थी। परन्तु नफासत के प्रचार के साथ इन पूड़ियों की विशालता में कमी आ गयी है और आजकल बारातियों के लिए भी छोटी-छोटी पुड़ियाँ बनने लगी हैं।

सत्तू—'सत्तू भोजपुरियों का राष्ट्रीय भोजन है' इस कथन में तनिक भी अत्युक्ति नहीं है। किसान लोग खेत-खलिहान से आकर अपना मध्यकालीन भोजन सत्तू को ही किया करते थे। कुछ वर्षों पूर्व बलिया और आरा नगरों के प्रधान बाजारों में सत्तू की दुकानों की भरमार थी और "तुरन्ता भोजनालयों"—जहाँ भोजन के लिए सत्तू मिलता था—की भी कुछ कमी नहीं थी। परन्तु आज हमारा यह राष्ट्रीय भोजन अपने प्राचीन आदर के स्थान से गिर गया है और उपेक्षित अवस्था में अपने दिनों को बिता रहा है। फिर भी यह आज भी गरीबों तथा मजदूरों का बल और सम्बल बना हुआ है।



**पक्वान्न**—पक्वान्नों में दहिरोरी का पहिले बड़ा प्रचार था। यह उस आटे में जिसमें खमीर उत्पन्न हो गई है—गुड़ मिला कर घी में पकाया जाता था जो बहुत ही मुलायम, मीठा और स्वादिष्ट लगता था। परन्तु अब इसके स्थान में पूआ खाने की प्रथा चल पड़ी है जो स्वाद में मीठा होने पर भी उतना मुलायम नहीं होता। भोजपुरी मातायें अपनी विवाहिता पुत्रियों के पास 'करनी' के रूप में इसी दहिरोरी को पका कर भेजा करती थीं।

दहिरोरी के साथ 'ठेकुआ' पकाने और खाने की प्रथा भी लुप्त होती जा रही है। आजकल इसका भग्नावशेष 'अधरौटा' के रूप में सुरक्षित रह गया है जो कार्तिक शुक्ल षष्ठी के दिन 'छठी माता' की पूजा में चढ़ाया जाता है।

पानी में चावल को पकाकर उसमें गुड़ डालकर जो भोज्य पदार्थ बनाया जाता था उसे 'रसियाव' कहते थे। विवाह अथवा गवना के अवसर पर चने की उबाली हुई दाल को पीसकर और आटे में भर कर जो 'दालपूरी' बनायी जाती थी उसके साथ 'रसियाव' का बनाना आवश्यक समझा जाता था। परन्तु आजकल की लड़कियाँ तथा लड़के 'रसियाव' के नाम से बिल्कुल अपरिचित हो गये हैं और इसका स्थान अब खीर ने ले लिया है जो अपने सुस्वाद के कारण बहुत लोकप्रिय होती जा रही है।

**मिष्ठान्न**—पहिले भोजपुरी मिठाइयों में टिकरी, जलेबी, अनरसा, पटउरा, कुटुकी, खुरमा और लकठों का अधिक प्रचार था। छोटे-छोटे बच्चे एक पैसा की टिकरी अथवा लकठों को खरीदकर जलपान किया करते थे। बड़े लोग जलेबी और अनरसा का प्रयोग नाश्ता के लिए किया करते थे। किसी अतिथि का भी टिकरी और पटउरा से स्वागत किया जाता था। परन्तु आजकल जलेबी तो अपनी परम्परा को जीवित रखते हुए मिष्ठान्न के रूप में अक्षुण्ण रीति से चली आ रही है। तरन्तु अब टिकरी का सदा के लिए टिकट कट गया, अनरसा का अन्त हो गया, पटउरा पटपटा कर रह गया, कुटुकी का कत्लेआम हो गया और खूसट खुरमा को कोई पूछता भी नहीं। लकठों के पीछे लुकाठ दिखाकर उसे भगा दिया गया। लाटा और गाटा को तो अब कोई जानता भी नहीं।

अब इन मिठाइयों का स्थान शहर के नये ढंग के मिष्ठान्नों ने ले लिया है। अब पेड़ा, इमिरिती, मोतीचूर, रसगुल्ला, पनतुआ, मोहन मोग और सन्देश का साम्राज्य है। ठेठ, देसी भोजपुरी मिठाई अब गाँवों में भी देखने को नहीं मिलती। ऐसा मय है कि कुछ दिनों में यह शोध का विषय बन जायेगी।

**शाक सब्जी**—भोज्य वस्तुओं में परिवर्तन के साथ ही शाक-सब्जी को खाने की रुचि में भी अन्तर दिखायी पड़ता है। आज से लगभग पचास वर्ष पहिले गाँवों में कोई टमाटर नहीं खाता था। घर के वृद्ध पुरुष तथा स्त्रियाँ लाल टमाटर को मांस का प्रतिरूप समझ कर इसे खाना निषिद्ध मानती थी। कच्चा टमाटर को 'विलायती' भण्टा' कहा जाता था। अतः विलायती होने के कारण इसे कोई नहीं खाता था। उन दिनों में टमाटर टके सेर बिकता था जबकि आजकल यह दो रुपये और कभी-कभी तो १६ रुपये में भी मिलना कठिन है। आज कोई घर नहीं जहाँ टमाटर न खाया जाता हो। प्राचीन धारणा के ठीक विपरीत, अब इसका प्रयोग शिष्टता तथा शौकीनी का परिचायक माना जाता है।

कुछ वर्षों पूर्व पितृपक्ष के दिनों में नेनुआ की तरकारी खाना निषिद्ध था। कोई भी व्यक्ति इसे नहीं खाता था। क्योंकि यह वर्म विरुद्ध समझा जाता था। इसीलिए बाजार में यह टके सेर बिका करता था। परन्तु आज नेनुआ को पितृपक्ष में भी ग्रहण किया जा रहा है और कोई भी व्यक्ति इसे खाने में आपत्ति नहीं करता।

लहसुन और प्याज के सम्बन्ध में भी यही बात समझनी चाहिए। प्याज अपनी दुर्गन्ध और लाल रंग होने के कारण जहाँ त्याज्य था वहाँ अब इसका भोजन में स्वागत किया जाता है। नवयुवक इसका सलाद बनाकर बड़े प्रेम से खाते हैं। लहसुन की चटनी बड़ी स्वादिष्ट होती है। अतः लोग बड़े प्रेम से आस्वाद लेते हैं। लहसुन और प्याज के प्रति जो घृणा की भावना थी वह अब लुप्त होती जा रही है।

**पेय पदार्थ**—पहिले भोजपुरी प्रदेश में पेय पदार्थ के रूप में शर्बत—और वह भी गुड़ का शर्बत—का प्रचुर प्रचार था। किसी अतिथि, अम्यागत अथवा सम्बन्धी के आने पर उसके स्वागत के रूप में उसे गुड़ का शर्बत पिलाया जाता था। चाहे गर्मी का दिन हो अथवा जाड़े का समय, सभी ऋतुओं और सभी कालों—प्रातःकाल तथा सन्ध्या—में गुड़ का बना शर्बत ही स्वागत का एक मात्र माध्यम था। हाँ जाड़े के दिनों में जब ऊख (ईख) की पेराई चालू रहती थी उस समय अतिथियों को ईख का तत्काल पेरा गया रस भी पिलाया जाता था। पुत्री के विवाह में 'मँडवानि' के दिन मण्डप छाने वालों को गुड़ का ही शर्बत दिया जाता था।

परन्तु आज इस शर्बत का स्थान चाय ने ले लिया है। अब गाँवों में भी किसी अतिथि अथवा सम्बन्धी के आने पर शर्बत के स्थान पर चाय से ही उसका स्वागत किया जाता है। यदि कभी किसी को शर्बत दिया भी जाता है तो वह खाँड या चीनी का होता है गुड़ का नहीं। चाय ने मांगलिक अवसरों के स्वागत विधि में भी चंचु प्रवेश कर लिया है। पहिले बारातियों के



आने पर उन्हें पूड़ी तथा चीनी से जलपान कराया जाता था। परन्तु आजकल उनके स्वागत की विधि चाय तथा नमकीन के द्वारा ही समाप्त कर दी जाती है।

**शुद्ध घी और दूध का अभाव**—प्राचीन काल में इस देश में दूध और घी की नदियाँ बहती थी। आज से पचास वर्ष पूर्व घी तथा दूध काफी सस्ता था और शुद्ध रूप में प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होता था। परन्तु जब से डालडा का जन्म हुआ है तब से शुद्ध घी का विनाश हो गया। अब बाजार में घी का दर्शन भी दुर्लभ हो गया है और उसके स्थान पर बनस्पति घी के अनेक प्रकार जैसे नम्वर वन, रथ, कुसुम आदि प्रचलित हो गये हैं। अब देशी घी को द्योतित करने के लिए 'शुद्ध' शब्द का विशेषण लगाना आवश्यक हो गया। अब वे दिन दूर नहीं हैं जब शुद्ध घी वैद्यों के औषधालयों में दवा बनाने के लिए ही प्राप्त हो।

दूध के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। अब शुद्ध दूध बाजारों में उपलब्ध नहीं होता। हाँ मक्खन निकाला गया दूध अवश्य मिल सकता है जो 'मखनिया' दूध के नाम से प्रसिद्ध है। इस दूध से जमायी गयी दही को 'सेपरेटा' कहते हैं क्योंकि इसका मक्खन पहिले ही 'सेपरेट' अर्थात् अलग कर दिया जाता है। इस प्रकार मखनिया दूध और सेपरेटा दही का सर्वत्र साम्राज्य है। शुद्ध घी और दूध का अब दर्शन नहीं हो सकता।

### (३) अनुच्छेद—वस्त्र या वेश-भूषा

भोजन के समान वेश-भूषा के क्षेत्र में भी कुछ कम परिवर्तन नहीं हुआ है। पहिले साधारण भोजपुरिया की धोती और कुर्ता सामान्य वेशभूषा थी। वह घुटने से ऊपर तक की धोती पहिनता और 'मोटिया' का कुर्ता धारण करता था। उन दिनों में खट्टर का आविष्कार नहीं हुआ था। अतः सभी लोग मोटे सूत की धोती और कुर्ता पहिनते थे। कन्धे पर एक गमछी रहती थी जो स्नान करते समय अस्थायी धोती का काम करती थी। पैरों में किसान चमरौधा जूता पहिनता था जो गाँव के ही चमार का बनाया हुआ होता था। गाँव का पण्डित तथा पुरोहित धोती के साथ अपने शरीर में कुर्ता के स्थान पर बगलबन्डी पहिनता था जिसमें बटन के स्थान पर चार बन्द लगे रहते थे। इसी कारण यह 'चौबन्दा' भी कहा जाता था। पण्डित जी सिर पर पगड़ी बाँधते थे और गले में लम्बी चादर लटकाये रहते थे जिसे उत्तरीय कहते थे।

**परिधान**—आजकल किसान की वेशभूषा में तो विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है परन्तु पुरोहित जी ने अपना पुराना चोला बदल दिया है और नये प्रकार के वस्त्रों को धारण करना प्रारम्भ किया है। अब गाँवों में भी शायद ही कोई पण्डित अथवा पुरोहित बगलबन्दी या चौबन्दा धारण करता हो। कुर्ता ने इन दोनों का स्थान ले लिया है। अब पण्डित लोग अपने सिर पर पगड़ी भी नहीं बाँधते। उनके गले में दुपट्टा तो अवश्य दिखायी पड़ता है परन्तु धीरे-धीरे उसकी भी गति 'अदर्शन' लोप की हो रही है। चमरौधा जूता के स्थान पर अब पम्पशू और सैण्डल का प्रचार हो रहा है। बाटा के चप्पल का तो सर्वत्र एक-छत्र साम्राज्य दिखायी पड़ता है।

नवयुवकों ने धोती और कुर्ता को तिलांजलि देकर अब पैण्ट और बुशर्ट को अपना लिया है। पाजामा और कमीज ने धोती-कुर्ता को बेदखल कर अपना कब्जा जमा लिया है। स्कूल और कालेजों में धोती-कुर्ता पहिने हुए कदाचित कोई विद्यार्थी मिल भी जाय परन्तु विश्वविद्यालयों में ऐसे छात्रों का अत्यन्ताभाव ही समझना चाहिए। सबसे बड़ी दुःख की बात यह है कि अपनी देशी वेशभूषा धारण करने में शिक्षार्थी की उपमा 'बे दाल के बूंदम' से दी जाती है। नयी रोशनी के इन पतियों ने तो पगड़ी का तो सदा के लिए पत्ता ही काट दिया। उत्तरीय उत्तर को न जाकर दक्षिण दिशा का अतिथि हो गया है। इस प्रकार अपनी प्राचीन वेश-भूषा से विरहित और आधुनिक कोट-पैण्ट और टाई से समन्वित भोजपुरी युवक काली चमड़ी को छोड़कर अपने आचार-विचार तथा वेश-भूषा में विदेशी हो गया है।

गाँव के छोटे-छोटे बच्चे अब घुटन्रा हाफ पैण्ट और गंजी पहिनते हैं। कुछ बड़े होने पर वे शर्ट (कमीज) और शार्ट (आधी कमीज) पहिनने लगते हैं। गमछी का स्थान अब तौलिया ने ले रखा है। पहिले युवक कमर में लँगोट लगाते थे जिनके विषय में शंकराचार्य ने लिखा है कि "कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः।" परन्तु अब कौपीन (लँगोट) के स्थान पर अण्डर वियर का प्रचार हो गया है। अब भोजपुरी प्रदेश का शायद ही कोई खूसट नौजवान हो जो पैण्ट के नीचे लँगोट पहिनता हो। कुछ नवयुवक चूड़ीदार पैजामा और शेरवानी भी पहिनने लगे हैं। परन्तु इसका प्रचार अभी अधिक नहीं है।

गाँवों में खड़ाऊँ पहिनने का पहिले बहुत प्रचार था। पण्डित लोग पूजा-पाठ तथा स्नान के समय सदा खड़ाऊँ का प्रयोग करते थे और किसान लोग एक प्रकार का ऊँचा खड़ाऊँ इस्तेमाल में लाते थे जिसमें खूँटी के स्थान पर बाध होता था जिसे ग्रामीण भाषा में 'बघौरा' कहते थे। परन्तु आज खड़ाऊँ के स्थान पर बाटा का चप्पल पहिना जाने लगा है और 'बघौरा'



का प्रयोग सदा के लिए बन्द हो गया। कुछ लोग काठ की बनी हुई 'चटाकी' खड़ाऊँ के स्थान पर पहिन कर चला करते थे परन्तु चप्पल ने सबको चपतिया दिया है।

पहिले विवाह करने के लिए जाने वाले वर की वेशभूषा जोड़ा और जामा था। जामा एक घाँघरा नुमा वस्त्र था जिसे वर अपनी कमर में बाँध लेता था। यह अपने शरीर में अंगरखानुमा वस्त्र धारण करता था। इन दोनों वस्त्रों का रंग लाल होता था तथा उसकी धोती का रंग पीला था। ये दोनों ही रंग मांगलिक माने जाते हैं। इस अवसर पर वर जिस जूते को पहिनता था उसका भी रंग लाल होता था और उस पर ज़री का काम किया गया रहता था। इस प्रकार वर की वेशभूषा परम्परागत होती थी और वह मांगलिक वस्त्रों को ही धारण करता था।

परन्तु आजकल भोजपुरी वर की वेशभूषा में महान् परिवर्तन हो गया है। आज का वर जोड़ा और जामा को न पहिनकर कोट और पैण्ट को ठाट से धारण करता है। कोई-कोई वर तो ईसाई धर्म के पवित्र चिन्ह क्रास का प्रतीक टाई भी पहिन लेते हैं। सूट के रंग के विषय में कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। कभी-कभी तो वर 'ब्लैक सूट' में विवाह करने के लिए जाते दिखायी पड़ते हैं जो अमांगलिक है। वर के लिए 'मौर' का धारण करना आवश्यक है। परन्तु कुछ फैशनेबुल वर अपने बालों की सजावट के नष्ट होने के भय से सिर पर 'मौर' भी धारण नहीं करते। इस प्रकार 'मौर' का प्रयोग औपचारिक हो गया है।

### (४) अनुच्छेद—आभूषण

आभूषण स्त्रियों की परमप्रिय वस्तु है। विवाह में स्त्रियों को जितना ही अधिक गहना मिलता है वे अपने को उतना ही अधिक सौभाग्यशालिनी समझती हैं। स्त्रियाँ नख से शिख तक पहिले गहना पहिनती थी जिनमें लटकन, झबिया, चन्द्रहार, डंडा, पावजेब, बिछिया, हँसुली, कंठा और कंठेसरि प्रधान माने जाते थे। ये गहने इतने भारी और बोझिल होते थे कि इनको पहिन कर चलना भी उनके लिए कठिन था।

परन्तु अब समय की गति के साथ स्त्रियों की आभूषण-प्रियता में भी परिवर्तन होने लगा है। पहिले स्त्रियों को आभूषण ही प्रिय था। वे अपनी वेशभूषा पर उतना ध्यान नहीं देती थी जितना आभूषण पर। परन्तु आज गहने को प्रधानता न देकर वस्त्रों को महत्त्व दिया जाने लगा है। अब पुराने गहनों का फैशन सदा के लिए लद गया और उसके स्थान पर नवीन डिजाइन के आभूषणों का प्रयोग होने लगा है। पुराने गहने, भारी भरकम होते थे परन्तु आधुनिक आभूषण हल्के, सुन्दर तथा आकर्षक होते हैं।

आजकल पुराने गहनों का स्थान नये गहनों ने ले लिया है जिसकी सूची नीचे दी जाती है।

गहने पहिनने का स्थान	पुराना गहना	नया प्रचलित गहना
कान	कर्णफूल	एयररिंग तथा टाप
नाक	नक बूली	कील, लवंग
गला	चन्द्रहार	नेकलेस
हाथ	पहुँची, बंगुरी	सोने की चूड़ी
अँगुली	हथसंकर	अँगूठी
पैर	पावजेब	पायल
पैर की अँगुली	बिछिया	कुछ नहीं।

पहिले के अनेक आभूषणों का आज पूर्णतया बहिष्कार कर दिया गया है। आजकल की स्त्रियाँ अब इन्हें बिल्कुल भी नहीं पहिनती। फैशन के बाजार में अब इनका कोई मूल्य नहीं है। इन आउट-आफ-डेट गहनों की तालिका निम्नांकित है।

पहिनने का स्थान	गहने का नाम
१. सिर	मोंगटीका
२. गर्दन	हसुली, कंठा, कंठेसरि
३. कान	कनफूल, झूमक, सिकड़ी
४. नाक	नथिया, नथुनी
५. नाक निचला भाग	बुलाक, झुलनी



६. छाती	चन्द्रहार
७. बाँह	लटकन, झबिया
८. हाथ	हथ संकर
९. कमर	डंडा, करघनी
१०. पैर	पावजेब, गोड़ाव,
११. पैर की अँगुलिया	बिछुआ

कहने का आशय यह है कि अब स्त्रियों के गहनों की संख्या में ही कमी नहीं आयी है बल्कि वे हल्के और सुन्दर भी दिखायी पड़ते हैं। प्राचीन काल की स्त्रियों की आभूषण-प्रियता ने अब परिधान प्रियता के स्वरूप को धारण कर लिया है। अतः अब गहनों का प्रचार कम होता जा रहा है और साड़ियों के लिए शौक बढ़ता जा रहा है। पहिले स्त्रियों के आभूषण सोना, चाँदी, दरब (Alloy) तथा पीतल के धातु से बनाये जाते थे। गाँव की गरीब स्त्रियाँ दरब (मिश्रित धातु) का गोड़ाव (पैर का आभूषण), पहिनती थी। परन्तु अब केवल सोने के गहने का ही, प्रयोग होने लगा है। यद्यपि पहिले की अपेक्षा आजकल सोना पचास गुना से भी अधिक महँगा हो गया है परन्तु आधुनिक स्त्रियाँ महँगाई की तनिक भी चिन्ता न करके केवल सोने का ही गहना पहिनने लगी है। किबहुना गाँवों में निर्धन तथा नीच जाति की स्त्रियाँ भी अब गले में सोने की हँसुली और हाथों में सोने की ही चूड़ियाँ अथवा बेरा पहिनती हैं।

आभूषण-प्रियता का अभाव अब पुरुष वर्ग में भी दिखायी पड़ने लगा है। पहिले छोटे-छोटे लड़कों को कान में बाला, हाथ में बेरा और पैरों में 'गोड़ाव' नामक आभूषण पहिनाया जाता था। वे जब विवाह करने के लिए जाते थे तब भी इन गहनों से सुशोभित रहते थे। इनके अतिरिक्त वे हाथ में सोने की अँगूठी और गले में हार भी पहिन लिया करते थे। वर का गहनों से अलंकृत होना आवश्यक समझा जाता था।

परन्तु आजकल गाँवों में कोई भी लड़का बाला, गोड़ाव और बेरा नहीं पहिनता और विवाह के लिए जाने वाला वर भी केवल अँगूठी पहिन कर ही आत्म संतोष कर लेता है। इसका कारण कुछ यह भी है कि पहिले लड़कों का विवाह बहुत छोटी आयु में होता था, अतः उनके लिए गहना उनके सौन्दर्य का आवश्यक अंग समझा जाता है। परन्तु अब मुख्यन्दर लड़कों का ही विवाह होने लगा है। अतः इनके लिए आभूषण के स्थान पर वस्त्रों की ही प्रधानता होती है। कहने का आशय यह है कि अब गहना फैशन की सूची से नीचे गिरता जा रहा है और इसका स्थान धीरे-धीरे नये डिजाइन तथा नये प्रकार के वस्त्र लेते जा रहे हैं।

### (५) अनुच्छेद—(क) गृह निर्माण

गाँवों में पहिले कच्चे मकान बनते थे जिनकी दीवालें मिट्टी की बनी होती थीं और ऊपर नरिया तथा खपड़ा से उन्हें छा दिया जाता है। इन्हें खपरैल का मकान भी कहा जाता है। जो व्यक्ति अधिक गरीब हैं वे छप्पर का मकान बनवाते हैं जिसकी दीवालें अरहर के सूखे पौधे—रहरेठा—की होती है और ऊपरी भाग सरकण्डे से छाया जाता है। गंगा अथवा अन्य किसी नदी के किनारे जो मकान बनाये जाते हैं वे प्रायः छप्पर के ही होते हैं क्योंकि बाढ़ आने के कारण प्रतिवर्ष उनके गिर जाने का भय बना रहता है। इन्हीं छप्पर के मकानों की अधिकता के कारण कितने भोजपुरी प्रदेश के गाँवों का नाम 'छपरान्त' पड़ गया है। जैसे दया छपरा, दूबे छपरा, करन छपरा तथा लछुमन छपरा आदि।

परन्तु आजकल जो मकान बनाये जा रहे हैं वे प्रायः पक्के होते हैं। अर्थात् उनकी दीवालें ईंट की होती है और उसका ऊपरी भाग पत्थर की पटिया देकर पाट दिया जाता है अथवा लिण्टल करके पक्का सीमेण्ट का बना दिया जाता है। कुछ लोग ईंटों की दीवालें को बनाकर घर को खपरैल से भी छा देते हैं। परन्तु लिण्टल करने का फैशन अब अधिक जोर पकड़ता जा रहा है। अब प्रायः प्रत्येक गाँव में दो चार पक्के मकान देखने को मिल सकते हैं। नये धनी व्यक्ति तो अब कच्चा मकान बनवाते ही नहीं। संभवतः पक्का मकान उनकी समृद्धि का मापदण्ड माना जाता है।

अब गृह निर्माण की सामग्री अथवा उपकरण में ही परिवर्तन नहीं हो रहा है बल्कि गृह-रचना की प्रणाली में भी अनेक सुधार किये जा रहे हैं। कच्चे मकानों में खिड़कियों का प्रायः अभाव हुआ करता था। अतएव मकान के भीतर वायु तथा प्रकाश के प्रवेश करने का अवसर ही नहीं मिलता था। मकान में लगे हुए दरवाजे बहुत छोटे होते थे जिनमें वामन भगवान् का कोई विरादर ही आसानी से घुस सकता था। लम्बे आदमियों की तो मुसीबत ही थी। इसके अतिरिक्त घर में न तो कोई आल-मारी होती थी, और न ताखा। पुराना घर क्या था पूरा जेलखाना था।



परन्तु आजकल जो पक्के मकान बनाये जा रहे हैं उनमें प्रचुर संख्या में खिड़कियाँ होती हैं जिससे वायु और प्रकाश मिल सके। प्रत्येक कमरे में आलमारी होती है। कुछ घरों में धुआँ के बाहर निकलने के लिए 'धुँआकस' भी बने रहते हैं जिनका पहले नितान्त अभाव था।

अब राज्य सरकार की कृपा से अनेक गाँवों में टीबुल (ट्यूबवेल) भी लग गये हैं जहाँ बिजली से पानी खींचा जाता है। कुछ धनी मानी लोगों ने इन ट्यूबवेलों से बिजली लेकर अपने घरों में भी लगा ली है। अतः उनके अँधेरे घरों में अब बिजली का प्रकाश दिखायी पड़ता है। अब वह दिन दूर नहीं है जब गाँवों के सारे घर बिजली की रोशनी से चमचमा उठेंगे।

### (ख) गृह सामग्री

अब गँवई के लोगों के घरेलू सामान में भी अन्तर दिखाई पड़ने लगा है। पहिले घर में केवल बाध की चारपाई होती थी जो मूँज की रस्सी से बुनी जाती थी। यह बड़ी कर्कश होती थी। अतः बाँध की खुरहरी खाट पर सोना कठोर तपस्या करने से कुछ कम कठिन नहीं था। कुछ समृद्ध घरों में ही सुतली की चारपाई पायी जाती थी। परन्तु आज गाँवों में भी पलँग का प्रचार होने लगा है। धनी लोग नेवार से बुने हुए पलँग पर सोते हैं और धीरे-धीरे बाध तथा सुतली की चारपाई का स्थान पलँग लेने लगा है। पहिले विवाह के अवसर पर कन्या के गवना के समय सुतली की चारपाई दी जाती थी। परन्तु अब गरीब और अमीर सभी लोग पलँग देने में ही अपनी शान समझते हैं।

गाँवों में अतिथि के बैठने के लिए काठ की बनी चौकी दी जाती थी। परन्तु अब कुर्सी का प्रबन्ध किया जाता है। बिछाने के लिये प्रयुक्त होने वाली दरी और लेवा के स्थान तोसक ने ले लिया है। ओढ़ने के लिए रजाई के स्थान पर लिहाफ और दोहरि के स्थान रैपर पर का प्रयोग किया जाने लगा है। धनी लोग शाल भी ओढ़ते हैं।

### (६) अनुच्छेद—मनोरंजन के साधन

गाँवों में मनोरंजन का साधन पहिले कथा या कहानी सुनना था। गाँव के बूढ़े सन्ध्या के समय अपने द्वार पर जाड़े के दिनों में आग जला कर तापा करते थे जिसे 'कउड़ा' कहा जाता था। इसी समय उस मुहल्ले के लड़के एकत्रित होते थे और उस 'कउड़ा' के चारों ओर आग तापने के लिए बैठ जाते थे। बूढ़े बाबा बच्चों के मनोरंजन के लिए कोई कहानी सुनाया करते थे जिसे सुनकर बच्चे लोट लोट हो जाते थे। यही क्रम जाड़े भर तक, पाँच छः मास तक चलता रहता था। इसके अतिरिक्त कोई कथा वाचक गाँव में रामायण की कथा कहने लगता था तो उसे सुनने के लिए गाँव के बाल-वृद्ध नियमित रूप से जाते थे। इस प्रकार धार्मिक कथाओं तथा लोक-कहानियों के द्वारा लोगों का मनोरंजन हुआ करता था। युवकगण ताश खेल कर अपना समय बिताया करते थे।

परन्तु अब स्थिति बिल्कुल बदल गयी है। अब जाड़े के दिनों में न तो 'कउड़ा' जलाया जाता है और न उन हास्य रसो-त्पादक कहानियों के कहने वाले बूढ़े ही रह गये हैं। जो वृद्ध वशिष्ठ बच गये हैं वे काल के गाल में जाने के लिए अपने दिन गिन रहे हैं। जनता की धर्म में श्रद्धा तथा भक्ति में ह्रास के कारण अब धार्मिक कथावाचकों ने भी गाँवों में जाना छोड़ दिया है। क्योंकि अब न तो गाँवों में धार्मिक कथाओं को सुननेवाले श्रोता ही मिलते हैं और न उन्हें कोई आर्थिक लाभ ही होता है। ऐसी दशा में कथा और कहानी के द्वारा जन मन का अनुरंजन होना संभव नहीं है।

अब गाँवों में रेडियो का प्रचार धीरे-धीरे बढ़ रहा है। प्रत्येक ग्राम-प्रमुख को सरकार की ओर से एक रेडियो सेट दिया गया है जिससे जनता को नये समाचार मिल सके। और उनका मनोरंजन भी हो सके। गाँव के लोग रात को ग्राम-प्रमुख के घर एकत्रित होते हैं और बड़े प्रेम से रेडियो पर गाना सुनते हैं। ग्रामीणों के मनोरंजन का दूसरा साधन नाटक करनेवाली कम्पनियाँ (थियेट्रिकल कम्पनी) हैं जो मेला-टोला में आकर अपने नाटकों का अभिनय दिखा कर लोगों के दिल को प्रसन्न कर देती हैं। इन कम्पनियों में हाथरस की नौटंकी प्रसिद्ध है। मनोरंजन का अन्य साधन नाच पार्टियाँ हैं जो विवाह के अवसर पर अपनी कला का प्रदर्शन करती हैं। इन पार्टियों में अधिकतर कमसीन लड़के होते हैं जिन्हें 'लौंडा' कहा जाता है। ये अपनी कृत्रिम वेशभूषा के द्वारा स्त्रियों का अनुकरण कर नाचते, गाते और अभिनय करते हैं।

खेल—गाँवों में पहिले कबड्डी, गुल्ली-डंडा, चीका आदि खेलों का प्रचुर प्रचार था। बच्चों के अतिरिक्त वयस्क लोग भी कबड्डी में भाग लिया करते थे। स्वयं इन पंक्तियों के लेखक ने अपने लड़कपन में कबड्डी तथा गुल्ली-डंडा का खेल खूब खेला है। परन्तु अब इन देशी खेलों के स्थान पर विदेशी खेल हाकी, फुटबाल और क्रिकेट का भी गाँवों में प्रवेश हो गया है। गाँवों में खुले मैदानों की कुछ कमी नहीं है। अतः गँवई के लड़के कभी भी 'गोल' की स्थापना करके फुटबाल और हाकी का खेल खेलना



शुरू कर देते हैं। फुटबाल खेलने के लिए वे कहीं से खर का गेना (गेंद) प्राप्त कर लेते हैं। यदि इसकी प्राप्ति संभव न हो सकी तो कपड़े का बना हुआ 'गेना' ही वे प्रयोग में लाते हैं और इसी को पैरों से 'किक' करके फुटबाल खेलने की अपनी 'साध' मिटाते हैं।

हाकी खेलने का भी गाँवों में प्रचार हो चला है परन्तु फुटबाल की अपेक्षा वह कम है। इसका प्रधान कारण इस खेल के साधनों की अनुपलब्धि है। गाँवों में हाकी की स्टिक कीमती होने के कारण उपलब्ध नहीं होती। अतः इस खेल के शौकीन बालक किसी ऐसी लकड़ी को काटकर हाकी बनाते हैं जिसका अगला सिरा मुड़ा रहता है। हाकी के कड़े गेंद के अभाव में वे 'कैथा' के फल का प्रयोग करते हैं जो हाकी के बाल की ही तरह गोल और कठोर होता है। इन्हीं बालकों में से एक रेफरी बन जाता है और खेल का कार्य सुचारु रूप से संचालित होने लगता है।

गाँवों में वच्चे अब क्रिकेट का भी खेल खेलते हैं। परन्तु विकेट और बल्ला के अभाव में उन्हें बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है। विकेट के स्थान पर तीन छोटी छोटी लकड़ियों को काट कर वे स्थापित कर देते हैं और बल्ला के स्थान पर वे लकड़ी की एक चौड़ी पट्टी ले लेते हैं। वे खर अथवा कपड़े की बनी गेंद को अपने बल्ले से मारते हैं और इस प्रकार अपना 'रन' बनाते हैं। अधिक तामग्री की आवश्यकता होने के कारण यद्यपि इसका प्रचार अभी कम है परन्तु इसका शौक बढ़ता जा रहा है।

गाँवों में कौड़ियों के द्वारा जुआ खेलने का प्रचार था। परन्तु इसका स्थान अब ताश का जुआ लेता जा रहा है। अब लोग, विशेषकर नवयुवक, ताश खेलते समय उसके पत्तों पर दाँव लगाते और जुआ खेलते हैं। पहिले निठल्ले लोग शतरंज का खेल खेला करते थे परन्तु इसकी प्रथा अब धीरे-धीरे उठ रही है। नवयुवक कैरेमबोर्ड पर कैरेम का खेल खेलकर अपना मनोरंजन किया करते हैं।

## (२) परिच्छेद

### आर्थिक जीवन में परिवर्तन

भोजपुरी जनता के आर्थिक जीवन में भी बहुत बड़ा परिवर्तन हो रहा है। यद्यपि अनेक अनुसन्धानों के होने तथा अनेक साधनों के उपलब्ध होने पर भी जनता की गरीबी अभी दूर नहीं हुई है, वह पैर तोड़कर आसन जमाये हुए हैं। परन्तु कृषि सम्बन्धी अनेक सुविधाओं के प्राप्त होने के कारण कृषकों का जीवन समृद्धि के पथ की ओर अग्रसर हो रहा है। यों तो ग्रामीण जनता के जीवन में सर्वाङ्गीण परिवर्तन के चिन्ह दिखायी पड़ रहे हैं परन्तु कृषि के क्षेत्र में यह सर्वाधिक दृष्टिगोचर होता है।

#### (१) अनुच्छेद—(क) खेत जोतने का साधन

पहिले ग्रामीण अपने हल और बैल की सहायता से अपने खेतों की जुताई करते थे। दिन रात परिश्रम करने के पश्चात् भी वे एक बीघा खेत को भी एक दिन में नहीं जोत पाते थे। परन्तु ट्रैक्टर के आविष्कार से उनकी यह कठिनाई अब दूर हो गयी है। ट्रैक्टर मोटर से चालित वह मशीन है जिसके पिछले भाग में लोहे के बीसियों हल (लोहे के फाल) लगे रहते हैं। मोटर के चलने पर ये फाल जमीन में घुसकर एक या दो फीट नीचे की धरती की मिट्टी को उखाड़ देते हैं। इस प्रकार एक ट्रैक्टर एक दिन में बीसियों बीघा खेत जोत सकता है। अब किसान को जेठ की दुपहरी में अपनी काञ्चन काया की जलाने की आवश्यकता नहीं है। वह इस ट्रैक्टर की सहायता से सैकड़ों बीघा खेत को दो-चार दिनों में जोत कर इस काम से छुट्टी पा सकता है।

यद्यपि गाँवों में हल और बैलों के द्वारा आज भी खेतों की जुताई होती है परन्तु वह दिन दूर नहीं है जब ट्रैक्टरों से सभी खेतों की जुताई होने लगेगी। ट्रैक्टरों का मूल्य आज कल बहुत अधिक है। गरीब किसान चालीस हजार रुपये को खर्च करके ट्रैक्टर खरीदने में अभी असमर्थ है। परन्तु किसी धनी किसान से किराये पर ट्रैक्टर लेकर वह भी अपने खेतों को जुतवा रहा है।

#### खेतों की कटाई, दवाई और ओसाई के नवीन साधन

खेतों की कटाई, दवाई और ओसाई के नवीन साधन—खेतों के पक जाने पर उसको काटने के लिए मजदूरों की एक पूरी सेना जुटानी पड़ती थी और उसे निश्चित समय के भीतर काटना आवश्यक होता था। अतः किसानों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। इसी प्रकार कटे अन्न को खलिहान में रखा जाता था जिसकी बैलों के द्वारा दबोरी की जाती थी।



दिन भर, किसान दो-तीन दिनों तक एक 'पैर' की दँवरी करते रहते थे। तब कहीं जाकर वह तैयार होता था। इसके पश्चात् 'ओसावनि' की बारी आती थी। इसके लिए हवा के रुख की प्रतीक्षा कई दिनों तक करनी पड़ती थी। क्योंकि किसानों का विश्वास है कि पछुआ हवा में ही ओसावनि हो सकती है। पुरुवा इसके लिए उपयुक्त नहीं है। फिर सूप से ओसावनि का क्रम महीनों तक चलता रहता था।

परन्तु अब इन कामों के लिए मशीन का आविष्कार हो जाने के कारण इनमें बड़ी सहूलियत हो गयी है। काटने वाली मशीनों से घंटों में खेत में खड़ी फसल काटी जा सकती है और 'थ्रेशर' नामक यंत्र के द्वारा दँवरी और ओसावनि एक ही साथ होती चलती है। इस यंत्र में से एक ओर भूसा गिरता जाता है और दूसरी ओर अन्न। इस प्रकार महीनों का कार्य अब कुछ ही दिनों में समाप्त हो जाता है। किसान को अब तो दँवरी करने के लिए न बैलों की आवश्यकता है और न 'ओसावनि' के लिए हवा के रुख की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

पहिले खेतों में से कटी हुई फसल को खलिहान में लाने में या तो बैलगाड़ी का प्रयोग किया जाता था अथवा मजदूर अपने सिर पर रखकर उस 'बोझा' को लाता था। परन्तु ट्रैक्टर में लगे हुए 'ट्रेलर' के द्वारा अब यह समस्या भी दूर हो गयी है। ट्रैलर में जितना चाहे उतना बोझा लाद कर खलिहान में कुछ मिनटों के अन्दर पहुँचाया जा सकता है। ट्रैक्टर के द्वारा याता-यात में भी बड़ी सुविधा उत्पन्न हो गयी है। किसान अपने ट्रैक्टर में बैठकर खेतों पर जा सकता है और ट्रैलर में सब पैदावार को लाद कर यथेच्छ स्थान को पहुँचा सकता है।

गाँवों में पहिले गोबर की खाद ही खेतों में डाली जाती थी। खेतों की उत्पादन शक्ति को बढ़ाने का यही एकमात्र साधन था। परन्तु अब 'यूरिया' के द्वारा खेतों की उर्वरा शक्ति में शताधिक वृद्धि की जा सकती है। अब गाँवों में 'कम्पोस्ट' की खाद भी तैयार की जाने लगी है जो बहुत सस्ती तथा सरल पड़ती है।

यूरिया के अतिरिक्त अमोनिया सल्फेट तथा अन्य रासायनिक खादों का भी प्रयोग किया जाने लगा है जिससे खेतों की पैदावार में आशातीत वृद्धि हुई है। धान और गेहूँ की खेती में इन खादों का प्रयोग बड़ा ही सफल सिद्ध हुआ है।

### (ख) सिंचाई के साधन

पहिले सिंचाई के प्रधान साधन मोट और रहट थे जिनका पहिले उल्लेख किया जा चुका है। परन्तु सरकार ने अब ट्यूबवेलों की स्थापना गाँवों में कर दी है। इन ट्यूबवेलों से खेतों में पानी को ले जाने के लिए पक्की नालियाँ बनायी गयी हैं जिससे पानी सभी जगह सरलता से जा सके। जहाँ पहिले एक बीघा खेत को मोट से सींचने में दो दिन लग जाते थे वहाँ अब केवल एक घंटे में ही एक बीघे का पूरा खेत सींचा जा सकता है। इस प्रकार किसानों को बिजली के द्वारा यह सिंचाई सस्ती और सुलभ है।

कुछ धनी तथा समृद्ध लोग अपने खेत में पम्पिंग सेट लगा लेते हैं जिससे सरकारी ट्यूबवेलों—जिसे लोक-भाषा में, 'टीबुल' कहा जाता है—की उन्हें अपेक्षा नहीं रहती और वे स्वतंत्र रूप से अपने खेतों की सिंचाई आवश्यकतानुसार जब चाहें कर सकते हैं। यद्यपि सरकार द्वारा बिजली की सतत 'सप्लाई' न होने के कारण इस सिंचाई में बाधा उपस्थित हो जाती है फिर भी इन साधनों से किसानों को प्रचुर सुविधा प्राप्त हो गयी है।

### (ग) बीजों के उन्नत प्रकार

खेती में पहिले पुराने बीजों का ही प्रयोग किया जाता था जिससे पैदावार में कुछ विशेष उन्नति नहीं होती थी। परन्तु अब धान और गेहूँ के विभिन्न प्रकार के बीज आविष्कृत किये गये हैं तथा कुछ विदेशों से मँगाये गये हैं जिससे फसल में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिए 'टाइचून' धान को लिया जा सकता है जो जापानी धान का एक प्रकार है। इसका पौदा बहुत छोटा होता है और इसमें बहुत 'बाल' लगती हैं। यह दो-तीन मास में ही पक कर तैयार हो जाता है। इस प्रकार इस धान की पैदावार अधिक होती है। यह साठी चावल की भाँति साठ दिन में तैयार हो जाता है।

इसी प्रकार से 'के-६८' नामक गेहूँ का बीज अधिक उपजाऊ होता है। 'नरमा' गेहूँ पैदा तो अधिक मात्रा में होता है परन्तु इसका छिलका बड़ा कड़ा होता है। गेहूँ के अन्य बीजों के कुछ किस्मों के नाम अनेक हैं जिनके द्वारा किसानों को बहुत लाभ होता है। पहिले खेती श्रमसाध्य थी परन्तु अब अर्थ साध्य हो गयी है। नये बीजों के द्वारा अत्यधिक पैदावार होने के कारण खेती न अब जीविका के साधन के स्थान पर व्यवसाय या व्यापार का रूप धारण कर लिया है।

अब खेती की प्राचीन पद्धति को तिलाञ्जलि देकर जापानी पद्धति से धान की खेती होने लगी है। इस पद्धति के अनु-



सार धान के पौधे एक नियमित दूरी पर बोये जाते हैं जिससे उनकी पैदावार अधिक होती है। गेहूँ को बोने में भी कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है जो अधिक फलदायी होता है।

गन्ने की नयी किस्मों का भी आविष्कार किया गया है जिनमें अधिक रस रहता है। इससे गुड़ को बड़ी मात्रा में बनाया जा सकता है। अब दो प्रकार के गन्ने पैदा किये जाते हैं। (१) सरस तथा स्वादिष्ट जिनका उपयोग प्रधानतया चूसने के लिए किया जाता है। (२) दूसरे वे जिनसे अधिक गुड़ बनाया जा सकता है।

अन्नों के समान ही शाक-सब्जी के भी अब नये बीज प्रयोग में लाये जाते हैं। आलू, गोभी, टमाटर और बैंगन के नये बीजों के कारण इनके आकार-प्रकार में अत्यधिक वृद्धि हो गयी है। अब एक आलू सौ ग्राम, पाँच सौ ग्राम किंवा एक किलो वजन तक बड़ा पैदा किया जाता है। गोभी भी बहुत बड़ी तैयार की जाती है। रामनगरी बैंगन अपनी भारी-मरकम आकृति के लिए प्रसिद्ध है। टमाटर के रूप में तो अभी अधिक वृद्धि नहीं हुई है परन्तु इसकी पैदावार बहुत अधिक बढ़ गयी है। यह सब नये बीज तथा यूरिया खाद का प्रसाद है। किसान लोग अब शाक-सब्जी व्यावसायिक रूप में उगाने लगे हैं।

## (२) अनुच्छेद—यातायात के साधन

पहिले यातायात के साधन बहुत सीमित थे। एक नगर से दूसरे नगर को जाने के लिए केवल कच्ची सड़क थी और गाँव को जाने के लिए केवल पगदण्डी ही एक मात्र साधन थी। परन्तु बरसात के समय में इनका भी उपयोग करना कठिन था। कितने गाँव ऐसे थे जहाँ से रेलवे स्टेशन बीसियों मील दूर था। अतः रेल तथा सड़कों के अभाव में जन-जीवन बहुत संकुचित तथा कष्टमय था।

परन्तु अब यातायात में प्रचुर उन्नति हुई है। अब गाँवों तक जाने के लिए सड़कें बन गयी हैं तथा बनायी जा रही हैं। डक्का, रिक्शा और ताँगों के साधन से अब किसी भी गाँव में पहुँचना कठिन नहीं है। अनेक प्रधान सड़कों को पक्का बना करके उन्हें 'प्राविशियालाइज' कर दिया गया है अर्थात् उनकी देखरेख और मरम्मत का कार्य राज्य सरकार के जिम्मे आ पड़ा है। इसी प्रकार रेलों का जाल भी बिछाया जा रहा है। अनेक स्थानों पर जहाँ रेलें नहीं थी वहाँ उसका निर्माण कर जन-जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने का उपाय सरकार पर रही है। भोजपुरी प्रदेश में मीटर गेज (छोटी लाइन) की प्रधानता है उसके स्थान पर ब्राड गेज (बड़ी लाइन) को पटरी बिछाई जा रही है।

भोजपुरी क्षेत्र में नदियों पर पुल न होने के कारण अन्य नगरों में जाने के लिए बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। विशेषकर सोनपुर और पटना, के बीच में गंगा पर पुल न होने के कारण बिहार के दोनों भागों के लोग सहती कठिनाई का अनुभव कर रहे थे। स्टीमरों के डूब जाने के कारण सैकड़ों व्यक्तियों का जीवन नष्ट हो गया। केन्द्रीय तथा राज्य सरकार ने जनता की इस दुःख तथा कठिनाई को देखकर गंगा के ऊपर पुल बनाने का शुभारम्भ किया जो अब तैयार हो गया है। इसी प्रकार से बक्सर, गाजीपुर तथा मिर्जापुर के पास गंगा में पुल के अभाव में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। अन्य अनेक स्थानों पर भी पुल बनाने की योजना तैयार कर ली गयी है। इन पुलों के बन जाने से यातायात में बड़ी सुविधा हो जायेगी तथा इस क्षेत्र की समृद्धि में भी वृद्धि होगी।

बसों के चलने से भी आवागमन में बड़ी सुविधा हो गयी है। अब भोजपुरी प्रदेश के सभी नगरों में बसों का जाल बिछ गया है और एक नगर से दूसरे स्थान को जाना सरल है। इस प्रकार सड़क तथा रेलों एवं पुलों के निर्माण से तथा बसों के चलने से यातायात की समस्या हल हो गयी है।

## (३) अनुच्छेद—बाट और माप में परिवर्तन

पहिले किसी वस्तु को तोलने की सबसे छोटी इकाई छटाँक थी। इसके पश्चात् पावभर, अघसेरा, सेर, पसेरी, तथा मन तथा टन हुआ करता था। परन्तु अब इसके स्थान पर ग्राम, किलो ग्राम, क्विन्टल तथा मेट्रिक टन हो गया है। इसी प्रकार चाँदी तथा सोना आदि धातुओं के तौल के लिए रत्ती, माशा और तोला का प्रयोग किया जाता था। परन्तु इनका स्थान अब ग्राम तथा दस ग्राम ने लिया है। पहिले सोना तोला के भाव से बिका करता था परन्तु अब दस ग्राम के तौल से बिकता है।

पहिले दूध और घी आदि द्रव पदार्थों के 'तोलने के लिए छँटाक, सेर, पसेरी को ही प्रयोग में लाया जाता था। परन्तु अब लीटर से इनका माप किया जाता है। इसी प्रकार से कपड़ा को इंच, गिरह और गज के द्वारा नापते थे परन्तु अब इसके स्थान को मीटर ने ले लिया है। खेतों का विस्तार धूरि, कट्ठा (डिसमिल) और बीघा आदि नापों के द्वारा जाना-जाता



था परन्तु अब बीघा के स्थान पर एकड़ तथा हैक्टेयर का प्रचार हो गया है। इस प्रकार हमारे देसी बाटों और मापों में आमूल परिवर्तन करके दशमलव प्रणाली (डिसेमल सिस्टम) की स्थापना की गयी है जो विदेशी प्रणाली का अनुकरण मात्र है।

### (४) अनुच्छेद—सिक्का

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व इस देश में रुपया, आना, पैसा आदि सिक्कों का प्रचलन था। गोरखपुरिया 'डेबुआ' भी गाँवों में चलता था। परन्तु अब सिक्का में दशमलव प्रणाली का प्रयोग होने के कारण आना को विनिमय की प्रणाली से बिल्कुल हटा दिया गया है और अब रुपया और पैसा का ही प्रयोग होने लगा है। पहिले एक रुपये में चौसठ पैसे होते थे परन्तु अब सौ पैसों का एक रुपया होता है। पहिले नोटों की सबसे छोटी इकाई एक और अन्तिम इकाई दस हजार होती थी। परन्तु अब बीस और पचास रुपयों के नोट भी चालू हो गये हैं। इसी प्रकार से चाँदी के रुपयों की उच्चतम इकाई एक थी परन्तु अब महात्मा गांधी के स्मारक में शुद्ध चाँदी के दस रुपयों का सिक्का प्रचलित किया गया है।

स्वराज मिलने के पश्चात् देशी बाट, माप तथा सिक्कों में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया गया है। यद्यपि लीटर, मीटर और ग्राम को समझने में ग्रामीणों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है परन्तु परिवर्तन के नाम पर अब इस नवीन दशमलव प्रणाली ने अपना स्थान बना लिया है और धीरे धीरे यह स्थायिता को प्राप्त कर रही है।

### (३) परिच्छेद

### धार्मिक जीवन में परिवर्तन

पाश्चात्य शिक्षा के कारण हमारे धार्मिक जीवन में भी बड़ा परिवर्तन उपस्थित हो गया है। अब न लोगों की धर्म में आस्था है और न गुरु तथा 'उपरोहित' में श्रद्धा। आज कल स्कूल और कालेजों में जो शिक्षा दी जा रही है उसमें धर्म का तनिक भी लेश नहीं है। प्राचीन काल में गुरुकुलों में धार्मिक शिक्षा दी जाती थी जिससे छात्र अपने धर्म, साहित्य और संस्कृति से परिचित होते थे। परन्तु आजकल शिक्षा के क्षेत्र से धर्म का बहिष्कार कर दिये जाने के कारण आधुनिक युवक अधार्मिक बनता जा रहा है।

भारत सरकार ने इस देश को 'धर्म निरपेक्ष' राष्ट्र घोषित किया है। इसका बहुत से लोग 'अधार्मिक राष्ट्र' अर्थ लगाने लगे हैं। सरकार के द्वारा धर्म के सम्बन्ध में यह 'तटस्थता' बड़ी घातक सिद्ध हो रही है। लोगों की भावना धर्म से हटती जा रही है। यही कारण है कि हमारे धर्मशास्त्रियों के द्वारा संस्थापित वर्णाश्रम धर्म में व्यत्यय पैदा हो गया है जो समाज की नींव थी। ऐसी दशा में हमारे धार्मिक जीवन में उथल पुथल का स्वाभाविक ही है।

हमारे धर्मशास्त्रियों ने षोडश संस्कारों का विधान किया है जिनमें से कुछ सन्तति के जन्म के पहिले किये जाते थे और कुछ बाद में। जन्म से पूर्व के संस्कारों में 'पुंसवन-संस्कार' प्रसिद्ध है। जन्म के पश्चात् पुत्रजन्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना और मृत्यु संस्कार प्रधान रूप से आज भी प्रचलित हैं।

परन्तु इन संस्कारों में आज महान् परिवर्तन हो गया है। आज पुत्रजन्म के पहिले कोई भी शास्त्रीय संस्कार नहीं किया जाता। हाँ, पुत्रजन्म के पश्चात् वाले संस्कार अवश्य ही सम्पादित किये जाते हैं परन्तु उनका भी रूप बड़ा ही विकृत और परिवर्तित हो गया है।

### (१) अनुच्छेद—पुत्र जन्म

भोजपुरी प्रदेश में पुत्र जन्म के अवसर पर अनेक प्रकार के विधि-विधान किये जाते थे। बहुत से निषेधों (Taboo) का पालन किया जाता था। बच्चा को जनने के लिए एक विशेष घर निश्चित रहता था जिसमें परिवार की सभी स्त्रियाँ बच्चा जनती थीं। ऐसे घर को 'सउरि' कहा जाता था। बच्चा पैदा होने पर कोई भी व्यक्ति इस सूतिका गृह (सउरि) में प्रवेश नहीं कर सकता था। यदि चमाइन (धगड़िन) तथा घर की स्त्रियाँ जाती भी थी तो पैर धोकर तथा पवित्र होकर ही प्रवेश पा सकती थीं अन्यथा नहीं। सूतिका गृह के द्वार पर चौबीस घंटे 'पौड़ी' में आग जलती रहती थी जिससे कोई दुष्ट आत्मा (Evil spirit) सउरि में प्रवेश न कर सके। घर का दरवाजा कभी खोला नहीं जाता था। स्त्रियों का ऐसा विश्वास था कि हवा के साथ 'जम' (यमराज) 'सउरि' में प्रवेश कर जाता है और नव जात शिशु को मार डालता है।

परन्तु आज ये परम्परायें धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही हैं। आज गाँवों में भी मातृरक्षा गृह (मेटर्निटी सेन्टर) खुलते जा रहे हैं जिनका उद्देश्य गर्भवती स्त्रियों को सुविधा प्रदान करना है। अब स्त्रियाँ अपने घर के 'सउरि' में बच्चा पैदा न करके



अस्पतालों में अथवा मातृरक्षा गृहों में जनती हैं। यहाँ जच्चा और बच्चा दोनों को स्वच्छ कमरे में रखा जाता है। ताजी हवा के आने देने के लिए कमरा के दरवाजे सदा खुले रहते हैं। कोई भी व्यक्ति नर्स, धाय, डाक्टरिनी आदि वहाँ अप्रतिनिषिद्ध प्रवेश कर सकता है। अब न तो हास्पिटल में आग जलायी जाती है और न दरवाजा ही बन्द रखा जाता है। अब न तो वहाँ जम-राज के आने का डर है और न बुरी आत्माओं के प्रवेश का भय। इस प्रकार मातृरक्षा गृह अथवा अस्पताल में बच्चा पैदा होने से हमारी पुरानी मान्यतायें नष्ट होती जा रही हैं।

पहिले पुत्र के पैदा होते ही गाँव के पुरोहित जी बुलाये जाते थे। वे बालक की कुण्डली तैयार करते थे और उसका फल भी बतलाते थे। वे जच्चा के सूतिकागृह से बाहर निकलने की तिथि तथा उसके स्नान के लिए पवित्र दिन का निर्णय करते थे। परन्तु अस्पताल में बच्चा पैदा होने के कारण अब इस दिन का निर्णय लेडी डाक्टर अथवा नर्स करती हैं।

धनी मानी व्यक्ति पुत्र जन्म के उत्सव के फलस्वरूप अपने घर पर 'पर्वेरियों' का नाच करवाते थे जो अनेक दिनों तक लगातार चलता रहता था। इस अवसर पर समृद्ध लोग गाँव के ब्राह्मणों को अन्न और धन दक्षिणा में दिया करते थे। परन्तु अब कमरतोड़ मँहगाई के कारण यह प्रथा धीरे धीरे नष्ट होती जा रही है।

स्त्रियाँ पुत्र की उत्पत्ति के लिए षष्ठी माता तथा जीवित पुत्रिका का व्रत करती थीं और भगवान् से कम से कम सात पुत्रों को देने की प्रार्थना करती थी। परन्तु अब पुत्रोत्पत्ति के लिए शायद ही कोई स्त्री व्रत करती है। क्योंकि युवावस्था में विवाह होने के कारण अब पुत्र की प्राप्ति अनायास ही हो जाती है। अब षष्ठी व्रत में पानी में घंटों खड़े रह कर पुत्र के लिए प्रार्थना की आवश्यकता नहीं है।

## (२) अनुच्छेद—मुण्डन

गाँवों में जब बालक एक वर्ष अथवा तीन वर्ष का हो जाता है तब उसका मुण्डन संस्कार किया जाता था। यह संस्कार किसी नदी के तट पर अथवा किसी पवित्र तीर्थ स्थान पर सम्पादित होता था। यह संस्कार अत्यन्त आवश्यक था। परन्तु अब इस संस्कार को भी कोई नियमित रूप से नहीं करता। पुत्री का मुण्डन संस्कार कोई करता ही नहीं। हाँ पुत्र का अवश्य किया जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय तो इस संस्कार पर कुछ ध्यान देते हैं परन्तु नीची जातियों में इसका विधान नहीं पाया जाता। वे यदि कदाचित् करते भी हैं तब विषम वर्ष का विचार न कर अपनी डच्छानुसार इसे सम्पादित कर देते हैं।

## (३) अनुच्छेद—यज्ञोपवीत संस्कार

शास्त्रकारों ने द्विजों—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए यज्ञोपवीत संस्कार का विधान किया है। ब्राह्मण-पुत्र के लिए आठवें वर्ष में, क्षत्रिय के लिए बारहवें वर्ष और वैश्य बालक के लिए सोलहवें वर्ष में जनेऊ का होना आवश्यक बतलाया गया है। प्रत्येक यज्ञोपवीती को गायत्री मंत्र का जप करना चाहिए और शौचादि करते समय शुद्धता की दृष्टि से जनेऊ को अपने दाहिने कान पर चढ़ा लेना चाहिए। यज्ञयागादि के विधान में तथा श्राद्धादिकर्म करते समय यज्ञोपवीत की अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि उसमें सव्य तथा अपसव्य होने का उल्लेख पाया जाता है। यज्ञोपवीत संस्कार के बाद ही द्विजातियों के पुत्रों का अक्षरारम्भ संस्कार सम्पादित होता था और वे गुरुकुल में पढ़ने के लिए जाया करते थे।

परन्तु आजकल इस संस्कार की कितनी छीछालेदर पायी जाती है उतना अन्य किसी की भी नहीं। जिन द्विजातियों के लिए मनु ने इस संस्कार को अनिवार्य बतलाया है उनमें से कोई भी जाति इस संस्कार को अब नहीं करती। किंबहुना ब्राह्मण जाति जो अग्रजन्मा है, जो धार्मिक क्रियाकलापों की संरक्षिका मानी जाती है, वह भी अपने पुत्रों का यज्ञोपवीत संस्कार नियम-पूर्वक नहीं करती। मनु के अनुसार ब्राह्मण-बालक का यज्ञोपवीत संस्कार आठवें वर्ष में हो जाना चाहिए। यदि सोलह वर्षों तक यह संस्कार सम्पादित न किया जाय तब बालक ब्राह्मण हो जाता है और उसके संस्कार करने की आवश्यकता नहीं रहती।

परन्तु अब परिस्थिति यह है कि आठ वर्ष की कौन कहे अब अठारह वर्ष तक ब्राह्मण-बालकों का भी यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता। इसका कारण धार्मिक संस्कारों के प्रति घोर उपेक्षा और समधिक अनास्था ही समझनी चाहिए। अब पढ़े लिखे विद्वान् ब्राह्मण भी इस संस्कार की उपेक्षा कर अपने बालकों का जनेऊ नहीं करते। कुछ आर्थिक कारणों से भी विवाह के एक

१. इन पंक्तियों का लेखक काशी के एक महान् संस्कृत के विद्वान् को जानता है जिन्होंने अपने पुत्र का २५ वर्षों तक यज्ञोपवीत संस्कार नहीं किया था और विवाह के एक दिन पूर्व असमय में ही इस रस्म की अदायगी विन्ध्याचल में जाकर कर दी।



दिन पूर्व ही अपने पुत्रों का जनेऊ कर देते हैं। परन्तु जनेऊ न करने का कारण उतना आर्थिक नहीं है जितना धार्मिक। अब न तो धर्म के प्रति किसी की आस्था है और न संस्कारों के प्रति अनुराग। यही इस उपेक्षा का प्रधान कारण समझना चाहिए।

प्राचीन काल में यज्ञोपवीत, विद्यारम्भ और समावर्तन तीन पृथक् पृथक् संस्कार थे जो अनेक वर्षों के अन्तराल पर किये जाते थे। यज्ञोपवीत आठ वर्ष की अवस्था में किया जाता था और समावर्तन संस्कार बालक के विद्याध्ययन समाप्त करने के पश्चात् पचीस वर्ष की आयु में सम्पन्न होता है। परन्तु आजकल जो यज्ञोपवीत संस्कार होता है उसमें उपर्युक्त तीनों संस्कार कुछ चन्द घंटों के अन्दर ही समाप्त कर दिये जाते हैं। ब्रह्मचारी अपनी पटरी और पोथी लेकर विद्याध्ययन के लिए काशी जाने का अमिनय दो चार पग चलकर करना ही चाहता है कि इतने में उसे बुला लिया जाता है। उसके समावर्तन संस्कार की तैयारी भी की जाने लगती है। इस प्रकार यह संस्कार अब विडम्बना मात्र रह गया है।

जिन बालकों का यज्ञोपवीत संस्कार किया जाता है वे न तो गायत्री का मंत्र जानते हैं और न इसके जानने की कभी कोशिश करते हैं। गायत्री मंत्र का जप करने की बात तो बहुत दूर रही। इसी प्रकार वे संस्कार के पश्चात् जनेऊ को निकाल कर फेंक देते हैं और यदि कदाचित् धारण भी करते हैं तो शौचादि के समय कान पर नहीं चढ़ाते। अब जनेऊ का एकमात्र उपयोग उसमें चाभी बाँधना ही रह गया है। इस प्रकार जनेऊ अब आडम्बर हो गया है। अतः इसे कोई करना नहीं चाहता।

### (४) अनुच्छेद—विवाह

विवाह हमारा सबसे प्रसिद्ध तथा लोक-प्रिय संस्कार है। अतः इसे किसी न किसी रूप में सभी लोग अवश्य मनाते हैं। पहिले बाल-विवाह की प्रथा भयंकर रूप से प्रचलित थी। आठ-दस वर्ष के लड़कों तथा लड़कियों का विवाह आठ-दस वर्षों में निश्चित रूप से सम्पन्न हो जाता था। किमधिकम् दो तीन वर्ष की आयु के बच्चे भी दूल्हा बनकर विवाह के लिए जाते दिखायी पड़ते थे। ये विवाह के अवसर पर रात्रि में सो जाते थे और 'सुमंगली' विधि का विधान नाइन अथवा दार्ई उन बच्चों के स्थान पर किया करती थी। इस दूषित प्रथा के साथ वृद्धविवाह भी प्रचलित था। 'गलितनखदन्त' सफेद बाल और पोपले मुँह वाले वृद्ध बाबा भी अपने चौथा या पाँचवाँ विवाह करने के लिए वर बन कर जाते थे।

परन्तु अब बाल और वृद्धविवाह की घृणित, निन्दित तथा दूषित प्रथा का प्रायः अन्त हो गया है और अब इसके ठीक विपरीत प्रौढ़ विवाह की प्रथा का प्रचार हो रहा है। अब कुछ लड़के तो तीस और चालीस वर्ष तक कुंवारे ही रहते हैं।

विवाह में पहिले लड़कीवाला लड़केवाले से विवाह का प्रस्ताव करते समय उससे बच्चे की जन्मकुण्डली माँगता था जिसे 'टीपन' कहते थे। इस कुण्डली के साथ अपनी लड़की की कुण्डली का वह किसी ज्योतिषी से मिलान करता था जिसमें दोनों के गुण, वर्ण और नाड़ी पर विचार किया जाता था। कन्या और वर मंगली तो नहीं है इसका भी पता लगाना आवश्यक समझा जाता था। सभी प्रकार से दोनों की कुण्डली मिलने के पश्चात् ही विवाह संबंध स्थापित किया जाता था।

पहिले विवाह-संबंध स्थापित करने के पूर्व वर तथा कन्या दोनों पक्षवाले एक दूसरे की कुलीनता का पता लगाते थे। दोनों के कुलीन तथा ब्राह्मण होने पर ही यह सम्बन्ध किया जाता था। जिस प्रकार कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में 'विस्वा' कुलीनता का मापदण्ड है उसी प्रकार सरयूपारीण ब्राह्मणों में 'तीन-तेरह' का विचार किया जाता था। गर्ग, गौतम और शाण्डिल्य इन तीन गोत्रवाले ब्राह्मण अपने को अत्यन्त उत्तम मानते थे तथा अन्य तेरह गोत्रवालों को निकृष्ट समझते थे। इसी प्रकार से गोरखपुर तथा देवरिया जिलों के निवासी ब्राह्मण अपने को 'पंक्तिपावन ब्राह्मण' घोषित करते हुए अपनी कुलीनता तथा उत्तमता की डुगडुगी पीटते थे, जब कि उनका खान-पान तथा नैतिक आचरण अत्यन्त निकृष्ट था।

परन्तु अब समय के परिवर्तन के साथ ही इन विचारों में भी बड़ा परिवर्तन हो गया है। अब जन्मकुण्डली का वह महत्त्व नहीं रह गया जो पहिले था। आज भी वर-कन्या की जन्मकुण्डली मिलाती जाती है लेकिन यह बिल्कुल ही औपचारिक है। अनेक स्थानों पर तो कन्या की बोगस (फर्जी) जन्मकुण्डली बनाकर मिलान करने का अमिनय किया जाता है। अब कुण्डली में गुण, नाड़ी और वर्ण की भी कोई चिन्ता नहीं करता। यदि कुण्डली का अभाव हो तो भी विवाह में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती।

पहिले वर तथा कन्या की कुलीनता पर विशेष ध्यान रखा जाता था। परन्तु इसका विचार भी प्रायः अब कोई नहीं करता। अब विवाह का एक मात्र निर्णायक तत्व धन रह गया है। यदि कोई गाँठ का पूरा लड़की वाला मुँहमाँगा तिलक-दहेज देने के लिए तैयार है तो जन्मकुण्डली मिले या न मिले विवाह अवश्य हो जाता है। ऐसी दशा में कुलीनता को भी तिलांजलि दे दी जाती है और "तीन-तेरह" के विचार को ताक पर रख कर आँख मूँदकर विवाह कर लिया जाता है।



आज कल तिलक दहेज की प्रथा इतने भयंकर रूप से प्रचलित हो गयी है कि इसके आगे सभी सामाजिक बन्धन तथा वैवाहिक नियम शिथिल तथा ध्वस्त हो जाते हैं। लालची वर का पिता तिलक के रूप में मिलनेवाली धन की राशि के सामने कन्या पक्ष के सभी दुगुणों अर्थात् उसकी अकुलीनता, असांस्कृतिकता तथा अपने से हीनता का तनिक भी ख्याल न करके सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। कहने का आशय यह है कि पहिले विवाह का निर्णायक तत्त्व कुलीनता थी परन्तु अब उसका एकमात्र कारण वह विपुल धन की राशि है जो वर के पिता को कन्या के पिता से 'फोकट' में मिलती है।

विवाह के विधि-विधानों तथा रीति रिवाजों में भी अब अन्तर आने लगा है। पहिले बारातियों की संख्या तीन-चार सौ से कम नहीं होती थी जिसमें हाथी, घोड़े, ऊँट, बैलगाड़ी तथा पैदल चलने वाले लोग चतुरंगिणी सेना का दृश्य उपस्थित करते थे। बारात में हाथियों की संख्या जितनी अधिक होती थी उसकी उतनी ही प्रशंसा होती थी। परन्तु महँगाई के इस भीषण युग में बारातियों की संख्या अँगुलियों पर गिनने लायक हो गयी है तथा हाथी और घोड़े की संख्या भी शून्यता को प्राप्त हो गयी है।

पहिले विवाह में कन्या और वर का कुछ में हाथ नहीं रहता था। माता-पिता ही विवाह का निश्चय कर लिया करते थे। परन्तु अब प्रौढ़ लड़कों का विवाह होने लगा है जो शिक्षित होने के साथ ही अर्थ की चिन्ता से मुक्त हैं। ऐसी दशा में पिता अपने पुत्र से बिना राय लिये, उसकी सम्मति को बिना जाने कहीं विवाह तय करने की हिम्मत नहीं कर सकता। यद्यपि लड़कियाँ इस सम्बन्ध में आज भी इतनी मुखर तथा स्वतन्त्र नहीं हैं फिर भी अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, उनकी भी सम्मति लेनी पड़ती है।

पचास वर्षों पूर्व विवाह के पूर्व कन्या को देखने की प्रथा नहीं थी। परन्तु आजकल कन्या को बिना देखे विवाह होना संभव नहीं है। आधुनिक वर अपनी भावी पत्नी के दर्शन के लिए नाना प्रकार के उपाय रचते हैं। वे गंगा के तट पर स्नान करने वाली अथवा मंदिर में दर्शन के लिए जानेवाली अपनी प्रियतमा की बाँकी झाँकी पाने के लिए मार्ग में घंटों प्रतीक्षा करते रहते हैं। कुछ अधिक साहसिक वर कन्या का निरीक्षण उसके पिता के घर में ही करते हैं। इस प्रकार कन्या को पहिले देखकर विवाह करना तथा इस सम्बन्ध में वर की सम्मति की प्रधानता का होना ये दो नयी बातें हैं जिनका पहिले प्रचार नहीं था।

### (५) अनुच्छेद—गवना

पहिले विवाह होने के पश्चात् प्रथम, तृतीय, पंचम, सप्तम तथा नवम अर्थात् विषम वर्षों में लड़की की विदाई की जाती थी जिसे 'गवना' कहते थे। चूँकि उन दिनों छोटी छोटी बच्चियों का ही विवाह कर दिया जाता था अतः पाँच या सात वर्षों के पश्चात् उनका गवना होना उचित ही था। परन्तु इस प्रथा में बुराई यह थी कि विवाह के बाद इतने वर्षों तक गवना न होने के पहिले वर स्वर्गलोक की यात्रा करने चला जाता था। इस प्रकार उस बाल विधवा को आजीवन वैधव्य की नरक यातना भुगतनी पड़ती थी।

परन्तु आज बच्चों के स्थान पर प्रौढ़ लड़कों का विवाह होने लगा है। लड़कियाँ भी युवावस्था प्राप्त करने पर ही विवाह के योग्य समझी जाती हैं। ऐसी स्थिति में वर और कन्या दोनों के वयस्क होने के कारण गवना के लिए इतने वर्षों की प्रतीक्षा करने के आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। आजकल जो विवाह हो रहा है उनमें कन्या की विदाई विवाह के समय ही कर दी जाती है। परन्तु यदि किसी विशेष कारण से उस समय विदाई न हो सकी तो एक वर्ष के भीतर उसका होना प्रायः अनिवार्य है। आजकल के युवक और युवतियाँ विवाह के बाद पाँच-सात साल तक मिलन की प्रतीक्षा नहीं कर सकते।

### (६) अनुच्छेद—मृत्यु संस्कार

यह मानव जीवन का अन्तिम संस्कार है। पहिले जब कोई अधिक बीमार हो जाता था और उसके जीवन की आशा बिल्कुल जाती रहती थी तब उसके परिवार के लोग उसे चारपाई से उठाकर जमीन पर सुला देते थे जिसे 'मुँई सेज' देना कहते थे। उसके मुँह में गंगा जल और तुलसी का दल डाला जाता था तथा उससे रामनाम कहने के लिए कहा जाता था। लोगों का ऐसा विश्वास था ऐसा करने से मृत आत्मा को सद्गति प्राप्त होती है।

परन्तु आजकल जो धनीमानी और समृद्ध व्यक्ति हैं वे अपने परिवार के किसी सदस्य के बीमार होने पर उसे अस्पताल में दाखिल कर देते हैं। इससे उसके औषधि के प्रबन्ध में सुविधा होती है तथा सदा अनुभवी डाक्टरों की सहायता प्राप्त होती रहती है। परन्तु बीमारी के असाध्य होने पर अस्पताल की चारपाई पर ही इनकी मृत्यु हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में उन्हें 'मुँईसेज' देने और उनके मुख में गंगाजल डालने की तौबत ही नहीं आती। आजकल अधिकांश धनी व्यक्तियों की मृत्यु अस्प-



ताल में हो रही है जहाँ मरने के पूर्व किये जानेवाले धार्मिक विधि-विधानों को करने के लिए न तो अवकाश ही होता है और न स्थान ही।

मृत्यु के पूर्व गोदान करने की परम्परा थी। मरते हुए व्यक्ति के हाथ में गाय की पूँछ देकर उसका दान कर ब्राह्मण को दे दिया जाता था। लोगों का यह विश्वास है कि इससे बैतरणी तैरने में सहायता मिलती है। परन्तु अब गायों का मूल्य अत्यधिक हो जाने के कारण अब धनी तथा समृद्ध व्यक्ति ही इस प्रथा का निर्वाह करने में समर्थ हो सकते हैं। निर्धन तथा सामान्य व्यक्ति के लिए गोदान करना उसकी सामर्थ्य के बाहर है।

पहिले मृतक की अन्त्येष्टि बड़े ठाट वाट से की जाती थी। ब्राह्मण तथा महाब्राह्मण को हजारों रुपयों का सामान—अन्न, वस्त्र तथा वर्तन आदि—दिया जाता था। ब्रह्मभोज में सैकड़ों ब्राह्मणों को बुलाया जाता था। इस मृत्यु-भोज में जितने ही अधिक ब्राह्मणों को खिलाया जाता था उतना ही प्रशंसा का विषय माना जाता था। परन्तु इस सम्बन्ध में लोगों की भावनाओं में बड़ा परिवर्तन आ गया है। अन्त्येष्टि के विभिन्न विधि-विधानों को अब पढ़े लिखे तथा विद्वान् 'टिटिम्मा' कहकर इसकी उपेक्षा करने लगे हैं। मृत्युभोज में ब्राह्मणों की संख्या में भी बड़ा संकोच हो गया है और अब 'तेरही' के दिन तेरह ब्राह्मणों को खिलाना ही पर्याप्त समझा जाता है। कुछ आर्थिक कारणों तथा कुछ श्रद्धा के अभाव से इस संस्कार में शिथिलता आने लगी है।

### (७) अनुच्छेद—धार्मिक जीवन में परिवर्तन

व्रतों के विधान का अभाव—हमारे धर्मशास्त्रकारों ने अनेक व्रतों तथा त्यौहारों का विधान धर्म का अंग बतलाया है। पहिले रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, महाशिवरात्रि, अक्षय नवमी, रक्षाबन्धन आदि अनेक व्रतों को बड़ी श्रद्धा से किया जाता था। भक्त गण दिनभर उपवास करते थे और रात्रि में जागरण कर भगवान के भजन में लगे रहते थे। परन्तु आजकल इन व्रतों का महत्त्व श्रद्धा के अभाव में नितान्त क्षीण होता जा रहा है। गाँवों में इन व्रतों का विधान भले ही कुछ लोग करते हों परन्तु शहरों में इनका क्रमशः अभाव दिखायी पड़ता है। अक्षय नवमी को आँवले के वृक्ष के नीचे ब्राह्मणों को खिलाना तथा स्वयं भोजन करना पुण्यदायक माना जाता था। परन्तु शहरों में आँवले के वृक्ष के अभाव के कारण न तो कोई ब्राह्मणों को भोज देता है और न स्वयं ही इस पुण्यकार्य को करता है।

रक्षाबन्धन के दिन श्रावणी कर्म का विधान ब्राह्मणों के लिए अत्यन्त आवश्यक बतलाया गया है। परन्तु शायद ही किसी सामान्य ब्राह्मण ने 'श्रावणी' का नाम भी सुना हो। इस कर्म को करने की बात तो कोसों दूर रही ब्राह्मणों का यह व्रत अब अज्ञानता के कारण सर्वथा नष्ट होता जा रहा है।

नवरात्र के दिनों में दुर्गा सप्तशती के पाठ का विधान बतलाया गया है। इन दिनों में उपवास भी रखना चाहिए। परन्तु गाँवों तथा नगरों में शायद ही दो-चार ब्राह्मण ऐसे हों—काशी नगरी को छोड़कर—जो इसका पाठ करते हों। निर्जला एकादशी, महाशिवरात्रि, रामनवमी आदि के दिन उपवास बहुत ही कम लोग करते हैं।

स्त्रियों के कई व्रतों का भी धीरे धीरे ह्रास किंवा नाश हो रहा है। पिंडिया एक ऐसा ही व्रत है जिसे कुवारी लड़कियाँ अपने भाई की मंगल कामना के लिए किया करती थीं। इस व्रत को एक मास तक किया जाता था और प्रातः तथा सायं पिंडिया की कथा को सुनकर लड़कियाँ अन्न ग्रहण करती थी अन्यथा नहीं। परन्तु इस व्रत का अब अभाव हो गया है और नयी कालेज की शिक्षिता लड़कियाँ इस व्रत के नाम से भी परिचित नहीं हैं। इसके विधान करने की कथा तो दूर की बात है। इसी प्रकार से 'खर जिउतिया' (जीवित पुत्रिका) व्रत का भी लोप हो रहा है। परिवार नियोजन के इस युग में स्त्रियों को अधिक पुत्रों के प्राप्ति की कामना अब नहीं रही। अब केवल होली, दिवाली और दशहरा—ये ही हमारे प्रधान त्यौहार हैं इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं कि निकट भविष्य में व्रतों का सर्वथा लोप हो जायेगा तथा कोई उपवास नहीं रखेगा।

पितृपक्ष के दिनों में पितृहीन व्यक्ति के लिए पितरों को जलांजलि देना आवश्यक धार्मिक कार्य समझा जाता था। जिस दिन अथवा तिथि को माता-पिता की मृत्यु हुई रहती थी उस तिथि को अथवा महालया के दिन ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था। परन्तु अब न तो कोई पितरों को तिलांजलि देता है और न उनके नाम पर ब्राह्मण भोजन ही कराता है। काशी में इसकी परम्परा अवश्य अभी भी चली आ रही है परन्तु इसे अपवाद ही समझना चाहिए, सामान्य नियम नहीं।

लोक विश्वासों में ह्रास—हमारे शास्त्रों में अनेक लोक-विश्वासों का वर्णन पाया जाता है। तेल लगाने, क्षौरकर्म करने, किसी स्थान से प्रस्थान करने के सम्बन्ध में अनेक विधि-निषेध बतलाये गये हैं। किस दिन तेल लगाना उचित है, किस तिथि को क्षौर कर्म करना निषिद्ध है, किस दिन तथा नक्षत्र में यात्रा करना शुभ अथवा अशुभ है इन विषयों का विस्तृत विवेचन शास्त्रों में पाया जाता है।



परन्तु समय की परिवर्तित गतिविधि के कारण इन लोक-विश्वासों में महान् परिवर्तन उपस्थित हो गया है। अब कोई व्यक्ति तेल लगाते समय न तो तिथि का विचार करता है और न हजामत बनाते समय दिन का। यात्रा करनी आवश्यक होने के कारण अब दिग्गूल के विचार को भी तिलांजलि दे दी गयी है। इस मशीन युग के व्यस्त मानव को अब तिथि, दिन तथा नक्षत्र के शुभाशुभ होने की न तो कोई चिन्ता है और इन विधिनिषेधों को पालन करने का अवकाश। वह अपनी आवश्यकता तथा स्वतंत्र इच्छा से उपर्युक्त कार्यों को करता है। यदि वह यात्रा के लिए शुभ मुहूर्त देखने लगे तो उसके जीवन की गाड़ी ही छूट जाय। इस प्रकार नयी परिस्थितियों के कारण लोक-विश्वासों में क्रमिक ह्रास होता जा रहा है।

**परिवार नियोजन**—इधर अनेक वर्षों से हमारी केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों ने परिवार नियोजन (फेमिली प्लानिंग) की योजना चालू कर रखी है। परिवार नियोजन की स्कीम को वास्तव में 'परिवार संकोचन' ही कहना चाहिए जिसका प्रधान उद्देश्य यह है कि अधिक बच्चे न पैदा किये जायें। सरकारने केवल दो बच्चों को ही पैदा करने की अनुमति प्रदान की है। परन्तु भूल-चूक से यदि तीसरा भी बच्चा पैदा हो जाय तो वह क्षन्तव्य है। परन्तु इससे अधिक बच्चों को पैदा करना अपराध है। सरकार अब दो से अधिक बच्चों को पैदा करने वाले लोगों को हतोत्साहित करती है। पहिले सरकारी नौकरी में रहने वाली स्त्रियों को प्रत्येक बच्चा के पैदा होने के अवसर पर "मेटर्निटी लीव" दिया करती थी परन्तु अब यह छुट्टी केवल दो ही बच्चों के लिये ही दी जाती है। यदि कोई सरकारी नौकरी में निरत महिला तीसरा बच्चा पैदा करती है तो उसे अब 'मेटर्निटी लीव' नहीं दी जाती।

सरकार ने परिवार नियोजन के लिये एक दूसरा उपाय भी निकाल रखा है और वह उपाय है—गर्भपात। ब्रिटिश सरकार के जमाने में गर्भपात कराना नैतिक पतन के साथ ही कानूनी जुर्म भी था और यह दण्डनीय अपराध माना जाता था। परन्तु हमारी सरकार ने इस कानूनी अपराध को अब वैधता प्रदान कर दी है। इतना ही नहीं, अनेक सरकारी अस्पतालों में गर्भपात कराने की अनेक सुविधायें कर दी गयी हैं जहाँ जाकर स्त्रियाँ आसानी से यह कार्य कर सकती हैं।

धार्मिक दृष्टि से विचार किया जाय तो गर्भपात कराना एक अनैतिक कार्य है। भ्रूण की हत्या कराने का न तो हमें नैतिक अधिकार प्राप्त है और न कानूनी ही। परन्तु इस कार्य को वैधता प्रदान किये जाने के कारण अब इस कर्म का सारा कलुष धुल कर नष्ट हो गया है। अब कुमारी लड़कियाँ भी इस कर्म को करने में कुछ संकोच नहीं करतीं। पहिले अविवाहित मातृत्व घोर निन्दा का कारण माना जाता था परन्तु अब यह एक सामान्य घटना बन गया है। इससे समाज में अनाचार का प्रचार होता जा रहा है और यह आशंका है कि निकट भविष्य में नैतिक बन्धन यूरोप की ही भाँति, नितान्त शिथिल पड़ जायेंगे। अभी गाँवों में यह रोग नहीं फैला है परन्तु यह भय है कि शीघ्र ही इसका प्रचुर प्रचार हो जायेगा।

## (४) परिच्छेद

### (क) सांस्कृतिक जीवन में परिवर्तन

पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से हमारी संस्कृति में भी महान् परिवर्तन परिलक्षित होता है। सच तो यह है कि पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से हमारी संस्कृति की नींव ही हिल उठी है। हमें अपनी संस्कृति के प्रति घोर उपेक्षा और उदासीनता ही नहीं उत्पन्न हो गयी है बल्कि हम इसे घृणा की दृष्टि से भी देखने लगे हैं। आज का नवयुवक भारतीय संस्कृति से इतना परान्मुख हो गया है कि उसे अपनी प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर से वितृष्णा हो गयी है। वह अपने प्राचीन आदर्शों को भूलकर पश्चिमी सभ्यता की अन्धाधुन्ध नकल कर रहा है। अनुकरण की इस दौड़ में वह अपनी बुराइयों को छोड़ने के स्थान पर अपनी सांस्कृतिक विरासत को ही तिलांजलि दे रहा है। ऐसी विषम परिस्थिति में भारतीय संस्कृति का भविष्य बड़ा ही अन्धकारपूर्ण दिखायी पड़ रहा है।

#### (१) माता और पिता की घनघोर उपेक्षा

हमारे प्राचीन शास्त्रों में लिखा है कि माता, पिता और गुरु को देवता के समान समझो। प्राचीन काल में गुरुकुलों में समावर्तन संस्कार के अवसर पर कुलपति यह उपदेश देता था कि 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव।' माता, पिता और गुरुओं का आदर-सत्कार करना, उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति प्रदर्शित करना हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग था।

परन्तु आजकल के नवयुवक अपने पिता तथा माता की घोर उपेक्षा कर रहे हैं। संयुक्त परिवार में पिता का महत्त्वपूर्ण स्थान था। परन्तु हिन्दू संयुक्त परिवार के विघटन के साथ ही माता तथा पिता के प्रति श्रद्धा का भी विघटन हो रहा है। आज का नवयुवक यूरोप की नकल करता हुआ व्यक्ति स्वातंत्र का पुजारी है। अतः वह विवाह होते ही अपने स्त्री को लेकर



अपनी नौकरी पर चला जाता है और बूढ़े माता-पिता को अपने भाग्य पर रोने के लिए उन्हें घर पर छोड़ जाता है। वह न तो आर्थिक सहायता करता है और न उनकी सुधि-बुधि ही लेता है। इस प्रकार उस बूढ़े पिता की बुढ़ापे की लकड़ी सदा के लिए नष्ट हो जाती है। कितने धनवान् पुत्रों के वृद्ध माता-पिता आज भोजन के लिए तरस रहे हैं। दाने-दाने के लिए मोहताज हो रहे हैं परन्तु 'काले साहब' को इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं होती।

## (२) गुरुओं के प्रति विद्रोह

भारतीय संस्कृति में माता और पिता के पश्चात् गुरु का ही स्थान माना जाता था। 'आचार्य देवो भव' का उपदेश देकर ऋषियों ने गुरु को देवता का स्थान प्रदान किया है। परन्तु अब गुरु अपने प्राचीन पद से गिर गया है। समाज में गुरु का अब वह आदर, सन्मान तथा प्रतिष्ठा नहीं है जो पहिले थी। आज के छात्र-विशेषकर महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय के विद्यार्थी—गुरुओं का आदर नहीं करते। उनकी आलोचना करना ही छात्रों का एकमात्र काम है। विश्वविद्यालयों में आये दिन हड़ताल का होना इस बात का प्रमाण है कि गुरुओं के प्रति कितनी उपेक्षा है।

समाज में अव्यापक, बेचारा तथा निरीह जीव समझा जाता है। उसका न तो समुचित आदर होता है और न वह सन्मान का ही अधिकारी है। इस प्रकार जो प्राचीन श्रद्धा और भक्ति गुरु के प्रति थी उसका सर्वथा ह्रास होता जा रहा है। अब आवश्यकता इस बात की है कि गुरु को पुनः उसके प्राचीन उच्च स्थान पर प्रतिष्ठापित किया जाय। तभी अनुशासन की समस्या का समाधान हो सकता है अन्यथा नहीं।

## (३) प्राचीन आदर्शों का ह्रास

प्राचीन भारतीय लोगों का आदर्श "साधारण जीवन और उच्च विचार" (सिम्पुल लिविंग एण्ड हाई थिंकिंग) था। वे अपना जीवन अत्यन्त सादा और विचारों को अत्यन्त उन्नत रखते थे। जंगल में निवास करनेवाले ऋषि और मुनि, कौपीन धारण करके, महान् दार्शनिक समस्याओं को मुलझाया करते थे। वे ब्रह्म, जीव और जगत् सम्बन्धी सिद्धान्तों पर विचार करते तथा उसके अनुरूप अपनी जीवन चर्या को बनाते थे। सादगी हमारी संस्कृति का मूल आधार था और उच्च विचार उसका फल था।

परन्तु आज कल इस सिद्धान्त में नितान्त परिवर्तन हो गया है। आज का नवयुवक उच्च जीवन और सादा विचार (हाई लिविंग एण्ड सिम्पुल थिंकिंग) में विश्वास करता है। वह बहुमूल्य वस्त्रों को धारण करता है। पाश्चात्य देशों का अनुकरण कर वह कोट, पैण्ट और टाई पहिनता है और वह भी वेशकीमती। उसके विचार की सरणी बहुत सीधी सादी है। वह 'फैशनपरस्ती' के जीवन में विश्वास करता है। परन्तु आचरण को पूत और पवित्र बनाने की चिन्ता नहीं करता। 'अक्षीणः वित्ततः क्षीणो, वृत्ततस्तु हतो हतः' इस प्राचीन आदर्श को उसने भुला दिया है और झूठे पश्चिमी आदर्शों पर आस्था करता है।

## (४) देवी देवताओं में अनास्था

आजकल लोगों में अपने देवी और देवताओं के प्रति घोर अनास्था उत्पन्न हो गयी है। विशेषकर नवयुवकों में आस्था का नितान्त अभाव पाया जाता है। वे किसी प्राचीन धार्मिक विधि-विधानों को मानने के लिए तैयार नहीं हैं और न प्राचीन मान्यताओं को स्वीकार करते हैं। साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित नवयुवक तो धर्म को अफीम (ओपियम) मानते हैं और इसे समाज को विघटित करने का प्रधान कारण बताते हैं। ऐसी दशा में अपनी संस्कृति में आस्था रखना, अपने देवी-देवताओं के प्रति सम्मान दिखलाने की उनसे आशा करना दुराशा मात्र है। माता और पिता को देवता माना जाता है। परन्तु जब आज का युवक घर के देवता का ही आदर नहीं करता तब मंदिर के देवता के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करना उसके लिए असंभव ही है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि बहुत से देवताओं के मंदिर दर्शनार्थियों के अभाव में यों ही सूने पड़े हुए हैं और उनमें किसी प्रकार के राग-भोग का भी प्रबन्ध नहीं है। ऐसी विषम परिस्थिति में धर्म का ह्रास हो रहा है और हमारी संस्कृति का स्वरूप धूमिल पड़ता जा रहा है।

प्राचीन काल में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन पचीस वर्षों तक करना आवश्यक था। परन्तु अब दस पन्द्रह वर्ष की आयु में ही विवाह हो जाने के कारण ब्रह्मचर्य का पालन कठिन हो गया है यदि कोई नवयुवक बीस-पचीस वर्षों तक कुंवारा रह भी जाता है तो वह इस व्रत का पालन कितनी मात्रा से करता है यह कहना कठिन है।

(५) अपरिग्रह का अभाव—आज सभी लोग अर्थ-संग्रह की चिन्ता से ग्रस्त हैं। सभी येन-केन प्रकारेण अपनी 'घर-गिर-हस्ती' जोड़ने में लगे हुए हैं। अतः अपरिग्रह की भावना का सर्वथा अभाव हो गया है। गृहस्थों की बात तो दूर रही, जो लोग



साधु-संन्यासी का बाना धारण कर अपने को तथाकथित वीतरागी होने का दावा करते हैं, वे लोग भी परिग्रह की भावना से बुरी तरह से पीड़ित हैं। आज संन्यासियों का 'सिंहासनाब्ध' होना और महन्तों का 'तस्तनशीन' होना उनकी अपरिग्रह-भावना को झुठला रहा है। अब धर्म के ठीकादारों की यह दशा है तब सामान्य जनता के विषय में कुछ कहना ही व्यर्थ है।

आज अहिंसा व्रत का पालन केवल शब्दकोष का विषय बन गया है। हिंसा के कारण हमारे चारों ओर का वातावरण इतना विषाक्त हो गया है कि शुद्ध वायु में साँस लेना भी कठिन है।

### (६) प्राचीन आदर्शों के प्रति उदासीनता

हमारी प्राचीन संस्कृति के स्तम्भ थे—सत्य का पालन, धर्म का आचरण, हिंसा न करना, अपरिग्रह व्रत का धारण, शौच का आचरण, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन, क्षमा, दया, और करुणा आदि सद्गुणों का आचरण। मनु ने धर्म के जो दश लक्षण बतलाये हैं वे ही हमारी संस्कृति की आधारशिला थी। उनका पालन करके हम संस्कृति की रक्षा में तत्पर रहते थे।

परन्तु अब ऐसा ज्ञात होता है कि हमारी संस्कृति की आधारशिला को ही मानों किसी ने झकझोर दिया हो। हमारी संस्कृति का महान् प्रासाद ताश के घर की तरह अथवा बालू की भीति की भाँति भरभरा कर गिरता जा रहा है और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि यह कुछ ही वर्षों में भूमिसात हो जाय।

जहाँ तक सत्य के पालन का प्रश्न है इसके सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अब हम सत्य के मार्ग से बहुत दूर हट गये हैं। हमारा जीवन असत्य भाषण से ओत-प्रोत है। ऐसी ही अवस्था का वर्णन गोस्वामी जी ने निम्नांकित पंक्तियों में किया है:

“झूठे ही ओढ़न, झूठेहि डासन।” आदि।

आज छोटी-छोटी बातों के लिए झगड़ा-टंटा, मार-पीट, खून खिंचकर हो रहा है। सूई के नोक के बराबर भी जमीन के लिए हाईकोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया जा रहा है।

दया और करुणा जैसी सात्विक वृत्तियों के लिए किसी के हृदय में अवकाश ही नहीं रह गया है। इन उदात्त वृत्तियों का ह्रास हो जाने के कारण अब किसी निर्धन को देखकर करुणा की वृत्ति जाग्रत नहीं होती और न किसी दुखिया को देखकर उसकी दशा पर दया ही आती है। दरिद्रों को दान देना और उनकी सहायता करना धर्म बतलाया गया है परन्तु अब शायद ही कोई दीन-दुखिया की सहायता करने के लिए अपनी थैली की डोरी को खींचता या सरकाता है।

इन्द्रिय निग्रह के सम्बन्ध में मौन का अवलम्बन ही श्रेयस्कर है। आज देश में इतना अनाचार और व्यभिचार फैला हुआ है जिससे सदाचार का सर्वथा लोप दिखायी पड़ता है। इन्द्रिय लोलुपता की अनेक घटनायें रोज ही सामने आती हैं। कामाचारी लोगों की अधिकता के कारण इन्द्रिय निग्रह करना अत्यन्त कठिन हो गया है। इस प्रकार हमारी सांस्कृतिक भावना के ह्रास के कारण अपनी पुरातन संस्कृति का पतन हो रहा है। सर्वत्र इस संस्कृति का सर्वांगीण सर्वनाश उपस्थित हो गया है।

### (ख) राजनैतिक जीवन में उथल-पुथल

भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के पूर्व हमारा ग्रामीण जीवन सुखद और शान्त था। उसमें शान्ति का अखण्ड साम्राज्य विराजमान था। लोग सुख की नींद सोते थे और बड़े चैन से दिन बिताते थे।

परन्तु स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् बालिग मताधिकार सभी के लिए सुलभ कर दिया और फेंकरू, घुरहू और कत-वारू सभी लोग पाँच वर्षों में एक बार मतदान करने लगे। फिर भी लोग राजनीति के चक्कर से अप्रभावित थे। बालिग मताधिकार की प्राप्ति के पश्चात् गाँवों में पंचायतराज भी लागू कर दिया गया जिसके अनुसार गाँव का प्रत्येक बालिग व्यक्ति ग्राम पंचायत में वोट देने का अधिकारी बन गया है। पहिले पंचायत, का चुनाव 'नान-पार्टी बेसिस' (दल विहीन-आधार) पर किया जाता था। परन्तु अब गाँवों में भी कांग्रेस, सोशलिस्ट तथा कम्युनिस्ट पार्टियों का प्रवेश हो गया है। ये पार्टियाँ पंचायत के चुनाव में भी अब भाग लेने लगी हैं और विषाक्त राजनैतिक प्रचार करके ग्रामीण वातावरण को दूषित करने लगी हैं। अब गाँव में कोई व्यक्ति कांग्रेसी है तो कोई जनसंघी, कोई सोशलिस्ट है तो कोई कम्युनिस्ट।

गाँवों में राजनीति के प्रवेश के कारण अनेक दुष्परिणाम दिखायी पड़ रहे हैं। सबसे बड़ी बुराई तो यह पैदा हो गयी है कि गाँव की शान्ति सदा के लिए नष्ट हो गयी। जो ग्रामीण पहिले शान्तिपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता था, वह अब इस ग्रामीण राजनीति के चक्कर में पड़ गया है और इसकी परेशानी के कारण उसकी नींद हराम हो गयी है।

इसका दूसरा दुष्परिणाम सहयोग तथा एकता का अभाव है। ग्रामीण जीवन की गाड़ी सहयोग तथा सहानुभूति के दो पहियों पर चला करती थी। विवाह आदि में सभी लोग समान रूप से एक दूसरे का सहयोग करते थे और एक दूसरे के दुःख



में सहानुभूति दिखलाते थे। गाँव के व्यक्तियों का जीवन सहकारिता की दृढ़ नींव पर आश्रित था। एक आदमी की इज्जत गाँव की इज्जत समझी जाती थी और उसका अपमान पूरे गाँव का अपमान या वेइज्जती थी। परन्तु अब गाँवों में न तो सहकारिता की भावना शेष रह गयी है न सहयोग की। सब की 'अलग अलग दफली और अपना अपना राग' है। शहरों की भाँति अब गाँव में भी किसी का दूसरे से विशेष प्रेम अथवा अनुराग नहीं है। जब लगाव ही नहीं तो राग कहाँ से होगा।

गाँवों में राजनीति के प्रवेश का तीसरा दुष्परिणाम सामाजिक संगठन में उच्छृंखलता और असंतुलन का प्रवेश है। पहिले सभी वर्ण अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए सन्तोष लाभ करते थे। परन्तु 'पंचायत घर' की राजनीति के कारण बड़ी अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी है। अब सभी चुनाव बहुमत से होते हैं। उच्च वर्ण के लोगों में एकता के अभाव के कारण, नीच जाति के लोग अपनी संख्या-गत अधिकता तथा संगठन शक्ति के कारण चुनाव में विजयी हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप चिथरू चमार और मँगरू घोबी ग्राम पंचायत के प्रधान हो जाते हैं। इस कारण उच्च जातियों में असंतोष फैलता है और गाँवों में घृणा और वैमनस्य के बीज का वपन हो रहा है। यह सत्य है कि लोकतंत्र में अधिक मत पानेवाले की ही विजय होती है परन्तु इस चुनाव की प्रथा का गाँवों में भी प्रचार होने के कारण, गँवई के लोगों में परस्पर घृणा और विराग की भावना व्याप्त हो रही है। इससे समाज का सामाजिक संगठन टूटता जा रहा है। लोगों में न तो सहयोग की भावना रह गयी है और न पारस्परिक प्रेम की। सहकारिता का भाव तो अब सदा के लिए नष्ट ही हो गया।

**उपसंहार**—गत पृष्ठों में भोजपुरी समाज में जो परिवर्तन आ गये हैं तथा जो धीरे-धीरे आ रहे हैं उनका एक संक्षिप्त लेखा जोखा प्रस्तुत किया गया है। यह परिवर्तन समाज के क्षेत्र में सबसे अधिक परिलक्षित होता है। सच तो यह है कि समाज का कोई भी ऐसा अंग नहीं है जो आधुनिक सभ्यता से प्रभावित न हो। क्या खान-पान और क्या वेशभूषा, क्या संस्कार तथा क्या प्रथाएँ, क्या रहन-सहन और क्या विधि-विधान सभी में पाश्चात्य संस्कृति का रंग गहरा दिखायी पड़ता है।

आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन हो गया है। कृषि के साधनों में उन्नति, सिंचाई की नवीन विधियाँ, सुधारे गये नये बीज, खाद की व्यवस्था के कारण खेती में अभूतपूर्व उन्नति हुई है। इसी प्रकार बाट और माप एवं आदान प्रदान के साधन स्वरूप सिक्कों पर दशमलव प्रणाली का सिक्का जम गया है।

धर्म तथा दर्शन के विभाग में भी परिस्थिति बदली हुई दिखायी पड़ती है। धर्म में अश्रद्धा और दर्शन में अनास्था इस बात का प्रमाण है। हमारी संस्कृति के आदर्शों के प्रति भी उदासीनता व्याप्त है। इस प्रकार हमारी प्राचीन संस्कृति में चतुर्दिक परिवर्तन हो रहा है और इसमें 'चेन्ज' की व्याकुलता दृष्टिगोचर होती है।





## भोजपुरी जनता का स्वभाव और चरित्र

० ०

(१) परिच्छेद

### स्वभाव

भोजपुरी प्रदेश के निवासियों का स्वभाव सीधा और सरल है। ये सच्ची बात को स्पष्ट रूप से कहने में तनिक भी नहीं हिचकते। इन लोगों के हृदय में अपने विश्वासों के प्रति अविचल आस्था पायी जाती है। इसीलिए ये लोग अपने हृदय की बातों को निर्भीक होकर प्रकट करने में तनिक भी संकोच नहीं करते। अंग्रेजी में एक मुहावरा है कि कुदाली को कुदाली ही कहना।<sup>१</sup> अर्थात् जो वस्तु जैसी है उसका उसी रूप में वर्णन करना। भोजपुरी लोगों पर यह मुहावरा पूर्णतया चरितार्थ होता है। जिस वस्तु का जो सत्य रूप है उसको उसी रूप में बिना किसी लाग-लपेट के प्रकाशित करना भोजपुरियों की सबसे बड़ी विशेषता है।

१. स्पष्टवादिता—संस्कृत में एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि “स्पष्ट वक्ता न वचकः” अर्थात् स्पष्ट या खरी बातों को कहने वाला व्यक्ति कभी वचक—धोखेबाज नहीं होता। इस प्रदेश के लोगों ने इस सूक्ति को अपने जीवन में चरितार्थ कर दिखाया है। ये लोग अपनी स्पष्टवादिता के लिए कुख्यात हैं। कभी-कभी यह स्पष्टवादिता सामान्य शिष्टाचार का अतिक्रमण करती हुई दिखायी पड़ती है। इनकी स्पष्ट उक्तियाँ अन्य लोगों के हृदय में शुष्कता तथा रुक्षता का आभास पैदा करने में समर्थ होती हैं। भोजपुरियों की वाणी में रुक्षता भले ही हो परन्तु इनके स्वभाव में वचकता का नितान्त अभाव पाया जाता है। नीति तथा धर्मशास्त्रकार मनु ने लिखा है कि—

सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्;  
न ब्रूयात्, सत्यमप्रियम्॥

अर्थात् सत्य बोलो परन्तु इसके साथ ही प्रिय वचन भी बोलो। भोजपुरिया सत्य तो अवश्य बोलता है। परन्तु वह प्रिय बोलना नहीं जानता। इसीलिए उसकी बातें उदण्डता से भरी हुई मालूम होती हैं। कभी-कभी उसका कथन लट्ठमार सा लगता है। परन्तु जो लोग इनके स्वभाव से परिचित हैं वे जानते हैं कि वाणी की यह रुक्षता इनके स्वभाव में ही व्याप्त है।

२. वीरता—भोजपुरी लोगों की इस रुक्षता से परिचित होने के लिए उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। भोजपुर की भूमि सदा से वीर-प्रसविनी रही है और आज भी उसकी यह विशेषता सुरक्षित है। भोजपुरी सिपाही सदा से रणबाँकुरे रहे हैं।

मुगलों की सेनाओं में भोजपुरी जवान सदा विशेष आदर से भर्ती किये जाते थे। शेरशाह सूरी की सेना के भोजपुरी बहादुरों ने हुमायूँ को मगाकर दिल्ली का तख्ता ही पलट दिया था। इन्होंने अफगान सरदार शेरशाह की अध्यक्षता में मुगलों की राजधानी दिल्ली पर कब्जा कर लिया और अपने स्वामी को ‘तख्त ताउस’ पर प्रतिष्ठापित किया था। अंग्रेजों के शासन में भी भोजपुर का प्रदेश उनकी सेनाओं के लिए ‘भर्ती का केन्द्र’ (रिक्रूटिंग ग्राउण्ड) था। सन् १८५७ ई० की स्वतन्त्रता की प्रथम

१. To call a spade a spade.



चिनगारी को प्रज्वलित करने वाला वीर सेनानी मंगल पाण्डेय एक भोजपुरिया जवान था जो बलिया जिले का निवासी था। अंग्रेजी सरकार का छक्का छुड़ानेवाले तथा अंग्रेजी सेना से जमकर लोहा लेनेवाले, वीराग्रणी बाबू कुँवर सिंह यहीं की मिट्टी में पैदा हुए थे। शाहाबाद (अब जिला भोजपुर) के निवासी इस वीर-सेनानी ने इस समय जो वीरता, साहस और त्याग दिखलाया वह भारतीय इतिहास की गौरवपूर्ण घटना है—अमर कहानी है।<sup>१</sup>

“सन् सत्तावन के बाति याद,  
मुनि कुँवर सिंह के सिंहनाद।  
सब भागि चलल बैरी समूह  
छा गइल उहाँ घर घर बिसाद॥”<sup>२</sup>

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय आन्दोलनों में भी इस प्रदेश के निवासियों का योगदान कुछ कम नहीं रहा है। सन् १९४२ ई० के ‘भारत छोड़ो’ आन्दोलन के अवसर पर तो बलिया जिला के निवासियों ने, कुछ दिनों के लिए ब्रिटिश सत्ता को नष्ट कर पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी। इसके पूर्व सन् १९२० ई० के असहयोग आन्दोलन में गोरखपुर जिले (अब देवरिया) के लोगों ने चौरा चौरा नामक स्थान पर अपनी वीरता का जो उदाहरण प्रस्तुत किया वह भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में सदा अमर रहेगा। महात्मा गाँधी ने स्वतन्त्रता के युद्ध के लिए जब जब रणभेरी बजाई तब तब भोजपुरियों ने अपनी अलौकिक शूरता का परिचय दिया और ये सदा स्वतन्त्रता सेनानियों की प्रथम पंक्ति में खड़े रहे।<sup>३</sup>

“जब जब बापू कइलन पुकार  
रण में बाजल बिगूल तोहार।  
सिर बाँधि बाँधि कफनी आपन  
हम छाड़ि दउरली घर दुआर॥  
रण में हमार अगली कतार॥”

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार राजस्थान की धरती ‘राजपूती वीरता’ के लिए प्रसिद्ध है उसी प्रकार से भोजपुरी-भूमि भी शौर्य एवं वीरता में अपना सानी नहीं रखती। इस वीरतापूर्ण आचरण के कारण भोजपुरियों के स्वभाव में यदि स्पष्टवादिता किम्बा रूक्षता आ गयी हो तो कुछ आश्चर्य नहीं समझना चाहिए।

३. वीर-पूजा—भोजपुरी लोगों की तीसरी विशेषता है वीरता की पूजा। भोजपुरिया शक्ति का उपासक है। वह अपनी वाणी में उतना विश्वास नहीं रखता जितना अपनी लाठी में आस्था। वह “राइट इज माइट (Right is might)” की नीति में विश्वास न रखकर Might is right (शक्ति ही उचित है) के सिद्धान्त का पुजारी है। इसलिए वह “जिसकी लाठी उसकी भैंस” इस नीति का परम उपासक है। शास्त्रों में लिखा है कि “वीर भोग्या वसुन्धरा” अर्थात् यह पृथ्वी वीर मनुष्यों के ही उपभोग के लिए है। भोजपुरी लोगों ने अपने आचरण से यह दिखला दिया है कि वे शास्त्र के उपर्युक्त वचन का अक्षरशः पालन करनेवाले हैं। डॉ० ग्रियर्सन ने एक स्थान पर लिखा है कि भारत में सभ्यता का प्रचार करनेवाली दो ही जातियाँ हैं प्रथम बंगाली और दूसरी भोजपुरी। बंगालियों ने इस काम को अपनी लेखनी के बल से किया परन्तु भोजपुरियों ने इस कार्य को अपने डण्डे के जोर से सम्पादित किया है।<sup>४</sup>

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है भोजपुरी लोग डण्डे के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं। उनकी यह विशेषता उनके लोक-साहित्य में भी प्रतिबिम्बित दिखायी देती है। भोजपुरी की कहावत है—

“सौ पुराचरण, ना एक हूराचरण॥”

अर्थात् किसी व्यक्ति को मारने अथवा उसे नष्ट करने के लिए सौ ‘पुराचरण’ की अपेक्षा लाठी के ‘हूरा’ से मारना कहीं अधिक कार्य की सिद्धि करनेवाला है। एक दूसरी कहावत है—

“बरियार के पनही कपार पर”

१. प्रसिद्ध नारायण सिंह—स्वागत गान

२. वही

३. ग्रियर्सन—लि० स० इ० भाग-५ खण्ड २ पृ० ४।



अर्थात् शक्तिशाली व्यक्ति का जूता सिर पर रहता है। भाव यह है कि बलशाली की आज्ञा को सभी शिरोधार्य करते हैं। शक्ति के सम्प्रदाय को प्रतिपादित करनेवाली एक अन्य लोकोक्ति इस प्रकार है—

“जेकरा हाथे जोर, ओकरा हाथे बटोर”

अर्थात् जिसके हाथ में शक्ति है उसी के सभी लोग अनुगामी होते हैं। “जेकर लाटी ओकर भइसि” में भी इसी भाव की अभिव्यक्ति होती है।

भोजपुरी लोगों की वीरता के सम्बन्ध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि भागलपुर के भगेलुआ (बदमाश), कहल गाँव के ठग और पटना के दीवालिया ये तीनों ही कुप्रसिद्ध हैं। परन्तु यदि किसी भोजपुरिया से इनका पाला पड़े तो वह तीनों की कमर तोड़ देगा।

“भागलपुर का भगेलुआ; औ कहलगाँव का ठग।  
पटना के दीवालिया, ई तीनू नामजह।  
सुनि पावे भोजपुरिया, त तूरे तीनों के रग।”

#### ४. साहसिकता

भोजपुरी लोग वीर प्रकृति के जीव हैं। अतः ये उचित स्थान पर तो अपनी वीरता दिखलाते ही हैं परन्तु कहीं-कहीं अनुचित स्थान पर भी अपने बल का प्रदर्शन करते फिरते हैं। भोजपुरी प्रदेश में यह कहावत अत्यन्त प्रसिद्ध है कि—

“तसलवा तोर कि मोर”

दूसरे के ‘तसले’ को हथिया लेना और न देने पर मारने की धमकी देना भोजपुरियों के स्वभाव की एक विशेषता है। ये लोग बड़े ही “साहसिक” होते हैं। यदि कोई अपरिचित व्यक्ति भोजपुर जिले में चला गया और गलती से कहीं रात्रि में वहीं सो गया तो फिर उसकी खैरियत नहीं है। उसे अपने समूचे माल-असबाब से हाथ धोना पड़ेगा। इसीलिए नये व्यक्ति को इस जिले में जाने का निषेध किया गया है। इस सम्बन्ध में यह लोकोक्ति लोगों में बहुत प्रचलित है।

“भूले भोजपुर जइह मत।  
जइबो करिह त रहिह मत।  
रहबो करिह त खइह मत।  
खइबो करिह त सूतिह मत।  
सूतबो करिह त टोइह मत।  
टोइबो करिह त रोइह मत।”

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस कहावत में भोजपुरियों की “साहसिक” प्रवृत्ति का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है।

भोजपुरियों की स्पष्टवादिता कहीं कहीं अशिष्टता की सीमा को स्पर्श करने लगती है। कोई कहता है कि बात स्पष्ट कहनी चाहिए, चाहे वह मीठी लगे अथवा मिर्चा की तरह तीत (तीक्ष्ण, तेज) ही क्यों न लगे—

“बात कही फरिछा, मीठ लागे चाहे मरिचा”

भोजपुरिया स्वभाव से ही स्पष्टवादी होता है। अतः अपनी सरलता के कारण वह किसी को चकमा देने में असमर्थ होता है। अपनी इसी सहज प्रकृति के कारण ये लोग ‘बात करना’ तो जानते हैं परन्तु ‘बात बनाना’ नहीं जानते। उनकी यह दृढ़ धारणा है कि काठ को ‘गढ़ने’ अर्थात् छीलने से वह चिकना होता है परन्तु बात को ‘गढ़ने’ से अर्थात् किसी तथ्य में नमक मिर्च मिला कर कहने से वह रुक्ष (रूखर) अर्थात् विरूप हो जाता है।

“काठे गढ़ले चीकन होला,  
बात गढ़ले रुखर होला।”



स्पष्टवादी होने के कारण भोजपुरी लोग किसी तथ्य का कथन निर्णयात्मक रूप से करते हैं। “नरो वा कुंजरो वा” का सिद्धान्त उन्हें नितान्त अमान्य है। ये किसी एक ही पक्ष का समर्थन करते हैं चाहे वह ‘अस्ति’ हो अथवा ‘नास्ति’। एक कहावत में इनकी यही प्रवृत्ति लक्षित होती है—

“भरि हाथ चूरी, ना त पट दे राँड़ि”

भोजपुरी सधवा स्त्रियाँ अपने दोनों हाथों में चूड़ियाँ पहिनती हैं। परन्तु जैसे ही उनका पति पन्चत्व को प्राप्त होता है, वैसे ही तत्काल ही उनके हाथों की चूड़ियाँ—जो उनके सधवापन का प्रतीक हैं—फोड़ दी जाती हैं। उपर्युक्त लोकोक्ति इसी तथ्य की ओर संकेत करती है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में स्थितप्रज्ञ का लक्षण बतलाते हुए उसे ‘यतात्मा’ और ‘दृढ़ निश्चयः’ कहा है। यहाँ के निवासी भी अपने निश्चय पर अटल रहते हैं। किसी बात को जब इन्होंने अपने मुँह से कह दिया तब वह पत्थर की लकीर बन जाती है। सुप्रसिद्ध वीर राणा हम्मीर के विषय में कहा गया है कि—

“तिरिया, तेल, हमीर हठ; चढ़े न दूजी बार॥

कुछ-कुछ ऐसा ही स्वभाव इन भोजपुरियों का भी समझना चाहिए जो “प्राण जाय पर बचन न जाँही” को अपने जीवन का सिद्धान्त बनाकर उसका पालन करते हैं।

#### ५. कर्मठता

भोजपुरियों की तीसरी चारित्रिक विशेषता है इनकी साहसिकता। ये लोग बड़े ही साहसी होते हैं। अत्यन्त विषम परिस्थितियों का विचार न करते हुए भी, ये अपने अदम्य उत्साह तथा अलौकिक साहस के कारण भारत की सीमा का अतिक्रमण कर, सुदूर विदेशों में जाकर बसे हुए हैं। भोजपुरी लोग कलकत्ता, बम्बई और आसाम के चाय बागानों में लाखों की संख्या में निवास करते हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त रंगून, हाँगकाँग, फीजी, मारीशस, सूरीनाम, ब्रिटिश गाइना, केनिया, दक्षिण अफ्रीका आदि अनेक देशों में भी अपना उपनिवेश बसाया है। इन्होंने अपने घनघोर परिश्रम, सतत अध्यवसाय और कठोर एवं अदम्य उत्साह के बल पर जहाँ जंगल था वहाँ मंगल कर दिया है। आज (१९८२ ई०) मारीशस द्वीप के प्रधानमंत्री सर राम गुलाम हैं जो भोजपुरिया हैं।

ये लोग जीविकोपार्जन के लिए पूर्व दिशा में—कलकत्ता, रंगून की ओर जाया करते हैं और अपने बाहुबल से कठोर श्रम करके द्रव्य का संचय करते हैं। भोजपुरी लोक-गीतों में इनके साहसिक स्वभाव (Adventurous spirit) की प्रतिध्वनि सुनायी पड़ती है।

कोई स्त्री अपने पति से पूछती है कि ए रावल ! यदि तुम पूर्व दिशा में व्यापार करने के लिए जावोगे तो मेरे लिए क्या लाओगे—

“जो तुहु जइब रावल ! पुरुबी बनिजिया हो,  
हमरा के का तू ले अइब रावल मुनिया।”

किम्बहुना भोलेबाबा—महादेव—भी इस साहसिक प्रवृत्ति के शिकार हुए बिना नहीं रहते। वे भी “पुरुबी बनिजिया” को जाते हुए चित्रित किये गये हैं और बारह वर्षों तक परदेस में रहने के पश्चात् ही घर लौटते हैं। महादेव-शिव—का यह साहस कितना सराहनीय है—

“महादेव चलले हा पुरुबि बनिजिया  
बितेला महीनवा चारि रे।  
बारह बरीस पर लवटेला महादेव,  
भइले दुअरवा पर ठाढ़ रे।”

जिस प्रदेश के बैल पर चढ़ कर यात्रा करनेवाले, भोले भाले देवता भी इतने सक्रिय, साहसी और चंक्रमणशील दिखायी पड़ें उस स्थान के निवासियों की ‘सक्रियता और चालूपन’ की चर्चा ही व्यर्थ है। यही कारण है कि आज भोजपुरी लोगों के लिए कोई पर्वत अलंघ्य नहीं हैं और न कोई देश अगम्य है। महासागर की उत्ताल तरंगें भी इनकी जिगमिषा, संचरणशीलता में बाधा पहुँचाने में नितान्त असमर्थ हैं।



(२) परिच्छेद

चरित्र

भोजपुरी लोगों की वीरता के विषय में ग्रियर्सन का मत। डॉ० ग्रियर्सन ने भोजपुरियों की प्रधान विशेषताओं का वर्णन करते हुए कितना सत्य तथा सटीक लिखा है कि—

“भोजपुरी भाषाभाषी क्षेत्र उस जाति का प्रदेश है जो अपने अन्य बिहारी भाषाभाषी भाइयों से एक विलक्षण तथा पृथक् स्वभाव की है। यह जाति भारतवर्ष की लड़ाकू जाति है। इनमें स्वभाव से ही, सहज रूप में चैतन्य रहने वाली, जातीयता पायी जाती है जिसमें दोष बहुत ही नगण्य है और गुण एवं योग्यता अत्यधिक मात्रा में विद्यमान है। ये लोग युद्ध से केवल युद्ध-मात्र करने के लिए प्रेम करते हैं। ये समग्र भारत में फैले हुए हैं। यहाँ का प्रत्येक मनुष्य, किसी भी संयोग अथवा कुयोगपूर्ण घटना के वश—जो स्वयं उसके सम्मुख आकर उपस्थित होती है—अपने भाग्य को कसौटी पर कसने के लिए और अपनी जीविका के उपार्जन हेतु सदा प्रस्तुत रहता है। इस जाति का निवास-स्थान (भोजपुरी प्रदेश) भारतीय सेना के सैनिकों की मर्ती करने के लिए उपयुक्त केन्द्र-स्थल है। परन्तु साथ ही, इसके ठीक विपरीत, सन् १८५७ ई० की क्रान्ति में इस जाति ने प्रमुख भाग लिया था।

“भोजपुरी लोग अपनी लाठी से उतना ही प्रेम करते हैं जितना आयरिश लोग अपनी छड़ी (स्टिक) से। बड़ी, मोटी और लम्बी हड्डियोंवाला, और लम्बा कदवाला भोजपुरिया जवान अपनी मोटी लाठी के साथ, अपने लम्बे कदमों से, सूदूर खेतों में घूमता हुआ सदा देखा जा सकता है। हजारों भोजपुरिया सूदूर ब्रिटिश उपनिवेशों में जाकर परिश्रम के साथ काम करके, धन का उपार्जन कर, वहाँ से धनी बनकर अपने देश लौटें हैं। प्रत्येक वर्ष ये बहुत बड़ी संख्या में उत्तरी बंगाल में जाते हैं और वहाँ ईमानदारी के साथ नौकरी करके जीविका का उपार्जन करते हैं। बंगाल के लोग, विशेषकर कलकत्ता के निवासी इनसे सदा डरते रहते हैं क्योंकि ये शक्ति में उनसे अधिक बलवान् होते हैं। कलकत्ता भोजपुरी जाति के लोगों से भरा पड़ा है। बंगाल के सभी जमींदार अपनी प्रजा (रियाया) में शान्ति की स्थापना के लिए इन भोजपुरियों को सम्मानपूर्वक अपने यहाँ रक्षक के रूप में रखते हैं।”

इसी प्रकार से भोजपुरी भाषा के प्रसंग में डॉ० ग्रियर्सन ने भोजपुरी लोगों की वीरता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और इन्हें हिन्दुस्तान में सम्यता का प्रचारक कहा है। इस कार्य को इन्होंने अपनी सर्वशक्तिमती लाठी के जोर से, डण्डे के बल से किया है, यही इनकी प्रधान विशेषता है।

1. “The Bhojapuri speaking country is inhabited by a people curiously different from the others who speak Bihari dialects. They form the fighting nation of Hindustan. An alert and active nationality, with few scruples and considerable abilities, dearly loving a fight for fightings sake, they have spread all over Aryan India. Each man is ready to carve his fortune out of any opportunity which may present itself to him. They furnish a rich mine of recruitment to the Hindustani army, and on other hand, they took a prominent part in the mutiny of 1857.

As fond as an Irish is of a stick, the long-boned, stalwart, Bhojapuri with his staff in hand, is a familiar object striding over fields far from his home. Thousands of them have emigrated to British colonies and have returned richmen. Every year still larger numbers, wander over Northern Bengal and seek employment, either honestly as Palki-bearers, or otherwise as decoits. Every Bengali Zamindar keeps a posse of these men, enphemistically termed “Darwans”, to keep his tenants in order. Calcutta, where they are employed and feared by the less heroic natives of Bengal, is full of them.

Such are the people who speak Bhojapuri and it can be understood that their language is a handy article made for current use and not too much encumbered by grammatical subtilties.

Dr. G. A. Grierson—Linguistic survey of India Vol. 5, Part II, Page 5.

2. Bhojapuri is the practical language of an energetic race, which is ever ready to accomodate itself to circumstances, and which has made its influence felt all over India. The Bengali and the







## अध्याय २०

### उपसंहार



गत पृष्ठों में भोजपुरी प्रदेश की संस्कृति का परिचय देने का विनम्र प्रयास किया गया है। इस प्रदेश के जन-जीवन से सम्बन्धित जितने भी पहलू हो सकते हैं उनका संक्षिप्त परन्तु प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है। इस मण्डल में निवास करनेवाली जनता के रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, वेश-भूषा, खान-पान, अलंकरण-प्रसाधन और रीति-नीति की विशद चर्चा की गयी है।

समाज के अन्तर्गत चारों वर्णों और आश्रमों का वर्णन करने के पश्चात् समाज में स्त्रियों की दशा पर विचार किया गया है। भोजपुरी समाज में स्त्री अनेक रूपों में दिखायी पड़ती है। कभी वह सती-साध्वी के रूप में हमारे सामने आती है तो कभी कुलटा और व्यभिचारिणी का रूप प्रकट होता है। इस समाज में स्त्रियों की दशा अन्य समाजों की अपेक्षा दीन और हीन है, यह कथन कुछ भी अनुचित नहीं होगा। समाज में सम्पन्न किये जानेवाले विभिन्न संस्कारों का यहाँ उल्लेख हुआ है। यद्यपि शास्त्रकारों ने षोडश संस्कारों का उल्लेख किया है परन्तु जन-जीवन में केवल तीन ही संस्कारों का विशेष प्रचार पाया जाता है—ये हैं पुत्र जन्म और विवाह तथा अन्तिम संस्कार अन्त्येष्टि।

विवाह संस्कार के अन्तर्गत शास्त्रीय विधि-विधानों की चर्चा के पश्चात् अनेक लौकिक विधानों का भी वर्णन किया गया है। अन्त्येष्टि जीवन का अन्तिम संस्कार है जिसका विवेचन विशद रूप से किया गया है।

भोजपुरी लोगों के खान-पान का जितना विस्तृत तथा प्रामाणिक वर्णन यहाँ पाया जाता है उतना अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। कच्चे और पक्के भोजनों का विवेचन करके उनकी पाक-प्रक्रिया पर भी प्रकाश डाला गया है। मिष्ठानों के प्रकरण में भोजपुरी गाँवों में उपलब्ध केवल उन्हीं मिठाइयों का वर्णन किया गया है जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं होतीं।

वेश-भूषा के प्रकरण में जनता सामान्य तथा विशेष अवसर—जैसे विवाह आदि—पर पहिने जानेवाले परिधान का विवरण प्रस्तुत किया गया है। स्त्रियों तथा पुरुषों की वेश-भूषा का पृथक्-पृथक् वर्णन के पश्चात् साधुओं और संन्यासियों के पहिनावे की चर्चा की गयी है।

अलंकार के प्रकरण में भोजपुरी स्त्रियों के द्वारा पहिने जानेवाले उन समस्त अलंकारों की चर्चा की गयी है जिनमें से कितने आज आउट-आफ-डेट और आउट-आफ-फैशन हो गये हैं। ये अलंकार किस घातु से बनाये जाते हैं, शरीर के किन-किन अंगों में पहिने जाते हैं, इनकी आकृति कैसी होती है आदि विषयों को प्रस्तुत किया गया है।

अलंकरण और प्रसाधन के अन्तर्गत उन समस्त उपादानों तथा साधनों की चर्चा की गयी है जिनके प्रयोग से भोजपुरी स्त्रियों के कोमल कलेवर के सौन्दर्य का वर्द्धन होता है। काजल, उबटन, तिलक, महावर, मेंहदी, मिस्सी आदि उपादानों का वर्णन किया गया है।

पुरुषों तथा बालकों के द्वारा जो 'आउट-डोर' खेल खेले जाते हैं उनका विवरण प्रस्तुत करके लड़कियों के 'इन-डोर' गेम्स की भी चर्चा की गयी है। इस प्रकार सामाजिक जीवन के जितने पक्ष (आसपेक्ट्स) हो सकते हैं उनका विवेचन बड़े ही विस्तार के साथ किया गया है।

आर्थिक जीवन के अन्तर्गत ग्रामीण जनता की आर्थिक स्थिति के ऊपर प्रकाश डाला गया है। इसके पश्चात् बाट, माप, तौल आदि की चर्चा की गयी है। भोजपुरी प्रदेश में पहिले किन सिक्कों का प्रयोग किया जाता है और अब उनका स्थान किन सिक्कों ने ले लिया है इसका वर्णन यथास्थान हुआ है। कृषक जीवन की बाँकी झाँकी देने के पश्चात् सिंचाई के विभिन्न साधनों का वर्णन उपलब्ध होता है। यातायात के अनेक साधनों के वर्णन के पश्चात् ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार से संक्षिप्त रूप से ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति की मीमांसा की गयी है।



धार्मिक जीवन के अन्तर्गत भोजपुरी प्रदेश में पाये जानेवाले अनेक धार्मिक सम्प्रदायों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस प्रदेश में शैव, शाक्त, वैष्णव आदि धर्मों के अनुयायी पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त साधु-संन्यासी, उदासी, वैरागी तथा कनफटा योगियों की भी कुछ कमी नहीं है। इस मण्डल में सर्वसाधारण जनता शिव, विष्णु और हनुमान् की पूजा करती है। सीता-राम और राधा-कृष्ण के मंदिर की प्रचुरता इस तथ्य का प्रमाण है। प्रत्येक गाँव में महादेव (शिव) जी का मंदिर और हनुमान् की मढ़िया पायी जाती है।

परन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं जो भूत, दूत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, दैत्य, भोकस और राकस आदि प्रेत योनियों में विश्वास करते हैं। वे अपने विश्वास के अनुसार गाँव के बाहर चौरा बनाकर उनकी पूजा करते हैं। ओझा, सोखा, वैद आदि गाँव के आध्यात्मिक डॉक्टर हैं जिनकी सेवा ग्रामवासियों के लिए सदा उपलब्ध रहती है।

ग्रामीण जनता के दार्शनिक जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है। वे जन्मान्तरवाद, कर्मवाद और भाग्यवाद पर भरोसा रखते हैं और अवतारवाद में उनका अटूट विश्वास है। उनके जीवन का परिचालन भाग्यवाद के मूलसूत्र “होइहै वही जो राम रचि राखा” के द्वारा हुआ करता है। नियतिवाद ही उनका जीवन-दर्शन है और परिचालक शक्ति।

इस प्रकार पिछले पृष्ठों में भोजपुरी लोगों के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा दार्शनिक एवं आध्यात्मिक जीवन का विशद, प्रामाणिक तथा साधिकार वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

संभवतः भोजपुरी जनता के जीवन के विविध पहलुओं का इतना सांगोपांग विवेचन अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। भोजपुरी जनता के सामान्य जीवन से सम्बन्धित कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसका वर्णन यहाँ न किया गया हो। शतसाहसी संहिता के रचयिता भगवान् व्यास ने यह बड़े गर्व के साथ लिखा है कि जो कुछ महाभारत में वर्णित है उसका उल्लेख अन्य स्थानों पर भी मिल सकता है परन्तु जो कुछ इसमें नहीं है वह दूसरी जगह उपलब्ध कदापि नहीं हो सकता।

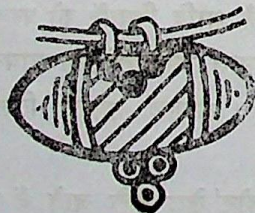
“यदिहास्ति तदन्यत्र,

यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्”

कृष्ण द्वैपायन व्यास के शब्दों में थोड़ा-सा परिवर्तन करके इस ग्रन्थ के विषय में भी बड़ी विनम्रता के साथ यह घोषणा की जा सकती है कि—

“यदिहास्ति तन्नान्यत्र

यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥”





## परिशिष्ट (१)

# संशोधन तथा परिवर्धन

० ०

इस ग्रन्थ का निर्माण आज से लगभग बीस वर्षों पहिले किया गया था। इस अन्तराल में अनेक वस्तुओं में परिवर्तन आ गया है, जैसे तिलक और दहेज के आदान-प्रदान में महान् परिवर्तन उपस्थित हो गया है। आज भी भीषण महँगाई के साथ विवाह के लिए योग्य वर के मूल्य में भीषण वृद्धि हो गयी है। इस पुस्तक में तिलक-दहेज का जो भाव पहिले दिया गया था वह अब बहुत पुराना पड़ गया है। अतः उसके स्थान पर वर का आधुनिक बाजार-भाव दिया गया है।

स्त्रियों के चित्रण के अध्याय में फूहड़, कर्कशा तथा बतकट स्त्रियों का वर्णन जोड़ना पड़ा है। भोजपुरी प्रदेश में ऐसी भी स्त्रियाँ होती हैं। अतः उनका वर्णन यहाँ जोड़ देना आवश्यक प्रतीत हुआ। संस्कारों के सम्बन्ध में अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग होता है जैसे परिछावन, रोका, कोहवर आदि। उनके अर्थ को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक टिप्पणियाँ यथास्थान जोड़ दी गयी हैं। इस प्रकार इस प्रथम परिशिष्ट में कुछ पुराने कथनों में संशोधन और परिवर्द्धन प्रस्तुत करने के साथ ही कठिन, ठेठ तथा पारिभाषिक शब्दों को टिप्पणियों में स्पष्ट कर दिया गया है।

## नारी-फूहड़ स्त्री के रूप में

भोजपुरी नारी-समाज में फूहड़ स्त्री का कुछ कम महत्त्व नहीं है। यह अपनी आकृति, रहन-सहन तथा स्वभाव के कारण बड़ी सरलता से परिलक्षित हो जाती है। भोजपुरी में ऐसी स्त्री को 'फूहरि' कहा जाता है। यद्यपि समाज में ऐसी स्त्रियों की संख्या अत्यधिक नहीं है फिर भी यदि कोई इसका दर्शन करना चाहे तो उस व्यक्ति को निराश नहीं होना पड़ेगा। क्योंकि इनका दर्शन सर्वत्र सुलभ है। फूहड़पन का प्रधान कारण गरीबी ही समझनी चाहिए। परन्तु कहीं-कहीं यह स्वभाव-जन्य आलस्य तथा नारी-धर्म का सम्यक् बोध न होने के कारण भी होता है।

'फूहरी' परम आलसी होने के साथ ही अत्यन्त असावधान भी होती है। उसे किसी बात की तनिक भी चिन्ता नहीं रहती। उसका छोटा बच्चा घर में कहाँ सोया है इसका पता उसे नहीं होता। वह गाँव भर में उसके खो जाने का ढिंढोरा पीटती फिरती है, चाहे वह बच्चा उसकी बगल में पलँग पर ही क्यों न सोया हो। फूहड़ स्त्री भोजन बनाने में तो चतुर नहीं होती परन्तु दूसरों के द्वारा पकाये गये अन्न का भक्षण करने में बड़ी दक्ष होती है। उसकी भोजन-भट्टता प्रसिद्ध है। उसके इन्हीं गुणों का वर्णन अगले पृष्ठों में उदाहरण सहित प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया जाता है।

### (१) फूहड़ स्त्री का स्वरूप

फूहड़ स्त्री बहुत गन्दी रहती है। गन्दगी उसका स्वभावजन्य गुण या अवगुण है। उसके उठने-बैठने, चलने-फिरने तथा बात करने पर उसका फूहड़पन प्रकट होता है। वह जाड़े से बहुत डरती है। अतः शीतऋतु उसके लिए बहुत कष्टदायी होती है। वह होली और दिवाली आदि त्यौहारों को छोड़कर कदाचित् ही स्नान करती है। नहाना उसके दैनिक जीवन का कर्म नहीं है।<sup>१</sup> अतः उसके शरीर तथा वस्त्रों का गन्दा रहना स्वाभाविक है। गर्मी के दिनों के आने पर ही उसके शरीर की गन्दगी छूटती है। वह आलस्य के कारण अपने गन्दे कपड़े में कभी साबुन भी नहीं लगाती। उसके सिर के बाल सदा सूखे तथा बिखरे रहते हैं क्योंकि महीनों तक वह अपने बालों में तेल लगाने का कष्ट नहीं करती। फिर उनके सँवारने तथा 'चोटी



करने' की कथा ही दूर है। अपने इन्हीं गुणों के कारण उसका नाम पास-पड़ोस के घरों में फैल जाता है। उसकी चर्चा सर्वत्र होने लगती है और सभी लोग उसे जानते रहते हैं।<sup>१</sup>

## (२) फूहड़ में आलस्य की प्रधानता

फूहड़ स्त्री की सबसे बड़ी विशेषता (Characteristic) है कि वह परम आलसी होती है। वह स्वभाव से ही आलसी, सुस्त तथा कामचोर होती है। वह प्रातःकाल सूर्य के उदय हो जाने के पश्चात् ही जागती है। परन्तु प्रातःकाल में यदि सूर्य बादलों से आच्छादित रहे तब उसके सोकर उठने का कोई समय निश्चित नहीं रहता। घर के आँगन में घाम अर्थात् कड़ी धूप हो जाने पर भी वह सोती रहती है। भोजपुरी के एक लोक-गीत में इसका वर्णन बड़ी ही सुन्दर रीति से किया गया है।<sup>२</sup> प्रातःकाल में सूर्य के बादलों से आच्छादित होने के कारण दिखाई न देने पर वह कहती है कि अभी आधी रात है।<sup>३</sup> अवधी के एक लोक-गीत से पता चलता है कि धूप निकलने पर भी जगाने पर वह अपने पति (खसम) को बेईमान कहती है क्योंकि संभवतः वह उसको जगाने का कारण है।<sup>४</sup>

प्रातःकाल में सूर्योदय के पश्चात् भी देर तक सोते रहना फूहड़ स्त्री का स्वभाव होता है। वह सात घड़ी दिन बीत जाने पर भी सोती रहती है और उठते ही हाथ में झाड़ू लेकर घर बुहारने लगती है। फिर आँगन में बैठकर रोने लगती है मानो झाड़ू लगाना उसके लिए अत्यन्त दुःखदायी तथा परिश्रमजन्य कार्य हो।<sup>५</sup> वह घर में झाड़ू लगाकर उसे साफ-सुथरा रखना नहीं चाहती। अतः पुरुषा तथा पछुआ हवा से प्रार्थना करती है कि तुम मेरे भाई अर्थात् सहायक हो। मेरे घर का कूड़ा-करकट साफ कर ले जाओ।<sup>६</sup> फूहड़ स्त्री इतनी सुस्त होती है कि यदि दिन में धूप न दिखाई पड़े तो भोजन बनाने के लिए, जाँत में आटा पीसने के लिए वह उठे ही नहीं। सदा सोती रहे।<sup>७</sup>

सायंकाल होते ही वह फूहड़ स्त्री खाट पर सो जाती है। घर के वर्तन तथा भाण्डे में मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं। अतः संभवतः भुक्तभोगी घाघ ने ऐसी स्त्री को पानी में डुबो देने को कहा है।<sup>८</sup>

## (३) फूहड़ स्त्री की असम्यता

फूहड़ स्त्री अत्यन्त अशिष्ट तथा असम्य होती है। उसकी इसी अशिष्टता के कारण उसका पति उसकी पीठ-पूजा भी करता है फिर भी वह अपने काम तथा स्वभाव से बाज नहीं आती। वह अपने पति से कहती है कि “तुम मुझे जितना चाहे मारो-पीटो किन्तु मैं जैसी हूँ वैसी ही रहूँगी।”<sup>९</sup> “तुम मुझे पीट-पीट कर कंकाल मात्र भले ही बनाओ, परन्तु मेरे स्वभाव में

१. फूहरि चलै तो नौ घर हालै।

(लेखक का निजी संग्रह)

२. फूहरी ना जागै छिटकि गइल घमवा।

३. बदरी बदरी भा भितुसार।

फूहरी कहै अबे आधी रात॥

४. फूहरी ना जागी, निकरि आये घमवा।

जब जागी तब मँह फेलाये।

खसम को कहै बेइमनवा॥”

५. सात घरी तक फूहरि सोवे।

लइ बड़नी अँगना माँ रोवे॥

६. पुरुवां, पछुवा तँ मोर भाय।

लइजा करकट अँगने बहाय॥

७. न दिन दिक्खे, न फूहरि पिस्से।

८. “साँझे ते परि रहती खाट।

परी भड़ेसरि बाराबाट।

घर-आँगन सब घिन घिनहोय।

घग्घा गहरे देव डुबोय॥”

रा० न० त्रि०—घाघ और भड़डरी

९. मोर पिया चाहे जेतना। मैं ओतनी का ओतना॥



कोई परिवर्तन नहीं आ सकता।”<sup>११</sup> इस कथन से उसकी हठधर्मिता का पता चलता है। वह अपनी सास से कहती है कि “तुम चाहे जितना भी डाँटो, मैं तो मोटा आटा ही पीसूँगी और मोटा ही खाऊँगी। मैं सोलह दिनों में सोलह वस्त्र—साड़ी को पहिन कर फाड़ डालूँगी। तुम्हारा मन हो तो मुझे अपने घर में रखो अथवा मत रखो।”<sup>१२</sup>

#### (४) फूहड़ की असावधानता

फूहड़ स्त्री अत्यन्त असावधान रहती है। कौन-सी वस्तु घर में कहाँ रखी है, इसका उसे पता नहीं रहता। किब-हुना, उसने अपने पुत्र को घर में कहाँ सुला दिया है इसका भी पता उसे नहीं रहता और पुत्र के न मिलने पर गाँव-घर में गोहार लगाती फिरती है।<sup>१३</sup> बगल में सोये हुए लड़के को खोजने के लिए वह सारे गाँव में ढिंढोरा पीटती फिरती है।<sup>१४</sup>

कभी-कभी गर्मी के दिनों में गाँव में आग लग जाती है जिससे सारा गाँव ही जल जाता है। इस भीषण अग्निकाण्ड को शान्त करने के लिए उसे बुझाने के लिए, गाँव के समस्त नर-नारी अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं। परन्तु फूहड़ स्त्री को इसका पता ही नहीं चलता। वह कहती है कि कहीं कपड़ा जलने की गंध आ रही है।

उसे अपने शरीर के शृंगार करने की इच्छा तो होती है परन्तु उसे इसका ढंग ही नहीं मालूम। उसे प्रसाधन करने का भी ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता वह सिन्दूर लगाने के स्थान पर अपनी माँग में ईंट को तोड़कर उसका चूरा (चूर्ण) लगाती है।<sup>१५</sup> वह कभी-कभी इतनी शीघ्रता में रहती है कि विवाह के अवसर पर भी वह माँग के स्थान में अपनी कनपटी में सिन्दूर लगा लेती है।<sup>१६</sup> अवधी में भी इसी प्रकार की एक लोकोक्ति पायी जाती है। वह इतनी असावधान है कि घर में कजरौटा के रहते हुए भी कभी काजल नहीं पारती।<sup>१७</sup>

#### (५) फूहड़ स्त्री के द्वारा भोजन बनाना

फूहड़ स्त्री के काम करने का कोई निश्चित समय नहीं होता। वह अपने स्वतन्त्र मन के अनुसार कार्य करती है। वह समय (टाइम) के बन्धनों से परे होती है। कभी तो वह सूर्योदय के पश्चात् भी कुम्भकर्णी निद्रा में सोयी रहती है और कभी रात्रि के पिछले पहर में उस समय भोजन बनाना प्रारम्भ कर देती है जब कि सारा गाँव गहरी नींद में सोया रहता है।<sup>१८</sup> इसी प्रकार रात में जब सब लोग सोने चलते हैं तब वह रोटी पोने चलती है।<sup>१९</sup>

इसके भोजन बनाने का तरीका इतना गलत होता है, इसकी पाक-प्रक्रिया इतनी अव्यवस्थित रहती है कि भगवान् ही उसको पार लगावे।<sup>२०</sup>

१. मार मार हिकनी। मैं जितनी क तितनी।
२. अर्रा पीसबि, दर्दा खाब।  
सुन स्वामी सुन सासु रे॥  
सोरह दिन माँ सोरह चीरबि  
मन चाहे तो राखु रे॥
३. कथरी माँ लरिका, गाँव माँ गोहार।
४. बगल माँ छोरा; गाँव माँ ढिंढोरा॥
५. सगरे गाँव जलगा।  
फूहरि कहेन कहूँ लत्ता गंधान॥
६. सहर हइये नाँ; हुसुन इतना बड़ा।
७. फूहरी करे सिंगार; माँग ईटा से फोरे।
८. हड़बड़ी में बिआह; कनपटी में सेनुर॥
९. लबलबी का विवाह; कनपटी माँ सेनुर।
१०. काजर हइये नाँ, कजरौटा नौ ठे।
११. सगरे गाँव सोवे, फूहरी तब रोटिया पोवे।
१२. दुनिया चली सोने; फूहरी चली पोवे॥
१३. फूहरी करे बइठी रोसइया।  
पार लगावे, गोसँइयाँ॥



फूहड़ स्त्री जब भात बनाने लगती है तब उसकी प्रक्रिया का सम्यक् ज्ञान न होने के कारण वह भात को गीला बना देती है। जब वह आटा सानने लगती है तब आटा भी गीला हो जाता है। वह अपने पति को 'दहिजरऊ' (दाढ़ी जार) गाली देती हुई कहती है कि जब वह नीच आयेगा तब रो-रो कर इसी गीले भात को खायेगा क्योंकि भोजन बनाना मेरे बस का काम नहीं है।<sup>१</sup> सचमुच ही ऐसी फूहड़ स्त्री के प्रति पति को तो भोजन के समय तो क्या, रात-दिन ही रोना आता होगा।

फूहड़ स्त्री के द्वारा बनाया गया 'लपटा' न खाते बनता है और न उसे फेंकते ही बनता है।<sup>२</sup> इस स्त्री के द्वारा बनायी गयी दाल भी, भात और लपटा की ही भाँति अखाद्य होती है। वह दाल बनाते समय 'बटलोही' को ढकने का ध्यान ही नहीं रखती। इसलिए उसमें मक्खियाँ और फूहरी के सिर के बाल गिरते रहते हैं।<sup>३</sup> इस प्रकार इस स्त्री के द्वारा, बिना मन से बनाया गया भोजन, नितान्त अस्वादु तथा अखाद्य होता है।

### (६) फूहड़ की भोजन भट्टता

यह स्त्री यद्यपि भोजन बनाने में तो निपुण नहीं होती परन्तु भोजन करने में अत्यन्त दक्ष होती है। वह जल्दी-जल्दी रोटी बनाती है और भोजन बनाते समय गप-गप खाने लगती है।<sup>४</sup> हाँड़ी में रखे गये शाक को खाने के लिए उसका जी तरसता रहता है।<sup>५</sup> उसने सात सेर की सात रोटियाँ बनायीं परन्तु नौ सेर की एक ही लिट्टी बनायीं। पति तो सातों रोटियाँ खा गया परन्तु गर्भवती होने के कारण नौ सेर की इसने केवल एक ही लिट्टी खायी।<sup>६</sup>

## नारी-कर्कशा के रूप में

कर्कशा स्त्री बड़ी ही कठोर, कटुभाषिणी, भयंकर और भीषण होती है। यह अपने व्यवहार से परिवार के सभी लोगों को कष्ट पहुँचाती है। अतः घर का कोई भी प्राणी इससे प्रसन्न नहीं रहता। 'कर्कश' का शाब्दिक अर्थ ही कठोर, शुष्क तथा कठिन होता है। अतः कर्कशा स्त्री का इन गुणों से युक्त होना स्वाभाविक है। परिवार के अन्य सदस्यों की तो बात दूर रही, ऐसी कर्कशा स्त्री का पति भी उससे डरता है। उसे सदा यह भय बना रहता है कि क्रोध में आकर वह मेरे ऊपर ही आक्रमण न कर दे। अतः ऐसी भयंकर स्त्री से सभी लोग थर-थर काँपते रहते हैं।

कर्कशा स्त्री फूहड़ भी होती है। उसे न तो भोजन बनाने का ढंग मालूम होता है और न उसे बनाने की इच्छा रहती है। वैषम्य भारतीय स्त्रियों के लिए अभिशाप माना जाता है। यह उनके जीवन का सबसे बड़ा दुःख है। परन्तु यह कर्कशा नित्य सूर्य के सामने बैठकर उनसे प्रार्थना करती है कि कब मैं 'राँड़' (विधवा) हो जाऊँगी।

इससे अधिक दुष्टा स्त्री की कल्पना करना भी कठिन है। सचमुच ही वह पति बड़ा ही अभाग्य होगा जिसे ऐसी कर्कशा स्त्री को पत्नी के रूप में पाने का सौभाग्य प्राप्त हो।

### कर्कशा स्त्री की विशेषताएँ

(१) कटुभाषिणी—कर्कशा स्त्री में अनेक विशेषताएँ पायी जाती हैं जिनमें कटुभाषण सबसे प्रधान है। आदर्श पत्नी का लक्षण बतलाते हुए संस्कृत के किसी कवि ने उसे "प्रिया च भार्या, प्रियवादिनी च" बतलाया है। आशय यह है कि

१. भातवा रीन्हें लिट पिट होय;  
रोटिया पोवे गिल पिट होय।  
अइहें दहिजरू खइहें रोय,  
हमरे बूते यहौ न होय॥

२. फूहरी क लपटा।  
न खात माँ न फेंके माँ॥

३. फूहरी राँधेन दालः आधा माछी आधा बाल।

४. लप लप पोवे, गप गप खाय।  
फूहरी जनम के होय बलाय॥

५. हँडिया में साग बा।  
मोरा जियरा लाग बा॥

६. सात सेरे का सात पकायो; नौ सेरे के एक।  
वा दहिजरवा सातो खायगा; में लरिकउरी एक॥



स्त्री सुन्दर तथा मधुर होनी चाहिए तथा इसके साथ ही उसे मृदुभाषिणी होना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु कर्कशा स्त्री इसके ठीक विपरीत अत्यन्त कटुभाषिणी होती है। वह जब भी बोलती है तब अपने कर्कश स्वर से कठोर वचनों को ही बोलती है। उसकी वाणी वाण के समान श्रोताओं के हृदय को विदीर्ण कर देती है।

साहित्य में स्त्रियों को उनकी मधुर वाणी के कारण “कोकिल बैनी” या “पिक बैनी” कहा गया है। परन्तु कर्कशा की बोली की रक्षता तथा कठोरता को सुनकर उसे ‘काक बैनी’ अथवा ‘खरबैनी’ की उपमा दी जाय तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी।

(२) कलहप्रियता—कर्कशा स्त्री अत्यन्त कलह-प्रिय होती है अर्थात् वह अतिशय झगड़ालू होती है। परिवार की स्त्रियों के अतिरिक्त पुरुषों से भी झगड़ा या तकरार करने के लिए वह सदा तैयार रहती है। वह स्वयं झगड़ा आरम्भ करती है तथा सबसे पहले रोने भी लगती है।<sup>१</sup> उसके झगड़ालू स्वभाव के कारण उसका पति भी उससे सदा डरता रहता है। वह बाहर तो बहादुर बनता है परन्तु अपनी कर्कशा पत्नी के सामने वह बेचारा “गीदड़दास” बन जाता है।<sup>२</sup> कठोर तथा कलहप्रिय अपनी स्त्री के समक्ष उसकी सारी बहादुरी मिट्टी में मिल जाती है।

कर्कशा नारी बड़ी अविनीत तथा कठोर होती है। वह अपने पति को यह आदेश देने में तनिक भी नहीं झिझकती कि “भोजन बनाने के लिए पड़ोसी के घर से आग ले आओ। बाजार से तरकारी खरीद लाओ। मेरे बच्चे को खेलाओ और उसे बाग में ले जाकर घुमाओ।”<sup>३</sup> वह हाथ में छड़ी लेकर सदा खड़ी रहती है और पति को मारने की धमकी देती है।<sup>४</sup>

### (३) बातूनी तथा बतकट

ऐसी कर्कशा स्त्री के सामने बेचारा निरीह पति भीगी बिल्ली बना रहता है। अपनी स्त्री के कटु, अशिष्ट तथा निर्लज्ज व्यवहार को देखते हुए भी उसे कभी उसको डाँटने की हिम्मत नहीं होती। परन्तु यदि कदाचित् साहस बटोर कर उसे पीटने का दुःसाहस भी करता है तब उसके डर के मारे उसके पास तक नहीं जाता और झूठमूठ घर के दरवाजे को पीटने लगता है।<sup>५</sup>

कर्कशा स्त्री प्रायः ‘बतकट’ हुआ करती है अर्थात् दो व्यक्तियों के आपस में बातें करते समय, यह उनकी बातों को बीच में ही काट देती है। लोक कवि घाघ ने ‘बतकट जोय’ की बड़ी निन्दा की है और उसे अत्यन्त दुःखदायिनी कहा है।<sup>६</sup> अतः ऐसी स्त्री को घाघ के आदेशानुसार गहरे पानी में डुबो देना चाहिए।<sup>७</sup>

कर्कशा स्त्री बातूनी भी बहुत होती है। वह बिना सिर-पैर के, व्यर्थ में ही, घंटों तक बातें करती रहती है। बात करने में वह सबसे आगे ही पायी जाती है।<sup>८</sup> एक लोकोक्ति में ऐसी स्त्री को ‘मुँहजोर भार्या’ कहा गया है तथा इसकी निन्दा की

१. लड़े बराबर; रोवे दूनी।

२. बाहर बाबू सूरमा; घर में गीदड़दास।

३. आगि लावो, सागलावो; लरिका खेलाय लावो, बाग में घुमाय लावो।

४. छड़ी लीन्हें खड़ी रहे।

मरद के ऊपर चढ़ी रहे॥

लेखक का निजी संग्रह

५. मेर गइले मेहरी; ठेठावे लगले डेहरी।

६. नसकट खटिया; ‘बतकट जोय।’

जो पहिलवठी बिटिया होय॥

पातर कृषी, बौरहा भाय।

घाघ कहै दुःख कहा समाय॥

७. नारि करकसा, कटहा चोर (घोर)।

हाकिम हुइकै, खाय अँकोर।

कपटी मित्र, पुत्र होय चोर।

घग्घा इनके गहिरे बोर॥

८. तू डार डार; मैं पात पात।

भोजपुरी—४८



गई है। जिस पुरुष को ऐसी गृहिणी "सौभाग्य" से प्राप्त हो जाय उसका शरीर बिना लकड़ी और आग के ही दिन-रात जला करता है।<sup>१</sup>

#### (४) सतत कष्टदायिनी

कर्कशा स्त्री परिवार के सदस्यों के लिए सतत कष्टदायिनी होती है। किम्बहुना, वह अपने पति के लिए भी सिर-दर्द बनी रहती है। झगड़ालू होने के कारण वह स्वयं झगड़ा लगाकर दूर हट जाती है।<sup>२</sup> ऐसी स्त्री पति के लिए जीवित-मृत है। घाघ ने लिखा है कि ऐसी स्त्री के बराबर संसार में कोई दूसरी विपत्ति नहीं है।<sup>३</sup>

#### (५) कर्कशा की सामूहिक विशेषता

भोजपुरी के एक लोक-गीतों में कर्कशा स्त्री के गुणों अथवा अवगुणों का एक साथ ही बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है। इस सम्पूर्ण गीत को उद्धृत करने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। इस पर कुछ टीका टिप्पणी करना व्यर्थ है।<sup>४</sup>

### गीत

धनि धनि रे पुरुष तोर भागि, करकसा नारि मिली।

सात घरी दिन रोय के जागी; लिहिन बढ़निया उठाय॥

निहुरे निहुरे अँगना बटोरे; घर भर को गरिआय।

करकसा नारि मिली।

बखरी पर से कौवा रोवे; पहुना अइले तीन।

आव पाहुन घर माँ बइठ; कंडा लाऊ बीन॥

करकसा नारि मिली॥२॥

हँडिया भरि के अदहन दिहली;

चाउर मेरवली तीन।

कठवति भरि के माँड़ पसवली;

पिअ हिलोर हिलोर॥

करकसा नारि मिली॥३॥

सात सेर के सात पकवली;

नव सेर का एक।

तू दहिजरऊ सातो खहल;

हम कुलवन्ती एक॥

करकसा नारि मिली॥४॥

डेहरी बइठे तेल लगावे,

सेँदुर भरावै माँगि।

आँचर पसारि के मुरुज मनावे;

कब होइवों में राँडि॥

करकसा नारि मिली॥५॥

१. कृषी विपन्ना, मुंहजोर भार्या।

बंधू विरोधी, बिना बुद्धि राजा॥

दुहिता दरिद्री, पुत्रः कुमार्गी।

बिना अग्नि-काष्ठं दहते शरीरम्॥

२. आगि लगाई, करकसा दूर खड़ी।

३. दुष्ट भार्या, मित्र सठ; उत्तरदायक भृत्य।

सर्पवात जेहि घर माँ, सबल सो जीवित मृत्यु॥

४. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-गीत भाग १ पृ० ७०-७१ (भूमिका)



कर्कशा के समान दुष्ट, कटुभाषिणी तथा दुर्व्यवहार करने वाली कोई अन्य स्त्री नहीं हो सकती। किम्बहुना, यह अपने पति से भी अशिष्ट आचरण करती है। उसे देखकर प्रेम करने के विपरीत वह खाव-खाव कर उसे काटने के लिए दौड़ती है। ऐसी कर्कशा स्त्री का व्यवहार कितना कठोर तथा भयंकर होता है इसका वर्णन हिन्दी के किसी कवि ने बड़ा ही सुन्दर किया है जिसे पढ़कर इनके वास्तविक स्वरूप का परिचय मिलता है। वास्तव में ऐसी स्त्रियाँ कसाई के समान कठोर और राक्षसी के समान भयंकर होती हैं। वास्तव में जिस पुरुष का भाग्य फूट जाता है और जो अत्यन्त अभाग्य और कर्महीन (हतभाग्य) होता है उसे ही ऐसी स्त्री (मेहरारू) से पाला पड़ता है।<sup>१</sup>

### नारी-वेश्या के रूप में

भोजपुरी समाज में वेश्याएँ अब हेय दृष्टि से देखी जाती हैं। परन्तु कभी एक जमाना था जब ये समाज में आदर का पात्र समझी जाती थीं। कोई भी भोजपुरी उत्सव इनके अभाव में सूना मालूम होता था। वेश्या के नाच-गान के बिना किसी भोजपुरी विवाह के सकुशल सम्पन्न होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। बारात में वर और समघी के पश्चात् यदि किसी का आदर या सन्मान किया जाता था तो वेश्या का ही।

भोजपुरी में वेश्या को 'रंडी' कहते हैं। इन्हें 'पतुरिया' भी कहा जाता है। कुछ लोग इन्हें 'तवाइफ' नाम से भी अभिहित करते हैं। संस्कृत में ये वार-वनिता के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी जीविका रूप अर्थात् सौन्दर्य के बल पर चलती है। अतः ये 'रूपाजीवा' की संज्ञा से भी विख्यात हैं। इन्हें 'नगर-वधू' की भी संज्ञा प्राप्त है। वैशाली की नगर-वधू आम्नापाली को कौन नहीं जानता; जिसे भगवान् बुद्ध ने उपदेश दिया था। इस प्रकार विभिन्न नामों से प्रसिद्ध ये वेश्याएँ समाज का एक विशिष्ट अंग मानी जाती हैं। एक जमाना था जब ये सम्यता तथा तहजीब की संरक्षिका समझी जाती थीं तथा नवाबों एवं धनी घरों के नवयुवक इनसे 'तहजीब' सीखने के लिए इनके 'कोठों' पर जाया करते थे।

### वेश्याओं की विशेषताएँ

#### (१) रूपाजीवा के रूप में

जैसा कि पहिले लिखा गया है वेश्याओं को संस्कृत में 'रूपाजीवा' कहा जाता है। इस शब्द से इनके स्वरूप तथा पेशा पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। वेश्याएँ अपनी शृंगारप्रियता और बाहरी रूप विन्यास तथा चटक-मटक से मनुष्यों—विशेषकर युवकों—को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। इनके लिए शरीर से सुन्दर तथा देह से स्वच्छ तथा आकर्षक होना अनिवार्य है। अन्यथा इनका पेशा ही नहीं चल सकता। इसीलिए घाघ ने स्पष्ट ही लिखा है कि मौन रहने वाला अर्थात् शास्त्रार्थ में चुप बैठने वाला पण्डित तथा मलिन अर्थात् गन्दी रहने वाली वेश्या इन दोनों का ही नाश निश्चित है।<sup>२</sup> यदि वेश्या की आँखें सुन्दर और आकर्षक न हो तथा गन्दगी से भरी हों तो वह नष्ट हो जाती हैं।<sup>३</sup> गन्दी रहने वाली वेश्या कभी युवकों को आकृष्ट नहीं कर सकती।<sup>४</sup>

#### (२) धन के प्रति लोभ

वेश्या को किसी पुरुष से वास्तविक प्रेम नहीं होता। वह कामुक पुरुषों से धन ऐंठने के लिए कृत्रिम प्रेम का ढोंग करती है। वह वास्तव में प्रेम नहीं करती बल्कि प्रेम का आडम्बर दिखलाती है। जिस व्यक्ति के गाँठ में पैदा होता है उसी का

१. 'खसम को देखे खाँव, खाँव कर धावती॥  
ऐसी 'करकशा' ये कसाइन कुलच्छनी हैं,  
करम के फूटें घर ऐसी नारि आवती॥"
२. पण्डित चुप चुप, बेसवा मईल।  
घाघ कहे दूनों घर गईल॥
३. अँखिया लीबर बेसवा नासै।  
घगघा पैर बेवाई॥
४. पदनी पतुरिया; खोखना चोर।  
चटनी पुरखिन; करे अँजोर॥



वह स्वागत करती है। उसके धन के आधार पर ही वह किसी से सहवास करती है।<sup>१</sup> परन्तु जिसके पास में धन नहीं होता उससे वह बात तक नहीं करती। वह उसका नितान्त परित्याग कर देती है।<sup>२</sup> धनहीन, कामुक मनुष्य इसलिए वेश्या को देख-कर रोने लगता है।<sup>३</sup>

### (३) वेश्या का चारित्रिक पतन

अनेक पुरुषों से प्रतिदिन अनैतिक सम्पर्क रखने के कारण वेश्या का चारित्रिक पतन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा होता है। परपुरुषों से धन खसोट कर वह अपने शरीर का विक्रय करती है।<sup>४</sup> यही उसकी प्रसन्नता का फल है। वह प्रतिदिन अनैतिक शरीर-व्यापार करते हुए अपना धर्म तथा सतीत्व नष्ट कर देती है। इसीलिए एक लोकोक्ति में कहा गया है कि बनिया मित्र नहीं हो सकता और न वेश्या कभी सती या पवित्र चरित्रवाली हो सकती है।<sup>५</sup> अतः जो व्यक्ति वेश्या को सती कहता है और बनिया को मित्र मानता है वह निःसन्देह झूठा है।<sup>६</sup> वेश्या कभी सती हो ही नहीं सकती क्योंकि वह अपने सतीत्व को बेचकर ही अपना पेशा कमाती है। इसलिए उसके पतिव्रता होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता ! एक कहावत है कि “घोड़ा घास से प्रेम करे तो खाये क्या।” इसी प्रकार से यदि वेश्या अपने सतीत्व से प्रेम करने लगे तो उसका ‘पेशा’ कैसे चल सकता है !

### (४) अविश्वास की खान

वेश्या की बातों पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता। चूँकि उसका सभी क्रिया-कलाप धन के लोभ से प्रेरित होकर संचालित होता है अतः चाँदी के कुछ टुकड़ों के लालच में वह झूठ-सच बातों का अम्बार लगा सकती है। वह असत्य का वह विशाल प्रासाद खड़ा कर सकती है जो देखने में महान् दृष्टिगोचर होता है। परन्तु सत्य की निकष पर कसने पर वह क्षणभर में भूमिसात् हो जाता है। इसीलिए नीतिकारों ने वेश्या की बातों पर कदापि विश्वास न करने के लिए डिण्डिभ स्वर से घोषणा की है।

### (५) बुद्ध तथा सात्विक प्रेम का अभाव

वेश्या के जीवन में स्वाभाविक प्रेम का नितान्त अभाव पाया जाता है। वे धनवान् व्यक्ति से प्रेम करने का जो ढोंग रचती हैं वह केवल आडम्बर मात्र है। वास्तविकता का उसमें तनिक लेश भी नहीं होता। अतः जो कामुक तथा नव-युवक वेश्या के प्रेम पर विश्वास करते हैं उनके समान कोई दूसरा मूर्ख नहीं हो सकता। हमारे नीति ग्रन्थों में तथा लोक-साहित्य में ऐसी अनेक उक्तियाँ उपलब्ध होती हैं जिनमें वेश्याओं में प्रेम के अभाव का वर्णन पाया जाता है। अतः चतुर मनुष्यों को इनसे सावधान रहना चाहिए।

## जारी-कन्या के रूप में

भोजपुरी समाज की तरह अवधी समाज में भी कन्या का जन्म अवांछित तथा अनभिलषित माना जाता है। परिवार में वह धन-हानि, चिन्ता तथा अपमान का कारण समझी जाती है। घाघ और भड्डरी का कथन है कि रवि, गुरु और मंगल का एक ही रेखा होने पर कृत्तिका, भरणी और आश्लेषा नक्षत्रों में, द्वितीया, सप्तमी और अष्टमी तिथियों में पुत्री का जन्म अत्यन्त अमंगलकारी होता है। ऐसी स्थिति में या तो उसकी मृत्यु हो जाती है अथवा वह अपनी माता की मृत्यु का कारण होती है।

१. जइसा साजन पाय, तइसी सेज डसाय।
२. धनहीन मनुष्य तजे गणिका।
३. गाँठी में पइसे ना, पतुरिया के देखिके रोवाई छूटे।
४. वेश्या प्रसन्न स्वशरीरदानम्।
५. वनिता मित्रं न; बेसवा सती।  
कागा हंस न; गदहा जती॥
६. बेसवा के सती कहै; ओ महुआ के मीठा।  
बनिया के मित्र कहै; उहै सार झूठा॥



पराये घर अथवा ससुराल में जाकर वह धन तथा सम्पत्ति को नष्ट कर देती है। जो चमारिन स्त्री बच्ची का नाल काटने आती है उसके ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु हो जाती है। सूतिका-गृह का कार्य समाप्त हो जाने पर उसकी सेवा करने वाली नाईन (नाई की स्त्री) की जीविका नष्ट हो जाती है। विवाह के बाद वह शीघ्र ही विधवा हो जाती है।<sup>१</sup>

यदि किसी नवविवाहिता वधू की प्रथम सन्तान कन्या हो तो इससे कुसमय की सूचना मिलती है।<sup>२</sup> घाघ ने कन्या के रूप में पहिली सन्तान का उत्पन्न होना अत्यन्त कष्टदायक माना है और कहा है कि ऐसा दुःख असहनीय है।<sup>३</sup> इसीलिए एक भी कन्या की उत्पत्ति अवांछनीय मानी जाती है।<sup>४</sup>

पुत्री जब युवती होने लगती है तब उसके विवाह की चिन्ता उसके पिता को सताने लगती है। इस चिन्ता के कारण उसको नींद नहीं आती और वह उसी प्रकार रात को जागता रहता है जिस प्रकार वह व्यक्ति जिसके घर में साँप का निवास होता है।<sup>५</sup> इस प्रकार इस लोकोक्ति में किसी कन्या की उपमा साँप से दी गई है। एक अवधी लोक-गीत में कहा गया है कि जिसके घर में कुंवारी कन्या पड़ी हुई है उसके पिता को भला नींद कैसे लग सकती है। सारी रात उसकी आँखों से अश्रुओं की धारा प्रवाहित होती रहती है।<sup>६</sup>

पिता पुत्री की विवाह के लिए वर की खोज में देश-विदेश में घूमता है परन्तु कहीं भी उपयुक्त तथा योग्य वर उसको नहीं मिलता। अतः वह दुःखी होकर कहता है कि अब मेरी बेटी कुंवारी ही रह जायेगी।<sup>७</sup>

कन्या घन-हानि का प्रधान कारण मानी जाती है। अवधी की एक लोकोक्ति में कहा गया है कि बकरी के द्वारा चरा हुआ वन और कन्या को दिया गया दान-दहेज से उजड़ा हुआ घर—दोनों ही पुनः सुसम्पन्न नहीं हो सकते।<sup>८</sup> एक काश्मीरी लोकोक्ति में भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया गया है।<sup>९</sup>

१. आप मरें के माते खाय। धन छीजें जो पर घर जाय।

जौन चमाइन नरकटिया करै; जेठ पूत बाहू के मरे।

जौने नाउन सौर कमाय; धरिस बिना रोजी ते जाय।

ब्रह्मा, विष्णु उतरि जो आवैं; भाँवरि देत विधवा हुई जावे॥

देखिए—घाघ और भड्डरी की कहावतें। पृ० ७५; (वाणी वितान प्रकाशन; वाराणसी)

२. भैंस जो जनमें पड़वा; बहू जो जनमे धीय।

समय कुलच्छन जानिये; कातिक बरसे मेह॥

३. नसकट खटिया; बतकट जोय।

जो पहिलउठी बिटिया होय॥

पातर कृषी बौरहा भय।

घाघ कहै दुःख कहाँ सभाय॥

४. चलना भला न कोसका; दुहिता भली न एक।

माँगन भला न बाप तें; जो प्रभु राखे टेक॥

५. कि जागे बिटिया के बाप; कि जागे जेहिके घर साँप।

६. नीर चुवइ बाबा नीर चुवतु है;

नीर चुवइ आधी राति।

वहिके पिता कइ नींद कइसे लागइ।

जेहि घर कन्या कुँवारि॥

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—अवधी लोकगीत पृ० ३७।

७. पुरुब हेरेउँ, पछुआ में हेरेउँ;

हेरेउँ दिल्ली, गुजरात।

तुमहि जोग वर कतहूँ न पावा;

अब बेटी रहूँ कुँवारि॥

श्रीमती विद्यापति कोकिल—सोहाग गीत पृ० ५३।

८. बकरा का चरा बन, औ बिटिया का चरा घर, फिर नाहीं पनपत।

९. मोहन कृष्ण दर—काश्मीर का लोक-साहित्य, पृ० २४४।



विवाह की कठिनाता, दान-दहेज की भयंकर प्रथा और पुत्री के जन्म के प्रति घृणा तथा उदासीनता, इन सब कारणों से पुत्री का पिता तथा परिवार के अन्य सदस्य उसकी मृत्यु का प्रसन्न हृदय से स्वागत करते हैं। एक भोजपुरी लोकोक्ति में कहा गया है कि जिस व्यक्ति का दामाद मर जाता है वह अभागा है। परन्तु जिस व्यक्ति की पुत्री की मृत्यु हो जाती है वह अत्यन्त भाग्यशाली है।<sup>१</sup> लोक-कवि घाघ ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि बिना व्याही हुई (अविवाहिता) पुत्री मर जाय, और खेत में खड़ी ईख बिक जाय, तथा बिना युद्ध किए ही शत्रु का नाश हो जाय तो इससे अत्यन्त प्रसन्नता होती है। इतना अधिक सुख कहाँ समा सकता है।<sup>२</sup> एक दूसरी लोकोक्ति में यह कहा गया है बिटिया के मरने से तो क्षणिक दुःख होता है परन्तु उसके जीते रहने पर आजीवन दुःख सहना पड़ता है।<sup>३</sup>

कन्या और गाय दोनों को एक ही कोटि में रखा गया है। दोनों ही आजीवन पराश्रित रहकर कष्ट सहती है। अनेक दुःखों को झेलना पड़ता है।<sup>४</sup> गाय के समान कन्या को जिधर हाँक दिया जाय अर्थात् जहाँ भी उनका विवाह कर दिया जाय वहाँ वे बेचारी चली जाती हैं।<sup>५</sup> जब वर का पिता दहेज में हाथी, घोड़ा और पचास सोने के मोहरों की माँग करता है तब पुत्री का पिता अपनी गरीबी के कारण विवश होकर उसका विवाह किसी निर्धन व्यक्ति से कर देता है क्योंकि वह इतना अधिक दहेज देने में अपनी नितान्त असमर्थता प्रकट करता है।<sup>६</sup>

लोक-कवि घाघ का विचार है कि बेटी का विवाह करते समय वर का घर, उसकी आर्थिक परिस्थिति, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि बातों पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। जो मनुष्य ऐसा नहीं करता वह कन्या के विवाह के पश्चात् छाती पीट कर रोता है।<sup>७</sup> अतः वर के साथ ही उसकी आर्थिक दशा पर ध्यान देना चाहिए।<sup>८</sup>

एक अवधी लोकोक्ति के अनुसार किसी कन्या में निम्नांकित चार गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक माना जाता है।

(१) कन्या आलसी तथा सुस्त नहीं होनी चाहिए।

(२) उसे घरेलू काम-काज में निपुण तथा चुस्त होना चाहिए।

(३) कन्या में लज्जा की भावना घाघ के अनुसार आलसी तथा सुस्त स्वभाव वाली कन्या दुःख देने वाली होती है।<sup>९</sup>

१. दामाद मरे अभागा। बेटी मरे सोहागा॥

(लेखक का निजी संग्रह)

२. अन व्याही बिटिया मरै; ठाढ़ी ऊख बिकाय।

बिन मारे बैरी मरै; ई सुख कहा समाय॥

३. बिटिया मरे घरी दुःख;

बिटिया जिये पर जनम भर दुःख।

४. सुता, गऊ दोऊ दीन हैं,

हरदम सहें कलेस।

५. बिटिया के कउन; विचारी के जह हाँकि देव, तहें चली जाय।

६. "वे वर माँगे बेटी, घोड़ा औ हाथी;

माँगे मोहर पचास।

वे वर माँगे बेटी नौलख दायज;

मोरे बूते देइ न जाय॥"

७. परहथ बनज; सँदेसे खेती;

बिन घर देखे; व्याहे बेटी।

द्वार पराये गाड़े थाती;

ये चारिउ मिलि पीटे छाती॥

८. घर देखु, वर देखु; दिआ के तर देखु।

९. ढीठ पतोह, धिया गरियार;

खसम बेपीर न करै विचार।

घरे जलावन, अन्न होय;

घाघ कहै सो अभागी होय॥"

(त्रिपाठी—घाघ और भड्डरी)



अवश्य होनी चाहिए क्योंकि निर्लज्ज कन्या अपने पिता और माता को कलंकित कर देती है।<sup>१</sup>

(४) कन्या के लिए सती-साध्वी होना अत्यन्त आवश्यक है। उसे दुराचरण से दूर रहना चाहिए।<sup>२</sup> विवाहित हो जाने पर उसे पराये घर बार बार नहीं जाना चाहिए क्योंकि इससे उसकी प्रतिष्ठा कम हो जाती है।<sup>३</sup>

### टिप्पणियाँ

इस ग्रन्थ में आये हुए कठिन तथा पारिभाषिक शब्दों, प्रथाओं और परम्पराओं की व्याख्या।

१. कुलटुरा—यह जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ कल्चर अर्थात् संस्कृति होता है। यह लैटिन भाषा के 'कोलर' शब्द से निष्पन्न हुआ है।

२. शिष्ट संस्कृति तथा लोक-संस्कृति में प्रधान भेद यह है कि—शिष्ट संस्कृति का स्रोत शास्त्र है परन्तु लोक-संस्कृति का उत्स लोक अर्थात् सामान्य जनता है।

३. सरयूपारीण—ब्राह्मणों की विभिन्न जातियों का नामकरण किसी नदी अथवा नगर या देश में निवास करने के कारण हुआ है। कुछ नाम गोत्र सम्बन्धी भी हैं।

(क) सरयूपारीण—सरयू अर्थात् घाघरा नदी के किनारे निवास करने वाले ब्राह्मण।

(ख) सारस्वत—पंजाब की सरस्वती (अब लुप्त) नदी के तट के निवासी।

(ग) कान्यकुब्ज—कन्नौज के निवासी।

(घ) गौड़—गौड़ (बंगाल) देश के निवासी

(ङ) सनाढ्य—यह नामकरण गोत्र के ऊपर आश्रित है।

(च) गौतम— } ये तीनों ही नाम ऋषियों के गोत्र के अनुसार रखे गये हैं।

(छ) शाण्डिल्य— }

(ज) गर्ग— }

५. पवित्र पावन ब्राह्मण—इनका इतिहास बहुत प्राचीन है। काणे ने अपनी "धर्मशास्त्र का इतिहास" में इनका विशेष वर्णन किया है। मिथिला में 'श्रोत्रिय' ब्राह्मण तथा बंगाल में 'कुलीन' ब्राह्मण श्रेष्ठ माने जाते हैं। भोजपुरी प्रदेश में इन ब्राह्मणों की भी गणना उसी कोटि में की जाती है।

६. तियाग—श्राद्ध के अवसर पर एक कटोरी में थोड़ा दूध रख दिया जाता है जिसे महाब्राह्मण के लिए पीना अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। बिना इस दूध को पिये श्राद्ध कर्म पूर्ण नहीं माना जाता। अतएव इसे पीने के लिए महाब्राह्मण मनमानी दक्षिणा माँगता है।

७. करन्न—यह ब्राह्मणों की ही उपजाति है जो इनके कर्मों के कारण निकृष्ट मानी जाती है। इस शब्द की उत्पत्ति संभवतः 'कदन्न' शब्द से है क्योंकि ये ब्राह्मण श्राद्ध में अनाहृत आकर कोई भी अन्न खाने के लिए तैयार रहते हैं।

९. दँवरी—खलिहान में रखे गये गेहूँ या चने के सूखे पौधों (डण्ठल) को बैलों के द्वारा उन्हें छोटे-छोटे टुकड़ों में करवाना। इस कार्य में आठ या दस बैलों को एक साथ जोत कर सूखे पौधों के ऊपर उन्हें चलाया जाता है। उनके पैरों से यह डण्ठल अनेक टुकड़ों में खण्डित हो जाता है। इसी को दँवरी कहते हैं।

१२. चमार—गाँवों में यह जाति अत्यन्त प्रसिद्ध तथा उपयोगी है। ब्रिग्स नामक विद्वान् ने 'दि चमार्स' नामक अपने ग्रन्थ में इनका बड़ा ही विस्तृत तथा वैज्ञानिक वर्णन प्रस्तुत किया है।

१. सासन का गरम, बनियाँ के नरम और लड़की के सरम।

२. हुकुमी पूत, धिया सतवार; बड़े भागु से दे करतार॥

३. नासै बहू जो खिल खिल हँसै।

नासै "सुवासित" जो घर घर फिरै॥

(लेखक का निजी संग्रह।)



१९. **पँसगी**—जिस घर में स्त्री बच्चा पैदा करती हैं उसे 'सूतिका' गृह' कहते हैं। इसी सूतिकागृह के द्वार पर कच्ची मिट्टी के बने पात्र में—जिसे 'पवड़ी' कहा जाता है—आग सदा जलती रहती है जिसमें धूप, गुग्गुलु आदि जलाया जाता है। जिससे बुरी आत्मायें (evil spirits) उस गृह के भीतर प्रवेश न कर सकें। इसी पात्र को 'पाँसगी' या 'पँसगी' कहा जाता है।

१९. **ओछवानी**—यह किसमिस, काजू आदि सूखे फलों तथा अन्य पौष्टिक (जड़ी बूटी) पदार्थों को मिलाकर बनाया गया वह खाद्य पदार्थ (हलुआ) है जो सद्यः प्रसूता स्त्री के शक्ति-वर्धन के लिए उसे खिलाया जाता है।

१९. **खुरखुड़ी**—मुट्टे की 'बालि' जिसमें से उसके दाने निकाल लिये गये हैं। यह निर्धन मनुष्यों के घरों में ईन्धन के रूप में प्रयुक्त होती है।

१९. **छठी तथा बरही**—पुत्र जन्म के छः दिनों के बाद किया गया संस्कार छठी और १२ दिनों के बाद का संस्कार कर्म 'बरही' कहा जाता है। इस दिन पुत्र का नामकरण भी पुरोहित के द्वारा किया जाता है। परन्तु पुत्री के जन्म लेने पर ये संस्कार नहीं किये जाते।

२१. **उसिना**—चावल दो प्रकार का होता है—(१) उसिना तथा (२) अरवा। उसिना चावल, धान को पानी में भिगोकर तथा आग में उसे थोड़ा भून कर तैयार किया जाता है। इसीलिए इसे 'भुजिया' चावल भी कहा जाता है। पुराणपन्थी पण्डित लोग इस चावल को अपवित्र मानते हैं। अतः इसे नहीं खाते। परन्तु भोजपुरी प्रदेश में विशेषकर गाँवों में सर्वसाधारण जनता इसी उसिना चावल को खाती है।

२१. **जीवित्पुत्रिका**—यह स्त्रियों का एक व्रत है जो एक विशेष मास में किया जाता है। इसमें स्त्रियों के लिए अन्न के साथ ही जल ग्रहण करना भी निषिद्ध है। इसीलिए इसे "खरजीउतिया" कहा जाता है। पुत्र की मंगलकामना के लिए यह व्रत प्रायः सभी पुत्रवती स्त्रियों के द्वारा किया जाता है। देखिए—'व्रत-चन्द्रिका'।

२२. **आहिनक सूत्रावली**—यह एक धार्मिक ग्रन्थ है जिसमें दिन भर में मनुष्यों के द्वारा किये जाने वाले उचित कार्यों का विधान पाया जाता है।

२२. **मुंगरी**—काठ के एक ही टुकड़े से बनी हुई प्रायः एक हाथ लम्बी तथा मोटी वस्तु को 'मुंगरी' कहा जाता है। यह धान अथवा तेलहन आदि अन्य किसी सूखे अन्न को पीटने के काम में लाई जाती है। यह कृषक का अनन्य साधन है।

२४. **सूर्यवृष्टी व्रत**—इसे छठी माता का व्रत भी कहा जाता है। यह व्रत प्रायः पुत्रहीन स्त्रियों के द्वारा पुत्र प्राप्ति की कामना से कार्तिक शुक्ल षष्ठी के दिन किया जाता है। इस दिन स्त्रियाँ सूर्य की पक्वान्न (ठेकुआ तथा अघरवटा) तथा फल से पूजा करती हैं। वे सप्तमी के प्रातःकाल सूर्योदय से पहिले किसी नदी या तालाब के जल में खड़ी होकर सूर्योदय की प्रतीक्षा करती हैं तथा उनसे शीघ्र उदय लेने के लिए लोक-गीत गाकर प्रार्थना करती हैं। बिहार राज्य में यह व्रत बड़े ही उत्साह तथा वैभव के साथ मनाया जाता है।

२६. **सोहर**—पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीत। पुत्री के जन्म पर ये गीत नहीं गाये जाते।

२७. **निरवाही के गीत**—खेत में अन्न बोने पर कुछ दिनों के बाद उसमें घास-पात जम जाती हैं। इसी अवांछित घास को निकालने को 'निरवाही' कहते हैं। इस काम को 'सोहनी' भी कहा जाता है। अतः इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उन्हें निरवाही या सोहनी के गीत कहा जाता है।

२७. **कुसुम देवी**—यह एक प्रसिद्ध लोक-गाथा है जिसमें कुसुमा देवी नामक किसी परिव्रता स्त्री का मुगलों से पिण्ड छुड़ाकर अपने पातिव्रत धर्म की रक्षा का वर्णन किया गया है। (देखिए—रामनरेश त्रिपाठी—कविता कौमुदी भाग-५; ग्रामगीत)

२९. **बबुर**—एक कँटीला पेड़ जो प्रायः खेतों में अनायास ही पैदा हो जाता है। ऊँट इसकी पत्तियों को बड़े शौक से खाता है। इस दोहे में 'बबुर' के स्थान पर 'करील' पाठ भी पाया जाता है। यह काँटों से युक्त पत्रहीन वृक्ष ब्रजमण्डल में प्रचुरता से उपलब्ध होता है।

३०. **कोठिला**—गाँवों में अन्न को संग्रहीत करने के लिए मिट्टी का बना हुआ विशाल भाण्ड जो प्रायः छोटे घर के समान बड़ा तथा चारों ओर से बन्द रहता है।

३१. **लोलार्क कुण्ड**—काशी के भदौनी मुहल्ले में स्थित एक कुण्ड है जिसमें स्नान करने से पुत्र-प्राप्ति की संभावना होती है।

३६. **परिछावन**—विवाह के लिए जाते हुए वर के, पत्थर के बने लोढ़े को सिर के चारों ओर घुमाना। इसे परिछावन कहा जाता है। यह कार्य विवाह के पश्चात् वर के घर लौटने के समय भी किया जाता है।



३६. खोरिस—विधवा, वन्ध्या अथवा किसी असहाय स्त्री के भरण-पोषण के लिए दी जाने वाली धनराशि।

३७. सतनहयना—यह एक अत्यन्त दुःखदायी भोजपुरी प्रथा है जो पति की मृत्यु के सातवें दिन की जाती है। इस दिन उसकी विधवा पत्नी के माँग में 'खली' मलकर उसके माँग के सिन्दूर को धो दिया जाता है। फिर उसे स्नान कराया जाता है। यह बड़ा ही कष्टप्रद तथा हृदयविदारक दृश्य होता है।

३८. विधवा के अधिकार—सन् १९५६ ई० में पं० जवाहरलाल नेहरू ने जो हिन्दू कोड बिल पास कराया उसके अनुसार विधवा को कुछ आर्थिक अधिकार अवश्य ही प्राप्त हुए हैं। अब वह अपने पति के धन की अधिकारिणी होने में समर्थ है। अविवाहित कन्या को अब गोद भी लिया जा सकता है आदि—आदि। परन्तु ये सभी अधिकार कानून की पुस्तकों में ही अधिकांश रूप में सुरक्षित हैं।

३८. दाल मण्डी—काशी में चौक के पास एक कुप्रसिद्ध गली जिसमें प्रायः वेश्याएँ ही निवास करती हैं।

३८. लब्रर लच्छन—शीघ्र ही बिना उचित विचार किये हुए, किसी काम को करने वाली मूर्खा स्त्री।

३९. 'साई'—गाँवों में किसी बाजे वाले, नाँचने वाले या गवैये को उचित समय पर आकर अपना कार्य सम्पादन करने के लिए जो अग्रिम धन-राशि (Advance money) दी जाती है उसे 'साई' कहते हैं। किसी वस्तु को क्रय करने के लिए भी यह अग्रिम मूल्य दिया जाता है।

३९. पटरी खाना—मेल होना। आपस में प्रेम व्यवहार का होना।

३९. पेड़े कटहर ओठे तेल—एक यह लोकोक्ति है जिसका अर्थ है किसी वस्तु के अभाव में ही उसकी प्राप्ति की संभावना कर तैयारी करने का उपक्रम करना।

४४. घृत, लवण, तैल, तण्डुल—

यह एक श्लोक का अंश मात्र है जो गरीबी के दिनों में पारिवारिक चिन्ता से ग्रस्त पुरुष के लिए कहा जाता है। पूरा श्लोक इस प्रकार है।

“नश्यति बुद्धिमतामपि बुद्धिः  
नष्टविभवस्य।

घृत-लवण-तैल-तण्डुल;-

वस्त्रेन्धनचिन्तया सततम्॥”

५३. भाई और बहिन का पारस्परिक प्रेम—

लोकगीतों में भाई और बहिन के सहज तथा अकृत्रिम प्रेम के सम्बन्ध में सैकड़ों गीत या पद पाये जाते हैं। इन गीतों में इन दोनों के पारस्परिक प्रेम का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन पाया जाता है। परन्तु यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है कि वैदिक तथा संस्कृत-साहित्य में भाई तथा बहिन के प्रेम के वर्णन का सर्वथा अभाव ही उपलब्ध होता है। हाँ, वैदिक साहित्य में यम और यमी के प्रेम का वर्णन अवश्य ही पाया जाता है परन्तु इस प्रेम को आदर्श कोटि में नहीं परिगणित किया जा सकता। यह प्रायः कुत्सित है। भ्रातृ-द्वितीया आदि अनेक त्योहार भ्रातृ-प्रेम के संवर्धन के सम्बन्ध में मनाये जाते हैं परन्तु संस्कृत-साहित्य में इसका वर्णन क्यों नहीं है इसका कारण कुछ ज्ञात नहीं होता। संस्कृत के विद्वानों को इस विषय पर शोध करना चाहिए।

७२. सौतिया डाह—भोजपुरी समाज में 'सौतिया डाह' का बीमत्स स्वरूप, देखने को मिलता है। कितनी ही स्त्रियाँ इस द्वेष या डाह के कारण विष खाकर मर जाती हैं अथवा कुँ में कूदकर अपने प्राणों का परित्याग कर देती हैं। आपस में झगड़ा करने के कारण उनमें वैमनस्य की भावना अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची रहती है। एक गीत में कोई स्त्री अपनी सौत के प्रति कह रही है कि उसको पटक कर उसकी छाती पर सड़क बनाऊँ अथवा कुटवाऊँगी और उस पर प्रसन्न होकर चलूँगी। संभवतः यह सौतियाडाह की पराकाष्ठा समझनी चाहिए। भोजपुरी प्रदेश में इस डाह के कारण अनेक अनर्थ प्रतिदिन होते हैं जिनका वर्णन लोक-गीतों में किया गया है।

७४. दिव्य की प्रथा—इस प्रथा के शास्त्रीय तथा विशेष वर्णन के लिए देखिए—(१) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—हिन्दू विवाह की उत्पत्ति तथा विकास। (२) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—सम्मेलन पत्रिका—लोक-संस्कृति विशेषांक।

८७. बारात का प्रस्थान—इस शीर्षक के स्थान पर, बारात की तैयारी' शीर्षक समझना चाहिए क्योंकि यथास्थान बारात के प्रस्थान का विशेष वर्णन दिया गया है।

भोजपुरी—४९



१२. विवाह संस्कार के अवसर पर किये जाने वाले विविध विधि-विधानों के प्रामाणिक तथा विस्तृत वर्णन के लिए निम्नांकित ग्रन्थ पठनीय है—

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—हिन्दू विवाह की उत्पत्ति तथा विकास।

१३. गवना के गीत—पुत्री की विदाई के अवसर पर गाये जाने वाले गीत बड़े ही मर्मस्पर्शी हैं। भोजपुरी के अति-रिक्त अवधी, ब्रज तथा पंजाबी आदि भाषाओं में जो विदाई के गीत गाये जाते हैं वे भी बड़े कारुणिक तथा हृदयविदारक हैं। पंजाबी, गुजराती तथा कश्मीरी विदाई के गीतों के लिए देखिए—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-गीत भाग १ पृ० ७६ (द्वि० सं०)।

१००. मृत्यु संस्कार—मृत्यु संस्कार में किये जाने वाले विभिन्न विधि-विधानों का वर्णन गृह्य-सूत्रों में पाया जाता है। मृत्यु के पश्चात् पापी मनुष्य की आत्मा किन-किन नरकों में जाती है और उसे कौन-कौन-सी भीषण यंत्रणाएँ दी जाती हैं इसका विस्तृत वर्णन 'गरुड़ पुराण' में उपलब्ध होता है। 'दाही' व्यक्ति को गरुड़पुराण सुनाने की परम्परा भी पायी जाती है। कोई विद्वान् ब्राह्मण १० दिनों तक 'दाही' के समक्ष गरुड़पुराण को पढ़कर सुनाता है।

१०१. पर्दे की प्रथा—आधुनिक युग में पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव के कारण पर्दे की इस दूषित प्रथा का धीरे-धीरे ह्रास हो रहा है। गाँवों में भले ही यह आज भी अपनी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में विद्यमान है। परन्तु नगरों में तो इसका अत्यन्त अभाव पाया जाता है। कुछ वर्षों पूर्व, गाँवों में गवना के समय, गर्मी की ऋतु में भी पालकी में बन्द, नयी वधू को ससुराल जाते हुए देखा जा सकता था। भीषण गर्मी के कारण कितनी बहुएँ पालकी में ही मूर्च्छित हो जाती थीं। आज भी यही परम्परा प्रचलित है परन्तु उसकी भीषणता कुछ कम हो गयी है। अब गाँवों में भी वधू भसुर तथा ससुर के सामने आने लगी हैं; जो पहिले असंभव था।

#### १०५. तिलक का बाजार भाव—

आज भीषण मँहगाई के साथ ही विवाह के बाजार में वर का मूल्य भी बहुत ही अधिक बढ़ गया है। चावल, दाल आदि अन्य पदार्थों के साथ ही उसका भाव भी बहुत अधिक बढ़ गया है। इस पुस्तक के पृ० १०६ पर तिलक तथा दहेज के जो आँकड़े दिये गये हैं वे प्रायः १५ वर्ष पुराने हैं। इस बीच में विवाह योग्य वर के बाजारू भाव में तिगुनी या चौगुनी वृद्धि हो गई है। अतः इस आँकड़े में निम्नांकित संशोधन करना आवश्यक हो गया है।

योग्यता	तिलक की धन-राशि
आइ० एफ० एस०	५००,००० (पाँच लाख)
आइ० ए० एस०	४,००,००० (चार लाख)
आइ० पी० एस०	२,००,००० से ३,००,००० (दो से तीन लाख तक)
पी० सी० एस०	१,००,००० (एक लाख)
इंजीनियर	१,५००,०० (डेढ़ लाख)
डाक्टर	१,२५,००० (सवा लाख)
ओवरसियर	५०,००० (पचास हजार)
प्राध्यापक	४०,००० (चालीस हजार)
ग्रेजुएट शिक्षक	३०,००० (तीस हजार)
सामान्य शिक्षक	२०,००० (बीस हजार)
अति सामान्य योग्यता सम्पन्न	१५,००० से २०,००० तक (पन्द्रह से बीस हजार तक)

विवाह के बाजार में सबसे अधिक मूल्य उस व्यक्ति का है जो केन्द्रीय सरकार की केन्द्रीय सेवाओं में कार्यरत हो—जैसे आइ० एफ० एस० या आई० ए० एस०। इसके पश्चात् डाक्टर तथा इंजीनियर का नम्बर आता है। इस बाजार में शिक्षक का मूल्य बहुत ही कम है; चाहे वह भले ही किसी कालेज या विश्वविद्यालय का प्राध्यापक ही क्यों न हो। जिस नौकरी में अपरी आमदनी, अधिक वेतन तथा शान समधिक है, उसी में कार्यरत व्यक्ति का बाजारू भाव अधिक आँका जाता है।

मैं समझता हूँ कि आजकल कोई भी विवाह—चाहे वह सामान्य वर से ही क्यों न किया जाय—बीस-पचीस हजार



रूपों से कम में सम्पन्न नहीं हो सकता। इसीलिए गरीब परिवार की शिक्षित तथा सुन्दर भी लड़कियाँ प्रायः अविवाहित रह जाती हैं।

१०८. वृद्ध विवाह—वृद्ध विवाह का बड़ा ही स्वाभाविक तथा सुन्दर चित्रण भोजपुरी के प्रसिद्ध नाटककार भिखारी ठाकुर ने अपने नाटकों में किया है। अनमेल विवाह का चित्रण भी उनके नाटकों में पाया जाता है।

११०. विधवा विवाह—धर्मशास्त्रों में विधवा विवाह का विधान पाया जाता है। अतः जो लोग अशास्त्रीय मानकर इस विवाह की निन्दा करते हैं उन्हें निम्नलिखित पुस्तक ध्यान से पढ़नी चाहिए—

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—हिन्दू विवाह की उत्पत्ति तथा विकास।

विधवा विवाह न होने से आजकल हिन्दू समाज में कितना अनाचार तथा व्यभिचार फैलता जा रहा है, यह प्रबुद्ध पाठकों से छिपा नहीं है। अतः हिन्दू समाज की बुराइयों को दूर करने के लिए इसका प्रचार अत्यन्त आवश्यक है।

१०७. बाल विवाह—आज से लगभग चालीस-पचास वर्ष पहिले भोजपुरी प्रदेश में, बाल विवाह का प्रचुर प्रचार था। किम्वदन्ता तीन-चार वर्ष की लड़कियों का भी विवाह उनकी अबोध अवस्था में ही कर दिया जाता था। भारत सरकार ने कानून के द्वारा १८ वर्ष से कम आयु की लड़की तथा २१ वर्ष से कम आयु के लड़कों का विवाह निषिद्ध कर दिया है। यद्यपि इस कानून का पालन नियमित रूप से नहीं किया जा रहा है फिर भी बाल विवाहों की संख्या में बहुत ही कमी आ गयी है। इसके प्रधान तीन कारण हैं—(१) आर्थिक समस्या; (२) संयुक्त परिवार का क्रमशः विघटन; (३) शिक्षा का प्रचार।

आधुनिक काल में शिक्षा के समधिक प्रचार के कारण, कोई भी व्यक्ति किसी अशिक्षित वर से अपनी कन्या का विवाह करना नहीं चाहता। जीविका के अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने परिवार के पालन-पोषण में असमर्थ होता है। इस विचार से अब बहुत से नवयुवक नौकरी के अभाव में विवाह करने से हिचकते हैं। संयुक्त परिवार में न कमाने वाले व्यक्ति का भी गुजारा हो जाता था। परन्तु अब संयुक्त परिवार के विघटन के कारण प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिवार का भार स्वयं उठाना पड़ता है। अतः बाल विवाह के अभाव का कारण प्रधान रूप से आर्थिक ही है।

१२९. सत्तू—सत्तू भोजपुरी लोगों का अत्यन्त प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय भोजन है। वेदों में भी सत्तू का उल्लेख पाया जाता है। ऋग्वेद में लिखा है कि जिस प्रकार 'चालनि' (चलनी) से चाल कर या छानकर सत्तू को स्वच्छ तथा पवित्र किया जाता है उसी प्रकार विद्वान् मनुष्य वाणी का प्रयोग विचारपूर्वक किया करते हैं।

“सक्तुमिव तितउना पुनन्तो  
यत्र धीराः वाचमकृतः॥  
अत्रा सखायः सख्यानि जानते।  
भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि॥” (ऋग्वेद १०।७।१२)

पाणिनि ने (जिनका समय ईसा पूर्व छठीं शताब्दी माना जाता है) भी सत्तू शब्द का प्रयोग किया है तथा इसके विभिन्न प्रकार के प्रयोगों पर प्रकाश डाला है। महर्षि पतंजलि ने तो अपने महाभाष्य में “सत्तून पिव देवदत्त” का उल्लेख कर इसके प्रचुर प्रचार की ओर संकेत किया है। पतंजलि के काल में सत्तू का प्रयोग सामान्य जनता के द्वारा प्रचुर रूप में किया जाता था। अन्यथा वे इसका उल्लेख इतने विस्तार से नहीं करते।

सत्तू का प्रयोग उस समय इतना अधिक था कि यह दुकानों पर बिका करता था। सामान्यतया ब्रीहि (धान) यव और गोधूम (गेहूँ) को भाड़ में भून कर तथा चक्की में पीस कर सत्तू तैयार किया जाता था। चक्की (हृषद्) में पीसे जाने के कारण यह हृषिद' कहा जाता था। तितउ (चालनि) से चाल कर इसे स्वच्छ करते थे। अधिकतर सत्तू यव (जौ) से ही बनाया जाता था। उस समय सत्तू में पानी मिलाकर उसे पीने की प्रथा थी। 'सक्तून् पिव देवदत्त' में 'पिव' शब्द के प्रयोग से इस प्रथा की ओर संकेत मिलता है। इस प्रकार सत्तू तो पेय था ही परन्तु उसमें दही मिलाकर खाने की भी प्रथा प्रचलित थी। इसके फलस्वरूप उद सत्तू (उदक सक्तू) तथा दहिसक्तू इन दोनों ही शब्दों का प्रयोग महाभाष्य में पाया जाता है।

वैदिक काल में भी सक्तू खाने की परम्परा प्रचलित थी। दूध के साथ खाया जाने वाला सत्तू 'मन्थ' कहा जाता था। सत्तू खाने के तीन प्रकार व्यवहार में लाये जाते थे :—'

१. (क) पं० बलदेव उपाध्याय—भारतीय साहित्य का अनुशीलन, पृ० ४९०।

(ख) लाट्यायन सूत्र भाष्य १।२।७-८।



(१) मधुमन्थ—मधु में सानकर खाया जानेवाला सत्तू।

(२) दधिमन्थ—दही मिलाकर खाना।

(३) उदक मन्थ—पानी मिलाकर खाना।

आजकल भोजपुरी प्रदेश में प्रधानतया सत्तू में पानी मिलाकर खाने की प्रथा विद्यमान है जिसे लिबरी कहते हैं। कुछ लोग सत्तू की पिण्डी बनाकर भी उसे खाते हैं। गर्मी के दिनों में उसमें दही भी मिलायी जाती है।

१७७. धोती—यह भोजपुरी प्रदेश के लोगों का अत्यन्त लोकप्रिय तथा प्रचलित अधोवस्त्र है। किसान, मजदूर तथा कामकाजी व्यक्ति इसी को पहिना करते हैं। पण्डित लोग, तथा प्राचीन सभ्यता के अभिमानी इसे बड़े ही आदर के साथ धारण करते हैं। कभी जमाना था जब धोती अत्यन्त सस्ते दामों में मिलती थी। इसका मूल्य एक रुपया से अधिक नहीं होता था। यह खेतों में काम करने वाले किसानों के लिए सुखद, सस्ती तथा आरामदेह थी। इसका प्रयोग पहिनने के साथ ही चादर के रूप में ओढ़ने के लिए कर लिया जाता था। परन्तु आज अनेक कारणों से इसका प्रचलन धीरे-धीरे कम होता जा रहा है जिसके प्रधानतया दो कारण हैं—(१) महर्घता (२) फैशन से परे होना।

आजकल अन्य खाद्यान्नों तथा परिधान वस्त्रों की महँगाई के साथ ही, धोती का मूल्य भी बहुत ही अधिक हो गया है। सेनगुप्ता तथा नयनसुख नामक धोतियों बहुत ही महँगी हैं। धोती को केवल एक रुपया में खरीद कर किसान अपना काम चला लेता था परन्तु आज ५०) या ६०) खर्च करना पड़ता है। पाश्चात्य शिक्षा के कारण नवयुवकों में धोती पहिनने का फैशन उठता जा रहा है। अतः इसमें कुछ आश्चर्य नहीं कि आगामी २०-२५ वर्षों में धोती अतीत की वस्तु बन जायेगी।

१९९. आभूषण—भोजपुरी स्त्रियों में पहिले गहना पहिनने का बड़ा ही अधिक प्रचार था। विवाह में बहू के लिए सोना तथा चाँदी के गहनों को ले जाना अत्यन्त आवश्यक था। इसके अभाव में कभी-कभी कन्या तथा वर पक्ष वालों में मार-पीट भी हो जाती थी और विवाह नहीं होता था। भोजपुरी स्त्रियों के व्यक्तित्व का यदि विश्लेषण किया जाय तो उसका प्रतिशत प्रायः निम्नांकित होगा।

(१) ७५ आभूषणप्रियता।

(२) २० वस्त्रप्रियता।

(३) ५ स्वच्छताप्रियता।

भोजपुरी स्त्रियाँ सिर के वालों से लेकर पैर की अँगुलियों तक में आभूषणों को धारण करती हैं जिसका विशेष वर्णन इस पुस्तक (पृ० १८५-१९९) में दिया गया है। इन समस्त आभूषणों की संख्या लगभग ६० है। सेना में युद्ध करने वाला सिपाही जिस प्रकार विविध आयुधों से सुसज्जित रहता है (Armed to the teeth); उसी प्रकार विवाह के पश्चात् ससुराल जाने वाली बहू विभिन्न आभूषणों से सुशोभित रहती है। इन गहनों की अधिकता के भार से वह स्वयं सीधी खड़ी भी नहीं रह सकती। यह शुभ लक्षण है कि स्त्री-समाज में (अंग्रेजी) शिक्षा के प्रचार से आभूषण के प्रति व्यामोह शिथिल होता जा रहा है। इसका दूसरा कारण सुवर्ण तथा रजत की महर्घता भी समझनी चाहिए।

२०७. गोदना—आज से २०-२५ वर्ष पहिले सघवा स्त्रियों के लिए गोदना गोदवाना अत्यन्त आवश्यक समझा जाता था। स्त्रियों में यह लोक-विश्वास दृढ़ रूप से प्रचलित था कि बिना गोदना गोदवाये कोई भी स्त्री स्वर्ग नहीं जा सकती। अतः अनेक कष्टों तथा यंत्रणाओं को सहते हुए भी प्रत्येक सघवा नवयुवती को गोदना का दारुण कष्ट भोगना पड़ता था। पुरानी स्त्रियाँ तो हाथों के अतिरिक्त अपनी छाती पर भी गोदना गोदवाती थी।

परन्तु पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव के कारण प्राचीन लोक-विश्वास में कमी आ गई है। जब कोई भी शिक्षित बहू गोदना नहीं गोदवाती है। इस प्रकार 'गोदनहारी' का पेशा अब प्रायः समाप्त हो गया है।

## २०८. अलंकरण तथा प्रसाधन

अब अनेक नवीन प्रसाधन के साधन उपलब्ध हो गये हैं। अतः पुराने प्रसाधनों का प्रयोग धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। 'लिपस्टिक' तथा 'नेल-पालिश' नये प्रसाधन हैं जिनका पहिले अभाव था। इनका स्त्री समाज में अत्यधिक प्रचार है। महावर जो पैरों का सुन्दर लाल प्रसाधन था, अब अपना मुँह काला करके सदा के लिए चला गया। केश-पाश के निर्माण के अनेक प्रकार पाये जाते हैं। पहिले के जूड़ा (वाँघना) या एक वेणी ने अब द्विवेणी या त्रिवेणी का रूप धारण कर लिया है।



२१३. **मेंहदी**—भोजपुरी प्रदेश में पहिले स्त्रियों के हाथों में मेंहदी लगाई जाती थी। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर स्थापित करने के कारण हाथों में छोटी-छोटी बिन्दियाँ बन जाती थी। उस समय 'मेंहदी लगाना' रस्म अदाई के लिए किया जाता था। परन्तु यह आज कला के रूप में परिवर्तित हो गया है।

आजकल मेंहदी के द्वारा स्त्रियों के हाथों में स्वास्तिक का चित्र बनाया जाता है। प्रिय व्यक्ति का नाम लिखा जाता है। किम्बहुना देवी और देवताओं के चित्रों को भी उकेरा जाता है। इसके अतिरिक्त अनेक कलात्मक आकृतियों—जैसे किसी पक्षी या वृक्ष की डिजाइन का भी निर्माण किया जाता है।

पहिले मेंहदी की हरी पत्तियों को 'सिलवट' पर पीस कर 'मेंहदी' तैयार की जाती थी। जिसे चटकार बनाने के लिए सरसों का थोड़ा-सा तेल भी मिला दिया जाता था। इस प्रकार मेंहदी को तैयार करने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता था। परन्तु आजकल बाजारों में मेंहदी का सूखा पाउडर विक रहा है जिसे पानी में घोलकर अति शीघ्र 'मेंहदी' तैयार की जा सकती है। उज्जैन नगर (म० प्र०) के बाजारों में सूखे पाउडर के रूप में मेंहदी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है।

२६६. **चिक्का**—गाँवों में कबड्डी के साथ चिक्का खेलने की भी परम्परा थी। कबड्डी के खेल ने तो अब अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली है परन्तु चिक्का के खेल का अब प्रचार बिल्कुल ही नहीं है। अब तो गाँव के लड़के इसका नाम तक नहीं जानते। इसके खेलने की बात तो बहुत दूर रही।

चिक्का का खेल बड़ी कठिनता के साथ खेला जाता है। एक आयताकार क्षेत्र में खिलाड़ी एक टाँग पर चलते हुए उसमें प्रवेश करता है और खेल कर वापस आ जाता है। कठिन खेल होने के कारण इसकी स्थिति अब प्रायः नष्ट हो गई है।

गाँवों में अब कबड्डी और गुल्ली-डण्डा के स्थान पर फुटबाल तथा क्रिकेट का प्रचार हो रहा है। छोटे-छोटे तथा गरीब बच्चे भी चमड़े का फुटबाल न मिलने पर कपड़े का गोला बाल बनाकर उससे ही अपनी इच्छा की पूर्ति करते हैं। इसी प्रकार क्रिकेट के बॉट और हाकी की स्टिक के अभाव में टेढ़ी लकड़ी का प्रयोग करते हैं। यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं है कि पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से कुछ भी वर्षों में भोजपुरी खेलों का प्रायः अत्यन्त अभाव हो जायेगा और उसका कोई नाम लेना भी नहीं रहेगा।

भोजपुरी लोक-संस्कृति का बदलता स्वरूप—पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से भोजपुरी समाज पर सब से अधिक प्रभाव पड़ा है जिसका वर्णन यथास्थान किया जा चुका है। यहाँ केवल दो-तीन बातों का उल्लेख किया जाता है जो सबसे अधिक प्रभावित हैं।

(१) **वेशभूषा**—अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार से भोजपुरी लोगों की वेशभूषा में सबसे अधिक परिवर्तन हुआ है। आज से पचास वर्ष पहिले गाँव का किसान धोती और 'मिरजई' पहिनता था। पण्डित लोग धोती, बगलबन्दी पहिनते थे। गले में चादर और सिर पर पगड़ी बाँधकर चलते थे। इनके दर्शन मात्र से यह पता चल जाता था कि यह ब्राह्मणत्व की प्रतिमूर्ति और संस्कृत भाषा का अगाध भाण्डार है। यद्यपि किसान की तो वेशभूषा प्रायः थोड़े परिवर्तन के साथ वही है परन्तु पण्डित समाज ने अपना काया-पलट कर दिया है। अब वे लोग भी 'बगलबन्दी' और 'मिरजई' के स्थान पर कुर्ता पहिनने लगे हैं। चादर तो अभी किसी प्रकार से बच गई है। परन्तु पगड़ी का सिर से सफाया हो गया है। अब शायद दो चार पण्डित भले ही पगड़ी धारण करते हों। परन्तु वे भी अपवादस्वरूप ही हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आगामी बीस-पच्चीस वर्षों में पगड़ी किसी संग्रहालय की शोभा बढ़ाने के लिए ही रह जायेगी।

पहिले मांगलिक अवसरों—जैसे विवाह आदि—पर पीली धोती पहिनने की परम्परा थी। परन्तु आज विवाह करने के लिए जाने वाला दूल्हा भी पीली धोती पहिनना 'फैशन' के विपरीत मानता है और पैन्ट-बूट पहिन कर जाता है। कुछ वर काला 'शू' और काला 'सूट' पहिन कर वैवाहिक कृत्यों का सम्पादन करते हैं। ये इस बात की तनिक भी पर्वाह नहीं करते कि काला रंग अमांगलिक है और उसे शुभ अवसर पर नहीं पहिनना चाहिए।

गाँवों में पहिले गाँव के चमार के द्वारा बनाया गया जूता पहिना जाता था जिसे 'चमरौघा' कहा जाता था। परन्तु आज का किसान भी चमरौघा जूता पहिनना पसन्द नहीं करता फिर तो शिक्षित युवकों की कथा ही दूर रही। बाटा के हवाई चप्पल ने 'चमरौघा' को ऐसा चपत मारा है कि उसकी हवाई गुम हो गई है। फलस्वरूप आज चमरौघा जूता दिखाई नहीं पड़ता। विवाह के अवसर पर वर के द्वारा जगरी का काम किया हुआ 'सलेमशाही' लाल जूता पहिना जाता था। परन्तु आज उसका स्थान 'फ्लेक्स' के काले 'शू' ने ले लिया है। अब 'जोड़ा और जामा' की चर्चा करना भी बेकार है क्योंकि ये दोनों ही अब अतीत की वस्तु बन गये हैं।

**भोजन**—भोजन के पदार्थों तथा उसकी विधि में भी बड़ा परिवर्तन हो गया है। भोजपुरी प्रदेश में पहिले कोई अतिथि आता या तब उसके स्वागत में उसे चीनी का रस पिलाया जाता था। गरीब आदमी इसके लिए गुड़ का भी प्रयोग



करते थे। परन्तु अब गाँवों में भी 'चाय' का एकछत्र साम्राज्य दिखाई पड़ता है। पहिले 'नाश्ता' करने या कराने की परम्परा नहीं थी। हां 'खर मिटाव' करने के लिए गुड़ तथा चना या जनेरा (मक्का) का भुजुना दे दिया जाता था। जाड़े के दिनों में गन्ने का रस—जो 'कचरस' कहा जाता था—भी प्रयोग में लाया जाता था।

किसी श्रेष्ठ अभ्यागत या सम्मान्य सम्बन्धी—जैसे समधी आदि के आने पर उन्हें घान का भात और चने की दाल खाने के लिए दी जाती थी। परन्तु आज उसका स्थान पूड़ी और कचौड़ी ने ले लिया है। यद्यपि विवाह के अवसर पर बारातियों को पूड़ी खिलाने की प्रथा थी और आज भी है परन्तु उसका आकार-प्रकार बहुत ही बड़ा होता था।

शाकों में टमाटर का प्रयोग नहीं होता था। इसे 'विदेशी भण्टा' कहकर लोग इसका व्यवहार नहीं करते थे। परन्तु आज शाकों में टमाटर का समधिक प्रयोग किया जा रहा है। भोजन में यह 'सलाद' बनाने का सर्वोत्तम साधन है।

**भाषा**—भोजपुरी देश में सर्वत्र जनता भोजपुरी भाषा का ही प्रयोग करती थी और आज भी करती है। किम्बहुना कुछ पण्डित लोग संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी बोल चाल में भोजपुरी का ही व्यवहार करते थे। इतना ही नहीं, बलिया जिला के निवासी स्वनामधन्य पं० काशीनाथ शास्त्री महामाष्य जैसे कठिन ग्रन्थ की व्याख्या अपने छात्रों के समक्ष, अपनी मातृभाषा भोजपुरी में ही किया करते थे। महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा भी दैनिक व्यवहार में भोजपुरी का ही प्रयोग किया करते थे। पुराने कागजात भी भोजपुरी में ही लिखे जाते थे।

परन्तु आज इस परिस्थिति में बड़ा ही परिवर्तन हो गया है। पण्डित लोगों ने इसका प्रायः परित्याग कर दिया है। आज का, अंग्रेजी शिक्षा में दीक्षित नवयुवक, भोजपुरी बोलने में अपना अपमान समझता है तथा इसकी उपेक्षा ही नहीं बल्कि इससे घृणा करने लगा है। अज्ञान के कारण वह गलत अंग्रेजी भले ही बोले परन्तु शुद्ध भोजपुरी बोलने में उसे लज्जा का अनुभव होता है। आज "कानवेण्ट" स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे भोजपुरी के नाम से भी परिचित नहीं हैं। मातृभाषा की उपेक्षा ही नहीं बल्कि घृणा, किसी भी राष्ट्र के लिए चिन्ता का विषय है।

**राष्ट्रीयता**—किसी भी देश की राष्ट्रीयता के लिए निम्नांकित पाँच आवश्यक तत्त्व होते हैं—

- |                   |                 |
|-------------------|-----------------|
| (१) स्वभाषा       | (२) स्व वेशभूषा |
| (३) स्व देश       | (४) स्व संस्कार |
| (५) स्व संस्कृति। |                 |

इन पाँच 'स्व' की आधार शिला पर ही किसी राष्ट्र का राजप्रासाद अवस्थित होता है। अतः इन पाँच तत्त्वों की रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है।

इस पुस्तक के १८वें अध्याय में यह दिखलाने का प्रयास किया गया है कि पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से किस प्रकार भोजपुरी लोक संस्कृति में क्रमशः परिवर्तन हुआ है और आज भी हो रहा है। किसी भी देश या समाज के लिए परिवर्तन स्वागत की वस्तु है। उसे आदर के साथ अपनाना चाहिए। परन्तु यह परिवर्तन ऐसा नहीं होना चाहिए जिससे हम अपने स्वरूप को ही भूल जाय। अपना अस्तित्व ही भुला बैठें। भोजपुरी समाज में जो परिवर्तन हो रहा है वह इसी खतरे की ओर संकेत है, शतसहस्रसंहिता के रचयिता भगवान् व्यास के शब्दों में थोड़ा परिवर्तन करके मेरा यही नम्र निवेदन है कि—

स्वाँ प्रसूतिं, चरित्रं च,  
कुलमात्मानमेव च।  
स्वाँ च भाषां प्रयत्नेन,  
संस्कृतिं रक्षन् हि जीवति॥”





परिशिष्ट (२)  
सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

००

- (१) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत भाग १, २  
(हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)
- (२) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत भाग ३  
(भोजपुरी अकादेमी, पटना १९८६)
- (३) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन  
(हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी सन् १९६१ ई०)
- (४) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी और उसका साहित्य  
(राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली)
- (५) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी साहित्य का इतिहास  
(लोक संस्कृति शोध संस्थान, काशी १९७१)
- (६) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकसंगीत  
(लोक संस्कृति शोध संस्थान, काशी, १९८५ ई०)
- (७) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकगाथा  
(भोजपुरी अकादेमी, पटना)
- (८) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—हिन्दी प्रदेश के लोकगीत  
(साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग)
- (९) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास भाग १६  
(हिन्दी का लोक-साहित्य) राहुल जी के साथ सम्पादित।
- (१०) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—अवधी लोक-गीत भाग १  
(साहित्य भवन लिमि० प्रयाग)
- (११) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—लोक साहित्य की भूमिका  
(साहित्य भवन लिमि० प्रयाग)
- (१२) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—लोक-संस्कृति की रूपरेखा  
(लोक-भारती प्रकाशन, १५ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद)
- (१३) दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह—भोजपुरी के कवि और काव्य  
(बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, बिहार)
- (१४) दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह—भोजपुरी लोक-गीतों में कर्ण-रस  
(हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)
- (१५) डब्लू० जी० आर्चर तथा संकटा प्रसाद  
भोजपुरी ग्राम्य-गीत (लहेरियासराय, दरभंगा)
- (१६) डॉ० श्रीधर मिश्र—भोजपुरी लोक-गीतों के विविध रूप  
(हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद)



- (१७) डॉ० श्रीधर मिश्र—भोजपुरी लोक-साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन  
(हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद)
- (१८) राधावल्लभ शर्मा—भोजपुरी के संस्कार गीत  
(बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना)
- (१९) डॉ० सत्यव्रत सिन्हा—भोजपुरी लोक-गाथा  
(हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)
- (२०) डॉ० शशिशेखर तिवारी—भोजपुरी लोकोक्तियाँ  
(बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना)
- (२१) डॉ० मुक्तेश्वर तिवारी—भोजपुरी लोकोक्तियाँ और मुहावरे
- (२२) विजय नारायण सिंह—‘विजय बलियाटिक’—भोजपुरी के संस्कार गीत
- (२३) डॉ० कुबेर मिश्र—मॉरिशस के भोजपुरी लोकगीतों का विवेचनात्मक अध्ययन  
(संजय बुक सेण्टर, वाराणसी)
- (२४) डॉ० उदय नारायण तिवारी—भोजपुरी भाषा और साहित्य  
(बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना)
- (२५) डॉ० हीरालाल तिवारी—गंगाघाटी के लोक-गीत  
(विश्वविद्यालय प्रकाशन, काशी)
- (२६) डॉ० विद्या विन्दु सिंह—अवधी लोक-गीत : समीक्षात्मक अध्ययन;  
(परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८३)
- (२७) डॉ० सरोजिनी रोहतगी—अवधी का लोक-साहित्य  
(नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली)
- (२८) डॉ० इन्दुप्रकाश पाण्डेय—अवधी लोक-गीत और परम्परा  
(रामनारायण लाल, इलाहाबाद)
- (२९) डॉ० राममुरेश त्रिपाठी—कनउजी लोक-साहित्य में समाज का प्रतिबिम्ब  
(रूपायन प्रकाशन, नयी दिल्ली)
- (३०) डॉ० रामस्वरूप श्रीवास्तव—बुन्देली लोक-साहित्य
- (३१) डॉ० त्रिलोचन पाण्डेय—कुमार्यू का लोक-साहित्य (अलमोड़ा)
- (३२) डॉ० त्रिलोचन पाण्डेय—लोक-साहित्य का अध्ययन  
(लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद)
- (३३) डॉ० त्रिलोचन पाण्डेय—कुमाऊँनी भाषा और उसका साहित्य  
(हिन्दी संस्थान, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ)
- (३४) डॉ० सत्येन्द्र—ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन (आगरा)
- (३५) डॉ० सत्येन्द्र—लोक साहित्य विज्ञान
- (३६) डॉ० सत्येन्द्र—हिन्दी के मध्यकालीन कवियों में लोकतत्त्व।
- (३७) डॉ० शंकरलाल यादव—हरियाणा प्रदेश का लोक-साहित्य  
(हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)
- (३८) डॉ० रविशंकर उपाध्याय—भोजपुरी लोक-गीतों का सांस्कृतिक अध्ययन  
(लोक-संस्कृति-शोध संस्थान, वाराणसी) ८४)
- ,, ,, पदमावत का लोक सांस्कृतिक अध्ययन (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)
- (३९) डॉ० रवीन्द्र भमर—मध्यकालीन भक्त साहित्य में लोक तत्व
- ,, ,, —जायसी में लोकतंत्र
- (४०) डॉ० मदन गोपाल गुप्त—मध्ययुगीन हिन्दी-काव्य में भारतीय संस्कृति
- (४१) डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल—पृथिवी पुत्र (वाराणसी)
- ,, ,, —पदमावत की टीका (चिरगांव, झाँसी)



- (४२) पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय—भारतीय साहित्य का अनुशीलन, वाराणसी  
 (४३) पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय—भारतीय धर्म तथा दर्शन का अनुशीलन  
 (वही, वाराणसी)  
 (४४) पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय—संस्कृत साहित्य का इतिहास  
 (शारदा मंदिर, रवीन्द्रपुरी, वाराणसी)  
 (४५) पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय—वैदिक साहित्य और संस्कृति  
 (४६) पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय—भारतीय साहित्य में श्री राधा  
 (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना)  
 (४७) डॉ० हरिशंकर उपाध्याय—बलिया जिला के भोजपुरी लोक-गीत,  
 (वाराणसी सन् १९८८)

## (ख) संस्कृत

- (१) ऋग्वेद—(वैदिक संशोधन मण्डल पूना, भाग १-४, १९३३)  
 (२) अथर्ववेद—एस० पी० पण्डित द्वारा संपादित  
 (बम्बई, भाग १-४, १८९५)  
 (३) ब्लूम फील्ड—दि रिलिजन आफ दि वेद (दिल्ली १९७२)  
 (४) बुद्ध प्रकाश—दि ऋग्वेद एण्ड दि इण्डस वेली सिविलाइजेशन १९६७)  
 (५) राय गोविन्दचन्द्र—आर्नामिण्ट्स एण्ड जेवेलरी आफ वैदिक इण्डियन्स (काशी)  
 (६) मैकडोनल—वेदिक मैथालजी १८९७  
 (७) कीथ, ए०बी०—रिलिजन एण्ड फिलोसोफी आफ वेद एण्ड उपनिषद् (अमेरिका)  
 (८) वेलंकर—मैजिशियन्स इन दि ऋग्वेद (लक्ष्मण स्वरूप स्मृति ग्रन्थ में लेख १९५४)  
 (९) ब्लूम फील्ड—कौशिक सूत्र आफ अथर्ववेद (दिल्ली)  
 (१०) मेहता, डी० डी० मेडिसिन इन दि वेदाज  
 (११) पण्डित, एम० पी०—स्टडीज इन तंत्र एण्ड वेदाज  
 (१२) शर्मा, जे० एस०—सोर्सेज आफ इण्डियन सिविजाइजेशन (दिल्ली १९७४)  
 (१३) देशमुख, वी० आर०—दि इण्डस सिविलाइजेशन इन दि ऋग्वेद, १९५४  
 (१४) दास, ए० सी०, ऋग्वेदिक कल्चर  
 (१५) शंकरानन्द, एस०, ऋग्वेदिक कल्चर आफ दि प्रिहिस्टारिक इण्डस  
 (भाग १-२, १९४३-४४)  
 (१६) शिन्दे—दि रिलिजन एण्ड फिलोसोफी आफ अथर्ववेद (पूना १९५२)

## (ग) अंग्रेजी ग्रन्थ

- (१) डॉ० सर जार्ज अब्राहिम ग्रियर्सन—दि ले आफ आल्हा (आम्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लण्डन)  
 (२) सर जार्ज अब्राहिम ग्रियर्सन—सम बिहारी फोक सांग्स  
 (जे० आर० ए० एस० भाग १६ (१८८४)  
 (३) डॉ० सर जार्ज अब्राहिम ग्रियर्सन—सम भोजपुरी फोक सांग्स  
 (जे० आर० ए० एस० भाग १८, (१८८६)  
 (४) डॉ० सर जार्ज अब्राहिम ग्रियर्सन—बिहार पीजेण्ट लाइफ  
 (बिहार सरकार, द्वि० सं० पटना)  
 (५) सर जेम्स फ्रेजर—दि गोल्डेनबाऊ भाग १-१२  
 (६) सर जेम्स फ्रेजर—फोकलोर इन ओल्ड टेस्टामेण्ट  
 (७) विलियम क्रुक—दि पापुलर रिलिजन एण्ड फोकलोर आफ नार्दर्न इण्डिया भाग १ तथा २ (नयी दिल्ली)  
 भोजपुरी—५०



- (८) विलियम क्रुक—ट्राइब्स एण्ड कास्टस आफ नार्थ वेस्टर्न प्राविन्स  
(गवर्ममेण्ट आफ यू० पी०, इलाहाबाद)
- (९) थिसलटन डायर—इंगलिश फोकलोर
- (१०) टायलर—प्रिमिटिव कल्चर भाग १ और २
- (११) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय तथा शंकरसेन गुप्त—स्टडीज इन इण्डियन फोक कल्चर  
(इण्डियन पब्लिकेशन्स, कलकत्ता)
- (१२) डॉ० एल० पी० विद्यार्थी तथा पं० गणेश चौबे—बिहार इन फोकलोर स्टडी  
(इण्डियन पब्लिकेशन्स, कलकत्ता)
- (१३) सोफिया वर्न—ए हैण्डबुक आफ फोकलोर (लण्डन, १९१४ ई०)
- (१४) मारिस बायसन—मैजिक (लण्डन, १९६०)
- (१५) हेनरी ह्वार्ट हेड—दि विलेज गाइड्स आफ सदरन इंडिया।
- (१६) डॉ० बासुदेवशरण अग्रवाल—एंग्लो इण्डियन फोक कल्चर्स (१९७०)
- (१७) डॉ० छन्दा चक्रवर्ती—कामन लाइफ इन दि ऋग्वेद एण्ड अथर्ववेद।
- (१८) मेरिया लीच—डिक्शनरी आफ फोकलोर, माइथोलोजी एण्ड लीजेण्ड्स (भाग १-२)
- (१९) थर्स्टन ओमेन्स एण्ड सुपरस्टिशन्स आफ सदरन इण्डिया (बम्बई)
- (२०) ए० एल० वशम—दि वण्डर दैट वाज इण्डिया (१९६७)
- (२१) के० टी० शाह—दि वण्डर दैट वाज इण्ड
- (२२) एटकिन्सन (ई० टी०)—हिमालयन गजेटियर भाग १-३, (प्रयाग, १९८२)
- (२३) ब्लैक (जी० बी०) फोक मिडिसिन (फोकलोर सोसाइटी, लण्डन १८८३)
- (२४) बुकानन, एफ० एच०—ईस्टर्न इण्डिया (भाग १-३, लण्डन १८३३ ई०)
- (२५) कानवे, एड० डी०—डेमोनेलॉजी एण्ड डेमेन लोर (भाग १-२ लण्डन, १८७९)
- (२६) काक्स, जी० डब्लू—मैथोलोजी आफ आर्यन नेशन्स (दो भाग, लण्डन)
- (२७) डायर, टी० एफ० टी०—पापुलर कस्टम्स (लण्डन १८७६ ई०)

## भोजपुरी लोक-साहित्य संबंधी पठनीय सामग्री

### (क) लोक गीत-संग्रह

- (१) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत भाग १ (तृ० सं० १९८९ ई०)
- (२) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत भाग २ (प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)
- (३) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोगगीत भाग ३ (भोजपुरी अकादमी, पटना ८६)
- (४) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—हिन्दी प्रदेश के लोकगीत (साहित्य भवन लिपि प्रयाग)
- (५) दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह—भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)
- (६) आर्चर तथा संकटाप्रसाद—भोजपुरी ग्राम्य-गीत (बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना)
- (७) राधावल्लभ शर्मा—भोजपुरी संस्कार गीत (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना)
- (८) विजयनारायण सिंह 'विजय बलियाटिक'—भोजपुरी संस्कार-गीत (भो० सं०, वाराणसी)
- (९) डॉ० श्रीधर मिश्र—भोजपुरी लोक-गीतों के विविध रूप
- (१०) डॉ० हरिशंकर उपाध्याय—बलिया जनपद के भोजपुरी लोक-गीत

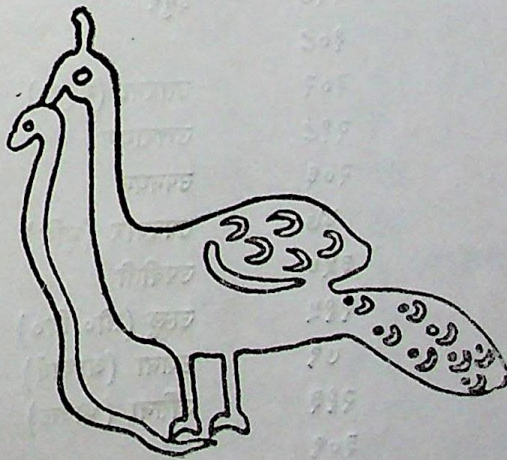


## (ख) आलोचनात्मक ग्रन्थ

- डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—लोक-साहित्य की भूमिका (साहित्य भवन प्रा० लिमि०, प्रयाग)
- डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—लोक-संस्कृति की रूपरेखा (लोक भारती प्रकाशन, प्रयाग, १९८८)
- डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-संस्कृति (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १९९०)
- डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी और उसका साहित्य (राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली)
- डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी साहित्य का इतिहास (भारतीय लोक संस्कृति शोध संस्थान, वाराणसी, सन् १९७४ ई०)
- डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन (हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी सन् १९६०)
- डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भारतीय लोक-विश्वास
- डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-संगीत (भा० लो० सं० शो० सं०, वाराणसी १९८६)
- डॉ० श्रीधर मिश्र—भोजपुरी लोक साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)
- डॉ० रविशंकर उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन (भारतीय लोक संस्कृति शोध संस्थान, वाराणसी, १९८५ ई०)

## (ग) भोजपुरी-भाषा संबंधी ग्रन्थ

- डॉ० उदयनारायण तिवारी—भोजपुरी भाषा और साहित्य (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना)
- डॉ० विश्वनाथ प्रसाद—भोजपुरी फॉनटिक्स (लण्डन विश्वविद्यालय—शोध-प्रबन्ध)
- डॉ० रसिक बिहारी ओझा 'निर्भीक'—भोजपुरी शब्दानुशासन (जमशेदपुर)
- रासबिहारी पाण्डेय—भोजपुरी भाषा का इतिहास (लोक-साहित्य संगम, भोजपुर, बिहार, सन् १९८७ ई०)
- भोजपुरी भाषा का व्याकरण—पं० रास बिहारी शर्मा
- डॉ० रविशंकर उपाध्याय—भोजपुरी भाषा एक अध्ययन





परिशिष्ट (३)

अनुक्रमिका

००

शब्द	(अ)	पृष्ठ-संख्या	शब्द	आ	पृष्ठ-संख्या
अङ्गा मांगना (वि०)		९२	'आउट' डोर गेम		२५५, २५७
अक्षय नवमी		३३५	आकाश की घोबिन		२२०
अक्षरारम्भ		८३	आँखि आना (रोग)		२७२
अगस्त (ऋषि)		२२५	आँखि (लो० वि०)		२३९
अगस्त (तारा)		२२५	आँखि		२६५
अग्नि		३१७	आँधी		२२७
अघरवटा	१२८, ३१६	३४८	आन्हर चटकी		२६६
अँचार के प्रकार		१४७	आँव (रोग)		२७३
अठारह (लो० वि०)		२४४	आश्रम		३, १५-१६
अत्तार		२९४	आरा जिला		३०२
अतिवृष्टि		३०२	आहिनक सूत्रावली		२२
अदवरी		१३३		इ	
अघकपारी		२७१	इजार बन्द		१८३
अनन्त चतुर्दशी		३३२	इत्र		२०८
अन्नकूट		३२७	इन डोर गेम		२५५
अन्नपूर्णा (मंदिर)		३२७	इंगुर		२०५
अनमेल विवाह		१०८		उ	
अनावृष्टि		३०२	उतरना (गहना)		१९६
अपशकुन		२१८	उत्तरायण		२४२
अवटन		२०६	उपनयन		८३
अमिवादन प्रणाली		४७	उपरवार (भूमि)		२९९
अमोनिया सल्फेट		३५४	उपवीती		८३
अरवा चावल		११५	उल्लू (लो० वि०)		२२०
अलवांति		७९	उशना (आचार्य)		२८३
अल्पना		२१३	उसिना (चावल)		११५
अशोक स्तम्भ		३०९		ऋ	
अहिनकुलम्		६४	ऋषि पंचमी		३३२
अहीर		२८०		ए	
अंक (लो० वि०)		२४३	एकादशी व्रत		३३८
अंगूठी		१८९		ओ	
अंजन	२०५, २०६		ओका बोका (खेल)		२६१
अंजनहारी	२७१		ओखरि (लो० वि०)		२१०



ओछवानि	१४०	काछी	२८२
ओढ़नी	१८२	काजल	२०५
ओगी	२१०	कान का दर्द	२७२
ओलम्बपक (खेल)	२५५	कानू	२८२
ओसारा	२१०	कायस्थ	२८३
ओसावनि	३५४	कार्तिकी पूर्णिमा	३३६
ओहार	९४, १०२	काली माई	३१५
क		काँची	१२८
		काँस	२१६
कंगना	१९०	किरातार्जुनीयम्	२२२
कंठी	१९४	कुँजड़ा	२८४
कंठेसरि	१९४	कुँवर सिंह	३५५, ३७०
ककहा	२०२	कुण्ड	२३०
ककही	२०२	कुत्ता का काटना	२७७
कचौड़ी	१२२	कुरगी	२२१
कजरी	३३०	कुरुमी	२८५
कजरौटा	२०५	कुर्ता	१७६
कड़वा तेल	२००	कुलटा (स्त्री)	२९
कढ़ी	१३२	कुश (लो० वि०)	२३३
कथासरितसागर	३२३	कुशोत्पादिनी एकादशी	२३३
कदोई (भूमि)	२९९	कुण्डल	१९५
कनटोप	१७५	कुसुमा देवी	२७
कनफूल	१९५	कूप (लो० वि०)	२२९
कन्यादान	२०	कूँड़ि	३००
कपाल क्रिया	९८, ११२	कृष्ण जन्माष्टमी	३३१
कवड्डी (खेल)	२५६	केश (टैबू)	२५०
कबूतर (लो० वि०)	२२०	केश (लो० वि०)	२३८
कभर में दर्द	२७४	केशपाश (टैबू)	२५०
कभासुत	३४६	केशपाश (टैबू)	२५०
कम्पोस्ट	३५४	कैची	२११
करजनी (फल)	३०४	कोईरी	२८५
करघनी	१८९	कोठिला	६५
करन्न	७, १००	कोड़ा कोड़ी खेल	२५९
करडल	२९९	कोंडार	२८५
करवाचौथ	३३४	कोरो	२१०, २११
कराह चढ़ाना	३१५	कोलोसियम	२५५
कलमुंही (गाली)	६४	कोहड़ा (लो० वि०)	२३३
कलवार	२८१	कोहड़ा (लो० वि०)	९०
कल्चर	१	कोहबर	२८६
कसार	१३८	कोंहार	२१९
कहाँर	२८२	कौआ (लो० वि०)	९
कर्मनासा	२२९	क्षत्रिय	२२०
कर्मवाद	३४१	क्षेमकरी	



ख	२०२	गुल्ली	२५७
खजुराहो	२०२	गुल्ली डण्डा	२५७
खटमिट्ठी	१५३	गुल्ली डण्डा	३५२
खटिक	२८७	गूंगा-गूंगी	२५८
खड़िलिच	२१९	गूंगी	२५७
खड़ाऊँ	१७९	गूलर (लो० वि०)	२३१
खर जिउतिया	३६०	ग्रहों की पुजा	३१७
खपड़ा	२१०	ग्रियर्सन	३६९
खम्भा	२११	गृद्ध (लो० वि०)	२२०
खरपत (खर्ह)	२११	गृह के प्रकार	२१५
खरपा	१८४	गोंडठा	९८
खलार (खेत)	२९९	गोझा	१२७
खली	३७	गोंड	२८७
खल्वाट	२३९	गोंडाव	१८७, १९९
खाँची	६२	गोंदना	२०७, २१४
खाजा (खाझा)	१३९	गोदान	९५
खाँसी रोग	२७३	गोपीचन्द	५६
खिचड़ी	१२०	गोबर्धन	३८७
खिचड़ी खाना (सि०)	९०	गोहान	२९९
खुखुडी	१९, ६५	गौरैया (लो० वि०)	२२१
खुद्दी चावल	११६	गंगा	२२८
खुर कुच्ची	२५८	गंगालाभ	१११
खोखी मइया	३२०	गंजी	१७७
खंजन	२१९	गड़ा	८४
ग		घ	
गढ़मुक्तेश्वर	३३६	घटवार	२८७
गणेश	३१२	घरनी	२१
गणेश चतुर्थी	३३१	घाघ	२२२, २२६
गमछा	१७५	घाटिया	२८८
गरुड़ पुराण	९९	घुघुआ माना	२६२, २६३
गर्मपात	६१	घुटला	१८१
गवना	९२	घुघुनी	१३७
गवना का समय	९२	घुमरी परउवा	२६०
गांठ बांधना (टैवू)	२५०	घूँघट	१०१
गाँधी	१८१	घेवड़ा	२३३
गाय	२२१	घोड़मुंहा	२१७
गायढार	११२	घोड़ा के खेल	२६०
गाही	३०७	घोड़ी के खेल	२६०
गिरि	६	घोड़ी बिरवनी	२५९
गीता	३६८	घंट	९८
गीदड़ (लो० वि०)	२२२	च	
गुडूपी	२५७	चकुरी	६४
गुरु का महत्त्व	८	चंगेरी	६४



चटनी के प्रकार	१५१-५२	ज	
चटपटी माता	३१६, ३२०	जजमानी प्रथा	९
चप्पल (बाटा)	१८४	जनवासा (वि०)	२१७
चमार	१२	जनेरा	११८
चरक फूटना	२७५	जतसार	३३
चलनी (लो० वि०)	३५	जन्म (लो० वि०)	२४२
चन्द्रमा	२२४, ३१७	जन्मान्तरवाद	३४२
चन्द्रहार	१९३	जम (लो० वि०)	२४७
चादर	१७५	जय कन्हैयालालकी	२५९
चारपाई	२४७	जल जाना	२७६
चारपाई बुनना	२१५	ज्वर	२७४
चारण जाति	२९५	जायसी	२२०
चिउटा का खेल	२६५	जांतघर	२१०
चिउड़ा दही	१३३	जिउतिया	२३३, ३३३
चिचिडी (लो० वि०)	२४६	जीवित्पुत्रिका व्रत	२१, २४६, ३३३
चितउर विल्ली (,,)	२२२	जुआठि	५७
चित्रकला	२१२	जुकाम	२७४
चीना (अन्न)	२८५	जुलाहा	२८८
चुकिया	२१	जूता	१७९
चुटिया	२३९	जूता (चमरौघा)	१८१
चुहानी	२१, २१०	जूता (सलेमसाही)	१८०
चूड़ा या चुड़िया	१९१	जूरा	२०२
चूरा	१८८	जोगटोन	१०७
चूल्हा	२१०	जोड़ा-जामा	१८०
चेचक	२७४	जोसन	१९२
चोटी	२०३	जौहर	२७
चोंथा	१२६	झ	
चोली	१८२	झबिया	१९८
चौदह (लो० वि०)	२४४	झाका झूमर	२६१
चौबन्दा	३४९	झाँझ	१८७
छ		झाड़ू (लो० वि०)	२४७
छठी (व्रत)	२१, ८१	झुलनी	१९६
छड़ा	१८७	झुरमुट	३०
छन्नौरी	१३२	झूमक	१९५
छप्पर के घर	२१६	झूला	१८२
छबड़ी (चंगेरी)	६४	ट	
छरियाना	२७६	टाई चून (धान)	३५४
छाजनि	२१७	'टासिंग'	२५७
छाता (मधुमक्खी)	२९३	टिकठी	९९
छाती (लो० वि०)	२४१	टिकुली	७०, २०५
छिपकली (लो० वि०)	२२२	टीका (लाल)	२०५
छोक (लो० वि०)	२४०	टीबुल	३०१
छछुन्दर	३८	टटहा	५
छंछी	१९७		



थ

टैबू	२४८-२५४		
टोपी	१७४	थकरी (टि०)	२०२
ट्यूब वेल	३०१	थाती	४१
ठ		थापे	२१३
ठठेरा	२८९	थून्ही	२११
ठेकुआ	१२६		
ड		द	
डीह (लो० वि०)	२९९	ददरी मेला	२६७, ३३६
डेरा	२१७	दरजी	२९१
डोम	१२	दरंदर मुनि	२६७
डंडा या डडकसी	१८९	दलिदर खेदना	३२७
ढ		दशमलव प्रणाली	३०४
ढेबुआ	३५६	दशाह	९९
ढोली	२८९	दहिरवरी	१२६
त		दही-वड़ा	१३३
ततैया का काटना	२७७	दहेज की प्रथा	८६
तमोली	२८९	दंडी आश्रम	३४५
तखिन	१९५	दंत घावन (लो० वि०)	२४६
ताड़ी	२९७	दांत का दर्द	२७२
ताना	२३	दारुनिया सास	६३
तार काटो तरकुल काटो	२६२	दाल की मण्डी	२५
तारन	२१७	दाल पूरी	३४८
ताश का खेल	२६६	दालान	२१७
तितलौकी	३०	दालों के भेद	११८
'तियाग' पीना	१००	दाही	९८, २४७
तिलक	८६	दाही (टैबू)	२४९
तिलरी	१९३	दिन सम्बन्धी विश्वास	२३७
तिलवा	१३८	दिव्य की प्रथा	७४-७७
तिल्लौरी	१३२	दिवाली	३२६
तीन तेरह	१०३, ३५८	दिशा-शूल	२३४
तीन (लो० वि०)	२४३	'दीअर'	२९९
तुरन्ता भोजनालय	३४७	दीपावली	३२६
तुरहा	२९०	दुर्गा	३१४
तुलसी	२३२	दुर्गा जी का मेला	२६८
तुलसीदास	२४, ३५	दुसाध	१३
तुलसी मानस मंदिर	३२७	दूव	२३३
तेतर बेटी	२०	दृष्टिदोष	२५१
तेली	२९०	देवता का नाम	२५४
तेलों के प्रकार	२००	देवोत्थान एकादशी	३३६
तेरह (लो० वि०)	२४४	दोन	३००
तेरही	१००	दोहथी	१२७
त्योहार	३२४	दौरी	३००
त्रिलोकीनाथ	३१४	दौवरी	३५४



प

धनतेरह	३२६
धनुषयज्ञ का मेला	२६७
धरनि	२१६
धरती माता	३१८
धिरिकार	१४
धुनिया	२९१
धुनुकी	२९१
धुत्तुक	९२
धुवतारा	२२५, ३१८
धूम्रपान	१७१
धोबी (जाति)	२९१
धोती	१७७

न

नकबूली	१९७
नक्षत्र	२२५
नट	२९३
नथिया	१९७
नथुनी	१९७
नन्दाष्टमी	२२२
नर पिशाच	३२३
नरिया	२१०
नव (९) (लो० वि०)	२४४
नवीन वस्त्र (लो० वि०)	२४६
नहर	३०१
नाई	२९२
नाक (लो० वि०)	२३९
नाग पंचमी	३२९
नाथद्वारा	३२७
नापित	२९२
नारी (पुत्री रूप में)	१८-२०
नियोग की प्रथा	६७
नीम (लो० वि०)	२३१
नीलकण्ठ	२१९
नूपुर	१८७
नेटुआ (जाति)	२१५, २९३
नेटुइन	२९३
नेग	८२
नेनुआ	२३३
नैषध चरित	२४५
नोनिया	२१६, २९३

पड़री	१८७
पक्का मकान	२१७
पकौड़ी	१३१
पगड़ी	१७३
पचखा	२४२
पत्ती (गहना)	१९९
पटरी (पारी)	८४
पटवारी	२८३
पटहेरा	२९४
पटौआ	३००
पतिव्रता (स्त्री)	२१
पतिहा	५
पतोहू	७१
पदनी (गाली)	२२
पद्म पुराण	३३८
पनहेरी	२८९
पपनी	३०
पपरा	१३२
पम्पिंग सेट	३०१
पराठा	१२४
परिछावन	३६
परिवार नियोजन	१९१
प्रदोष व्रत	३३९
प्रबोधिनी एकादशी	३३६
प्रसिद्ध नारायण सिंह	३३६
पाख	२१०
पांच (लो० वि०)	२४३
पाट	२९१
पाण्डु (रोग)	२७५
पापड़	१३२
पान (गहना)	१९७
पालकी का साग	५५
पावजेब	१८७
प्राचीन भारतीय वेश-भूषा	२०२
पिन्छ	२२०
पिठौरी	१२७
पिंडिया व्रत	३३४
पितृ सत्तात्मक	४०
पिलेग मइया	३१९
पिशाच	३२३
पीपल (लो० वि०)	२३०
पुत्रेष्टि यज्ञ	२३



पुरोहित	९	बदुर (वृक्ष)	२९
पुंसवन	२३	बरई	२९५
पूआ	१२५	बरगद	२३०
पूड़ी	१२२, ३४७	बर की वेशभूषा	८८
पूरी	१२४	बरी	१३१
पूरुबी बनिजिया	५८	बरहपुर का मेला	२६८
पेचिस	२७३	बरही	२१, ८१
पेट फूलना	२७३	बलघुस	२९९
पेट में दर्द	२७३	बलिया	२६७, ३६६
पेटीकोट	१८३	बहरबूटा	१९२
पेय-पदार्थ	१६५-१६९	बहलोई	१९१
पेशेवाली जातियाँ	२७९	बहुला व्रत	३३१
पेसराज	२९४	बसफोर	१४
प्रेत	३२३	बाँकु	१९२
प्रेतिया (ब्राह्मण)	३२३	बांगर	३००
पैर	२४१	बाजारू मूल्य	१०४
पैर का दर्द	२७४	बाजूबन्द	१९२
पँवरिया	८१, २९४	बाट	३०३
पँसगी	१९	वाटी	१२५
पंसारी	२९४	वाता (वत्ता)	२११
पंक्तिपावन (ब्राह्मण)	५	वादल	२२७
	३५८	वारह (लो० वि०)	२४४
पंचामृत	३१४	वारात	८७
पंचायत घर	३६४	वारात की बिदाई	९२
		वारात-प्रस्थान	८८
फरटा	२१०	वारी (बाली)	१९६
फलों के प्रकार	१५७-१६५	वाल विधवा	३८
फटकाना	४५	वाल विवाह	१०७
फुटेहरी	१२५	वाला (गहना)	१९९
फुलवरा	१३३	वासमती (चावल)	११५
फूली-माड़ा (रोग)	२७२	विच्छू दंश	२७७
फौड़ा	२७५	विछिया	१८८
फोड़िया	२७५	बिहूआ	१८८
		बिजुली	२२७
बउराह	१०९	बिजायठ	१९२, १९९
बक्सर	२६८	बिल्ली (लो० वि०)	२२२
बगलबन्दी	१७६	बिहटा	२६८
बड़ेरा	२१०	बिहारी (कवि)	२५०
बड़ेरा	२२८	बीस विस्वा	१०५
बढ़ई	२९५	बुकवा	२०४
बजका	१३१	बुढ़िया आँधी	२२८
बथानि	२१७	बुलाक	१९७
बनारसी पान	२८९	बृषोत्सर्ग	२४३



वेदुआ	८३	भूत-भोजन	३२२
बेरा (गहना)	१९९	भूत-निवास	३२२
बेल	२३२	भूत-लक्षण	३२१
बेसर	१९७	भूत-विविध प्रकार	३२३
बैठका	२१६	भूत भगाने के उपाय	३२२
बैतरणी	९५	भूसेज देना	९५
बैरिया (गांव)	२६७	भृगु ऋषि	२६७
वैल (लो० वि०)	२२२	भृगु क्षेत्र	२६७
ब्रह्म-भोज	१००	भृंगराज (पौधा)	२९३
ब्राह्मण	३,९	भेंट अकवार	९३
ब्राह्मण धर्म	३	भेंगरिया	२९३
ब्राह्मण भेद	४	भैरव	३१३
ब्राह्मण की विशेषताएँ	७	भैरव प्रकार	३१३
ब्राह्मण-महत्त्व	३	भैसा	२२२
		भोजपुर	३०१, ३०२
		भोजपुर जिला	२९७, ३०२,
म			
भइया दूज	३३४	भोजपुरी परिवार	४१
भड्डी	२२६	भोजन जूठा (टैबू)	२५१
भगवत शरण उपाध्याय	२	भोज्य पदार्थ	११३
भतुआ (पेठा)	३३५	भंटा	२५१
भदोही	२९७		
भर	२९५	म	
भरतमिलाप का मेला	२६८	मकर संक्रांति	३३६
भवहि	७०	मक्का	११८
भसुर	७०	मकुनी	१२५
भागड	२९९	मगह	२२४
भाग्यवाद	३४२	मगहिया पान	२८९
भाट	२९५	मँगटीका	१९८
भाँड़	२९६	मघार	२९९
भात	११४	मछली	२२३
भातृ द्वितीया	३३४	मछुआ	२९६
भिखारी ठाकुर	११९	मटियार	२९९
'भीख' माँगना	८४	मदन गोपाल गुप्त	२
'भीख'	१०७	मनसा देवी	३२०
भीम	३३६	मनु	३४४
		मनोरी	१९८
भीष्मपितामह	३३६	मनोरी पत्नी	२९१
भीष्म पंचक	३३६	मयूर (मोर)	२२०
भुइसेज	३५९	'मरजाद रखना'	९१
भुजुना	१३५	मलहोरी	२९६
भुजा	२४०	मलिकार	३१
भुडुक्वा	२२४	मलेरिया	२७४
भूत	३२१	महापात्र	१००



महाब्राह्मण	६, २४३	मृच्छकटिक	२३, २९३
महाभारत	३७२	मृतात्मा नाम (टैबू)	२५३
महामारी	३०२	मृत्यु (लो० वि०)	२४२
महालया	३३३	मृत्यु भोज	१११
महावर	२०८, २१४	मृत्यु संस्कार	९५-१००
महावीरी झंडा	३११	मेटर्निटी लीम	३६१
महाशिवरात्रि	३३७	मेट्रिक टन	३५५
महिषासुर मर्दिनी	३१५	मेथी	१३९
महुअरि	१२७	मेरेथान रेस	२५५
मांग	२०४	मेंहदी	२१३
माघ मेला	२६९	मेंहदी लगाना	२०७
माँडो हिलाई	९१	मैना देवी	२७
मातृ नवमी	३३३	मोती	१९८
मातृ सत्तात्मक	४०	मोतीचन्द्र (डॉ०)	२०२
मादक द्रव्य	१६९	मोर	३००
'माप'	३०३	मोहर	१९३
मार्हा	१३४	मोहर माला	१९३
मारीशस	३६६	मौनी अमावस्या	३३७
माला	२०७	मंकी टेम्पुल	३११
'मालिक'	३४५	मंगल	२२४
माली	२९६	मंगल पाण्डेय	३६६
मिर्जापुर	३२५	मंगली (स्त्री)	८५
मिट्टी का घर	२१६	मंडप (विवाह)	८७
मिरगी	२७४		
'मिलनी'	९२		
मिष्टान्न के प्रकार	१५४	यज्ञोपवीत	८३
मिस्सी	२०६	यमुना	२२९
मुखदर्शन (लो० वि०)	२४५	याज्ञवल्क्य	२८३
मुख शुद्धि-प्रकार	१७१	यात्रा-विश्वास	२३५
मुंगरी	२२	यूरिया (खाद)	३५४
मुंजवानि	२९९		
मुसकोइल	२७७		
मुसहर	२९७	रक्षावन्धन	३३०
मुंह देखना (टैबू)	२५१	रक्त स्राव	२७५
मुंह में आग देना	९८	रजस्वला (टैबू)	२४८
मुंह देखाई	९४	रतौघी	२७२
मुंडन	८१	रथ यात्रा	३२९
मुका	२२	रथयात्रा मेला	२६८
मूर्तिदेवी जी	२७३	रसियाव	३४८
मूर्तियों के प्रकार	२११	रहरेठा	२१०
मूसल (टैबू)	२१०	रहूँट	३००
मृगडाह	२२६	राम	२४५
मृगशिरा	२२६	रामजन्म स्थली	३३८

य

र



राम नगर	३२५		
राम नवमी	३३८	वट सावित्री व्रत	३३८
राजभर	२९५	वन्ध्या (स्त्री)	३१
रामानुजाचार्य	१०३	वर की खोज	८५
'रादा'	२०९	वर रक्षा	८६
रायता	१५२	वर्ण (विवाह)	८५
राँड	३७	वर्ण (जाति)	३
रिंग फिगर	१८९	वसन्त पंचमी	२४६
रिहन्द डैम	३०१		३३७
रुधिर (टैबू)	२५०	बहु विवाह	१०९
रुई गर्दा	१७७	व्यक्तिगत नाम (टैबू)	२५२
रेणुनदी	३०१	व्यास	३७२
'रोका पढ़ना'	९०	व्रत	३२३
रोट	३१३	व्रत सूची	३३९
रोटी के प्रकार	१२१	विक्रय-पत्र	४१
रोपनी	५४	विजयादशमी	३२५
रोटी	२०५	विधवा विवाह	११०
		विधवा स्त्री	३४
ल		विन्ध्यवासिनी देवी	३१५
लकड़ीहारा	२९७	विन्ध्याचल	३१५
लक्ष्मीकुण्ड मेला	२६८	विवाह	८५-९०
लक्ष्मि देवी	२६	विवाह के भेद	८५
लटकन-झबिया	१९८	वृद्ध विवाह	१०८
लपसी	१२८	वृष्टिवंश	३४४
लबर लच्छनी	३८	वृषोत्सर्ग	२२२
लरही	२११	वृहत् संहिता	२२२
ललाट	२३९	वृहस्पति	२२४
लस्सी	१२१	वेणी	२०३
लात	२२	वेशभूषा	१७३
लाता लूती (खेल)	२६६	वैताल पंचविशतिका	३२३
लाजा होम	९०	वैश्य	१०
लुचुई	५५		
लुगरी	१८३	श	
लूबुकी (स्त्री)	३८	शंकरपुर का मेला	२६७
लुंगी	१७८	शकुन	२१८
लू (लूक)	२७५	शकुन चिरैया	२२०
लूगा	१८२	शकुन शास्त्र	२१८
लेखपाल	२८३	शत सहस्री संहिता	३७२
लोकनी	२५८	शनि	२२५
लोक संस्कृति	२	शनि देवता का मंदिर	२२५
लोढ़ा	२०७	शाक के प्रकार	१४०-४७
लोहा (टैबू)	२४९	शाक द्वितीय ब्राह्मण	७
लोहार	२९८	श्राद्ध (लो० वि०)	२४२
लंगोट	१७८	शिव	३१२



शिवसागर राम गुलाम	३६६	सिक्का	३०८
शिष्ट लोक संस्कृति	२	सिताब दिअरा	२९९
शिष्ट संस्कृति	२	सिर दर्द (रोग)	२७१
शीतला माता	५०, ३१९	सिलवट	२०७
श्रीहर्ष (कवि)	२२१, २४५	सुकवा	२२४
शुक्र (तारा)	२२४	सुखण्डी रोग	२७६
शूद्र	११	सुदिष्ट गोसाई	२६७
शूद्रक	२३, २८३	सुमंगली (वि०)	९०
शेरवानी	१७७	सुरमा (प्रसा०)	२०६
स		सूतिका गृह	७९, ८०
सजरि अगोरना	७९	सूर्य	२२३, ३१६
सटुआ	१८३	सूर्य षष्ठी व्रत	२५, ३३५
सठौरा	१३९	सेंगरा	२९४
सतनहयना	३७, २४७	सेफटीपिन	१९८
सतपुतिया	२३३	सेहरा	१८०
सत्तू	१२९, ३४७	सोनपुर (स्थान)	२६७
सत्यनारायण की कथा	२२१	सोनपुर मेला	२६७
सत्यनारायण बाबा	३१३	सोनार	२९८
सत्यनारायण व्रत	३३९	सोमदेव	३२३
समावर्तन	८४	सोहर	५४
सरखत	४१	सौत	७१
सरजू (घाघरा)	३०२	संकटमोचन (हनुमान)	३१०
सरयू	२२९	संतोषी माता	३१६
सरवार	१३४	संबंधी नाम (टैबू)	२५३
सरेह	२९९	संस्कृति-अर्थ	१
सर्पदंश	२७६	संस्कृति सभ्यता में अन्तर	१
ससुर	७१	संस्कृति श्रेणी विभाजन	२
सप्तपदी	२५, ९०, ३१७	संसार की असारता	३४३
सप्तर्षि मण्डल	२२५, ३१८	ह	
सम्बोधन के प्रकार	४५	हंस	२२१
स्कीयींग	२५५	हजाम	८३, २९२
स्टोर रूम	२१६	हजारी प्रसाद द्विवेदी	२, २८८
स्वप्न विचार	२३७	हत्यारा (टैबू)	२४९
साँई (बयाना)	३९	हथउरा	१९१
साढ़ साती	२२५	हथ संकर	१९०
सात (लो० वि०)	२४४	हथिया (हस्त)	२२६
सामे माई	३१५	हनुमान	२५४, ३१०-११
साया	१८३	हनुमान चालीसा	३११
सारन (जिला)	२६७	हरिहर क्षेत्र मेला	२६७
सारनाथ का मेला	२६८	हरिहरनाथ बाबा	२६७
सास की दुष्टता	६४	हरिजन जातियाँ	१२-१४
साही का काँटा	८३	हलका	१९४
सिकडी (गहना)	१९४	हलखोर	१४



हलुआ  
हलुआई  
हविष्य  
हँसुली

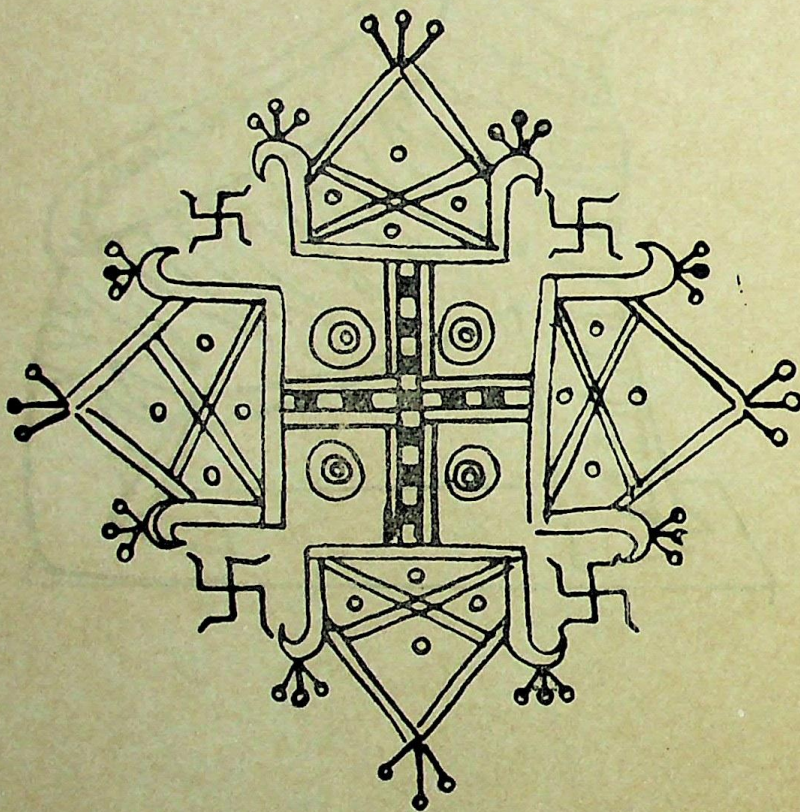
१२८  
२९८  
१००  
१९४

हार  
हैजा  
हो रहा  
होव्ली

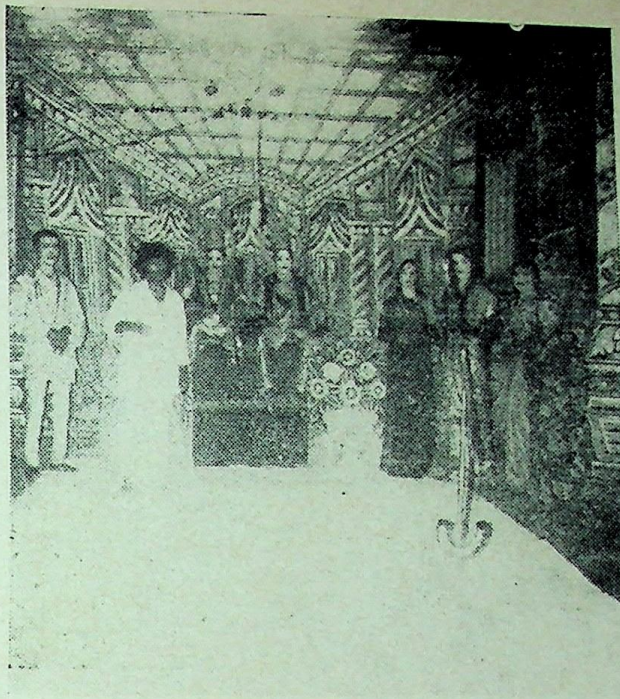
१९३  
२७५  
१३८  
३२८









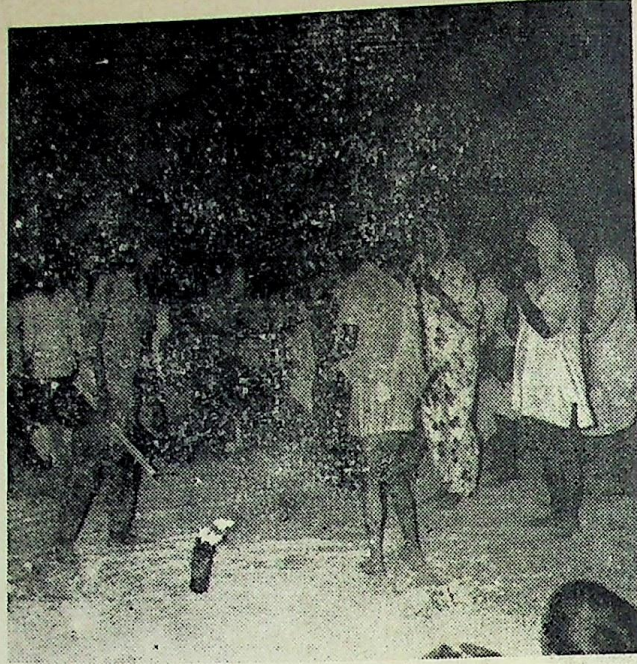


रामलीला का एक दृश्य



नवरात्र में पशु बलि का दृश्य



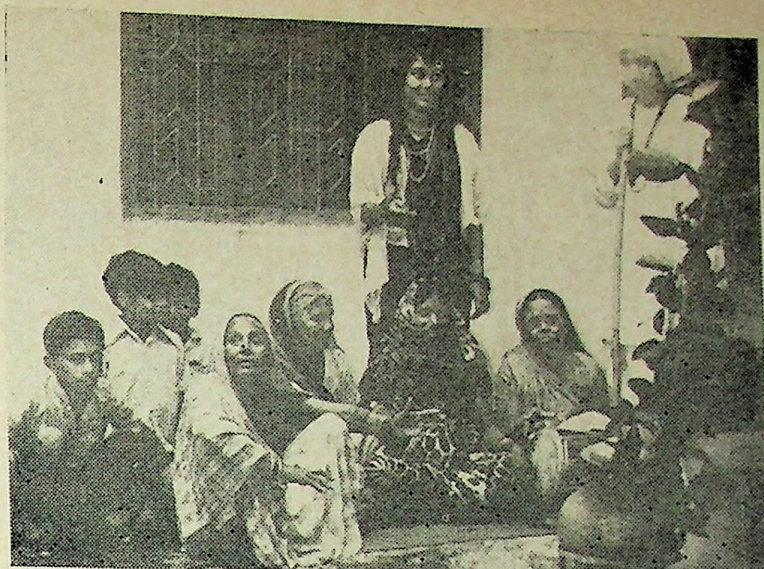


गोड़ऊ नृत्य



'डोमकछ' : महिलाओं का नृत्य नाट्य





स्त्रियों द्वारा कलश-पूजन



विवाह का एक दृश्य : मौर पहिने हुए दुलहा





मट्टी का वर्तन बनाती हुई महिला



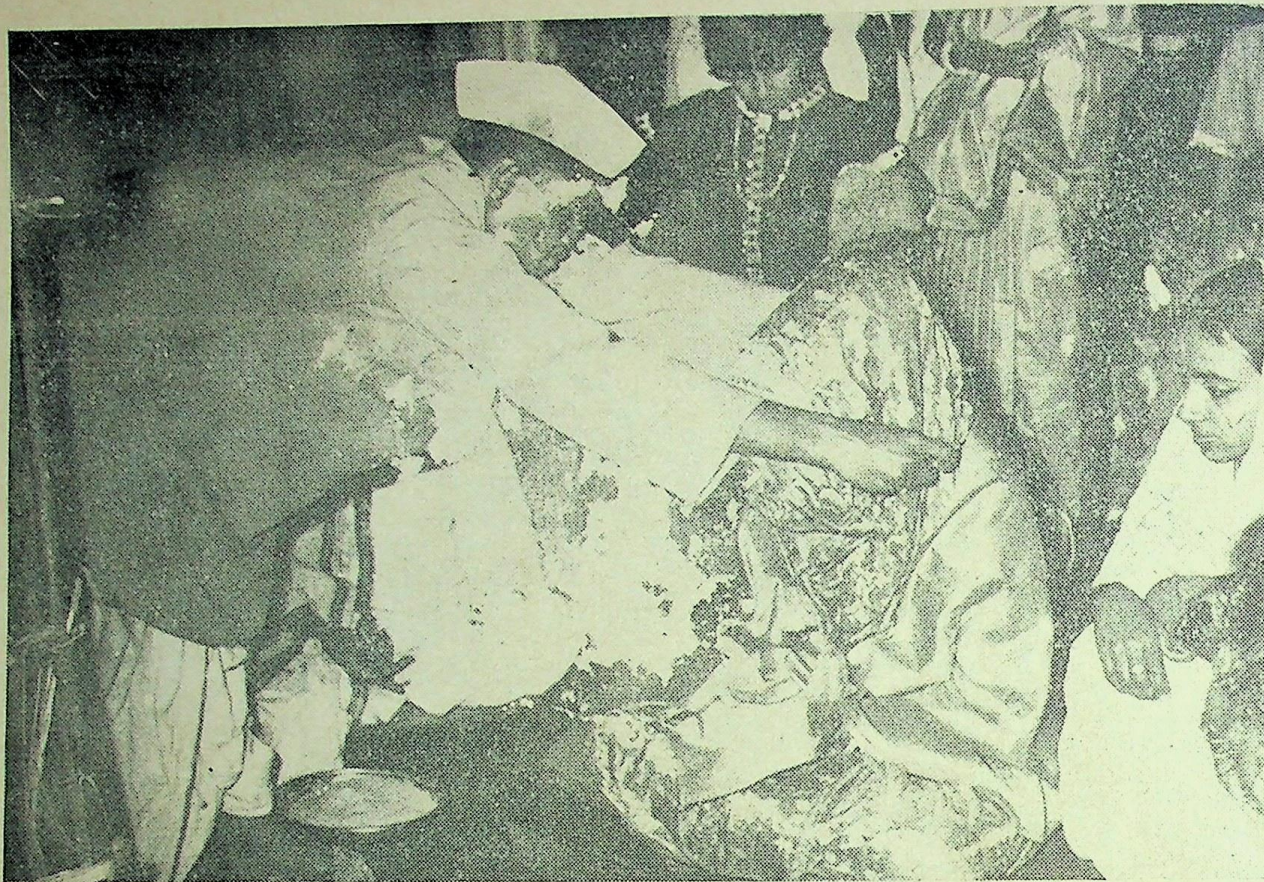
गोमुखी जल पात्र





चरागाह का एक दृश्य



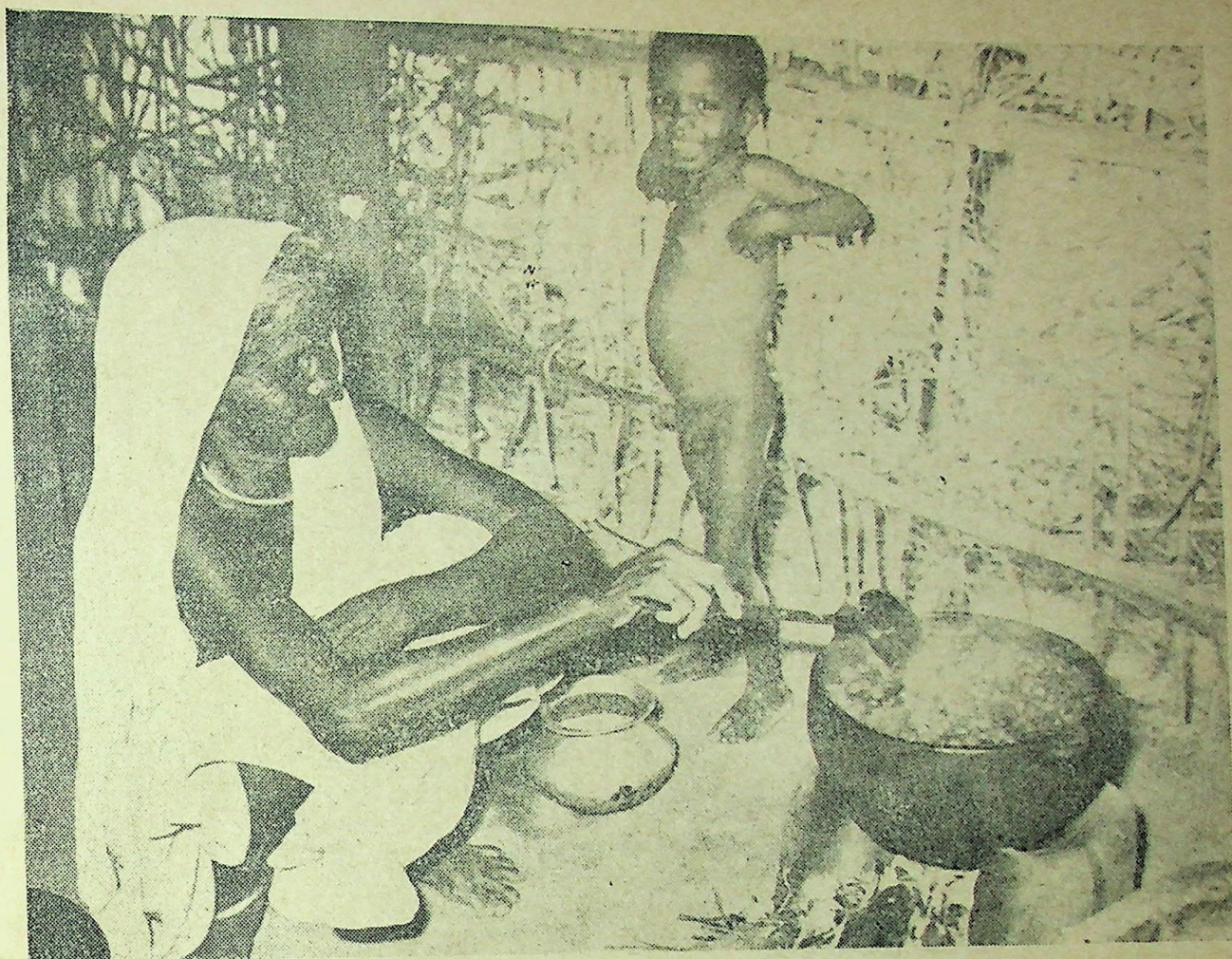


ससुर के द्वारा अपनी भवहि का कन्या निरीक्षण अथवा आभूषण वस्त्र प्रदान करना



गौना के बाद वर घोड़ी पर और बहू के पैदल चलने का दृश्य





पौत्र के साथ खाना बनाती हुई वृद्धा



भोजपुरी क्षेत्र की महिलाएँ और बच्चे

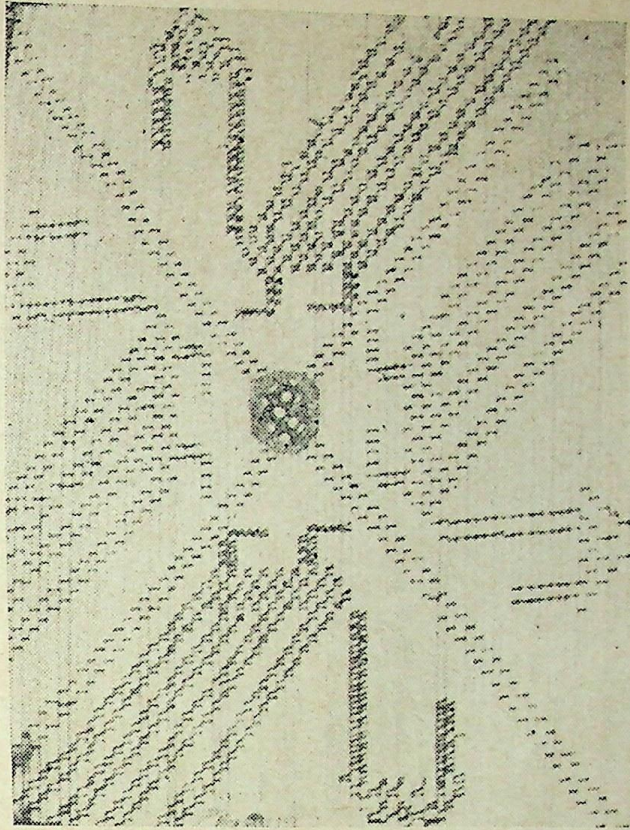


एक भोजपुरी भक्त

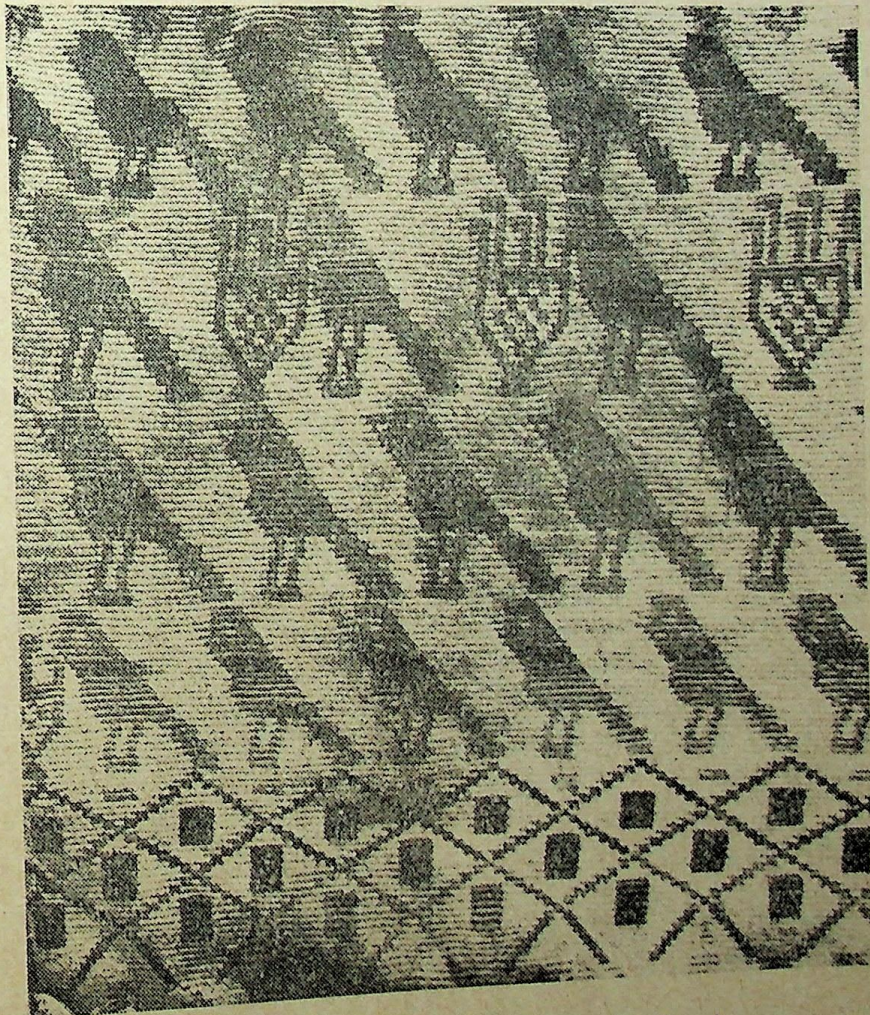


भालुओं के नाच का एक दृश्य





गेहूँ के डंठल से बना पंखा



कपड़ों पर बनने वाली डिजाइन (झोला कुरसिया)



